आर्य साहित्य ग्रन्थ माला सं० ४

ओ३म्

पौराणिक पंडित कालूराम जी शास्त्री

लिखित—

"आर्य समाज की मौत"

का क़रारा जवाब—

# पौराणिक पोल प्रकाश

[प्रथम भाग]

लेखकः—

पं० अनसारास जो "वैदिक तोप"

उपदेशक-आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर,

प्रकाशक

आर्य साहित्य मन्दिर

हस्पताल रोड लाहौर

पं० अवधानीलाल आर्य

१९३६ ई०

मूल्य ... रु: ३।०...

तिथि ...

प्रथमवार २०००] [मूल्य ३)

पुस्तकालय ...

प्रकाशक व मुद्रक—
श्री भीमसेन वर्म्मा, अध्यक्ष—
आर्य-साहित्य मन्दिर
हस्पताल रोड, लाहौर

## द्वितीय भाग

इस पुस्तक का द्वितीय भाग मार्च १९३६ तक प्रकाशित होगा। ३१ मार्च तक प्रथम भाग को ३) रु० में लेने वाले को द्वितीय भाग मुफ्त मिलेगा। पश्चात् पूरे दाम २) रु०।

[illegible]
२८० पृ० तक नवयुग प्रेस में छपे
२८१ से आगे रणबीर प्रिंटिंग प्रेस,
मोहन लाल रोड, लाहौर में छपे।

# आर्य समाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परमधर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

# समर्पणम्

मैं अपनी इस पुस्तक को त्यागमूर्ति सिद्धान्तसूर्य्य धर्म्माचार्य्य तपोनिधि पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आचार्य दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय तथा अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरुदत्त भवन लाहौर के कर कमलों में समर्पित करता हूं। आपका स्वाध्याय अगाध तथा सिद्धान्त प्रेम अपूर्व है। आपकी मेरे ऊपर विशेष कृपा दृष्टि है। आपने ही उत्साहित करके मुझे ग्रन्थ लेखकों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। यह आपके ही उत्साहित करने तथा प्रत्येक प्रकार की सहायता देने का फल है कि मैं "पौराणिक पोल प्रकाश" जैसी अनुपम पुस्तक द्वारा आर्य्य जनता की सेवा करने में समर्थ हो सका हूं। मैं आशा करता हूं कि आचार्य जी इस मेरी तुच्छ भेंट की स्वीकार करके मुझे आशीर्वाद देकर कृतार्थ करेंगे।

वैदिक धर्म का तुच्छ सेवक—

मनसाराम "वैदिक तोप"

उपदेशक आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

गुरुदत्त भवन लाहौर।

# सनातन धर्म की सभ्यता

प० कालूराम जी शास्त्री ने जो "आर्यसमाज की मौत" नामक पुस्तक लिखी है। उस में सनातन धर्म की सभ्यता का तो दिवाला ही निकाल दिया है। बजाय इसके कि वह ईमानदारी के साथ आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों पर नुक्ताचीनी करते। आर्य्य समाज आर्य्य समाजियों तथा ऋषि दयानन्द जी को भर पेट गालियां देने में ही अपनी क़ाबलियत का इज़हार समझते हैं। हम उनकी सभ्यता के कतिपय नमूने पाठकों की सेवा में रखते हैं।

(१) स्वामी दयानन्द जी ने गालियां, असत्यभाषण, चाल बाज़ी, धोका, हठ कर, ईसाई धर्म्म को वैदिक धर्म्म बनाया है। पृ० क पं० १२ से १५ तक।

(२) इस बेहूदगी के साथ विवेचन किया।

पृ० क पं० २२।

(३) स्वामी जी ने इस की पुष्टि चोरी के बल पर की है। पृ० ग पं० ६।

(४) कौन कहता है कि आर्य्यसमाजी संसार को धोका देकर चालाकी चलकर आर्य्यसमाज को नहीं फैलाते।

पृ० च पं० २७।

(५) और वे संसार की दृष्टि में नीच बने।

पृ० छ पं० ६।

( ६ ) धर्म २ चिल्लाकर मनुष्यों को पापी बनाने वाले ढोंगों से बचो। पृ० ज पं० १२।

( ७ आर्य्यसमाज कोई धर्म्म नहीं केवल धोका और चालबाजी का पुञ्ज है। पृ० ञ पं० ८।

( ६ ) आर्य्यसमाज तुमको ईसाई बनाये रखने वाला खूंखार जानवर है। पृ० ञ पृ० १६।

(१०) आप पागलों की सी बात छोड़ दें। पृ० ६ पं०२।

(११) नास्तिक हो या मुसलमान या ईसाई ।

पृ० ६ पं० २४।

(१२) बस आर्य समाज की छार होगई। पृ० ६ पं० ३०

(१३) दूसरों की उन्नति पर आर्य्य समाजी जलते हैं।

पृ० ६ पं० ७।

(१४) स्वामी जी को मूर्ख बतलाते हैं। पृ० ६ पं० १३।

(१५) तुम बड़े हुज्जत बाज़ हो। पृ० १० पं० २४।

(१६) वेद के दुश्मन अक्ल को नीलाम करने वाले।

पृ० ११ पं० १०–११

(१७) तुम दयानन्द को बेवकूफ समझ नास्तिक बन जाओ। पृ० १२ पं० २।

(१८) स्वामी दयानन्द जी हैं बड़े मसखरे।

पृ० २० पं० ४।

(१९) फूट गई आर्य्य समाजियों के पितरों की तक़दीर।

पृ०२० पं० ३०।

(२०) स्वामी जी को देश का शत्रु और मूर्ख समझते हैं। पृ० २५ पं० १।

(२१) स्वामी जी की इस नीचता। पृ० २७ पं० ११।

(२२) स्वामी जी क्रोध में आकर कंजर झूठ लिखते हैं।

पृ० २६ पं० १०।

(२३) स्वामी दयानन्द जी को उन्माद है।

पृ० २६ पं० २४।

(२४) स्वामी दयानन्द जी कापड़ी जाति में उत्पन्न हुए थ और लड़कपन में इनका पेशा गाना तथा नाचना था।

पृ० ३० पं० २२।

(२५) स्वामी जी वैसे गालियां देने लगे जैसे औरतें राण्ड नपूता आदि। पृ० ३३ पं० १६।

(२५) स्वामी दयानन्द जी के चित्त में नीच वृत्तियाँ थीं। पृ० ३५ पं० १३।

(२६) सत्यार्थ-प्रकाश है या असत्यार्थ-प्रकाश।

पृ० ४२ पं० १०।

(२७) यहां पर तो स्वामी दयानन्द जी ने आर्य्य समाजियों को कंजर बना दिया। पृ० ४७ पं० १५।

(२८) व्यभिचार प्रिय स्वामी जी। पृ० ४६ पं० ५।

(२९) यह जो वेद हैं इस में व्यभिचार ही भरा है या कुछ और। पृ० ४९ पं० २२।

(३०) स्वामी दयानन्द जी अपने मन में आये व्यभिचार को। पृ० ५३ पं० ५।

(३१) धन्य हैं तुम्हारे ऋषि को जो वेदार्थ के बहाने से तुम को बेवकूफ बनाने के लिये अनाप शनाप बकदे। पृ० ५४ पं० १८।

(३२) सच तो बतलाओ इतना बड़ा वेद का दुश्मन क्या कोई आज तक हुआ है। क्यों न हो नास्तिकों का महर्षि है न। पृ० ५६ पं. ३।

(३३)दयानन्द पोप पृ. ५१८ पं. २०।

(३४) आर्य्य समाजियों को प्लेग घेर लेता है। पृ० ११७ पं० २८।

(३५) छोड़ो स्वामी जी की लिखी चंडू खाने की गप्पें। पृ० १०१ पं० ७।

(३६) आर्य्य समाजियों का मुंह काला हो। पृ० ६३ पं० ८।

(३७) नीमच के शास्त्रार्थ में बुद्धदेव धर्म्म कर्म दीन ईमान को तिलांजलि दे। पृ० ८४ पं० १८।

(३८) स्वामी दयानन्द जी की पी हुई भंग। पृ० ४८ पं० ८।

(३६) एक बार बोलिये आर्य्य समाज की बेहयाई की जय। पृ० ८३ पं० १८।

(४०) आर्य समाजी कुत्ते की भांति दुतकारे जावेंगे। पृ० ७७ पं० १०।

(४१) दयानन्द जी वेदों के रक्षक हैं या भक्षक। पृ० ७७ पं० १।

(४२) तुम अवश्य निरक्षर हो पृ० ६३ पं० ६।

(४३) आर्य समाजियों का कोई धर्म ही नहीं। पृ० ८७ पं० १६।

(४४) इस मूर्ख समुदाय का एक भी मनुष्य लेखनी नहीं उठावेगा। पृ० १३१ पं० ३०।

(४५) शास्त्रार्थ के समय वेद शास्त्र शून्य बुद्धू कबाड़ू कचरू शास्त्रार्थ करने आते हैं। पृ० १७७ पं० २३।

(४६) क्या जीवित पितरों से यह कह सकते हैं कि आप लोगों ने भोजन तो खा लिया, ज़रा हमारी स्त्री को भी .....पृ० २६१ पं० ५।

(४७) बुद्ध देव पंजाबी और रामचन्द्र सुनार देहलवी। पृ० छ० पं०२४।

(४८) वाह रे वाह सत्यार्थ काश के बनाने वाले लालबुझक्कड़। क्या कहना, तुझ को ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अंधा ही बन गया।.....भला इन महा झूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य

कोई। इन सत्यार्थ प्रकाशादि के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये। वा जन्मते समय मर क्यों न गये। क्यों कि इन पापों से बचते तो आर्य्यावर्त देश दुःखों से बच जाता पृ० ३४ पं० १३।

(४६) स्वामी जी को उन्माद है नहीं तो धन लोलुपता रूप स्वार्थ ने स्वामीजी से यह पाप करवाया है। पृ०३६पं०६।

(५०) स्वामी जी का झूठ बोलना और झूठ लिखना ही पेशा था। पृ० ४२ पं० २६।

(५१) यहां पर भी बेवकूफ ईश्वर भूल गया था। पृ० ५४ पं० ३०।

(५२) स्वामी जी स्त्री को पति के पास नहीं जाने देते यहां ही मौज उड़ाने की आज्ञा देते हैं। पृ० ५२ पं० १४।

(५३) यहां पर स्वामी जी ने स्त्रियों को मौज उड़ाने के लिये पतियों का जंकशन खोल दिया। पृ० ५२ पं० २८।

(५४) स्वामी जी के नास्तिक भावों को सिद्ध करने वाले हैं। पृ० ५ पं० २४।

(५५) मूर्ख आर्य समाजी स्वामी दयानन्द जी की गहरी चाल को कैसे समझ लें। पृ० ६३ पं० १५।

ये हम ने नमूने के तौर से कुछ उदाहरण लिख दिये हैं वरना सारी की सारी किताब इसी प्रकार के खुराफात से भरी पड़ी है। हमारा यह काम नहीं कि हम गालियों का जवाब गाली दें। हम आर्यसमाज पर किये गये आक्षेपों का सभ्यता पूर्वक उत्तर देंगे और इन गालियों के विषय में हम सनातन धर्म्म के ठेकेदारों को उनके ही शब्दों में यही कहना मुनासिब समझते हैं। कि—

त्वदीयं वस्तु गोविन्दतुभ्यमेव समर्पये।

# ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय

इस से पूर्व कि हम प्रश्नों के उत्तर लिखें। इस बात का लिखना आवश्यक है कि आर्य्य समाज किन २ ग्रन्थों को प्रमाण मानता है। और किन किन को अप्रमाण मानता है। परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में मनुष्यों को धर्म अधर्म का ज्ञान देने के लिये चारों वेदों को प्रकाशित किया। चूंकि परमात्मा सर्वज्ञ है। और उस का ज्ञान निर्भ्रान्त है। और वेद ईश्वर का ज्ञान है। इस लिये चारों वेद मूल संहिता स्वतः प्रमाण हैं। उनके प्रमाण के लिए और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। अतः धर्मा धर्म का निर्णय करने में वेद ही अन्तिम कसौटी है। शेष सब ऋषि कृत ग्रन्थ जो ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द तक के बनाए हुए हैं। वे सब परतः प्रमाण हैं। अर्थात् यदि वेदों के अनुकूल हों तो प्रमाण हैं यदि इन में भी कोई बात वेद के विरुद्ध हो तो वह प्रमाण नहीं है। बाकी सब ग्रन्थ जो ऋषियों के बनाए हुए नहीं हैं। चाहे तो वे ऋषि दयानन्द से पहिले मनुष्यों के बनाये हुए हों और चाहे वे ऋषि दयानन्द जी से पीछे के मनुष्यों के अर्थात् तुलसीराम स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० राजाराम, पं० आर्य्यमुनि, पं० सातवलेकर, स्वामी सत्यानन्द, पं० नरदेव, पं० भगवतदत्त, पं० विश्वबंधु, स्वामी सर्वदानन्द, पं० जयदेव इत्यादि किसी के भी बनाये हुए क्यों न हों वे सब ग्रन्थ अनार्ष होने से अप्रमाण हैं। आर्य्य समाज पर उन ग्रन्थों का उत्तरदायित्व नहीं है। यदि कोई मनुष्य अपने आप को आर्य समाजी कहता हुआ आर्य्य समाज के

सिद्धान्तों के विरुद्ध लिखता है। तो हम उसका भी अपने उत्तरों में वैसा ही खंडन करेंगे। जैसा कि दूसरे अप्रामाणिक ग्रन्थों का। इस बारे में ऋषि दयानन्द जी का लेख स्पष्ट है कि जैसे ऋग्यजु, साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदों के अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपांग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं इनमें भी जो २ वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण। अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

"ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सर्व शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपात सहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।"

(सत्यार्थ० समुल्लास ३)

सारांश यह कि आर्य्यसमाज वेदों को स्वतः प्रमाण ऋषि कृत ग्रन्थों को परतः प्रमाण और अनार्ष मनुष्य कृत ग्रन्थों को अप्रमाण मानता है। आर्य्यसमाज का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है। अतः सनातन धर्म्मियों को चाहिये कि वे प्रमाण देते समय ज़रा सोच लिया करें। कि जिस पुस्तक का वे प्रमाण दे रहे हैं। वह आर्य्यसमाज के लिये प्रमाण भी है

या नहीं। यों हीं इधर उधर के रिसालों, अखबारों, अनाप्त ग्रन्थों तथा अनाप्त भाष्यों को पेश करके अपना तथा हमारा समय व्यर्थ न खोवें।

---

प्रथम संस्करण

# सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कार विधि

---

वेद भाष्य सत्यार्थ प्रकाश तथा अन्य पुस्तकों के संस्कृत अंशों के हिन्दी अनुवाद का तथा उन के प्रूफों के पढ़ने का काम पण्डितों पर ही छोड़ दिया गया था। पौराणिक शिक्षा के संस्कार वाले उन पण्डितों ने कहीं २ ऐसी बातें उन पुस्तकों में धरदीं। जो वैदिक शिक्षा के विरुद्ध थीं। अतएव स्वामी जी ने संवत् १९३५ ईस्वी सं० १८७८ में नीचे लिखा विज्ञापन प्रकाशित किया।

## विज्ञापनम्

सब को विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उन के अनुकूल हैं। उनको मैं मानता हूं। विरुद्ध बातों को नहीं, इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तक के वचन बहुत से लिखे हैं। वे उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं। उन में से वेदार्थ के अनुकूल को साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध को अप्रमाण मानता हूं। जो जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं। उन सब को प्रमाण करता हूं। क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होने

से सर्वथा मुझ को मान्य हैं। और जो २ ब्रह्माजी से लेकर जैमिनिमुनि पर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं। उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। और जो सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ४२ पंक्ति २५ में "पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे" तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में 'मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है। सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इस के स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म्म है। और जो २ मर गये हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्रद्धा है। अन्य नहीं। इस विषय में वेद मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृ० २५१ से लेके १२ अंक के २६७ पृ० तक छपा है। वहां देख लेना। (दयानन्द ग्रन्थ माला पृ० १४—१५)।

"जिस समय मैं ने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और

लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा-व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है। कहीं २ शब्द, वाक्य, रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक २ करदी गई है"।

( सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका )

## वाक्यार्थ बोध

"वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं--आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है तब उस को ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। "आकाङ्क्षा" किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थपदों की आकांक्षा परस्पर होती है। "योग्यता" वह कहाती है कि जिस से जो हो सके जसे जल से सींचना। "आसत्ति" जिस पद के साथ जिस का सम्बन्ध हो उसी के समीप उसको पद बोलना वा लिखना। "तात्पर्य" जिस के लिये वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना। बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उन की बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है। ( सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका पृ० २ )

## व्याख्या

( १ ) आकांक्षा नाम इच्छा का है। जैसे बोलने और सुनने वाले की विषय को जानने की इच्छा होती है। वैसे ही वाक्यों में भी शब्दों की आपस में इच्छा होती है । अर्थात् जब तक किसी पद के साथ इच्छानुसार दूसरे पदों को मिलाया न जावे तब तक वाक्य अपूर्ण रहता है। इस से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । उदाहरणार्थ एक आदमी बोलता है "घोड़ा" अब इस घोड़ा पद को दूसरे पदों की ज़रूरत है। जब तक और पद उस के साथ न मिलाये जावें तब तक केवल घोड़ा कहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। क्या पता लगे कि कहने वाले की क्या इच्छा है। वह "घोड़ा लाओ" कहना चाहता है या "घोड़ा लेजावो" 'घोड़ा खरीदो' 'घोड़ा बेचो' 'घोड़ा आता है' 'घोड़ा जाता है' 'घोड़ा कूदता है' 'घोड़ा दौड़ता है' कहना चाहता है । सारांश यह कि जब तक घोड़ा पद के साथ कोई और पद न जोड़ा जाय तब तक बोलने वाले के प्रयोजन को नहीं जाना जा सकता। इसी को आकांक्षा कहते हैं।

(२) योग्यता नाम क़ाबलियत का है। जिस चीज़ में जो काबलियत हो वही समझना। जैसे जल में सैराब करने की क़ाबिलीयत है। और आग में जलाने की क़ाबलियत है। तो इन दोनों को वैसा ही समझना योग्यता है । किंतु पानी को जलाने वाला और आग को सिंचन करने वाला समझना योग्यता के विरुद्ध है।

(३) आसत्ति नाम समीपता का है। जिस पद का जिस पद के साथ संबंध हो उसी के साथ बोलना आसत्ति

कहलाती है। इस के विरुद्ध करना आसत्ति के विरुद्ध है। जसे एक मनुष्य ने देशी खांड की दुकान खोली और उसने अपनी दुकान पर यह बोर्ड लिख कर लगाया कि 'यहां पर देशी खांड मिलती है' किंतु पढ़ने वाला इस को इस प्रकार से पढ़ता है कि 'यहां' परदेशी खांड मिलती है' अब देखिये यहां केवल 'पर' पद को यहां के साथ न पढ़ कर देशी के साथ मिला कर पढ़ने से दुकानदार का मतलब बिलकुल ख़बत हो जाता है। और ग्राहकों पर क़तई उस के विरुद्ध संस्कार पड़ता है। ऐसा करना आसत्ति के विरुद्ध है।

(४) तात्पर्य नाम अभिप्राय का है। लिखने वाले या बोलने वाले ने जिस अभिप्राय के लिये कुछ लिखा वा बोला हो। उस से वही अभिप्राय ग्रहण करना तात्पर्य कहाता है। उसके विरुद्ध कल्पना करना तात्पर्य के विरुद्ध है। जैसे एक मनुष्य का जूता टूट गया था। वह बाज़ार में जूता खरीदने गया। किंतु उस को सारे शहर में जूता न मिला। वह सायं एक मित्र के मकान पर गया और उस से कहने लगा कि 'यार यह शहर कितना निकम्मा है कि यहां जूते भी नहीं मिलते'। मित्र ने फौरन हंस कर उत्तर दिया कि 'आप का शिर सलामत चाहिये जूतों की क्या कमी है'। अब ज़रा विचार करें कि उस ने तो जूतों का पैर के लिये ज़िकर किया था किंतु उसके मित्र ने उसके अभिप्राय के विरुद्ध शिर के लिये जूतों का प्रयोग करके मख़ौल बना लिया। ऐसा करना तात्पय के विरुद्ध होता है।

जो आदमी इन चारों बातों को ध्यान में रखकर किसी पुस्तक को पढ़ता है। वह ग्रन्थ कर्ता के अभिप्राय को ठीक समझता है। किंतु जो मनुष्य इन चारों बातों को ध्यान में न लाकर स्वार्थ, अंधविश्वास और बेईमानी से ग्रन्थ-कर्ता के अभिप्राय के विरुद्ध उसके ग्रन्थ के लेख में से अभिप्राय निकाल कर जनता को धोका देता है। वह महापापी आत्म हत्यारा और नरक गामी है। जैसा कि वेद की आज्ञा है कि—

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः॥
(यजु० ४०।३)

भावार्थ—जो मनुष्य आत्म हत्यारे हैं। वे इस जीवन में भी दुःख पाते हैं। और मरने के पश्चात् भी ऐसे लोक लोकान्तरों को प्राप्त होते हैं। जो अंधे अंधेरे से ढके हुवे हैं। और जिन में निशाचर लोग निवास करते हैं।

हम इस बात को विना संकोच के कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों के बारे में सनातन धर्म्म के ठेकेदार पूर्ण रूप से आत्म हत्या से काम ले रहे हैं। और उपरोक्त चारों कारणों को तिलांजलि देकर स्वामी जी के ग्रन्थों के लेख को तोड़ मरोड़ कर स्वामी जी के अभि ाय के विरुद्ध अभिप्राय निकाल कर जनता को धोके में डालने का यत्न कर रहे हैं। उदाहरणार्थ—

(१) स्वामी जी ने "नतस्य प्रतिमास्ति यजु० ३२।३" के भाष्य में लिखा है कि "उस परमेश्वर की प्रतिमा, परिमाण,

उसके तुल्य, अवधिका साधन, प्रतिकृति, मूर्ति, वा आकृति नहीं है" एक वार का ज़िकर है कि एक स्थान में आर्य्य समाज तथा सनातन धर्म्म में मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ हुवा। आर्य्य पण्डित ने सनातनी पण्डित की बोलती बन्द कर दी। पौराणिक पण्डित ने तंग आकर कहा कि यदि हम स्वामी दयानन्द जी के वेदभाष्य से मूर्ति पूजा दिखला दें तब तो मानोगे। लोगों ने कहा बिल्कुल ठीक है ज़रूर मानेंगे। तब पौराणिक पण्डित ने स्वामी जी का यजुर्वेद भाष्य उठाया और उपरोक्त भाष्य में से मूर्ति पद पर अंगुली रखकर दो चार साधारण भाषा जानने वालों को दिखा दिया कि देख यह मूर्ति लिखा है या नहीं। उन्हों ने कहा कि हां मूर्ति तो लिखा है। यह सुनते ही सनातनियों ने ताली बजा दी कि स्वामी जी के भाष्य से मूर्ति प्रसिद्ध हो गई। अब यह तरीका निश्चय पूर्वक आकांक्षा के विरुद्ध तथा आत्म हत्या करके नरक में जाने का साधन है।

(२) स्वामी दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेद के भाष्य अध्याय २१ मंत्र ६० के भाष्य में लिखा है कि "ऐश्वर्य्य के लिये बैल से भोग करें (उपयोग लें) और अध्याय ६ मंत्र १४ के भाष्य में लिखा है कि "हे शिष्य! अच्छी शिक्षाओं से मैं तेरी जिससे रक्षा की जाती है उस गुदा इन्द्रिय को पवित्र करता हूं अर्थात् धर्म्मानुकूल करता हूं" किंतु सनातन धर्म्म के ठेकेदार यह कह कर जनता को धोका देते हैं कि स्वामी जी ने बैल से और शिष्य से मैथुन करने की आज्ञा दी है। हालांकि बैल में तथा शिष्य में मैथुन की योग्यता

नहीं है। तथा स्वामी जी ने 'भोग करें' के अर्थ 'उपयोग लें' तथा 'शुद्ध करता हूं' के अर्थ स्पष्ट 'धर्मानुकूल करता हूं' लिख भी दिये हैं। यह कथन योग्यता के विरुद्ध है।

(३) स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास में लिखा है कि—

( प्रश्न ) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ? ( उत्तर ) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त करदें। ( प्रश्न ) फिर क्या उनका मांस फेंकदें ? ( उत्तर ) चाहें फेंक दें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, ] किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है ( सत्यार्थ० समु० १० )

इस पाठ को इकट्ठा पढ़ने से स्पष्ट पता लगता है कि स्वामी जी मुरदे के मांस को भी इस कारण अभक्ष्य बतला रहे हैं कि उस से गोश्त खोरी का स्वभाव होकर स्वभाव का हिंसक होना संभव है। और हिंसा से प्राप्त किया पदार्थ अभक्ष्य है। किंतु पौराणिक मण्डल की

ज़मीर फरोशी देखें कि वे सत्यार्थ का उतना पाठ सुनाकर कि जितना कोष्ठ में दिया है। जनता में भ्रम फैलाते हैं। कि स्वामी जी ने मुरदा जानवर और मनुष्य के मांस खाने की आज्ञा दी है। हालांकि अगला पाठ पढ़ने से सारा भ्रम दूर हो जाता है। धर्म्म के ठेकेदारों का यह तरीक़ा आसक्ति के विरुद्ध है।

( ४ ) स्वामी जी ने मनुष्य मात्र को वेद का अधिकार सिद्ध करने के लिये 'यथेमाम् यजु० २६। २ २' के अर्थ में '( स्वाय ) अपने स्त्री सेवकादि' लिख कर स्त्री तथा सेवकों को भी वेद पढ़ने का अधिकार बतलाया है। पौराणिक मण्डल ने इस से ईश्वर की स्त्री ( पत्नी ) तथा नौकर की कल्पना करके वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध ईश्वर को देहधारी सिद्ध करने का यत्न किया है। हालांकि यहां स्त्री से पत्नी का नाम नहीं अपितु स्त्री जाति तथा सेवक से ईश्वर भक्त मनुष्यमात्र का ग्रहण है। और समस्त स्त्री तथा मनुष्य ईश्वर की प्रजा होने से ईश्वर के स्व तथा ईश्वर सब का स्वामी है। इस प्रकार की चेष्टा तात्पर्य्य के विरुद्ध है।

आप इस सारी किताब में इसी प्रकार की चेष्टा देखेंगे ग्रन्थकर्ता ने स्वामी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध स्वामी जी के ग्रन्थों के पाठ से अवतार, मूर्ति पूजा, श्राद्ध, जन्म से वर्ण व्यवस्था आदि उन बातों को सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जिन को स्वामी जी ने वेद विरुद्ध सिद्ध करके उनका स्पष्ट खण्डन किया है। हम ने उन स्थलों की काफी समालोचना करदी है। पाठक पुस्तक को पढ़ते हुए उपरोक्त चार बातों का ध्यान रक्खें।

—मनसाराम 'वैदिक तोप'

# विषय-सूची


| क्रम सं० | विषय | पृ० सं० |
|---|---|---|
| १ | मृत्युञ्जय आर्य समाज | १ |
| २ | ईश्वर स्तुति प्रार्थना | २ |
| ३ | ईश्वर का स्वरूप | ३ |
| ४ | ब्रह्म के दो रूप | ६ |
| ५ | तीन प्रकार की साकारता | १० |
| ५ | व्याप्य-व्यापकत्व साकारता | ११ |
| ६ | सर्व स्वरूपत्व साकारता | १५ |
| ७ | अवतारत्त्व साकारता | २८ |
| ८ | यक्षावतार | ४० |
| ९ | मत्स्यावतार | ४७ |
| १० | ब्रह्मावतार | ४८ |
| ११ | वाराहवतार | ५६ |
| १२ | वामनावतार | ५९ |
| १३ | निराकार | ६४ |
| १४ | अवतार वाद और स्वामी दयानन्द | ८१ |
| १५ | अवतार परिशिष्ट | १०० |
| १५ | मूर्त्तिपूजा | १०२ |
| १६ | महावीर | १०६ |
| १७ | असलियत | १४८ |
| १८ | हेतुवाद | १६० |
| १९ | शिव लिंग पूजा | १७७ |
| २० | शिव लिंग कीस्थपना | १७९ |
| २१ | स्वामी दयानन्द और मूर्त्ति पूजा | २०९ |
| २२ | मूर्ति पूजा परिशिष्ट | २२० |
| २३ | त्रित्ववाद | २२४ |
| २४ | सृष्टि | २५२ |
| २५ | देव जाति | २६१ |
| २६ | स्वामी दयानन्द और देव जाति | २८४ |
| ५७ | वेदोत्पत्ति | २८७ |
| २८ | फलित ज्योतिष | ३११ |
| २९ | स्वामि दयानन्द और फलित ज्योतिष | २२६ |
| ३० | तीर्थ | ३२८ |
| ३१ | पाप मोचन | ३५५ |
| ३२ | नाम स्मरण महत्व | ३९२ |
| ३३ | शूद्र को वेद का अधिकार | ४२५ |
| ३४ | वेद में स्त्रियों का अधिकार | ४६० |
| ३५ | विवाह काल | ५४५ |
| ३६ | वर्ण व्यवस्था | ५९५ |
| | स्वामी दयानन्द और वर्ण व्यवस्था | ७३७ |

# पौराणिक पोल प्रकाश

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| २ | ५ | तर्कों | तर्कें |
| ६ | १ | अनाष | अनार्ष |
| ११ | १६ | जसे | जैसे |
| ११ | १७ | उसको पद बोलना | उस पद को बोलना |
| १३ | २ | जसे | जैसे |
| १३ | २३ | तात्पय | तात्पर्य |
| १४ | २ | पढ़ना | पढ़ता |
| १४ | २६ | अभिाय | अभिप्राय |
| १५ | १० | देख | देख लो |
| १८ | ३२ | तथा ३३ नंबर के मध्य में | ३२–२ स्वर्ग ४।४ |
| २६ | २० | पञ्चभूतम् | यज्ञभूतम् |
| ३६ | ११ | मनुयों | मनुष्यों |
| ४२ | ३ | गुह्यकन्तं | गुह्यकस्तं |
| ४२ | २२ | सोनावहे | सोना कहे |
| ४५ | ६ | चक्षः | चक्षुः |
| ४५ | १४ | ऊर्ध्वमत्क्रमत | ऊर्ध्वमुत्क्रमत |
| ४६ | ११ | तेनहिति | तेनार्हति |
| ५० | २३ | मख है | मुख है |
| ५१ | २३ | स्वल्या ज्याहुति | स्वल्पाज्या हुति |
| ५२ | १५-१६ | पतिता | पतिव्रता |
| ६७ | १० | मंत्र में पढ़े हैं | मंत्र में पढ़े हैं |
| ६६ | ३ | राम मेघ नाद के बाण से ज़ख़मी हो कर मरे। | राम मेघ नाद के बाण से ज़ख़मी हो कर मूर्च्छित हुवे और कृष्ण भील के तीर से ज़ख़मी हो कर मरे। |
| ७१ | ४ | (४६) प्रश्न | (४६) इस |
| ७८ | १ | जसे | जैसे |
| ७६ | ५ | विकार | विकारी |
| ७६ | १४ | और जो कोई कहे कि भक्त जन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं | और जो कोई कहे कि भक्त जनों का उद्धार करने के |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| | | | लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्यों-कि जो भक्त जन ईश्वर की आज्ञा अनुकूल चलते हैं। |
| ८५ | २० | संबाधित | संबोधित |
| ९२ | १३ | भजने | यजने |
| १०७ | १५ | सस्यस्य | सत्यस्य |
| ११४ | ७ | गुणों के | गणों के |
| ११८ | १८ | कगाली | कंगाली |
| १२० | ६ | मुक्षीपमा | मुक्षीयमा |
| १४७ | ४ | उसके पंच तत्वों | उसके शरीर पंच तत्त्वों |
| १५० | ६ | पह | यह |
| १५३ | १५ | यक्ष | यज्ञ |
| १५४ | ८ | प्रतियाना | प्रति-यातना |
| १५९ | ३ | प्रत्यक्षादीनं | प्रत्य-क्षादीनां |
| १५९ | १२ | (११७) | (११८) |
| १६७ | १ | हज़ है | हर्ज है |
| १८० | ११ | मये समषि | अमये ऋषि |
| १८१ | १६ | लिये सब | लिये गये वे सब |
| १८५ | ५ | कार्षिताः | कर्षिताः |
| १९० | १३ | लोगों की पैदाइश | लिंगों की पैदाइश |
| १९० | २० | जलरुरी | जलहरी |
| १९२ | ४ | लिंग | लिंगं |
| १९२ | १ | चिह्ना | चिह्नी |
| २०० | ८ | पार्वती के वीर | पार्वती के पुत्र वीर |
| २०१ | ८ | हेच्छतां | हेच्छता |
| २०२ | २१ | २ नं० ९ | नं० २९ |
| २०७ | २० | न बचेंगे से आगे | २१३-२० पढ़ो |
| २०८ | ८ | सर्वथा से पान | सर्वात्मा से पान |
| २०८ | ७ | तृ० ३६ | पृ० ३६ |
| २१२ | २२ | धार्मिक | धार्मिक भक्त जन |
| २१५ | १४ | सिद्धि के | सिद्धि से |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| २१६ | २३ | जीव की | जीवन की |
| २१६ | १६ | इसे | इस से |
| २२२ | २० | परमात्मा की आज्ञा | परमात्मा की बनाई मूर्तियां |
| | | हुई मूर्तियों | चांदी सूर्य |
| | | चांद सूर्य | |
| २३४ | १६ | अयोन्ऽन्य | अन्योन्य |
| २३६ | ६ | सहि ावे | सहितावे |
| २३८ | ११ | माना पुत्र | माता पुत्र |
| २३६ | ५ | वात्मा- नाहि | वात्मा- नौहि |
| २५३ | १६ | सृष्टचां | सृष्टयां |
| ३८० | ६ | चेतनं | चिंतनं |
| २८४ | २१ | ये तो | ये जो |
| २६२ | ८ | मुण्डन | मुण्डक |
| २६३ | ३ | मर और अवर | पर और अपर |
| २६५ | २३ | ऋतु | क्रतु |
| ३०५ | १३ | नं० २६ | नं. २०६ |
| ३०७ | १५ | न्यग्वेद | त्यृग्वेद |
| ३१० | २२ | ब्रह्मद्वारा | ब्रह्माद्वारा |
| ३१२ | १३ | लोप | लेप |
| ३१२ | १४ | सेथा | सर्वथा |
| ३२० | ३ | दृष्ट | दृष्टा |
| ३२० | १६ | खुखों द्वारा | दुःखों सुखों द्वारा |
| ३२० | २४ | योग्य | भोग्य |
| ३२१ | १४ | कम करें | कर्म करें |
| ३२३ | १८ | यह जीव | वह जीव |
| ३२४ | ४ | नियत होगया | नियत होगये और वे मुझे मज बूरन करने पड़ेंगे। |
| ३२४ | ६ | असूल | असूली |
| ३२४ | १२ | घर एक | घर से एक |
| ३२४ | १६ | पुत्रकाः | पुत्रकः |
| ३२७ | १७ | जों | जावें |
| ३२८ | २२ | कम कर | कर्म कर |
| ३३२ | १५ | पुम | पुमां |
| ३३४ | १४ | प्रेत्यामि | प्रेत्यापि |
| ३३६ | ५ | न्तित्य | न्नित्य |
| ३५१ | ८ | अद्भिज | उद्भिज |
| ३५१ | १५ | नेत्र | क्षेत्र |
| ३५५ | १५ | आत्मा | परमात्मा |
| ३६४ | ५ | कम | कर्म |
| ३६५ | ९ | कि कर्मों | किये कर्मों |
| ३७४ | १५ | और | और न |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ३८०ـ | १३ | आग | आम |
| ३८१ـ | १६ | ारा | द्वारा |
| ३८६ـ | २३ | अधर्म है | अधर्म्म से |
| ३८८ـ | ८ | आमुकिं | आमुष्मिकं |
| ३९६ـ | १३ | वसे | वैसे |
| ३९६ـ | २१ | अंभंतमः | अंधमतमः |
| ३९६ـ | २४ | अमक | अमृत |
| ३९७ | २ | कम | कर्म |
| ४००ـ | १८ | दशन | दर्शन |
| ४०३ـ | २३ | जसे | जसे |
| ४०६ـ | २२ | लें | लेवें |
| ४०८ـ | १७ | और करते हैं | और कर्म करते हैं |
| ४१४ـ | १८ | से आगे | स्वर्ग |
| ४१४ـ | १९ | लोगों | लोकों |
| ४१५ـ | १४ | हैं | हूं |
| ४१६ـ | २४ | कहीं है | नहीं है |
| ४१७ـ | १९ | दुर्लेन्द्रियैः | दुर्बलेंद्रियैः |
| ४१९ | १ | स्वग | स्वर्ग |
| ४२२ | ५ | इऽमें | इसमें |
| ४३१ـ | ११ | कि अथ | कि जो अर्थ |
| ४३१ـ | १३ | जो ऐसा | जो ऐसा |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| | | करता है | नहीं करता है |
| ४३९ـ | २३ | संस्कार | संस्कार से |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ४४२ـ | १२ | अधिकार देने | अधिकार देने से |
| ४४३ـ | ३ | कसे | कैसे |
| ४४६ـ | २२ | देना है | देता है |
| ४४७ـ | ५ | हर | रह |
| ४४७ـ | ८ | का | को |
| ४५१ـ | ४ | संभाजनी | संभोजनी |
| ४५१ـ | ९ | जसे | जैसे |
| ५५१ـ | २४ | अत्यन्ज | अन्त्यज |
| ५५५ـ | ५ | क्रिवा | क्रिया |
| ४५७ـ | १ | हितका है | हितकारी है |
| ५५९ـ | ८ | होना है | होता है |
| ४६२ـ | २४ | ैठे | बैठे |
| ४६५ـ | १९ | निंध | निषेध |
| ४६८ـ | ९ | द्धि | सिद्ध |
| ४६८ـ | १९ | वेदानं वाचनां | वेदानां वाचनं |
| ४६८ـ | २२ | वजयेद | वर्जयेद |
| ४७०ـ | ६ | पहिन कर | पहिनाकर |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ४७३ | २३ | यह | यह कैसे |
| ४७३ | २४ | सकता है | सकता है कि |
| ४७४ | २४ | ब्रह्मचारी अर्थात् अक्षत-वीर्य कुमार ब्रह्मचारी सारांश यह कि | सारांश अर्थात् अक्षत वीर्य कुमार |
| ४७६ | ६ | प्रथक | प्रथम |
| ४७६ | २२ | युग्य | युग्म |
| ४७७ | ६ | मनुष्य | मनुष्य मात्र |
| ४८१ | २१ | कोऽदाति | को अदाति |
| ४८७ | २ | सायं का काल | संध्या का काल |
| ४८७ | ३ | श्यामा संध्या | श्यामा सुन्दरी |
| ४९० | १७ | वेदयासा | वेदपारगा |
| ५५१ | १९ | मत | मृत |
| ५५३ | १६ | र्व तक | वर्ष तक |
| ५६१ | १५ | व के | वर्ष के |
| ५६७ | १४ | भास्कर | पारस्कर |
| ५६८ | १७ | भोग | भंग |
| ५६९ | १२ | युवता | युवती |
| ५७७ | १६ | सामता | सामृता |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ५७७ | २३ | भ्रूणहत्या | भ्रूणहत्या |
| ५७८ | ७ | रिागमन | द्विरागमन |
| ५७८ | १० | यहा | यह |
| ५७८ | १२ | ब्रह्मचयव | ब्रह्मचर्येव |
| ५७९ | ४ | मनुष्या स्तमाद् | मनुष्यास्त स्माद् |
| ५८२ | २३ | पन्त्या | पत्नया |
| ५८४ | ५ | विवाह के लिये मेरु पर्वत | विवाह के लिये सब देवताओं को मेरु पर्वत |
| ५९१ | २३ | विवाइ | विवाह |
| ५९४ | १७ | के लिये | के छोटी |
| ६०५ | ११ | शीतल | शील |
| ६०५ | १३ | तरंगों | तदंगों |
| ६१४ | १९ | पढ़े | पड़े |
| ६१९ | १ | तवं | तत्त्वं |
| ६२३ | १ ।।२०।। | जिसके | जिसके जीवन में ये लक्षण हों उस का नाम ब्राह्मण है और जिस के जीवन में |

| पृष्ठ पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|
| ६२४–६ | तो जीवन एक वार | तो जो जीव एक वार |
| ६२५–३ | कृस्वा | कृत्वा |
| ६२७–२ | ाह्मण | ब्राह्मण |
| ६३२–१६ | मानों | यानों |
| ६४१–६-७ | वर्ण का धार जन्म तथा रज वीर्य शरीर में | वर्ण का आधार जन्म तथा रज वीर्य नहीं रज वीर्य तो शरीरमें ही |
| ६४३–१६ | सद्यः | (२) सद्यः |
| ६४६–११ | वांडाली | चांडाली |
| ६५१–११ | ब्राह्मण | अब्राह्मण |
| ६५५–५ | काज | काल |
| ६५६–२३ | गरदी हुए | गरदी करते |
| ६६०–६ | यद्यपि उत्तर | यद्यपि |
| ६६२–५ | मानें में | मानेंगे |
| ६६४–१६ | तप | तब |
| ६६६–११ | होता | होना |
| ६७२–१४ | दो ों | दोनों |
| ६७६–२२ | मानता | मानता है |
| ६८१–१६ | परि- | परिसान्त्व- |
| | सन्त्वयम् | यन् |

| पृष्ठ पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|
| पृष्ठ | अशुद्धि | शुद्धि |
| ६८५–७ | द्विजाः | द्विजः |
| ६८६–६ | लिल्कुल | बिलकुल |
| ६९०–२० | नर्हि | तर्हि |
| ६९३–२० | गुणंकर्म | गुणकर्म |
| ६९६–१६ | ही है | नहीं है |
| ६९७–११ | के खाने | कोई खाने |
| ६९९–२ | इत्यन्तर | त्यन्तर |
| ७०३–१८ | पैर | पेट |
| ७०३–१६ | कर हैं। | कर रहे हैं। |
| ७०६–१६ | शूद्रों के | शूद्रों को |
| ७११–४ | शूद्र से | से शूद्र |
| ७११–१५ | वह २ वर्ण | वह २ उस २ वर्ण |
| ७११-१७-१८ | शूद्राया | शूद्रायां |
| ७१५–१ | पदा | पैदा |
| ७१७–२ | मन्यते | मन्यन्ते |
| ७१९–१ | दारेणान्यां | दारेनान्यां |
| ७२०–२४ | यांलिखा | यों लिखा |
| ७२५–२ | (१०) क्या अंडज मछली में जरा युज मनुष्य का गर्भ संभव है। | |
| ७२६–११ | मायुष्य | मायुष्यं |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ७२८ | १ | दवतं | दैवतम् |
| ७२२ | १० | गणिक | गणिका |
| ७२६ | १२ | वैश्यायन | वेश्यापन |
| ७२९ | १६ | प्रेषितो | प्रेषिता |
| ७३० | ६ | र्उशी | उर्वशी |
| ७३८ | ४ | ब्राह्मणादि की | ब्राह्मणादि को |
| ७३८ | १ | जसेपूर्ण | जैसेपूर्व |

# स्थायी ग्राहकों के लिए नियम

(१) स्थायी ग्राहक बनने का प्रवेश शुल्क सिर्फ एक रुपया है।

(२) पुस्तकें प्रकाशित होते ही १५ दिन पहिले मूल्य आदि का सूचना-पत्र भेज देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को २५) सैंकड़ा कमीशन काटकर वी० पी० द्वारा भेज दी जाती है।

(३) एक स्थायी ग्राहक एक ही प्रति ले सकता है।

(४) बाहर की—हिन्दुस्तान भर की—सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को ≠) रुपया कमीशन पर मिल सकती हैं।

(५) स्थायी ग्राहक आर्डर देते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य नोट कर दिया करें, जिस में उनके आर्डर पर कमीशन काटने में भूल न हो।

(६) स्थायी ग्राहक की भूल से वी० पी० लौट आने पर डाक खर्च उनको ही देना पड़ता है, और दो बार वी० पी० लौट आने पर स्थायी ग्राहकों की सूची से उनका नाम काट दिया जाता हैं।

(७) सर्वसाधारण को निज प्रकाशन पर निम्नलिखित कमीशन दिया जाता है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १) से | ९) तक | ६।) | रुपया सैंकड़ा |
| १०) से | २४) तक | १५) | ,, ,, |
| २५) से | ४९) तक | २०) | ,, ,, |
| ५०) से | ९९) तक | २५) | ,, ,, |

आर्य साहित्य मन्दिर,

हस्पताल रोड, लाहौर।

* ओ३म् *

# पौराणिक पोलप्रकाश

## (१) मृत्युञ्जय आर्यसमाज

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥अथर्व १० । ८ । ३२

अर्थ—मनुष्य समीप रहनेवाले परमात्मा अथवा अपने आत्मा को नहीं देखता है । उस पास रहने वाले को छोड़ भी नहीं सकता । हे मनुष्य ! ईश्वर के काव्य वेद को देख, वह न पुराना होता है और न मरता है ।

आत्मा और परमात्मा इतने सूक्ष्म हैं, कि बिना विशेष ज्ञान के उसके दर्शन होने असम्भव हैं, किन्तु अदृश्य होने से कोई उनका त्याग भी नहीं कर सकता । क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं । उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिये परम गुरु परमात्मा की रचना वेद को पढ़ना विचारना चाहिये । प्रभु का यह काव्य (रसमय उपदेश) सदा बना रहता है, कभी विनष्ट नहीं होता, कभी पुराना नहीं होता । अर्थात् वेद में "तरमीम तन्सीख़" परिवर्तन न्यूनाधिकता और उसका लोप कभी नहीं होता, सदा नया बना रहता है । क्योंकि आर्यसमाज का मूलाधार धर्म-पुस्तकईश्वरीय ज्ञान वेद है जैसा कि आर्यसमाज के तीसरे नियम में स्पष्ट है कि "वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है" अतः आर्य-समाज भी ईश्वरीय ज्ञान वेद के साथ साथ सदा ही अमर है ।

हां पौराणिक सनातन धर्म की मृत्यु में सन्देह नहीं है क्योंकि उसका मूलाधार धर्म पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान वेद अथवा वेदानुकूल स्मृतियां नहीं हैं। अपितु उसका मूलाधार अनित्य पौराणिक इतिहास है जैसा कि गरुड़पुराण में वर्णन है कि—

तर्कोऽप्रतिष्ठाः श्रुतयो विभिन्नाः।
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ॥
धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥५१॥

गरुड़० आचारकांड अध्याय १०९।

अर्थ—दलील में निश्चलता नहीं वेदों में विरोध है एक भी ऐसा ऋषि नहीं है कि जिसकी सम्मति भिन्न न हो। इसलिये धर्म का तत्व गुफ़ा में रखा हुआ है। महापुरुष जिस रास्ते से चलें वही धर्म है।

उपरोक्त प्रमाणों से आर्यसमाज की अमर जोत तथा पौराणिक सनातन धर्म की अकाल मौत स्पष्ट है।

## (२) ईश्वर स्तुति प्रार्थना

ओ३म् विश्वानि देव सवित र्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० अ० ३० मं ३ ॥

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। जो कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कीजिये ताकि हम अज्ञानी वितंडावादी पौराणिकों

के प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देकर वैदिक सिद्धान्तों का संसार में प्रचार करने में समर्थ हो सकें। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः पौराणिक स्तुति का नमूना—

नूतन जलधररुचये गोपवधूटी दुकूल चौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥१॥

न्यायामुक्तावली प्रथम श्लोक।

अर्थ—उस नवीन मेघ के समान कान्ति वाले गोप लोगों की स्त्रियों के कपड़े चुराने वाले तथा संसाररूपी वृक्ष के बीज स्वरूप श्रीकृष्णजी के लिये नमस्कार हो।

गोपालो कामिनी जारश्चोरजारशिखामणिः ॥

गोपल सहस्रनाम

मातस्तातजटासु किं सुरसरि किंशेखरे चन्द्रमाः किं भाले हुतभुग्लुठत्युरसि किं नागाधिपः किंकटौ। कृत्तिः किं जघनद्वयान्तरगतं यद्दीर्घमालम्बते श्रुत्वा पुत्र वचोऽम्बिकास्मित मुखीलज्जावती पातुवः ॥२७॥ सुभाषित रत्न भांडागार ॥ पार्वती प्रकरण ॥

क्या मेरे पौराणिक भाईयों को इस प्रकार की ईश्वर स्तुति पढ़कर तनिक भी लज्जा नहीं आती।

## (३) ईश्वर का स्वरूप

वेदों में ईश्वर को सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता वर्णन किया है। जैसा कि ऋषि दयानन्दजी ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में

प्रतिपादन किया है और यजुर्वेद अध्याय ४० में पूर्ण रूप से ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है। जैसा कि—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु० ४०। ८॥

अर्थ—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्ररहित और नहि छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाडी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्या आदि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करनेवाला कभी नहीं होता (परिअगात्) सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करनेवाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप जिसके संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश, माता, पिता, गर्भवास, जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है (सः) वही परमेश्वर तुम लोगों के उपासना करने योग्य है।

इसी प्रकार से अनेकों वेद मन्त्र ईश्वर के स्वरूप को वर्णन करते हुए ईश्वर को निराकार प्रतिपादन करते हैं। चारों वेदों में एक भी वेदमंत्र ऐसा नहीं है कि जो ईश्वर को साकार वर्णन

करता हो। क्योंकि साकार होने से ईश्वर एक देशी हो जाता और सर्वव्यापक सर्वज्ञ आदि गुणों के अभाव से वह ईश्वर कहलाने के क़ाबिल ही नहीं रहता। अतएव वेद का सर्वतन्त्र सिद्धान्त यही है कि ईश्वर निराकार है। इसके विपरीत पुराणों में ईश्वर को जन्म धारण करने वाला शरीरधारी वर्णन किया गया है। जैसा कि--

जगृहे पौरूषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
संभूतं षोड़श कलमादौ लोकसिसृक्षया॥ १॥
भागवत० स्कं० १ अध्याय ३।

अर्थ—आदि में सृष्टि को पैदा करने की इच्छा से परमात्मा ने षोडशकला संपूर्ण महानादि के साथ होने वाले मनुष्य के रूपको धारण किया। इत्यादि अष्टादश पुराणों में अनेक स्थानों पर ईश्वर के विविध प्रकार के अवतारों का वर्णन है। जो कि वेद के सर्वथा विरुद्ध और मिथ्या है। किंतु पौराणिक पण्डितों के सिर पर आज-कल एक ख़ब्त सवार हो रहा है कि वे ईश्वर के साकार होने के कलंक को वेदों के मत्थे मढ़ने की कोशिश में लगे हुए हैं। कहीं पर वेदों के नाम से अन्य किसी ग्रन्थ का प्रमाण देकर जनता को भ्रम में फंसाते हैं तो कहीं किसी ग्रन्थ का अपूर्ण ( नामुक्कमिल ) प्रमाण देकर ही अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। कहीं पर वेदमन्त्र का ही मनमाना अर्थ करके उसमें से ईश्वर को साकार साबित करने का प्रयत्न करते हैं। सारांश यह है कि यह लोग धर्म-अधर्म के विचार को बालाय ताक़ रखकर वेद विरुद्ध सिद्धान्तों को पुष्ट करने के प्रयत्न में आत्महत्या के भागी बनते हैं। इसका प्रमाण आपको अगले प्रश्न के उत्तर में मिलेगा।

# ब्रह्म के दो रूप

(४) प्रश्न—वेद कहता है कि "उभयंवाएतत्प्रजापति निरुक्तश्चानिरुक्तश्चेत्यादि शतपथ० कां० १४ अ० १ ब्रा० २ श्रु० १८" प्रजापति ( ईश्वर ) दो प्रकार का है। रूपवान् और अरूप ( साकार और निराकार )

उत्तर—(१) प्रथम तो इस प्रश्न में आपने वेद तथा श्रुति का नाम लेकर शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देकर पाठकों को भ्रम में डालने का यत्न किया हैं। क्योंकि शतपथ वेद नहीं है अपितु ब्राह्मण ग्रन्थ है। और वह परतः प्रमाण है।

(२) दूसरे वेद के नाम से शतपथ का प्रमाण पेश करना इस बात को सिद्ध करता है कि आप वेद में से कोई ऐसा मन्त्र पेश नहीं कर सकते जो ईश्वर को साकार साबित कर सके।

(३) यहां शतपथ में भी ईश्वर का प्रकरण ही नहीं है। अपितु यज्ञ का प्रकरण है। आपने अधूरा पाठ दर्ज करके और "ईश्वर" शब्द को अपनी तरफ से मिलाकर अर्थ का अनर्थ किया है। जोकि सत्य-शील विद्वानों को शोभा नहीं देता। लीजिये हम शतपथ का पूरा पाठ दर्ज करके उस का अर्थ कर देते हैं। ताकि जनता को आपकी चालाकी का पता लग जावे। शतपथ में पाठ इस प्रकार से है। कोष्ठ में दर्ज पाठ को आपने चुरा लिया है।

( प्रजापति र्वाऽएष यज्ञोभवति) उभयं वा एतत्प्रजापति र्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्यनिरुक्तं परिमितं रूपं

तदस्य तेनसंस्करो त्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्त-
मपरिमितꣳरूपंतदस्य तेन संस्करोति ( स ह
वाऽएतं सर्वं कृत्स्नं प्रजापतिꣳ संस्करोति य एवं
विद्वानेतदेवं करोत्यथोपशायायै पिण्डं परिशिनष्टि
प्रायश्चित्तिभ्यः ॥ १८ ॥ )

शतपथ० का० १४ अ० १ ब्रा० २ मं० १८

अब देखिये पुस्तक में ठीक पाठ इस प्रकार से हैं जिसको पहिले और पीछे से छोड़ कर आपने बीच का पाठ दे दिया है। पूर्व के पाठ से स्पष्ट है कि प्रजापति यज्ञ का नाम है ईश्वर का नाम नहीं है। सम्पूर्ण पाठ का अर्थ इस प्रकार से है।

अर्थ—प्रजापति यह यज्ञ है। यह प्रजापति यज्ञ दो प्रकार का है। रूपवान और अरूप। परिमित और अपरिमित। वह जो यजुर्वेद के मंत्रों से किया जाता है ( अर्थात् जो यज्ञ में वेदी, पात्र, सामग्री, घृत, समिधा, याजक आदि ) वह इस यज्ञ का कथन योग्य परिमित ( महदूद ) रूप हैं और जो वह उनसे संस्कार किया हुआ यज्ञ है ( अर्थात् जो अग्नि द्वारा सूक्ष्म होकर वायु, जल, आकाश, आदि में फैल चुका है ) उसके बारे में चुप ही होना पड़ता है। वह उस यज्ञ का न कथन करने योग्य अपरिमित ( लामहदूद ) रूप है। वह उस यज्ञ का उनसे किया संस्कार है। वह जो निश्चय से इस सारे संपूर्ण यज्ञ को जानता है। और जो इस यज्ञ का इस प्रकार से संस्कार करता है। वह उपशाय नाम क्रिया से भोजन को बचाकर प्रायश्चित के लिये करता है ॥ १८ ॥ अब कृपया पक्षपात को छोड़कर बतलावें कि शतपथ में यह यज्ञ के दो रूपों का वर्णन है या ईश्वर के दो

रूपों का। अतः ईश्वर की निराकारता वेदानुकूल होने से प्रमाण तथा सत्य तथा साकारता वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा मिथ्या है।

(५) प्रश्न—ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड भर में व्यापक हो रहा है। और ब्रह्माण्ड के बाहर भी व्यापक है। ईश्वर दुनिया से बहुत बड़ा है। "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० ३१।३॥" "इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है। और इसी ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत ( सृष्टि रहित ) हैं" वेद ने हमको यह समझा दिया कि ईश्वर के एक हिस्से में तो दुनिया बनी है, और ईश्वर के तीन हिस्से ऐसे हैं, जहाँ पर दुनिया नहीं बनी ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में संसार नहीं बना या यों कहिये कि तत्त्वों की रचना नहीं हुई वहाँ पर ईश्वर निराकार है। किन्तु ईश्वर के जितने अंश में अनेक ब्रह्माण्ड बन गए उतने अंश में वेद ईश्वर को साकार बतलाते हैं।

उत्तर—वेद तो ईश्वर को साकार नहीं बतलाता किंतु आप वेदमन्त्र के अर्थ को तोड़ मरोड़ कर साकार सिद्ध करने के यत्न में हैं, और इसी कारण से आपने वेद का पूरा मन्त्र नहीं दिया। किन्तु आधा मन्त्र दिया है, यदि आप पूरे मन्त्र को पढ़ेंगे तो आपको पता लगेगा कि वेद का अभिप्राय ईश्वर की महान् महिमा का वर्णन करना है, और वर्तमान जगत् को ईश्वर की अपेक्षा अत्यन्त अल्प वर्णन करने का है, वरना अनन्त तथा सर्व व्यापक परमात्मा में अंश कल्पना नहीं की जा सकती। पूरा मंत्र तथा उसका अर्थ इस प्रकार है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० ३१।३॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! ( अस्य ) इस जगदीश्वर का (एतावान् ) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड ( महिमा ) महत्त्व सूचक है ( अतः ) इस ब्रह्माण्ड से यह ( पुरुषः ) परिपूर्ण परमात्मा ( ज्यायान् ) अति प्रशंसित और बड़ा है ( च ) और ( अस्य ) इस ईश्वर के ( विश्वा ) सब ( भूतानि ) पृथिवी आदि चराचर जगत् एक ( पादः ) अंश है और ( अस्य ) इस जगत् स्रष्टा का ( त्रिपाद् ) तीन अंश ( समृतम् ) नाशरहित महिमा ( दिवि ) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ॥३॥

भावार्थ—यह सब सूर्य चन्द्रादि लोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुरांश में ही रहता है किंतु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्ष स्वरूप में सदैव रहते हैं, इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता। किंतु जगत् की अपेक्षा उसका महत्त्व और जगत् का न्यूनत्त्व जाना जाता है ॥३॥

हमारे इसी कथन की ताईद महीधर जी भी करते हैं। वह लिखते हैं कि

यद्यपि "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्मे, त्याम्नातस्य
पर ब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पाद चतुष्टयं

निरूपयितु मशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्म रूपा
पेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्त्वा त्पादत्वोपन्यासः।

महीधर भाष्य यजु० ३१।३॥

अर्थ—यद्यपि "ब्रह्म सत्य ज्ञानमय और अनन्त है" इत्यादि वेद से प्रतिपादित परब्रह्म की मिक़दार परिमाण के अभाव से उसके चारपाद का निरू-पण करना अशक्य है तथापि यह जगत् ब्रह्मकी अपेक्षा अल्प है यह कहने की इच्छा के कारण पादत्व कल्पना किया है॥ ३॥

अब आप कृपया यह बतलावें कि जब परमात्मा ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा बाहर व्यापक है और ब्रह्माण्ड व्याप्य है। तो व्याप्य ब्रह्माण्ड के साकार होने से व्यापक परमात्मा भी साकार हो गया यह कौनसी युक्ति और दलील है। क्या आप कोई ऐसा प्रमाण दे सकते हैं कि जिससे यह सिद्ध हो कि व्याप्य के साकार होने से व्यापक भी साकार हो सकता है। अतः आपकी यह कल्पना सर्वथा वेद विरुद्ध और असत्य है, और ईश्वर का निराकार होना ही वेदानुकूल और सत्य है।

## तीन प्रकार की साकारता

(६) प्रश्न—ईश्वर व्याप्य व्यापकत्व, सर्व स्वरूपत्व, अवतारत्व, इन तीन प्रकारों से साकार है।

उत्तर—व्याप्य के साकार होने से व्यापक को साकार नहीं माना जा सकता, ईश्वर इस जगत का निमित्त कारण है उपादान कारण नहीं है, उपादान कारण प्रकृति है, और ईश्वर के अवतार का वेद ने ( अकायम् ) कहकर स्वयं ही खण्डन कर

दिया है। अतः आपकी तीनों प्रकार की साकारता वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

## व्याप्य-व्यापकत्व साकारता

(७) प्रश्न—एक पण्डित मोहनलाल सज्जन हैं। वास्तव में तो यह फर्ज़ी पण्डित मोहनलाल नाम शून्य रूप शून्य निराकार जीव हैं, निराकार होने पर भी अब यह साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक हो गये हैं। यह व्यापक हैं शरीर व्याप्य है, इसी कारण इनका यह शरीर है। क्योंकि यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि "व्यापक का व्याप्य शरीर होता है" यह शरीर इनका है घसीटु धोबी का नहीं है। क्योंकि जिस का कल्पित नाम घसीटु धोबी है, वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं हैं, दूसरे शरीर में व्यापक है। जिस शरीर में घसीटु धोबी नामक आत्मा व्यापक है, वह शरीर घसीटु धोबी का है। इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त आदि नाम वाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है। अब उत्तम रीति से सिद्ध हो गया कि व्याप्य व्यापक का शरीर होता है।

उत्तर—पण्डित मोहनलाल जीव का नाम नहीं है क्योंकि "पण्डित मोहनलाल का जीव निकल गया" ऐसा कहा जाता है। और नहीं शरीर का नाम पंडित मोहनलाल है क्योंकि "पंडित मोहनलाल के शरीर को जला दिया" ऐसा कहने में आता है। अतः जीव और शरीर के संयोग का नाम पंडित मोहनलाल है। जीव शरीर में व्यापक नहीं है, अपितु एकदेशी

है। और वह हृदय में रहता है। यदि आप जीव को शरीर में व्यापक मानेंगे तो पुनर्जन्म अनुसार हाथी का जीव कीड़ी के शरीर में जावेगा तो उसको सुकड़ना पड़ेगा, और कीड़ी का जीव हाथी के शरीर में जावेगा तो उसको फैलना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में जीव में संकोच विकाश होने के कारण जीव अनित्य हो जावेगा। व्यापक का व्याप्य शरीर नहीं होता अपितु शरीर शब्द उसमें लाक्षणिक रूप से प्रयोग किया जाता है, क्योंकि शरीर का लक्षण करते हुये न्याय दर्शन में लिखा है कि "चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्॥" न्यायदर्शन १।१।११॥

अर्थ—जो चेष्टा इन्द्रिय तथा अर्थ का आश्रय हो उसका नाम शरीर है अर्थात् जिस में चेष्टा हो उसका नाम शरीर है। वायु में चेष्टा होने के कारण उसका नाम शरीर न हो जावे अतः बताया कि जिसमें चेष्टा तथा इन्द्रियां दोनों हों उसका नाम शरीर है। तमाशे की कठपुतली में चेष्टा और इन्द्रियां दोनों होने के कारण उसका नाम शरीर न हो जावे इसलिये बतलाया कि जिस में चेष्टा और इन्द्रियां भी हों तथा उन इन्द्रियों के द्वारा दुःख-सुख, रूप-रस आदि अर्थों का ग्रहण भी किया जाता हो। उसका नाम शरीर है। जहाँ इन तीनों बातों में से एक का भी अभाव होगा। उसका नाम वास्तविक रूप से शरीर न होगा। अपितु लाक्षणिक रूप से उसमें शरीर शब्द का प्रयोग होगा। और न्याय १। १। ६ के भाष्य में वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि "भोगायतनं शरीरम्' जिस में रह कर जीवात्मा कर्मों का फल भोगता है उसका नाम शरीर है। अतः एक यह लक्षण सर्वथा अशुद्ध है कि "व्याप्य व्यापक का शरीर होता है।"

(८) प्रश्न—तुम्हारा ईश्वर व्यापक है। और पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश व्याप्य हैं। इस कारण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तुम्हारे ईश्वर के शरीर हैं।

उत्तर—न तो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचों तत्त्व चेष्टा इन्द्रिय तथा अर्थ का आश्रय हैं। और नहीं ईश्वर इन पांचों तत्त्वों के द्वारा दुःख सुख आदि कर्मों के फल को भोगता है। अतः इन पांचों तत्त्वों को ईश्वर का शरीर नहीं कहा जा सकता।

(९) प्रश्न—इसी बात को शतपथ १४। ६। ७ में "यः पृथिव्यांतिष्ठन्" इत्यादि पांच मन्त्रों द्वारा पृथिवी आदि पांचों तत्त्वों को ईश्वर का शरीर वर्णन किया है। जब समस्त संसार ईश्वर का शरीर हो गया। तो फिर ईश्वर निराकार कैसे रहा। इससे सिद्ध है कि ईश्वर व्याप्यव्यापक भाव से साकार है।

उत्तर—इस स्थान में शतपथ में भी पांच मंत्रों द्वारा नहीं अपितु ७ से लेकर ३१ तक २५ मंत्रों द्वारा पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, आदित्य, चन्द्र, तारा, दिशा, विद्युत, स्तनयित्नु, सर्वलोक, सर्ववेद, सर्वयज्ञ, सर्वभूत, प्राणवाग्, चक्षु, श्रोत्र, मनः, त्वचा, तेज, तमः, रेतः, आत्मा, इत्यादि में ईश्वर की व्यापकता को वर्णन करते हुवे लाक्षणिक रूप से इन वस्तुओं को ईश्वर का शरीर वर्णन किया है। जैसे कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। यजुर्वेद ३१। ११।" में भी लाक्षणिक रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को परमात्मा के शरीर के अंग मुख, बाहु, ऊरु, पाद वर्णन किया है। इन वर्णनों से परमात्मा की व्यापकता प्रति-

पादन करना ही अभिप्राय है। यह वस्तुएँ वास्तव में परमात्मा का शरीर नहीं हैं। क्योंकि इन वस्तुओं को वास्तव में परमात्मा का शरीर मानने से प्रथम तो वेद से विरोध आवेगा क्योंकि वेद ने यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में स्पष्ट शब्दों में ( अकायम् ) शब्द से परमात्मा को स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों प्रकार के शरीरों से रहित वर्णन किया है। ऐसी सूरत में वेद के मुक़ाबले में शतपथ का प्रमाण कोई वुक़अत नहीं रखता, क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण और शतपथ ब्राह्मण परतः प्रमाण है। अतः शतपथ के इस लेख को वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही मानना पड़ेगा। दूसरे इन वस्तुओं में वास्तव शरीर के लक्षण मौजूद नहीं है। क्या आप यह मानते हैं कि ये वस्तुएँ चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थों का आश्रय हैं। अर्थात् परमात्मा जीवात्मा की भांति इन वस्तुओं द्वारा रूप, रस, गन्ध और स्पर्श शब्द सुख-दुःख आदि भोगों को अनुभव करता है। यदि नहीं तो फिर यह वस्तुएँ परमात्मा का वास्तव शरीर कैसे मानी जा सकती हैं। अतः शतपथ के इन मन्त्रों का यह अभिप्राय है कि परमात्मा उपरोक्त सब वस्तुओं में व्यापक है। और ये वस्तुएँ अज्ञान के कारण परमात्मा को नहीं जानतीं। ये वस्तुएँ परमात्मा के शरीर वत् हैं। अर्थात् जैसे जीवात्मा शरीर के अन्दर बैठा हुआ शरीर को नियम पूर्वक चलाता है। वैसे ही परमात्मा इन सब वस्तुओं में रहता हुआ उनको नियम-पूर्वक चलाता है। और अपनी अनन्त शक्ति से इन सब पदार्थों को धारण कर रहा है। वही परमात्मा अमृत अन्तर्यामी है। इससे सिद्ध हुआ कि व्यापक परमात्मा निराकार और व्याप्य संसार साकार है।

## सर्वस्वरूपत्व साकारता

(१०) प्रश्न—सृष्टि में जितने आकार हैं, वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं। समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं, और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे।

उत्तर—आपका यह कथन वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है, क्योंकि संसार में जितने स्थूल पदार्थ हैं, वे प्रकृति के स्वरूप हैं ब्रह्म के स्वरूप नहीं हैं। अर्थात् इस संसार का उपादान कारण प्रकृति है ब्रह्म नहीं है, क्योंकि यदि इस सृष्टि का उपादान कारण ब्रह्म को माना जावे तो "कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः" वैशेषिक० २।१।२४॥ अर्थात् उपादान कारण के गुण कार्य में अवश्य आते हैं, इस नियम से ब्रह्म के चैतन्यता सर्वज्ञता आदि गुण पृथिवी आदि समस्त पदार्थों में विद्यमान होने चाहिये, या यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्म में भी जड़ता आदि गुण विद्यमान हैं। अतः सिद्ध हुआ कि सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति निमित्त कारण ब्रह्म तथा साधारण कारण जीव है। और ये तीनों ही अनादि हैं, जैसा कि वेद ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

द्वा सुपर्णा सयुजासखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
(ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० २०)

अर्थ—जो ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों में सदृश व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि हैं। और वैसा ही अनादि मूल रूप कारण

और शाखा रूप कार्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो सूक्ष्म हो कर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण कर्म स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोगता है, और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान् हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव, और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। इससे सिद्ध है कि इस सृष्टि का न ब्रह्म उपादान कारण है। और न ही यह सृष्टि ईश्वर में लय होगी।

(११) प्रश्न—जब हम पृथिवी के बनने की खोज उठाते हैं, तो पता चलता है कि पृथिवी जल से बनी है, वास्तव में पृथिवी कोई चीज़ नहीं है। पृथिवी की सत्ता कोई भिन्न सत्ता नहीं है, किंतु जल सत्ता का कठिन रूप पृथिवी कहलाती है।

उत्तर—हम ऊपर वेद का प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं कि प्रकृति अनादि है और सूक्ष्म परमाणु रूप पृथिवी जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पांच सूक्ष्म तत्त्वों का नाम ही प्रकृति है, इनमें से कोई एक दूसरे से नहीं बना अपितु प्रथम चार के सूक्ष्म प्रमाणु तथा आकाश ये पांचों तत्त्व सूक्ष्म रूप से अनादि हैं। पृथिवी का स्वाभाविक गुण "व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः। वै० २। २। २" गंध है, तथा जल का स्वाभाविक गुण "अप्सु शीतना वै० २।२।५" शीतलता है। यदि जलसे ही पृथिवी बनी है, तो पृथिवी में गंध गुण कहाँ से आगया, क्योंकि जल में तो

गन्ध मौजूद ही नहीं था। यदि कहो कि अभाव से भाव हो गया तो यह बात असंभव है क्योंकि "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। भगवद्गीता। २।१६॥" अभाव से भाव तथा भाव अभाव नहीं होता। अतः सिद्ध हुआ कि पृथिवी जल से नहीं बनी अपितु पृथिवी तत्त्व स्वतन्त्र अनादि काल से वर्तमान है, और जल का कठिन रूप भी बर्फ की शकल में ही बन सकता है, पृथिवी रूप में नहीं बन सकता।

१२—(प्रश्न) अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बनता है। अग्नि का रूपान्तर ही जल है।

उत्तर—आप की यह बात वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध होने से अप्रमाण है क्योंकि जल का स्वाभाविक गुण शीतलता है। और अग्नि का स्वाभाविक गुण ( तेजो रूप स्पर्शवत् वै० २। १। ३ ) रूप है और अग्नि में स्पर्श वायु के योग से है। यदि अग्नि से ही जल बना है तो जल में शीतलता कहाँ से आई, जब कि अग्नि में शीतलता मौजूद नहीं है। और अभाव से भाव का होना असंभव है। इससे सिद्ध हुआ कि जल की उत्पत्ति अग्नि से नहीं हुई। अपितु जल तत्त्व स्वतन्त्रता से अनादि काल से मौजूद है। वह अग्नि का रूपान्तर नहीं है।

(१३) प्रश्न—दो विरुद्ध धर्म वाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न होता है। अग्नि कोई पृथक् चीज़ नहीं है। वायु का दूसरा रूप ही अग्नि है।

उत्तर—आपकी यह बात भी वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है। और कृपया यह तो बतलावें कि वे विरुद्ध गुण वाले दो वायु कौन-कौन से हैं। जिनसे अग्नि की उत्पत्ति होती हैं और

इसमें किस वेद शास्त्र का प्रमाण है। क्योंकि वैशेषिक शास्त्र में तो एक ही प्रकार का "स्पर्शवान् वायुः । वै० २ । १ । ४" वायु का स्वभाविक गुण स्पर्श है। ऐसा लिखा है। यदि वायु से ही अग्नि बना है तो अग्नि का जो स्वाभाविक गुण रूप है। वह कहां से आया। जब कि वायु में रूप गुण मौजूद ही नहीं है, और अभाव से भाव का होना असम्भव है। इस से सिद्ध है कि वायु का ही रूपान्तर अग्नि नहीं है। अपितु अग्नि पृथक् तत्त्व अनादि काल से मौजूद है।

(१४) प्रश्न—आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं। उनमें जब संचालन शक्ति ( हरकत ) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं। और वह धक्का देने लगते हैं। इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये। पंखे के हिलने से आकाश के परमाणुओं में संचालन शक्ति उत्पन्न हो जावेगी। वे परमाणु धक्का देंगे वही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है। किन्तु आकाश का रूपान्तर है।

उत्तर—धन्य हो महाराज! यहाँ पर तो आपने फ़िलासफी की टाँग तोड़ दी। वह कौन सा वेद तथा शास्त्र है। जो आकाश के परमाणु मानता है। या यह नया शास्त्र आप के ही कार्यालय से कल्पित होने लगा है। श्रीमान् जी! आकाश के परमाणु नहीं होते आकाश तो अवकाश अर्थात् पुलाव का नाम है। पंखे के हिलाने से आकाश के परमाणु हरकत में नहीं आते अपितु आकाश में जो सूक्ष्म रूप से वायु भरा हुआ है, वह

ही पंखे के चलाने से इकट्ठा हो जाता है। यदि आकाश में वायु न हो तो पंखा न चलाने की सूरत में भी जो आप को सांस आ रहा है। वह कहाँ से आता है। क्या कहीं आकाश के परमाणु ही तो अन्दर नहीं चले जाते। पक्षपात भी बुरी बला है। इन्सान को अन्धा कर देता है। न आकाश के परमाणु होते हैं। न ही उनमें हरकत होने तथा कठोर होने से वायु पैदा होती है। अपितु वायु एक पृथक् तत्त्व अनादि काल से मौजूद है। यदि आकाश से ही वायु की पैदाइश मानी जावे तो वायु का स्वाभाविक गुण स्पर्श है। तथा "त आकाशे न विद्यन्ते। वै० २। १। ५" रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श आकाश में नहीं है। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है। फिर स्पर्श गुण वायु में कहाँ से आया। जब कि अभाव से भाव होता ही नहीं। अतः आप की सम्पूर्ण कल्पना मिथ्या और वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण है।

१५—(प्रश्न) सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है जहाँ पर सृष्टि नहीं है। जिसको अमृत कहा है। उससे और यह जो दृश्य ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है। इस से आकाश उत्पन्न होता है।

उत्तर—महाशयजी! यहाँपर तो आप चौकड़ी ही भूल गये। आप वर्णन तो कर रहे हैं आकाश की उत्पत्ति का। और वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, अभी पैदा ही नहीं हुए। क्योंकि वे तो आपके सिद्धान्त अनुसार आकाश से ही क्रमशः पैदा होने हैं। फिर वह दृश्य ब्रह्माण्ड कहाँ से आ गया जिसको निराकार ब्रह्म से मिलाकर आकाश की उत्पत्ति कर रहे हैं। क्या यहाँ "अन्यो-ऽन्याश्रय दोष" तो नहीं आता। क्या आपका यही सर्वोपरि

विज्ञान वैदिक ज्ञान है । कृपया वेदों को भी अपनी मिथ्या कल्पनाओं से कलंकित न कीजियेगा । यदि आप ब्रह्म से ही आकाश की पैदाइश मानते हैं, तो बतलावें कि आकाश में जड़त्व कहां से आया । क्योंकि ब्रह्म तो चेतन है । और अभाव से भाव होता नहीं । या यह मानें कि ब्रह्म भी जड़ है । सारांश यह कि आपकी सम्पूर्ण कल्पनायें सर्वथैव मिथ्या हैं । आकाश ब्रह्म से पैदा नहीं हुआ । अपितु आकाश एक पृथक् पदार्थ अनादि काल से मौजूद है ।

(१६) प्रश्न—अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं । वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुए हैं । इससे साबित है कि ईश्वर सर्वस्वरूपत्वभाव से साकार है ।

उत्तर—अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप ( शकलें ) हैं । वे सब अनादि प्रकृति के रूप हैं । ब्रह्म के नहीं हैं । क्योंकि ब्रह्म और जीव से भिन्न अनादि प्रकृति संसार में मौजूद है । हमारे दिये हुवे वेद मंत्र तथा सिद्धान्त की ताईद अनेक प्रमाणों से होती है । उदाहरणार्थ "नतस्य कार्य्यं करणं च विद्यते" ( श्वेताश्वेतर उपनिषद् । अ० ६ मं० ८ ) परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य्य और उस परमात्मा का कोई कारण भी नहीं है । पाँच तत्त्वों का नाम प्रकृति है । उनमें से आकाश तो अनादि नित्य एक रस है । तथा वायु अग्नि जल और पृथिवी ये चारों प्रत्येक दो प्रकार के हैं । एक तो कारण रूप जो सूक्ष्म तथा अनादि हैं । दूसरे कार्य्य रूप स्थूल जो दृश्य हैं वे अनित्य हैं । जैसे—

पृथिव्यादि रूपरसगन्ध स्पर्शद्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥२॥
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम ॥३॥ ( वै० ७ । १ । २ । २ । ३ )

अर्थ—जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, गुण हैं। ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं ॥२॥ और जो इससे कारण रूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादिगुण हैं वे नित्य हैं ॥३॥ "सदकारणवन्नित्यम्" वै० ४।१।१ जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है। अतः ये सब रूप पाँचे तत्त्व स्वरूप अनादि प्रकृति के हैं। ब्रह्म के नहीं हैं। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा निराकार है। सर्व-स्वरूपत्त्व भाव से साकार नहीं है।

(१७) प्रश्न—वेद में "तस्मादेतस्मादात्मन इत्यादि तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १" आता है कि उस अदृश्य ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई।

उत्तर—प्रथम तो आपने वेद का नाम लेकर तैत्तिरीयोपनिषद् का प्रमाण देकर जनता को धोखे में डाला है। क्योंकि तैत्तिरीय उपनिषद् स्वतः प्रमाण नहीं है। दूसरे आपने यह मंत्र भी पूरा नहीं दिया अधूरा दिया है। तीसरे आप आकाश की उत्पत्ति से पूर्व दृश्य ब्रह्म पता नहीं कहाँ से ले आये। हाँ यदि दृश्य ब्रह्म से आपका अभिप्राय अनादि प्रकृति से हो तो फिर आपके मत से ईश्वर की सर्वस्वरूपता खटाई में पड़ जाती है। चौथे आपने योग्यता का ध्यान न रखते हुए सब स्थानों में पंचमी विभक्ति का अर्थ "से" ही लगाया है। हालाँकि

पंचमी का अर्थ "पश्चात्" भी होता है। इस प्रकार से आपका लेख सर्वथा दूषित और वेद विरुद्ध है। हम इस प्रमाण का पूरा पाठ और वेदानुकूल अर्थ नीचे दर्ज करते हैं। ध्यान पूर्वक पढ़िये—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्यो अन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः सवाएष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्दवल्ली अनु० १॥

भावार्थ—उस (निमित्त कारण) परमेश्वर और (उपादान कारण) प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकठ्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि बिना अवकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें। आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। इस प्रमाण से आपकी सर्व स्वरूपता से ईश्वर की साकारता की सिद्धि सर्वथा असम्भव है।

(१८) प्रश्न—पुष्पदन्त ने भी त्वमर्क स्त्वं सोम" इत्यादि लेख से सूर्य चन्द्रमा आदि को ईश्वर ही बतलाया है।

उत्तर—कहिये महाराज! आपने इस पुष्पदन्त के लेख को वेद के नाम से क्यों दर्ज नहीं किया। आपने तो ऐरा गैरा नत्थू खैरा प्रत्येक के लेख को वेद कहने का ठेका ले रक्खा

है। फिर पुष्पदन्त के लेख पर यह क्रूर दृष्टि क्यों। अच्छा अब यह बतलाने की कृपा करें कि यह पुष्पदन्त जी हैं कौन? क्या यह कोई पौराणिक ऋषि हैं या कोई सनातन धर्म के अवतार हैं। यदि यह कुछ भी नहीं तो फिर इनका लेख वेद के मुक़ाबले में क्या हैसियत रखता है। अतः हम इस पर कुछ लिख कर अपने काग़ज़ और स्याही का दुरुपयोग करना बुद्धिमता नहीं समझते।

(१९) प्रश्न—यजुर्वेद अध्याय ३२ मंत्र १ में भी "तदेवाग्निस्तदादित्य" इत्यादि मंत्र से अग्नि सूर्य आदि को ब्रह्म ही वर्णन किया है॥

उत्तर—आपको जो सूझती है उलटी ही सूझती है। इस मन्त्र में अग्नि सूर्य्य आदि को ब्रह्म नहीं बतलाया। अपितु वह बतलाया है कि परमेश्वर में अनेक गुण होने के कारण अग्नि आदित्य आदि ईश्वर के अनेक नाम हैं। देखिये—

तदेवाग्निस्तदादित्य स्तद्वायु स्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥१॥

यजु० ३२। १

पदार्थ—हे मनुष्यो! (तत्) वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सनातन, अनादि, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य, शुद्धबुद्ध, मुक्त स्वभाव, न्यायकारी दयालु जगत का स्रष्टा धारण कर्ता और सबका अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्य) प्रलय समय सबको ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा (तत् एव) वही (शुक्रम्) शीघ्र-

कारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्रव्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है। ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥ यहां पर ईश्वर के अनेक नामों का वर्णन होने से साकारता का गंध भी नहीं है।

(२०) प्रश्न—यह समस्त संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है, और इस संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" ईश्वर है, अतएव संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं।

उत्तर—इस संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" ईश्वर नहीं है, अपितु इस संसार का उपादान कारण प्रकृति है और ईश्वर निमित्त कारण तथा जीव साधारण कारण है। प्रकृति की नित्यता तथा उपादान कारण होने को वेद इस प्रकार से वर्णन करता है।

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
महो देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन भिषता विचष्टे॥

अथर्व० १०।८।३०॥

भाषार्थ—यह सदा रहने वाली नित्य प्रकृति सदा ही कार्य उत्पन्न करती रहती है, यह पुराणी प्रकृति सब कार्यों में पूर्णतया रहती है। यह बड़ी तथा कान्तिमयी है, तथा कामनीय पदार्थों को विशेष रीति से प्रकाशित करने वाली है। वह प्रकृति प्रत्येक गतिशील जीव के साथ अपने स्वरूप कथन कर रही है। सिद्ध हुआ कि संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब प्रकृति के हैं, ईश्वर के नहीं हैं।

(२१) प्रश्न—"द्वावेव ब्रह्मणो रूपे" इत्यादि वृहदारण्यक में भी इस तत्त्वात्मक जगत् को ब्रह्म का रूप बतलाया है।

पृ० १६०, मं० १७

उत्तर—यहाँ पर ब्रह्मनाम ईश्वर का नहीं है, अपितु प्रकृति से बने हुए जगत् का नाम ब्रह्म है। यह बात पुस्तक के पाठ से स्पष्ट हो जाती है। जैसे—

द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च।
तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात्।
अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षम्॥ वृह० अ० ४ ब्रा० ३ कं० १।२।३॥

अर्थ—प्रकृति उपादान कारण से निमित्त कारण ब्रह्मने जो जगत् पैदा किया है, उसके दो रूप हैं। एक मूर्त्त (मुजस्सम) दूसरा अमूर्त्त ( गैर मुजस्सम ) वह यह मूर्त्त है जो वायु और आकाश से भिन्न है, अर्थात् पृथिवी, जल तथा अग्नि मुजस्सम हैं, और वायु तथा आकाश अमूर्त ( गैरमुजस्सम ) हैं।

प्रथम, यहाँ पर पृथिवी जल अग्नि को साकार तथा वायु और आकाश को निराकार वर्णन करने से स्पष्ट है कि वृहदारण्यक ने प्रकृति के ही दो रूप वर्णन किये हैं, ब्रह्म के नहीं।

दूसरे, आपने वृहदारण्यक के पाठ को श्रुति अर्थात् वेद के नाम से लिख कर बड़ा अनर्थ किया है, क्योंकि वृहदारण्यक उपनिषत् है वेद नहीं है, और परतः प्रमाण है।

तीसरे, आपने पृ० १५६ पं० ३ तथा ७ में लिखा है कि "ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में तत्त्वों की रचना नहीं हुई वहाँ पर ईश्वर निराकार है और ईश्वर के जितने अंश में ब्रह्माण्ड बन गये उतने अंश में ईश्वर साकार है" इस लेख के अनुसार

भी यहाँ पर कार्य रूप जगत् का ही वर्णन है। और आपके दोनों लेखों में परस्पर विरोध भी है।

अतः इस प्रमाण में भी इस तत्वात्मिक जगत् को प्रकृति का ही रूप बतलाया है ब्रह्म अर्थात् परमात्मा का नहीं।

२२ प्रश्न—"पुरुष एवेदꣳसर्वम् ॥ यजु० ३१। २॥" में भी सब भूत भविष्यत वर्तमान जगत् को ब्रह्म ही बतलाया है ॥ पृ० १६०, मं० २५

उत्तर—इस मंत्र में जगत् को ब्रह्म नहीं अपितु ब्रह्म को जगत् का पैदा करने वाला वर्णन किया है जैसा कि—

पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ यजु० ३१। २॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होने वाला और जो पृथिवी आदि के संबंध से अत्यन्त बढ़ता है। उस इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप समस्त जगत् को अविनाशी मोक्ष सुख वा कारण का अधिष्ठाता सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा ही रचता है ॥२॥

उव्वट का अर्थ भी आपके अर्थ की तरदीद करता है देखिये—

स एव पुरुषः पूर्वं पर्यायविशेषित एव शब्दो नान्यः। इदं वर्तमानकं सर्वं पञ्चभूतमतीतम् यच्च भाव्यं भविष्यत् तस्य काल त्रयस्य ईशानः। न केवलं काल त्रयस्य ईशानः। उत अमृतत्वस्यापि मोक्षस्यापि। उत शब्दोऽपि शब्दार्थे। कस्मात्कारणात्। यदन्नेनामृतेन अति रोहति अति रोधं करोति। सर्वस्येश्वर इति ॥३१।२॥

भावार्थ—वह पूर्व वर्णन किया हुआ अनन्य परमात्मा इस सम्पूर्ण वर्तमान भूत तथा भविष्य तीनों कालों का स्वामी है। केवल तीन का ही स्वामी नहीं है। अपितु मोक्ष का भी स्वामी है। किस कारण से कि जो अमृत से बढ़ाता है। सारांश यह कि वह सबका स्वामी है।

आपने अधूरा मन्त्र देकर वास्तव अर्थ को छिपाने का यत्न किया, किन्तु हमने पूरा मन्त्र देकर आपकी चालाकी का भांडा सारे बाज़ार में फोड़ दिया। उव्वट ने भी परमात्मा को सबका ईश्वर मान कर ब्रह्म से भिन्न जीव और प्रकृति को स्वीकार करके आपके सिद्धान्त का खंडन कर दिया है।

२३ प्रश्न—जब वेद संसार के समस्त रूपों को ब्रह्म के रूप कह रहा है। फिर निराकार कहना मूर्खता नहीं तो क्या है॥ पृ० १६० पं० ११

उत्तर—वेद संसार के समस्त रूपों को प्रकृति के रूप बतलाता है ब्रह्म के रूप नहीं। संसार का उपादान कारण अनादि प्रकृति है ब्रह्म नहीं है। हम प्रकृति के अनादि होने के कई मन्त्र पेश कर चुके हैं। एक मन्त्र यहां पर और पेश करते हैं।

*अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरु पिशङ्गिला।*
*शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां विसर्पति॥ य० २३। ५६॥*

भाषार्थ—हे विद्वन्! जन्म रहिता प्रकृति प्रलय काल में रूपों को निगलने वाली है। संसारावस्थापन्न होकर कार्य्यों के रूपों को प्रकट करनेवाली होती है। चतुर ज्ञानी पुरुष प्रकृति के बन्धन से परे हो जाता है। और सर्पवत् कुटिल स्वभाव मनुष्य

जन्म मरण मार्ग पर विविध रीतियों से जन्म मरण के चक्र में पड़ जाता है ॥५६॥ इस मन्त्र पर महीधर भी भाष्य करते हुये प्रकृति को अनादि मानते हैं, जैसे—

अजा पिशङ्गिला अजानित्या माया रात्रिर्वा पिशङ्गिला
पिशं रूपं गिलति भक्षयति पिशङ्गिला माया विश्वं ग्रसते।
रात्रावपि रूपाणि न प्रतीयन्ते तमसा ॥ महीधर २३ । ५६ ॥

भाषार्थ—अजा नाम अनादि प्रकृति या रात्रि का है। इन दोनों को पिशङ्गिला भी कहते हैं। प्रकृति को तो इस लिये पिशङ्गिला कहते हैं कि वह सारे संसार को निगल लेती है। और रात्रि को पिशङ्गिला इस लिये कहते हैं कि रात्रि में भी अन्धेरे के कारण पदार्थों की प्रतीति नहीं होती ॥ ५६ ॥

जब वेद से स्पष्ट हो गया कि प्रलयकाल में सारा जगत् प्रकृति में लय हो जाता है। तो इस से साफ साबित है कि वेद सारे संसार की प्रकृति से ही उत्पत्ति मानता है। फिर आपका यह लेख कि "समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे। क़तई वेद के विरुद्ध और मिथ्या सिद्ध हो गया। अतएव परमात्मा का सर्व स्वरूपत्व से साकार होना वेद विरुद्ध होने से मिथ्या तथा परमात्मा का निराकार होना वेदानुकूलता से सत्य सिद्धान्त है।

## अवतारत्व साकारता

२४ (प्रश्न) ईश्वर का अवतार धारण करना वेद ने बड़े विस्तृत रूप से लिखा है। पृ० १६१, मंत्र ८

(उत्तर) वेद में परमात्मा को (अकायम्) शरीर रहित (अस्नाविरम्) नाड़ी और नस के बंधन से रहित वर्णन किया है।

यह हम पहिले दिखा चुके हैं। वेद ने बड़े विस्तार से परमात्मा को अजन्मा प्रतिपादन किया है। वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है। जो परमात्मा के जन्म लेने का अनुमोदन करता हो, अपितु अनेकों मंत्र परमात्मा के जन्म लेने का निषेध करते हैं जैसे—

अजो न द्यां दाधार पृथिवीं तस्तम्भद्यां मन्त्रौभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि पश्वोनिपाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः॥
ऋ० १। ६७। ३

भाषार्थ—जैसे न जन्मने वाला परमेश्वर न टूटने वाले विचारों से पृथिवी को धारण करता है। विस्तृत अन्तरिक्ष तथा द्युलोक अथवा सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों को गिरने से रोकता है। प्रीतिकारक प्राप्तव्य पदार्थों को देता है। सम्पूर्ण आयु देने वाला बंधन से सर्वथा छुड़ाता है। बुद्धि में स्थित हुवा वह गुह्य पदार्थों को जानता है। वैसे ही तू भी हे विद्वान् जीव! हमें अज्ञान आदि से छुड़ा कर प्राप्तव्य की प्राप्ति करा" इत्यादि अनेकों मन्त्र परमात्मा के जन्म का निषेध करते हैं।" यह तो रही वेद की बात। अब आप कृपा करके यह बतावें कि परमात्मा को जन्म लेने की क्यों ज़रूरत पड़ती हैं और आपके मत में जब परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सारा ब्राह्मण्ड ही उस का शरीर है, तो परमात्मा को एक तुच्छ शरीर और धारण करवाने में क्या लाभ होता है। फिर जब आपके मतानुसार सारे ही रूपधारी पदार्थ भी ब्रह्म ही हैं तो फिर अवतार में क्या विशेषता रही। जब ब्रह्म से भिन्न कोई पदार्थ ही संसार में नहीं, तो फिर कौन किस के गर्भ में प्रवेश करके जन्म लेकर

किस की रक्षा करता है। ऐसी सूरत में यों कहना पड़ेगा कि "ब्रह्म, ब्रह्मके, ब्रह्म में, प्रवेश करके जन्म लेकर, ब्रह्म को मार कर, ब्रह्म की रक्षा करता है" यह क्या गोरखधन्धा है, समझाने की कृपा करें।

२५ प्रश्न—"एषो ह देवः ॥ यजु० ३२। ४" इस मंत्र में ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म लेना उत्तम रीति से कहा है। पृ० १६१, मं० १०

उत्तर—इस मंत्र में परमात्मा के जन्म लेने का लेश मात्र भी वर्णन नहीं है। आपने मंत्र के मन माने अर्थ करके स्वार्थ सिद्धि की है। कृपया बतलावें कि आपने "दृश्यमान्" अर्थ मंत्र के कौन से पद का किया है। फिर जो परमात्मा समस्त दिशाओं में व्यापक है वह गर्भ में आया कहाँ से। क्या वह गर्भ में व्यापक न था। इस लिए आप का किया हुवा मंत्रार्थ स्वयं वेद के अभिप्राय के विरुद्ध है। ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमानः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥

यजु० ३२। ४

भाषार्थ—हे विद्वानो! यह प्रसिद्ध परमात्मा उत्तम स्वरूप सब दिशा और विदिशाओं को अनुकूलता से व्यापक होकर वही अन्तःकरण के बीच प्रथम कल्प के आदि में प्रसिद्ध प्रकटता को प्राप्त हुआ। वही प्रसिद्ध हुआ। वह आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा। सब ओर से मुखादि अवयवों

वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ अचल सर्वत्र स्थिर है। वही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ--यह पूर्वोक्त ईश्वर जगत को उत्पन्न कर प्रकाशित हुआ सब दिशाओं में व्याप्त हो के इन्द्रियों के बिना, सब इन्द्रियों के काम सर्वत्र व्याप्त होने से करता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है। वह भूत भविष्यत् कल्पों में जगत् की उत्पत्ति के लिये पहिले प्रकट होता है। वह ध्यानशील मनुष्य के जानने योग्य है। अन्य के जानने योग्य नहीं है।

वेद में "उतनो ऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्। ऋ० ६।५०। १४। तथा "शन्नो अज एकपादेव।" ऋ० ७। ३५। १३ इत्यादि अनेक मंत्र परमात्मा के जन्म का निषेध करते हैं। अतः पूर्व मन्त्र का अर्थ भी वेद के अन्य मन्त्रों के अनुकूल होने से हमारा किया हुआ सत्य है। और आप का अर्थ अन्य वेद मन्त्रों के तथा उसी वेद मंत्र के विरुद्ध होने से मिथ्या है। अतः सिद्ध हुआ कि परमात्मा जन्म धारण नहीं करता।"

कृपया यह बतलावें कि जिन राम, कृष्ण आदि को आप परमात्मा का अवतार मानते हैं। उनके शरीरों में जीवात्मा भी था या केवल परमात्मा ही था। यदि जीवात्मा भी था तो दूसरे मनुष्यों में तथा अवतारों में क्या भेद हुआ। और यदि उनके शरीर में केवल परमात्मा ही था तो परमात्मा ने कौनसा बुरा काम किया था कि जिस के बदले परमात्मा को रामादि का शरीर धारण करना पड़ा। जैसे कि राम स्वयं कहते हैं कि—

किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि ॥ १८ ॥
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः ॥ १९ ॥

वाल्मीकि० युद्ध० स० १०१

अर्थ—मैंने दूसरे जन्म में कौन सा ऐसा बुरा कर्म किया है। कि जिस के कारण मेरा धार्मिक भाई मेरे सामने मरा हुआ पड़ा है।

२६ प्रश्न—"प्रजापतिश्चरति" यजु० ३१।१९ इत्यादि मंत्र से ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म धारण करना सिद्ध है। पृ. १६१ मं. १९

उत्तर—आप का अर्थ क्या है, चूं चूं का मुरब्बा है, जिस में परस्पर विरोध भरा पड़ा हैं। आपने इस अर्थ से ईश्वर को जन्म धारण करने वाला साकार सिद्ध करने का यत्न किया है। किंतु आपका परिश्रम व्यर्थ है। आप अपने अर्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ कर उत्तर दें कि यदि उस परमेश्वर में सब ब्रह्माण्ड ठहरे हुए हैं। अर्थात् वह सारे संसार में परिपूर्ण व्यापक है, तो वह विशाल व्यापक ईश्वर जिसमें सारे ब्रह्माण्ड ठहरे हुए हैं, छोटे से गर्भ में कैसे समा गया और गर्भ में आया कहां से क्या वह गर्भ में व्यापक न था ? और क्या गर्भ उसमें ठहरा हुआ न था। कैसी बेतुकी बात है कि "सब ब्रह्माण्डों में व्यापक ईश्वर गर्भ में आता है। क्यों जी जब वह अजन्मा है तो फिर वह बहुत प्रकार से जन्म कैसे धारण करता है। क्या दो विरुद्ध गुण किसी द्रव्य में रह सकते हैं। यदि आप कहें कि जीव भी तो स्वरूप से अजन्मा है। किन्तु वह जन्म धारण करता है। ऐसे ही परमात्मा भी स्वरूप से अजन्मा होकर, जन्म धारण

करता है। तो यह युक्ति ठीक नहीं है। क्योंकि प्रथम तो परमात्मा को जहाँ अजन्मा कहा है वहाँ ( अकायम् ) शरीर रहित तथा ( अस्नाविरम् ) नाडी और नस के बन्धन से रहित भी कहा है परन्तु जीव को ऐसा कहीं नहीं कहा। दूसरे जीव को "द्वासुपर्णा" आदि में कर्मों का फल भोगनेवाला कहा है जिस के लिए शरीर का धारण करना आवश्यक है। किन्तु परमात्मा न शुभाशुभ कर्म करता है, न उस के फल भोगने के लिये शरीर की ज़रूरत है। तीसरे जीव अणुपरिमाण एक देशी है, सारा शरीर में समा सकता है। ईश्वर व्यापक होने से शरीर में नहीं समा सकता। चौथे जीव का एकदेशी होने से गर्भ में आना जाना कहा जा सकता है। परमेश्वर के लिये व्यापक होने के कारण आना जाना नहीं कहा जा सकता। अतः जीव की भांति परमेश्वर का जन्म नहीं माना जा सकता। फिर भला यदि ईश्वर साकार और शरीर धारी है तो उसके स्वरूप को धीर पुरुष ही क्यों देखते हैं, आम लोग क्यों नहीं देख सकते। क्या राम और कृष्ण का शरीर, रावण; कुम्भकरण, मेघनाद, कंस, केशीमधु आदि राक्षसों तथा साधारण पुरुषों को नज़र न आता था। कैसे मखौल की बात है कि "ईश्वर के अवतार धारण किये हुए शरीर को बुद्धिमान पुरुष ही देख सकते हैं साधारण पुरुष नहीं।" इस प्रकार से आपका सारा ही अर्थ असंगत परस्पर विरुद्ध तथा वेदमन्त्र के आशय के विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरा स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
यजु० ३१। १९

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला प्रजा का रक्षक जगदीश्वर गर्भस्थ जीवात्मा और सब के हृदय में विचरता है। और बहुत प्रकारों से विशेष कर प्रकट होता है। उस प्रजापति के जिस स्वरूप को ध्यानशील विद्वान् जन सब ओर से देखते हैं। उसमें प्रसिद्ध सब लोक-लोकान्तर स्थित हैं।

भावार्थ—जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट हो के सर्वत्र विचरता है। जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं। उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये। यह है इस मंत्र का वास्तविक अर्थ। बतलाइये इससे अवतार सिद्ध कैसे हो सकता है। अतः आपका ईश्वरअवतार सिद्धान्त वेदविरुद्ध और मिथ्या है।

(२७) प्रश्न—"रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।" ऋ० ६।४७।१८ इत्यादि वेद के केवल एक मन्त्र से ही ईश्वर के बहुत अवतार सिद्ध हो जाते हैं। पृ० १६२, पं० २

उत्तर—कहिये महाराज आपका कोई निश्चित सिद्धान्त भी है या नहीं। अभी पीछे ईश्वर को स्वस्वरूपता से साकार सिद्ध करते हुए ईश्वर को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" सिद्ध कर रहे थे। अब यहाँ पर आकर "ईश्वर अपनी माया का आश्रय लेकर असंख्य रूपों को धारण करता है।" ऐसा कहने लगे। इन दोनों में से कौनसी बात सत्य और कौन सी मिथ्या है। और यह भी बतलाइये कि वह माया क्या

वस्तु है। वह माया या अविद्या ब्रह्म का ही गुण है या ब्रह्म से कोई भिन्न पदार्थ है। यदि कहो कि ब्रह्म का ही गुण है तो जिस ब्रह्म का गुण माया या अविद्या है। क्या वह ब्रह्म ब्रह्म कहलाने के योग्य है। और यदि माया ब्रह्म से भिन्न स्वतंत्र पदार्थ है तो आपके सिद्धान्त "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" का आपके लेख से ही खण्डन हो गया। और ये प्रेमी भक्त बीच में से कौन निकल आये जिनको ईश्वर अपना रूप दिखाता है। क्या ये अनादि जीव तो नहीं हैं। इससे तो ईश्वर जीव प्रकृति का भिन्न-भिन्न अनादि होना, इस एक ही मंत्र से आपने स्वीकार कर लिया। फिर आपने "हरयः" शब्द को क़तई छोड़ दिया इस का कोई अर्थ नहीं किया। सारे संसार को ईश्वर का रूप बनाते-बनाते सैकड़ों पर आ गये। और उनको भी छोड़ कर केवल दश ही रह गये। किन्तु ये दश भी रहते हुये नज़र नहीं आते। क्योंकि यह मंत्र ईश्वरपरक ही नहीं है अपितु इस मंत्र का प्रतिपाद्य विषय जीवात्मा है। और इस मंत्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रोमायाभिः पुरु रूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश ॥

ऋ० ६। ४७। १८

भाषार्थ—जीव बुद्धियों के द्वारा प्रत्यक्ष कथन के लिये रूप रूप का प्रतिरूप होता है। और इस कारण वह बहुत शरीर धारण करने के हेतु अनेक रूपोंवाला पाया जाता है। वह सब कुछ इसके शरीर का रूप है। अथवा यह सब कुछ जीवात्मा के स्वरूपबोधन के लिये है। इस जीवात्मा के

निश्चय से दश इन्द्रियाँ तथा सैकड़ों शक्तियाँ युक्त होकर कार्यों को साधन करती हैं।

भावार्थ—कर्मों के अनुसार जीवात्मा जिस-जिस शरीर में जाता है वैसे ही स्वभाव और वैसी ही चेष्टावाला हो जाता है। मनुष्य शरीर पाकर इस की चेष्टा मनुष्य की सी होती है तो पशु, पक्षी की योनी में जाकर वैसी गति विधि करने लगता है। यह सारी बातें शरीर से आत्मा की पृथक् सत्ता को सिद्ध करती हैं।

इस मंत्र में कितनी सुन्दरता से शरीर इन्द्रियादि से आत्मा का भेद कथन किया गया है। इस मंत्र से ईश्वर-अवतार सिद्ध करना वेदविरुद्ध अनधिकार चेष्टा है।

(२८) प्रश्न—ईश्वर चैतन्य है। वह अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा करता है। अब कोई कैसे कह सकता है कि वेद में ईश्वर के अवतार का लेख नहीं है। पृ० १६२, पं० २०

उत्तर—हम इस बात को बलपूर्वक कह सकते हैं कि वेदों में एक मंत्र भी इस प्रकार का नहीं है कि जो ईश्वर के अवतार अथवा साकारता का वर्णन करता हो, अपितु इस प्रकार के सैकड़ों मंत्र वेदों में मौजूद हैं जो ईश्वर को निराकार तथा अजन्मा शरीररहित वर्णन करते हैं। रहा आप का यह हेतु कि भक्तों की रक्षा करने के लिये ईश्वर अवतार धारण करता है। तो भी सत्य नहीं है। क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुसार चलते हैं। उन के उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में हैं। क्या ईश्वर के पृथिवी सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस, रावणादि का वध

बड़े कर्म हैं। जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो ईश्वर के सदृश कोई न है न होगा। और वैसे यह अवतारवाद का सिद्धान्त संसार में पुरुषार्थ का नाश कर के आलस्यवाद का फैलाने वाला है। क्योंकि अवतारवादी लोग इस आशा में कि हमारे कष्ट को दूर करने के लिये भगवान् स्वयं अवतार लेकर आवेंगे। स्वयं कोई पुरुषार्थ न करके हाथ पर हाथ रखकर यह राग गाते रहते हैं कि—

वंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड
वंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड

हमारी यह समझ में नहीं आता कि एक मगरमच्छ ने जब हाथी को खेंचा तो उसकी रक्षा के लिये परमेश्वर झट कूद पड़ा, किन्तु आज दिन निकलने से पहिले सत्तर हज़ार गौओं की गरदन पर छुरा चल जाता है। आज वह इनकी रक्षा के लिये क्यों नहीं कूदता। क्या वे ईश्वर की भक्त नहीं हैं? इससे सिद्ध हुआ कि यह ढकोसला ही है कि परमात्मा भक्तों की रक्षा के लिये जन्म धारण करता है। और इस के विरुद्ध पुराणों में लेख मौजूद है। चुनांचे शिवपुराण में लिखा है कि वृन्दा के शाप से श्री रामचन्द्रजी का जन्म हुआ। और वह कथा इस प्रकार है। कि "विष्णु ने माया से दो बन्दरों की सहायता से वृन्दा को छल कर उससे मैथुन करके उस का पतिव्रत-धर्म भंग कर दिया। कभी मैथुन के अन्त में वृन्दा को पता लगा कि यह तो विष्णु है। तो वृन्दा ने क्रोध में आकर विष्णु को शाप दिया।

रे महाधम दैत्यारे पर धर्म विदूषक।
गृह्णीष्व शठ मद्दत्तं शापं विषोल्वणम्॥ ४३॥

यौ त्वया मायया ख्यातौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ।
तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ ४४ ॥
त्वंचापि भार्यां दुखार्त्तो वनेकपिसहायवान् ।
भ्रमसर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥ ४५ ॥
( शिवपुराण रुद्रसंहिता २ युद्धखंड ५ अध्याय २३)

अर्थ—रे महापापी राक्षसों के शत्रु दूसरों के धर्म को नाश करने वाले ! मेरे दिये हुए तीक्ष्ण विष के समान शाप को ग्रहण कर ॥ ४३ ॥ जो तूने अपनी माया से प्रकट किये मुझे दो अपने साथी दिखाये । वही दोनों राक्षस बन कर तेरी पत्नी को हरेंगे ॥ ४४ ॥ और तू भी पत्नी के दुख से व्याकुल हुआ जंगल में बन्दरों की सहायता लेकर अपने इस शिष्य शेषनाग के साथ भ्रमण करेगा ॥ ४४ ॥ पुराण के इस लेख से स्पष्ट है कि राम का जन्म भक्तों की रक्षा के लिये नहीं हुआ । अपितु वृन्दा के शाप के कारण हुआ था ।

इसी प्रकार से कृष्ण के विषय में ब्रह्म-वैवर्तपुराण में लिखा है कि गोलोक में कृष्ण को, राधा ने क्रोध में आकर शाप दिया ।

हे कृष्ण वृजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे ।
कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट ॥ ५९ ॥
शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम् ।
अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज ॥ ६० ॥
हे नदीकान्त देवेश देवानांच गुरोगुरो ।
मया ज्ञातोऽसि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाश्रमात् ॥ ६१ ॥
शश्वत्ते मानुषाणांच व्यवहारस्य लम्पट ।
लभतां मानुषीं योनिं गोलोकाद्व्रज भारतम् ॥६२ ।

हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि ।
निर्वार्यतांच धूर्त्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम् ॥ ६३ ॥

( ब्रह्म-वैवर्तपुराण कृष्णजन्म खंड ४ पूर्वार्द्ध अध्याय ३)

अर्थ—हे कृष्ण ! हे हरे ! हे वृजा के प्यारे ! मेरे सामने से चला जा । हे चंचल ! मुझे क्यों दुख देता है । हे अति लम्पट और कामचोर मुझे क्यों कष्ट देता है ॥ ५९ ॥ शीघ्रता से पद्मावती के पास जा । अथवा सुन्दरी रत्नमाला के पास जा । अथवा अनूपम रूप वाली वनमाला के पास जा ॥ ६० ॥ हे वृजा के प्यारे ! हे देवेश ! हे देवों के गुरु के गुरु ! मैंने आपको जान लिया है । तेरा कल्याण हो । जा-जा मेरे आश्रम से चला जा ॥ ६१ ॥ हे लंपट ! चूँकि आप मनुष्यों की भाँति मैथुन करने में लम्पट हैं, अतः आपको मनुष्य-योनि ही मिले । आप गोलोक से भारत में चले जावें ॥६०॥ हे सुशीले ! हे शशिकले ! हे पद्मावति ! हे माधवि ! यह धूर्त है । इस को यहां से दूर करो । इसका यहाँ क्या प्रयोजन है ॥ ६३ ॥ इस से सिद्ध है कि कृष्ण का जन्म भक्तों की रक्षा के लिये नहीं अपितु राधा के शाप के कारण हुआ था ।

दूसरे स्थान में इस प्रकार से भी वर्णन मौजूद है कि गोलोक में एक वार राधा की श्रीदामा से लड़ाई हो गई । तो श्रीदामा ने राधा को शाप दिया कि तू पृथिवी पर मानुषी योनि को प्राप्त हो । तब राधा ने कृष्ण के पास जाकर कहा, तो कृष्ण ने कहा चिन्ता मत करो मैं भी भूतल पर जाकर तुम्हारे पास आऊँगा ।

अतो हेतोर्जगन्नाथो जगामनन्द गोकुलम् ॥ १६ ॥
किंवा तस्य भयं कंसाद्भयांतकारकस्यच ।
माया भयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् ॥ १७ ॥
( ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्म खण्ड ४ पूर्वार्द्ध अध्याय २ )

अर्थ—इस कारण से जगत् के नाथ कृष्ण नन्द के गोकुल में गये ॥ १६ ॥ उनको कंस से क्या भय हो सकता था। क्योंकि वह तो स्वयं भय का अन्त करने वाले हैं। वह तो माया और भय का छल कर के वास्तव में राधा के पास ही गये थे ॥ १७ ॥

कहिये महाराज अब तो स्पष्ट हो गया, कि राम तथा कृष्ण का जन्म भक्तों की रक्षार्थ नहीं अपितु शाप के कारण हुआ था। अतः पुराणों के लेखानुसार भी भक्तों की रक्षार्थ ईश्वर का अवतार होना मिथ्या ही है।

## यक्षावतार

(२६) प्रश्न—तलवकार अर्थात् केनोपनिषद् में "ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिज्ञे तस्यह इत्यादि १४ से २४ तक" यक्ष अवतार का वर्णन किया गया है। पृ० १६२, पं० ६

उत्तर—कहियेगा महाराज ! यह यक्षावतार आपके २४ अवतारों में से कौन से अवतार हैं। ( गरुड़ पुराण आचार काण्ड अध्याय १ ) तथा ( भागवत पुराण प्रथम स्कन्ध अध्याय ३ ) में आपके हां अवतारों का वर्णन इस प्रकार से है। विष्णु, ब्रह्मा, कुमार, वाराह, देवर्षि, नरनारायण, कपिल दत्त, यज्ञ, उरुक्रमः, पृथिवी, मत्स्य, कच्छप, धन्वन्तरि, मोहिनी, नरसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध,

कल्कि, वैसे तो आपके मत में यह सारा ही संसार ब्रह्म का रूप है। और इस में जितने रूप हैं, वे सब ब्रह्म का अवतार हैं। किन्तु आप तो विशेष अवतारों में से यक्षावतार का वर्णन कर रहे हैं। किन्तु हमें आपके पूर्वोक्त विशेष अवतारों में कहीं "यक्षावतार" का नाम नज़र नहीं आता। यह आप ने व्यास जी के पीछे एक नए पच्चीसवें अवतार की कल्पना की है। क्यों न हो आप कोई व्यास से कम थोड़ा ही हैं। यदि वह ब्रह्म का अवतार हैं तो आप भी तो ब्रह्म का स्वरूप है। यदि वह २४ अवतारों की कल्पना कर सकते हैं तो क्या आप एक की भी न कर सकते।

दूसरे आप केनोपनिषद् का पाठ देकर उसे वेद का प्रमाण प्रकट कर रहे हैं। श्रीमान् जी उपनिषद् वेद नहीं हैं। अपितु ऋषि लोगों के रचित होने से परतःप्रमाण माने जा सकते हैं।

तीसरे इस पाठ में न तो अवतार शब्द ही मौजूद है और न ही इस में परमेश्वर के जन्म लेने का वर्णन हैं।

चौथे इस कथा को यदि सत्य मान लिया जावे तो इस में असंभव दोष आता है। क्योंकि अग्नि, वायु ये दोनों ही चेतना-रहित जड़ पदार्थ हैं। इनका इकट्ठे होकर यह कहना कि "हमारा ही विजय हुआ है" और "हमारा ही महत्व है" तथा अग्नि और वायु का यक्ष के पास जाकर बातचीत करना यह सब बातें असंभव हैं। जड़ वस्तुओं से ऐसी बातें नहीं हो सकतीं इस बात को साधारण कवि लोग भी जानते हैं। चुनांचे कालिदास जी मेघदूत में, श्लोक नं० ५ में इसी बात को बतलाते हैं।

धूमज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः,
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

( मेघदूत )

भाषार्थ—आग, पानी, धूम, वायु के मेल से बना हुआ बादल कहाँ। "अचेतन होने से संदेश पहुंचा ने के अयोग्य है। यह भाव है" और समर्थ इन्द्रिय वाले चेतन प्राणियों से पहुँचाने के योग्य संदेश का अर्थ कहाँ। किन्तु यक्ष ने अपने इष्ट पदार्थ की उत्सुकता में इस बात का विचार न करते हुए मेघ से प्रार्थना की। क्योंकि कामवासना से व्याकुल हुए स्वभाव से दीन लोग चेतन अचेतन में विचार नहीं कर सकते। "कामांध लोगों के युक्त अयुक्त के विवेक से शून्य होने के कारण अचेतन से प्रार्थना नामुमकिन नहीं है। यह भाव है।"

इस लिये यदि आप इस कथा को वास्तव मान लेंगे तो मानना पड़ेगा कि यह लेख "उन्मत्त प्रलाप अर्थात् पागलों की बड़" ही है। किन्तु यह बात नहीं है। यह कथा वास्तव नहीं, अपितु "अग्नि, वायु आदि से ब्रह्म की शक्ति प्रबल है" इस बात को समझाने के लिये यह अलंकार रूप कथा बनाई गई है। और ऐसा प्रत्येक भाषा में पाया जाता है। जैसे—

सोना बोला—

सोना कहे सुनार से उत्तम मेरी जात।
यह काले मुख की लालड़ी क्यों तुले हमारे साथ॥

रत्ती बोली—

लालों की मैं लालड़ी लाल हमारा रंग।
काला मुख तब से भया जब तुली नीच के संग॥

इससे स्पष्ट है कि सोना तथा रत्ती जड़ होने से बातचीत नहीं कर सकते किन्तु कवि ने लोगों को यह शिक्षा देने के लिये कि "जो किसी को बुरा कहेगा वह दूसरे से बुरा कहा लेगा।" यह अलंकार रूप सोने तथा रत्तिका का संवाद कल्पना किया है। इसी प्रकार से भाषा तथा उर्दू के साहित्य में "सोने चांदी की अंगूठियों का" "गिलहरी पहाड़ का" "वृक्ष पक्षियों का" "पगड़ी जिह्वा का" "तीली लौंग का" इत्यादि अनेक संवाद मिलते हैं जोकि कवियों ने अनेक प्रकार के भाव समझाने के लिये कल्पना किये हुए हैं। इसी प्रकार के शिक्षा देने वाले अलंकार रूप संवाद संस्कृत साहित्य, उपनिषद्, ब्राह्मण तथा वेदों तक में भी मिलते हैं। इस बात को निरुक्त ने स्पष्ट रूप से लिख दिया है। जैसे कि—

अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम्॥ १॥
अपितु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधम्
तद्यथाऽग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति॥ २॥
यथो एतच्चेतनावद्बुद्धि स्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्य
प्येवंस्तूयन्ते यथाज्ञप्रभृतीन्योषधिपर्य्यन्तानि॥ ३॥
यथो एतत्पौरुष विधिकैरङ्गैः स्तूयन्त इत्यचेतनेष्व
प्येतद्भवत्यभिक्रन्दन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिः॥४॥

यथो एतत्पुरुष विधिकै र्द्रव्यसंयोगै रित्येतदपि तादृशमेव।
"सुखं रथं युयुजे सिंधुरश्विनम्" इति नदी स्तुतिः॥ ५॥

यथो एतत्पौरुष विधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव ।
"होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत" इति ग्रावस्तुतिरेव ॥ ६ ॥
(नि० दै० अ० ७ खण्ड ७)

भाषर्थ—देवता पुरुष से भिन्न भी होते हैं यह दूसरा पक्ष है ॥ १ ॥

जैसा कि नज़र आ रहा है पुरुष से भिन्न वह जैसे अग्नि, वायु, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा इति ॥ २ ॥

जैसे इनकी चेतनावालों की भांति स्तुतियां हैं। अर्थात् अचेतन भी चेतनों की भांति स्तुति किये जाते हैं। अक्ष से लेकर औषधि पर्यंत ॥ ३ ॥

जैसे इन को पुरुषों के समान अंगों से स्तुति करते हैं। अर्थात् अचेतनों में भी चेतन के अंगों के समान स्तुति की जाती है; जैसे पत्थरों के लिये आता है कि "वह हरे-हरे मुखों से बोलते हैं।" ॥ ४ ॥

जैसे वह पुरुषों के समान वस्तुओं के संयोग से स्तुति किये जाते हैं। अर्थात् अचेतन भी चेतनों के समान वस्तुओं के संयोग से स्तुति किये जाते हैं। जैसे नदी के लिये आता है कि "नदी सुख देने वाले रथ को जोड़ती है।" ॥ ५ ॥

जैसे यह पुरुषों के समान कर्मों से स्तुति किये जाते हैं। अर्थात् अचेतन भी चेतन के समान कर्मों से स्तुति किये जाते हैं। जैसे पत्थरों के लिये आता है कि ये "अग्नि और होताओं से पहिले खाने योग्य हवि को खाते हैं।" ॥ ६ ॥

निरुक्त ने इस बात को बिलकुल साफ कर दिया है कि यद्यपि अग्नि, वायु, पृथिवी, जल, सूर्य, चाँद आदि पदार्थ जड़

हैं, तो भी इस का वर्णन चेतनों के समान ही किया जाता है। इस से वह चेतन नहीं बन जाते अपितु यह वर्णन करने की शैली मात्र ही है। हम इस विषय में आपके सामने प्रश्नोपनिषत् में से इसी प्रकार का दूसरा वर्णन दिखाते हैं। ताकि आप की पूरे तौर से तसल्ली हो जावे। जैसे—

अथ हैनं भार्गववैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाश्यन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥ तस्मै स हो वाचाकाशो हवा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ् मनश्चक्षुः, श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेत द्वाणमवष्टभ्य विधा रयामः ॥ २ ॥ तान् वरिष्ठः प्राणउवाच मा मोहमापद्यथाह मेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैत द्वाणमवष्ठभ्य धारयामीति। तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्ध्वमत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रा मत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते एवमस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवंवाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणंस्तुवन्ति ॥ ४ ॥

( प्र० प० प्र० नं० २ मं० १ से ४ )

भाषार्थ—प्रथम प्रश्न का उत्तर सुनने के अनन्तर प्रसिद्ध है कि पिप्पलाद ऋषि से भृगुकुलोत्पन्न वैदर्भिने पूछा कि हे ऐश्वर्य सम्पन्न कितने देव इस शरीर रूपी प्रजा को धारण

करते हैं। और कितने इसको प्रकाशित करते हैं। फिर इन में कौन श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥ वैदर्भि के प्रश्न का उत्तर देने के लिये वह पिप्पलाद स्पष्टतया बोले। प्रसिद्ध है कि यह आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये पांच भूत वाणी मन नेत्र और श्रोत्र ये सब देव हैं। ये शरीर को प्रकाशित कर के कहने लगे कि हम इस शरीर को आश्रय कर के धारण करते हैं ॥ २ ॥ उन सब देवों से श्रेष्ठ प्राण बोला कि मत मोह को प्राप्त होवो मैं ही प्राणादि पाँच भेदों से अपने आप को विभक्त करके इस शरीर को थामे हुआ हूं। और मैं ही इनको धारण करता हूँ ॥ ३ ॥ वह सब देव रूप इन्द्रिय अश्रद्धा वाले हुये। तब वह प्राण अभिमान से ऊपर को उत्क्रमण करने की नाईं उठता दीख पड़ा। उस को निकलता हुआ देख अन्य सब भी निकलने लगे और उसके ठहरने पर सब ही ठहर गये। जैसे मधु की सारी मक्खियां अपने राजा के निकलने पर उस के पीछे निकल जाती हैं, और उसके स्थिर होने पर सब ही स्थिर हो जाती हैं। इसी प्रकार प्राण के अधीन वागादि सब देव हैं। तब वे वाणी मन चक्षु और श्रोत्रादि इन्द्रिय विश्वास वाले हुये। प्राण की स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥

अब देखिये इस प्रकरण में आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाणी, श्रोत्र, चक्षु और प्राणों को जड़ होते हुये भी चेतन के समान बाद विवाद करते हुये वर्णन किया है। इससे उपरोक्त पदार्थ चेतन नहीं बन गये अपितु यह वर्णन करने की शैली है और इस प्रकार वर्णन करने का प्रयोजन यह है कि शरीर में उपरोक्त सब पदार्थ प्राण के ही आश्रय हैं अतः प्राण

ही सब में श्रेष्ठ है। बस इसी प्रकार से ही केनोपनिषद् के "ब्रह्म ह देवेभ्यो" इत्यादि पाठ के वर्णन से अग्नि वायु आदि चेतन नहीं बन गये और न ही ब्रह्म शरीर धारी बन गया। अपितु यह वर्णन करने की शैली है। और इस प्रकार वर्णन करने का प्रयोजन यह है कि ब्रह्म की शक्ति के सामने सब शक्तियां हेच हैं। आपने इस रहस्य को न समझते हुये जो इस लेख से ब्रह्म का अवतार सिद्ध करने का यत्न किया है वह युक्ति शून्य तथा वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

## मत्स्यावतार

३० प्रश्न—शतपथ पृ० ५८ में "मनवे ह वै प्रातः" इत्यादि मनु प्रातः हाथ धोने लगे तो उनके हाथ में छोटी सी मछली आगई। तब मछली ने मनु से कहा आप मेरी पालना करें तो सब को डुबा देने वाला जो जल प्रवाह आवेगा उसमें मैं आप की रक्षा करूँगी। मनु ने उस की पालन कर के बड़ा मत्स्य होने पर समुद्र में छोड़ दिया। जब जल का महा प्रवाह आया तो मत्स्य भगवान् ने मनु की किश्ती को हिमालय पर ऊँची जगह पहुँचा दिया। तब सब प्रजा जल में डूब कर नष्ट हो गई एक मनु ही शेष रह गये। इस लेख से सिद्ध होता है कि वेद में भगवान् के मत्स्य अवतार का वर्णन आता है।

पृ० १६५ पं० २

उत्तर—आपने शतपथ के पाठ को वेद के नाम पर मढ दिया। यह सत्य नहीं। क्योंकि शतपथ ईश्वर कृत नहीं अपितु ऋषि कृत होने से परतः प्रमाण है।

दूसरे इस सारे पाठ में न तो अवतार शब्द है, न ईश्वर या ईश्वर के जन्म लेने का वर्णन है।

तीसरे क्या यह संभव है कि मछली सेवकों को नज़र न आई। क्या वह अत्यन्त ही सूक्ष्म थी।

चौथे मछली का बोलना तथा राजा का समझना दोनों असंभव हैं।

पाँचवें जो प्राणी राजा से अपनी रक्षा की प्रार्थना कर रहा है, वह स्वयं ईश्वर है सर्वथा असत्य है।

छठे समुद्र के बड़े मत्स्यों से जान का भय खाने वाला ईश्वर कैसे।

सातवें जल जन्तुओं को अपना नाशक शत्रु मानने वाला ईश्वर का अवतार नहीं कहा जा सकता।

आठवें मछली के सींगों का वर्णन और भी हास्यास्पद है अतः मानना पड़ेगा कि यह वास्तव कथा नहीं है। अपितु पूर्व वर्णित केनोपनिषद् की गाथा की भान्ति यह भी अलंकार रूप गाथा है। जिस का प्रयोजन लोगों को यह शिक्षा देना है कि "यदि तुम औरों की पालना पोषणा आपत्तिकाल में सहायता करोगे तो वह भी तुम्हारे आपतकाल में काम आवेंगे और तुम्हारी रक्षा करेंगे" इस से मछली का बातें करनादि सत्य नहीं होता अपितु यह वर्णन करने की शैली ही है। अतः ईश्वर का मत्स्य अवतार इस पाठ से सिद्ध करना वेद विरुद्ध होने से मिथ्या तथा असंभव और अनधिकार चेष्टा है।

## ब्रह्मावतार

३१ प्रश्न—"ब्रह्मज्येष्ठा संभृता। अ० २३। ३०" इस

मन्त्र में ब्रह्मा के अवतार का वर्णन है। पृ० १६७ पं० १५

उत्तर—कृपया यह बतलावें कि इस मंत्र में वे कौन से शब्द हैं जिन से ईश्वर का अवतार सिद्ध होता है। प्रकट होने के अर्थ अवतार लेना या जन्म धारण करना नहीं है अपितु निमित्त कारण ईश्वर का उपादान कारण प्रकृति से सूर्य, चाँद, पृथिवी आदि का पैदा करना ही उसका प्रकट होना है। मंत्र के ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं :—

ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्मग्ने ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे
तेनहिति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

अ० १९। ९२। ३०

भाषार्थ—यथावत् धारण किये हुए वीर कर्म परमात्मा को प्रधान रखने वाले हैं। महाप्रधान परमात्मा ने पहिले ज्ञान को सब ओर फैलाया है। और वह सब से बड़ा सर्वजनक परमात्मा प्राणियों में सब से पहिले प्रकट हुआ है। इस लिये महान परमात्मा की कौन बराबरी कर सकता है॥ ३०॥

इस मंत्र से परमात्मा का अवतार सिद्ध करना वंध्या पुत्र का विवाह देखने के समान असंभव और व्यर्थ चेष्टा है।

जिस ब्रह्मा को आप अवतार सिद्ध करने के लिये पानी २ हो रहे हैं। ज़रा यह तो बतलावें कि उसने संसार में आकर क्या उपकार किया, किन भक्तों की रक्षा की और अपने चरित्र से संसार को क्या शिक्षा दी। पुराणों में आपके प्रथमावतार ब्रह्मा का यूं वर्णन है।

(क) ब्रह्मा ने राक्षसों को पैदा किया, वे राक्षस ब्रह्मा से ही मैथुन करने के लिये उस के पीछे दौडे। ब्रह्मा भयभीत हुआ विष्णु के पास आया और बोला—

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः।
ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो॥ २६॥

भा० स्क० ३ अ० २०

भाषार्थ—हे परमात्मा! मेरी रक्षा करो, मैने आपके भेजने से प्रजा उत्पन्न की थी। वे ये पापी मेरे साथ मैथुन करने के लिये मेरे पीछे भाग रहे हैं॥ २६॥

(ख) एतस्मिन्नतरे वक्त्रात्समुद्भूताचशारदा।
दिव्यांगं सुन्दरं तस्याः दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः॥ २॥
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मरपीडितः।
रतिं देही मदाघूर्णे रक्ष मां कामविह्वलाम्॥ ३॥
इति श्रुत्वा तु सा माता रुषा प्राह पितामहम्।
पंच वक्त्रोऽयमशुभंन योग्यस्तव कंधरे॥ ४॥

भविष्य० प्रतिसर्ग पर्व ३ अ० २३

भाषार्थ—इतने में ब्रह्मा के मुख से शारदा नाम पुत्री पैदा हुई। उसके अति सुन्दर अंगों को देख कर ब्रह्मा जी कामातुर होगये॥ २॥ उस कन्या को जबर दस्ती पकड़ कर कामातुर हुआ बोला। मस्त नेत्रोंवाली! मुझे जोबन का दान दे। और मुझ कामाकुल की रक्षा कर॥ ३॥ [यह सुनकर वह माता क्रोध से ब्रह्मा को बोली। यह जो तुम्हारा अशुभ पांचवां मख है। वह तुम्हारे कंधे पर योग्य नहीं है॥ ४॥

(ग) ब्रह्मा का पुत्र दक्ष था, दक्ष की पुत्री सती थी। सती

का विवाह महादेव से होना निश्चय हुआ। तो दक्ष ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। इसे ब्रह्मा के शब्दों में सुनिये—

ततो मां पितरं प्राह दक्षः प्रीत्या हि मत्सुतः ।
प्रणिपत्य त्वया कर्म कार्य्यं वैवाहिकं विभो ॥ ३१ ॥
वि० अध्याय १८

तब मेरा पुत्र प्रीति से मझ बाप को बोला। कि यह विवाह का कार्य्य आप ही करवावें ॥ ३१ ॥ यह प्रार्थना स्वीकार कर के मैं अपनी पोती सती का विवाह महादेव से करवाने लगा। जब विवाह संस्कार हो रहा था तो—

प्रदक्षिणां प्रकुर्वन्त्या वह्नेः सत्या पदद्वयम् ।
आविर्बभूव वसनात्तदद्राक्षमहं मुने ॥ १७ ॥
मदनाविष्ट चेताश्च भूत्वांगानि व्यलोकयम् ।
अहं सत्या द्विज श्रेष्ठ शिव माया विमोहितः ॥ १८ ॥
यथा यथाहं रम्याणि व्यैक्षमंगानि कौतुकात् ।
सत्याबभूव संहृष्टः कामार्तो हि तथा तथा ॥ १९ ॥
अहमेवं तथा दृष्ट्वा दक्षजां च पतिव्रताम् ।
स्मराविष्टमना वक्त्रं द्रष्टुकामोऽभवं मुने ॥ २० ॥
न शंभोर्लज्जया वक्त्रं प्रत्यक्षं च विलोकितम् ।
न च सा लज्जयाविष्टा करोति प्रकटं मुखम् ॥ २१ ॥
ततस्तद्दर्शनार्थाय सदुपायं विचारयन् ।
धूम्रधोरेण कामार्तोऽकार्षं तच्च ततः परम् ॥ २२ ॥
आर्द्रेन्धनानि भूरीणि क्षिप्त्वा तत्र विभावसौ ।
स्वल्पाज्याहुति विन्यासादाद्रद्रव्योद्भवस्तथा ॥ २३ ॥
प्रादुर्भूतस्ततो धूमो भूयांस्तत्रसमंततः ।
तादृग् येन तमोभूतं वेदी भूमि विनिर्मितम् ॥ २४ ॥

ततो धूमाकुले नेत्रे महेशः परमेश्वरः ।
हस्ताभ्यां छादयामास बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ २५ ॥
ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्य सतीवक्त्रमहं मुने ।
अवेक्षं किल कामार्तः प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ २६ ॥
मुहुर्मुहुरहं तात पश्यामिस्म सतीमुखम् ।
अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानस्मि सोऽवशः ॥ २७ ॥
मम रेतः प्रचस्कंद ततस्तद्वीक्षणाद्द्रुतम् ।
चतुर्विन्दुमितं भूमौ तुषारचयसन्निभम् ॥ २८ ॥
शिवपु० रुद्र० सती अ० १९ ॥

भाषार्थ—अग्नि की प्रदक्षिणा करते हुए सती के दोनों पैर कपड़े से बाहर नंगे हो गये। वह मैंने देख लिये ॥ १७ ॥ मैं काम में व्याकुल होकर उस के और अंगों को देखने लगा। क्योंकि मैं शिव की माया से मोहित था ॥ १८ ॥ मैं कौतुक से जैसे जैसे उस सती के सुन्दर अंगों को देखता था। वैसे वैसे मैं कामार्त होता जा रहा था ॥ १९ ॥ मैं इस प्रकार से पतिता दक्ष की पुत्री को देखकर काम से व्याकुल होकर मुख के देखने की इच्छा करने लगा ॥ २० ॥ मैंने महादेव की लज्जा से प्रत्यक्ष मुख नहीं देखा और वह भी लज्जा से मुख नंगा न करती थी ॥ २१ ॥ तब मैंने उस के दर्शनार्थ अच्छा उपाय विचारा। मैंने कामार्त होने से घोर धुआं पैदा कर दिया। ॥ २२ ॥ बहुत गीली सी लकड़ियां वहां अग्नि में डालकर और अलग घी डालने से गीली लकड़ियों से धूआं पैदा हो गया ॥२३॥ तब वहां बहुत धुआं पैदा हो गया। जिससे सारी वेदी धुआं धार होगई ॥ २४ ॥ तब महादेव ने धूएँ से व्याकुल हुए नेत्र

दोनों हाथों से ढक लिये ॥ २५ ॥ तब मैंने प्रसन्न मन से कामार्त हो कपड़ा उठाकर सती का मुख देख लिया ॥ २६ ॥ मैं सती का मुख बार बार देखता था। तब मैं बेबस होकर इन्द्रियों के विकार को प्राप्त होगया ॥ २७ ॥ तब उसके देखने से शीघ्रता से मेरा वीर्य पात होगया। वह वीर्य्य चार बिन्दु ओस के क़तरों के समान था ॥ २८ ॥

इस प्रकार के सैंकड़ों ब्रह्मचर्य विरोधी कार्य ब्रह्मा के पुराणों में दिखाये जा सकते हैं। तो क्या इन्हीं के लिये ब्रह्मा का अवतार हुआ था।

३२ प्रश्न—"तदण्डमभवद्धैममिति मनु० १। ९" में मनु ने ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म रूप विराट से ब्रह्मा की उत्पत्ति लिख कर वेद मंत्र की पुष्टि की है॥ पृ० १६७ पं० २३

उत्तर—न तो वेद मंत्र में ही आप के फ़र्ज़ी पौराणिक ब्रह्मा के अवतार का वर्णन है। और न ही मनुस्मृति उसकी ताईद करती है। मनु ने जिस ब्रह्मा के प्रकट होने का उपरोक्त श्लोक में वर्णन किया है। उस ब्रह्मा का लक्षण वह मनु अ० १ श्ल० ११ में इस प्रकार करके स्पष्ट करते हैं।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सद सदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो वह अदृश्य नित्य सत् असत् आत्मिक कारण प्रकृति है। उसको स्थूल कार्य्य रूप में प्रकट करने के कारण उस परमात्मा को ब्रह्मा कहते हैं॥ और सूक्ष्म उपादान कारण प्रकृति को स्थूल कार्य्य रूप में तबदील करना ही परमात्मा का प्रकट होना है जैसे—

ततः स्वयंभूर्भगवान् अव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातन ।
सर्व भूतमयोऽचिंत्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
मनु० १ । ६—७

भाषार्थ—फिर वह नित्य, बाह्य इन्द्रियों से अगोचर, योगाभ्यास से सेवन करने के योग्य, अखंडित सृष्टि सामर्थ्य वाला, प्रकृति का प्रेरक, परमात्मा आकाशादि पांच महाभूतों को सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप में प्रकाशित करके प्रकाशित हुवा ॥ ६ ॥ जो वह बाहर की इन्द्रियों से अगोचर, सूक्ष्म, अवयवों से रहित नित्य सर्व-भूतों में व्यापक परमात्मा है ॥ ७॥ वह स्वयं ही कारण प्रकृति को कार्य्य जगत में तबदील करके प्रकट हुआ आशा है अब आप भली-भांति समझ जावेंगे कि मनुस्मृति में भी परमात्मा के जन्म धारण तथा अवतार का ज़बरदस्त खंडन है। अब तीनों श्लोकों की रोशनी में आपके श्लोक के अर्थ इस प्रकार से हुए।

तदण्डमभवद्धैमं सहसांशु समप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥ मनु० १ । ९ ॥

अर्थ—वह प्रकृति रूप बीज अर्थात् कारण सूर्य्य और सोने के समान चमकने वाला अण्डे समान गोल रूप होगया। उसके ऐसा कार्य्यरूप बनने पर सारे संसार के पितामह ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा अपने आप ही प्रसिद्ध होगये। क्योंकि कार्य्य से ही कर्ता प्रसिद्ध होता है ॥ बस इस श्लोक का यही अर्थ वेदानुकूल होने से सत्य है। अतः इस से ईश्वर का ब्रह्मा रूप में अवतार लेना सिद्ध नहीं होता।

३३ प्रश्न—"ब्रह्मा देवानां प्रथमः" मुण्डकोपनिषत् में यह स्पष्ट है कि संसार के बनाने वाले और संसार की रक्षा करने वाले ब्रह्मा समस्त देवताओं से पहिले प्रकट हुए। मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा ईश्वर अवतार है॥ पृ० १३८ पं० ५

उत्तर—प्रथम तो यह वेद का प्रमाण नहीं है। उपनिषद् वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं अन्यथा नहीं। दूसरे इस लेख में न तो ईश्वर का वर्णन है। और नही ईश्वर के जन्म लेने का वर्णन है। अपि तु ब्रह्मा नाम के ऋषि का वर्णन है। यहां पर "देवों में प्रथम" का अभिप्राय "विद्वानों में अव्वल दर्जा" अर्थात् "विद्वानों में फर्स्ट क्लास,, "सर्व श्रेष्ठ" ऐसा है। प्रथम पैदा होने का नहीं है। अतः इस पाठ का सत्य वेदानुकूल अर्थ इस प्रकार है।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
सब्रह्म विद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय
प्राह॥ १॥

भाषार्थ—ब्रह्म वेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध मुख्य ब्रह्म विद्या के उपदेश द्वारा संसार के ज्ञान रूप जन्म दाता तथा रक्षक ब्रह्मा नामक ऋषि मशहूर हुए। उन्हों ने अथर्वा नामक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का उपदेश किया॥ १॥ ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध और ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा अपने शिष्य वर्ग को जन्म देनेवाला "ब्रह्मा" नामक ऋषि हुआ। और उस ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा के प्रति ब्रह्मविद्या का उपदेश किया। बस इसके विना यहां अवतार का गंध भी नहीं है॥

## वराहावतार

३४ प्रश्न—"वराहेण पृथिवी संविदाना। अथर्व० १२। १। ४८" में वराह सूकर रूपधारी प्रजापति ईश्वर अवतार का वर्णन है। पृ० १६८ पं० १७

उत्तर—इस मंत्र को आप ने पूरा न देकर धोखा किया है। इस पूरे मंत्र को पढ़ने से पता लगता है कि न इसमें कहीं ईश्वर का वर्णन है और न ही उसके अवतार का जिक्र है। अपितु यहां पर पृथिवी मेघ तथा सूर्य्य की विद्या का वर्णन है। केवल वराह शब्द को देखते ही अवतार की कल्पना करनी निर्मूल है। क्योंकि निरुक्त अ० ५ खं० ४ में "वराहो मेघो भवति" वराह नाम मेघ का है, स्पष्ट लिखा है। पूरा मंत्र तथा उसका ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

मल्वं बिभ्रति गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय॥
अ० १२। १। ४८॥

भाषार्थ—धारण सामर्थ्य को और भारी-पन रखने वाले सामर्थ्य को धारण करने वाली, भले और बुरे के समूह को सहने वाली, मेघ के साथ मिली हुई पृथिवी सुखद किरणों वाले गमन शील सूर्य्य के लिये विविध प्रकार प्राप्त होती है॥४८॥

भावार्थ—पृथिवी अपने धारण आकर्षण से सब पदार्थों को अपने पर रखती है। और सूर्य के सन्मुख जल आकाश में चढ़ता और बरसता है। उस पृथिवी को उपयोगी बनाने में मनुष्य प्रयत्न करें। इस से स्पष्ट हो गया कि इस मंत्र में ईश्वर अवतार का लेशमात्र भी वर्णन नहीं है।

३५ प्रश्न—"उधृतासि वराहेण। तैत्ति० अ० १ अनु० १ मं० ३०" में भी ईश्वर के वराह अवतार की पुष्टि की गई है॥ पृ० १६८ पं० २१।

उत्तर—प्रथम तो आप का यह प्रमाण वेद का नहीं है। क्योंकि तैत्तिरीय आरण्यक भी परतः प्रमाण है। दूसरे इस पाठ में भी ईश्वर या ईश्वर के जन्म लेने का लेश मात्र भी ज़िकर नहीं है। क्योंकि आप भी वाराह भगवान के सैकड़ों हाथ तथा उसका काला रंग नहीं मानते। अतः यहां पर भी भूमि का उद्धार करने वाले सैकड़ों शक्तियों से सम्पन्न काले रंग के मेघ का ही वर्णन वेदानुकूल है।

उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शत बाहुना॥

भाषार्थ—इस पृथिवी का वर्षा की सैकड़ों धारा रूप शक्तियों से युक्त काले रंग वाले मेघ समूह ने उद्धार किया है। इसके सिवाय यहाँ पर और अर्थ असंभव है।

(३६) प्रश्न—"इयतीह वा इयमग्रे। शत० १४।१। २।११" में भी वाराह अवतार का वर्णन मौजूद है॥ पृ० १६८ पं० २५

उत्तर—आपको वेद का तो कोई प्रमाण मिलता ही नहीं। यहां पर भी वाराह शब्द को देखते ही शतपथ का प्रमाण दे मारा। श्रीमान जी! इस पाठ में भी न ईश्वर का वर्णन है। और न ही उसके जन्म लेने का प्रतिपादन है। अपि तु यहां भी यज्ञ से वर्षा द्वारा प्रजा का पालन करने वाले पृथिवी के पति मेघ का ही वर्णन है। इस पाठ का अर्थ वेदानुकूल इस प्रकार से है।

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्या स प्रादेश मात्री तामेमूष
इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिरिति॥
(शत० १४। १। २। ११)

भाषार्थ—यह इतनी पृथिवी जो सामने है। यह उस सारी पृथिवी का भाग मात्र है (क्योंकि तीन भाग पृथिवी जलों के नीचे है और एक भाग खाली है) उस का यह मेघ उद्धार करता है। सो मेघ इस का पति तथा प्रजा का पालन करने वाला है। कहिये इससे अवतार कैसे सिद्ध हुआ और आपके वाराहजी ने अवतार लेकर संसार का उपकार क्या किया हमें तो पुराणों में वाराह की कथा इस प्रकार से मिलती है। देखिये—

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा।
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥ २७ ॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्र यथार्णवे।
तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वं विश्वं मनोरहरम् ॥ २८ ॥
दृष्ट्वातदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः।
वाराह रूपी भगवान् कोटि सूर्य्य समप्रभः ॥ २९ ॥

कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्तिं च सुमनोहराम्।
क्रीडाँ चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥ ३० ॥
सुख संभोग संस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी।
विदग्धया विदग्धेन संगमोऽपि सुखप्रदः ॥ ३१ ॥

विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम्।
वर्षांते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम् ॥ ३२ ॥
दाधार पूर्व रूपं हि वाराहं चैव लीलया।
पूजां चकार भक्त्या च ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥ ३३ ॥
बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मंगलः ग्रहः ॥ ३४ ॥

(ब्रह्मवै० प्रकृति० अ० ८)

भाषार्थ—वाराह कल्प में वाराह भगवान् हुए जिनकी पहिले ब्रह्मा ने स्तुति की। हिरण्याक्ष को मारकर रसातल से पृथिवी का उद्धार किया ॥ २७ ॥ उसकी जल में स्थापना की जैसे समुद्र में कमल वहां पर ही ब्रह्मा ने सारा सुन्दर जगत बनाया ॥ २८ ॥ कामातुर उसकी अधिष्ठात्री देवी को देखकर करोड़ सूर्य के समान कान्ति वाले वाराह रूपी कामुक हरि भगवान कामातुर हो गये ॥ २९ ॥ अपनी मूर्ति मनोहर बना कर और भोग योग्य चारपाई तैयार कर के हज़ारों देवताओं के वर्षों तक दिनरात कामक्रीडा की ॥ ३० ॥ वह सुन्दरी आनन्द भोग के स्पर्श से मूर्च्छा को प्राप्त हो गई। चतुर का चतुर के साथ भोग भी सुख दायक होता है ॥ ३१ ॥ विष्णु उस के अंगों के स्पर्श से दिन रात बेहोश पड़े रहे। वर्ष के पीछे चेतनता को प्राप्त होकर कामी विष्णु ने कामुकी को छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ पहिले की भांति ही लीला से वाराह रूप धारण कर लिया और सती धरणी को याद करके उस की पूजा करने लगे ॥ ३३ ॥ उस गर्भ से तेजस्वी मंगल नाम का ग्रह पैदा हुआ ॥

कहने में आप चाहे कितनी बातें कहें किन्तु अवतारों के पुराणों में वर्णित आचरण से तो संसार को कोई धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती।

---

## वामनावतार

(२८) प्रश्न—"इदं विष्णुर्विचक्रमे। यजु० ५।१५" इत्यादि मंत्र में वामन अवतार का वर्णन मौजूद है। पृ० १६९ पं० १५

उत्तर—इस मंत्र में न तो परमेश्वर के जन्म लेने का वर्णन है। और न ही पौराणिक वामनावातार का नाम है। अपितु इस मंत्र में "परमात्मा ने तीन प्रकार के जगत को बना कर आकाश में स्थित कर रक्खा है" यह वर्णन किया गया है। मंत्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है।

इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्।
संमूढमस्य पाश्ँ सुरे स्वाहा॥ यजु० ५। १५॥

भाषार्थ—सब जगत में व्यापक परमेश्वर इस जगत को रचता हुआ, इस प्राप्त करने योग्य जगत् को तीन प्रकार से धारण करता है। इस प्रकाशवान् प्रकाश-रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु, आदि रूप अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत का ग्रहण करता हुआ, इस अच्छे प्रकार विचार करने, कथन करने योग्य दृश्य जगत् को अंतरिक्ष में स्थापित करता है॥ १५॥

कहियेगा इसमें से आपका वामनावतार कैसे सिद्ध होता है!

(३८) प्रश्न—"मध्येवामनमासीनम्" कठ० ५। ३" इस मंत्र में भी ईश्वर के वामनावतार की पुष्टि की है। पृ० १६९ पं० २०।

कठ उपनिषद् स्वतः प्रमाण नहीं अपितु वेदानुकूल होने से प्रमाण हो सकता है। आपने पूरा मंत्र दर्ज नहीं किया, वरना आपको पता लग जाता कि इस मंत्र में न ईश्वर का वर्णन है और न ही ईश्वर के जन्म का प्रतिपादन है। अपितु इस मंत्र में "शरीर में जीवात्मा की स्थिति" कथन की गई है। वामन शब्द के अर्थ "सूक्ष्म" तथा "प्रशंसित ज्ञानवाला" है। इस मन्त्र का पूरा पाठ तथा वेदानुकूल अर्थ इस प्रकार से हैं।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥
( कठ० ५ । ३ )

भाषार्थ—जो जीवात्मा प्राण वायु को ऊपर ले जाता है। और अपान वायु को हृदय देश से नीचे फैंकता है। बीच में ( हृदय में ) स्थित सूक्ष्म परिच्छिन्न ज्ञानी जीवात्मा को सब इन्द्रियाँ सेवन करती हैं ॥ ३ ॥

बतलाइये इसमें कहीं पर ईश्वरावतार की गंध भी है।

(३९) प्रश्न—"वामनोह विष्णुरास" शत० १ । २ । २ । ५ में भी विष्णु के वामनावतार को साबित किया गया है। पृ० १६६ पं० २३।

उत्तर—जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले। आप ने स्वयं ही शतपथ का पाठ देकर बतला दिया कि "वामन नाम विष्णु का है।" चूंकि विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म तथा प्रशंसित ज्ञान वाला है। अतः परमात्मा का नाम वामन है। इस से सिद्ध हुआ कि परमात्मा का ही नाम वामन है, न कि परमात्मा किसी फ़रज़ी वामन रूप को धारण करके लोगों को ठगता फिरता है।

(४०) प्रश्न—इसी प्रकार वेद में समस्त अवतारों का वर्णन है। पृ० १७० पं० १

उत्तर—प्रथम आपने सृष्टि की सारी शकलों को ब्रह्मा की ही शकलें सिद्ध करके सब को अवतार सिद्ध करने का यत्न किया, जोकि निष्फल गया। फिर आपने कहा कि ब्रह्मा के अवतार तो सैंकड़ों होते हैं किन्तु उनमें से दश मुख्य हैं।

फिर जब सिद्ध करने का समय आया तो केवल यक्ष, मत्स्य, ब्रह्मा, वाराह और वामन, इन पांच का ही वर्णन कर सके। उनमें से यक्ष का तो अवतारों में नाम ही नहीं है। रह गये चार। उनमें से भी ब्रह्मा का नाम २४ अवतारों में तो है किन्तु दश विशेष अवतारों में ब्रह्मा का नाम नहीं है। रह गये तीन। उन में से मत्स्यावतार के लिये वेद का कोई मन्त्र पेश नहीं किया जासका। शतपथ का प्रमाण देकर रहगये। अब रहे दो। उन दोनों में से वामनावतार के लिये जो वेद मन्त्र पेश किया है। उस में वामन शब्द ही नहीं है। अपितु विष्णु नाम से व्यापक ब्रह्म का वर्णन है। अब रह गये केवल एक वाराह भगवान्। उन के लिये वेद का एक मन्त्र पेश किया जिस में भी वाराह अवतार का नामो निशान भी नहीं है। अपितु वाराह शब्द से मेघ का वर्णन है। जैसे आपने इन अवतारों का वर्णन वेद से सिद्ध किया, यदि समस्त अवतारों का भी इसी प्रकार का वर्णन वेदों में है तो अवतारों का अल्ला ही बेली है। और अवतार आज नहीं तो कल भी नहीं। और यदि वेद के, प्रकरण शब्द अर्थ संबन्ध को देखे बिना केवल किसी का नाम ही किसी मन्त्र में आने से वह अवतार माना जा सकता हो तो फिर अवतारों की क्या कमी है। इस प्रकार से तो सबही किसी वेद के शब्द पर अपना नाम रखकर सनातन धर्म्म के पूज्य तथा ईश्वर का अवतार बन जावेंगे; जैसे—

(अ) हज़रत ईसा सनातन धर्म के अवतार हुए, क्योंकि "ईशावास्यं यजु० ४०। १" में उनका नाम आता है। जिसका शब्दार्थ ईश्वर है।

(आ) ईसा की माता मर्यम अवतार हुई क्योंकि "मर्यन योषाकृणुते ऋ० १०। ४०। २" में उनका नाम आता है, जिसका शब्दार्थ मनुष्य है।

(इ) कबीर जी भी अवतार हुए क्योंकि "कवि मनीषी यजु० ४०। ८" में उनका नाम आता है जिसका शब्दार्थ सर्वज्ञ है।

(ई) धयापां धानकी भी अवतार हुई क्योंकि "धयापां प्रपीनम् यजु० १७। ८७" में उसका नाम मौजूद है। शब्दार्थ जल पीना है।

(उ) शंभु भंगी भी अवतार हुआ क्योंकि "परिभूःस्वयंभूः यजु० ४०। ८" में उसका नाम आता है। शब्दार्थ नित्य परमात्मा है।

(ऊ) मैं भी सनातन धर्म का अवतार हूँ क्योंकि "मनसा जुष्टा, यजु ४-१७" में मेरा नाम मौजूद है। शब्दार्थ "मन से" है।

(ऋ) मेरी धर्मपत्नी लक्ष्मी भी अवतार हुई क्योंकि "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च यजु० ३१। २२" में उसका नाम आता है। शब्दार्थ ऐश्वर्य है।

(ऋ) मेरा लड़का सत्य भी अवतार हुआ क्योंकि "ऋतं च सत्यं च ऋ० १०। १९०। १" में उसका नाम मौजूद है। शब्दार्थ प्रकृति है।

कहियेगा क्या आप हम सबको ईश्वर का अवतार मान कर हमारी धूपदीप से आरति उतार कर पूजने को तय्यार हैं। यदि नहीं तो साफ शब्दों में तसलीम करो कि वेदों में ईश्वर के जन्म लेने का वर्णन एक भी मन्त्र में नहीं है, अपितु वेद के

सभी मन्त्र ईश्वर को अकाय अजन्मा व्यापक वर्णन करते हैं।

## निराकार

(४१) प्रश्न—मंत्र तथा ब्राह्मण और उपनिषत् भागों में ईश्वर को निराकार भी बतलाया गया है। किंतु जो ग्रन्थ ईश्वर को निराकार बतलाता है। वह साथ में साकार रूप का भी वर्णन कर देता है। पृ० १७० पं० ४।

उत्तर—एक द्रव्य में दो विरुद्ध गुण नहीं रहा करते। अतः ईश्वर में निराकारता तथा साकारता दो विरुद्ध गुणों का मानना न्याय के विरुद्ध है। चारों मूल वेद मंत्रसंहिता ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण हैं। तथा ब्राह्मण और उपनिषद् मनुष्य कृत होने से परतःप्रमाण हैं। चारों वेदों में एक भी मंत्र ऐसा नहीं है। जो ईश्वर को साकार वर्णन करता हो। अपि तु चारों वेद ईश्वर को निराकार सर्वव्यापक तथा अकाय वर्णन करते हैं। ब्राह्मण तथा उपनिषदों में जहां ईश्वर को निराकार वर्णन किया है। वह वेदानुकूल होने से प्रमाण के योग्य है। यदि इन ग्रन्थों में कहीं ईश्वर को साकार वर्णन किया गया हो। तो वह वेद के विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता। यदि कोई ग्रन्थ ईश्वर कोनिराकार तथा साकार भी वर्णन करता हो तो वह ग्रन्थ व्याघात अर्थात् परस्पर विरोध होने के कारण प्रमाण के योग्य नहीं समझा जासकेगा।

(४२) प्रश्न—"स पर्य्यगात् यजु० ४०।८" इस मंत्र में जहाँ "अकायम्" पद से ईश्वर को निराकार वर्णन किया है। वहां पर "परिभूः स्वयंभूः" इन दो पदों से चारों ओर से प्रकट होने

वाला तथा अपने आप शरीर धारण करने वाला" बयान किया है। पृ० १७० पं० १०।

उत्तर—इस मंत्र में एक पद भी ईश्वर को साकार वर्णन करने वाला नहीं है। "परिभूः" का अर्थ है "दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला" तथा "स्वयंभूः" का अर्थ है "अनादि स्वरूप।" इन दोनों पदों के आपके किये हुए अर्थ स्वयं इस मंत्र के पदार्थ से ही विरुद्ध हैं। क्योंकि जो परमात्मा "अकायमस्नाविरम्" "शरीर रहित तथा नाड़ी और नस के बन्धन से रहित" हो। उसके लिये "चारों ओर से प्रकट होने वाला तथा अपने आप शरीर धारण करने वाला" कहना अत्यन्त असंभव तथा असंगत और व्याघात दोष से दूषित है। इस मन्त्र के ठीक-ठीक अर्थ संख्या ३ पर देखने की कृपा करें।

(४३) प्रश्न—जब ईश्वर के शरीर ही नहीं तो फिर यह क्या कहा कि "व्रण शून्य, नस नाड़ी के बन्धन से रहित, शुद्ध, पापशून्य है।" जब शरीर निषेध कर दिया तब तो व्रण, नसनाड़ी और पाप तीनों का ही निषेध हो गया। शरीरधारियों के ही फोड़ा-फुन्सी, नस, नाड़ी और पाप अनुष्ठान होता है। जब शरीर ही नहीं तो फिर व्रणादि का निषेध कैसा। पृ० १७० पं०२०

उत्तर—वेद ने परमात्मा के शरीररहित होने में ये तीन हेतु वर्णन किये हैं। ताकि मनुष्यों को परमात्मा के शरीर रहित होने का निश्चित ज्ञान हो जावे और परमात्मा के शरीर धारण की भ्रांति निवृत्त हो जावे।

(क) "भोगायतनं शरीरम्" शरीर पापों के फल भोगने का ठिकाना है। शरीर को वही धारण करता है। जिस ने

अपने पापों का फल भोगना हो। चूंकि परमात्मा पाप शून्य है अतः वह शरीर को धारण नहीं करता।

(ख) शरीर को वही धारण कर सकता है जो परिच्छिन्न होने के कारण शरीर के अन्दर रहते हुए नाड़ी और नसों के बंधन में फंस कर तादात्मभाव संबंध से शरीर को अपनावे। और इन्द्रियों के द्वारा सांसारिक विषयों का अनुभव करे। चूंकि परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण किसी एक शरीर के अन्दर रह कर नाड़ी और नसों के बन्धन में फंसकर तदात्मभाव सम्बन्ध से किसी शरीर को नहीं अपना सकता इस लिये वह शरीर से रहित है।

(ग) जो शरीर धारण करते हैं उनके शरीर में धातु विकार से फोड़े फुन्सी आदि रोग तथा शरीरधारियों का परस्पर द्वेष संभव होने से युद्धादि में ज़ख़मी होना आवश्यक है। चूंकि परमेश्वर निर्विकार और द्वेष से शून्य है। अतः वह शरीर धारण कर के विकारी और ज़ख़मी नहीं हो सकता।

(४४) प्रश्न—किसी पुरुष ने अपने मित्र से पूछा कि आपके कोई लड़का है। उसने उत्तर दिया कि मेरे कोई लड़का नहीं। और उस लड़के के एक आँख तथा एक हाथ नहीं। इसका क्या मतलब? मतलब यही निकलेगा कि इस पुरुष के निज का लड़का नहीं है। गोद लिया है। और वह काना टोंटा है। यही दशा इस अर्थ में है। पृ० १७० पं० २५

उत्तर—आपका यह दृष्टान्त इस मंत्र के अर्थ के अनुकूल नहीं है। इस मंत्र के अर्थ के अनुकूल तो यह दृष्टान्त हो सकता है कि "वह यज्ञदत्त अविवाहित, निःसन्तान, विरक्त विषय

शून्य ब्रह्मचारी तथा धर्म्मात्मा है" यहाँ पर निःसन्तान, विरक्त तथा विषयशून्य, यह तीनों यज्ञदत्त के अविवाहित होने में हेतु हैं। इन से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यज्ञदत्त रंडीबाज़ है। क्योंकि ब्रह्मचारी तथा धर्मात्मा यह दो विशेषण यज्ञदत्त को रंडीबाज़ सिद्ध होने नहीं देते। इसी प्रकार से ही अव्रणं" "अस्नाविरं" "तथा अपापविद्धं" यह तीनों परमात्मा के "अकायम्" होने में हेतु हैं। इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि परमात्मा का शरीर व्रणशून्य नसनाड़ी रहित तथा पाप-शून्य होता है। क्योंकि सर्वव्यापक सर्वज्ञ नित्य शुद्ध तथा सृष्टिकर्ता विशेषण जो इस मन्त्र में पढ़े हैं। वह ईश्वर को शरीर-धारी साबित होने नहीं देते। और न ही इस प्रकार का कोई वास्तव शरीर व्रण रहित नाड़ी बन्धन शून्य तथा पाप-भोग शून्य होना संभव है। अतः यह कल्पना सर्वथा मिथ्या है। आप का दृष्टान्त तो उलटा हमारे पक्ष को सिद्ध करता है कि "ईश्वर के निज का शरीर तो नहीं है। किन्तु पृथिवी, जल, वायु आदि को लाक्षणिक रूप से ईश्वर का शरीरवत् होने से शरीर कहा जा सकता है। वह वास्तव शरीर न होगा। क्योंकि वास्तव शरीर में तो व्रण नाड़ीबन्धन तथा पाप फल भोग का होना आवश्यक है। अतः यह ईश्वर का लाक्षणिक शरीर है जो इन तीनों बातों से रहित है। कहिये महाराज चौबे जी छब्बे बनने चले थे किंतु दुब्बे ही रह गये वही गत आप की हुई।

(४५) प्रश्न—"चिञ् चयने" धातु से "कायम्" पद बनता है। अर्थ यह है कि "चिनोति सुखदुखादिकं पापपुण्यात्मकं

यस्मिंस्तत्कायम्" "इकट्ठे किये जाते हैं सुख दुख और पाप पुण्य जिसमें उसका नाम काय है"। और ईश्वर कैसा है वह "अकाय" है। उसके शरीर में सुख दुख पाप पुण्यात्मक कर्मबंधन नहीं होता। वह स्वेच्छा तनु है। अपनी इच्छा से शरीर धारण करता है। यह अर्थ "अकायम्" पद का है॥

पृ० १७१ पं० ३॥

उत्तर—आपके लेख से यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर का न तो कोई वास्तव में शरीर है। और न ही वास्तव में काया है। क्योंकि शरीर तो कहते हैं "सुख दुखादि कर्मों का फल भोगने के ठिकाने को" और काया कहते हैं "जिस में सुख दुख पाप पुण्यात्मक इकट्ठे किये जाते हैं" और सुख दुख पाप पुण्यात्मक और उसका भोग कर्मबंधनादि ईश्वर में होता नहीं। इससे सिद्ध है कि ईश्वर शरीर या काया को धारण नहीं करता। तो फिर वह क्या चीज़ है। जिसको वह धारण करता है। यह भी बतलाइये कि वह स्वेच्छा तनु क्या बला है जिसको ईश्वर अपनी इच्छा से धारण करता है। और उस स्वेच्छा तनु का क्या लक्षण है। क्योंकि वह स्वेच्छा तनु वर्तमान मनुष्य पशु पक्षि आदि प्राणियों जैसा तो हो नहीं सकता। क्योंकि यदि ऐसा होगा तो उसमें उपरोक्त शरीर तथा काया के लक्षण आजावेंगे, और उपरोक्त लक्षणों के बिना कोई मनुष्य पशु पक्षी आदि का शरीर नज़र नहीं आता कि जिस में व्रण न हो सके, नस नाड़ी न हों तथा सुखदुखादि पाप पुण्य-कर्मों के फल भोगने का ठिकाना न हो, तो फिर वह स्वेच्छा तनु क्या वस्तु है। आपके लेखानुसार तो राम कृष्णादि भी

अवतार सिद्ध नहीं हो सकते। राम ने वृन्दा के शाप से तथा कृष्ण ने राधा के शाप से कर्म फल भोगने के लिये जन्म लिया (देखो नं० २८) राम मेघनाद के बाण से ज़ख़्मी हो कर मरे। अतः राम और कृष्ण दोनों के शरीर में व्रण, नाड़ी नस बंधन तथा पापकर्म फल भोग मौजूद होने से ये दोनों ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते।

(४६) प्रश्न—इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में "परिभूः" शब्द है। परिभूः शब्द का अर्थ चारों तरफ से प्रकट होने वाला है। जब ईश्वर परिभूः है और वह चारों तरफ से प्रकट होता है, शरीर धारण कर लेता है, फिर यह निराकार कैसे।

पृ० १७१ पं० १३

उत्तर—"परिभूः" शब्द का अर्थ "चारों तरफ से प्रकट होने वाला" नहीं अपितु "दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला" यह अर्थ है। महीधर भी इसका अर्थ "परिभूः परि सर्वेषामुपर्युपरि भवतीति परिभूः" जो सबके अत्यन्त ऊपर विराजमान है उसका नाम परिभूः है अर्थात् सबसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। आपका अर्थ तो स्वयं मंत्र के अकायम् पद के ही विरुद्ध है और आप स्वयं भी मानते हैं कि परमेश्वर शरीर वा काया वास्तव धारण नहीं करता (देखो नं० ४५) हाँ यदि आपका यह अभिप्राय हो कि निमित्त कारण ईश्वर उपादान कारण प्रकृति को कार्य रूप जगत् में प्रकट करता है और यही उसका चारों तरफ से प्रकट होना है। और इस जगत् को ही लाक्षणिक रूप से ईश्वर का शरीरवत् होने से शरीर धारण मानते हों तो कुछ मानने की बात है, वरना ईश्वर का मनुष्य

पशु पक्षी आदि का शरीर धारण करना वेद से सिद्ध नहीं हो सकता।

(४७) प्रश्न— परिभूः के पश्चात् ईश्वर को "स्वयंभूः" लिखा है। इसका अर्थ है "स्वयं भवतीति स्वयंभूः" जो अपने आप शरीर धारण करे। जब वह अपने आप शरीर धारण करता है तो फिर उसको निराकार कौन कहेगा। पृ० १७१ पं० १६।

उत्तर—स्वयंभूः का अर्थ स्वयं शरीर धारण करने वाला नहीं अपितु स्वयंभूः का अर्थ अनादि स्वरूप है। इसका अर्थ महीधर भी हमारे अनुकूल ही करते हैं। "स्वयमेव भवतीति स्वयंभूः सनित्य ईश्वरः" जो अपने आप ही हो अर्थात् नित्य ईश्वर स्वयंभूः का अर्थ है यही अर्थ भविष्य पुराण में भी किया गया है।

नोत्पद्यत्त्वादपूर्ववत्त्वात् स्वयंभूरिति विश्रुतः॥

भविष्य० ब्राह्म० १ अ० ७७ श्ल० १५

भावार्थ—चूंकि परमात्मा कभी उत्पन्न नहीं होता तथा अनादि है। इसलिए परमात्मा को स्वयंभूः कहते हैं॥१५॥

आपका अर्थ तो स्वयं मन्त्र के अकायम् पद के ही विरुद्ध है। हाँ यदि आप लाक्षणिक रूप से जगत् के पैदा करने को ही शरीर धारण करना मानते हों तो दूसरी बात है। परन्तु ईश्वर का मनुष्य पशु पक्षी आदि का शरीर धारण करना तीन काल में भी स्वयंभूः पद से सिद्ध नहीं हो सकता।

(४८) प्रश्न —स्वयंभूः शब्द के ऊपर "ततः स्वयंभूर्भगवान्" मनु० १। ६ में मनु जी भी भगवान् को प्रकट होने वाला लिखते हैं। पृ० १७१ पं० १६।

उत्तर—इसमें परमात्मा के प्रकट होने का यही अर्थ है कि निमित्त कारण परमात्मा उपादान कारण प्रकृति से कार्य रूप जगत् बना कर प्रसिद्ध हुआ। पूरा अर्थ देखो ( नं० ३२)

(४६) प्रश्न—इस मन्त्र का महीधर भाष्य भी हमारे पक्ष की पुष्टि करता है। यथा—

योऽयमतीत मन्त्रोक्त आत्मा स पर्य्यगात् परितः सर्वत्र गच्छति नभोवत्सर्वव्याप्नोति। व्याप्य च शाश्वतीभ्यो नित्याभ्यः समाभ्यः संवत्सराख्येभ्यः प्रजापतिभ्यो याथातथ्यतः यथा भूतकर्म फलसाधनतः अर्थात् कर्तव्यपदार्थान व्यदधात्। यथानुरूपं व्यभजदित्यर्थः। सकीदृशः। शुक्रमित्यादि विशेषणानिलिङ्ग व्यत्ययेन पुंल्लिंगे नेतव्यानि। शुक्रः शुद्धो दीप्तिमान्। अकायो अशरीरः। लिंगशरीरवर्जित इत्यर्थः। अव्रणो ऽक्षतः। अस्नाविरः शिरारहितः। अव्रणोऽस्नाविर इति विशेषणद्धयेन स्थूल शरीर प्रतिषेधः। शुद्धोनिर्मलः। अपाप विद्धोऽधर्म्मादिवर्जितः। कविः सर्वदृक् "नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ।" इति श्रुतेः। मनीषी मनस ईषिता सर्वज्ञः। परिभूः। परि सर्वेषामुपर्युपरि भवतीति परिभूः। स्वयंभूः स्वयमेव भवतीति येषामुपरिभवति यश्चोपरि भवति स स्वयमेव भवतीति स्वयंभूः। स नित्य ईश्वरः सर्वं कृतवानित्यर्थः॥ ४०। ८॥

भावार्थ—जो यह पिछले मंत्र में कहा परमात्मा वह आकाशवत् सर्व व्यापक है। और सर्व व्यापक होकर नित्य प्रजापतियों के लिये जीवों के प्रति यथायोग्य कर्म फल साधन से करने योग्य पदार्थों को बनाता है। यथानुरूप विभाग कर दिया यह मतलब है। वह कैसा है। शुद्ध दीप्तिमान् शरीर से रहित। लिंग शरीर

से रहित यह अर्थ है। घाव शून्य नाडी नस रहित। घावरहित, नाड़ी शून्य इन दो विशेषणों से स्थूल शरीर का निषेध है। निर्मल अधर्म्म से रहित। सर्व दर्शी। मनीषी सर्वज्ञ। ऊपर ऊपर विराजमान्। नित्य ईश्वर ने सब कुछ बनाया यह अर्थ है।

(५०) प्रश्न—इस एक मन्त्र को छोड़ कर चारों वेदों में कोई दूसरा ऐसा मन्त्र नहीं है। जो ईश्वर को निराकार कहता हो। पृ० १७१ पं० २७

उत्तर—वेदों में ईश्वर को निराकार अजन्मा वर्णन करने वाले "न तस्य प्रतिमास्ति यजु ३२। ३" सजायते प्रथमः ऋ० ४। १। ११" "सर्वेनिमेषा जज्ञिरे यजु ३२। २" "अन्तरिच्छन्ति ऋ० ८। ७२। ३" "सपर्य्यगात् यजु ४०। ८" "अपादिन्द्रो ऋ० ८। ६९। ११" "अजोन क्षमां ऋ० १। ६७। ३" उतनो-ऽहिर्बुध्न्य ऋ० ६। ५०। १४" आदि आदि हज़ारों मन्त्र भरे पड़े हैं। किंतु समस्त वेदों में एक मन्त्र भी ऐसा नहीं है जो ईश्वर को साकार अथवा जन्म धारण करने वाला वर्णन करता हो। यदि हिम्मत हो तो निकाल कर दिखाओ।

(५१) प्रश्न—दुर्जनतोष न्याय से हम यह भी मान लें कि इस मन्त्र में ईश्वर को निराकार कहा है। इतने से भी तो ईश्वर केवल निराकार सिद्ध नहीं होता। क्योंकि "ब्रह्म ह देवेभ्यः १" "मनवे ह वै २" "ब्रह्मा देवानाम् ३" "उद्धृताऽसिवराहेण ४" "इयतो हवा ५" मध्ये वामनम् ६" वामनो ह विष्णुः ७" "तदे-वाग्निः ८" "पुरुषएव इदं ९" एषो ह देवः १०" "प्रजापति-श्चरति ११" "ब्रह्मज्येष्ठा १२" "वराहेण पृथिवी १३" "इदं

विष्णुः १४" प्रभृति प्रमाणों से जो वेद ने ईश्वर को साकार बतलाया है। क्या इन वेद के प्रमाणों को कोई मनुष्य दबा-लेगा। पृ० १७२ पं० २।

उत्तर—दबाने की क्या ज़रूरत है, जबकि इन प्रमाणों से ईश्वर का साकार होना सिद्ध ही नहीं होता। प्रथम के ७ प्रमाण तो आपने जनता को भ्रम में डालने के लिये वेद के नाम से ज़ाली दिये हैं। क्योंकि ये प्रमाण वेद के नहीं हैं। अपितु ब्राह्मण तथा उपनिषदों के हैं। ब्राह्मण तथा उपनिषदों के प्रमाण वहां तक ही मानने योग्य हैं जहां तक वे वेदानुकूल हों। वेद से विरुद्ध होने पर वे प्रमाण नहीं माने जा सकते। तथापि इन समस्त प्रमाणों में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं है जो ईश्वर को साकार या अवतार धारण करने वाला वर्णन करता हो। इन समस्त प्रमाणों के विषय में अपने २ स्थान में विस्तार पूर्वक लिख दिया है वहां पर देखने की कृपा करें।

(५२) प्रश्न—उपनिषदों में ईश्वर को निराकार प्रतिपादन किया है। साथ ही साथ परमात्मा को साकार भी बतला दिया है। पृ० १७२ पं० १२।

उत्तर—वेदों में ईश्वर को निराकार ही वर्णन किया है। उपनिषदों के जो प्रमाण ईश्वर को निराकार वर्णन करते हैं; वे वेदानुकूल होने से प्रमाण माने जावेंगे। यदि उपनिषदों का कोई प्रमाण ईश्वर को साकार वर्णन करता होगा तो वह वेद विरुद्ध होने से प्रमाण न माना जा सकेगा। क्योंकि उपनिषदें परतः प्रमाण हैं।

(५३) प्रश्न—

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहत् ॥ १७ ॥
अपाणि पादो जवनो ग्रहीता ।
पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः ॥ १८ ॥
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १९ ॥

( श्वेताश्वेतर० अ० ३ )

भाषार्थ—सब इन्द्रियों के विषयों को प्रकाश देने वाला समस्त इन्द्रिय-रहित सब का प्रभु स्वामी सबका रक्षक सब से बड़ा ईश्वर है ॥१७॥ ईश्वर के हाथ और पैर नहीं, किंतु बिना पैर के चलता है। और बिना हाथ के पकड़ता है। ईश्वर के नेत्र नहीं किंतु वह देखता है। कान नहीं सुनता है। वह समस्त जानने योग्य पदार्थों को जानता है। किन्तु उस ईश्वर का जानने वाला कोई नहीं। उस को अग्र सब से प्रथम वर्तमान पुराण पुरुष कहते हैं ॥ १९ ॥

इन दो श्रुतियों से निराकार सिद्ध करना कुछ बहुत बड़ी बुराई नहीं है। पृ० १७२ पं० १८।

उत्तर—उपनिषत् के मंत्रों का नाम श्रुति नहीं। श्रुति केवल वेद के लिये ही कहा जा सकता है। इन प्रमाणों से ईश्वर निराकार सिद्ध करना उत्तम गुण है, और उपनिषत् के ये प्रमाण वेदानुकूल होने से मानने के क़ाबिल हैं।

(५४) प्रश्न—बुराई तो यह है कि इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् में "एषो देवः २।१६" की श्रुति को जो ईश्वर का अव-

तार होना सिद्ध करती है। उसको छिपा लिया जाता है।

पृ० १७३ पं० ६।

उत्तर—न ही उपनिषद् का यह प्रमाण अवतार होना सिद्ध करता है। और न ही इसे छिपाने की आवश्यकता है, क्योंकि उपनिषद् में आया हुआ यजु० ३२।४ का मंत्र ईश्वर को सर्वव्यापक तथा निराकार वर्णन करता है। पूरा मंत्र तथा ठीक अर्थ देखो ( नं० २५ )।

(५५) प्रश्न—

यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रमचक्षुः
श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यंविभुं
सर्वं गतं सुसूक्ष्मं तदव्ययम्
तद् भूतयोनिं परिपश्यन्तिधीराः ॥६॥मुण्डक० १।६॥

भाषार्थ—जो ईश्वर अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, वर्ण रहित है, जिसके चक्षु नहीं, जिसके कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, नित्य है, विभु है, सर्व व्यापक है, जो सूक्ष्म है, जो अव्यय है, समस्त भूतों का योनि है। उसको धीर पुरुष देखते हैं। निराकार विषय में इस का प्रमाण देना न्याय है।

पृ० १७३ पं० १८।

उत्तर—ठीक है मुण्डकोपनिषत् का यह लेख वेदानुकूल होने से प्रमाण है।

(५६) प्रश्न—किंतु अन्याय यह है कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव" यह मुण्डक की श्रुति जो ईश्वर को साकार बतलाती है। इसको छिपा लिया जाता है। पृ० १७३ पं० २७।

उत्तर--इस मंत्र में ईश्वर का ज़िकर ही नहीं है। अपितु

ब्रह्मा नाम वाले ऋषि का वर्णन है। पूरापाठ तथा ठीक अर्थ देखो ( नं० ३३ )।

(५७) प्रश्न—जो लोग यह कहते हैं कि हम वेद को स्वतः प्रमाण और उपनिषदों को वेदानुकूल होने पर प्रमाण मानते हैं। वे ही वेद में आई हुई "एषोह देवः" श्रुति को छिपाते हैं और जो "सर्वेन्द्रियगुणाभासम्" तथा "अपाणिपादः" श्रुतियाँ वेद में नहीं आई उनको स्वतः प्रमाण मानते हैं।

पृ० १७३ पं० १२।

उत्तर—हम लोग "सर्वेन्द्रियगुणाभासम्" तथा "अपाणिपादः" इन उपनिषद के मंत्रों को स्वतः प्रमाण नहीं मानते। अपितु "सपर्य्यगात्" इस वेद मंत्र के अनुकूल होने के कारण प्रमाण मानते हैं। और न ही हम "एषो ह देवः" प्रमाण को छिपाते हैं। जब आप स्वयं मानते हैं कि यह मंत्र यजुर्वेद का है। तो फिर आप स्वामी दयानन्दजी के यजुर्वेद भाष्य में देखें। इस पर भाष्य किया है या नहीं। यदि किया है तो फिर आपका यह कहना कि इस श्रुति को छिपाते हैं, सर्वथा मिथ्या और भ्रमोत्पादक है।

(५८) प्रश्न—ईश्वर के विषय में वेद का अभिप्राय यह है, कि वह प्रलय काल में अरूप रहता है। वह अरूप ब्रह्म इच्छा शून्य अविज्ञेय, अनिर्वचनीय है। किंतु इस ब्रह्म का अंश मायिक ब्रह्म कहलाता है। उसमें इच्छा होती है, वहाँ संसार को अपने शरीर से उत्पन्न करता है। पृ० १७४ पं० ५।

उत्तर—आप वेद का नाम लेकर अपने कपोल कल्पित अभिप्राय को प्रकट कर रहे हैं। वरना आपके इस अभिप्राय

का एक वेद मन्त्र ने भी अनुमोदन नहीं किया। वह सनातन ब्रह्म सदा एक रस निर्विकार है। काल भेद से उस में तबदीली नहीं होती। क्योंकि परिणामी पदार्थ नित्य नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म सदा ही व्यापक निराकार निर्विकार और रूप रहित है यह माया क्या वस्तु है, ब्रह्म से भिन्न पदार्थ है। या माया अर्थात् अविद्या ब्रह्म का ही गुण है। यदि भिन्न पदार्थ है तो आपने माया कहा हमने प्रकृति कह दिया। भेद क्या पड़ा। और यदि यह अविद्या ब्रह्म का ही गुण है। तो वह ब्रह्म अज्ञानी होकर ब्रह्म कहाने के योग्य न रहेगा। कोई गुण किसी पदार्थ के एक अंश में नहीं रहा करता। और न ही ईश्वर में अंशांशी भाव होसकता है। क्योंकि वह अनन्त है। जब ब्रह्म इच्छा शून्य आप लिख रहे हैं। तो फिर वह इच्छा आई कहां से। क्या अभाव से भाव हो गया? यदि ब्रह्म ने अपने शरीर से जगत् को रचा है तो जगत में ब्रह्म के गुण क्यों नहीं। अतः आपकी समस्त कल्पना वेदविरुद्ध और मिथ्या है। वास्तव में निमित्त कारण ब्रह्म ने साधारण कारण जीवों के लिये उपादान कारण प्रकृति से जगत् को बनाया। यही सिद्धान्त वेदानुकूल और सत्य है।

(५९) प्रश्न—जिस प्रकार मिट्टी से घट और लोहे से कुल्हाड़ी सुवर्ण से कटक अंगूठी बनती हैं। उसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से बनता है। जैसे घट मिट्टी से और कुल्हाड़ी लोहे से तथा कड़े अंगूठी सोने से भिन्न नहीं हैं। ऐसे ही यह संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जितनी शकलें छोटी बड़ी, लम्बी-चौड़ी, संसार में दीख रही हैं, ये सब ब्रह्म की शकलें हैं। पृ० १७४ पं० ८

उत्तर—जसे घट में मिट्टी के, कुल्हाड़ा में लोहे के, कटक तथा अंगूठी में सोने के गुण वर्तमान हैं। वैसे ही इस समस्त संसार में ब्रह्म के चैतन्य सर्वज्ञता आदि गुण क्यों वर्तमान नहीं हैं। अतः इस संसार का उपादान कारण ब्रह्म नहीं अपितु प्रकृति है। हां व्याप्य व्यापक भाव से सारा ही संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। स्वरूप से भिन्न है। ये जितनी शकलें नज़र आरही हैं सब प्रकृति की हैं ब्रह्म की नहीं हैं।

(६०) प्रश्न—इस अभिप्राय को लेकर वेद ने व्यापकत्व और सर्व स्वरूपत्व दो भेदों से प्रजापति को साकार बतलाया। संसार में ईश्वर अनेक रूप धारण कर के आता है। इसी को अवतार कहते हैं। पृ० १.४ पं १२।

उत्तर—वेद का कोई मन्त्र आप ईश्वर को साकार सिद्ध करने में पेश नहीं कर सके। व्याप्य के साकार होने से व्यापक साकार नहीं बनता। संसार का केवल एक ब्रह्म ही "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" नहीं है अपितु ईश्वर जीव प्रकृति, संसार के तीन अनादि कारण हैं। ईश्वर अजन्मा शरीर रहित है, वह कभी जन्म मरण में नहीं आता।

(६१) प्रश्न—किंतु ब्रह्माण्डों से बाहर जो ब्रह्म है। वह अब भी अरूप है इस कारण से वेद ने प्रजापति को रूप रहित ( निराकार ) और रूपवान् (साकार) दो प्रकार का बतलाया है। पृ० ७४ पं० १८।

उत्तर—ईश्वर इस जगत् के अन्दर और बाहर एक रस निर्विकार, व्यापक, निराकार रूप रहित सदा से वर्तमान है। वेद का एक मन्त्र भी आप ब्रह्म के दो रूप होने में पेश नहीं

कर सके। आपने जो शतपथ तथा वृहदारण्यक के दो प्रमाण दिये हैं। उन में से एक में यज्ञ के तथा दूसरे में प्रकृति के दो दो रूप वर्णन किये हैं, ब्रह्म के नहीं। अतः सिद्ध हुआ कि वेद ईश्वर को अजन्मा निर्विकार निराकार वर्णन करता है। जन्म धारण करने वाला विकार तथा साकार वर्णन नहीं करता। क्योंकि जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण, जगत् की उत्पत्तिस्थिति प्रलय करता है उस के सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला उस अनन्त गुण कर्म स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिए जन्म-मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है। और जो कोई कहे कि भक्तजन ईश्वर की आज्ञा अनुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस, रावण आदि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं। जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो ईश्वर के सदृश कोई न है न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता, जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया। वा मुट्ठी में धर लिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता। क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से

उसका आना-जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था ? जो कहीं से आया, और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला। ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्या हीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इस लिये परमेश्वर का आना-जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता, और ईश्वर साकार भी नहीं है। क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते, क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं। तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, और रोग, दोष, छेदन भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनाने हारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता। किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है। अच्छा भला यह तो बतलाने की कृपा करें कि एक ही समय में अनेक अवतारों की क्या ज़रूरत थी। ब्रह्मा विष्णु महादेव तीनों अवतार एक ही समय में हुए। कृष्ण बलराम तथा अर्जुन एक ही समय में, राम और परशुराम एक ही समय में। फिर अवतार की अवतार से लड़ाई। राम और

परशुराम तथा विष्णु और शिव तथा ब्रह्मा और शिव की लड़ाइयाँ प्रसिद्ध हैं। और यह भी बतावें अवतारों में विशेषता क्या थी। राम कौशल्या के गर्भ से, तो कृष्ण देवकी के गर्भ से पैदा हुए। कृष्ण भील के तीर से मरे तो राम ने सरयू में प्राण त्यागे। कृष्ण के शरीर को चिता में जलाया गया। राम को सुग्रीव तथा बाली में पहिचान न हुई, जटायु के बिना सीता के ले जानेवाले का पता न लगा। हनुमान के बिना सीता का पता न लगा। रोते रहे, ढूँढते फिरे। कृष्ण जरासंध से डरते द्वारका गये। द्यूत का पता न लगा। इत्यादि इनसानों के लक्षण हैं या परमेश्वर के? अतः सिद्ध हुआ कि राम कृष्णादि मनुष्य थे, परमेश्वर न थे।

---

## अवतारवाद और स्वामी दयानंद

(६२) प्रश्न—

यथेमांवाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्याञ्शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय। इत्यादि यजु० २६।२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवकादि (च) और (अरणाय) उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अंत्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमां) इस प्रकट की हुई (कल्याणीं) सुख देनेवाली (वाचम्) चारों वेद रूप वाणी का

(आवदानि) उपदेश करता हूँ। वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। इत्यादि—

## (स्वामी दयानन्दकृत भाष्य)

इस मंत्र के भाष्य में स्वामी जी ने ईश्वर के स्त्री तथा नौकरों का होना तथा उनका वेद पढ़ना लिखा है। जब ईश्वर के स्त्री है, तो ईश्वर का अवतार लेना तथा साकार होना स्पष्ट है। क्योंकि निराकार के स्त्री तथा नौकर नहीं हो सकते।

पृ० २ पं० ३।

उत्तर—यहाँ पर स्त्री शब्द पत्नी (बीवी) अर्थों में नहीं है अपितु परमात्मा की प्रजा में जो स्त्री जाति (औरतें) हैं उनके लिये प्रयुक्त किया गया है। और सेवक शब्द नौकर के अर्थों में नहीं, अपितु परमात्मा के भक्त उपासक के अर्थों में आया है। संसार की समस्त औरतें और मर्द परमात्मा की प्रजा होने से परमात्मा का (स्व) अर्थात् (मिलकियत) और परमात्मा उन सब का (स्वामी) अर्थात् (मालिक है) यद्यपि परमात्मा का स्व संसार की समस्त वस्तुएँ तथा सारे ही प्राणी हैं। तथापि यहाँ पर वेदवाणी का प्रकरण होने से पाँच तत्त्व और मनुष्य से भिन्न प्राणियों का ग्रहण नहीं किया। क्योंकि वेद का प्रकाश केवल मनुष्यों के लिये ही है। मनुष्य जाति के दो भेद हैं स्त्री और पुरुष। अतः परमात्मा ने (स्वाय) शब्द से वेद के अधिकारी अपनी प्रजा स्त्री सेवकादि सब का वर्णन कर दिया। अतः निम्न कारणों से यहाँ स्त्री का अर्थ पत्नी नहीं है।

(क) परमात्मा को वेद ने अकाय कहा है, शरीर रहित की पत्नी नहीं हो सकती।

(ख) स्वामी दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में अवतार का बलपूर्वक खंडन किया है। अतः उनके भाष्य से अवतार सिद्ध करने का यत्न वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध अनधिकार चेष्टा है।

(ग) स्त्री शब्द का अर्थ सर्वत्र पत्नी नहीं है; जैसे—

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ॥ मनु० २।३३॥

स्त्रियों का नाम सुख से उच्चारण करने योग्य, क्रूरतारहित, सुन्दर तथा स्पष्ट अर्थों वाला हो। यहाँ ११ दिन की आयुवाली को स्त्री कहा है। यह श्लोक नामकरण संस्कार का विधायक है। क्या यहाँ पत्नी अर्थ संभव है?

अमन्त्रिकातु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ॥ मनु० २।६६॥

स्त्रियों के जातकर्मादि संपूर्ण संस्कार बिना विचारे ही कर देने चाहिये इत्यादि अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, जहाँ स्त्री शब्द पत्नी का वाचक नहीं अपितु स्त्रीजाति (औरत) का वाची है।

(घ) योग्यता के विरुद्ध होने से यहाँ स्त्री शब्द पत्नी वाची नहीं, जैसे महाभारत में जब कृष्णजी संधि वार्तार्थ जाने लगे तो द्रौपदी ने रोते हुए कहा कि संधि के समय मेरे अपमान को याद रखना। तब—

तामुवाचमहाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन्।
अचिरात् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ॥
॥महा० उद्योग० अ० ८१ श्लो० ४४॥

महाभुज कृष्ण ने शान्त करते हुए द्रौपदी से कहा—हे कृष्णे! तू भारत की स्त्रियों को शीघ्र ही रोती हुई देखेगी।४४॥

यहाँ पर कृष्ण का संकेत कौरवों की स्त्रियों की तरफ़ है। तो क्या कौरवों की सब स्त्रियाँ भरत को पत्नियाँ थीं। हरगिज़ भी नहीं। क्योंकि भरत कौरवों के वंश का आदि पुरुष तथा जिस को मरे हुए सैंकड़ों वर्ष हो चुके थे। योग्यता के अनुसार जैसे यहाँ पर "भरत की स्त्रियों" से अभिप्राय "भरतवंश की स्त्रियाँ" लिया जायगा। वैसे ही "ईश्वर के स्त्री, सेवक आदि" से ईश्वर की प्रजा में स्त्री सेवक आदि" अभिप्राय लिया जायगा। इससे ईश्वर का अवतार तथा साकार होना सिद्ध नहीं हो सकता। अतः वेदप्रतिपादित ईश्वर में पत्नी कल्पना तथा अवतार भ्रान्ति तो निरर्थक ही है। हाँ पौराणिक ईश्वर के पत्नियों की सेना अवश्य वर्णन की गई है। जैसे—

(अ) आपने अपनी पुस्तक के पृ० १९३ पं० २२ में ईश्वर के दो स्त्रियाँ बतलाई हैं।

(आ) साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टःपरमलंपटः ॥६१॥
आगत्य मथुरांकुब्जां जघान मैथुनेनच ॥६२॥
वृषभानुसुता राधा सुदाम्नः शापकारणात् ॥८६॥
त्रिंशत्कोटिं च गोपीनां गृहीत्वा भर्तुराज्ञया।
पुण्यं च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगाम सा ॥८७॥
ताभिः सार्धं स रेमे च पत्नीभिर्मुदान्वितः।
पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥८८॥

ब्रह्म वै० कृष्ण० ४ उ० अ० ११५

भावार्थ—कृष्ण जो गोपियों के साक्षात् यार दुष्ट तथा अतिलंपट थे॥ ६१॥ मथुरा में आकर कुब्जा को मैथुन से मार डाला॥ ६२॥ वृषभान की पुत्री राधा सुदामा के शाप से

॥ ८६ ॥ पति की आज्ञा से तीस करोड़ गोपियां को साथ में लेकर गोलोक से पवित्र भारतवर्ष में आई ॥ ८७ ॥ वह कृष्ण जी उन अपनी पत्नियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रमण करते रहे । स्वयं ब्रह्मा ने पुरोहित बन कर राधा का पाणिग्रहण कृष्ण को करवाया ॥ ८८ ॥ इत्यादि अनेक प्रमाण पौराणिक ईश्वर के विषय में मिल सकते हैं । हम विस्तार भय से इतने पर ही बस करते हैं । तीस करोड़ पत्नियों के साथ काम क्रीड़ा से रमण तो करे पौराणिकों का सोलह-कला संपूर्ण ईश्वरावतार कृष्ण, तथा अवतार धारण करने और साकार होने का कलंक लगाया जावे वैदिक निराकार अजन्मा सर्वव्यापक ईश्वर पर, यह कहाँ का न्याय है ।

(६३) प्रश्न—स्वामी जी ने आर्य्याभिविनय में नं० ४४ पर "योविश्वस्य जगतः ऋ० १ । ७ । १२ । ५" मंत्र का भाष्य करते हुए "सख्याय हवामहे" इन पदों का यह अर्थ किया है कि "परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्-गद हो के बुलावें" चूंकि बुलाना तथा मित्र बनाना साकार का ही हो सकता है । निराकार का नहीं । इससे ईश्वर का अवतार लेना तथा साकार होना साफ साबित है । पृ० ३ पं० २४

उत्तर—यहाँ पर "बुलावें" के अर्थ दूर देश से बुलाने के नहीं हैं । अपितु "संबोधित करें" "पुकारें" अर्थात ईश्वर को अपनी तरफ "मुख़ातिब" करें । अपने हृदय से परमेश्वर को "मित्रता के लिये स्वीकार करें" ऐसा अर्थ है । इस में निम्नलिखित प्रमाणों पर ध्यान देने की कृपा करें ।

(क) इस मंत्र में ही आरम्भ में यह लेख मौजूद है कि

"जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और (प्राणतः) चेतनावाले जगत का (पतिः) अधिष्ठाता और पालक है।" अधिष्ठाता के अर्थ हैं आधार सहारा। जो सारे जगत् का सहारा होगा उसे एक देशी समझ कर बुलाना इस मंत्रार्थ के ही अनुकूल नहीं है। क्योंकि सर्वव्यापक हो सारे जगत का सहारा हो सकता है। परमात्मा को सारे जगत में व्यापक वर्णन करने वाले के अर्थ में से "बुलावें" के अर्थ दूर देश से बुलाना संगत ही नहीं हो सकते।

(ख) स्वामी जी ने इसी मंत्र के अर्थ अपने ऋग्वेद भाष्य में करते हुए इन पदों के अर्थ इस प्रकार से किये हैं।

संस्कृतभाष्य—( सख्याय ) सख्युः कर्मणे भावायवा ( हवामहे ) स्वीकुर्महे।

भाषार्थ—( सख्याय ) मित्रपन के लिये ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ( स्वामी जी का भाष्य पृ० ५८६ )

इस से साफ साबित है कि स्वामी जी का अभिप्राय "बुलावें" शब्द से दूर देश से बुलाने का नहीं अपितु स्वीकार करने का है। अतः इससे ईश्वर का अवतार तथा साकार होना सिद्ध नहीं हो सकता। हां यदि आप के ईश्वर को बुलाने उस के आने जाने आदि के दृश्य देखना स्वीकार हैं, तो वह पुराणों से आपको भली भांति दिखाये जा सकते हैं। देखिये ब्रह्म वैवर्त पुराण में कुब्जा की ईश्वर भक्ति का वर्णन इस प्रकार से है।

कर्मणा मनसा वाचा चिंतयंति हरेः पदम्।
हरेरागमनं चापि मुखचन्द्रं मनोहरम्॥ ३५॥

जगत् कृष्णमयं शश्वत्पश्यन्ती कामुकी मुने ।
कोटि कंदर्प लीलाभं काम सक्तं च कामुकम् ॥ ३६ ॥
निद्रां च लेभे सा कुब्जा निद्रेशोऽपि ययौ मुदा ॥ ५३ ॥
बोधयामास तां कृष्णो नदासीश्चापि निद्रिताः ॥ ५५ ॥
त्यज निद्रां महाभागे शृंगारं देहि सुन्दरी ॥ ५६ ॥
इत्युक्त्वा श्री निवासश्च कृत्वा तामेव वक्षसि ।
नग्नां चकार शृंगारं चुम्बनं चापि कामुकीम् ॥ ५९ ॥
सा सस्मिता च श्रीकृष्णं नवसंगमलज्जिता ।
चुचुम्बे गण्डे करोडे तां चकार कमलां यथा ॥ ६० ॥
सुरते विरतिर्नास्ति दम्पति रतिपण्डितौ ।
नानाप्रकारसुरतं बभूव तत्र नारद ॥ ६१ ॥
स्तनश्रोणि युग्म तस्या वीक्षितं च चकार ह ।
भगवान्नखरैस्तीक्ष्णैर्दशनैरधरंवरम् ॥ ६२ ॥
निशावसानसमये वीर्याधानं चकार सः ।
सुख संभोग भोगेन मूर्च्छामाप च सुन्दरी ॥ ६३ ॥
भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम् ।
जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नंदनंदनः ॥ ६९ ॥

॥ ब्रह्म वै० कृष्ण जन्म० अ० ७२ ॥

भाषार्थ—कुब्जा मन वाणी कर्म से हरि अर्थात् कृष्ण के पैरों मनोहर चंद्र समान मुख तथा कृष्ण के आने का विचार करने लगी ॥ ३५ ॥ और करोड़ कामदेव के समान शोभायमान, काम में आसक्त, कामी कृष्ण को याद करते हुए उस कामुकी को निरंतर सारा जगत् कृष्णमय नज़र आता था ॥३६॥ वह कुब्जा सो गई और निद्रा के स्वामी कृष्ण भी वहां प्रस-

न्नता से गये ॥ ५३ ॥ कृष्ण ने कुब्जा को जगा लिया। सोई हुई दासियों को नहीं जगाया ॥ ५५ ॥ हे सुन्दरी महाभाग्यवाली ! निद्रा को छोड़, शृंगार दान कर ॥ ५६ ॥ यह कहकर श्रीकृष्ण ने कुब्जा को बग़ल में लेकर चुंबन किया। और उस कामुकी को नंगा करके भोग करना आरंभ किया ॥५६॥ वह नये संगम से लज्जित हुई मुस्करा कर कृष्ण को नंगा करके चुंबन करने लगी। तब कृष्ण ने उसका कपोल चूम कर उसे लक्ष्मी की भांति गोद में ले लिया ॥६०॥ चूकि दोनों का जोड़ा काम भोग करने में चतुर था इसलिये काम भोग का अंत ही न आता था। हे नारद ! वहां नाना प्रकार से काम भोग किया गया ॥६१॥ भगवान कृष्ण ने उस के स्तन युगल को तेज़ नाखूनों से ज़ख़मी कर दिया और दांतों से होंठों को काट खाया ॥ ६२ ॥ उस कृष्ण ने रात के अखीर में वीर्याधान कर दिया। सुख संभोग के भोग से वह सुन्दरी मूर्च्छित हो गई ॥ ६३ ॥ भगवान् कृष्ण भी वहां थोडी देर ठहर कर अपने मकान को चले गये जहां पर नन्दजी आनंदपूर्वक ठहरे हुए थे ॥ ६९ ॥

आशा है अब भगवान् के याद करने, भगवान् के आने, और भक्त का उद्धार कर के वापस जाने के इस विचित्र दृश्य से आप अवश्य ही प्रसन्न हो गये होंगे।

(६४) प्रश्न--स्वामी दयानन्द जी ने आर्याभिविनय में मन्त्र नं० ४९ पर ( मा नोवधीरिन्द्र इत्यादि ऋ० १ । ७ । १६ । ८) में भाष्य करते हुए "मानःप्रिया भोजनानि प्रमोषीः" का अर्थ किया है कि "हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चुरवावै"। पदार्थों की चोरी करना बिना शरीरधारी के हो

नहीं सकता। इससे साबित है कि ईश्वर अवतार लेता है और वह साकार है। पृ० ४ पं० १८।

उत्तर—यहाँ पर "मत चोरे और मत चुरवावै" का अर्थ वह नहीं है जो कि प्रचलित भाषा में प्रसिद्ध है। अपितु इसका अर्थ यह है कि हे ईश्वर आप हमारे प्रिय भोगों को हमारे से पृथक् न करें तथा उनकी रक्षा करें इस बारे में हम निम्नलिखित प्रमाण पेश करते हैं।

(क) आर्याभिविनय में स्वामी जी ने इस मन्त्र के अर्थ करते हुए आख़ीर में अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये साफ लिख दिया है कि "अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो" इससे सिद्ध है कि "मत चोरे और मत चुरवावै" से स्वामी जी का अभिप्राय "यथावत् रक्षा करो और करावो" यही है, अन्यथा नहीं है।

(ख) स्वामी जी का पत्र-व्यवहार प्रथम भाग जो कि पं० भगवद्दत्त जी ने छपवाया है। उसके पृ० ५३ पर स्वामी जी का वह पत्र छपा हुआ है जो स्वामी जी ने संस्कृत में अमरीका निवासी औलकाट साहिब को लिखा था। उस पत्र में पंक्ति १३ पर इस मंत्र का अर्थ करते हुए उपरोक्त विवादास्पद पदों का अर्थ इस प्रकार से किया है कि—

नोऽस्माकं प्रियाणि भोजनान्यभीष्टान्,
भोगान् मा प्रमोषीः पृथङ् मा कुरु।

भाषार्थ—हमारे प्यारे भोजन अभीष्ट भोगों को पृथक् मत करें। इसमें स्वामी जी ने अपने अभिप्राय को साफ तौर से

वर्णन कर दिया है। अतः इस लेख से ईश्वर का अवतार या साकार सिद्ध करना बालू से तेल निकालने के समान असंभव है।

हां, पौराणिक अवतारों में चोरी, धोखा, छल, कपट आदि दुर्व्यसन होने से, वे ईश्वर का अवतार होने के क़ाबिल ही नहीं हो सकते; जैसे—

(क) राम का झूठ—

कृतदारोऽस्मि भवति भर्येयं दयिता मम ॥२॥
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥३॥
बाल्मी० अरण्य० स० १८।

जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन् ॥४॥
चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः ॥३५॥
बाल्मी० बाल० स० ७३

भाषार्थ—राम ने शूर्पणखा से कहा—श्रीमती जी मैं विवाहित हूँ। यह सीता मेरी प्यारी पत्नी है ॥२॥ यह बलवान् श्रीमान् लक्ष्मण अविवाहित है ॥३॥ क्या लक्ष्मण अविवाहित था? हर्गिज़ नहीं। जनक की बात को सुनकर वसिष्ठ की सम्मति के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों ने सीता, ऊर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति चारों स्त्रियों का पाणिग्रहण किया। क्या यह ईश्वर के अवतार राम का सफेद झूठ नहीं?

(ख) राम का अधर्म—

युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहितो रणे ॥५२॥
बाल्मी० किष्क० सर्ग १७

भाषार्थ—बाली ने राम से कहा कि मेरे मरने के पीछे सुग्रीव राज्य को प्राप्त करे यह तो ठीक है। किन्तु जो आपने मुझे धोखे से मारा है यह ठीक नहीं है।

(ग) कृष्ण को वृजा से विषयासक्त देखकर राधा ने कहा—

कथं दुनोषि मां लोल रति चौरातिलम्पट ॥५९॥

ब्रह्म वै० कृष्ण जन्म अ० ३

भाषार्थ—हे चंचल मुझे क्यों दुःख देता है। हे अति लम्पट चोरी से पर-स्त्री भोग करनेवाले मुझे दुखी न कर।

(घ) गोपाल सहस्रनाम में—

गोपालो कामनी जार श्चोरजार शिखामणिः।

भाषार्थ—कृष्ण स्त्रियों का यार तथा चोरों यारों के सरदार हैं। कहिये अब भी आपकी तृप्ति हुई या नहीं!

(६५) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने यजुर्वेद अध्याय ३७ मं० ६ "अश्वस्यत्वा वृष्णःशक्ता धूपयामि देव यजने पृथिव्याः" इस पाठ का अर्थ किया है कि "पृथिवी के बीच यज्ञस्थल में वेगवान् घोड़े की लेंडी (लीद) से तुझको तपाता हूँ।" जो ईश्वर घोड़े की लीद बीन लावे और फिर उस को सुलगा कर विद्वानों को उस आग से तपा दे, वह कभी निराकार हो सकता है। पृ० ७ पं० १।

उत्तर—इस स्थान में न तो कहीं यह लिखा है कि ईश्वर लीद बीनकर लावे और न ही यह वर्णन है कि ईश्वर आग को सुलगावे। अपितु यहाँ पर वैद्यक का प्रकरण है। घोड़े की लीद से तुझको तपाता हूँ का अर्थ यह है कि मैं तुझको घोड़े की लीद से तपाने की आज्ञा देता हूँ। बहुत से ऐसे रोग हैं। जिनमें धूनी देने से और सेकने से आराम आता है। चुनाँचे चोट लगी हो तो घोड़े की लीद से सेकना अति लाभदायक है। उसी की ईश्वर ने आज्ञा दी है। इस आज्ञा देने से ईश्वर साकार

कैसे होगया और बीच में से अवतार कहाँ से टपक पड़ा ? यहाँ वैद्यक का प्रकरण जानने के लिये मंत्र के अर्थ के नीचे स्वामी जी का लिखा हुआ भावार्थ पढ़ने की कृपा करें।

भावार्थ—जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का संप्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं ॥९॥

श्रीमान् जी ! इस मन्त्र में तो ईश्वर ने रोगी मनुष्यों को घोड़े की लीद से सेंकने की आज्ञा ही दी है। किन्तु आपने तो ईश्वर को ही घोड़े की लेंडी से तपा मारा। देखिये आपने अपनी पुस्तक पृ० १९१ पं० १२ में यों लिखा है कि—"अश्वस्यत्वा वृष्णः, इस मन्त्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावे" तथा महीधर भी लिखते हैं कि "हे महावीर "पृथिव्याः देव भजने मखाय मखस्य शीर्ष्णे च वृष्णः सेक्तुरश्वस्य शक्रा शकृता पुरीषेण त्वा त्वां धूपयामि" हे महावीर ! यज्ञ-स्थल में मैं तुझे घोड़े के पाखाने से धूप देता हूँ। कहिये महाराज ! इन महावीरजी से क्या ख़ता हो गई जो इनको भट्टी में झोंका जा रहा है, या महावीर जी इस ही सुगन्धित पदार्थ की धूप को अधिक पसन्द करते हैं। क्यों न हो महाराज, आपके तो देवता ही दुनियाँ से विचित्र हैं। यदि महावीर जी पाखाने की धूनी से प्रसन्न होते हैं तो वाराह जी उस पुरीष को समूल ही हड़प करने के लिए व्याकुल रहते हैं। प्रतीत होता है या तो महावीर जी को ज्वर हो जाता होगा अथवा वह पागल हो जाते होंगे। क्यों कि पुराणों ने ऐसे रोगों में ही पाखाने आदि का प्रयोग लिखा है; जैसे—

कूर्म मत्स्याश्वमहिषगो शृगालाश्च वानराः ।
विडाल बर्हिकाकाश्च वराहोल्लूक कुक्कुटाः ॥१४॥
हंस एषां च विण्मूत्रं मांसं वा रोम शोणितम् ।
धूपं दद्याज्ज्वरार्तेभ्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥१५॥
गरुड़० आचार खण्ड अ० १९३

भावार्थ—कछुवा, मछली, घोड़ा, भैंसा, गौ, गीदड़, बन्दर, बिल्ला, मोर, काक, वाराह, उल्लू कुक्कुट, हंस इन जानवरों के मल, मूत्र, मांस, बाल, खून से ज्वर पीड़ित तथा पागलों को शान्त करने के लिये धूप देवे ॥१४। १५॥

आपकी मौज बन गई, अब आपको महावीर के लिये ही नहीं अपितु दूसरे पौराणिकों के लिये भी औषधार्थ बाहर जाने की ज़रूरत न पड़ेगी। अब तो आपके मन्दिर ही औषधालय का काम देंगे। क्योंकि उपरोक्त जानवरों में से कूर्म मत्स्य, वाराह आदि कई तो आपके पूज्य अवतार मन्दिरों में ही रहते हैं। हाँ, एक आपत्ति है कि वे मल-मूत्र त्याग नहीं करते। यदि आप इसके लिये यत्न करें तो सम्भव है सफल हो जावें। धन्य है महाराज! आपकी अवतार लीला धन्य है! यही आपके अवतार हैं जिनकी सिद्धि के लिए आप ऋषि दयानंद जी के ग्रन्थों को कलंकित करने का व्यर्थ परिश्रम कर रहे हैं।

(६६) प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ने "प्रजापतिश्चरति यजु० ३१। १९" इस मन्त्र का भाष्य करते हुए ईश्वर का प्रकट होना और उसके स्वरूप को ध्यान शील पुरुषों का देख लेना लिखा है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर को साकार माना है। अतः ईश्वर का अवतार लेना साफ साबित है। पृ० ८ पं० १२।

उत्तर—इस मंत्र के अर्थों से न तो यह सिद्ध होता है कि ईश्वर साकार है। और न ही ईश्वर का अवतार लेना साबित होता है। जब उस में सारे ब्रह्माण्ड स्थित हैं तो पता लगा कि वह सर्व व्यापक है। जब वह सर्व व्यापक है तो साकार कैसे हो सकता है। क्योंकि साकार वस्तु व्यापक नहीं हो सकती अपितु एकदेशी होती है। और व्यापक का किसी एक गर्भ में ही आजाना भी असंभव है। अतः वेद ने कह दिया कि वह स्वयं अजन्मा होते हुए गर्भ, गर्भस्थ जीव तथा अन्तःकरण में व्यापक होने से विराजमान है। स्वरूप का अर्थ शकल नहीं अपितु स्वरूप का अर्थ लक्षण है। और परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। यदि परमात्मा की शकल हो तो मूढ से मूढ आदमी भी चक्षु आदि इन्द्रियों से देख वा जान सकता है। चूंकि वह सूक्ष्म होने से वाह्य इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता और योगाभ्यास द्वारा ध्यान से ही जाना जा सकता है। अतः यह कहा कि उसके स्वरूप को ध्यानशील विद्वान् ही जान सकते हैं। वह परमात्मा निमित्त कारण होता हुआ उपादान कारण प्रकृति से अनेक प्रकार के कार्य्यरूप जगत् को बनाता है। और यही उसका बहुत प्रकार से विशेष प्रकट अर्थात् प्रसिद्ध होना है। क्योंकि कर्ता की प्रसिद्धि उसके कामों से ही हुआ करती है। अतः इस अर्थ से ईश्वर को साकार वा जन्मधारी सिद्ध करना स्वयं वेद मंत्र के विरुद्ध होने से यह कल्पना मिथ्या ही है। ( विशेष देखें नं० २६ ) हां पौराणिक अवतार अनेक प्रकार के रूप धारण करके अनेक प्रकार की विचित्र लीला करते रहे हैं; जैसे—

एकदा कृष्ण सहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ ॥ १ ॥
चकार मायया ऽकस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्ण सन्निधिम् ॥ ८ ॥
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं सुखात् ॥ २८ ॥
कृत्वा वक्षसि तं कामा च्छलेशं श्लेषं चुचुम्ब च ॥ ३८ ॥
एतस्मिन्नन्तरेराधा मायासद्रत्न मंडपम् ।
ददर्श रत्न कलशं शतेन च समन्वितम् ॥ ३९ ॥
सा देवी मण्डपंदृष्ट्वाजगामाभ्यंतरं मुदा ॥ ४४ ॥
ददर्श तत्र तांबूलं कर्पूरादि समन्वितम् ॥ ४५ ॥
पुरुषं कमनीयं च किशोर श्यामसुन्दरम् ॥ ४६ ॥
शयानं पुष्प शय्यायां सस्मितं मनोहरम् ॥ ४७ ॥
क्रोडं बाल शून्यं च दृष्ट्वा तं नव यौवनम् ॥ ५२ ॥
सर्वस्मृति स्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ ॥ ५३ ॥
तामुवाच हरिस्तत्र स्मेरानन सरोरुहाम् ॥ ५५ ॥
आगच्छ शयने साध्वि कुरुवक्षस्थलेहिमाम् ॥ ६१ ॥
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्यत्क्षणं गतम् ॥ ८१ ॥
वक्षस्थले च शिरसि देहिते चरणांबुजम् ॥ ८२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा ऽऽजगाम पुरतो हरेः ॥ ८९ ॥
तस्या हस्तं च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तं विधि ॥ १२४ ॥
प्रणम्य राधां कृष्णं च जगाम स्वालयं मुदा ॥ १३७ ॥
प्रणम्य श्री हरिं भक्तया जगाम शयनं हरेः ॥ १६९ ॥
कृष्णश्चर्वित तांबूलं राधकायै मुदा ददौ ॥ १४३ ॥
राधा चर्वित तांबूलं ययाचे मधुसूदनः ॥ १४४ ॥
यः कामो ध्यायते नित्यं यस्यैक चरणाम्बुजम् ।
बभूव तस्य स वशो राधा सतोष कारणात् ॥ १४६ ॥

करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि ।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम् ॥ १४८ ॥
बभूव रति युद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्र घंटिका ।
चुंबनेनोष्ठ रागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ॥ १४९ ॥
पुलकांकित सर्वांगी बभूव नव संगमात् ।
मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम् ॥ १५१ ॥
प्रत्यंगेनैव प्रत्यंगमंगेनांगं समाश्लिषत् ।
शृंगाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् ॥ १५२ ॥
पुनस्तां च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम् ।
क्षत विक्षत सर्वांगीं नख दंतैश्चकार ह ॥ १५३ ॥
बभूव शब्द स्तत्रैव शृंगार स्मरोद्भवः ॥ १५४ ॥
निर्जने कौतुकात् कृष्णः कामशास्त्र विशारदः ॥ १५६ ॥
निवृत्ते काम युद्धे च सस्मिता वक्र लोचना ॥ १५९ ॥
बभूव शिशु रूपं च कैशोरं च विहाय च ।
ददर्श बाल रूपं तं रुदंतं पीडितं क्षुधा ॥ १६३ ॥
यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह ॥ १७३ ॥
यशोदा बालकं नीत्वा चुचुंब च स्तनं ददौ ।
बहिर्निविष्टा सा राधा स्वगृहे गृहकर्मणि ॥ १७७ ॥
नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह ॥ १७८ ॥

( ब्रह्मवै० खं० ४ अ० १६ )

भाषार्थ—एक दिन कृष्ण समेत नन्द जी वृन्दावन में गये ॥ १ ॥ कृष्ण ने माया से आकाश बादलों से युक्त बना दिया ॥ ३ ॥ इतने में राधा कृष्ण के पास गई ॥ ८ ॥ बालक को राधा ने ले लिया । सुख से मधुर हँसने लगी ॥ २८ ॥ काम से

उसे बग़ल में लेकर छाती से लगा कर चूम लिया ॥ ३८ ॥ इतने में राधा ने सैंकड़ों रत्न के घड़ों से परिपूर्ण माया से बना सुन्दर मंडप देखा ॥ ३९ ॥ वह देवी मंडप को देखकर प्रसन्नता से अन्दर गई ॥ ४४ ॥ वहाँ पर उसने कपूर वाला पान (४५) और कामना के योग्य जवान श्याम-सुन्दर ॥ ४६ ॥ सुन्दर हँस मुख पुरुष को पुष्प शय्या पर सोते देखा ॥ ४७ ॥ अपनी गोदी को बालक से खाली और उस नौजवान को देख कर ॥ ५२ ॥ सब कुछ जानते हुए भी हैरान हो गई ॥ ५३ ॥ उस कमल मुख वाली को कृष्ण जी कहने लगे ॥ ५५ ॥ हे प्यारी, चारपाई पर आजा, मुझे बग़ल में लेले ॥ ६१ ॥ मैं बैठी हूँ आप लेटे हैं। इसी प्रकार समय जा रहा है ॥ ८१ ॥ मेरी बग़ल और शिर में चरणकमल अर्पण करो ॥ ८२ ॥ इतने में ब्रह्मा कृष्ण के सामने आया ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा ने राधा का हाथ कृष्ण के हाथ में पकड़ा दिया ॥ १२४ ॥ ब्रह्मा राधा तथा कृष्ण को प्रणाम् करके अपने घर गया ॥ १३७ ॥ राधा कृष्ण को प्रणाम कर के कृष्ण के पलंग पर गई ॥ १३९ ॥ कृष्ण ने चबाया हुआ पान राधा को दिया ॥ १४३ ॥ राधा से चबाया पान कृष्ण ने माँगा ॥ १४४ ॥ काम जिस के चरणों को स्मरण करता था। राधा के सन्तोषार्थ वह कृष्ण उसी काम के वश में हो गये ॥ १४६ ॥ कृष्ण ने हाथ से पकड़ कर राधा को बग़ल में ले लिया। उसके कपड़े ढीले कर दिये और चुतुर्विध चुँबन किया ॥ १४८ ॥ रति युद्ध में एक घंटा हो गया, चूमने से होंठों का रंग तथा लिपटने से पत्रावली नष्ट हो गई ॥ १४९ ॥ नये समागम से राधा रोमांचित हो गई। बस राधा मूर्छित हो गई और दिन रात होश में न आई ॥ १५१ ॥ अंग से अंग तथा

प्रत्यंग से प्रत्यंग लिपट गया। काम शास्त्रके जानने वाले कृष्ण ने आठ प्रकार से भोग किया ॥ १५२ ॥ फिर उस राधा से लिपट कर उस मुस्कराती हुई टेढ़ी नज़र वाली को, नाखुनों और दाँतों से ज़खमी कर दिया ॥ १५३ ॥ कामभोग-युद्ध से बड़ा शब्द हुआ ॥ १५४ ॥ काम शास्त्र में चतुर कृष्णने एकान्त में यूँ भोग किया ॥ १५६ ॥ काम युद्ध की समाप्ति पर वह तिरछी नज़र वाली राधा मुस्कराने लगी ॥ १५९ ॥ वह कृष्ण जी युवावस्था को छोड़ कर फिर बालक रूप हो गये। राधा ने कृष्ण को बालक रूप में भूख से पीडित रोते हुए देखा ॥ १६३ ॥ वह राधा यशोदा को बालक देकर बातचीत करने लगी ॥ १७३ ॥ यशोदा ने बालक को लेकर चूमा और स्तन दिया। राधा बाहर चली गई, अपने घर अपना काम करने लगी ॥ १७७ ॥ वह राधा रात को हमेशा कृष्ण से भोग करती रही ॥ १७८ ॥

अब वह राधा थी कौन यह अगले तीन श्लोकों से पता लगेगा।

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः ॥ २५ ॥
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥ २६ ॥

ब्रह्मवै० ब्रह्म० अ० ५

वृषभानोश्च वैश्यस्य साचकन्याबभूवह ॥ ३६ ॥
सार्द्धंरायाण वैश्येन तत्संबन्धं चकार स ॥ ३८ ॥
कृष्ण माता यशोदाया रायाणस्तत्सहोदरः ।
गोलोके गोपकृष्णांशः संबंधात्कृष्णमातुलः ॥ ४१ ॥

ब्रह्मवै० प्रकृ० ख० २ अ० ४९

भाषार्थ—कृष्ण के बायें पसवाड़े से एक कन्या पैदा हुई ॥ २५ ॥ उसका नाम विद्वान् द्विजों ने राधा रक्खा ॥ २६ ॥ वह राधा वृषभानु वैश्य की कन्या थी ॥ ६ ॥ उसने उसका संबंध रायाण वैश्य से कर दिया ॥ ३८ ॥ कृष्ण की माता जो यशोदा थी रायाण उसका भाई था। वह रायाण गोलोक में तो कृष्ण का अंश था, किंतु संबंध से कृष्ण का मामा लगता था ॥ ४१ ॥ कहिये महाराज जिस राधा से विवाह करके कृष्ण ने काम क्रीडा की वह संबंध से कृष्ण की पुत्री पुत्र-वधू, तथा मामी लगती थी ॥ अब तो "आप बहुधा विजायते" तथा "रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव,, इन दोनों मंत्रों को अवतारवाद में पूर्ण रूप से संगत कर सकेंगे। कुछ शरम तो नहीं आती। इन्हीं अवतारों की सिद्धि में आत्म घाती बन कर ऋषि दयानन्द जी के अभिप्राय से विरुद्ध उनके ग्रन्थों से अवतारवाद सिद्ध करने की धुन में हैं। एक तरफ कृष्ण को ईश्वर का अवतार बतलाते हैं, दूसरी तरफ पुराणों में सैकड़ों कलंक उन पर लगाये हैं। वास्तव में कृष्ण जी क्या थे यह ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में देखो। ऋषि कहते हैं कि—

देखो! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उसका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्य्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मतवाले श्रीकृ-

ष्णजी की बहुतसी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?

( सत्यार्थ० समु० ११ प्रकरण भागवत समीक्षा )

जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्त्तियां अङ्गरेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्त्ति कहां गई थी ? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।

( सत्यार्थ० समु० ११ प्रकरण मूर्तिपूजा )

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्रपार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति र्ध्रुवानीति र्मति र्मम ॥ ७८ ॥

( गीता अ० १८ )

भाषार्थ—जहां योगीराज कृष्ण हों तथा जहां धनुषधारी अर्जुन हों वहीं श्री, वहीं विजय, वहीं सम्पत्ति तथा वहीं दृढ़ नीति है यह मेरी राय है।

---

## अवतार परिशिष्ट

(६६) प्रश्न—"प्रतद्विष्णुः इत्यादि ऋ० १। १५४। २" मंत्र में नरसिंहावतार का वर्णन है।

उत्तर—इस मन्त्र में नरसिंहावतार का नाम मात्र भी नहीं है। अपितु सिंह के दृष्टान्त से परमात्मा का उग्र पराक्रम दिखाया है। मन्त्र तथा उसके वास्तविक अर्थ इस प्रकार से हैं—

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वाः ॥

ऋ० १। १५४। २।

भाषार्थ—जिस सर्वव्यापक विष्णु के रचे जन्म स्थान नाम इन तीन विविध सृष्टिकर्मों में समस्त लोक-लोकान्तर आधार में निवास करते हैं। वह सर्वव्यापक परमेश्वर पराक्रम से सब लोकों को प्रस्तुत करता है। जैसे पर्वत कन्दराओं में स्थित भयानक मृग अर्थात् सिंह ॥२॥

($\frac{६६}{३}$) प्रश्न—"भद्रोभद्र्या इत्यादि साम० उत्तर० १५।२।१।३" में रामावतार का वर्णन स्पष्ट आता है।

उत्तर—इस मंत्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "अग्नि" है और यहाँ राम नाम काला अँधियारा है। देखिये इस मंत्र का अर्थ सायणाचार्य्य ने इस प्रकार से किया है कि—

भद्रो भद्र्या सचमान आगात् स्वसारञ्जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतै द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि-राममस्थात्। साम० उत्तर० १५।२।१।३

भाषार्थ—भजनीय भजनीया के सहित आता है। शत्रुओं का नाशक वह अग्नि स्वयं चलने वाली उषा के सामने आता हैं। तथा भले प्रकार प्रज्ञान=तेजों के साथ सब ओर वर्तमान वह अग्नि श्वेतवर्ण रोकने वाले अपने तेजों से "रामम्" काले रात्री के अन्धियारे को सायं होम काल में तिरस्कार कर के स्थित होता है॥ ३॥

($\frac{६६}{४}$) प्रश्न—"कृष्णं त राम इत्यादि ऋ० ४।७।६" इस मंत्र में कृष्णावतार का वर्णन है।

उत्तर—इस मन्त्र का देवता भी अग्नि ही हैं यहाँ कृष्ण के अर्थ काला है। इस मन्त्र का सायण भाष्य इस प्रकार से है—

कृष्णं त रामरुशतः पुरोभाश्चरिष्णर्वार्चर्वपुषा मिदेकम्।
यदप्रवीतादधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदुदूतः। ४।७।९

भाषार्थ—हे अग्ने ! तुझ प्रकाशमान के गमन का मार्ग कृष्णवर्ण (काला) है। तेरा प्रकाश आगे रहता है। चलने वाला तेरा तेज ही सम्पूर्ण रूपवान तेजस्वियों में मुख्य है। जिस तेरे समीप न गये हुये यजमान लोग ज्यों ही तेरे गर्भ रूप अरणी को धरते हैं। त्यों ही तू उत्पन्न होता ही दूत अर्थात् यजमान का दूत बन जाता है ॥ ९ ॥ इन मन्त्रों में ईश्वर के अवतार का नाम भी नहीं है।

## मूर्तिपूजा

(६७) प्रश्न—वेद में ब्रह्म, सूर्य, शक्ति, गणेश, शंकर विष्णु तथा देवताओं का पूजन स्पष्ट रूप से लिखा है।

पृ० १७६ पं० ३।

उत्तर—वेदों में ब्रह्म, सूर्य, शक्ति, गणपति, शंकर, विष्णु इत्यादि ये सब परमात्मा के ही नाम हैं। अतः वेदों में अनेक नामधारी परमात्मा की ही पूजा का वर्णन है। हाँ यदि उपरोक्त नामों से आपका अभिप्राय किन्ही विशेष पौराणिक देवताओं से हो तो यह बात आपकी गलत है। क्योंकि वेदों में एक अद्वितीय परमात्मा की ही उपासना का वर्णन है। और चारों वेदों में तो "मूर्त्तिपूजा" शब्द भी मौजूद नहीं है।

(६८) प्रश्न—"अर्चत प्रार्चत ऋ० ६। ५। ५८। ८" इस मंत्र में परमात्मा इन्द्र की पूजा की आज्ञा है। पृ० १७९ पं० ५

उत्तर—आपके अर्थ के अनुसार भी इस मंत्र में इन्द्र नाम वाले परमात्मा की ही पूजा लिखी है। और आपके अर्थ में इन्द्र के अर्थ काष्ठ में देकर (ईश्वर) किये गये हैं। हमारी इन अर्थों से कोई हानि नहीं है। क्योंकि इस मन्त्र में न तो मूर्तिपूजा शब्द

मौजूद है और न ही यह आज्ञा वर्तमान है कि परमात्मा की "धात लकड़ी वा पत्थर की इतनी लम्बी चौड़ी मूर्ति बना कर परमात्मा के स्थान में उसकी पूजा करो।" तो फिर न जाने आपने यह मन्त्र मूर्ति पूजा की सिद्धि में क्यों पेश किया है। इस मन्त्र का शुद्ध पाठ ठीक ठिकाना तथा सत्य अर्थ इस प्रकार से है—

अर्चन्त प्रार्चत प्रियमेधासोऽर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्णवर्चत ॥८॥

ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ६९

भाषार्थ—बुद्धिमान मनुष्य परस्पर आपस में एक दूसरे की पूजा अर्थात् सत्कार करें। अतिथि, साधु, महात्मा लोगों का सत्कार करें। अन्न, बल तथा ज्ञान से हमारी रक्षा करने वाले विद्वानों का सत्कार विशेष रूप से करें। सब पुत्र लोग धैर्य शील होकर माता पिता आचार्य का सत्कार करें। पति पत्नी लोग भी आपस में एक दूसरे की पूजा अर्थात् सत्कार करें। इस मन्त्र में इन्द्रियों के स्वामी जीवात्माओं को परस्पर एक दूसरे की पूजा अर्थात् सत्कार करने की आज्ञा परमेश्वर ने दी है। इसमें मूर्तिपूजा का नाम मात्र भी नहीं है।

(६९) प्रश्न—वेद ने ब्रह्म और संसार का अभेद माना है। इस कारण वेद ने संसारी पदार्थों को पूजना और उस पूजन से ब्रह्म की प्रसन्नता होना मान वेद के अनेक स्थलों में संसारी पदार्थों का पूजन लिखा है। पृ० १७९ पं० १६।

उत्तर—वेद ने तो 'द्वासुपर्णा' इत्यादि अनेक मंत्रों से ईश्वर जीव तथा प्रकृति को अनादि प्रतिपादन किया है। अतः इस संसार का उपादान कारण प्रकृति, निमित्त कारण ईश्वर, तथा

साधारण कारण जीव है। ये तीनों पदार्थ स्वरूप से एक दूसरे से भिन्न तथा व्याप्य व्यापक भाव से अभिन्न हैं। यही वेद का सिद्धान्त है। और वेद ने ईश्वर के स्थान में प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थों की पूजा को भी "अंधतमः प्रविशन्ति" इत्यादि मंत्रों द्वारा पाप वर्णन किया है। अतः वेद में कहीं भी परमात्मा के स्थान में किसी और वस्तु की पूजा करने का वर्णन नहीं है। आपने यह सम्पूर्ण प्रतिज्ञा मिथ्या ही की है। हाँ भला यह तो बतलाइये कि आपके मत में यदि ब्रह्म तथा संसार का अभेद है तो फिर आप उपास्य उपासक भेद डाल कर क्यों दुनिया को गुमराह कर रहे हैं। जब सारा संसार ही ब्रह्म है तो उपासना कौन किसकी करेगा। और जब संसार की सब वस्तु ब्रह्म है तो फिर विशेष शकल की मूर्तियाँ बना मंदिरों में स्थापन कर उनकी पूजा का क्यों शोर मचाया जा रहा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप स्वयं ही अपने लेख से मूर्तिपूजा का खण्डन कर रहे हैं।

(७०) प्रश्न—"नमस्तेऽस्तु विद्युते" अथर्व० १। ३। १ इस मन्त्र में बिजली, गर्जना, पाषाण तथा उसकी चोट को प्रणाम करना लिखा है। पृ० १७९ पं० १६।

उत्तर—आपने यह समझ रक्खा है कि नमः का अर्थ नमस्कार ही होता है। परन्तु ऐसा नहीं है। अपितु नमः के अर्थ वज्र (निरु० ३। ११। २०) अन्न (निरु० ३। ६। ७) सेवन निरु० ३। १३। ५) भी आते हैं। अतः यहाँ पर नमः शब्द के अर्थ यथा योग्य सेवन अर्थात् उपयोग में लानेके हैं। इस मंत्र में न तो कहीं मूर्ति पूजा शब्द मौजूद है और न ही किसी की मूर्ति बनाने, पूजने का वर्णन है। अपितु विद्युत् आदि पदार्थों के यथा

योग्य उपयोग का वर्णन है । इस मन्त्र का ठीक पता तथा अर्थ यों है ।

नमस्तेऽस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्तेऽस्त्वश्मने येनदूडाशे अस्यसि ॥

अथर्व० १ । १३ । १

भाषार्थ—उस प्रकाश करने वाली बिजली का हम उपयोग करते हैं । उस शब्द करने वाली बिजली का हम उपयोग करते हैं जिस पत्थर से चोट लगना सम्भव है उसका भी हम उपयोग करते हैं । अर्थात् मुनासिब इस्तेमाल करते हैं । कृपया बतलावें इससे मूर्ति पूजा कैसे सिद्ध होती है ।

(७१) प्रश्न—"योदेवेभ्यः आतपति यजु० ३१ । २०" इस मन्त्र में ब्रह्म के अवयवभूत सूर्य्य की प्रशंसा कर उसको प्रणाम करना बतलाया है । पृ० १७९ पं० २१ ।

उत्तर—आपने यहाँ पर फिर वही भूल की है कि नमः के अर्थ प्रणाम कर दिये । यदि वेद में सर्वत्र नमः के अर्थ प्रणाम ही हैं । तो ऊपर लिखे हुवे वज्र, अन्न तथा परिचरण व्यर्थ हो जावेंगे । और क्या "तस्कराणां पतयेनमः यजु १६ । २१" तथा "श्वनिभ्योनमः" यजु० १६ । २७ । इत्यादि में भी नमः का अर्थ प्रणाम करके डाकू और भंगियों को भी उपास्य देव मान लेंगे । इसलिये नमः का अर्थ सर्वत्र प्रणाम न लेना चाहिये । इस मन्त्र के ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं ।

योदेवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

यजु० ३१ । २०

भाषार्थ—हे मनुष्यो जो सूर्य्य-लोक उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ अच्छे प्रकार तपता है। जो पृथिवी आदि लोकों के प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया। जो पृथिवी आदि से प्रथम उत्पन्न हुआ उस रुचि कराने वाले परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से अन्न उत्पन्न होता है।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर ने सबके हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य्य को बनाया है। उसी परमेश्वर की उपासना करो ॥२०॥

इस मन्त्र से किसी सूरत में भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती। श्रीमान् जी जिन सूर्य्य देव की उपासना आप सिद्ध करना चाहते हैं, क्या वह वही तो नहीं हैं जिनका भविष्य पुराण में इस प्रकार से वर्णन आता है कि—

इतिश्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादिति संभवः।
विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत् ॥
(भविष्य० प्रति० स० ३ खं० ४ अ० १८ श० २८)

तत्रस्थिता प्रिया संज्ञा बडवारूप धारिणी ॥३७॥
(प्रमाण पूर्ववत्)

अश्व रूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत ॥५५॥
सा तं वैवस्वतं शुक्रं नासाभ्यां समधारयत् ॥५६॥
(भविष्य० ब्राह्म पर्व अध्याय ७९)

भाषार्थ—इस वेदानुकूल वाणी को सुनकर अदिति के पुत्र सूर्य ने भी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठता प्राप्त की ॥ २८ ॥ वहाँ पर वह प्यारी संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करके खड़ी थी ॥ ३७ ॥ सूर्य भी घोड़े का रूप धारण करके उसको मुख

से मैथुनार्थ प्राप्त हुये ॥ ५५ ॥ उस संज्ञा ने उस सूर्य के वीर्य्य को नासिका के द्वारों से धारण किया ॥ ५६ ॥

मुझे इस बात का भय है कि कहीं उपासकों में उपास्य के गुण प्रवेश करने से पौराणिकों को भी यह बीमारी न चिमट जावे।

(७२) प्रश्न—"हिरण्यमयेन पात्रेण यजु० ४० । १७" इस मन्त्र में सूर्य मण्डल में व्याप्य अधिष्ठातृ देव को ईश्वर कहा गया है। पृ० १८० पं० ५

उत्तर—आपको अपना पक्ष सिद्ध करते हुए ईमानदारी से काम लेना चाहिये। देखिये आपने इस मन्त्र के अर्थों को स्पष्ट करने वाले वाक्य को मन्त्र में से सर्वथा ही लुप्त कर दिया है। यदि इसी प्रकार से मूर्तिपूजा सिद्ध होती है। तो यह बेल मढ़े चढ़ती नजर नहीं आती, देखिये इस मन्त्र का पूरा पाठ तथा सत्य अर्थ इस प्रकार है।

हिरण्यमयेनपात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥ य०

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ज्योति स्वरूप रक्षक मुझ से अविनाशी यथार्थ कारण के आच्छादित मुख के तुल्य उत्तम अंग का प्रकाश किया जाता जो वह प्राण वा सूर्य मंडल में पूर्ण परमात्मा है। वह परोक्ष रूप में आकाश के तुल्य व्यापक सब से गुण कर्म और स्वरूप कर के अधिक हूँ। सब का रक्षक जो मैं उसका ऐसा नाम जानो ॥ १७ ॥

बतलाइये इस में सूर्य का तथा उसके अधिष्ठातृदेव का कहाँ वर्णन है ?

(७३) प्रश्न—"तत्सवितुर्वरेण्य यजु० ३ । ३५" इस गायत्री मन्त्र में सूर्य से यह प्रार्थना की गई है कि हमारी बुद्धियों को शुभ काम में लगावे । पृ० १८० पं० १०

उत्तर—सूर्य अग्नि तत्त्व का पुंज है और अग्नि जड़ है। वह जड़ अग्नि हमारी बुद्धियों को शुभ काम में लगाने की सामर्थ्य नहीं रखता। न ही जड़ पदार्थ से प्रार्थना करना बुद्धिमत्ता कहा सकती है। और न ही इस मन्त्र में सूर्य का वर्णन है। अपितु सविता शब्द से जगत् के उत्पादक परमात्मा से ही प्रार्थना करने का वर्णन है। जैसा कि—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० ३ । ३५ ।

भाषार्थ—हम लोग सब जगत् के उत्पन्न करने वा प्रकाश मय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो अति श्रेष्ठ पाप रूप दुखों के मूल को नष्ट करने वाला स्वरूप है। उसको धारण करें। और जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है। वह अपनी करुणा करके हम लोगों की बुद्धियों को उत्तम २ गुण स्वभावों में प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥ आशा है इस पदार्थ को जानकर आपके दिमाग़ से जड़ पदार्थों को उपास्य मानने का उन्माद अवश्य दूर हो जावेगा।

(७४) प्रश्न—"उद्यते नमः उदायते नमः अथर्व० १७ । १ । १ । २२" तथा "अस्तंयते नमः ॥ २३" इन दो मन्त्रों से उदय होते और अस्त होते सूर्य को दोनों समय प्रणाम करना लिखा है। पृ० १८० । पं १५ ।

उत्तर—इन दोनों मन्त्रों में भी न सूर्य को प्रणाम किया

गया है। और न ही सूर्य की उपासना का वर्णन है। अपितु परमेश्वर को ही नमस्कार करने तथा उपास्य देव मानने का वर्णन है। इन मन्त्रों के ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥

भाषार्थ—प्रसिद्ध होते हुए को नमस्कार अति उत्तम होने वाले को नमस्कार है। प्रसिद्ध हो चुके हुए को नमस्कार है। विशेष राजा को नमस्कार है। स्वयंभू राजा के लिये नमस्कार है। राज राजेश्वर को नमस्कार है।

अस्तंयते नमो ऽस्तमेष्यते नमो ऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥
॥अथर्व० कां० १७ सू० १ मं २२-२३॥

भाषार्थ—अप्रसिद्ध होते हुए को नमस्कार है। अप्रसिद्ध होना चाहने वाले को नमस्कार है। अप्रसिद्ध हो चुके हुए को नमस्कार है। विशेष राजा को नमस्कार है। स्वयं राजा को नमस्कार है। राजाओं के राजा को नमस्कार है॥ २३॥

इन मन्त्रों में जो 'विराज' स्वराज, तथा सम्राज शब्द हैं ये परमात्मा के लिये ही प्रयुक्त हो सकते हैं। सूर्य के लिये नहीं। निमित्त कारण परमात्मा का उपादान कारण प्रकृति से कार्य रूप जगत् बनाना ही प्रसिद्ध होना तथा प्रलय कर देना ही अप्रसिद्ध होना है। यह पूर्व भी लिख आये हैं।

(७५) प्रश्न—"अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अ० अ८ ८ म० १० अ० १० सूक्त१२५" इस सूक्त के ६ मन्त्रों में ईश्वर शक्ति दुर्गा का वर्णन है। उसके महत्त्व को वेद ने जैसा बतलाया है। उसको ऊपर देख लें। ईश्वर और शक्ति में वेद अभेद मानता है। और वह

बलवती पूज्या है। अतएव इन मन्त्रों के अभिप्राय तथा अन्य बहुत से मन्त्रों के भाव को लेकर वैदिक लोग शक्ति की पूजा करते हैं। पृ० १८१ पं ६।

उत्तर—इस सूक्त का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय 'वागाम्भृणी' अर्थात् वेद वाणी के धारण करने वाला परमात्मा है। यदि ईश्वर शक्ति से आपका अभिप्राय ईश्वर की वेद वाणी धारण करने वाली शक्ति (ताकत) से है तो हमें इसमें कोई वक्तव्य नहीं है। और गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध होने से उस शक्ति का ईश्वर से अभेद होना स्वाभाविक ही है। और यदि ईश्वर शक्ति से आपका अभिप्राय पौराणिक दुर्गा से है तो आपकी कल्पना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि पौराणिक दुर्गा ईश्वर की शक्ति का नाम नहीं अपितु वह एक अद्भुत व्यक्ति है। वेदों में उसका कतई वर्णन नहीं है। और न ही वैदिक लोगों के लिये वह पूज्या है। अपितु वह पौराणिक लोगों की आश्चर्य जनक कल्पना है। वह पौराणिक दुर्गा कैसी है, उसका संक्षिप्त स्वरूप निम्न प्रकार से है।

निशुंभशुंभ संहर्त्री मधुमांसासव प्रिया ॥९०॥
शिव० वायु० उत्तर० अ० ३१

उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ॥३॥
जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥१२॥
दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥३६॥
भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरांतिकमप्ययौ ॥३७॥
शिव० रुद्र० युध० अ० ३८।

जयति नर मुंडमुण्डित पिशित सुराहार कृच्चंडी ॥१२॥
जयति दिगम्बर भूषा सिद्ध वटेशा महालक्ष्मीः ॥१३॥

दिग्वसना विकृतमुखा विकराल देहा रौद्रभावस्था ॥१५॥
जयति भुजगेन्द्रमणि शोभितकर्णा महातुण्डा ॥१७॥
सिंहारूढ़ा विनिर्गत्य दुर्गाभिः सहिता पुरा ॥२४॥
कुमारी विंशति भुजा घनविद्युल्लतोपमा २५॥॥

भविष्य० उत्तर० अ० ६१ ।

भावार्थ—तेज़ दाँतों वाली, कठोर डंडे वाली, शराब पीने वाली, गर्जने वाली, अट्टहास करने वाली, मांस भोजन वाली, खून पीने वाली, मनुष्य-मुण्ड-माला पहनने वाली, मांस शराब आहार वाली, चण्डी, नंगी, कुरूपा, विकराल देह वाली, डरावनी, कानों में सर्पमणि, लंबी चोंच वाली, सिंह सवारी, कुमारी बीस भुजावाली, बिजली सी चमकवाली इत्यादि इत्यादि ।

कहिये महाराज ! क्या इस पौराणिक दुर्गा का ही इस सूक्त में वर्णन आप बतला रहे हैं । यदि ऐसा ही है तो क्या उपरोक्त विशेषण इस सूक्त में मौजूद हैं। यदि नहीं तो क्यों दुनिया की आँखों में धूल झोंक रहे हैं। सीधे होकर मानिये कि इस सूक्त में पौराणिक दुर्गा का वर्णन नहीं है। अपितु वेद वाणी धारक परमात्मा का वर्णन है। इन वेद मन्त्रों का सत्य अर्थ इस प्रकार से है—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यै रुत विश्व देवैः ।
अहं मित्रा वरुणोभाविभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

भावार्थ—मैं परमेश्वर ज्ञानदाताओं वा दुःखनाशकों निवास कराने वाले पुरुषों के साथ और मैं ही सर्व दिव्यगुण वाले प्रकाशमान अथवा अदीन प्रकृति से उत्पन्न हुए सूर्य आदि लोकों के साथ वर्तमान हूँ मैं दोनों दिन और रात को, मैं पवन

और अग्नि को, मैं ही दोनों सूर्य्य और पृथिवी को धारण करता हूँ ॥१॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरि स्थात्रां भूर्यावेशयंतः ॥२॥

भावार्थ—मैं धनों की पहुँचाने वाली और संगति योग्य पूजनीय विषयों की जाननेवाली पहिली नियम करने वाली शक्ति हूँ। विद्वानों ने बहुत प्रकारों से अनेक पदार्थों में ठहरी हुई उस मुझको अनेक विध से अपने आत्मा में अनुभव करके विविध प्रकार से धारण किया है ॥२॥

अहमेवस्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यम् कामयेतं तमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणंतमृषिंतं सुमेधाम् ॥३॥

भाषार्थ—मैं ही आप सूर्य आदि लोकों और मननशील मनुष्यों का प्रिय यह वचन कहता हूँ। अर्थात् जिस जिसको मैं चाहता हूँ उस उसको ही कर्मानुसार तेजस्वी, उसको ही बृद्धिशील ब्रह्मा, उसी को सन्मार्ग दर्शक ऋषि; उसी को उत्तम बुद्धि वाला बनाता हूँ ॥३॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यतियः प्राणतियईंशृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥

भाषार्थ—मेरे द्वारा ही वह अन्न खाता है। जो कोई विशेष करके देखता है, जो श्वास लेता है और जो यह वचन सुनता है, मुझे न जाननेवाले वे पुरुषहीन होकर नष्ट हो जाते हैं। हे सुनने में समर्थ जीव! तू सुन, तुझसे आदर योग्य सत्य बताता हूँ ॥४॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाउ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥४॥

भाषार्थ—मैं दुःखनाशक शूर के लिये ब्राह्मणों के द्वेषी हिंसक के मारने को ही धनुष सब ओर से तानता हूँ। मैं भक्त जन के लिये आनन्दयुक्त जगत करता हूँ। मैंने सूर्य और पृथिवी की लोक में सब ओर से प्रवेश किया हुआ है ॥५॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते ॥६॥

भाषार्थ—मैं प्राप्ति योग्य ऐश्वर्य को, मैं रसों के छिन्न-भिन्न करने हारे सूर्य को, और पोषण करने हारी पृथिवी को और सेवनीय चन्द्रमा को धारण करता हूँ। मैं भक्ति रखनेवाले, विद्या रस का निचोड़ करने हारे, यज्ञ का सेवन करने हारे, पुरुष को सुन्दर सुन्दर रक्षा योग्य अनेक धन देता हूँ ॥६॥

अब धर्म और न्याय से बताइये कि इस सूक्त में वाणी के धारक परमात्मा का वर्णन है। या आपकी मिथ्या कल्पित पौराणिक दुर्गा का।

(७६) प्रश्न—"गणानांत्वागणपति। यजु० २३। १९" इस मन्त्र में गणपति का आवाहन है। आह्वान पूजा के समय ही होता है। अतएव आह्वान से गणपति का पूजन सिद्ध है॥ पृ० १८२ पं० २७।

उत्तर—आप के भाष्यकार तो इस मंत्र का देवता अश्व मानते हैं तथा इस मंत्र का विनियोग स्त्री को घोड़े के समीप सोने में लगाते हैं। जैसा कि महीधर लिखते हैं कि—

"महिषी अश्व समीपेशेते। अश्व देवत्यम्। हे अश्व गर्भधं गर्भदधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहम् आ अजनि आकृष्य क्षिपामि। तं च गर्भधं रेतः आ अजनि आकृष्य क्षिपसि। १९।

भाषार्थ—यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोती है। यह मंत्र अश्व देवता वाला है। हे अश्व तेरा गर्भ को धारण करने वाला वीर्य्य मैं खैंच कर डालती हूँ। और आप भी खैंच कर डालते हैं। किन्तु आपने भी यह अनुभव करके कि महीधर भाष्य वेद को कलंकित करने वाला है। स्वामी दयानन्द जी का अनुकरण करते हुए इस मन्त्र का देवता गणपति ही मान लिया है। किन्तु यहाँ पर गणपति शब्द से गुणों के पालक परमात्मा का वर्णन है। पौराणिक गणपति का वर्णन नहीं है। देखिये गणेश जी का स्वरूप पुराणों में इस प्रकार वर्णन किया है।

विचार्येति च सा देवी वपुषोमल संभवम्।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्व लक्षण संयुतम्॥ २०॥
हे तात शृणुमद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्यमे॥ २५॥
विनामदाज्ञां सत्पुत्र नैवायान्मद् गृहान्तरम्॥ २६॥
शिव० रुद्र० कुमार० अ० १३।
एतस्मिन्नेव कालेतु शिवो द्वारि समागतः॥ ३१॥
ताड़ितस्तेन यष्टयाहि गणेशेन महेश्वरः॥ ३५॥
प्रमाण अ० १३।
क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य ममश्मश्रूण्यवाकिरत्।
अ० १५ श० ३१।

अथ शक्ति सुतो वीरो वीर गत्या स्वपष्टितः।
प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्व सुखावहम्॥११॥ अ० १६।
एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे।
आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृंतत॥३४॥ अ० १६।
तावच्च गिरिजादेवी चुक्रोधाति मुनीश्वर॥४॥ अ० १७।

प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः ॥४९॥४९॥
तच्छिरश्च तदानीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम् ॥५०॥ अ० १७।
धन्योऽसिकृत कृत्योऽसि पूर्वं पूज्यो भवाधुना ॥८॥
शिव० रुद्र० कु० अ० १९।

भाषार्थ—विचार करके पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतार कर सब लक्षणों से युक्त पुरुष बनाया ॥२०॥ और कहा कि द्वारपाल बन जा ॥२५॥ मेरी आज्ञा के बिना कोई मेरे घर के अन्दर न आवे ॥२६॥ इतने में शिव जी द्वार पर आ गये ॥३१॥ गणेश ने महादेव को लाठी से पीटा ॥३५॥ क्रोध में आकर ब्रह्मा की भी डाढ़ी उखाड़ डाली ॥३१॥ पार्वती के पुत्र गणेश ने प्रथम डंडे से विष्णु की पूजा की ॥११॥ इतने में मौका पाकर शिव ने त्रिशूल से गणेश का सिर काट दिया ॥३॥ इस पर पार्वती को क्रोध आ गया ॥४॥ पहिले-पहल एक दांत वाला हाथी मिला, तब उसका ही सिर काट कर गणेश के धड़ पर जोड़ दिया ।४९-५०। पार्वती ने धन्य कह कर पूर्व पूजा का विधान कर दिया ।५०।

कहिये इस मंत्र में कहीं आदमी का धड़ हाथी का सूंड वाला शिर चूहे की सवारी करने वाले गणेश का वर्णन मौजूद है, यदि नहीं तो फिर केवल गणपति शब्द के आ जाने से इस विचित्र आकृति वाले पौराणिक गणेश की कल्पना इस मंत्र में से निकालना सर्वथा निर्मूल है । मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

गणानांत्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणांत्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनांत्वा निधिपतिꣳहवामहे वसोमम आहमजनि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। १९। यजु० २३। १९।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर हम लोग गणों के बीच गणों के पालने हारे आपको स्वीकार करते हैं। अति प्रियसुन्दरों के बीच अति प्रिय सुन्दरों के पालने हारे आपकी प्रशंसा करते हैं। विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के बीच विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे आपको स्वीकार करते है। हे परमात्मन् जिस आप में सब प्राणी बसते हैं। सो आप मेरे न्यायाधीश हूजिये। जिस गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे आप जन्मादि दोष रहित भली भान्ति प्राप्त होते हैं। उस प्रकृति के धर्ता आपको मैं अच्छे प्रकार जानूं। १९।

इस मन्त्र में पौराणिक सूंडधारी मूषक सवारी गणेश का गन्ध भी नहीं है।

(७७) प्रश्न—शतपथ और कात्यायन सूत्र ने अश्वमेध प्रकरण में अश्व में इसका विनियोग लगाया है। मरे हुए अश्व में ईश्वर का आह्वान होता है। अतएव यहां पर भी ईश्वर का ही आह्वान है। अश्व का आह्वान नहीं। इस मन्त्र का देवता गणपति है। जो गणपति है वही ईश्वर है। इस कारण अश्वमेध यज्ञ में किसी अन्य का आह्वान पूजन नहीं है। किन्तु गणपति का है। पृ० १८३ पं० १७।

उत्तर—श्रीमान् जी महीधर भाष्य में तो कहीं गणपति का आह्वान लिखा नहीं। वहां पर "हे अश्व" करके घोड़े का ही आह्वान लिखा हुआ है। और महीधर ने इस मन्त्र का देवता भी अश्व ही माना है, गणपति नहीं। हां किसी साइंस के अमूल के अनुसार मरे हुए घोड़े से यजमान की पत्नी का "महिषी अश्वशिश्नम् स्वयमेवाकृष्य स्वयोनौस्थापयति। महीo पं० २०"

इस विधि से नियोजन करने पर बिजली के करंट की भाँति यदि गणपति का आह्वान हो जाता हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जब यूरोपियन साइंसदान अनेक पदार्थों के मेल से आदमियों के बुलाने के साधन टेलीफून, टेलीवीज़न आदि अनेक यन्त्र बना सकते हैं। तो क्या पौराणिक अश्वमेध यज्ञ में अश्व तथा यजमान पत्नी के संयोजन से गणपति के बुलाने का एक यन्त्र भी आविष्कार नहीं कर सकते।

(७८) प्रश्न—"तं यज्ञं बर्हिषि यजु ३१। ९" इस मन्त्र में विष्णु की पूजा वेद ने लिखी है। पृ० १८३ पं० १७।

उत्तर—आप सिद्ध तो करना चाहते हैं मूर्ति पूजा। और एक भी मन्त्र अभी तक ऐसा पेश नहीं कर सके कि जिससे सूर्य, विद्युत, शक्ति गणेश विष्णु आदि की मूर्ति बनाकर ईश्वर के स्थान में उनकी पूजा करने की आज्ञा साबित हो सके। कहिये यह "प्रतिज्ञा हानि" निग्रह स्थान तो नहीं है। जिसमें फँसकर आप पराजित हो रहे हैं। इस मन्त्र का देवता भी पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा है। कोई वृन्दा के सतीत्व को छल से भंग करनेवाले विष्णु का इस मन्त्र में नाम मात्र भी नहीं है। और आपके भाष्यकार महीधर ने भी इस मन्त्र को साकार पूजा में नहीं लगाया अपितु निराकार पूजा में लगाया है। जैसे—"यज्ञं यज्ञ साधन भूतम् तं पुरुषं बर्हिषि मानसे यज्ञे प्रौक्षन् प्रोक्षितवन्तः" यज्ञ के साधन भूत पुरुष परमात्मा को मानसिक यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं। जब मन्त्र में विष्णु का नाम ही नहीं है। और यह मन्त्र भी पुरुष सूक्त का है। तो इसमें आप विष्णु लाये कहाँ से। इस प्रकार की मिथ्या कल्पनाओं से अब

वेद विरुद्ध मूर्ति पूजा का संसार में जीवित रहना असम्भव है। देखिये मन्त्र का सत्य अर्थ इस प्रकार है—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये। यजुः ३१। ९।

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् और योगाभ्यास आदि साधन करते हुए मन्त्रार्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग जिस सृष्टि के पूर्व प्रसिद्ध हुवे सम्यक पूजने योग्य पूर्ण परमात्मा को मानस ज्ञान यज्ञ में सींचते अर्थात् धारण करते हैं। वे ही उसके उपदेश किये हुए वेद से उसका पूजन करते हैं। उसको तुम लोग भी जानो॥९॥ इस मन्त्र का इसके बिना कोई और अर्थ नहीं हो सकता।

(७९) प्रश्न—"अदो यद्दारुप्लवते ऋ० ८।१३।१०।१२। १५५" इस मन्त्र में जगन्नाथ रूप विष्णु की पूजा मौजूद है। पृ० १८३ पं० २३।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो मूर्ति पूजा की आज्ञा है और न ही जगन्नाथ या विष्णु आदि का नाम मौजूद है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "अलक्ष्मीघ्नम्" अर्थात् "दरिद्र नाश" है। इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि पुरुषों की कगाली कैसे दूर हो सकती है। वेद कहता है कि जहाज़ के द्वारा दूर दूर देशों की समुद्र यात्रा करने से पुरुष अपनी निर्धनता को नाश करके धन सम्बन्धी वृद्धि को प्राप्त हो सकता है। इसी विषय का इस मन्त्र में प्रतिपादन है। जैसे—

अदो यद्दारुप्लवते सिंधोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्वदुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्। ३।

ऋ० १०। १५५। ३

भाषार्थ—यह जो काष्ठमय जहाज़ तैरता है। और बिना पुरुषों के चप्पू आदि के खेने से ही भापादि से समुद्र के पार पहुंचा देता है। उसको बहुत मज़बूत बना कर उसका आश्रय लो। और उससे दूर दूर की यात्रा करो ताकि तुम्हारा दरिद्र नाश हो जरा बतलाइये तो सही इसमें जगन्नाथ जी के जूठे भात और जगन्नाथपुरी के मन्दिर पर खुदी हुई आदमी के क़द के बराबर मादरज़ाद नंगी चौरासी आसनों से विषय भोग करती हुई स्त्री तथा पुरुषों की मूर्तियों का कहां वर्णन है।

(८०) प्रश्न—"त्र्यम्बकं यजामहे। यजु० ३।६०" इस मंत्र में तीन नेत्रवाले रुद्र परमात्मा की पूजा का विधान है। पृ० १८४ मं० ६।

उत्तर—इस मन्त्र में भी मूर्ति बनाकर परमेश्वर के स्थान में पूजने का विधान नहीं है, यहाँ पर त्र्यम्बक शब्द से परमेश्वर का ही ग्रहण है; किसी कल्पित पौराणिक देवता का नाम नहीं है। अग्नि, चाँद और सूर्य ये तीनों परमात्मा के चक्षुवत् अर्थात् सब संसार के देखने में सहायक हैं। इसलिए परमात्मा को त्र्यम्बक कहा गया है। इस बारे में महाभारत में भी लेख आता है कि—

तिस्रो देव्योयदा चैनं भजन्तेभुवनेश्वरम्।
द्यौरापः पृथिवीचैव त्र्यम्बकस्तुततःस्मृतः॥

महा० द्रोण० अ० २०३ श्लो० १२८।

भाषार्थ—तीन देवियां जब कि उस परमात्मा को सेवन करती है द्यौ लोक, जल तथा पृथिवी, अतः परमात्मा को त्र्यम्बक कहते है। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा के हमारी तरह से शारीरिक नेत्र नहीं है अपितु लाक्षणिक रूप से सूर्य चन्द्र अग्नि

आदि को ही नेत्रवत् वर्णन किया है। अतः कहीं त्र्यम्बक आता हैं तो कहीं सहस्राक्षः आता है। अतः सिद्ध है कि परमात्मा निराकार हैं। दुष्टों को दण्ड देने के कारण उसे रुद्र कहते हैं। अब मन्त्र के ठीक अर्थ इस प्रकार से होते हैं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। यजु० ३। ६०।

भाषार्थ—हम लोग जो शुद्ध गन्धयुक्त शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला रुद्र रूप जगदीश्वर है। उसकी निरन्तर स्तुति करें। इसकी कृपा से जैसे खरबूज़ा फल पक कर लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के तुल्य होता है। वैसे हम लोग भी प्राण वा शरीर के वियोग से छूट जावें और मोक्ष रूप सुख से श्रद्धा रहित कभी न होवें। ६०।

आशा है इस मन्त्र के अर्थ को समझ कर मूर्ति पूजा के भ्रम को आप हृदय से अवश्य निकाल देंगे।

(८१) प्रश्न—"भवाशर्वौमृडत इत्यादि अथर्व० ११। १। २ मं० १-१६" इन सोलह मंत्रों में शंकर के पूजन का वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन है। पृ० १८४ पं० २३।

उत्तर—इन मन्त्रों में मूर्ति बनाने या परमेश्वर के स्थान में मूर्ति पूजने का कतई वर्णन नहीं है। इन मन्त्रों का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "रुद्र" है। जिसके अर्थ हैं दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला। अतः इन मन्त्रों में राजा तथा सेनापति का वर्णन है। क्योंकि ये दोनों दुष्टों को दण्ड देकर प्रजा को सुखी करते हैं। इन सोलह मन्त्रों में न तो शंकर और महादेव शब्द ही मौजूद हैं। और न ही इन मन्त्रों में महादेवजी

के विशेष स्वरूप प्रतिपादक शब्द ही विद्यमान हैं। देखिये पौराणिक महादेव का विशेष स्वरूप इस प्रकार का हैं जैसे—

कपाली, वृषांकः, वृषवाहनः, नीलकण्ठः, कपर्दी, श्मशान-निलय, श्मशास्थ, कामपालः, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्तः, भस्मोद्धूलित विग्रहः, भृत्यमर्कट रूपधृक् व्याघ्रचर्माम्बरः व्याली, उन्मत्तवेषः, कमंडलुधरः, नृत्यप्रियः, नित्यनृत्यः, ललाटाक्षो, मुण्डी विरूपो, विकृतः, पिंगलाक्षः, बह्वक्षः, नीलग्रीवः, सहस्रबाहुः, विरूपाक्षः, वाराहशृंगधृक्, भूशया, शूली, जटी, शिव० कोटिरुद्र० अ० ३५।

इससे सिद्ध हुआ कि इन मन्त्रों में पौराणिक शंकर का वर्णन नहीं है। अपितु राजा और सेना का वर्णन है। इन मन्त्रों का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

भवाशर्वौ मृडतं माभिवातं भूतपती पशुपती नमोवाम्।
प्रतिहितामायातां मा विस्राष्टं मानो हिंसिष्टं द्विपदोमाचतुष्पदः ॥१॥

भाषार्थ—हे भाव और शर्व! सुख उत्पन्न करने और शत्रु नाशक राजा तथा सेनापति तुम दोनों प्रसन्न हो। हमारे विरुद्ध मत चलो। हे सत्ता के पालको! हे सब दृष्टि वालों के रक्षको, तुम दोनों को नमस्कार है। लक्ष्य पर लगाई हुई और तानी हुई तीर को तुम दोनों मत छोड़ो, न हमारे दोपायों और चौपायों को मारो अर्थात् सब की रक्षा करो ॥१॥

शुने क्रोष्ट्रेमा शरीराणि कर्तमलिक्लुवेभ्यो गृध्रेभ्योयेच कृष्णा अविष्यवः। मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि तेविधसे मा विदन्त ॥ २ ॥

भाषार्थ—कुत्ते के लिये, गीदड़ के लिये, अपने बल से भय देनेवाले के लिये खाऊ गिद्धादिकों के लिये और जो हिंसाकारी

कौवे हैं उनके लिये हमारे शरीरों को तुम दोनों मत करो। हे प्राणियों प्रजा के रक्षक! तेरी मक्खियां और तेरे पक्षी भोजन पर न प्राप्त होवें अर्थात् इन सब दुखदायक प्राणियों से हमारी रक्षा का प्रबन्ध करें ॥ २ ॥

क्रन्दायते प्राणाय याश्चते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्रक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे भव सुख उत्पन्न करने वाले राजन्! हे दुःख-नाशक सेनापते! हे अमरकीर्ति वाले! सहस्र कर्मों में दृष्टिवाले तुझ को अपना रोदन मिटाने के लिये तुझे अपना जीवन बढ़ाने के लिये और तुझे जो पीड़ायें हैं उन्हें हटाने के लिये हम नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्य्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! हे सेनापते! तुझे आगे से ऊपर से और नीचे से नमस्कार। तुझे आकाश के अवकाश से अंतरिक्ष लोक को जानने के लिये हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

मुखायते पशुभ्यते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतिचीनायते नमः ॥५॥

भाषार्थ—हे दृष्टि वालों के रक्षक! तुझे हमारे मुख के हित के लिये, हे सुखोत्पादक! तुझे जो हमारे दर्शन साधन हैं उनके लिये, हमारी त्वचा के लिये सुन्दरता के लिये, आकार के लिये प्रत्यक्ष तुझे नमस्कार करते हैं ॥५॥

अङ्गेभ्यस्ते उदराय जिह्वाया आस्यायते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६॥

भाषार्थ—हे राजन्! तुझे हमारे अंगों के हित के लिये,

उदर के हित के लिये, तुझे हमारी जिह्वा के हित के लिये और मुख के हित के लिये, तुझे हमारे दांतों के हित के लिये और गंध ग्रहण करने के लिये नमस्कार है ॥६॥

अस्रानील शिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७॥

भाषार्थ--प्रकाश करने वाले नीलों निधियों के पहुँचाने वाले सहस्रों कर्मों में दृष्टि वाले बलवान् हिंसकों के मारने वाले उस राजा वा सेनापति के साथ हम लड़ाई न करें ॥७॥

सनोभवः परिवृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि
वृणक्त नो भवः । मानोऽभिमांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८॥

भाषार्थ—वह सुख उत्पन्न करने वाला राजा हमें दुष्ट कर्मों से सब ओर वर्जता रोकता रहे । जैसे जल और अग्नि एक दूसरे को रोकते हैं वैसे भव सुख उत्पन्न करने वाला राजा हमें रुकवाता रहे । हमें वह न सतावे । इस राजा को नमस्कार होवे ॥८॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते । तवे-
मेपञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥

भाषार्थ—सुखोत्पादक राजा को चार बार, आठ बार नमस्कार है । हे दृष्टि वाली प्रजा के रक्षक ! तुझे दश बार नमस्कार है । तेरे ही बाँटे हुए यह पाँच दृष्टि वाले गौवें, घोड़े, पुरुष और बकरी और भेड़ें हैं ॥९॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवीतवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥

भाषार्थ—हे तेजस्वी सेनापति ! तेरी चारों बड़ी दिशायें हैं । तेरा प्रकाशमय सूर्य, तेरी फैली हुई भूमि, तेरा यह चौड़ा

आकाश लोक है। तेरा ही यह सब है जो आत्मा वाला और प्राण वाला पृथिवी पर है ॥१०॥

उरुः कोशो वसुधा न स्तवायं यस्मिन्निमाविश्वा भुवनान्यन्तः।
सनोमृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाःश्वानः परोयं त्वघ
रुदो विकेशयः ॥११॥

भाषार्थ—हे सभापते! तेरा यह चौड़ा कोष श्रेष्ठ पदार्थों का आधार है जिसके भीतर ये सब प्रजा हैं। हे दृष्टि वाली प्रजा के रक्षक तू सो हमें सुखी रख। तेरे लिये नमस्कार हो। चिल्लाने वाले गीदड़, सम्मुख चमकती हुई विपत्तियाँ, घूमने वाले कुत्ते दूर और केश फैलाये हुए भयानक पाप की पीड़ाएँ दूर चली जावें ॥११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्।
रुद्रस्येषु श्चरति देवहेति स्तस्यै नमो यतमस्यांदिशीतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे परम उद्योगी सेनापते! शत्रु नाशक, बल युक्त, सहस्रों शत्रुओं के मारने वाले, सैंकड़ों हथियारों वाले धनुष को तू धारण करता है। दुख विनाशक सेनापति का बाण दिव्य वज्र चलता रहता है। उस बाण के रोकने के लिये यहां से चाहे जौनसी दिशा हो उस में नमस्कार है ॥ १२ ॥

योऽभियातो निलयते त्वांरुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनु प्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदवीरिव ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो दुष्कर्मी हारा हुआ छिप जाता है और हे दुखनाशक! मुझे हराना चाहता है। पीछे पीछे उस का तू अनुप्रयोग करता है अर्थात् यथापराध दंड देता है। जैसे घायल का पद खोजा जाता है ॥ १३ ॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—समान संयोग वाले समान ज्ञान वाले तेजस्वी दोनों भव और रुद्र अर्थात् राजा तथा सेनापति वीरता देने को विचरते हैं। यहां से चाहे जौनसी दिशा हो उस में उन दोनों को नमस्कार है ॥ १४ ॥

नमस्तऽस्त्वायते नमोऽस्तु परायते।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायो ते नमः ॥ १५ ॥

भाषार्थ—आते हुए के हित के लिये तुझे नमस्कार होवे, दूर जाते हुए के हित के लिये नमस्कार होवे। हे रुद्र दुखनाशक सेनापते ! खड़े होते हुए के हित के लिये तुझे नमस्कार और बैठे हुए के हित के लिये तुझे नमस्कार है ॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवायच शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥

भाषार्थ—सायंकाल में नमस्कार, प्रातः काल में नमस्कार रात्री में नमस्कार दिन में नमस्कार। भव अर्थात् सुख उत्पन्न करने वाले राजा, और शर्व अर्थात् दुःखनाश करने वाले सेनापति दोनों को मैंने नमस्कार किया है ॥ १६ ॥

आशा है कि अब आप पौराणिक महादेव की पूजा का विचार हृदय से निकाल कर एक ईश्वर की पूजा में ही चित्त लगाने की कृपा करेंगे।

———

## महावीर

(८२) प्रश्न—यज्ञ में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमायें बनती हैं। पृ० १८८ पं० ७।

उत्तर—श्रीमान् जी! यह महावीर नाम के प्रजापति कौन थे। क्या किसी पुराण में इनका इतिहास मिलता है। और क्या महावीर को कहीं प्रजापति भी लिखा है। आपके ग्रन्थों में दश ही प्रजापतियों का वर्णन मिलता है। जैसे मनुस्मृति में आता है कि—

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥३४॥
मरीचि मत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुंनारदमेव च ॥३५॥ मनु० १। ३४-३५

मैंने प्रजा पैदा करने की इच्छा से कठोर तप करके आदि में दश महर्षियों को प्रजाओं का पति पैदा किया ॥३४॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, और नारद ये दश प्रजापति थे ॥३५॥

कहिये महाराज! इन दशों में तो महावीर जी का नाम नज़र नहीं आता। आपने अपने सिद्धान्त के विरुद्ध यह ग्यारहवां प्रजापति कहाँ से घड़ डाला। आपके इस प्रकरण में भी जिसका आप वर्णन करने लगे हैं "प्रजापतिर्वाएष यज्ञो भवति। शतपथ १४। १। २। १८" यज्ञ का नाम तो प्रजापति लिखा है। किन्तु महावीर को प्रजापति कहीं भी नहीं लिखा। फिर ज़रा यह भी बताने की कृपा करें कि उन महावीर की मूर्तियों से यज्ञ में क्या काम लिया जाता है। क्या वह राम लक्ष्मण की

भांति धनुष-बाण लेकर राक्षसों से यज्ञ की रक्षार्थ बनाई जाती हैं। आखिर कुछ तो बताइये, यदि आप नहीं बता सकते तो लीजिये हम आपको बतलाते हैं कि यह महावीर जी क्या वस्तु हैं।

यद्यपि हम शतपथ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते। और उसकी वेद विरुद्ध कल्पनाओं का उत्तर देने की हमारी कोई जुम्मेवारी नहीं है। तथापि हम आपकी भ्रान्ति दूर करने के लिए बतला देना चाहते हैं कि शतपथ के लेखानुसार महावीर एक घृत पात्र का नाम है। जिसका कि यज्ञ में प्रयोग किया जाता है। यह उसी पात्र के बनाने का वर्णन है। किसी पूंछ वाले महावीर प्रजापति की मूर्ति बनाने का वर्णन नहीं है।

(८३) प्रश्न—"देवी द्यावा पृथिवी यजु० ३७। ३" इस मन्त्र में महावीर की मूर्ति बनाने के लिये जल तथा मिट्टी के ग्रहण करने का वर्णन है। पृ० १८८ पं० ९।

उत्तर—बस महाराज बस कीजिये। यह पौराणिक ख़राफ़ात वेदों के सिर मढने की कृपा न कीजियेगा। जब वेद परमात्मा को "अकायम्" कह रहा है। और "नतस्य प्रतिमाऽस्ति" से परमात्मा की मूर्ति का निषेध करता हुआ मूर्तिपूजा को "अंधंतमः प्रविशन्ति" से नरक का रास्ता बता रहा है। तो वेद में मूर्ति निर्माण की विधि कहां। अच्छा आप यह बतलाने की कृपा कर कि "महावीर की मूर्ति बनाऊंगा" तथा "महावीर के बनाने के हेतु यह तुम्हारा ग्रहण है" यह मन्त्र के कौन से शब्दों का अर्थ है। और क्या मन्त्र में महावीर तथा मूर्ति शब्द कहीं नज़र पड़ता है। यदि नहीं तो फिर वेद

के नाम से अपनी मन मानी बात बयान करना क्या ईमानदारी कहला सकती है। सुनो और कान खोलकर सुनो कि वेद में कहीं पर भी महावीरादि की मूर्ति बनाने का वर्णन नहीं है। यदि आपके पौराणिक ग्रन्थ किसी वेद विरुद्ध काम को वेद मन्त्र पढ़कर करने का विधान कर डालें तो इसमें वेद का क्या क़सूर है। यह क़सूर तो वेद मन्त्र पढ़कर वेद विरुद्ध काम करने वाले का है। जैसे आप के पारस्कर गृह्य सूत्र ने कां० १ कंडि० ३ सू० २७ में "माता रुद्राणामित्यादि" मन्त्र से गौ मारकर मधुपर्क में मांस भोजन की आज्ञा दे डाली। हालांकि मन्त्र में गौ की महिमा तथा मारने का निषेध वर्णन किया गया है। बतलाइये इस में क़सूर वेद का है या पारस्कर का। बस यही अवस्था सब ग्रन्थों की है। इस मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

देवी द्यावा पृथिवी मखस्यवामद्य शिरोराध्यासं देव
यजने पृथिव्याः। मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—उत्तम गुणों से युक्त प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो! इस समय पृथिवी के बीच विद्वानों के यज्ञ [illegible] तुम दोनों के उत्तम अवयव को मैं सम्यक् सिद्ध करूँ। यज्ञ के उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये तुझ को और यज्ञ के लिये तुझ को सम्यक् सिद्ध करूँ ॥३॥

इस वेद मन्त्र में महावीर का लेश मात्र भी वर्णन नहीं है।

(८४) प्रश्न—इस मन्त्र पर [illegible] श्रौतसूत्र लिखता है कि "मृदमादत्ते पिंडवद्देवीद्यावापृथिवीति। का० २६।१।४" "द्यावापृथिवी" इस मन्त्र से जलमिश्रित मृतपिण्ड को उठावे। पृ० २८८ पं० १४।

उत्तर—वेद मन्त्र में मृतपिंड का वर्णन नहीं है। कात्यायन अपनी वा शतपथ की कल्पना को वेद के सिर मढ़ कर जनता को भ्रम में डाल रहा है। यह क़सूर वेद का नहीं अपितु कात्यायन तथा शतपथ का है।

(८५) प्रश्न—इसके ऊपर शतपथ "अथमृत्पिण्डं परिगृह्णाति। शतपथ १४। १। २। ६" इत्यादि में लिखता है कि "और इन ही दोनों वस्तुओं से महावीर की मूर्ति बनाते हैं।" इत्यादि पृ० १८८ पं० १८।

उत्तर—आपको स्वार्थ ने इतना अन्धा कर रक्खा है कि मूर्ति पूजा को सिद्ध करने के उन्माद में दूसरी पुस्तकों के पाठ का मनमाना अर्थ कर रहे हैं। भला बतलाइये तो सही कि शतपथ के इस पाठ में मूर्ति शब्द कहाँ है। हम शतपथ के पाठ को नीचे दर्ज करते हैं।

अथमृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्रयाच दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवीद्यावा पृथिवी इति यज्ञस्य शीर्ष च्छिन्नस्य रसो व्यत्तरत्स इमेद्यावा पृथिवी अगच्छद्यन्मृदिपं तद्यदापोऽसौ तन्मृदश्चापाँच महावीरा कृता भवन्तितेनैवैनमेत द्रसेन समर्धयति कृत्स्नंकरोति तस्मादाह देवीद्यावा पृथिवी इति मखस्य वामद्यशिरो राध्यासमिति यज्ञो वै मखो यज्ञस्य वामद्य शिरो राध्यासमित्येवैतदाह देव यजने पृथिव्या इति देव यजने हि पृथिव्यै सम्भरति मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे इति यज्ञो वै मखो यज्ञायत्वा यज्ञस्यत्वा शीर्ष्ण इत्येवैतदाह ॥ ९ ॥

इस पाठ में "महावीर कृता भवन्ति" "महावीर बनाये जाते हैं" यह पाठ तो मौजूद है। जिससे यज्ञ के पात्र महावीर

बनाने का वर्णन है। किन्तु यहाँ पर "मूर्ति" शब्द का निशान भी नहीं है। जो कि आपने अपनी तरफ से मिला दिया है। हां शतपथ ने जो अपनी कल्पना को वेद मन्त्र की व्याख्या प्रकट करने का यत्न किया है, वह मिथ्या ही है। क्योंकि वेद मन्त्र में यह वर्णन नहीं है।

(८६) प्रश्न—इससे आगे "देव्योवप्रयो भूतस्य। यजु० ३७। ४" इस मंत्र से महावीर की मूर्ति बनाने के लिये बाँबी की मिट्टी ग्रहण करने का वर्णन है। पृ० १८९ पं० १४।

उत्तर—वेद के इस मन्त्र में भी न महावीर का वर्णन है और न ही उन की मूर्ति बनाने का ज़िकर है। अपितु इस मंत्र का देवता अर्थात् प्रति पाद्य विषय "यज्ञ" है। आप यह बतलाने की कृपा करें कि आपने "अब महावीर को मूर्ति को सम्पादन करूँ" और "महावीर के हेतु तुझे ग्रहण करता हूँ" यह मन्त्र के कौनसे पदों के अर्थ हैं। एक पौराणिक विषय को वेद के सिर मढ़ना ईमानदारी में शामिल नहीं है। देखिये मन्त्र के ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं।

देव्यो वप्रयो भूतस्य प्रथमजा मखास्यवोऽग्रशिरो राध्यासं
देवयजने पृथिव्याः। मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे॥
यजु० ३७। ४

भाषार्थ—हे पहिले से हुई थोड़ी अवस्था वाली तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो! उत्पन्न सिद्ध हुए यज्ञ की सम्बन्धिनी पृथिवी के उस स्थान में जहां विद्वान लोग संगति करते हैं। आज तुम लोगों को शिर के तुल्य मैं सम्यक् सिद्ध किया करूँ। यज्ञ का निर्माण करने वाली तुझको और शिर के तुल्य वर्तमान यज्ञ के लिये तुझको सम्यक उद्यत वा सिद्ध करूँ। ४।

क्या कोई भी मनुष्य इस मन्त्र से महावीर निर्माण सिद्ध कर सकता है।

(८७) प्रश्न—इस के ऊपर कात्यायण श्रौतसूत्र लिखता है कि "उत्तरतो देव्योवभ्रय इति बल्मीक वपाम्। कां० २६। १। ५। ६" बाँबी से मिट्टी लेकर मौणधारण कर मृत्पिण्ड से उत्तर की तरफ रख दे। पृ० १८६ पं० १९।

उत्तर—कात्यायन सूत्र ने जो इस विधि को वेद के सिर मढ़ा है यह तो उसकी कल्पना मिथ्या है। क्योंकि मन्त्र में बाँबी की मिट्टी के लिए कोई शब्द मौजूद नहीं है। हाँ यह पौराणिक कल्पना है। किन्तु इसमें भी महावीर नाम यज्ञपात्र के बनाने की विधि है। बंदर रूप धारी पूँछवाले महावीर की मूर्ति बनाने का कोई वर्णन नहीं है।

(८८) प्रश्न—इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि "अथ बल्मीक वपाम् इत्यादि शत० १४। १। २। १०" बाम्बी की मिट्टी लेता है और उससे महावीर की मूर्ति को परिपूर्ण करता है। पृ० १८६ पं० २३।

उत्तर—यद्यपि हम शतपथ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते और इसकी वेद विरुद्ध कल्पनाओं के हम उत्तरदाता नहीं हैं। और शतपथ का अपनी कल्पना को वेद के मन्त्र में बतलाने का यत्न करना सर्वथा मिथ्या और निर्मूल है तथापि शतपथ के इस पाठ में भी महावीर पात्र के ही बनाने का वर्णन है "मूर्ति" शब्द मौजूद नहीं है। और न ही किसी पूंछ वाले महावीर का वर्णन है। देखिये शतपथ का पाठ यह है।

अथ बल्मीक वपाम्। देव्योवभ्रय इत्येता वा एतद्-

कुर्वत यथा यथैतद्यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत ताभिरेवैनमेतत्समर्धयत कृत्स्नं करोतीति । १० ।

बतलाइये इस पाठ में मूर्ति शब्द कहाँ है ।

---

(८९) प्रश्न—"इयत्यग्र आसीन्मखस्य । यजु० ३७ । ५" इस मन्त्र द्वारा वाराह की खोदी हुई मिट्टी लेकर उस से यज्ञ शिर महावीर के बनाने का वर्णन है । पृ० १९० पं० ३

उत्तर—हम इस बात को फिर बतला देना चाहते हैं कि इस महावीर यज्ञपात्र के बनाने का वर्णन वेद मन्त्रों में नहीं है । अपितु यह शतपथ तथा कात्यायन की अपनी ही कल्पना है । जिसे वह वेद के सिर मढ़ना चाहते हैं । देखिये इस मंत्र में भी न वाराह का वर्णन है न उससे खोदी हुई मिट्टी का तथा न ही महावीर का कहीं वेद मन्त्र में निशान है । अपितु वेद मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "यज्ञ" ही है । और मन्त्र का ठीक २ अर्थ यूं है ।

इयत्यग्रे आसीन्मखस्य तेऽद्यशिरोराध्यासं देव यजने पृथिव्याः । मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे ॥ यजु० ३७ । ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! मैं पहिले सत्कार रूप यज्ञ के लिये तुझ को संगतिकरण की उत्तमता के लिये तुझ को सिद्ध करूँ । जिस आपके यज्ञ का उत्तम गुण है । उस आप को आज भूमि के बीच इतने विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊँ ॥ ५ ॥

क्यों जी यह वाराह से खोदी हुई मिट्टी में क्या विशेषता होती है । जो उसको महावीर निर्माण में आवश्यक अंग समझा गया है । क्या उसकी थोथनी से लगे हुए किसी विशेष पदार्थ से मिट्टी में विशेष गुण उत्पन्न होजाते हैं । और क्या

वाराह और महावीर का क़ारूरा आपस में मिलता जुलता है। बात क्या है। क्या हमारे पौराणिक भाई इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

(९०) प्रश्न—इस के ऊपर कात्यायन श्रौत सूत्र लिखता है कि "इयत्यग्रे इति वराह विहितम्। कां० २६। १। ७" इस मन्त्र से जंगली वराह की खोदी हुई मिट्टी को लेकर मौन होकर बल्मीक की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रखदे। पृ० १९० पं० ८।

उत्तर—वेद मन्त्र में उक्त विधि का प्रतिपादन बतलाना तो सर्वथा निर्मूल ही है। हां कात्यायन तथा शतपथ की अपनी ही यह कल्पना यज्ञ के मुख्य घृत पात्र महावीर के बनाने की है। इस में भी मूर्ति वा किसी प्राणी विशेष की आकृति बनाने का वर्णन नहीं है।

(९१) प्रश्न—इसके ऊपर शतपथ "अथ वराह विहितम्। शत० १४। १। २। ११" में लिखता है कि मूर्ति बनाने को वराह विहित मृत्तिका लेता है। पृ० १९० पं० १२।

उत्तर—कहिये महाराज! आपके ख्याल में यदि वाराह ने सृष्टि के आरंभ में पृथिवी का उद्धार कर दिया था। तो क्या सारे ही वाराह पृथिवी के पति होगये और पूज्य होकर उनकी खोदी मिट्टी भी यज्ञ में उपयोगी बन गई। और यदि यही बात है तो वाराह की मिट्टी से महावीर की मूर्ति बनाना अन्याय है। क्यों न यज्ञ में वाराह की ही मूर्ति बनाई जावे। क्या महावीर ने वाराह से भी बढ़कर कोई उपकार किया है। इस विषय में कुछ प्रकाश अवश्य डालना चाहिये। हां, फिर आप

मूर्ति शब्द कहां से ले आये इस पाठ में तो कहीं मूर्ति शब्द नज़र नहीं आता। देखिये पाठ यूं है।

अथ वराह विहितम्। इयतीर्हृत्वा इयमग्रे पृथिव्या स प्रादेश मात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याःपतिः प्रजापति स्तेनैवैनमेतन्मिथुनेनाप्रियेणधान्ना समर्धयति कृत्स्नं करोतीति ॥ ११ ॥

कृपया अब बतलाइये इस पाठ में मूर्ति शब्द कहां है।

(९२) प्रश्न—इससे आगे "इन्द्रस्य" इस मन्त्र से महावीर बनाने के लिये रोहिष तृण ( घास ) का ग्रहण किया है। मन्त्र में घास को विष्णु तेज कहकर महावीर बनाने के लिये ग्रहण किया है। पृ० १९० पं १८।

उत्तर—"इन्द्रस्यौजः। यजु० ३७। ६" इस मन्त्र में न तो महावीर के बनाने का वर्णन है और न ही उस के लिये घास को विष्णु तेज कह कर ग्रहण किया है। अपितु इस मन्त्र का विषय यज्ञ है। और इस में यह वर्णन है कि जो मनुष्य धर्म युक्त कार्य्यों को करते हैं वे सब से शिरोमणि होते हैं। अतः आपकी कल्पना सर्वथा निर्मूल है।

(९३) प्रश्न—कात्यायन श्रौत सूत्र कहता है कि इस घास को लेकर मौन धारण कर वराह की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रखदे ॥ पृ० १९० पं० २।

उत्तर—कात्यायन की यह विधि यज्ञ पात्र बनाने की स्वयं कल्पित है। वेद में इसका वर्णन नहीं है।

(९४) प्रश्न—शतपथ "अथयत्यूयन् १४। १। २। १२" कहता है कि यह घास विष्णु तेज से उत्पन्न हुआ है। इसलिये

यज्ञ के मुख्य महावीर निर्माण में इस को लिया जाता है। पृ० १६० पं० २२।

उत्तर—यह यज्ञार्थ महावीर नाम घृत पात्र की कल्पना शतपथ की स्वयं कल्पित है, वेद की नहीं है।

(६५) प्रश्न—"चत्वारि शृङ्गा। यजु० १७। ९१" इस मंत्र में यज्ञ को "त्रिधाबद्धः" लिखा है। इस की भाषा यह है कि यज्ञ मन्त्र ब्राह्मण और कल्प बद्ध है। यज्ञ प्रकरण में जो अर्थ मन्त्र का होता है। उसी अर्थ को ब्राह्मण कहता है। और क्रिया बतलाता हुआ उसी अर्थ को कल्प सूत्र कहता है। यज्ञ प्रकरण होने के कारण इस प्रकरण में मन्त्र ब्राह्मण कल्प तीनों ही मिलकर चलते हैं। पृ० १९० पं० २५।

उत्तर—यह ठीक है कि मंत्र जिस बात को कहता है। ब्राह्मण उसका अनुवाद करता है। और कल्प उसकी विधि बयान करता है। इनमें वेद ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण है। ब्राह्मण तथा कल्प ऋषि कृत होने से परतः प्रमाण हैं, ये दोनों वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक कि वेद के अनुकूल हों। जहाँ ये वेद के प्रतिकूल हों वहाँ ये प्रमाण न हो सकेंगे। यहाँ पर वेद मन्त्रों में महावीर का नाम तथा उसके बनाने की विधि का सर्वथा अभाव है। और ब्राह्मण तथा कल्प ने स्वतंत्ररूप से उसकी कल्पना की है। अतः यह विधि मानने के योग्य नहीं है। चूँकि ब्राह्मण तथा कल्प महावीर को यज्ञ पात्र मानते हैं। अतः यहाँ पर किसी प्रजापति की अथवा पूँछवाले हनुमानजी की मूर्ति की कल्पना करना सर्वथा ही ब्राह्मण तथा कल्प के भी विरुद्ध होने से मिथ्या प्रलाप मात्र ही है।

(९६) प्रश्न—आगे "प्रैतु ब्रह्मणस्पति। यजु० ३७। ७"

मन्त्र है। उसका अर्थ है कि वेद के रक्षक परमात्मा महावीर रूप में हमारे यज्ञ में आवें। पृ० १९१ पं० ५।

उत्तर—आपने तो जनता को भ्रम में डालने का ठेका ही ले रक्खा है। वरना इस मन्त्र में न तो महावीर का नाम है। और न ही परमात्मा से महावीर रूप में आने की प्रार्थना है। अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन है कि "जो मनुष्य और जो स्त्रियां स्वयं विद्या आदि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त कराके विद्या सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं, वे पुरुष और स्त्रियां निरन्तर आनन्दित होते हैं।"

(९७) प्रश्न—इसके ऊपर कात्यायन सूत्र लिखता है कि "कृष्णाजिनं परिगृह्योत्तरतः परिवृत्तं गच्छन्ति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति का० २६। १। १२" "प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः" इस मन्त्र को बोलकर उस समस्त सामग्री वाले कृष्ण मृग चर्म को यज्ञस्थल के अन्दर ले जावे। और तीन महावीर बनावे। पृ० १९१। पं० ६।

उत्तर—कोई किसी मन्त्र को बोलकर कुछ ही करे यह कर्ता की स्वतन्त्र इच्छा है। वरना इस मन्त्र में इस विधि का नाम तक भी नहीं है। हां वेद में न होते हुए भी शतपथ ने तथा कात्यायन ने महावीर नाम के यज्ञ पात्र के बनाने की कल्पना अवश्य की है। यहां पर आप ने शतपथ तथा कात्यायन के उस लेख को छोड़ दिया जिस में यह लिखा है कि वह महावीर किस शक्ल का बनावें। इस लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह महावीर किसी कल्पित प्रजापति की मूर्ति है या

यज्ञपात्र ही है। हम उस समस्त पाठ को नीचे देते हैं। पाठक ग़ौर से पढ़ें—

शतपथ—

मृत्पिण्डमादाय महावीरं करोति प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिव हि शिरो मध्ये संग्रहीतं मध्ये संग्रहीतमिवहि शिरोऽथास्योपरिष्टात्त्र्यंगुलं मुखमुन्नयति नासिकामेवास्मिन्नेतद्दधातितं निष्ठितमभिमृशति [ शत० १४। १। २। १७ ]

कात्यायन—

मृदमादाय मखायेति महावीरं करोति प्रादेशमात्र मूर्ध्वमासेचनवन्तं मेखलावन्त मध्य संग्रहीतमूर्ध्वं मे मेखलायास्त्र्यङ्गुलम् का० २६। १। १६

महीधर—

महावीर पर्याप्तं तूष्णीं मृत्पिण्डमादाय मंत्रेण महावीरं करोति। कीदृशम्। आदेशोच्चं गर्तवन्तं मेखलायुतं मध्ये संकुचितं मेखलोपरित्र्यंगुलोच्चमिति सूत्रार्थः।

महीधर भाष्य यजु० ३७। ७

भाषार्थ—मिट्टी लेकर मन्त्र पढ़कर पर्याप्त महावीर बनाता है। एक बालिश्त ऊँचा, गढ़े वाला, सिंचन करने में समर्थ, मध्य में खाली, ऊपर मेखला तीन अंगुल ऊँचो मुख के समान, नासिका भी उसी में बनाता है। उस पड़े हुए को मसलता है।

अब बतलाइये उपरोक्त शकल महावीर नामक यज्ञपात्र की हो सकती है या महावीर नामक प्रजापति हनुमान की। यदि यह हनुमान की मूर्ति है तो आँखें कान हाथ पैर पेट पूँछ आदि अङ्गों के बनाने का क्यों विधान नहीं है। और बीच में से संकुचित, सेंचन में समर्थ गढ़ेवाला मेखला तीन अंगुलवाला इत्यादि

विधान प्रजापति हनुमान की मूर्ति में कैसे संगत हो सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि महावीर यज्ञ-पात्र का ही नाम है। हनुमान की मूर्ति का नाम नहीं है।

(९८) प्रश्न—फिर "मखस्य शिरोऽसि" इस मन्त्र से अपने बायें हाथ में रक्खे हुवे महावीर को दाहिने हाथ से छुए और और इसी मन्त्र को पढ़कर इससे महावीर की स्तुति करे। पृ० १६१ पं० १०।

उत्तर—"यजु० ३७। ८" उपरोक्त मन्त्र में न महावीर का नाम है, न बायें हाथ में रखकर दायें हाथ से छूने का वर्णन है, न ही स्तुति करने की गन्ध मात्र है। अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन किया गया है कि "जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं। वह दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों"। आपने यहाँ पर शतपथ और कात्यायन को क्यों चुरा लिया इसलिये कि आपकी महावीर स्तुति की पोल न खुल जावे। श्रीमान् जी यहाँ महावीर प्रजापति हनुमान की स्तुति नहीं। अपितु महावीर यज्ञ-पात्र को घास विशेष की कूंची से घिसा कर खुरदरापन हटा कर मृदु (कूला) करने का वर्णन है। वह समस्त पाठ इस प्रकार है।

शतपथ—
अथ गवेधुकाभि र्हिन्वति। (शत० १४। १। २। १९)

कात्यायन—
गवेधुकाभिः श्लक्ष्णयति मखायेति प्रति मंत्रम्।
(का० । २६। १। २२)

महीधर—
गवेधुकाभिः महावीरान् घर्षणेन मृदून् करोति मखायेति प्रति मंत्रमेकैकम्। (महीधर भाष्य यजु० ३७। ८)

भाषार्थ—"मखाय" इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र से अलग अलग महावीरों को घास विशेष की कूंची से घिसकर मृदु (कूला) करता है।

श्रीमान् जी! फ़रमाइये यह घास विशेष की कूंची से घिसा कर यज्ञ-पात्र महावीर को मृदु किया जा रहा है। या महावीर प्रजापति की स्तुति हो रही है। झूठे का सत्यानाश हो।

(६६) प्रश्न—फिर "अश्वस्य त्वावृष्णः यजु० ३७। ९" इस मन्त्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावे। पृ० १९१ पं० ११

उत्तर—इस मन्त्र को पढ़कर कोई कैसा ही काम करे। किंतु इस मंत्र में न तो कहीं पर महावीर का नाम है। और न ही लीद से उसके पकाने का वर्णन है। अपितु इस मन्त्र में हिकमत (वैद्यक) का प्रकरण होने से यह वर्णन है कि "जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं।"

कृपया यह तो बतलावें कि यहाँ आप शतपथ और कात्यायन को क्यों छोड़ गये। इसलिये कि महावीर प्रजापति की मूर्ति की पाखाने की धूनी से कुछ शेखी किरकिरी होने लगी। देखिये शतपथ तथा कात्यायन क्या कहते हैं।

शतपथ—

अथैनान् धूपयति। अश्वस्यत्वा वृष्णः शक्ना धूपयामीति॥
(शत० १४। १। २। २०)

कात्यायन—

अश्वशकृता धूपयत्यश्वस्येति प्रति मंत्रम् (का० २६। १ २३)
प्रदहनं च मखायेति प्रति मंत्रम् (का० २६। १। २४)

महीधर—

दक्षिणाग्निदीप्तेनाश्वपुरीषेण त्रिभिर्मन्त्रै स्त्रीन महावीरान् धूपयेत्। एकैकधूपेन सप्तसप्ताश्वशकृन्ति गृह्णाति (२३)
मखाय मखस्य शीर्ष्णोत्व त्वांनिर्दहामि (२४)

भाषार्थ—दक्षिण अग्नि के जलने पर घोड़े के पाखाने से तीन मन्त्रों से तीन महावीरों को धूप दे। एक-एक महावीर के धूप देने में सात-सात घोड़ों का पाखाना ग्रहण करता है। मखाय इत्यादि मंत्र से तुझे जलाता हूँ वा तपाता वा पकाता हूँ। कहिये महाराज! यह यज्ञपात्र महावीर को पकाया जा रहा है या महावीर प्रजापति हनुमान जी को सात-सात घोड़ों के पाखाने की धूनी देकर प्रसन्न किया जा रहा है। आपके महावीर जी ने धूप तो अच्छी पसन्द की है। हींग लगे न फटकड़ी रङ्ग भी चोखा हो। आपको तो मौज हो गई। क्योंकि महावीर की धूपार्थ तथा वराह भगवान् के भोगार्थ तो आपको कौड़ी खर्चने की ज़रूरत ही न पड़ेगी। धन्य हो अन्धी देवी के गंजे पुजारी, जैसे को वैसे मिल गये।

(१००) प्रश्न—बाद में "ऋजवेत्वा" इस मन्त्र से पके हुए महावीरों को पकने के स्थान से निकाले। पृ० १९१ पं० १३

उत्तर—"यजुर्वेद ३७। १०" में न तो महावीर का नाम है। न ही पके हुए महावीरों को निकालने का वर्णन है। अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन है कि "जो लोग विनय और सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकार रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं" आपने फिर यहाँ पर शतपथ और कात्यायन को छिपा लिया। जिन में लिखा है कि उन महावीरों को बकरी के दूध से धोवे। प्रतीत होता है कि उसके लिखने

से महावीर प्रजापति हनुमान की मूर्ति का सिद्ध होना असंभव बन जाता है। धोने से यज्ञपात्र ही सिद्ध होते हैं। लीजिये हम सारा पाठ दे देते हैं।

शतपथ—

अथैनाना च्छृणत्ति। अजायै पयसा (शत० १४।१।२।२५)

कात्यायन—

अजापयसा विसिञ्चति मखायेति प्रति मंत्रम् (क० २६।१।२६)

महीधर—

अजादुग्धेनत्रीन् महावीरांस्त्रिभिः तुल्य मंत्रैः सिञ्चतीत्यर्थः। (महीधर भाष्य १०)

भाषार्थ—पके हुए महावीरों को तीन-तीन समान मंत्रों से तीनों को बकरी के दूध से धोते हैं।

महावीरों को धोने के पीछे यज्ञपात्रों को यज्ञशाला में रखने का वर्णन शतपथ में आता है। और उन यज्ञपात्रों में महावीर पात्र को भी गिना गया है। देखिये—

कुशान्त्सꣳस्तीर्य द्वद्वं पात्राण्युपसादयत्युपयमनीं महावीरं परीशासौ पिन्वने रौहिणकपाले रौहिणहवन्यौ स्रुचौ यदुचान्यद् भवति। (शत० १४।१।३।१।

भाषार्थ—कुशायें बिछाकर दो-दो पात्र रखता है। उपयमनी, महावीर, परीशा, पिन्वन, रौहिणकपाल, रौहिनहवनी, स्रुव, और भी जो दूसरे पात्र हों।

कहिये श्रीमान् जी! अब तो तसल्ली हो गई कि महावीर किसी पौराणिक प्रजापति वा हनुमान् की मूर्ति नहीं है। अपितु यज्ञ का एक विशेष पात्र है। क्योंकि महावीरों का धोकर यज्ञपात्रों के साथ यज्ञशाला में रक्खा जाना इस बात का प्रबल प्रमाण है।

(१०१) प्रश्न—फिर "यमायत्वा" इस मन्त्र से महावीर का तीनबार प्रोक्षण करे। पृ० १९१ पं १४।

उत्तर—यहां पर "यजु० ३७। ११" में न तो महावीर का नाम है और न ही उस के तीन वार प्रोक्षण का वर्णन है। अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन है कि "जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं। वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं" हां, शतपथ तथा कात्यायन में महावीरों को प्रोक्षण करके अर्थात् पोंछ कर उन में घी भरना लिखा है। आपने प्रोक्षण तो लिख दिया। किन्तु घी चुरा गये क्योंकि घी भरने से स्पष्ट सिद्ध है कि महावीर यज्ञ पात्र हैं हनुमान जी की मूर्ति नहीं हैं। क्योंकि मूर्ति में घी नहीं भरा जाता अपितु पात्रों में घी भरा जाता है।

लीजिये, हम पूरा पाठ यहां पर दर्ज कर देते हैं।

शतपथ—

तदेतं प्रचरणीयं महावीरमाज्येन समनक्तिदेवस्त्वा सविता मध्वानक्त्विति। शत० १४। १। ३। १३

कात्यायन—

तेषु महावीरमाज्यवन्त मर्चिरसीति।

का० २६। ३। ३। ४

महीधर—

तेषु मुञ्जेषु संस्कृताभ्यपूर्णं प्रचरणीयं महावीरं निदधातीति सूत्रार्थः (महीधर ३७। ११)

भाषार्थ—उन कुशाओं पर शुद्ध घी से भरा हुआ महावीर धरता है यह सूत्र का अर्थ है।

अब तो आपको महावीर के यज्ञ पात्र होने में संदेह न रहा होगा ! !

(१०२) प्रश्न—फिर "अनाधृष्टा यजु० ३७ । १२" इस मन्त्र से महावीर के ऊपर अंगूठा और अंगुली रखकर महावीर की स्तुति करे । पृ० १९१ पं० १४ ।

उत्तर—यहां पर मन्त्र में न तो महावीर का नाम है और न ही उस पर अंगुली और अंगूठा रखकर उस की स्तुति करने का वर्णन है अपितु मन्त्र में यह वर्णन है कि "हे मनुष्यो! जैसे अग्नि जीवन को, जैसे बिजली प्रजा को, जैसे सूर्य्य देखने को धारण करता है। ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशय जन बल को देता है वैसे ही सुलक्षण पत्नी सब सुखों को देती है। उसको तुम रक्षा किया करो।"

श्रीमान् जी! यह अंगुली और अंगूठा महावीर पर रखकर स्तुति करने का क्या तरीक़ा है। और यह अंगुली और अंगूठा महावीर के कौन से अंगों पर रक्खे जाते हैं। क्या यही तरीक़ा अंगुली और अंगूठा रखने का शिव विष्णु गणेश आदि की मूर्तियों के साथ भी बरता जाता है या यह विशेषता महावीर के साथ ही है। फिर यह स्तुति करना किन पदों का अर्थ है। और आपने कहां से यह अभिप्राय लिया है। या घर से ही घड़ कर डाल दिया। ताकि महावीर के साथ स्तुति शब्द मिला दिया तो मूर्ति पूजा सिद्ध होजावेगी। देखिये कात्यायन सूत्र का अर्थ करते हुये महीधर लिखते हैं कि "महावीरोपर्यंगुष्ठांगुलिदेशं धरन्तं यजमानमध्वर्युर्मन्त्रान् वाचयतीति सूत्रार्थः" महावीर के ऊपर अंगूठा और अंगुली धरने वाले यजमान को अध्वर्यु मन्त्र बुलवाता है, यह सूत्र का अर्थ है। इससे

साफ़ साबित है कि महावीर की स्तुति करना कहीं भी लिखा नहीं है। यह आपने मूर्ति पूजा की सिद्धि के लोभ में घर से ही मिला दिया है। यह है आप की ईमानदारी का नमूना।

(१०३)प्रश्न—इस प्रकार इस प्रकरण में महावीर की परिक्रमा आदि पूजन की सब क्रियायें लिखी हैं॥ पृ० १६१ पं० १६।

उत्तर—इस से इस प्रकरण में कहीं भी यह साबित नहीं हो सकता कि महावीर नाम प्रजापति की मूर्ति बनाई जावे। या उसकी स्तुति प्रार्थना परिक्रमा आदि पूजा की जावे। अपितु बनाने पकाने घिसाने, गढेवाली शक्ल बनाने, घी भरने, पात्रों में गिनती होने तथा मूर्ति शब्द कहीं भी न होने से यह साबित होता है कि महावीर नामक एक घृत रखने का यज्ञ पात्र है। जिसकी शतपथ तथा कात्यायन ने स्वयमेव कल्पना की है वेद में इसका नाम मात्र भी नहीं है। और यह कल्पना भी वेद के विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं मानी जासकती। इस कल्पना में सृष्टि क्रम के विरुद्ध अश्लीलता भी है हम नमूने के तौर से एक दिखा देते हैं, देखिये—

शतपथ—

अथ पत्न्यै शिरोऽपवृत्य। महावीर मीक्षमाणां वाचयति त्वष्ट्रमन्तस्त्वा सयेमेतिवृषावै प्रवर्ग्यो योषा पत्नी मिथुनमेवै-तत्प्रजननं क्रियते॥ शत० १४। १। ४। १६॥

कात्यायन—

त्वष्टृमन्त इत्येनां वादयति का० २६। ४। १३

महीधर—

महावीरमीक्षमानामपनीत शिरो वस्त्राधम पश्यन्ती-मध्वर्युर्वाचयति मैथुनाय त्वामुपस्पृशामः॥

भाषार्थ—महावीर को देखती हुई शिर से कपड़ा उतारने वाली गरमी को अनुभव करती हुई यजमान पत्नी को अध्वर्यु बुलाता है कि हम तुझ को मैथुन के लिये स्पर्श करते हैं।

कृपया इस पर प्रकाश डालें कि इस महावीर के प्रकरण में कौन किसको मैथुन के लिये स्पर्श करता है।

(१०४) प्रश्न—इसको देखकर संदेह हुआ कि महावीर ईश्वर नहीं है, हमारी बनाई एक मूर्ति है। इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ ने "उभयं वा एतत्प्रजापतिः" इस लेख द्वारा परमेश्वर को निराकार तथा साकार दो रूप वाला बतला-कर संदेह दूर कर दिया। पृ० १९१ पं० १७।

उत्तर—न तो यह किसी को संदेह ही हो सकता है कि *"महावीर ईश्वर नहीं हमारी बनाई मूर्ति है"* क्योंकि यह निश्चय है कि महावीर एक यज्ञ पात्र है और इस प्रकरण में कोई ऐसा शब्द ही नहीं कि संदेह हो सके। और न ही इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ ने "उभयं वा" कहा है। और न ही 'उभयं वा' ईश्वर के दो रूप वर्णन करता है। अपितु वह यज्ञ की दो अवस्थायें सूक्ष्म और स्थूल वर्णन करता है। यहाँ पर *"प्रजापति"* नाम यज्ञ का है। और *"उभयं वा"* से पहिले "प्रजापति र्वा एष यज्ञो भवति" पाठ मौजूद है। जिसको आपने चुरा कर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया है। ( विशेष देखें नं० ४ ) हम इस महावीर के प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व एक प्रमाण आपको और दे जाते हैं कि महावीर यज्ञपात्र का नाम है। और कि प्रजापति हनुमान की मूर्ति का नाम नहीं है। प्रमाण इस प्रकार है—

प्रश्न—तदाहुः। यद्वानस्पत्यैर्देवेभ्यो जुह्वत्यथ कस्मादेतं

मृन्मयेनैव जुहोतीति तन्मृदश्वा पाँच महावीराः कृता भवन्ति। ( शत० १४। २। १। ५३ )

भाषार्थ—महावीर संज्ञक यज्ञपात्र मिट्टी के क्यों बनावे। काठके पात्रों से देवताओं के लिए हवन किया करते हैं। सो वे भी काष्ठ के क्यों न बनाये जावें, ऐसा प्रश्न करते हैं।

उत्तर—स यद्वानस्पत्यः स्यात्। प्रदह्येत। यद्धिरण्यमयः स्यात्प्रलीयेत। यदयस्मयः स्यात् प्रदहेत्। यल्लोहमयःस्यात्प्रसिच्येत। परीशासावथैष एवैतस्मा अतिष्ठत। तस्मादेनं मृन्मयेनैव जुहोति। ( शत० १४। २। १। ५४ )

भाषार्थ—काष्ठ का वह यदि हो तो वह जल जावे। स्वर्ण का गल जावे। लोहे का चू जावे। अयोमय फूँकने लगे। इस लिये यही ठीक है कि मिट्टी का हो, उससे होम करे। इस प्रश्नोत्तर से स्पष्टतर हो गया कि महावीर यज्ञ-पात्र का नाम है, हनुमान जी की मूर्त्ति नहीं है।

## सारांश

(क) वेद में न महावीर का नाम है, न बनाने आदि का वर्णन है।

(ख) यह कल्पना शतपथ तथा कात्यायन ने स्वयं करके वेद के सिर मढ़ने का यत्न किया हैं। जो कि वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है।

(ग) शतपथ तथा कात्यायन में भी महावीर नाम यज्ञ के विशेष घृत-पात्र का है हनुमानादि की मूर्त्ति का नाम नहीं है।

(घ) इस का मूर्त्ति-पूजा की सिद्धि में पेश करना उन्माद मात्र है।

(ङ) इस प्रकरण में अश्लीलता होने से सब के लिये त्याज्य है।

(१०५) प्रश्न—जैसे माता-पिता का पूजन पंचतत्त्वात्मक शरीर के द्वारा होता है उसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उसके पंच तत्वों के द्वारा होता है। अतएव यह शरीर परिच्छिन्न पूज्य है। और सृष्टि के बाहर जो ब्रह्म रूप है वह अविज्ञेय अनिर्वचनीय है। पृ० १६२। पं० १।

उत्तर—वह परमात्मा सृष्टि के अन्दर तथा बाहर सर्वत्र व्यापक है। वह एक रस है। वह अनिर्वचनीय नहीं है। अपितु वेद उसका "सपर्य्यगात्" "ईशावास्यम्" "न तस्यप्रतिमास्ति" इत्यादि अनेकों मन्त्रों से वर्णन करते हैं। वह अविज्ञेय नहीं है। अपितु बाह्य स्थूल इन्द्रियों से अविज्ञेय है। आत्मा के द्वारा परमात्मा का ज्ञान होता है। "भोगायतनं शरीरम्" अच्छे और बुरे कर्मों के फल भोगने के ठिकाने क शरीर कहते हैं। हमारे माता पिता जीव हैं। उन्होंने अपने पिछले कर्मों के फल भोगने के लिए परमात्मा की व्यवस्था से यह शरीर प्राप्त किया है। उनको शरीर के द्वारा सुख तथा दुःख दोनों का अनुभव होता है। अतः वे हमारी पूजा से सुख तथा अपमान से दुःख महसूस करते हैं। माता-पिता के शरीर की भांति ईश्वर का शरीर नहीं है। परमात्मा न पाप कर्म करता है न उसको उन कर्मों का फल भोगने के लिए शरीर धारण करना पड़ता है। पांच तत्व उसका वास्तव शरीर नहीं है अपितु लाक्षणिक रूप से पांचों तत्वों को परमात्मा का शरीर कहा गया है। परमात्मा उनके द्वारा सुख-दुःख महसूस नहीं करता यदि आप पांचों तत्वों को परमात्मा का वास्तव शरीर

मान कर माता-पिता की भांति पांच तत्व की पूजा से परमात्मा की प्रसन्नता मानेंगे, तो ज़मीन खोदने से, लकड़ी फाड़ने से, पत्थर तोड़ने से, रोटी खाने आदि से परमात्मा को दुःख और कष्ट होना भी मानना पड़ेगा। अतः पांच तत्व न उसका वास्तव शरीर हैं और न ही उनकी पूजा से परमात्मा की पूजा होती है। अपितु अपने आत्मा में परमात्मा का अनुभव करना ही परमात्मा की पूजा है। अच्छा, भला यह तो बतलायें कि यदि पांच तत्वों की पूजा ही परमात्मा की पूजा है, तो आप विशेष मूर्ति निर्माण, प्राण प्रतिष्ठा आदि पचासों ढोंग क्यों रचते हैं? प्रत्येक ईंट पत्थर ढेले के द्वारा पूजा हो सकती है फिर मूर्ति में विशेषता क्या है? और जब हमारा शरीर भी पांच तत्वों का बना हुआ है तो फिर हम अपने शरीर द्वारा ही परमात्मा का पूजन क्यों न करें, इधर उधर मंदिरों में क्यों धक्के खाते फिरें? अस्तु; पाखण्ड की बातों को छोड़ो और अपने आत्मा के द्वारा परमात्मा की पूजा करो। यही वेद का सिद्धांत है।

## असलियत

(१०६) प्रश्न—इनका कहना है कि वेद मूर्ति पूजन का स्वतः ही निषेध करता है। पृ० १९२ पं० ८।

उत्तर—इसमें क्या संदेह है। वेद ने परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय नहीं माना और सर्वथा निषेध किया है। यह निषेध इस प्रकार से है कि—

अंधंतमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याꣳरताः ॥१॥

(यजु० ४०।९)

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥२॥ ( यजु० ३२ । ३ )
यद्वाचानाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेवब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१॥ (केनोपनिषत्)

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्य रूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥१॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है ॥२॥ जो वाणी की इयत्ता अर्थात् यह जल हैं लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उस से भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥१॥ इत्यादि अनेक प्रमाण हैं।

## प्रकरण विच्छेद

(१०७) प्रश्न—यहाँ पर वेद प्रकरण बांध कर ईश्वर का ज्ञान करा रहा है किंतु इन लोगों के इस अनोखे अर्थ से प्रकरण का मतलब ही ग़ायब हो जाता है। पृ० १९३ पं० ८।

उत्तर—यह आपको भ्रम है कि स्वामीजी का अर्थ प्रकरण के विरुद्ध है। अपितु स्वामीजी का अर्थ प्रकरण के सर्वथा अनुकूल है जैसे—

तदेवाग्नि स्तदादित्यस्तद्वायु स्तदुचन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यंचं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

( यजु० अ० ३२ )

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यह परमात्मा ही ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि, वह प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य, वह अनन्त बलवान् और सब का धर्ता होने से वायु. वह अनन्त-स्वरूप और आनन्द-कारक होने से चन्द्रमा, वही शीघ्रकारी वा शुद्ध-भाव से शुक्र, वह महान् होने से ब्रह्म, वह सर्वत्र व्यापक होने से आप, और वह सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति नामवाला है ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥ हे मनुष्यो ! जिस विशेष कर प्रकाशमान पूर्ण परमात्मा से सब निमेष कला काष्ठा आदि काल के अवयव अधिक कर उत्पन्न होते हैं। उस इस परमात्मा को कोई भी न ऊपर न तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और न बीच में सब ओर से ग्रहण कर सकता है, उसको तुम सेवो ॥२॥ इससे आगे विवादास्पद मंत्र "न तस्य प्रतिमा अस्ति" है। जिसका अर्थ प्रकरण के विरुद्ध कैसे है।

(१०८) प्रश्न—पुरुष सूक्त के अन्त में "श्रीश्चते" इस मंत्र में श्री और लक्ष्मी ईश्वर की स्त्रियां बतलाई हैं।

पृ० १९३ पं० २०।

उत्तर—धन्य है आपकी बुद्धि को ! वेद मंत्रों के अर्थ भी आप खूब समझते हैं। आपने इस मंत्र से यह समझा कि ईश्वर के भी वैसे ही दो स्त्रियां हैं जैसे कृष्ण के तीस करोड़।

और ईश्वर भी उन दोनों से वैसे ही लीला करता है जैसे कृष्ण तीस करोड़ गोपियों से। ( देखो नं० ६२ ) यदि आपने ऐसा ही समझा है तो यह आपकी महाभूल है। इससे परमात्मा का साकार या मूर्तिमान सिद्ध होना असंभव है। क्योंकि यहाँ पर उपमा अलंकार है। जैसे—

वेद—"श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यौ। यजु० ३१। २२"

स्वामी दयानन्द—हे जगदीश्वर आपकी समग्र शोभा और सब ऐश्वर्य भी दो स्त्रियों के तुल्य वर्तमान हैं।

महीधर—श्रीः लक्ष्मीश्च ते तव पत्न्यौ। जायास्थानीये त्वद्वश्ये इत्यर्थः। यया सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः संपदित्यर्थः। यया लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः। सौन्दर्यमित्यर्थः।

भाषार्थ—श्री और लक्ष्मी आपकी पत्नियें हैं। पत्नी के स्थान में आपके वश में हैं यह अर्थ है। जिससे सब जनता आश्रय लेनेवाली होती है वह श्री संपत्ति यह अर्थ है। जिससे लोगों से देखा जाता है वह लक्ष्मी, सौंदर्य यह अर्थ है।

कहिये महाराज! यह तो महीधर जी आपके भाष्यकार भी स्वामी दयानन्द जी का अनुमोदन कर रहे हैं। हमारा क्या क़सूर है। आपके भाष्यकार ने ही आपके सारे मनसूबे खाक में मिला दिये। "इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से।"

(१०९) प्रश्न—अब "तदेवाग्निः" इस मंत्र से ईश्वर के व्यापकत्व और सर्व स्वरूपत्व से यह दिखलाया है कि अग्नि आदि जितनी साकार मूर्तियाँ हैं। वे सब ब्रह्म की मूर्तियाँ हैं।

पृ० १६३ पं० २१

उत्तर—इस मंत्र में यह बतलाया गया है कि ईश्वर के

गुण कर्म स्वभाव अनेक होने से उसके अनेक नाम हैं ( देखो नं० १९ ) व्याप्य के साकार होने से व्यापक साकार नहीं हो सकता ( देखो नं ६ से ९ ) "द्वासुपर्णा" इत्यादि अनेक मंत्र संसार के उपादान कारण प्रकृति को नित्य वर्णन कर रहे हैं। अतः अग्नि आदि जितनी साकार मूर्तियाँ हैं वह प्रकृति की हैं ब्रह्म की नहीं है। क्योंकि निराकार परमात्मा संसार का निमित्त कारण हैं। उपादान कारण प्रकृति है।

( देखो नं० १० से २३ )।

(११०) प्रश्न—"सर्वेनिमेषा" इस मन्त्र में यह दिखलाया है कि काल विभाग और बिजलियाँ जो पैदा हुई हैं वे सब ब्रह्म से पैदा हुई हैं। अर्थात् ब्रह्म सब जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" है। पृ० १९३ पं० २३।

उत्तर—ब्रह्म जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" नहीं है। अपितु नित्य प्रकृति उपादान कारण तथा ब्रह्मनिमित्त कारण है। अतः उस निमित्त कारण परमात्मा ने जब नित्य प्रकृति उपादान कारण से जगत् को बनाया तो वक्त का शुमार आरंभ हुआ। क्योंकि नित्य पदार्थों में काल का उपयोग नहीं। अपितु कार्य रूप अनित्य पदार्थों से काल का संबन्ध है। इस मन्त्र ने जहाँ निमित्त कारण परमात्मा से संसार की उत्पत्ति बतलाई है। वहाँ परमात्मा सूक्ष्म निराकार भी वर्णन किया है।

(१११) प्रश्न—अब "न तस्य" इस मन्त्र में यह कहना है कि ब्रह्म के तुल्य महत्त्व रखनेवाली कोई वस्तु संसार में नहीं। पृ० १९३ पं० २५।

उत्तर—प्रतिमा शब्द का अर्थ महत्त्व होता ही नहीं। अपितु प्रतिमा शब्द का अर्थ 'नाप का साधन' तथा 'परिमाण'

'सादृश्य' 'प्रतिबिम्ब' तथा मूर्ति, होता है। आपने महत्त्व अपनी ओर से ही कल्पना किया है। देखिये इस पर महीधर क्या लिखते हैं—

"न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते"

भाषार्थ—उस पुरुष परमात्मा की प्रतिमा अर्थात् प्रतिनिधि सदृश माप आदि कोई वस्तु नहीं है। अतः प्रतिमा का महत्व अर्थ सर्वथा निर्मूल है।

श्रीमान् जी! भला यह तो बतलाने की कृपा करें कि जब ब्रह्म के सदृश महत्त्व रखने वाली कोई वस्तु संसार में नहीं तो फिर ये मूर्त्तियाँ उसके सदृश महत्त्व रखने वाली कैसे हो सकती हैं। अतः परमात्मा के स्थान में उनकी पूजा व्यर्थ ही है।

(११२) प्रश्न—इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति होता ही नहीं। प्रतिमा का अर्थ तुल्य होता है। पृ० १६४ पं० १४

उत्तर—जब आप अपनी पुस्तक के पृ० १८८ पं० ७ में यह लिखते हुए कि "यक्ष में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमायें बनती हैं" स्वयं प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति कर रहे हैं तो फिर यहाँ प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति क्यों नहीं होता, इसमें हेतु क्या है। यदि प्रतिमा का अर्थ केवल तुल्य ही है, तो फिर इसका यह अर्थ होगा कि "परमात्मा के तुल्य कोई नहीं।" जब परमात्मा के तुल्य किसी बात में भी कोई नहीं, तो पता लगा कि ये मूर्तियाँ परमात्मा के किसी बात में भी तुल्य नहीं हैं। जब मूर्तियाँ किसी बात में भी परमात्मा के तुल्य नहीं हैं तो फिर परमात्मा के स्थान में इनको प्रतिनिधि बना कर पूजा करना व्यर्थ हो गया।

(११३) प्रश्न—उव्वट, महीधर, शंकर, गिरिधर, मिश्र सबने प्रतिमा शब्द के तुल्य अर्थ किये हैं। पृ० १९४ पं० १७।

उत्तर—आप असत्य लिख रहे हैं। इस समय दो भाष्य तो हमारे सामने मौजूद हैं। दोनों ने ही सदृश अर्थ नहीं किया। जैसे—

उव्वट—न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते।

महीधर—तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तुनास्ति।

अमरकोष—प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियाना प्रतिच्छाया। प्रतिकृतिरर्चापुंसि प्रतिनिधि रूपमोपमानं स्यात्

अमरकोश २०। ३६।

स्वामी दयानन्द—न निषेधे तस्य परमेश्वरस्य प्रतिमा प्रतिमीयते यया तत्परिमापकं सदृशं तोलन साधनं प्रतिकृति राकृतिर्वा अस्ति वर्तते ( वेदभाष्य )

भाषार्थ—उस परमात्मा की प्रतिमान भूत कोई वस्तु नहीं है। ( उव्वट )

उस परमात्मा की प्रतिमा प्रतिमान उपमान कोई वस्तु नहीं है। ( महीधर )

प्रतिमान, प्रतिबिम्ब, प्रतिमा, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रतिकृति, अर्चा, प्रतिनिधि, ये आठ नाम प्रतिमा के हैं। (अमरकोष) उस परमेश्वर की प्रतिमा माप सदृश तोल साधन प्रति कृति आकृति नहीं है ( दयानन्द )

अब फरमाइये स्वामी जी ने कौनसा नया अर्थ किया है जो आप के आचार्यों ने नहीं किया। उव्वट महीधर ने प्रतिमान उपमान दो अर्थ किये हैं और अमर कोष ने प्रतिबिम्ब तथा प्रतिच्छाया, प्रतिकृति, प्रतिनिधि शब्दों को प्रतिमान

शब्द का पर्य्याय बतलाया है। और इन शब्दों का अर्थ भाषा में मूर्ति तस्वीर फोटो के सिवाय और क्या हो सकता है। अतः सिद्ध हुआ कि स्वामी जी ने वही अर्थ किया है कि जो सनातन धर्म्म के आचार्य्य उव्वट महीधर आदि करते हैं। जैसे इन दो का अर्थ है वैसे ही सब का समझ लेना चाहिये।

(११४) प्रश्न—यजुर्वेद के "सहस्रस्य १५। ६५" में जब "प्रतिमासि" आया और इन को मालूम हुआ कि यहाँ पर मूर्ति अर्थ हो जाने से मूर्ति पूजा सिद्ध हो जावेगी तब घबराये। पृ० १६५ पं० १।

उत्तर—श्रीमान् जी! इस में घबराने की कौन सी बात है। प्रतिमा शब्द के आठ अर्थ हैं (नं० ११३) उन में से जो अर्थ जहां लेना मुनासिब हो वह वहां लेना ही बुद्धिमत्ता है। इस मन्त्र में प्रतिमा के अर्थ मूर्ति करने से मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि इस मन्त्र का देवता अर्थात प्रतिपाद्य विषय ईश्वर नहीं है अपितु "विद्वान् देवता" है। चूँकि यहां पर प्रतिमा के अर्थ मूर्ति संगत न हो सकते थे इस कारण यहां मूर्ति अर्थ करना मुनासिब ही न था। मन्त्र तथा अर्थ दोनों को ध्यान पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्रायत्वा॥ यजु० १५। ६५

भाषार्थ—हे विद्वन् पुरुष विदुषी स्त्री वा जिस कारण तू असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य है। असंख्य विशेष पदार्थों के (प्रतिमा) तोल साधन के तुल्य है। असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा)

तोलने की तुला के समान है। असंख्य पदार्थों और विद्याओं से युक्त है। इस कारण असंख्यात प्रयोजनों के लिये तुझको परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥ ६५ ॥

अब इस प्रकरण में मूर्ति अर्थ करके स्वयं देखलें। संगत ही न हो सकेगा। इसी लिये तो सनातन धर्म्म के आचार्य भी इस मन्त्र को मूर्ति पूजा में न लगाकर यज्ञ की अग्नि में लगाते हैं। देखिये—

हे अग्ने सहस्रस्येष्टकानां प्रमा प्रमाणं त्वमसि। सहस्रस्य प्रतिमा प्रतिनिधिरसि। सहस्रस्योन्मानं तुलासि। साहस्रः सहस्रार्होऽसि। सहस्राय अनन्त फलाप्त्यैत्वां प्रोक्षामि। ( महीधर )

भाषार्थ—हे अग्नि तू सहस्र ईंटो का अंदाज़ा है। तू सहस्र का प्रतिनिधि है। तू सहस्र की तकड़ी है। तू सहस्र के योग्य है। अनन्त फल प्राप्ति के लिये मैं तेरा प्रोक्षण करता हूँ। जब आपके आचार्य्यों ने ही इस मन्त्र में प्रतिमा के अर्थ मूर्ति नहीं किये। तो स्वामी जी को उलाहना देना पागलपन नहीं तो क्या है।

(११५) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के "मासि प्रमासि प्रतिमासि" के भाष्य में लिख दिया कि "वेदेषु प्रतिमा शब्देन मूर्तयोन गृह्यन्ते" वेदों में प्रतिमा शब्द से मूर्ति का ग्रहण नहीं होता। फिर "नतस्य प्रतिमास्ति" इस मन्त्र में प्रतिमा से मूर्ति का ग्रहण कैसे हो जावेगा। पृ० १९५ प० ३।

उत्तर—आपने उत्सर्गापवाद के न्याय, को भुला दिया है।

वरना आप को यह शंका ही न होती। जब स्वामी जी इसी प्रकरण में "न तस्य प्रतिमा" इस मंत्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति करते हैं। और फिर आगे चल कर थोड़ी दूर पर ही यह कहते हैं कि वेदों में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति नहीं लिया जाता। तो उत्सर्गापवाद न्याय से इसका स्पष्ट यह अभिप्राय है कि "न तस्य" इस मंत्र के सिवाय और स्थानों में जहां जहां प्रतिमा शब्द आता है वहां मूर्त्ति के अर्थों में नहीं आता अपितु परिमाण अर्थों में आता है। और इसके लिये उन्होंने अथर्व वेद का प्रमाण भी उपस्थित कर दिया है। जिसमें प्रतिमा शब्द के मूर्ति अर्थ संगति नहीं खाते अपि तु परिमाण अर्थ ही संगति खाते हैं। अतः स्वामी जी के लेख में परस्पर विरोध नहीं है। अपि तु उत्सर्गापवाद न्याय से दोनों ही लेख ठीक और युक्ति युक्त हैं।

(११६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश में उसी मंत्र के अर्थ में यह लिखा हैं कि "जो जगत् में व्यापक है" यह अर्थ वेद मंत्र के किसी भी पद का हो नहीं सकता॥ पृ० १६५ पं० ७।

उत्तर—लीजिये हम आपको बतलाते हैं कि यह अर्थ मंत्र के कौन से पद का है। इस मंत्र में जो "तस्य" शब्द है यह पूर्व में पड़े हुए "पुरुषादधि" पुरुष शब्द की तरफ संकेत कर रहा है। इसी लिये उव्वट और महीधर दोनों ने "तस्य पुरुषस्य" ऐसा अर्थ किया हैं ( देखो नं० ११३ ) अब पुरुष शब्द के अर्थ देख लीजिये क्या है। निरुक्त में पुरुष शब्द के अर्थ देख लीजिये क्या हैं। निरुक्त में पुरुष शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं—

निरुक्त—पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूर्यतेवा—

दुर्गाचार्य्य—"पूरयतेर्वा" पूर्णमनेन पुरुषेण सर्वं गतत्त्वात् जगदिति पुरुषः ( निरु० अ० २ खं० ३ । १ )

भाषार्थ—चूंकि परमात्मा व्यापक होने से सारे जगत् में पूर्ण हो रहा है। इसलिये परमात्मा को पुरुष कहते हैं।

कहियेगा अब तो आपको पता लग गया कि स्वामी जी ने जो जगत् में व्यापक है" यह कौन से पद का अर्थ किया है।

(११७) प्रश्न—फिर इसमें लिखा है कि "उस निराकार परमात्मा की" "न तस्य" इस मंत्र में "निराकार" इस इतने अर्थ को कहने वाला कोई पद नहीं। पृ० १६५ पं० १६।

उत्तर—श्रीमान् जी! हम आपको यह भी अवश्य बतलावेंगे कि निराकार किस पद का अर्थ है। यह तो आपको (नं० ११६) से पता लग गया कि तस्य पद का अर्थ पुरुषस्य है। अब वह पुरुष कैसा है यह भी इससे पूर्व मंत्र में ही देखिये। हम "सर्वे निमेषा" इस पूर्व मंत्र का अर्थ ( नं० १०७ ) में कर आये हैं। जिसमें लिखा है कि उस परमेश्वर को कोई ऊपर' तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे तथा बीच में सब ओर से ग्रहण नहीं कर सकता। इससे साफ सिद्ध है कि वह निरवयव निराकार है। बस तस्य पद के इशारे से पुरुष शब्द का ग्रहण होता है और पुरुष शब्द के ग्रहण से व्यापक तथा निराकार यह दोनों अर्थ स्वयं इस मंत्र में आ जाते हैं। इस पूर्व मंत्र का अर्थ महीधर का भी परमात्मा को निराकार ही वर्णन करता है। देखिये—

सर्वे निमेषाः त्रुटिकाष्ठाघट्यादयः काल विशेषाः पुरुषात् अधि पुरुष सकाशाज्जज्ञिरे। कीदृशात्पुरुषात्। विद्युतः विशे-

षेण द्योतते विद्युत् तस्मात्। किंच कश्चिदपि एनं पुरुषमूर्ध्वं मुपरि भागेन परिजग्रभत् परिगृह्णाति। एनं तिर्यञ्चं चतुर्दिक्षु न परि० मध्ये मध्य देशेऽपि न गृह्णाति। नह्यसौ प्रत्यक्षादीनं विषय इत्यर्थः।

भाषार्थ—सब निमेष काष्ठा घड़ी आदि काल विशेष पुरुष से पैदा हुए हैं। कैसे पुरुष से। विशेष प्रकाशमान पुरुष से और कोई भी इस पुरुष को ऊपर से नहीं पकड़ सकता। इसको चारों ही तरफों में नहीं पकड़ सकता। बीच में से भी नहीं पकड़ सकता। "वह प्रत्यक्ष आदि का विषय ही नहीं है यह अर्थ है।" आशा है अब आपके यह भी समझ में आगया होगा कि यह निराकार अर्थ किस पद का है।

(११७) प्रश्न—फिर इस मन्त्र के अर्थ में "प्रतिमा" शब्द के तीन अर्थ किये गये परिमाण, सादृश्य, और मूर्ति। परिमाण ईश्वर का नहीं इसमें ईश्वर की उत्कर्षता है। और सादृश्य में भी उत्कर्षता है। ये दोनों अर्थ ठीक हैं। क्योंकि इनमें प्रमाण मिलते हैं। किन्तु मूर्ति अर्थ में कोई प्रमाण नहीं। पृ० १९५ पं० २१।

उत्तर—परमात्मा की उत्कर्षता को वर्णन करने वाले "अतोज्यायांश्चपूरुषः" इत्यादि अनेकों मन्त्र वेदों में भरे पड़े हैं। इस मन्त्र में परमात्मा को परिमाण रहित बतलाने का प्रयोजन परमात्मा की उत्कर्षता वर्णन करना नहीं। अपितु परमात्मा को अनन्त व्यापक ( लामहदूद ) वर्णन करना है। और सादृश्य रहित बतलाने का प्रयोजन भी उत्कर्षता वर्णन नहीं है अपितु यह बतलाना मक़सद है कि परमात्मा अनुपम है। और कोई पदार्थ भी संसार का किसी अंश में भी परमात्मा

के सदृश नहीं है। इन दोनों अर्थों के ठीक मानने से भी ईश्वर की मूर्ति बनाना मिथ्या सिद्ध हो जाता है। क्योंकि जो परमात्मा अनन्त और व्यापक है उसकी मूर्ति बन ही नहीं सकती। क्योंकि मूर्ति जो भी होगी वह महदूद एक देशी होगी। और जब संसार की कोई वस्तु किसी भी अंश में परमात्मा के सदृश नहीं है तो फिर मूर्ति परमात्मा के सदृश कैसे हो सकती है। रह गया यह प्रश्न कि प्रतिमा का अर्थ मूर्ति करने में कोई प्रमाण है वा नहीं। सो हमने नं० ११३ में भली भांति विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया है; देखने की कृपा करें।

## हेतुवाद

(११९) प्रश्न—"न तस्य" इस मन्त्र में हेतु भी है। मन्त्र का सीधासादा अर्थ यह है कि जो महत् यशवाला ईश्वर है। उस के तुल्य कोई पदार्थ नहीं। जब यह विरुद्ध हेतु पड़ते देखा तो सत्यार्थप्रकाश में "यस्यनाम महद्यशः" यह पाठ ही नहीं लिखा। यदि हम इसको मिलालें तो सत्यार्थप्रकाश लिखित मन्त्रोक्त हेतु विरुद्ध हेतु हो जाता है। क्योंकि अर्थ यह होगा कि "जो ईश्वर महत् यशवाला है उसकी मूर्ति नहीं होती" संसार में यश वालों की ही अधिक मूर्तियाँ देखने में आती हैं। पृ० १९६ पं० १।

उत्तर—स्वामीजी महाराज ने पुस्तक में विस्तार भय से सारा मंत्र नहीं लिखा। आपकी यह कल्पना निरर्थक है कि विरुद्ध हेतु पड़ने के कारण अगला पाठ नहीं दिया। क्योंकि स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के मूर्ति पूजा प्रकरण में ही इस मंत्र का पूरा अर्थ किया है। स्वामीजी के अर्थ अनु-

सार विरुद्ध हेतु बनता ही नहीं। यदि स्वामीजी के सत्यार्थ-प्रकाश के अर्थ के साथ "यस्यनाम महद्यशः" के अर्थ को जोड़ना है। तो इस वाक्य का स्वामीजी का ही किया हुआ अथ जोड़ना मुनासिब है। आपने अपना मनघड़न्त अर्थ जोड़ कर और असल पाठ में से निराकार तथा व्यापक शब्द चुराकर अपने मतलब का पाठ बना लिया। और खुद ही विरुद्ध हेतु बता कर खण्डन करने लगे। यदि "न तस्य प्रतिमास्ति" के अर्थ के साथ ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका में से "यस्य नाम महद्यशः" के अर्थ को जोड़ें तो पाठ इस प्रकार का बन जावेगा कि "जिस की आज्ञा का ठीक-ठीक पालन और उत्तम कीर्तियों के हेतु जो सत्य भाषण आदि कर्म हैं उनका करना ही जिसका नामस्मरण कहता है जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है"। अब बतलाइये आपका वह विरुद्ध हेतु किधर पर लगा कर उड़ गया। अजी श्रीमान् जी! ईश्वर की मूर्ति न बनने के हेतु तो सत्यार्थप्रकाश के "नतस्य प्रतिमास्ति" के अर्थ में ही पड़े हुए हैं। और वे हैं सर्वव्यापकता तथा निराकारता। "चूंकि परमात्मा सारे जगत् में व्यापक और निराकार है इस लिये उसकी मूर्ति नहीं बन सकती क्योंकि मूर्ति साकार और एक-देशी की ही बन सकती है" इस का नाम है हेतुवाद। आप का विरुद्ध हेतुवाद तो "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा" के समान था, जो हमारे यथार्थ हेतुवाद के आते ही ऐसे गायब हो गया जैसे गधे के सिर पर सींग।

(१२०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने "न तस्य" इस

मन्त्र के उत्तरार्द्ध को बिलकुल छिपा लिया। पबलिक के आगे नहीं आने दिया। इसका कारण कोई बतला सकता है। लेखक जानता है कि इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में वेद ने मूर्ति पूजा का मण्डन किया है। पृ० १९६ पं० १३।

उत्तर—स्वामीजी ने "नतस्य" इस पूरे मंत्र का अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के मूर्त्ति पूजा प्रकरण में ही दिया है। और यजुर्वेद के भाष्य में भी मौजूद है। आपकी यह कल्पना मिथ्या है कि उत्तरार्द्ध में मूर्त्ति पूजा का मंडन है। अपि तु उत्तरार्द्ध में भी निराकार अजन्मा व्यापक परमात्मा का ही वर्णन है। स्वामीजी ने पुस्तक में विस्तार भय से सारा मंत्र नहीं दिया। यह पूरा मंत्र तथा उसका अर्थ इस प्रकार हैं—

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येषमामा हिꣳसी दित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषा॥ यजु० ३२। ३॥

भाषार्थ—जो सब जगत् में परिपूर्ण व्यापक निराकार है। जो जन्म नहीं लेता। जिसकी आज्ञा का ठीक २ पालन और उत्तम कीर्तियों के हेतु जो सत्य भाषण आदि कर्म हैं उनका करना ही जिसका नाम स्मरण कहाता है। जो परमेश्वर तेज वाले सूर्य्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है। जिसकी प्रार्थना इस प्रकार करनी होती है कि हे परमात्मन्! हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा कीजिये। कोई कहे कि इस निराकार सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिये तो उत्तर यह है कि जो परमेश्वर किसी माता पिता के संयोग से कभी न उत्पन्न हुआ न होता और न होगा। और न वह कभी शरीर

धारण करके बालक जवान और वृद्ध होता है। उस परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् नाप का साधन तथा प्रतिबिम्ब वा सदृश अर्थात् जिसको तसवीर कहते हैं सो किसी प्रकार नहीं है। क्योंकि वह मूर्त्ति रहित अनन्त सीमा रहित और सबमें व्यापक है। इससे निराकार की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये।

फरमाइये, इसमें मूर्ति पूजा का मंडन मंत्र के कौन से पदार्थ से होता है।

(१२१) प्रश्न—उत्तरार्द्ध में सब से पहिले "हिरण्यगर्भ इत्येष" इस मंत्र में ईश्वर का शरीर धारण और मनुष्यों का उसको हवि देकर पूजन करना बतलाया। फिर हम कैसे मानलें कि उसके मूर्ति नहीं। पृ० १९६ पं० २५।

उत्तर—इस मंत्र में न तो परमात्मा के शरीर धारण करने का वर्णन है। और न ही हवि शब्द स्थूल पदार्थों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस मंत्र के अर्थों से परमात्मा का शरीर धारण सिद्ध करना स्वयं वेद मंत्र के अभिप्राय के विरुद्ध है। मंत्र में परमात्मा को प्रकाश रहित पृथिवी आदि तथा प्रकाश सहित सूर्य्यादि लोक-लोकान्तरों को धारण करने वाला लिखा है। भला शरीरधारी और भोजन ग्रहण करने वाला तुच्छ शक्तिधारी इन लोक लोकान्तरों को धारण करने में कैसे समर्थ हो सकता है। अतः इस मंत्र में ईश्वर का शरीरधारी होने की कल्पना सर्वथैव निर्मूल है। मंत्र का ठीक २ अर्थ निम्न प्रकार से है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० १३।४)

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो इस उत्पन्न हुए संसार का रचने और पालन करने हारा सहाय की अपेक्षा से रहित सूर्य्य आदि तेजोमय पदार्थों का आधार जगत् रचने के पहिले वर्तमान् था। वह इस संसार को रचके और प्रकाश-रहित भूगोल आदि और प्रकाश सहित सूर्य्यादि लोकों को धारण करता हुआ वर्तमान है। उस सुखरूप प्रजा पालने वाले प्रकाश-मान परमात्मा की आत्मा आदि सामग्री से सेवा में तत्पर है, वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

क्या आप बतलाने की कृपा करेंगे कि मूर्ति पूजा का मंडन इस मंत्र के कौन से पदों से होता है।

(१२२) प्रश्न—इतना ही नहीं किंतु "हिरण्यगर्भ" इस मंत्र से मूर्ति निर्माण होकर उसका पूजन होता है॥ पृ० १९७ पं० ११

उत्तर—कोई आदमी किसी मन्त्र को पढ़कर किसी प्रकार के काम को करे या करना लिखदे तो इस में मन्त्र का क्या क़सूर, और ऐसा करने से यह कैसे सिद्ध हो गया कि मन्त्र में भी ऐसा ही करना लिखा है। उदाहरणार्थ एक दुराचारी आदमी "विश्वानिदेव" मन्त्र पढ़ कर शराब पीता है या पीना लिख देता है। तो इस में मन्त्र का क्या दोष। तथा यह कैसे मान लिया जावे कि यह मन्त्र शराब पीने का विधान करता है। जब तक इस मन्त्र के अर्थों से शराब पीने की विधि साबित न हो। इसी प्रकार से ही यदि कोई सूत्रकार "हिरण्यगर्भ" इस मन्त्र से मूर्ति बनाकर उस के पूजन का विधान लिख दे तो इस से यह साबित नहीं हो सकता कि यह मन्त्र भी मूर्ति पूजा का विधान करता है। जब तक कि उस के अर्थों से मूर्ति पूजा का

विधान सिद्ध न हो। अब आप यह बतलावें कि इस मन्त्र के वे कौन से शब्द हैं जिनका अर्थ मूर्ति निर्माण तथा पूजन का विधान करते हैं। यदि नहीं तो कात्यायन का या शतपथ अथवा किसी और का लिखना हमारे लिये क्या कीमत रखता है। हम इस प्रकार के वेद विरुद्ध लेख को इतनी भी कीमत नहीं समझते जितनी कि उस कागज़ की जिसपर कि वह लिखा हुआ है। यदि आप को प्रमाण हो तो आप शहद लगा २ कर चाटा करें, हमारे सामने पेश करने की ज़रूरत नहीं।

(१२३) प्रश्न—इस विषय में कात्यायन कल्प सूत्र लिखता है कि—

"अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिःसोऽग्निः स यजमानः स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतं हिरण्यममृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः ॥१॥

उत्तानम्प्राञ्चां हिरण्य पुरुषं तस्मिन् हिरण्य गर्भ इति

कात्यायन कल्प सूत्र १७। ४। १३

उत्तर—आप कृपया सच बतलावें आप ने कभी जन्म भर में कात्यायन कल्प सूत्र को शक्ल भी देखी है। यदि देखी है तो ईमानदारी के साथ बतलावें कि यह इतना लम्बा चौड़ा पाठ जो आपने कात्यायन के नाम से नम्बर ॥१॥ तक दिया है क्या कात्यायन सूत्र में मौजूद है। यह हमारे सामने कात्यायन श्रौतसूत्र चौखंबा संस्कृत ग्रन्थमाला का बनारस में १९०३ सन् का विद्याविलास प्रैस का छपा हुआ मौजूद है। इस के पृ० ७५२ पर "उत्तानम्" इत्यादि सूत्र तो मौजूद है, परन्तु इस से पूर्व का जो पाठ है वह मौजूद नहीं है। क्या इसी का नाम ईमान-

दारी है। जो आदमी इतना बड़ा पाठ किसी पुस्तक के नाम से लिख सकता है! उससे धर्म्म निर्णय की क्या आशा की जा सकती है। यद्यपि हम इस कात्यायन सूत्र को स्वतः प्रमाण नहीं मानते। और न ही इस के लेख के हम उत्तर दाता हैं तथापि सनातन धर्म्म के लेखकों की ईमानदारी की परीक्षा के लिये आप को यह सब कुछ बतला रहे हैं। लो एक बात और बतलाते जावें कि इस "उत्तानम्" इत्यादि एक सूत्र में भी मूर्ति के पूजने का नाम मात्र भी नहीं है। इस सूत्र की टीका जो कर्काचार्य्य ने की है वह यह है कि "तस्मिन् रुक्मे प्रांचं उत्तानं हिरण्य पुरुषमुपदधाति हिरण्यगर्भ इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १७ । ७५ ॥

जिस का भाषार्थ यह है कि "उस रुक्म आसन पर पूर्व की तरफ ऊँचे उठाये हुए हिरण्य पुरुष नाम यज्ञ पात्र को रखता है। 'हिरण्यगर्भ' इस मन्त्र से"

अब बतलाइये इस सूत्र में परमात्मा की मूर्ति बनाना तथा उसकी पूजा करने का कहाँ वर्णन है। झूठे पर खुदा की लानत।

(१२४) प्रश्न—इस "हिरण्यगर्भ" मन्त्र पर शतपथ भी है उसको भी सुनिये, "अथ सामगायति ऐतदूवै देवा इत्यादि शत० ७ । ४ । १ । २२-२५"

पाठको! अब आप ही बतावें "नतस्य प्रतिमास्ति" इस मन्त्र में ईश्वर की मूर्ति का खण्डन है वा मूर्ति पूजा का विधान। पृ० १९७ पं० १७।

उत्तर—सुनाइये महाराज! वह भी सुना दीजिये, यद्यपि हम शतपथ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते तथापि सुनने में क्या

हज़ है। यह पता तो लगेगा कि आप की दौड़ कहाँ तक है। परन्तु हमें विश्वास नहीं कि आप सच बोलेंगे। क्योंकि अभी आप कात्यायन के नाम से एक मन घड़न्त पाठ दे चुके हैं। संभव है आप यहाँ पर भी वैसे ही करें। परन्तु ख़ैर हमारा क्या हर्ज़ है—कीजिये, पेश कीजिये, तो क्या सचमुच "अथ गायति" शतपथ हिरण्यगर्भ पर ही है। इस सारे पाठ में "हिरण्यगर्भ" या इस मन्त्र का कोई शब्द तो नज़र आता नहीं अच्छा तो पुस्तक खोलकर देख लेते हैं। यह लो वही हुआ, जिस की आशा थी।

आपने "हिरण्यगर्भ" का शतपथ न देकर अगले मन्त्रों का दे दिया है। और उसे "हिरण्यगर्भ" का प्रकट कर के एक बड़ा भारी पाप किया है। जिसका कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता। इस मन्त्र के शतपथ में आप के सिद्धान्त की पुष्टि करने वाली कोई बात भी नहीं है, लीजिये—हम इस मन्त्र का शतपथ तथा निरुक्त दोनों दर्ज कर देते हैं।

शतपथ—

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रऽइति। हिरण्यगर्भो ह्येष समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीदित्येष ह्यस्य सर्वस्य भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामु ते मामित्येष वै दिवंच पृथिवीं च दाधार कस्मै देवाय हविषा विधेमेति प्रजापतिर्वै कस्तस्मै हविषाविधेमेत्येतत्॥ १९॥

(शत० ७। ४। १। १९)

यह है इस मन्त्र का शतपथ, अब आप इसमें से एक शब्द ही ऐसा निकाल कर दिखलावें जिस से मूर्ति का निर्माण या पूजन सिद्ध हो सके?

निरुक्त—

हिरण्यगर्भो हिरण्यमयो गर्भोऽस्येतिवा ।
गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे, गिरत्यनर्थानितिवा ॥
यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणांश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति, समभवदग्रे भूतस्य जातः पतिरेको बभूव स धारयति पृथिवीं च दिवं च कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातम् ॥ विधति दान कर्मा ॥ १ ॥ ( निरु० अ० १० ख० २३ )

क्या आप इस निरुक्त में से कोई शब्द बतला सकते हैं कि जिससे मूर्ति निर्माण अथवा मूर्ति पूजन सिद्ध हो सके। यदि नहीं तो यह निश्चय है कि यह मन्त्र तथा इस पर शतपथ और निरुक्त सब ही परमात्मा को निराकार अजन्मा और व्यापक वर्णन करके मूर्ति पूजा का घोर खंडन करते हैं।

(१२५) प्रश्न—"न तस्य" इस मन्त्र में दूसरी प्रतीक "मामाहिछंसी है। इस मन्त्र में ईश्वर को "प्रथम शरीरी" कहा है। शरीर मूर्ति ही होता है। फिर इसी मन्त्र में ईश्वर को हवि देना लिखा है, फिर हम कैसे मान लें कि "नतस्य प्रतिमास्ति" इस मन्त्र में मूर्ति पूजा का खण्डन है।

पृ० १६८ पं० ५१।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो परमात्मा को शरीर धारण करने वाला वर्णन किया है और न ही हवि के अर्थ भोजन करने के पदार्थ हैं। अपितु मन्त्र में परमात्मा को पृथिवी तथा द्यौ लोक को पैदा करके सब में व्याप्त वर्णन किया है। भला यदि वह शरीरधारी भोजन करनेवाला हो तो वह पृथिवी तथा द्यौ लोक का कर्ता तथा व्यापक कैसे हो सकता है?

अतः परमात्मा निराकार तथा व्यापक है। इस मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

मामाहिꣳ सीज्जनितायाः पृथिव्या योवादिवꣳ सत्य-धर्म्माव्यानट्। यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम। यजु० १२। १०२।

भाषार्थ—जो जन्मादि से रहित आदि पुरुष सत्य धर्म वाला जगदीश्वर पृथिवी का उत्पन्न करने वाला अथवा जो सूर्य आदि जगत् को जल और वायु को उत्पन्न करके व्याप्त होता है। और जो चन्द्रमा आदि लोकों को उत्पन्न करता है। जिस सुख स्वरूप सुख करने हारे दिव्य गुणों के दाता विज्ञान स्वरूप ईश्वर का ग्रहण करने योग्य भक्ति योग से हम लोग सेवन करें, वह जगदीश्वर मुझको कुसंग से ताड़ित न होने दे।१०२।

भला इस मन्त्र में वह कौन से पद हैं जो ईश्वर को शरीर-धारी और भोजन करनेवाला वर्णन करते हैं।

(१२६) प्रश्न—"न तस्य" मन्त्र में तीसरी प्रतीक "यस्मान्न जातः" यह है, इस मन्त्र में ईश्वर को प्रजा रूप कहा, प्रजा में बिना रूप के कोई पदार्थ रहता नहीं समस्त रूप उसी से निकले हैं। इससे वह मूर्तिमान है। फिर मूर्ति का निषेध करना हठ नहीं तो और क्या है। पृ० १९९ पं० ६।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो परमात्मा को प्रजा रूप कहा है और न ही रूप धारी वर्णन किया है। अपितु परमात्मा को प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक और समस्त लोकों में व्यापक वर्णन किया है। भला जो व्यापक है वह कभी शरीरधारी हो सकता है। या उसकी कोई मूर्ति बना सकता है, कदापि नहीं।

अतः सिद्ध हुआ कि परमात्मा निराकार अजन्मा तथा सर्व व्यापक है। मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

यस्मान्नजातः परोऽन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ यजु० ८। ३६ ॥

भाषार्थ—जिस परमेश्वर से उत्तम और दूसरा नहीं हुआ और जो परमात्मा समस्त लोकों को व्याप्त हो रहा है। वह सब संसार से उत्तम दाता होता हुआ इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर तीन ज्योति अर्थात् सूर्य्य बिजली और अग्नि को सब पदार्थों में स्थापित करता है ॥३६॥

बताइये इस मन्त्र में वह कौनसा पदार्थ है। जिससे ईश्वर का रूप धारी होना सिद्ध होता है।

आप ने देख लिया कि ये तीनों मन्त्र भी परमात्मा को व्यापक अजन्मा और निराकार ही वर्णन करते हैं। अतः "नतस्य" इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध भी पूर्वार्द्ध की बल पूर्वक ताईद करता है कि उस सब जगत में व्यापक निराकार परमात्मा की मूर्ति नहीं बन सकती।

(१२७) प्रश्न—आर्य समाजी लोग मूर्ति पूजा के खण्डन में निम्न भजन गाते हैं।

तुम्हीं हो मूर्ति में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान् पर भगवान् को क्योंकर चढ़ाऊँ मैं ॥

यदि यही बात है तो हम भी कहते हैं कि—

तुम्हीं हो पेट में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो भोजन में।
भला भगवान् को भगवान् में क्यों कर घुसाऊं मैं॥

इस प्रकार से तो दुनियाँ चलेगी तो पैर के ईश्वर से पृथिवी का ईश्वर दब जायेगा। बैठोगे तो आदमी के ईश्वर से चारपाई का ईश्वर दबा धरा है। पाख़ाने फिरोगे तो आदमी के ईश्वर में से ईश्वर निकल भागेगा, पेशाब करोगे तो पेशाब का व्यापक ईश्वर लुढ़क चलेगा इत्यादि इत्यादि आज से सब काम बन्द करो और सीधे टिकट कटाकर यमराज के वेटिंग रूमों में पहुँचो॥ पृ० २०० पं० २५।

उत्तर—धन्य हो महाराज! आप आर्यसमाज के सवाल को खूब समझे और उस का जवाब भी खूब दिया। एक ने कहा "जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट" दूसरे ने जवाब दिया कि "तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हू" तीसरे ने कहा कि तुक जुड़ी नहीं। चौथे ने कहा जुड़े न जुड़े बोझ से तो मरेगा ही। वही हाल आपका है। बात बने न बने, लोग यह तो कहेंगे कि खूब जवाब दिया। लेकिन इस पर ग़ौर भी किया था कि कहीं यह मिसाल उलटी न पड़ जावे और लेने के देने पड़ जावें।

श्रीमान् जी! आर्यसमाज परमात्मा को सारे संसार में एकरस व्यापक मानता है और प्राकृतिक जगत् तथा जीवों को व्याप्य मानता है। आर्यसमाज मानता है कि व्याप्य के दुख सुख हानि लाभ से व्यापक को दुख सुख वा हानि लाभ नहीं होता। किन्तु सनातन धर्म मानता है कि जैसे "माता पिता का पूजन पंच तत्वात्मक शरीर के द्वारा होता है। इसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उस के शरीर पंच तत्त्वों के द्वारा होता है"। आपकी पुस्तक पृ० १९२ पं० १।

इससे साफ साबित है कि सनातन धर्म पाँच तत्त्वों को माता पिता के शरीर की भाँति ईश्वर का शरीर मानता है। जैसे माता पिता को शरीर के द्वारा सुख दुख हानि लाभ प्रतीति होती है वैसे ही ईश्वर को भी पाँचों तत्वों के द्वारा सुख दुख हानि लाभ होता है। इसलिये सनातन धर्म यह मानता है कि पंच तत्त्वात्मक मूर्ति की पूजा से परमेश्वर प्रसन्न होता है। अतः आर्यसमाज यह शंका करता है कि जब परमात्मा फूलों में भी व्यापक है और मूर्ति में भी व्यापक है तो फिर फूलों को मूर्तिपर चढ़ाना ईश्वर को ईश्वर पर चढ़ाने के समान है। फिर सनातन धर्म यह भी मानता है कि "सृष्टि में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं।" ( आपका पुस्तक पृ० १५८ पं० १२ ) अब फूल भी ब्रह्म है और मूर्ति भी ब्रह्म है। इसलिये मूर्ति पर फूलों का चढ़ाना ईश्वर पर ईश्वर का चढ़ाना है। और आपने जितने भी प्रश्न किये हैं वे आप पर ही लागू होते हैं। आर्यसमाज का यह भजन ठीक है और मूर्ति पूजा पर एक घोर प्रहार है। किंतु हम लोग जो भोजन करते हैं वे ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये थोड़ा ही करते हैं। हम तो अपनी तृप्ति के लिये करते हैं। और हम लोग व्याप्य के दुख सुख हानि लाभ से व्यापक का दुख सुख हानि लाभ भी नहीं मानते और न ही हम संसार के आकारों को ब्रह्म के आकार मानते हैं। अतः आपका जो भजन का फिक़रा है वह भी सनातन धर्म पर ही विकट सवाल है। और इन दोनों शेरों में की गई शंकाओं का सनातन धर्म प्रलय तक भी उत्तर नहीं दे सकता। अब इस प्रश्न का उत्तर सोचने के लिये चाहे आप यमराज से मशविरा करने के लिये यमपुरी को पधारें, चाहे

विष्णु से पूछने के लिये समुद्र में गोते खावें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है।

(१२८) प्रश्न—मूर्ति पूजा के उड़ाने के किये "अन्धन्तमः प्रविशन्ति" इस मन्त्र के अर्थ में संभूति और असंभूति इन दो पदों के अर्थों में घपला मचाकर वेद से मूर्ति पूजा का खंडन निकाला गया है। पृ० २०१ पं० १६।

उत्तर—स्वामी जी ने वेद मंत्र के अर्थ में कोई घपला नहीं डाला, अर्थ मन्त्र का बिलकुल साफ है। (देखो नं० १०६) आप के भाष्यकार महीधर भी इस मंत्र के वही अर्थ करते हैं जो स्वामी जी महाराज ने किये हैं। ज़रा ध्यान से पढ़ने की कृपा करें।

अधुना व्याकृता व्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निंदोच्यते। संभवनं संभूतिः कार्य्यस्योत्पत्तिः तस्या अन्या असंभूतिः प्रकृतिः कारणमव्याकृताख्यम्। तामसंभूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारणमविद्याकामकर्मबीजभूताम दर्शनात्मिकां ये उपास्ते ते तदनुरूपमेवान्धंतमोऽदर्शनात्मक संसारं प्रविशन्ति। ये संभूत्यां कार्य्य ब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्ये रताः ते ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिव तमःप्रविशन्ति ॥९॥

भावार्थ—अब कारण कार्य रूप प्रकृति की उपासना को छुड़ाने की इच्छा से प्रत्येक की निन्दा कहते हैं। संभूति कार्य-रूप में उत्पन्न हुई प्रकृति का नाम है। तथा उससे भिन्न अविकारिणी कारण रूप प्रकृति का नाम असंभूति है। जो लोग उस अनुत्पन्न नित्य अविकारिणी कारण रूपा अविद्या तथा काम से हुए कर्मों की बीजभूत अदृश्य प्रकृति की उपासना करते हैं

वे तदनुरूप ही अदर्शन रूप अन्धकारमय संसार में प्रवेश करते हैं। और जो संभूति अर्थात् हिरण्यगर्भ मन्त्र में प्रतिपादित ब्रह्म से कार्य रूप जगत् में तबदील हुई प्रकृति में रत हैं। वे उससे भी अधिकतर अन्धकार में प्रवेश होते हैं ॥ ८ ॥

कहिये महाराज! अब तो आप ऐसा न कहेंगे कि स्वामीजी ने मूर्तिपूजा के खंडन के लिये मंत्र के अर्थों में घपला कर दिया।

(१२९) प्रश्न—इस मन्त्र का देवता आत्मा है। जाती अर्थ में आत्मा परक अर्थ ही नहीं बनता। वेद मंत्र का जो देवता होता है। वही मन्त्र का वर्णनीय विषय होता है। नये अर्थ में वेद के साथ यह अन्याय किया गया है कि जो आत्मा के वर्णन को उड़ाकर प्रकृति और लकड़ी पत्थर का वर्णन कर दिया। पृ० २०२ पं० ४।

उत्तर—आप तो यूंही बिना सोचे समझे बिला वजह रो-पीट रहे हैं। यदि इस मंत्र का देवता आत्मा है तो अर्थ भी तो यही किया गया है कि जो लोग परमात्मा के स्थान में प्रकृति या प्रकृति के बने पदार्थों की पूजा करते हैं वे घोर नरक में पड़ते हैं।

फिर यह अर्थ आत्मा परक क्यों नहीं। और जब आपके आचार्य भी वही अर्थ करते है तो फिर आपको ज़ाली कहने का क्या हक़ है।

(१३०) प्रश्न—मन्त्र का अर्थ यह है। जो असंभूति शरीर की उपासना करते हैं वह नरक को जाते हैं। और जो संभूति केवल आत्मा ज्ञान में रत हैं। अपने आपको ब्रह्म मानते हैं। वे उनसे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं। पृ० २०३ पं० ५।

उत्तर—आपने असंभूति के अर्थ शरीर किये हैं। जो सर्वथा मिथ्या हैं। क्योंकि असंभूति की व्युत्पत्ति यह है कि "संभवनं संभूतिः, तस्याः, अन्या असंभूतिः" पैदा होने वाली वस्तु का नाम संभूति तथा उससे भिन्न का नाम असंभूति है। इससे दो वस्तुओं का नाम असंभूति हो सकता है ईश्वर का, या प्रकृति का, क्योंकि दोनों ही अनुत्पन्न नित्य हैं। यहाँ ईश्वर अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर अर्थ करने से यह वाक्य बनेगा कि "जो ईश्वर की उपासना करते हैं वे नरक में जाते हैं" अतः मानना पड़ेगा कि यहाँ यही अर्थ ठीक है कि "जो लोग असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न नित्य प्रकृति की उपासना करते हैं अर्थात् उस को ईश्वर के स्थान में पूजते हैं वे नरक में जाते हैं" आगे *आपने संभूति का अर्थ आत्मा किया है। क्योंकि संभूति नाम* पैदा हुई वस्तुओं का है। और आत्मा अनुत्पन्न अनादि है। यह अर्थ भी संगत नहीं होता कि "जो लोग आत्मा की उपासना करते हैं वे उससे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं"। अतः यही अर्थ ठीक है कि "जो लोग संभूति अर्थात् प्रकृति के कार्य पृथिवी वृक्ष, पाषाण आदि वस्तुओं को परमात्मा के स्थान में पूजते हैं वे उनसे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं।" यह तो रही अर्थों के ग़लत होने की बात। किंतु यदि आपके अर्थ को ठीक भी मान लिया जावे तो भी बोरी-बिस्तरा गोल कर के आपको ही नरक में पधारना पड़ेगा क्योंकि आप मूर्ति पूजा और अवतार पूजा में शरीर की ही पूजा करते हैं। और भयंकर नरक में भी आप ही तशरीफ़ ले जावेंगे। क्योंकि आप एक ब्रह्म के बिना कोई भिन्न सत्ता न मानकर अपने आपको

भी ब्रह्म ही कहते हैं। बहर हाल दोनों सूरतों में आप ही नरक के अधिकारी होंगे।

(१३१) प्रश्न—जितने भाष्य मिलते हैं सब में यही अर्थ हैं जो हमने किये हैं।

उत्तर—आप ग़लत कह रहे हैं, हमने महीधर भाष्य अपनी पुष्टि में लिख दिया है। वैसे भी सिद्धान्तानुसार आपका अर्थ ग़लत है।

(१३२) प्रश्न—वेद न स्वयं "संभूति च विनाशंच" इस मन्त्र में संभूति शब्द का अर्थ आत्मा तथा असंभूति शब्द का अर्थ शरीर किया है। बनावटी अर्थ कैसे सत्य सिद्ध होगा। पृ० २०२ पं० २१।

उत्तर—इस मन्त्र में असंभूति शब्द ही नहीं है, यदि आप चाहें कि "तीर्त्वा संभूत्या" में से संधि विच्छेद करके "तीर्त्वा असंभूत्या" इस प्रकार से असंभूति शब्द निकाल लेंगे। तो नहीं निकाल सकते। क्योंकि आप उत्तरार्ध में वही शब्द निकाल सकेंगे जो पूर्वार्द्ध में दिये हुए हैं। पूर्वार्द्ध में तो संभूति और विनाश शब्द दिए हैं। तब यदि आप असंभूति शब्द निकालेंगे तो अर्थ यूं होगा कि "जो आदमी संभूति और विनाश को इकट्ठा जानता है वह विनाश से मौत को तैर कर असंभूति से अमृत पान करता है"। अब बतलाइये यह बात कैसे बनेगी "जानता तो है वह संभूति को और अमृत पान करता है असंभूति से।" अतः आपका अर्थ क़तई ग़लत है। वास्तव में इस मन्त्र में असंभूति के स्थान में उसका पर्यायवाची शब्द "विनाश" आया है। जिसको आपने समझा नहीं। यहाँ बिनाश का अर्थ

नाशवान् नहीं अपितु "विनश्यन्ति अदृश्याः पदार्थाः भवन्ति यस्मिन् स विनाशः। नित्या प्रकृति असंभूति इस मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेद उभयꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्या अमृतमश्नुते॥

यजु० ४०। ११।

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् ( संभूतिम् ) जिसमें सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्य रूप सृष्टि और उसके गुण कर्म स्वभावों को तथा ( विनाशम् ) जिसमें पदार्थ नष्ट होते उस कारण रूप जगत् और उसके गुण कर्म स्वभावों को एक साथ दोनों उन कार्य और कारण स्वरूपों को जानता है वह विद्वान् ( विनाशेन ) नित्य स्वरूप जाने हुए कारण के साथ शरीर छूटने के दुःख से पार होकर (संभूत्या) शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त करानेवाली सृष्टि के साथ मोक्ष सुख को प्राप्त होता है॥११॥ आशा है कि आप इस प्रकरण को भली-भाँति समझने का यत्न करेंगे।

---

## शिवलिंग पूजा

(१३३) प्रश्न—वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" मानता है। यजुर्वेद अध्याय १६ और अथर्ववेद काण्ड ११ में शंकर को ब्रह्म तथा सर्व स्वरूप कहा है। शंकर की वे अष्ट मूर्तियाँ प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी हैं। इन ही अष्ट मूर्तियों में शंकर का पूजन होता है। पृ० २०३ पं० १२।

उत्तर—वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" नहीं मानता अपितु वेद "द्वासुपर्णा" इत्यादि अनेकों मन्त्रों से ईश्वर जीव तथा प्रकृति को अनादि वर्णन करता है। इन तीनों में से प्रकृति संसार का उपादान कारण है। ईश्वर निमित्त कारण तथा जोव साधारण कारण है। यजुर्वेद अध्याय १६ तथा अथर्ववेद काण्ड ११ में रुद्र शब्द से दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाले ईश्वर, राजा, सभापति, सेनापति, तथा ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ब्रह्मचारियों और पाँच प्राण पाँच उपप्राण ग्यारहवां मन इन ग्यारह का भी वर्णन आता है। और शंकर नाम से भी कल्याणकारी परमेश्वर का ही वर्णन वेदों में मिलता है। किन्तु सती और पार्वती के पति गणेश तथा कार्तिकेय के पिता भस्मधारी नर-मुण्डमालाधारी, भस्मभूषण भूषित, वृषारोही, सर्पकण्ठ, नटवर, नृत्यप्रिय नन्दा वेश्यागामी, अनुसूया धर्मनाशक, हस्तेलिंगधृक्, व्यभिचारप्रवर्तक महादेव नामक पौराणिक व्यक्ति का वर्णन चारों वेदों में क़तई नहीं है। और न ही वेदों में कहीं शंकर को सर्व स्वरूप कहा गया है। महतत्त्व अहंकार आकाश, वायु इत्यादि यह प्रकृति के ही रूपान्तर हैं। ब्रह्म के नहीं हैं। इसी लिये वेद ने "अंधतम" इत्यादि मंत्र में परमात्मा के स्थान में प्रकृति की पूजा करने वाले को नरक गामी बतलाया है। अतः उपरोक्त प्रपञ्च सर्वथैव मिथ्या निर्मूल तथा वेदविरुद्ध होने से त्याज्य है।

(१३४) प्रश्न—जो मनुष्य अष्टक प्रकृति में इकट्ठा ही शंकर का पूजन करे उसके लिये ब्रह्माण्ड का पूजन है। इसका छोटा रूप ऋषियों ने शिवलिंग बनाया। शिवलिंगब्रह्माण्ड का नक़शा है। जैसे यह ब्रह्माण्ड ऊपर से नीचे तक और चारों

तरफ कुछ गोल होता है। इसी प्रकार शिव के लिंग की आकृति का वर्णन है। पृ० २०३ पं० २०।

उत्तर—चूँकि वेद ने ब्रह्म के स्थान में प्रकृति की पूज को पाप वर्णन किया है और फिर प्रकृति के विकार ब्रह्माण्ड की पूजा तो महापाप और भयंकर नरक में जाने का साधन बतलाया है। इसलिये यह शिवलिंग वैदिक ऋषियों का बनाया हुआ ब्रह्माण्ड का छोटा रूप नहीं है। और न ही शिवलिंग ब्रह्माण्ड का नक़शा है। और न ही ब्रह्माण्ड की शिवलिंग से शकल मिलती है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की शकल आपने स्वयं ही पृ० १५५ पं० १४ में बतलाई है कि "मटर या गेंद की शकल का ब्रह्माण्ड है" और शिवलिंग की शकल गोल-गोल लम्बी मूसल के समान है। और न ही शिवलिंग का इस प्रकार से पुराणों में वर्णन मौजूद है। पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि शिवालयों में जो नीचे गोल दाइरे की शकल है वह पार्वती की योनि तथा जो बीच में गोल मूसल सा गड़ा हुआ है वह शिवलिंग की अर्थात् दोनों के मूत्रेन्द्रिय की आकृति अर्थात् मूर्ति है। इसके पूर्ण ज्ञानार्थ हम नीचे शिवपुराण का पूरा प्रमाण उपस्थित करते हैं। पढ़िये—

---

## शिवलिंग की स्थापना

दारुनाम वनं श्रेष्ठं तत्रासनृषिसत्तमाः।
शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यान परायणाः॥ ६॥
ते कदाचिद्वने याताः समिधा हरणाय च।
सर्वे द्विजर्षभाःशैवाः शिवध्यान परायणाः॥ ८॥

एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः ।
विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥ ९ ॥
दिगम्बरोऽति तेजस्वी भूतिभूषण भूषितः ।
सचेष्टां सकदक्षांच हस्ते लिंगं विधारयन् ॥ १० ॥
मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम् ।
जगाम तद्वनंप्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परंत्रासमुपागताः ।
विह्वला विस्मिताश्चान्याः समाजग्मुस्तथा पुनः ॥ १२ ॥
आलिलिंगुस्तथा चान्याः करंधृत्वा तथा पराः ।
परस्परंतु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा ॥ १३ ॥
एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्याः समागमन् ।
विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ १४ ॥
तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोऽयंकोऽयं तथा ब्रुवन् ।
समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमाया विमोहिताः ॥ १५ ॥
यदा च नोक्तवान् किंचित्सोऽवधूतो दिगम्बरः ।
ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥ १६ ॥
त्वया विरुद्धं क्रियते वेद मार्गं विलोपि यत् ।
ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवी तले ॥ १७ ॥
इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगंच पतिते क्षणात् ।
अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः ॥ १८ ॥
तल्लिंगं चाग्निवत्सर्वं यद्दाह पुरः स्थितम् ।
यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत्पुनः ॥ १९ ॥
पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैवच ।
भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् ॥ २० ॥
लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽति दुःखिताः ॥ २१ ॥

दुःखिता मिलिताः शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २२ ॥
मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥ ३१ ॥
आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराः शिवम् ।
योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥
पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकर स्तथा ।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः ॥ ४४ ॥
हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् ।
योनि रूपेण लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम् ॥ ४५ ॥
पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा ।
तया धृतं च लिंगं हि शान्तिं गमिष्यति ॥ ४६ ॥
प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च ।
पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

कोटिरुद्र संहिता ४ अध्याय १२ ।

भावार्थ—दारु नाम का एक वन था, वहाँ पर सत्पुरुष लोग रहते थे, जो शिव के भक्त थे, तथा नित्यप्रति शिव का ध्यान किया करते थे ॥६॥ वे कभी लकड़ियाँ चुनने के लिये सबके सब श्रेष्ठ ब्राह्मण, शिव के भक्त, तथा शिव का ध्यान करनेवाले थे ॥८॥ इतने में साक्षात् महादेव जी विकट रूप धारण कर उनकी परीक्षा के निमित्त आ पहुँचे ॥ ९ ॥ नंगे अति तेजस्वी विभूति भूषण से शोभायमान, कामियों के समान दुष्ट चेष्टा करते हुए, हाथ में लिंग धारण करके ॥१०॥ मन से उन वनवासियों का भला करने के लिये भक्तों पर प्रसन्न होकर शिव जी स्वयं प्रीति से उस बन में गये ॥११॥ उसको देखकर ऋषियों की पत्नियाँ अत्यन्त भय-भीत हो गईं, व्याकुल तथा हैरान हुईं, कई वापस आ गईं ॥१२॥ कई आलिंगन करने लगीं, कई ने हाथ में धारण कर लिया

तथा परस्पर के संघर्ष से वे स्त्रियाँ मग्न हो गईं ॥ १३ ॥ इतने में ही ऋषि महात्मा आ गये । इस प्रकार के विरुद्ध काम को देखकर वे दुःखी हुए । क्रोध से मूर्छित होगये ॥१४। तब दुःख को प्राप्त हुए कहने लगे—ये कौन हैं, ये कौन है ? वे सबके सब ऋषि शिव की माया से मोहित हो गये ॥ १५ ॥ जब उस नंगे अवधूत ने कुछ भी उत्तर न दिया, तब वे परम ऋषि उस भयंकर पुरुष को यों कहने लगे ॥१५॥ तुम जो यह वेद के मार्ग को लोप करने वाला विरुद्ध काम करते हो इसलिये तुम्हारा यह लिंग पृथिवी पर गिर पड़े ॥ १७ ॥ उनके इस प्रकार कहने पर उस अद्भुत रूप धारी अवधूत शिव का लिंग उसी समय गिर पड़ा ॥ १८ ॥ उस लिंग ने सब कुछ जो आगे आया अग्नि की भाँति जला दिया। जहाँ जहाँ वह जाता था वहाँ वहाँ सब कुछ जला देता था ॥१९॥ वह पाताल में भी गया, वह स्वर्ग में भी गया, वह भूमि में सब जगह गया किन्तु वह कहीं भी स्थिर नहीं हुआ ॥२०॥ सारे लोक-लोकान्तर व्याकुल हो गये तथा वे ऋषि अति दुखित हुए ॥२१॥ वे दुखी हुए सब मिलकर ब्रह्मा के पास गये ॥२२॥ तब ब्रह्मा उन ऋषियों को स्वयं कहने लगे ॥३१॥ हे देवताओ ! पार्वती की आराधना करके शिव की प्रार्थना करो, यदि पार्वती योनि रूप हो जावे तो तब वह लिंग स्थिरता को प्राप्त हो जावेगा ॥३२॥ तब उन ऋषियों ने परम भक्ति से शंकर की प्रार्थना और पूजा की। तब अति प्रसन्न होकर महादेव जी उनसे बोले ॥४४॥ हे देवता और ऋषि लोगो ! आप सब मेरी बातको आदर से सुनें। यदि मेरा लिंग योनिरूप से धारण किया जावे तब शान्ति हो सकती है ॥ ४५ ॥ मेरे लिंग को पार्वती के

बिना और कोई धारण नहीं कर सकता। उससे धारण किया हुआ मेरा लिंग शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त हो जावेगा ॥ ४६ ॥ पार्वती तथा शिव को प्रसन्न करके और पूर्वोक्त विधि के अनुसार वह उत्तम लिंग स्थापित किया गया ॥४८॥

अब इंसाफ़ से बतलावें कि क्या यह ब्रह्माण्ड का नक़शा है या पार्वती की योनि में शिव का लिंग स्थापित किया हुआ है।

(१३५) प्रश्न—लौकिक ग्रन्थों में योनि और लिंग इन शब्दों से स्त्री पुरुष की मूत्रेन्द्रिय का भी बोध होता है। किन्तु वेद पुराण और दर्शन इन में इन अर्थों का बोध नहीं होता। पृ० २०३ पं० २८।

उत्तर—यह ठीक है कि लिंग शब्द के और योनि शब्द के मूत्रेन्द्रिय से भिन्न और अर्थ भी हैं परन्तु यह प्रतिज्ञा भी निर्मूल है कि पुराण आदिकों में लिंग योनि शब्द के मूत्रेन्द्रिय अर्थ होते ही नहीं। हां यह ठीक है कि अर्थ प्रकरणानुसार लिये जाने चाहिये। जैसे ( नं० १३४ ) में लिखी हुई कथा में महादेव जी ने जो लिंग को हाथ में पकड़ रक्खा था और ऋषियों के शाप से कट कर गिर पड़ा। यहाँ लिंग से मूत्र इन्द्रिय ही मुराद है और पार्वती की योनि में स्थिर होना, यहाँ योनि से मुराद भी मूत्रेन्द्रिय ही है। क्योंकि महादेव का मादरज़ाद नंगा होना, महादेव जी का नापाक हरकत करना ऋषियों का उसको इख़लाक़ के बरख़िलाफ़ देखना। और ऋषियों का यह कहना कि तू जो इख़लाक़ के विरुद्ध कर रहा है यह तेरा काम वेदमार्ग को लोप करने वाला है। इत्यादि बातों के कारण यहाँ लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय के सिवाय और

कुछ हो ही नहीं सकता तथा महादेव का यह कहना कि मेरे लिंग को पार्वती के बिना और कोई स्त्री धारण नहीं कर सकती। इस से साबित है कि इस कथा में योनि के अर्थ भी पार्वती की मूत्रेन्द्रिय से ही है। इसके अतिरिक्त हम और प्रमाण भी उपस्थित करते हैं।

लिंग—

दक्षिणावर्तलिंगश्चनरो वै पुत्रमान् भवेत् ।
वामावर्ते तथा लिंगेतर: कन्या प्रसूयते ॥ १ ॥
स्थूलै: शिरालैर्विषमैर्लिंगै र्दारिद्र्यमादिशेत् ।
ऋजुभिर्वर्तुलाकारै: पुरुषा: पुत्रभागिन: ॥ २ ॥
( भविष्य० ब्राह्म० अ० २५ )

कटु तैलं भल्लातकं बृहतीफलदाडिमम् ॥ १७ ॥
कल्कै: साधितैर्लिप्तं लिंगं तेन विवर्द्धते ॥ १८ ॥
( गरुड़० आचार० अ० १७६ )

कर्पूरं देवदारुं च मधुना सहयोजयेत् ।
लिंगलेपाच्च तेनैव वशी कुर्यात् स्त्रियं किल ॥ २ ॥
( गरु० अचार० अ० १९० )

सैंधवं च महादेव पारावतमलं मधु ।
एभिर्लिप्तेतु लिंगे वै कामिनीवशकृद्भवेत् ॥ १६ ॥
( गरु० आचार० अ० १८५ )

ब्रह्मचर्य्ये ऽपिवर्तन्त्या: साध्व्या ह्यपि च श्रूयते ।
हृद्यंहि पुरुषं दृष्ट्वा योनि: संक्लिद्यते स्त्रिया: ॥ २८ ॥
( भविष्य० ब्राह्म० अ० ७३ )

सुस्नातं पुरुषं दृष्ट्वा सुगंधं मलवर्जितम् ।
योनि: प्रक्लिद्यते स्त्रीणां हृते पात्रादिवोदकम् ॥ ३१ ॥
( शिव० उमा० अ० २४ )

पुलकांकित सर्वांगं धर्म्म कर्म समन्वितम्।
बभूव काममत्ताया योनौ कंडूयनं जलम् ॥ २५ ॥
( ब्रह्मवैवर्त खं ४ अ० २३ )

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीत कार्षिताः ॥ १७ ॥
( भागवत० स्कं० १० अ० २२ )

कर्पूर मदन फल मधुकैः पूरितः शिवः।
योनिः शुभास्याद् वृद्धा या युवत्याः किंपुनर्हर ॥ १६ ॥
( गरु० आचार० अ० २०२ )

नमस्ते ईश वरदाय आकर्षिणि विकर्षिणि मुग्धे स्वाहा इति।
योनिलिंगस्य तैलेन शंकरम्लक्षणात्ततः ॥ १६ ॥
( गरु० आचार० अ० १८४ )

प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्यपाणिना ॥ ८३ ॥
( ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० २७ )

भाषार्थ—जिस आदमी का लिंग दायें तरफ झुका हुआ हो वह पुत्र वाला होता है। जिसका बायें तरफ को झुका हुआ लिंग हो उस के कन्या पैदा होती हैं ॥ १ ॥ मोटे रगों वाले टेढ़े लिंगों से दरिद्रता होती है। जिन पुरुषों के लिंग सीधे गोल होंवे, पुत्रों के भागी होते हैं ॥ २ ॥ (भविष्य)

कडवा तेल भलावा बहेडा तथा अनार इनकी चटनी से लेप करने से लिंग बढ़ता है ॥ १८ ॥ ( गरुड़ )

काफूर देवदारु को शहद के साथ मिलाकर लिंग के लेप करे तो स्त्री वश में हो जाती है ॥ २ ॥ (गरुड़)

हे महादेव ! नमक और कबूतर की बीठ शहद में मिलाकर यदि लिंग पर लेप करे तो स्त्री वश में हो जाती है ॥ १६ ॥ ( गरुड़ )

ब्रह्मचर्य में रहती हुई भलीमानस स्त्री की भी सुन्दर पुरुष को देखकर योनि टपकने लग जाती है ॥ २८ ॥ (भविष्य)

स्नान किये हुए निर्मल सुगंधित पुरुष को देखकर स्त्रियों की योनि ऐसे टपकने लगती है जैसे मशक में से पानी ॥ ३१ ॥ ( शिव )

रोमांचित हुई धर्म युक्त स्त्री के भी काम में मत्त होने पर योनि में खुजली तथा जल टपकने लगता है। २५। (ब्रह्मवैवर्त)

तब तालाब से सारी स्त्रियाँ जाड़े से काँपती हुई दुखी दोनों हाथों से योनि को ढक कर बाहर निकल आईं ॥१७॥ (भागवत)

हे शिव ! यदि योनि को काफूर मैनफल तथा शहद से भर दिया जावे तो बूढी स्त्री की भी बढ़िया हो जाती है, जवान का तो कहना ही क्या ॥ १६ ॥ ( गरुड़ )

नमस्ते इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर तेल से योनि और लिंग की मालिश करे ॥ १६ ॥ ( गरुड़ )

योनि को हाथ से ढक कर सब गोपियाँ चलीं ॥ ८३ ॥ ( ब्रह्मवैवर्त )

हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि इन स्थानों में लिंग तथा योनि के अर्थ सिवाय मूत्रेन्द्रिय के और कुछ हो ही नहीं सकते। अतः आपकी उपरोक्त प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल तथा असत्य है।

(१३६) प्रश्न—"लिंगानांचक्रमंवक्ष्ये शिव० विद्येश्वर० अ० १८" इत्यादि से शिव पुराण में बतलाया है कि शंकर का सूक्ष्म लिंग प्रणव (ओंकार) है तथा स्थूललिंग यह समस्तब्रह्मांड है फिर प्रकृति, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और पाषाण

ये शंकर के अनेक लिंग हैं। पृथिवी विकारलिंग, स्वयंभूलिंग १ विंदुलिंग २ प्रतिष्ठा किये लिंग ३ चरलिंग ४ गुरुलिंग ५ बस इतने ही लिंग के पूजने की विधि है तथा इतने ही लिंग पूजे जाते हैं। पृ० २०४ पं० ४।

उत्तर—यदि आपका यह अभिप्राय हो कि ओंकार परमात्मा का वाचक होने से तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, पाषाणादि समस्त ब्रह्माण्ड अपने कर्ता ईश्वर की महिमा का वर्णन प्रकाश करने से परमात्मा की महिमा के प्रकाशक होने से लिंग कहाते हैं। तो इन के विषय में तो आर्यसमाज के प्रश्न ही नहीं हैं। हां, ये जो आप पाँच प्रकार के लिंगों की पूजा बतला रहे हैं। ये वही शिवालयों में गड़े हुए लिंगों की तरफ आपका संकेत है या ये भी कुछ और ही हैं। यदि ये कुछ और प्रकार के हैं तो आपको इन की व्याख्या करनी चाहिये थी। और यदि ये पाँच भी उन्हीं में से हैं जोकि शिवालयों में गड़े हुए हैं। तो फिर आप ग़लत कह रहे हैं। क्योंकि उनकी उत्पत्ति पुराणों ने और ही प्रकार से वर्णन की है। शिवपुराण का एक वर्णन तो हम (नं० १३४) में बयान कर आये हैं। दूसरी कथा जो लिंगों की पैदाइश के विषय में आती है, वह इस प्रकार से है—

देवाद्याऊचुः

भूत्वातु दक्ष कन्या त्वं शंकरं परिमोहय।
अस्माकं वाँछितश्चैतत् कुरु सिद्धिं सदा शिवे॥ १॥
एतत् श्रुत्वा वचस्तेषां निरीक्ष्य कमलासनम्।
उवाच विस्मयाविष्टा कालिका जगदीश्वरी॥ २॥

## देव्युवाच

शंभुरद्य तनोबालः किं मां संतोषयिष्यति ।
मम योग्यं पुमांसं तु अन्यं वै परिकल्पय ॥ ३ ॥

## ब्रह्मोवाच

शंभुः सर्वगुरुर्देवो ह्यस्माकं परमेश्वरः ।
महासत्वो महातेजाः स ते तोषं करिष्यति ॥ ४ ॥
शंभुतुल्यः पुमान् नास्ति कदाचिदपि कुत्रचित् ।
इत्युक्ता ब्रह्मणा देवी बाढमित्याह चेश्वरी ॥ ५ ॥
ततो विवाहं निर्वर्त्य कृतकृत्या यथागताः ।
गताः सर्वे महेशोऽपि सत्या सह तदा गृहम् ॥ ६ ॥
जगाम रेमे सत्याच चिरं निर्भर मानसः ।
अथ काले कदाचित्तु सत्या सहमहेश्वरः ॥ ७ ॥
रेमे न शेके तं सोढुं सती श्रान्ताभवत्तदा ।
उवाच दीनया वाचा देवदेवं जगद् गुरुम् ॥ ८ ॥
भगवन्नहि शक्नोमि तवभारं सुदुः सहम् ।
क्षमस्व मां महादेव कृपांकुरु जगत्पते ॥ ९ ॥
निशम्य वचनं तस्या भगवान् वृषभध्वजः ।
निर्भरं रमणं चक्रे गाढं निर्ह्रियमानसः ॥ १० ॥
कृत्वा संपूर्णरमणं सती च त्यक्त मैथुना ।
उत्थानाय मनश्चक्रे उभयोस्तेज उत्तमम् ॥ ११ ॥
पपातधरणीं पृष्ठे तै र्व्याप्तमखिलं जगत् ।
पाताले भूतले स्वर्गे शिवलिंगास्तदाभवन् ॥ १२ ॥
तेन भूता भविष्याश्च शिवलिंगाः सयोनयः ।
यत्रलिंगं तत्र योनिर्यत्र योनिस्ततः शिवः ॥ १३ ॥

उभयोश्चैव तेजोभिः शिव लिंगं व्यजायत ॥ १४ ॥
इति शिवलिंगोत्पत्तिकथनमिति नारदा पंच रात्रान्तर्गत
तृतीय रात्रे प्रथमाध्याये नारद ब्रह्मा संवादः ॥
शब्द कल्पद्रुमः कोषः चतुर्थ कांड प्रथम द्वितीय खंडौ।
पृष्ठ २२२ लिंग शब्द पर।

भाषार्थ—देवता इकट्ठे होकर ब्रह्मा के पास गये कि हम तो विवाहित हैं किंतु महादेव अविवाहित है। उसका भी विवाह कराना चाहिये, यह सोच कर सब देवता ब्रह्मा तथा विष्णु को साथ लेकर दुर्गा के पास गये और दुर्गा से प्रार्थना की कि आप दक्ष की कन्या बनकर महादेव जी को मोहित करें, हे सदा शिवे यही हमारी इच्छा है। आप सिद्ध कीजिये ॥१॥ उनकी यह बात सुनकर ब्रह्मा की तरफ देखते हुए हैरान होकर जगदीश्वरी काली दुर्गा बोली ॥२॥ यह शंभु आज का बालक क्या मुझे संतुष्ट कर सकेगा। मेरे योग्य कोई और आदमी तजवीज़ करें ॥३॥ ब्रह्मा जी बोले कि यह शंभुदेव सबके गुरु तथा हमारे स्वामी हैं। बड़े बलवान् और वीर्य्यवान् हैं यह आप की संतुष्टि करदेंगे ॥४॥ शंभु के तुल्य कोई आदमी नहीं है। न ही कोई कहीं इनके तुल्य होगा। ब्रह्मा की यह बात सुनकर देवी बोली कि बहुत अच्छा ॥५॥ तब देवी दक्ष के यहां सती रूप में पैदा हुई, तब देवता लोग विवाह से निवृत्त होकर कृतार्थ होगये और अपने घर चले गये महादेव जी भी सती के साथ अपने घर चले गये ॥६॥ और सती के साथ रमण करके मनभर प्रसन्न हुए कुछ दिनों के पीछे कभी महादेव जी सती के साथ ॥७॥ रमण करने लगे तो सती थक गई और महादेव जी के बोझ को सह न सकी तब बड़ी

दीन वाणी के साथ जगत् के गुरु महादेव को कहने लगी ॥८॥ हे भगवन् मैं आपके दुःसह भार को सह नहीं सकती। हे महादेव जी मुझे क्षमा करो, हे जगत्पते मेरे पर कृपा करो ॥९॥ भगवान् महादेव ने उसके वचन को सुनकर खूब पेट भरकर निर्दयता से मैथुन किया ॥१०॥ संपूर्ण मैथुन करके छोड़ी हुई सती ने उठने की इच्छा की, तब दोनों का उत्तम वीर्य ॥११॥ पृथिवी पर गिर पड़ा और उस वीर्य से सारा जगत् व्याप्त होगया। और उस से पृथिवी स्वर्ग पाताल में योनियों समेत शिवलिंग पैदा होगये ॥१२॥ जितने लिंग हो चुके, जितने आगे को होंगे वे योनियों समेत इस तेज से ही पैदा हुए तथा होंगे। जहां लिंग होगा वहां योनि अवश्य होगी और जहां, योनि होगी वहां शिव अवश्य होंगे ॥१३॥ दोनों के तेज से ही शिवलिंग पैदा हुआ ॥१४॥ अब आप बतलावें कि लोगों की पैदाइश के बारे में आपका लेख ठीक है या पुराणों का। और यहां पर लिंग तथा योनि मूत्रेन्द्रिय का नाम है या किसी और वस्तु का। अब आपका लेख "मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त" के सदृश ही है ॥

(१३७) प्रश्न—लिंग के चारों तरफ जलहरी होती है। यह जल को बाहर नहीं जाने देती इस से इसका नाम जलहरी है। जलहरी का अपभ्रंश जलरुरी है। वह सप्तावरण का नक़शा है। ब्रह्माण्ड के चारों तरफ सात आवरण रहते हैं। वह ब्रह्माण्ड की चीज़ को बाहर नहीं जाने देते। उनका ही नक़शा यह जलहरी है यह वेद शास्त्रों का अभिप्राय है। पृ० २०५ पं० २७

उत्तर—कृपया वेद शास्त्रों को बदनाम और कलंकित न कीजिये। क्योंकि वेद शास्त्रों में शिवलिंग तथा जलहरी का

वर्णन है ही नहीं। तो फिर उनका अभिप्राय यह कैसे हो सकेगा। हां पुराणों में इसका वर्णन है। और पुराणों ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि लिंग और योनि मूत्रेन्द्रिय का नाम है। और उसी योनि की शकल जलहरी रूप में बना कर उसमें लिंग कायम किया गया है। आप हज़ार बनावटी बातें बनावें इस से इस बात पर परदा नहीं पड़ सकता। भला जो जल को बाहर जाने से रोकती है अर्थात् जल की रक्षा करती है। उसका नाम जलहरी अर्थात् जल को हरने वाली नाम क्यों हुआ। हां यह तो अर्थ हो सकता है कि जो लिंग के जल अर्थात् वीर्य को हर लेती है अतः जलहरी योनि का ही नाम है। जब लिंग ही ब्रह्माण्ड का नक़शा नहीं तो फिर जलहरी यानी योनि सप्तावरण का नक़शा कैसे होगा। अच्छा यह तो बतलावें कि शिवलिंग पर पानी डालने का क्या प्रयोजन है। अतः आपकी यह सारी ही कल्पना मिथ्या है। वास्तव में ( नं० १३४ ) की कथा साफ बतला रही है कि शिव के लिंग की पार्वती की योनि में स्थापित किया गया। और उस योनि का नाम बाण रक्खा गया। देखिये—

गिरिजां योनि रूपां च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः।
तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभि मन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥
( शिव० कोटिरुद्र० अ० १२ )

भाषार्थ—गिरजा योनि रूप को शुभ बाण ( जलहरी ) बना कर उस में लिंग को स्थापन करना चाहिये फिर उसका अभिमंत्रण करे ॥ ३७ ॥ इसके अतिरिक्त ( नं० १६६ ) में भी वर्णन है कि शिव तथा सती के वीर्य से योनि समेत लिंग पैदा

हुए। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये हम एक कथा नीचे और देते हैं। ताकि आपकी भ्रांति दूर हो जावे। पढ़िये—

न शुश्रुम यदन्यस्य लिंगमभ्यर्चितं सुरैः ॥२२६॥
कस्यान्यस्य सुरैः सर्वैं लिंगमुक्त्वामहेश्वरम्।
अर्च्यतेऽर्चितपूर्ववा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः ॥ २२७ ॥
यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सहदेवतैः।
अर्चयेथाः सदा लिंगं तस्मात्तेष्टतमोहिसः ॥ २२८ ॥
न पद्मांका न चक्रांका न वज्रांका यतः प्रजाः।
लिंगांका च भगांका च तस्मान्माहेश्वरी प्रजाः ॥ २२९ ॥
देव्याः कारण रूप भावजनिताः सर्वा भगांकाः स्त्रियो।
लिंगेनापि हरस्य सर्व पुरुषाः प्रत्यक्ष चिह्नाकृताः ॥
योऽन्यत्कारण मीश्वरात् प्रवदते देव्या च यन्नांकितम्।
त्रैलोक्ये स चरा-चरे स तु पुमान् वाह्यो भवेद्दुर्मतिः ॥२३०॥
पुंलिंगं सर्वमीशानं स्त्रीलिंगं विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥ २३१ ॥

( महाभारत अनुशा० अ० १४ )

भाषार्थ—हमने यह नहीं सुना कि देवताओं ने किसी और के लिंग को पूजा हो ॥ २२६ ॥ महेश्वर को छोड़ कर दूसरे किस के लिंग को सब देवताओं ने पूर्व या अब पूजा हो कहिये, यदि आपने सुना हो ॥ २२७ ॥ जिस के लिंग को ब्रह्मा और विष्णु तथा आप सब देवताओं के साथ सदा पूजते हैं। इस लिये वह ही इष्टतम है ॥ २२८ ॥ जिस कारण से प्रजा न पद्म-चिह्न वाली है न चक्र चिह्न वाली और न वज्र चिह्न वाली है। अपितु सारी प्रजा लिंग तथा भग के चिह्न से अंकित है इसलिये सारी प्रजा महादेव की है ॥ २२९ ॥ देवो ने कारण रुप-भाव

से भग के चिह्न से अंकित सब स्त्रियाँ पैदा कीं। और सारे ही पुरुष प्रत्यक्ष में महादेव के लिंग से चिह्नित हैं। जो महादेव से भिन्न किसी और को कारण कहता है और जो देवी से अंकित नहीं हैं। वह पुरुष चराचर त्रिलोकी में बाहर करने के योग्य है क्योंकि वह बेवकूफ है॥ २३०॥ जितने पुंलिंग हैं वे सब महादेव हैं। तथा जो स्त्रीलिंग हैं वे सब पार्वती हैं। इन दोनों के शरीर से ही सारा जगत् व्याप्त है॥ २३१॥

अब तो आपको निश्चय हो गया होगा कि लिंग के चारों तरफ जो गोल दाइरा बना हुआ है वह केवल जलहरी ही नहीं है अपितु पार्वती की भग की तसवीर है।

१३८—(प्रश्न) इससे भिन्न लिंग जलहरी का जो कोई मन माना अर्थ करता है वह मिथ्या और अमान्य है।

उत्तर—पुराणों के इन प्रकरणों में लिंग तथा योनि का मूत्रेन्द्रिय ही अर्थ है। हम कितने प्रमाण दे चुके हैं। और भी देते हैं। पढ़ियेगा—

नित्यं च ब्रह्मचर्येण लिंगमस्य यदास्थितम्।
महयन्त्यस्य लोकाश्च प्रियं ह्येतन्महात्मनः॥१५॥
विग्रहं पूजयेद्यो वै लिंगं वापि महात्मनः।
लिंग पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते॥१६॥
ऋषयश्चापि देवाश्च गंधर्वाप्सरसस्तथा।
लिंग मेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थितम्॥१७॥

महा० अनुशा० अ० १६१।

भावार्थ—जब इसका लिंग नित्य ब्रह्मचर्य से स्थित है और लोग उसको पूजते हैं, महात्मा को यही प्रिय है॥१५॥ जो

महात्मा के शरीर को पूजता है या महात्मा के लिंग को पूजता है वह बड़ी भारी सम्पत्ति को प्राप्त होता है ॥१६॥ ऋषि और देवता गंधर्व और अप्सरायें उसी लिंग की पूजा करते थे जो ऊपर को खड़ा है ॥१७॥

इस प्रमाण में लिंग का ब्रह्मचर्य से रहना तथा ऊपर को खड़ा हुआ ये दोनों विशेषण सिद्ध करते हैं कि जिस लिंग की पूजा होती है वह महादेव की मूत्र इन्द्रिय ही है, कोई और वस्तु नहीं है। जब लिंग नाम मूत्र इन्द्रिय का है तो इसके सहयोग से योनि नाम भी पार्वती की मूत्रेन्द्रिय का ही है और उसी की पौराणिक लोग पूजा करते हैं। हम इस बारे में एक अन्तिम प्रमाण और देते हैं। जिससे क़तई आपकी तसल्ली हो जावेगी। देखिये—

कदाचिद्भगवानत्रिर्गंगा कूलेऽनसूयया ॥६७॥
तस्य भावं समालोक्यत्रयो देवाः सनातनाः।
अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्यवचोऽ ब्रुवन् ॥७०॥
लिंग हस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धनः।
ब्रह्मा काम ब्रह्मलोपः स्थितस्तस्यावशंगतः ॥
रतिं देहि मदाघूर्णे नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥७१॥
मोहितास्तत्रतेदेवा गृहीत्वा तां बलात्तदा।
मैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्माया विमोहिताः ॥७३॥
तदा क्रुद्धा सती सा वै तानशशाप मुनिप्रिया ॥७४॥
महादेवस्य वै लिंगं ब्रह्मणोऽस्यमहाशिरः।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैः सदा।
भविष्यन्ति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ॥७५॥

भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० १७

भाषार्थ—कभी भगवान् अत्रि अपनी धर्मपत्नी अनसूया के साथ गंगा के किनारे रहते थे ॥ ६७ ॥ उसके भाव को देखकर सनातनधर्म के तीनों देवता उसकी पत्नी अनसूया को यह बात कहने लगे ॥ ७० ॥ हाथ में लिंग लिये हुए महादेव जो और विष्णु उसके रस को बढ़ाते हुए तथा ब्रह्मा जो कामवश वेद का लोप करते हुए उस अनसूया के वश में होकर स्थित हो गये। हे मस्त आँखोंवाली ! हमें जवानी का दान कर, वरना हम प्राण छोड़ते हैं ॥ ७१ ॥ मोहित होकर वहाँ वे देवता अनसूया को जबरन पकड़कर मैथुन करने के लिये यत्न करने लगे ॥ ७३ ॥ उस मुनिपत्नी ने जब क्रोध में आकर उनको शाप दिया ॥ ७४ ॥ कि महादेव जी का लिंग ब्रह्मा का सिर और विष्णु के चरण संसार में मनुष्यों से पूजे जावेंगे और हे देवताओ ! तुम्हारा उपहास होगा ॥ ७५ ॥ इस प्रमाण में सिर और पाओं के सहयोग से लिंग भी शरीर के अंग मूत्रेन्द्रिय का ही नाम है और वस्तु का नाम नहीं है।

पुराणों के इन तमाम प्रमाणों से साबित है कि शिवालयों में जो नीचे गोल आकार दाइरा है वह पार्वती की भग तथा जो गोल २ मूसल सा गड़ा हुआ है वह शिव का लिंग है और इन ही की पौराणिक लोग पूजा करते हैं।

(१३९) प्रश्न—स्वामी जी ने यह मजा किया कि पति के लिए उसकी स्त्री को पूज्या लिख दिया ॥ पृ० २१९ पं० २८।

उत्तर—आप पूजा शब्द के ग़लत अर्थ समझने के कारण भ्रम में पड़े हुए हैं। पूजा शब्द के अर्थ धूप दीप आरती उतारना

घंटा घड़ियाल शंख बजाना तथा परिक्रमा करना नहीं है। पूजा शब्द शास्त्रों में तीन अर्थों में आता है (१) किसी चीज़ की मुनासिब इज्ज़त (२) किसी चीज़ का मुनासिब इस्तेमाल (३) किसी चीज़ की मुनासिब हिफाज़त।। हम यह बात ज़बानी नहीं कहते अपितु प्रमाणों के आधार पर कहते हैं।

विवाह संस्कार में जब वर वधू के मकान पर पहुंचता है तो वधू तथा कार्य्य कर्ता आदि कहते हैं कि "साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्" आप आइये हम आप की पूजा करेंगे। वर उत्तर देता है "अर्चय" आप पूजा करें। अब वहाँ क्या पूजा होती है। क्या वर को धूप दीप आरती उतारी जाती है या घंटा घड़ियाल शंख बजाया जाता है या उसकी परिक्रमा की जाती है। हर्गिज़ नहीं। अपितु उसे बैठने के लिये आसन पाँओं तथा मुख धोने के लिये, जल पीने के लिये लिये जल, तथा भोजनार्थ मधुपर्क और उसकी भेंटार्थ गौ दी जाती है। और इसी का नाम पूजा या मुनासिब सत्कार है।

## पूजा किसने किसकी की

वशिष्ठ ने विश्वामित्र की

तमागतमभिप्रेक्ष्य वशिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः।
विश्वामित्रं नर श्रेष्ठं प्रतिजग्राह पूजया ।।

महा० आदि० अ० १७७ श्लो० ७

ब्राह्मणों ने विदुर की

ततः प्रायाद्विदुरो ऽश्वैरुदारैः ।। १ ।।
प्रविवेश महाबुद्धिः पूज्यमानो द्विजातिभिः ।। २ ।।

महा० सभा० अ० ५८

ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर की

ऐते चान्ये च बहवो ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ।
अजातशत्रुमानर्चुः पुरंदरमिवर्षयः ॥ २५ ॥

महा० वन० अ० २६

ब्राह्मणों ने अर्जुन की

स तथ्यं मम तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो राजसत्तम ।
अपूजयत मां राजन् प्रीतिमांश्चाभवन्मयि ॥ १३ ॥

महा० वन० अ० १६७

ब्राह्मणों से कर्ण की

शुभे तिथौ मुहूर्ते च पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ २८ ॥

महा० वन० अ० २५२ ।

ब्राह्मणों ने बलराम की

प्रायाद्बलो राजन् पूज्यमानो द्विजातिभिः ।

महा० शल्य० अ० ३७ श्लो० ५७

ऋषियों ने राजा की

तं कार्मुकधरं दृष्ट्वा श्रमार्त्तं क्षुधितं तदा ।
समेत्य ऋषयस्तस्मिन् पूजां चक्रुर्यथा विधिः ॥ २ ॥

महा० शांति० अ० १२६ ।

तपस्वियों ने शूद्र की

तत्र कश्चित् समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः ।
आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ ११ ॥

महा० अनुशा० अ० १० ।

प्रत्येक ने शूद्र की

ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत् ।
अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमपि पूजयेत् ॥ ४८ ॥

महा० अनुशा० अ० ४८ ।

ऋषियों ने राम की

सहत्वारा ऋसान् सर्वान् यज्ञविघ्नान् रघुनन्दनः ।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ २४ ॥

बाल्मी० बाल० स० ३० ।

राम लक्ष्मण ने अहल्या की

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ।
स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राहसाहितौ ॥ १७ ॥

बाल्मी० बाल० स० ४९ ।

गौतम अहल्या ने राम की

गौतमोऽपिमहातेजा अहल्या सहितः सुखी ।
रामं संपूज्य विधिवत्तपस्तेपे महातपाः ॥ २१ ॥

बाल्मी० बाल० स० ४९ ।

इत्यादि अनेक स्थलों में छोटे बड़े इत्यादि सब के लिये यथा योग्य सत्कार के अर्थों में पूजा शब्द आता है। जैसे और सब के लिये आता है वैसे ही स्त्रियों के लिये भी यथा योग्य सत्कारार्थ पूजा शब्द आता है। देखिये—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाक्रियाः ॥ ५६ ॥
तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

मनु० अ० ३ ।

इयं हि नः प्रिया भार्य्या प्राणेभ्योऽपिगरीयसी ।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा ॥ १३ ॥

महा० विराट० अ० ३ ।

भाषार्थ—पिता भाई पति तथा देवरादि को चाहिये कि यदि वह कल्याण की इच्छा रखते हैं तो वह इन स्त्रियों की पूजा करें तथा उन को भूषित करें ॥ ५५ ॥ जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता सन्तान होती है। जहाँ इन की पूजा नहीं होती वहाँ सारे ही काम निष्फल होते हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये कल्याण चाहने वालों को हमेशा सत्कार, उत्सवों में इन की गहने कपड़ों तथा खाने की चीज़ों से पूजा करनो चाहिये ॥५६॥ इसकी पुष्टि करते हुए युधिष्ठिर कहते हैं। यह हमारी प्रिय पत्नी जो प्राणों से भी प्यारी है माता के समान पालन करने के योग्य है। तथा बड़ी बहन के समान पूजने के क़ाबिल है ॥ १३ ॥

यह तो रही स्त्री की पूजा अर्थात् यथा योग्य सत्कार की बात, हाँ यदि आप को पत्नी के पाओं पड़ने का शौक़ है तो उसकी पुष्टि में आप को दशरथ का प्रमाण याद रखना चाहिये।

अपि ते चरणौ मूर्द्ध्ना स्पर्शाम्येष प्रसीद मे ॥ १५ ॥
अंजलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते ॥ ३६ ॥
बाल्मी० अयो० स० १२।

भषार्थ—यह मैं तेरे पैरों को मुख से स्पर्श करता हूं मेरे पर कृपा करो ॥ १५ ॥ हे कैकेयि ! मैं हाथ जोड़ता हूँ और तेरे पाओं को छूता हूँ।

आशा है अब आपको पत्नी के पूज्या होने में संदेह न रहेग

किन्तु हम आप को पूजा शब्द के और भी विचित्र अर्थ बताते जावें तो और भी आप की तृप्ति हो जावेगी। शिव पुराण में देखें जब गणेश जी चौकीदारी का काम कर रहे थे तो महादेव जी ने विष्णु को गणेश के समझाने के लिए भेजा। तब—

अथ शक्तिसुतो वीरो वीर गत्या स्वयष्टितः।
प्रथमं पूजया मास विष्णुं सर्व सुखावहम्॥ ११॥

शिव० रुद्र० कुमार० अ० १६।

अर्थ—पार्वती के वीर गणेश ने अपनी लाठी से प्रथम ही सुखकारी विष्णु की पूजा की॥ ११॥

कहिये महाराज! यहां पूजा के अर्थ मरम्मत करना है या धूप दीप आरती उतारना और परिक्रमा करना। अतः पूजा के अर्थ यथा योग्य वर्ताव के हैं। जोकि प्रत्येक स्त्री पुरुष को परस्पर करना चाहिये।

(१४०) प्रश्न—जड़ शरीर के ज़रिये से जैसे औरत का व्यापक आत्मा प्रसन्न होकर आर्य्य समाजियों को मोक्ष देता है। वैसे ही जड़ मूर्ति के ज़रिये से उस में व्यापक ईश्वर प्रसन्न होकर वैदिक लोगों को मोक्ष देता है॥ पृ० २२० पं २५

उत्तर—औरत का जीवात्मा अपने पुण्य, पापों, का फल भोगने के लिये शरीर को धारण करता है। और उस शरीर में रहते हुए इन्द्रियों के द्वारा सुख दुख को महसूस करता है। किंतु ईश्वर न तो पुण्य, पाप करता है और न ही पुण्य पाप का फल भोगने को शरीर धारण करता है। और न ही वह व्यापक होते हुए मूर्ति आदि व्याप्य वस्तुओं के द्वारा मनुष्य शरीर वत् सुख वा दुख महसूस करता है। यदि परमात्मा व्यापक होने से मूर्ति के द्वारा प्रसन्न हो जाता है तो

क्या लोहे पीतल को कूटने से, पहाड़ पत्थर तोड़ने से, कुंआ खोदने से, लकड़ी फाड़ने आदि कर्मों से नाराज़ होकर पौराणिकों को नरक में अवश्य भेजेगा। स्त्री का आत्मा आर्य्य समाजियों को मोक्ष नहीं दे सकता क्योंकि मोक्ष का दाता निराकार व्यापक परमात्मा है। हां स्त्री का ग्रहण गृहस्थ मोक्ष में साधन अवश्य है। जैसा कि मनु ने लिखा है कि—

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखंचेहेच्छतां नित्यं योऽधार्योदुर्बलेन्द्रियैः ॥ मनु० ३ । ७९

भाषार्थ—अक्षय स्वर्ग की इच्छा करने वाले तथा इस संसार में नित्यसुख की इच्छा करने वाले को प्रयत्न से इस गृहस्थ का धारण करना चाहिये। किन्तु यह निर्बल इन्द्रिय लोगों से ग्रहण करने के योग्य नहीं है॥ ७९ ॥

अपत्यं धर्म्म कार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥ २८ ॥ मनु० ९

अर्थ—सन्तान धर्म्म कार्य्य सेवा उत्तम रति और अपना और पितरों का स्वर्ग सब पत्नी के आधीन है ॥ २८ ॥

फ़रमाइये, अब तो स्त्री के मोक्ष हेतु होने में आपको संदेह न रहेगा।

१४१ ( प्रश्न )—"यद्वाचानाभ्युदितम्" इत्यादि केनोपनिषत् की श्रुतियों पर हमारी कुछ शंकायें हैं। पृ० २२० पं० २।

उत्तर—हां महाराज ! आप श्रुतियों पर शंका कर लीजिये। आज तक तो हम यही समझते थे कि श्रुतियों पर नास्तिक लोगों को ही शंका हुआ करती है किन्तु अब पता लगा कि आप जैसे पौराणिकों को भी शंका है।

१४२ ( प्रश्न )—स्वामी दयानन्द जी केवल चार संहिताओं को स्वतः प्रमाण मानते हैं । उपनिषदों को नहीं । उपनिषत् वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं । वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं । जो ईश्वर को निराकार कहे ऐसी दशा में केन की श्रुतियों का वेदानुकूलत्व क्या लट्ठ के ज़ोर से सिद्ध होगा ।

पृ० २२१ पं० ३ ।

उत्तर—बस श्रीमान् जी यही शंका है । "खोदा पहाड़ और निकला चूहा" ऐसी बातों पर ही संगत होता है । केन का यह पाठ जहां स्वामी जी ने दिया है वहां पर पहिले "अंधन्तमः" तथा "नतस्यप्रतिमा" यह दो मन्त्र देकर फिर केन का पाठ दिया है । यह दोनों मन्त्र परमात्मा को निराकार तथा परमात्मा के स्थान में और की पूजा के निषेध को प्रतिपादन करते हैं । इन दोनों मन्त्रों के अनुकूल होने से ही केन का यह पाठ प्रमाण है । आप को केन का पाठ तो नज़र आगया किन्तु वेद के दो मन्त्र नज़र न आये, यह हम को भी आश्चर्य्य है ।

( १४३ ) प्रश्न )—इन्हीं श्रुतियों के आगे मूल में यक्षावतार का वर्णन आता है ।

उत्तर—न तो वहां अवतार शब्द है न परमात्मा के जन्म लेने का वर्णन आता है । अपितु ब्रह्म को सर्वोत्कृष्ट वर्णन करने के लिये लाक्षणिक लेख शैली से वर्णन किया गया है ( देखो २नं० ६ ) यदि आप यह मानते हैं कि इस लेख में वास्तव में परमात्मा का वर्णन है तो वह "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" इस वेद मन्त्र के विरुद्ध होने के कारण मानने के काबिल नहीं है ।

१४४ (प्रश्न) जब वेद ब्रह्म को रूप और अरूप कह रहा

है। तब उस के रूप प्रतिपादक मंत्र पबलिक के आगे नहीं आने पाते।

(उत्तर)—परमात्मा निराकार एकरस रूपरहित सर्व संसार में व्यापक है। वेद का एक मंत्र भी ऐसा आप पेश नहीं कर सके जो परमात्मा के दो रूप वर्णन करता हो। यदि किसी भी पौरुषेय पुस्तक में परमात्मा के दो रूप वर्णन हों तो वह पुस्तक अपौरुषेय वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण मानी जावेगी क्योंकि वेद परमात्मा को "सपर्य्यगात्" "नतस्य प्रतिमास्ति" इत्यादि मंत्रों द्वारा निराकार शरीर रहित परिमाण शून्य व्यापक वर्णन करता है।

१४५ (प्रश्न) यदि ब्रह्म हमेशा न आंख से दीखता है। न कान से सुनाई देता है, न वाणी उस को कह सकती है। और न वह किसी के मन में आता है। तो फिर ऐसे ब्रह्म का ध्यान पूजन कोई कैसे कर सकेगा। निराकार का ध्यान आज तक कभी हुआ नहीं और आगे को कभी हो नहीं सकता।

उत्तर—निःसन्देह वह ब्रह्म आंख नाक वाणी जिह्वा तथा स्पर्श का विषय नहीं है और न ही वह ब्रह्म मन का विषय है। क्योंकि प्राकृतिक शरीरकी ये प्राकृतिक इन्द्रियां प्राकृतिक विषयों को ग्रहण कर सकती हैं। परमात्मा प्रकृति से परे हैं। वह प्राकृतिक इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता। परमात्मा तो समाधि द्वारा आत्मा से ही अनुभव किया जा सकता है। हां परमात्मा की बनाई हुई स्थूल सृष्टि को प्राकृतिक इन्द्रियों से जान कर और परमात्मा की अद्भुत कारीगरी का मन से ध्यान करके परमात्मा को हस्ती का निश्चय किया जा सकता है। वरना

साकार वस्तुओं की प्रतीक के द्वारा निराकार परमात्मा का अनुभव न आज तक हुआ है और न ही होगा। इस बात को वेद स्वयं कहता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णंतमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु० ३१। १८)

भाषार्थ—मैं आत्मा उस व्यापक महान् प्रकाशस्वरूप अंधकार से दूर परमात्मा को जानता हूं। उस को जान कर ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता हैं और कोई रास्ता मोक्ष प्राप्ति का नहीं हैं॥ १८॥

इसी को स्पष्ट करने के लिये वेदान्त दर्शन कहता है।

न प्रतो के न हि सः॥ ४। १ ४॥

भाभार्थ—प्रतीक में परमात्मा की उपासना नहीं करनी चाहिये। क्योंकि प्रतीक परमात्मा नहीं है।

सारांश यह है कि प्राकृतिक इन्द्रियें परमात्मा की कारीगरी से परमात्मा की हस्ती का निश्चय तो कर सकती हैं। परमात्मा का साक्षात्कार तो केवल आत्मा ही समाधि द्वारा कर सकता है। हां यदि आप परमात्मा को प्रसन्न करना चाहते हैं। तो परमात्माकी आज्ञानुसार वेदानुकूल काम करें, और आप को अपने विचारानुसार भी परमात्मा की पूजा करने के लिये परमात्मा की मूर्ति कल्पित करने की जरूरत नहीं हैं क्योंकि आप ने अपनी किताब के पृ० ३१० पं० ६ में इस प्रकार से लिखा है कि—

"जहां वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है वहां

ब्राह्मण का पूजन होगा, जहां ईश्वर की भुजाओं का पूजन होना है वहां क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरु पूजनमें वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा।"

आप के इस लेखानुसार चारों वर्णों की पूजा ही समस्त ईश्वर की पूजा है। बस अब आप को मूर्ति कल्पना की आवश्यकता नहीं है। चारों वर्णों की सेवा कीजिये। इसी से ईश्वर आप पर प्रसन्न होजावेंगे।

१४६ (प्रश्न) "यथाभिमतध्यानाद्वा। योग० पाद १ सू० ३६" में लिखा हैं कि अत्यन्त प्रिय पदार्थ के ध्यान से मन स्थिर होता है। प्रिय पदार्थ साकार ही हो सकता है। अतः साकार के बिना ध्यान न होगा। पृ० २२१ पं० २२।

उत्तर—अत्यन्त प्रिय पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। एक ईश्वर कृत दूसरे मनुष्यकृत। यदि ईश्वर की बनाई हुई वस्तुओं में मन को लगाया जावेगा तो मन को उन वस्तुओं का ज्ञान हो जावेगा। और उन वस्तुओं में विद्यमान् कारीगरी को जान कर उन वस्तुओं के बनाने वाले ईश्वर की महान् महिमा को जानकर उसके अस्तित्व में निश्चय हो जावेगा। किन्तु उस का साक्षात्कार अनुभव आत्मा ही कर सकेगा मन नहीं, कर सकेगा। और यदि मनुष्य जीव कृत पदार्थों में ध्यान लगावेगा तो उन पदार्थों का ज्ञान होकर उनके बनाने वाले मनुष्य की कारीगरी से उस की महिमा से उस के कर्ता होने का निश्चय हो जावेगा। अतः इससे मूर्ति के कर्ता की कारीगरी ही जानी जा सकेगी, ईश्वर की नहीं। अतः मूर्ति में ईश्वर का ध्यान निरर्थक है।

१४७ ( प्रश्न )—"परमाणु परममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः । यो० पा० १ सू० ४०" में लिखा है कि परम अणु से लेकर परम महत् तक इस चित्त का वशीकार होता है । इस से सिद्ध है कि ध्यान साकारमें हो हो सकता है, निराकार में नहीं । पृ० २२१ पं० २६

उत्तर—इस में संदेह नहीं कि परम अणु से परम महत् तक ध्यान करने से मन को इन वस्तुओं का ज्ञान हो जावेगा । परन्तु उस को परमात्मा का साक्षात्कार न हो सकेगा । क्यूंकि प्राकृतिक मन प्रकृतिक वस्तुओंको ही जान सकता है । परमात्मा को नहीं । परमात्मा को तो आत्मा ही समाधि द्वारा अनुभव करके साक्षात्कार कर सकता है । अतः परमात्मा को साक्षात्कार करने के लिये मूर्ति की कल्पना निरर्थक है । मूर्ति के ध्यान से तो परमात्मा की कारीगरी तथा उसकी महिमा का भी ज्ञान नहीं हो सकेगा अपितु मूर्ति के कारीगरी तथा मूर्ति की सुन्दरता का ही ज्ञान हो सकेगा ।

१४८ (प्रश्न) "अर्चंत प्रार्चत" इस मंत्र को स्वामी जी ने ईश्वर की पूजा से हटा कर स्त्री की पूजा में लगा दिया । पृ० २२२ पं० १२

उत्तर—इस मंत्र का देवता इन्द्र है । ऐश्वर्य वाला होने से इन्द्र ईश्वर का भी नाम है । तथा इन्द्रियों का स्वामी होने से जीव को भी इन्द्र कहते हैं । यदि इस मंत्र को परमात्मा की पूजा में लगा दिया जावे तब भी इस मे मूर्ति पूजा साबित नहीं होती अपितु ईश्वर पूजा ही सिद्ध होगी । किन्तु वास्तव में यह मंत्र मनुष्यों को परस्पर सत्कार की आज्ञा देता है । विशेष देखें ( नं० ६८ ) ।

१४६ (प्रश्न) स्वामी जी कहते हैं कि "जो फूल संसार को सुगंधित करते हैं। वह मूर्ति पूजा के जल में सड़कर बदबू देने लगते हैं इस कारण मूर्ति पूजा छोड़ दो"। यह रूल आर्य्य समाज को मान्य है तो आर्य्यसमाजियों को खाना पीना सब छोड़ देना चाहिये। क्योंकि घृत दूध फल मिठाई अन्न जो पदार्थ सुगंधित और सुहावने हैं। खाने से उन सब का बदबू-दार पाखाना बन जाता है। पृ० २२२ पं० २०

उत्तर--आपको कभी तो ईमानदारी से काम लेना चाहिये। क्या स्वामी जी ने यही लिखा है जो आपने ऊपर दिया है। आप अपनी ही पुस्तक के पृ० २१५ पं० १२ पर देखें। स्वामी जी की असल इबारत यह है कि--

"सोलहवां-पत्थर पर चढ़े हुए पुष्पचन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आ कर सड़ के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उस में पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं। ऐसे २ अनेक मूर्ति पूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्ति पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्हों ने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे"

१५२ ( प्रश्न )—स्वामी जी ने आर्य्यभिविनय पृ० १८ में "वायवायाहि दर्शते ऋ० १।१।३।१ "में ईश्वर से प्रार्थना की है कि "हे परमेश्वर हमने सोमादि औषधियों का रस बनाया है आप स्वीकार करें ( सर्वात्मा से पान करो )" यहां पर आर्य्य

समाज ने निराकार ईश्वर को गुर्च के अर्क का भोग लगाया है। गुर्च के अर्क का ईश्वर को भोग लगाने वाला आर्य्यसमाज स्पष्ट रूप में मूर्ति पूजक है ॥ पृ० १३ पं० १।

उत्तर—इस मन्त्र में प्रथम तो "स्वीकार करो" इस वाक्य को ही कोष्ठ में ( सर्वात्मा से पान करो ) लिखकर स्पष्ट किया है। अतः यह स्वतन्त्र वाक्य नहीं अपितु इस का अभिप्राय "स्वीकार करो" ही है। दूसरे इस में मुख से पान करना नहीं लिखा अपितु सर्वथा से पान करना लिखा है। जिससे ईश्वर की सर्वव्यापकता दिखाना मक़सद है।

तीसरे "पान करना" का अर्थ भी पीना नहीं है। अपितु रक्षा करना अर्थ है। क्योंकि यह रूप "पा पाने" का नहीं है अपितु "पा रक्षणे" का रूप है। जिस से पिता पति शब्द भी बनते हैं। अतः इसका अर्थ यह हुआ कि "आप स्वीकार करें अर्थात् सर्वात्मा से रक्षा करो' इसी मन्त्र का ऋग्वेद के भाष्य में अर्थ करते हुए स्वामी जी लिखते हैं। कि—

( तेषां ) तान् पदार्थान्। षष्ठी शेषे अ० २। ३। ५० इतिशेषत्व विवक्षायां षष्ठी। पाहि ) रक्षयति वा ( ऋ० ३६ प्रथमभाग )

भाषार्थ—( तेषां ) आप ही उनपदार्थों के रक्षक हैं इस से उनकी ( पाहि ) रक्षा भी कीजिये।

अतः यहां पर ईश्वर को भोग लगाने की कल्पना करके मूर्ति पूजा सिद्ध करने का यत्न वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध दुराग्रह मात्र ही है।

———

# स्वामी दयानन्द और मूर्ति पूजा

## मनसा परिक्रमा

१५० (प्रश्न) संस्कार विधि पृ० १६४ में आर्य समाज की संध्या में मनसा परिक्रमा लिखी है। प्रथम तो ऊपर लिखा है कि—"अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः।" इस हैडिङ्ग के बाद नीचे "प्राची दिगग्निरधिपतिः" इत्यादि वेद के ६ मन्त्र परिक्रमा करने के लिखे हैं। जिन मन्त्रों से हमारे समाजी भाई नित्य-प्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से परिक्रमा करना तब ही हो सकता है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम कर ली जावे। मूर्ति कायम करके उसके चारों तरफ घूमना मूर्ति-पूजा है क्योंकि विना स्वरूप शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती। हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्य बनानी पड़ती है। यह बात दूसरी है कि—सनातनधर्मी चार अंगुल या दो बालिश्त की मूर्ति बनाते हैं और आर्यसमाजी सौ दो सौ मील लम्बी और पचास साठ मील चौड़ी बनाते हैं, परन्तु विना मूर्ति के इनकी सन्ध्या हो ही नहीं सकती। जब यह प्रति दिन परमात्मा की मूर्ति बनाकर उस की परिक्रमा करते हैं तो क्या कोई विचार शील मनुष्य कह सकता है कि ये मूर्तिपूजा नहीं करते? पृ० ६ पं० १६

उत्तर—न्यायदर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है—

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्
१।२।१२॥

जहां खास अर्थ न किया हो। साधारणतया जो बात कही हो वहां वक्ता के अभिप्राय (मतलब) को न लेकर उससे

उलटा परिणाम निकालना वाक्छल यानी वाणी का छल होता है। जितने भी प्रमाण महर्षिकृत पुस्तकों में से पौराणिक मूर्ति पूजा की पुष्टि में पेश करते हैं उन सब में वाक्छल होता है। इस बात को हम स्थान २ पर दर्शायेंगे। ताकि पाठकों को पता लग जावे कि ये किस ढंग से अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के विषय में ऋषि संस्कार विधि में लिखते हैं—नीचे लिखे मन्त्रों से "सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे। इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहिर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निःशंक उत्साही आनन्दी पुरुषार्थी रहना।"

उपर्युक्त लेख में कितनी साफ़ परमात्मा की सर्वव्यापकता वा पूर्णता दिखलाई है। कभी साकार मूर्ति वाला सर्वव्यापक हो सकता है? ऐसा साफ़ ऋषि का लेख होने पर भी उससे मूर्तिपूजन सिद्ध करना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? यहाँ परिक्रमा के अर्थ परमात्मा के चारों तरफ़ चक्र लगाना हैं, किन्तु जो मनुष्य सन्ध्या करता है उस की अपेक्षा (निस्बत) से चारों तरफ़ नीचे ऊपर भाग से है। जब अघमर्षण मन्त्र में मन परमात्मा की महिमा को देखता है तो पाप की इच्छा से घबराकर चारों ओर भागता है किन्तु जिधर भी जाता है उधर भगवान् को मौजूद, सर्वव्यापक पाता है, परिणाम स्वरूप थक कर उसी ब्रह्म में स्थित हो जाता है। बस यह सिद्ध होगया कि—परिक्रमा के अर्थ हमारे शरीर की अपेक्षा (निस्बत) से चारों तरफ नीचे ऊपर भागने के हैं, परमात्मा के चारों ओर घूमने के नहीं।

१५१ (प्रश्न)—स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६६ तथा संस्कार विधि में पृ० १९८ में बलिवैश्वदेव विधि में इन्द्र यम वरुण सोम मरुत जल देवताओं को तथा ओखल मूसल और लक्ष्मी और भद्रकाली दुर्गा को भोग लगाना लिखा है। इससे मूर्ति पूजा साफ साबित है। पृ० १० पं० ७

उत्तर—प्रतीत होता है कि आपने झूठ बोलने तथा जनता को भ्रम में डालने का ठेका ही ले रक्खा है। वरना आप को यह मालूम है कि यह बलि वैश्व देव का प्रकरण है जो कि पंच महायज्ञों में चौथा यज्ञ है। जिस की विधि मनु में अध्याय ३ श्लोक ८४ से ९२ तक में दी गई है। उसीके आधार पर यह स्वामी जी का लेख है। जो कि स्वामी जी ने "अहरहर्बलि-निमित्ते इत्यादि अथर्व १९।५५।७" के अनुकूल होने से ग्रहण किया है। मनु ने इस का प्रयोजन भी लिख दिया है कि 'भूतानि बलिकर्मणा—मनु० ३।८१" प्राणियों को बलि वैश्व देव यज्ञ से सत्कृत करे। इससे साफ साबित है कि बलिवैश्व देव का प्रयोजन अन्न से प्राणियों को तृप्त करना है। फिर ना मालूम आपको प्रकरण विरुद्ध झूठ बोल कर मूर्ति पूजा सिद्ध करने का क्यों ख़बत समाया है। आपकी कल्पना निम्न हेतुओं से सर्वथा मिथ्या है।

(क) यह बलिवैश्व देव यज्ञ का प्रकरण है। उपासना का प्रकरण ही नहीं है।

(ख) स्वामी जी के लेख में कहीं भी "भोग" शब्द मौजूद नहीं है।

(ग) स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि दोनों में "सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः" इत्यादि

मन्त्रों के नीचे यह पाठ दिया है। जिस को आपने चुरा लिया है। "इन मंत्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना। यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजाये तो उसी को दे देना, नहीं तो अग्नि में धर देना" और स्वामी जी का यह लेख भी स्वयं कल्पित नहीं है। देखिये व्यास जी कहते हैं कि—

एवं हुत्वा बलिं सम्यक् दद्याद् भिक्षां द्विजातये।
अलाभे ब्राह्मणस्याग्नावप्रमुद्धृत्य निक्षिपेत् ॥१५।
(महा० अनु० अ० ९७)

इससे भला मूर्ति पूजा कैसे साबित हो सकती हैं।

(घ) स्वामी जो ने मूर्ति पूजा को वेद विरुद्ध साबित करते हुए उसका घोर खंडन किया है। उनके लेख से तोड़ मरोड़ कर मूर्ति पूजा सिद्ध करने का प्रयत्न करना महा धोका और झूठ है।

(ङ) इन मंत्रों में आपके कल्पित देवताओं का नाम तक भी नहीं है। स्वामी जो ने इन मंत्रों के अर्थ स्वयं ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पंच महायज्ञ प्रकरण में किये हैं जो निम्नप्रकार से हैं—

इन्द्र—परमैश्वर्य युक्त परमेश्वर और उस के गुण।

यम—सत्य न्याय करने वाला और उस की सृष्टि में सत्यन्याय करने काले सभासद्।

वरुण—सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त जन!

सोम—पुण्यात्माओं को आनन्द करने वाला परमात्मा और वे लोग।

मरुत्—प्राण जिन के रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उन की रक्षा करना।

आप—सर्वव्यापक परमात्मा।

वनस्पति—ईश्वर के उत्पन्न किये हुए वायु और मेघ आदि सब के पालन के हेतु सब पदार्थ तथा जिनसे अधिक वर्षा और जिन के फलों से जगत् का उपकार होता है। उनकी रक्षा करनी।

श्री—जो सेवा करने के योग्य परमात्मा और पुरुषार्थ से राज्य श्री की प्राप्ति करने में सदा उद्योग करना।

भद्रकाली—जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति और सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय करना।

ब्रह्मपति—जो वेद के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना विद्या के लिये करना।

वास्तुपति—जो गृहसंबंधी पदार्थों का पालन करने वाला ईश्वर इत्यादि में मूर्ति पूजा का नाम मात्र भी नहीं है अपितु परमात्मा का नाम लेकर समस्त प्राणियों के उपकार का काम करना लिखा है।

स्वामी जी सोलह हेतुओं से मूर्ति पूजा को त्याज्य बतलाते हैं। आप ने पंद्रह हेतुओं को तो छुआ तक नहीं। केवल एक हेतु पर ही आप नुक्ताचीनी कर सके हैं और उस का भी आपने अधूरा और मन माना पाठ देकर जनता को भ्रम में डालना चाहा है। इस के अतिरिक्त अपने जो इस काम को मनुष्य के

भोजन के साथ तुलना दी है। वह युक्ति शून्य है। क्या मनुष्य के किये हुए भोजन का मल बनना और मूर्ति के ऊपर चढ़े हुए पदार्थों का सड़ कर बदबू पैदा करना बराबर है। अन्न का भोजन करना मनुष्य के प्राणों का आधार है भोजन के बिना पुरुष की मृत्यु हो जाती हैं तो क्या पुष्प आदि पदार्थ भी मूर्ति के प्राणों का आधार हैं वा उन के बिना मूर्ति मर जाती है। और फिर जिस भोजन को पुरुष खाता है मेदा उस को हज़म करके उस के रस को खैंच कर उस का खून बना कर सारे शरीर की पुष्टि करता है। और फोक सार हीन को पाखाने के रास्ते बाहर फैंक देता है। किंतु मूर्ति पर चढ़ाये पदार्थों का कोई भी उपयोग नहीं होता। और मूर्ति को उस से कोई लाभ नहीं होता। अपितु वह पदार्थ व्यर्थ ही नष्ट हो जाते हैं। अतः पुरुषों का भोजन करना सार्थक और भोजन में प्रयुक्त पदार्थों का सदुपयोग तथा मूर्ति पर पुष्पादि का चढ़ाना निरर्थक और मूर्ति पर चढ़ाये पदार्थों का दुरुपयोग है। इस से स्वामी जी का लेख सत्य और आप का असत्य सिद्ध होता है।

१५३ ( प्रश्न )—स्वामी जी ने 'घृतेन सीता इत्यादि यजु० १२। ७०' इस मन्त्र के भाष्य में लकड़ी के पटेले अर्थात् जिस से खेत की मिट्टी एक सी की जाती है। उस पर जल, घी, दूध, शक्कर, शहद चढ़ा कर पूजा करना लिखा है। इस से मूर्ति पूजा साफ तौर से सिद्ध होती है। पृ० १४ पं० १०।

उत्तर—प्रथम स्वामी जी के अर्थ में कहीं पूजा करो शब्द मौजूद नहीं है आप ने चालाकी करके अपनी तरफ से

शामिल कर दिया है। दूसरे 'पटेले के उपर शहदादि चढ़ाना स्वामी जी के भाष्य में नहीं अपितु 'पटेला घी तथा शहद वा शक्कर आदि से संयुक्त करो' ऐसा पाठ है। तीसरे यहां उपासना का प्रकरण नहीं अपितु कृषिका प्रकरण है। क्योंकि इस मन्त्र का देवता कृषि है।

चौथे—पटेला से स्वामी जी का अभिप्राय खेत में हल चलाने से पैदा हुई उस गहरी लकीर का है जिस में बीज बोया हुआ उगता है। क्योंकि यह अर्थ मन्त्र में विद्यमान सीता शब्द का है और सीता शब्द का अर्थ हल या सुहागा हो ही नहीं सकता। जैसा कि—

सीता लांगल पद्धतिः (अमरकोष १९। १५)

अर्थात् सीता यह एक नाम हल की रेखा का है। इसी को स्वामी जी ने पटेला शब्द से वर्णन किया है। आप ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के मन माना अर्थ लकड़ी का सुहागा निकाल मारा।

पांचवें—स्वामी जी के स्वयं लिखे हुए मन्त्र के नीचे के भावार्थ को आप ने चुरा लिया है। जिस से स्वामी जी का अभिप्राय स्पष्ट होता है वह यह है कि—

सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न से सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार युक्त करें।

कहिये इस भावार्थ में साफ तौर से 'पृथिवी को भी

संस्कार युक्त करें' लिखा है या नहीं। और अब बतावें कि पटेले का कर्थ सुहागा कैसे हो सकता है। इस मन्त्र का साफ अभिप्राय यह वाजह हो गया कि जैसे नमक, हड्डी, मछलियां, राख, पाखाना, खून आदि खास २ पौदों की परवरिश के लिये खाद के तौर पर ज़मीन में ड़ाले जाते हैं। वैसे ही खास पौदों की परवरिश के लिये जल, दूध, घी, शक्कर, शहद आदि पदार्थों से ज़मीन को खाद देकर ठीक संस्कार युक्त करो, ताकि अन्नादि पदार्थ पुष्कल पैदा हों। इस लेख से मूर्ति पूजा निकानिकालना बालू से तेल निकालने के समान सर्वथा असंभव है।

१५४ (प्रश्न)—स्वामी जी ने संस्कार विधि के मुण्डन संस्कार में लिखा है कि—

"ओं औषधे त्रायस्व एन ꣳ मैन ꣳ हि ꣳ सीः"

जिस का अर्थ यह है कि "हे औषधि कुश! इस बालक की रक्षा कर इस को मत मार" कुशा तृण है तृण से जीवन प्रार्थना करना निः संदेह मूर्ति पूजा है। पृ० १५ पं० ११

उत्तर—हमारे सामने संस्कार विधि मौजूद है। इस में केवलयह लिखा है कि "तदपश्चात्—

ओं औषधे त्रायस्वैनम्

इस मंत्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के"

इस के विना संस्कार विधि में न तो इस मंत्र के अथ दर्ज हैं। और न ही तृण से जीव की प्रार्थना की गई है "किसी वाक्य के स्वयं मन माने अर्थ करके स्वयं ही एतराज़ करना

कहांकी ईमानदारी है† । अतः यदि आप एतराज़ करना ही चाहते हैं तो इस मंत्र का अर्थ भी स्वामी जी कृत लिखिये "यजु० ४।१" में स्वामी जीने इस प्रकारसे इस मंत्रके अर्थ किये हैं कि—

"हे विद्वन् जैसे सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है। वैसे तू भी हम लोगों की रक्षा कर। इस यजमान वा ाणि मात्र को कभी मत मार"

अब बतलाइये, इस अर्थ में से मूर्ति पूजा कहां से सिद्ध होती है ।

१५५ (प्रश्न)—संस्कार विधि के मुण्डन संस्कार में लिखा है कि—

"ओं विष्णो र्दंष्ट्रोऽसि"

इस का अर्थ यह है कि—"कि हे छुरे तू विष्णु की दाढ़ है" क्या निराकार की दाढ़ हो सकती है, इस से ईश्वर का साकार होना तथा मूर्तिपूजा साबित है ॥ पृ० १५ पं० १६

उत्तर—झूठ बोलना आपका मौरूसी पेशा मालूम होता है। वरना संस्कार विधि का मुण्डन संस्कार हमारे सामने

---

† स्वामी जी के लेख पर शंका करने के लिये स्वामी जी के ही अर्थ लिखने चाहिये, जैसा कि स्वामी जी ने स्वयं लिखा है कि "यहां सब मन्त्रों का अर्थ नहीं लिखा है। क्योंकि इस में कर्मकाण्ड का विधान है। इस लिये विशेष कर क्रिया विधान लिखा है। और जहां २ अर्थ करना आवश्यक है वहां २ अर्थ भी कर दिया हैं। और मन्त्रों के यथार्थ अथ मेरे किये वेद भाष्य में लिखे है, जो देखना चाहें वहां से देख लेवे'

(संस्कार विधि की भमिका)

पड़ा है, इस में यह लिखा है कि—"ओं विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि"

इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के"

बस इस के बिना संस्कार बिधि में न तो मन्त्र के अर्थ लिखे हैं और न छुरे को विष्णु की दाढ़ बतलाया गया है। आप ने स्वयं ही मन माने अर्थ करके प्रश्न भी कर डाला यह शरीफ आदमियों का काम नहीं है। हां यदि आपको प्रश्न करना है तो पहिले आर्य्य समाज से इस के अर्थ पूछें, फिर प्रश्न करें। देखिये "यज्ञो वै विष्णुः॥ शत० १।२।१३" विष्णु नाम यज्ञ का है। और "दंश्यतेऽनेनेति दंष्ट्रः" जिस से काटा जावे उसका नाम दंष्ट्र है। अब ऊपर के मन्त्र के अर्थ यह हुए कि—"छुरा यज्ञ में वस्तुओं को काटने का साधन है"

अब बतलाइये, इसमें ईश्वर का साकार होना तथा मूर्ति पूजा किस प्रकार से सिद्ध हो सकती है।

१५६ (प्रश्न)—संस्कार विधि के मुण्डन संस्कार में लिखा है कि—

ओं शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हि ꣳ सीः॥ इसका अर्थ यह है कि "हे तेज़ धार वाले छुरे! शिव तेरा नाम है और लोहा तेरा बाप है, मैं तुझे नमस्ते करता हूं। हे छुरे तू इस बच्चे को मत मार"। छुरे को संबोधन करके नमस्ते कहना तथा छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू बच्चे को मत मार निःसंदेह मूर्ति पूजा है॥ पृ० १६ पं० १

उत्तर—या बेईमानी तेरा आश्रय। हमारे सामने संस्कार विधि का मुण्डन संस्कार प्रकरण है। इस में केवल यह लिखा हुआ है कि—

शिवोनामासि स्विधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा माहि ३० सीः ॥ इस मंत्र को बोलके छुरे को दाहिने हाथ में लेवे" इस के सिवाय यहां कुछ भी नहीं लिखा। न तो यहां पर मंत्र का अर्थ किया हुआ है। और न ही कहीं छुरे को नमस्ते लिखा हुआ है। और न ही कहीं पूजा शब्द मौजूद है। स्वयं ही मनमाने ऊट पटांग अर्थ करके स्वयं ही उस पर प्रश्न करना यह शराफ़त नहीं है। हां, यदि आपको अर्थ पर शंका करनी है। तो इस मंत्र के अर्थ का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ यजु० ३।६३ में देखें। इस प्रकार हुआ है कि—

"हे जगदीश्वर! और उपदेश करने हारे विद्वान्! जो आप आप अविनाशी होने से वज्र मय (निश्चल-दृढ़) हैं। जिस आपका सुख स्वरूप विज्ञान का देने वाला नाम है। सो आप मेरे पालन करने वाले हैं। आपके लिये मेरा सत्कार पूर्वक नमस्कार विदित हो"

अब फरमाइये इस में छुरे को सम्बोधन करना और उसे नमस्ते करना कहां है, और इसे मूर्ति पूजा कैसे साबित होती है

पौराणिक लोग इसी तरह से संस्कार विधि का नाम लेकर कहा करते हैं कि स्वामी जी ने डंडे की पूजा, जूते की पूजा, ऊखल की पूजा, मूसल की पूजा इत्यादि इत्यादि चीज़ों की पूजा लिखी है। ऐसा सवाल करने पर बुद्धिमानों को निम्न बातों का ध्यान रख कर उत्तर देना चाहिये।

(१) संस्कार विधि में लिखा हुआ दिखाओ कि "डंडे की पूजा करो" 'जूते की पूजा करो' इत्यादि, इत्यादि।

(२) जिस मंत्र का अर्थ करके प्रश्न कर रहे हो वह अर्थ

स्वामी जी का किया हुआ है या किसी और का। स्वामी जी के लिखित मंत्र पर स्वामी जी का किया हुआ अर्थ ही प्रामाणिक हो सकता है, अन्य का नहीं। बस इतने से ही सनातन धर्म्म के प्रश्न इस तरह से गायब हो जावेंगे जैसे गधे के सिर से सींग।

---

# मूर्ति पूजा (परिशिष्ट)

(प्रश्न) बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ३१ श्लोक ४२—४३ में लिखा है कि रावण शिवलिंग की पूजा करता था।

उत्तर—प्रथम तो उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है। क्योंकि फल-श्रुति युद्ध काण्ड के अखीर में आजाती है। तथा उत्तर कांड में प्रथम छे कांडों के विरुद्ध घटनायें हैं। और उत्तर कांड के नाम से ही प्रकट हैं कि यह पीछे से बनाकर शामिल किया है। तथा कलकत्ते छपी रामायण में यह कांड नहीं है। दूसरे यह रावण जैसे राक्षसों का ही काम है। राम तो संध्या किया करते थे। रावण का काम वेद विरुद्ध होने से पाप सूचक है।

(प्रश्न) राम ने सेतु बंध के समय शिवलिंग की पूजा की।

उत्तर—सेतुबंध के समय राम ने कोई मूर्ति पूजा नहीं की।,लंका से वापसी पर राम ने सीता को पुल दिखा कर कहा कि—

अत्रपूर्वंमहादेवः प्रसादमकरोद्विभूः युद्ध० १२३ श्लोक २०

उस व्यापक देवों के देव परमेश्वर ने यहां हमारे पर

कृपा की। यह "विभूः" व्यापक परमात्मा से मुराद है। शिव-लिंग से नहीं।

(प्रश्न) महाभारत में आता है कि एकलव्य ने द्रोणाचार्य्य की मूर्ति बना कर शस्त्र विद्या सीखी।

उत्तर—(१) एकलव्य ने परमेश्वर के स्थान में उसकी पूजा नहीं की।

(२) अभ्यास से शस्त्रविद्या सीखी, मूर्ति ने नहीं सिखाई।

(३) द्रोणाचार्य्य को इस का पता भी नहीं लगा।

(४) मूर्ति बनाने का फल अंगूठा काटा गया।

(५) एक भील का फेल अनुकरणीय नहीं है।

(६) यदि आपके विचार में ठीक है तो आप भी मर्तियों से वेद पढ़ कर दिखलावें।

(प्रश्न) "देवताभ्यर्चनं चैव मनु० २।१७६" में देवताओं की पूजा से मूर्ति पूजा साबित है।

उत्तर—यहां देवता पूजा से विद्वानों की पूजा सत्कार सेवा अभिप्राय है। अथवा यदि सूर्य्य चांद हवादि को देवता माना जावे तो मनु स्वयं कहते हैं कि "होमैर्देवान् यथाविधि ३।८१" देवताओं की विधि पूर्वक होम से पूजा करे। यहां देवता पूजा से देव यज्ञ अर्थात् विद्वानों की सेवा तथा हवन करना लिखा है। मूर्ति पूजा का विधान नहीं है।

(प्रश्न) पत्थर में भी परमात्मा व्यापक है हम उसकी पूजा करते हैं।

उत्तर—पत्थर में परमात्मा तो है किंतु आत्मा नहीं है। किंतु तुम्हारे शरीर में परमात्मा तथा आत्मा दोनों मौजूद हैं।

अतः अपने शरीरस्थ आत्मा द्वारा परमात्मा का अनुभव करो।

(प्रश्न) पाषाण मूर्ति पूजा सीढ़ी है।

उत्तर—हिमालय पर्वत की प्राप्ति के लिये पाषाण सीढ़ी हो सकती है। परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा ही सीढ़ी है। इस से ज्ञान प्राप्ति द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होगी।

(प्रश्न) प्रकृति की पूजा क्यों न करें।

उत्तर—जीव सत्‌चित् है। अतः उसे सत् प्रकृति की उपासना न करनी चाहिये, क्यूंकि सत् गुण तो उसमें मौजूद है। हां चूंकि परमात्मा सत् चित् आनन्द है। अतः आनन्द की प्राप्ति अर्थ परमात्मा की पूजा करनी चाहिये, प्रकृति की नहीं।

(प्रश्न)—मूर्ति के कारण नोटों रुपयों का व्यवहार सुख दायक है। इसी प्रकार मूर्ति पूजा सुखदायक है।

उत्तर—राजा शरीर धारी है उस की मूर्ति नोटों आदि पर बन सकती हैं, निराकार परमात्मा की नहीं।

नोट रुपये राजा की आज्ञा से राजा के ही कारखाने में बने हुए सुखदायक हैं। यदि कोई राजा की आज्ञा के विरुद्ध जाली सिक्का घर में बनावे तो जेल की हवा खाता है। इसी प्रकार से परमात्मा की आज्ञानुसार, परमात्मा की आज्ञा मूर्तियों चांदी, सूर्य, पहाड़, हवा, पानी, भूमि, इनसान, पशु, पक्षी आदिकों से यथा योग्य व्यवहार करके सुख लाभ करो। परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध परमात्मा के स्थान में पाषाण आदि की मूर्तियों की पूजा करके नरक गामी न बनो।

(प्रश्न) जैसे काल की मूर्त घड़ी है वैसे परमात्मा की मूर्ति भी बन सकती है।

उत्तर—यह मूर्ति काल की नहीं सूर्य की है। क्योंकि सूर्य से ही काल का परिमाण है। यह सूर्य संसार में न रहे तो काल का कोई व्यवहार नहीं है। और न ही घड़ी की ज़रूरत।

प्रश्न— शब्दों की तसवीर अक्षरों की सूरत में बना लेते हैं, वैसे ईश्वर की मूर्ति बन सकती है।

उत्तर—शब्द की मूर्ति नहीं बनती। एक ही शब्द की विविध देशों में विविध मूर्तियां हैं। यदि वास्तव में मूर्ति बन सकती तो यकसां बनती। हां जो एक इन्द्रिय का विषय हो उस का दूसरी इन्द्रिय के लिये संकेत बनाया जा सकता है। शब्द चूंकि कान का विषय है। अतः उसे अक्षरों की सूरत में आंखों का विषय संकेत रूप से बनाया जा सकता है। परमात्मा चूंकि किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है। अतः उस का कोई संकेत भी नहीं बनाया जा सकता।

(प्रश्न)—जैसे पानी से बर्फ बन जाती है और दियासलाई से अग्नि प्रकट होती है। ऐसे ही परमेश्वर साकार हो कर प्रकट हो जाता है।

उत्तर—आग, पानी, मिट्टी, हवा इन चारों तत्वों के चूंकि परमाणु हैं अतः ये चारों तत्व साकार हैं। जब यह परमाणु रूप होते हैं तो ये सूक्ष्म होने से नज़र नहीं आते स्थूल अवस्था में ये नज़र आते हैं। वरना ये प्रत्येक अवस्था में साकार होते हैं। निराकार नहीं हैं। अतः ईश्वर के लिये इन का दृष्टान्त युक्त नहीं है। क्योंकि ईश्वर निराकार सर्व व्यापक है। तथा ये चारों तत्व साकार होने से सर्व व्यापक नहीं हैं। साकार पानी का साकार बर्फ बनता है। तथा दियासलाई से साकार अग्नि प्रकट होती है।

# त्रित्ववाद

१५७ (प्रश्न)— वेद ने सृष्टि कर्ता ईश्वर को माना है। तथा वेद ने सृष्टि बनने का मैटर भी ब्रह्म को ही माना हैं। जैसे मिट्टी से घट, लोहे से कुठार, सूत से वस्त्र, और सुवर्ण से कटक कुण्डल बनते हैं। इसी तरह यह समस्त संसार ब्रह्म से बना है। पृ० २२३ पं० ४।

उत्तर— जहां वेद ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानता है। वहां वेद सृष्टि बनने का मैटर नित्य प्रकृति को मानता हैं। ईश्वर ऐसे है जैसे घड़े में कुम्हार, कुठार में लुहार, वस्त्र में जुलाहा तथा कटक कुण्डल में सुनार है। जैसे कर्ता कुम्हार के गुण घड़े में, लुहार के गुण कुठार में, जुलाहे के गुण वस्त्र में तथा सुनार के गुण कटक कुण्डल मे विद्यमान नहीं हैं। अपितु घड़े में उपादान कारण मिट्टी के गुण, कुठार में लोहे के गुण, वस्त्र में सूत्र कपास के गुण, तथा कटक कुण्डल में स्वर्ण के गुण विद्यमान है। इसी तरह से इस सृष्टि में ईश्वर के चैतन्यता सर्वव्यापकता सर्वज्ञता आदि गुण विद्यमान नहीं हैं अपितु जड़ता एकदेशिता आदि प्रकृति के गुण विद्यमान हैं। चूंकि उपादान कारण के गुण कार्य्य में अवश्य होता है। कारण गुण पूर्वकः कार्य्य गुणो दृष्टः ॥ वै० अ० २ अ० १ सू० २४) इस से साबित हुआ कि ईश्वर इस सृष्टि का मिट्टी आदि की भांति उपादान कारण नहीं अपितु कुम्हारादि की भांति निमित्त कारण है। और मिट्टी आदि की भांति सृष्टि का उपादान कारण नित्य प्रकृति है। जिस को वेद के अनेकों मन्त्र वर्णन करते हैं, जैसे कि—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ऋ० १ । ५० । १० ।

भाषार्थ—हम सब अंधकार अर्थात् प्रकृति से ऊपर उठ कर अधिक उच्च प्रकाशमान् देवों में देव उस उत्तम प्रकाश पूर्ण गति दाता प्रभु को अनुभव करते हुए प्राप्त करें। इस मंत्र में अंधकार (तम) नाम प्रकृति का है इसी का वर्णन करते हुए मनु जी महाराज कहते हैं कि—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु० १॥ ५ ॥

भाषार्थ—यह जगत् प्रलयकाल में न जानने के योग्य लक्षण में भी न आने के काबिल, तर्क से भी न जानने योग्य अज्ञात रूप में सब ओर से सोये हुओं की भांति प्रकृति में लीन था ॥ १ ॥

इस पर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं कि—

तमः शब्देन गुणवृत्त्या प्रकृतिर्निर्दिश्यते । तम इव तमः । यथा तमसि लीनाः पदार्था अध्यक्षेण न प्रकाश्यन्ते एवं प्रकृति लीना अपि भावा नावगम्यन्ते इति गुण योगः । प्रलय काले सूक्ष्म रूपतया प्रकृतौ लीनमासीदित्यर्थः ॥ ॥

भाषार्थ—यहां तम शब्द से गुण वृत्ति से प्रकृति की तरफ संकेत हैं। जैसे अन्धेरे में लीन पदार्थ नज़र नहीं आते वैसे ही प्रकृति में लीन पदार्थ भी जाने नहीं जाते। यही अंधेरे तथा प्रकृति में समान गुण होने से प्रकृति को भी तम कहते हैं। प्रलय काल में सूक्ष्म रूप से यह जगत् प्रकृति में लीन था यह अर्थ है। इस पर व्यास जी कहते हैं कि—

सत्व क्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः
सृजतेऽत्र गुणानेक एको न सृजते गुणान् ।।३३॥
पृथग् भूतौ तु प्रकृत्या संप्रयुक्तौ च सर्वदा
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्यात् संप्रयुक्तो भवेत्तथा ॥ ३४ ॥
( महा० शान्ति० अ० २०५ )

भाषार्थ—प्रकृति में तथा क्षेत्रज्ञ दोनों सूक्ष्मों का यह भेद जान। एक तो गुणों को पैदा करता है। दूसरा गुणों को पैदा नहीं करता ॥३३॥ ये दोनों प्रकृति से भिन्न हैं और सदा मिले रहते हैं। जैसे मछली जल से भिन्न है किंतु जल से मिली रहती है ।३४।

इस प्रकार से ईश्वर जीव प्रकृति तीनों स्वरूप से अनादि तथा, व्याप्य व्यापक भाव से मिले रहते हैं। स्वरूप से अनादि काल से भिन्न हैं तथा अनंत काल तक भिन्न रहेंगे ।

१५८ (प्रश्न)—"नासदासीत्" "नमृत्युरासीत्" "ऋ० १०।१२६।१-२" इन दो मन्त्रों से प्रकृति जीव का अभाव होकर केवल ईश्वर सत्ता का प्रलय में होना सिद्ध है। इसके ऊपर से ही वेद ने ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" माना है। पृ० २२३ पं० ६।

उत्तर—वेद ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" नहीं मानता। अपितु नित्य प्रकृति को संसार का उपादान कारण तथा ईश्वर को संसार का निमित्त कारण मानता है। और ईश्वर जीव प्रकृति तीनों ही स्वरूप से भिन्न अनादि काल से अनन्त काल तक कायम रहते हैं। आप ने जो दो मंत्र दिये हैं। इस स्थान में इस विषय के सात मंत्रों का सूक्त है ।

जिनका मज़मूई तौर पर प्रकरणानुसार अर्थ लगाने से

ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों अनादि सिद्ध होते हैं। आपने केवल दो मंत्र लिख कर मनमाना अर्थ करके प्रकरण विच्छेद किया। लीजिये हम आपके सामने इस सारे सूक्त का संगत अर्थ करके बतलाते हैं—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो-यत् । किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥१॥

भाषार्थ—(तदानीं) उस समय (न असत् आसीत्) अभाव न था (नो सत् आसीत्) भाव पदार्थ प्रकट न था (रजः न आसीत) स्थूल मिट्टी न थी (यत् परः व्योम। नो) खाली स्थान भी न था। उस समय (कुह) कहां (किम्) क्या (आवरीवः) ढका हुआ था और (कस्य शर्मन्) किस के आश्रय से क्या था (किं) क्या (गहनं गभीरम्) बड़ा गंभीर (अम्भः) पानी सा उस समय (आसीत्) था ॥१॥

न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः । आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥२॥

भाषार्थ—उस समय मृत्यु न था। क्योंकि अमृत प्रकट न था। रात्री और दिन के विभाग का कोई ज्ञान न था। उस समय वह एक आत्मा प्रकृति के साथ प्राण वायु के बिना ही प्राण रूप में था । उससे भिन्न निश्चय से कोई भी श्रेष्ट नहीं था ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् । तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥३॥

भाषार्थ—आरंभ में अंधकार से व्यापी हुई मूल प्रकति थी। और यह सब जगत् अज्ञेय अवस्था में जल के समान एकाकार था। जब शून्यता से यह व्यापक प्रकृति ढकी हुई थी। उस समय ज्ञान मय तप की महिमा से वह एक बन गया ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

भाषार्थ—इस पूर्व समय में मन का वीर्य जो पहिले था उसके ऊपर काम अर्थात् संकल्प हुआ। ज्ञानी लोगों ने हृदय में बुद्धि से ढूंढ़ कर जान लिया कि असत् में सत् का भाईपन है। अथवा असत् में सत् बंधा है ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततोरश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इन तीनों का किरन तिरछा फैला है। नीचे भी आश्चर्य्यकारक रीति से है और ऊपर भी वैसा ही आश्चर्य्य-कारक है। वीर्य का धारण करने वाले जीव थे, बलशाली महान् जीव थे। इधर आत्मा की धारणशक्ति अथवा प्रकृति थी और परे प्रयत्न का बल था ॥ ५ ॥

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वास्तव रूप में कौन जानता है। और कौन इस विषय में कह सकता है कि कहां से बनी और कहां से यह विविध प्रकार की सृष्टि हुई है। इस की उत्पत्ति के पश्चात् सूर्य

अग्नि आदि दिव्य पदार्थ बने हैं। अब कौन जान सकता है कि जिससे यह संसार बना है ॥ ६ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
योऽस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥
(ऋग्वेद १० । १२६)

भाषार्थ—जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई वह क्या इसको धारण करता है । या नहीं । परम अगाध आकाश में इसका जो अधिष्ठाता है । वह निश्चय से जानता है वा नहीं ॥ ७ ॥

इन मन्त्रों को मजमूई तौर से पढ़ने से साफ साबित हैं कि ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों परस्पर भिन्न अनादि स्वरूप हैं । इसी बात को आपके यहां गरुड़ पुराण उत्तर खण्ड ब्रह्मकांड अध्याय २८ में स्पष्ट वर्णन किया है । कि—

जीवश्च सत्यः परमात्मा च सत्यस्तयोर्भेदः
सत्ये एतत्सदापि । जडश्च सत्यो जीवजडयो
श्चभेदो भेदः सत्यः किंच जडेशयोर्भिदा ॥ ६९ ॥
भेदः सत्यः सर्व जीवेषु नित्यं सत्या जडानांच
भेदाः सदापि । एतत्सर्वं यदि मिथ्या भवेत्तु तदा
त्वसौ दशतु मां ह्यहोन्द्रः ॥ ७० ॥
(गरु० उत्तर० ब्रह्म० अ० २८)

भाषार्थ—जीव सत्य है और परमात्मा सत्य है । और उन का भेद भी यह सदा से सत्य है । जड सत्य है, जीव जड़ का भेद सत्य है । और जड और ईश्वर का भेद सत्य है ॥ ६९ ॥ सारे जीवों में सदा से भेद सत्य है और सदा ही जडों में

परस्पर भेद सत्य है। यदि यह सब कुछ मिथ्या हो तो वह सर्प राज मुझको काट खाये॥ ७०॥ आशा है कि अब "अभिन्न-निमित्तोपादान कारण" का ख़ब्त आपके दिमाग़ से अवश्य ही निकल जावेगा।

१५६ (प्रश्न) "आत्मैवेदमग्रे आसीत् इत्यादि शत पथ १४।४।२।१" से सिद्ध है कि इसी ब्रह्म से समस्त संसार जड चेतन की उत्पत्ति हुई। पृ० २२४ पं० ६

उत्तर—आप की प्रतिज्ञा तो यह है कि वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्न निमित्तो पादानकारण" मानता है। किंतु आप प्रमाण दे रहे हैं शत पथ का। जोकि वेद नहीं है। और फिर शत पथ का भी आपने पूरा पाठ दर्ज नहीं किया। अधूरा पाठ देकर मनमाना अर्थ कर डाला। लीजिये हम शत पथ का पूरा पाठ और ठीक २ अर्थ नीचे दर्ज करते हैं—

आत्मैवेदमग्र आसीत्। पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदा त्मनोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रेव्याहरत्ततोऽहंनामाऽभ वत्तस्मादप्येतर्ह्यामीत्रतोऽहमयमित्येवाग्रे उक्त्वाथान्य न्नाम प्रब्रूते यदस्य भवति॥ शत पथ १४।४।२।१

भावार्थ—यह परमात्मा पहिले ही था। वह व्यापक था। उस ने विचारा अपने विना और परमात्मा न देखा। तब उसने "अहमस्मि" मैं हूं, यह पहिले कहा। तब से "अहं" नाम वाला हो गया। इस लिये भी तो इस संसार में यहां "अहम्" यह ही पहिले कर कह उस के पश्चात् और कोई नाम जो उसका हो बोलते हैं।

इस में परमात्मा के "अहम्" नाम की उत्कृष्टता वर्णन

की गई है। सारे पाठ में एक पद भी ऐसा नहीं है। जिसके यह अर्थ किये जासकें कि "इसी ब्रह्म से समस्त संसार जड चेतन की उत्पत्ति हुई"। न जाने आप ने यह इतना लम्बा अर्थ कहां से निकाल मारा। वेद तो ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि मानता है। तथा इन तीनों से संसार की पैदाइश मानता है। देखिये—

त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेको अभिचष्टे शचिभि र्ध्राजिरे कस्य दृदृशे न रूपम्।

ऋ० १। १६४। ४४॥

भाषार्थ—तीन प्रकाशमय पदार्थ नियमानुसार विविध कार्य कर रहे हैं। इन में से एक वास योग्य संसार के लिये बीज डालता है। एक शक्तियों से, कर्म से, बुद्धि से संसार को दोनों ओर से देखता है। एक का वेग तो दीखता है किंतु रूप नहीं दीखता।

व्यास जी भी यही कहते हैं कि—

उभौ नित्यावावचलौ महद्भ्यश्च महत्तरौ।
सामान्यमेतदुभयोरेवं ह्यन्यद्विशेषणम् ॥ ८ ॥
प्रकृत्या सर्ग धर्मिण्या तथा त्रिगुण धर्मया।
विपरीतमतो विद्यात् क्षेत्रज्ञस्य स्वलक्षणम् ॥९॥
प्रकृतेश्च विकाराणां द्रष्टारमगुणान्वितम्।
अग्राह्यौ पुरुषावेतावलिंगत्वादसंहितौ ॥१०॥

(महा० शांति० अ० २१७)

भावार्थ—दोनों जीव तथा ब्रह्म अनादि, अचल, बड़ों से बड़े

यह दोनों में समानता है। ऐसे ही और एक दूसरे में विशेषतायें हैं ॥८॥

तीन धर्मों वाली तथा पैदा करने के धर्म वाली प्रकृति से विपरीत है। इससे परमात्माकी विलक्षणता जाननी चाहिये ।९। प्रकृति के विकारों को देखना निर्गुणता। ये दोनों पुरुष न मिले हुए निशान शून्य होने से अग्राह्य हैं ॥१०॥

आशा है अब आप अवश्य ही मान लेंगे कि इस संसार का ब्रह्म 'अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' नहीं है अपितु प्रकृति उपादान कारण तथा ब्रह्म निमित्त कारण है।

१६० (प्रश्न)—तस्माद्वा एतस्मादात्मन इत्यादि। तैत्ति० १ ब्रह्म वल्ली० अनु० १' में वर्णन है कि उस परमात्मा से ही आकाश आदि क्रमशः पैदा हुए। पृ० २२४ पं० १६।

उत्तर—आपने अपनी प्रतिज्ञा विरुद्ध फिर वेद का प्रमाण न देते हुए उपनिषद् का प्रमाण लिख दिया। उपनिषद् वेद नहीं है तथापि इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि निमित्त कारण ईश्वर ने उपादान कारण प्रकृति से क्रमशः आकाशादि उत्पन्न किये। (विशेष देखो नं० १७) वेद, ईश्वर, जीव तथा प्रकृति को नित्य तथा भिन्न मानते हैं। जैसे कि—

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निवशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्येदाहुः पिप्पलं स्वद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद।
ऋ० १। १६४। २२॥

भाषार्थ—जिस वृक्ष में मीठा फल खाने वाले पक्षी रहते हैं। और सब सन्तान उत्पन्न करते हैं। उसी का ही मीठा फल है, ऐसा कहते हैं। जो आरम्भ में उस अपने पिता को नहीं

जानता वह उस आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता ॥२८॥ प्रकृति के जगत् रूपी वृक्ष पर जो मीठे फल लगते हैं उन को जीव आत्मा गण खाते हैं और उसी वृक्ष पर रह कर सन्तान उत्पन्न करते हैं। इन का पिता परमात्मा है, जो उस को जानते हैं वे बन्धन से छूट जाते हैं। परन्तु जो उस को जानने की परवाह नहीं करते वे सुख से दूर हो जाते हैं।

इसी बात को व्यास जी कहते हैं कि—

प्रोक्तं तद्व्यक्तमित्येव जायते वर्द्धते च यत्।
जीर्यते म्रियते चैव चक्षुर्भिर्लक्षणैर्गतम् ॥२९॥

विपरीतमतो यत्तु तदव्यक्तमुदाहृतम्।
द्वावात्मानौ च वेदेषु सिद्धान्तेष्वप्युदाहृतौ ॥३०॥

(महा० शान्ति० अ० २३५)

भावार्थ—जो पूर्व कही प्रकृति प्रकट है वही पैदा होती बढ़ती, क्षीण होती और मरती है। और आंखों से नज़र आती है ॥२९॥ इस के बरखिलाफ जो अव्यक्त कहा गया है वह कारण द्रव्य है। वेदों में सिद्धांत रूप से वर्णन किया गया है कि आत्मा दो हैं। अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा ॥३॥

आशा है कि अब आप का 'अभिन्न निमित्तोपादान कारण' का भ्रम दूर हो जावेगा।

१६१ (प्रश्न)—'सर्वेनिमेषा जज्ञिरे इत्यादि
यजु० ३२।२'

इस मन्त्र में काल विभाग और बिजली की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाई है। पृ० २२४ पं०२४

उत्तर—बिल्कुल ठीक है कि उस निमित्त कारण परमात्मा से काल विभागादि उत्पन्न हुए। इस में उपादान कारण प्रकृति का कहां निषेध है। इस मन्त्र में ईश्वर की व्यापकता तथा निराकारता का वर्णन है। प्रकृति का निषेध नहीं है।

(देखो नं० १०७। नं० ११७)

वेद प्रकृति को नित्य वर्णन करता है। जैसे—

अविर्वैनाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥
(अथर्व० १०।८।३१)

भाषार्थ—निश्चय से अवि प्रकृति नामक एक देवता दिव्य गुणयुक्त पदार्थ है। जो सदा सत्य नियम से ढकी रहती है। अर्थात् जिस में सब परिणाम नियमानुसार होते हैं। अथवा सर्वव्यापक परमात्मा से सब ओर से अन्दर बाहर से आच्छादित रहती है। अथवा जीव समुदाय से अपने २ अभिलषित भोग की प्राप्ति के लिये घिरी रहती है। गृहीत की जाती है। उसी के रूप से ये हरी मालाओं वाले वृक्ष हरे भरे रहते हैं।

इसके अनुकूल ही व्यास जी फ़रमाते हैं। कि—

मशकोदम्बरौ वापि संप्रयुक्तौ यथा सदा।
अयोन्ऽन्यमेतौ स्यातां च सम्प्रयोगस्तथा तयोः॥ ३९॥
पृथग् भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा।
यथा मत्स्यो जलं चैव संप्रयुक्तौ तथैव तौ॥ ४०॥
(महा० शान्ति० अ० १९४)

भाषार्थ—जैसे गूलर के फल में मच्छर हमेशा ही मिले हुए रहते हैं इसी प्रकार से ही उन दोनों जीव तथा परमात्मा

का एक दूसरे से मेल रहता है ॥ ३६ ॥ वह दोनों प्रकृति से भिन्न हैं। और सदा मिले रहते हैं । जैसे मछली और जल मिले हुए रहते हैं। वैसे ही जीव और परमात्मा मिले रहते हैं ॥४० ॥ आशा है अब आप ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" मानने की ग़लती न करेंगे ।

१६२ (प्रश्न)—तदेवाग्नि इत्यादि यजु० ३२ । १" इस मन्त्र में अग्नि आदित्य आदि सब को ही ब्रह्म बतलाया है । पृ० २२५ पं० ७।

उत्तर—इस मन्त्र में एक ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव से अनेक नामों का वर्णन है। यहां अग्नि और आदित्य; ये ब्रह्म के नाम हैं, यह बतलाया है। यह नहीं कहा कि अग्नि आदि परमात्मा हैं। (देखो नं० १६) इस मन्त्र में प्रकृति तथा जीव का निषेध कतई नहीं किया गया। वेद ईश्वर जीव तथा प्रकृति को भिन्न २ तीनों को अनादि मानता है। जैसे—

ये अर्वाङ् मध्य उतवा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृत्तं च हंसम्।
अथर्व० १०।८।१७॥

भाषार्थ—जो विद्वान् इस समय बीच में अथवा पूर्वकाल में पुरातन वेद के जानने वाले का सब ओर वर्णन करते हैं। वे सब मानो अखंडनीय एक रस प्रभु की तथा दूसरे ज्ञान स्वरूप जीव की और त्रिगुणात्मक प्रकृति की पूर्णतया स्तुति करते हैं॥ इसी सिद्धान्त को व्यास जी भी प्रतिपादन करते हैं। कि—

परिद्रष्टा गुणानांच परिस्रष्टा यथातथम्।
सत्त्व क्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धिसूक्ष्मयोः ॥२२॥

सृजतेऽत्रगुणानेक एको न सृजते गुणान् ।
पृथग् भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥२३॥
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्यात् संप्रयुक्तौ तथैव तौ ।
मशकोदम्बरौ वापि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥२४॥
इषीका वा यथा मुंजे पृथक् च सह चैव च ।
तथैव सहितावेतावन्योऽन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ ।।२५॥
(महा० शांति० अ० २४७)

भाषार्थ—गुणों का देखने वाला तथा गुणों का यथा योग्य करने वाला जीव और ईश्वर दोनों सूक्ष्मों में यह भेद जानना चाहिये ॥२२॥ यहां एक तो गणों अर्थात् कर्मों को करता है तथा एक कर्मों को नहीं करता। ये दोनों प्रकृति से भिन्न हैं। और दोनों सदा मिले रहते हैं ॥२३॥ जैसे मछली पानी से भिन्न है। किंतु पानी तथा मछली मिले रहते हैं। जैसे मच्छर तथा गूलर आपस में साथ मिले रहते हैं ॥२४॥ सरकंडे की तीली अपने छिलके मुञ्ज में जैसे पृथक् भी है और इकट्ठी भी है। वैसे ही ये दोनों जीव तथा ईश्वर इकट्ठे एक दूसरे में प्रतिष्ठित हैं ॥२५॥

कहिये महाराज! अब तो आप ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" न मानेंगे।

१६३ (प्रश्न)—"पुरुष एवेदमित्यादि यजु० ३१।२" इस मन्त्र में भूत भविष्यत् वर्तमान सब जगत् को ही ब्रह्म बतलाया है। पृ० २२५ पं० १२।

उत्तर—इस मंत्र में भूत भविष्यत् वर्तमान सब को ब्रह्म नहीं कहा गया, अपितु यह बतलाया गया है कि भूत भविष्यत् और वर्तमान सब जगत् का बनाने वाला परमात्मा है।

महीधर ने भी यह अर्थ किया है कि ईश्वर सब का स्वामी है। इस मन्त्र में प्रकृति तथा जीव की हस्ती का निषेध नहीं अपितु उनका स्वामी ईश्वर को प्रतिपादन किया गया है। जिससे तीनों अनादि सिद्ध होते हैं। मन्त्र का विशेष अर्थ (देखें नं० २२) वेद सब स्थानों में ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों को परस्पर भिन्न अनादि मानता है। जैसे कि "द्वा सुपर्णा सयुजा" इत्यादि में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है (देखो नं० १०) आपका ब्रह्म को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" मानने का सिद्धान्त सर्वथा वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। वेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए व्यास जी कहते हैं कि—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एवच।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
(महा० भीष्म० अ० ३६)

इस संसार में दो पुरुष हैं एक क्षर दूसरा अक्षर। क्षर ये सारे भूत अर्थात् पांच स्थूल तत्त्व हैं। और अक्षर वह है जो प्रकृति में वास करता है॥ १६॥ एक और दूसरा उत्तम पुरुष है जिसको परमात्मा कहते हैं। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उनको धारण करता है। और स्वयं कभी नाश नहीं होता॥ १७॥ यहां पुरुष से जीव पुरुषोत्तम से परमात्मा तथा तीन लोक और सब भूतों से स्थूल तथा सूक्ष्म प्रकृति मुराद है। जो कि तीनों स्वरूप से भिन्न अनादि हैं।

१६४ (प्रश्न)—"एकः सुपर्णः इत्यादि ऋ० १०।११४।४०"

इस मन्त्र में समस्त जगत् की प्रलयकाल में ब्रह्म में ही लीनता बतलाई है। पृ० २२५ पं० २०।

उत्तर—आप का अर्थ कृतई कल्पित है। यह मन्त्र ब्रह्म का प्रतिपादन ही नहीं करता अपितु जीव का ही प्रतिपादन करता है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "विश्वे-देवाः" अर्थात् समस्त देवता है। ईश्वर केवल एक है उसे "विश्वेदेवाः" नहीं कहा जा सकता, जीव अनन्त हैं अतः उनही को विश्वेदेवाः से वर्णन किया गया है। फिर मन्त्र का अन्तिम भाग जिसका अर्थ है। "उसे माता चूम रही है और वह माता को चाट रहा है" ईश्वर में घटता ही नहीं।

क्योंकि ईश्वर तथा प्रकृति का माना पुत्र का सम्बन्ध नहीं अपितु स्व स्वामी सम्बन्ध है। हां जीव के साथ प्रकृति का माता पुत्र का सम्बन्ध कहा जा सकता है। अतः निश्चित् रूप से यहां ईश्वर का वर्णन नहीं अपितु जीवात्मा तथा प्रकृति का वर्णन है। जैसे कि—

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं
भुवनं विचष्टे। तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितः
तं माता रेलि स उ रेलि मातरम्॥ ऋ० १०। ११४।४॥

भाषार्थ—एक सुपर्ण पक्षी है वह इस संसार अन्तरिक्ष के समुद्र में आया है वह इस संपूर्ण संसार को विविध प्रकार से देखता है। इसका मज़ा लेता है। परन्तु उसे परिपक्व ज्ञान वाले मन से समीपता से देखा है। तो मैं देखता हूं कि उसे माता चूम रही है और वह माता को चाट रहा है॥४॥ इस मन्त्र में पक्षी शब्द से जीवात्मा को तथा माता शब्द से प्रकृति को नित्य

अनादि वर्णन किया है। अतः यह मन्त्र आपके मत का मंडन नहीं, अपितु खण्डन करता है। और वेदान्त शास्त्र भी प्रकृति तथा जीव की हस्ती को तसलीम करता है। जैसे—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानु परोधात्। (वेदान्त० १।४।२३)

गुहां प्रविष्टावात्मा नाहि तद्दर्शनात्। ( वेदांत १। २। ११ )

भाषार्थ—और प्रतिज्ञा दृष्टान्त में रुकावट न पाये जाने से प्रकृति भी जगत् कारण है। ब्रह्म से भिन्न जगत् का कोई उपादान कारण मानने पर ही प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त ठीक रह सकते हैं। इस लिये प्रकृति भी जगत् का कारण है यह अभिप्राय है ॥२३॥ अतः करण रूप गुहा में दो आत्मा हैं क्योंकि श्रुति से ऐसा ही पाया जाता है। अतः करण रूपी गुहा में जीव और ईश्वर दोनों को विराजमान करके भिन्न वर्णन किया है यह अभिप्राय है ॥११॥ अतः सिद्ध हुआ कि ब्रह्म संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण नहीं है। अपितु प्रकृति उपादान करण और परमात्मा संसार का निमित्त कारण है।

१६५ ( प्रश्न )—"सवै नैव रेमे इत्यादि शत० १४।४।-२।४" में लिखा है कि आदि में केवल ब्रह्म ही अकेला था। पृ० २२६ पं० ३।

उत्तर—आपने अपनी प्रतिज्ञानुसार यहां भी वेद का प्रमाण न देकर शतपथ का प्रमाण दिया है। जोकि वेदानुकूल होने से ही प्रमाणित हो सकता है अन्यथा नहीं। तथापि आप ने शतपथ का भी पूरा पाठ नहीं दिया आधा चुरा लिया है। शतपथ का पूरा पाठ भी हमारे सिद्धान्त की ताईद करता है। यहां पर हम पूरा पाठ और वेदानुकूल यथार्थ अर्थ देते हैं।

सवै नैव रेमे । तस्मादेकाकीन रमते स द्वितीयमैच्छत्
सहैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ संपरिष्वक्तौ ॥४॥ (शत०१४।४।२।४)

भाषार्थ—उस ने सृष्टि रचना रूप क्रीड़ा न की। जिस कारण अकेला सृष्टि रचना रूप क्रीड़ा नहीं कर सकता। उस ने दूसरे (प्रकृति रूप उपादान) की इच्छा की वह सृष्टि के आरम्भ में (प्रकृति सहित) इस प्रकार का था जैसे स्त्री पुरुष आपस में मिले हुए होते हैं ॥४॥ कैसा साफ लेख है कि जैसे स्त्री और पुरुष वास्तव में दो शरीर होते हुए भी मिलने के पीछे अपना एक ही शरीर समझते हैं। और स्त्री पुरुष की अर्द्धांगी कहाती है और दोनों का मिला हुआ एक शरीर माना जाता है। वैसे ही परमात्मा भी पुरुष की भांति अकेला रचना नहीं कर सकता रचना के लिये उसे भी प्रकृति की इच्छा रहती है। अतः परमात्मा भी प्रकृति सहित ऐसा ही एक शरीर माना जाता है जैसे स्त्री पुरुष मिले हुये। कहिये महाराज! इस से यह कैसे सिद्ध हो गया कि अकेला ब्रह्म ही सृष्टि का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" है जबकि लिखा है कि वह प्रकृति के बिना अकेला रचना कर ही नहीं सकता। देखिये वेद क्या कहता है कि—

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापति स्तपसा ब्रह्मणे
अपचत्। योलोकानां विधृति र्नाभिरेषात् तेनौद
नेनाति तराणि मृत्युम् ॥ अथर्व० ४।३५।१॥

भाषार्थ—सत्य के प्रथम प्रवर्तक प्रजापति ने अपने ज्ञान से जिस प्रकृति रूप ओदन को जीव के लिये कार्य्य में परिणित किया। और जो लोगों का विशेष धारण कर्ता और जो सब का वेंद्र है उसकी उस प्रकृति के ज्ञान से मृत्यु के पार होजाऊं ॥१॥

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से प्रकृति को संसार का उपादान कारण माना है। वेदान्त सूत्र भी ब्रह्म को संसार का उपादान कारण नहीं मानता जैसे—

कृत्स्न प्रसक्ति निरवयवत्व शब्द कोपोवा ॥ २६ ॥

भाषार्थ—जगत् को ब्रह्म का परिणाम मानने में उसके सारे देश में परिणाम की आपत्ति और निरवयव प्रतिपादक शास्त्र का विरोध होगा ॥ २६ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥ (वेदान्त ० २ । १ । २६-२९)

भाषार्थ—और माया वादियों के पक्ष में दोष पाये जाने से ब्रह्म कारणवाद ठीक नहीं। मायावादियों के मत में यह दोष आता है कि निराकार ब्रह्म जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" कैसे बन गया क्योंकि उक्त कारण में कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता इसलिये मायावादियों का उक्त कथन आदरणीय नहीं ॥२६॥

१६६ (प्रश्न)—"यस्मिन् सर्वाणि इत्यादि यजु० ४० । ७" इसमें वर्णन है कि यह समस्त प्रपंच आत्मा ही है। पृ० २२६ पं० ७।

उत्तर—इस मंत्र में प्रपंच अर्थ का कहने वाला कोई शब्द नहीं है। तथा इस मन्त्र से पूर्व के तथा पीछे के सारे मंत्र ईश्वर जीव प्रकृति को भिन्न २ तथा नित्य वर्णन कर रहे हैं। आपने इस मन्त्र का मन माना प्रकरण विरुद्ध अर्थ किया है। देखिये प्रकरणानुसार ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥६॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥
स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमापापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥ (यजु० ४०)

भाषार्थ—जो सब प्राणियों को आत्मा में और आत्मा को सब प्राणियों में देखता है, तब वह संशय में नहीं पड़ता ॥६॥ और जिस ज्ञानी की दृष्टि में सब प्राणी अपने समान हैं उस एक सा देखने वाले में शोक और मोह क्या ॥७॥ वह परमात्मा व्यापक, शीघ्रकारी, शरीर रहित, व्रण शून्य, नस-नाड़ी बंधन से रहित, शुद्ध, पाप शून्य, सर्वज्ञ मन का ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा नित्य है। उस परमात्मा ने अपनी नित्य प्रजा जीवों के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों को रचा है ॥८॥ कहिये प्रकरण में ईश्वर जीव प्रकृति तीनों का वर्णन मौजूद है या नहीं। फिर केवल एक मन्त्र का प्रकरण के विरुद्ध मन माना अर्थ करके स्वार्थ सिद्धि करना ईमानदारी में दाखिल नहीं है। देखिये वेदान्त शास्त्र भी इस जगत् को आत्मा का प्रपंच नहीं कहता जैसे—

आत्म कृतेः परिणामात् ॥ वेदान्त० १ । ४ । २६ ॥

भाषार्थ—परमात्मा के यत्न तथा जगत् रूप परिणाम के पाये जाने से भी उक्त अर्थ की सिद्धि होती है। परमात्मा के यत्न और प्रकृति के परिणाम से यह जगत् उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रकृति को परिणामी उपादान कारण ब्रह्म को कूटस्थ नित्य होने से केवल निमित्त कारण वर्णन किया गया है ॥ २६ ॥

इस से सिद्ध है कि संसार का उपादान कारण प्रकृति

तथा निमित्त कारण परमात्मा हैं । और यही मत वेद शास्त्र सम्मत है।

१६७ (प्रश्न) ब्रह्म ही समस्त प्रपंच का उपादान कारण है इसको वेदों की सैकड़ों श्रुतियां कह रही हैं यह इतना अकाट्य विषय है कि किसी का हिलाया नहीं हिलाता।

पृ० २२६ पं० १२।

उत्तर—यह संसार प्रपंच नहीं हैं अपितु वास्तव हैं। इसका उपादान कारण प्रकृति तथा निमित्त कारण ब्रह्म है। इस बात को समस्त वेद अनेकों मंत्रों द्वारा वर्णन करते हैं। चारों वेदों में एक भी मंत्र ऐसा नहीं है जो ब्रह्म को इस जगत् का उपादान कारण वर्णन करता हो। यह विषय इतना वेद विरुद्ध और युक्ति शून्य है कि इसको एक साधारण बुद्धि का मनुष्य भी युक्ति और दलीलों से चीर चीर कर सकता है। वास्तव में यह गुप्त नास्तिक मत है। और संसार को पाप सागर में डुबोने के लिये कल्पित किया गया है। मनुष्य अपने आप को निर्लेप ब्रह्म मान कर इन्द्रियों के विषय विकारों को झूटा बतला कर खूब मद्य पान, मांसाहार, पर स्त्री गमन आदि कुकर्म इस माया वाद की ओट में करते हैं। यह बात हम ही नहीं कहते अपितु महादेव जी स्वयं पार्वती के सामने इस प्रकार से वर्णन करते हैं कि—

अतएव पद्मपुराणे ब्रह्मयोगदर्शनातिरिक्तानां दर्शनानां निन्दाय्यु पपद्यते। यथा तत्र पार्वतीं प्रतीश्वर वाक्यम्

माया वादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धामेवच।
मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मण रूपिणा ॥ १ ॥

अपार्थंश्रुतिवाक्यानांदर्शायंल्लोक गर्हितम् ।
कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमन्त्र च प्रतिपाद्यते ॥ २ ॥
सर्व कर्म परिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते ।
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ॥ ३ ॥
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणंदर्शितं मया ।
सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौयुगे ॥ ४ ॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।
मयैव कथितं देवि ! जगतां नाश कारणात् ॥ ५ ॥

सांख्य दर्शनम् । विज्ञान भिक्षु विरचित भाष्य सहितम् । पण्डित कुल पतिना बी० ए० उपाधिधारिणा श्रीजीवानन्द विद्या सागर भट्टाचार्येण संस्कृतं प्रकाशितं च द्वितीय संस्करणं कलिकाता नगरे सरस्वती यंत्रे मुद्रितम् ।

ई० १८९३ भूमिकायां पृ० ५-६ ।

भाषार्थ—इस लिये पद्म पुराण में ब्रह्मयोग दर्शन को छोड़ कर दर्शनों की निन्दा भी की गई है । जैसे वहां पार्वती के प्रति शिव का वाक्य है । मायावाद झूटा शास्त्र है और वह गुप्त बोध मत है । हे देवि ! वह ब्राह्मण का रूप धारण करके मैं ने ही कथन किया है ॥ १ ॥ उसमें संसार से निन्दित श्रुति वाक्यों का झूटा अर्थ और कर्मस्वरूप का त्याग भाव प्रतिपादन किया है ॥ २ ॥ सब कर्मों से भ्रष्ट होकर निकम्मे पन का उसमें उपदेश किया गया है। परमात्मा तथा जीवात्मा का एक होना मैंने इसमें प्रतिपादन किया है ॥ ३ ॥ मैंने उसमें ब्रह्म का परम रूप निर्गुणता दिखाया है। यह काम मैंने कलियुग में सारे जगत् को नाश करने के लिये किया है ॥ ४ ॥ वेदों के अर्थ जैसा

माया वाद का महाशास्त्र वास्तव में वेद विरुद्ध है। दे देवि! यह जगत् को नाश करने के लिये मैंने ही उपदेश किया है ॥ ५ ॥ कहिये महाराज! अब तो हमारे कथन में संदेह की गुंजाइश नहीं है। आपके घर से ही आपके "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" का ज़बरदस्त खण्डन निकल आया। अब माथे पर हाथ रखकर इन पुराणों की जान को रोवें तथा यह शेर भी पढ़ते जावें कि—"इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से"

१६८ (प्रश्न)—यहां पर "नासदासीत्" प्रभृति सैंकड़ों मंत्र जो अद्वैत का प्रतिपादन करते थे वे तो छिपा लिये गये और "द्वासुपर्णा" इस एक मंत्र को लेकर द्वैत का प्रतिपादन कर दिया। पृ० २३१ पं० १६।

उत्तर—आपने सत्यार्थ प्रकाश का वह प्रकरण अपनी पुस्तक में उधृत तो किया। किंतु विवेचन करते समय तारे नज़र आने लगे। ज़रा स्वामी जी के प्रमाण और युक्तियों की विवेचना तो की होती। किंतु स्वामी जी के लेख का उत्तर देना कोई "ख़ाला जी का घर" थोड़ा ही है। हम ने यह साबित कर दिया कि "नासदासीत्" इत्यादि सूक्त के सात मंत्र मजमूई तौर से ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों सत्ताओं को भिन्न २ अनादि मानते हैं। और "द्वासुर्णा" पर तो आप की लेखनी ही टूट गई। इस पर कुछ लिखने का तो आप साहस ही न कर सके। आप ये भूलते हैं कि वेद में दोनों प्रकार के मंत्र हैं। यदिवेद द्वैत तथा अद्वैत दोनों का ही प्रतिपादन करें तो न्याय के

तदप्रामाण्यमनृतव्याद्या तपुनरुक्तिदोषेभ्यः ( न्याय )

अर्थ—जिस ग्रन्थ में झूट, परस्पर विरोध तथापुनरुक्ति

हो वह ग्रन्थ प्रमाण के क़ाबिल नहीं होता । इस सूत्रानुसार वेद प्रमाण के क़ाबिल ही न रहेंगे । अतः हम इस बात को डंके की चोट घोषणा करते हैं कि वेदों में एक मंत्र भी ऐसा नहीं है जो ब्रह्म को जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" वर्णन करता हो । और "द्वासुपर्णा" इत्यादि अनेकों मंत्र मौजूद हैं । जो प्रकृति को जगत् का उपादान कारण ब्रह्म को निमित कारण तथा जीव को साधारण कारण वर्णन करते हुए तीनों को भिन्न तथा अनादि काल से अनन्त काल तक रहने वाला मानते हैं । अतः आपकी कल्पना सर्वथा वेद विरुद्ध और मिथ्या है ।

१६६ ( प्रश्न )—वेदान्त दर्शन को तो छिपा लिया और सांख्य दिखला दिया पृ० २३१ पं० २१ ।

उत्तर—हम यह दिखला चुके हैं कि वेदान्त भी प्रकृति को जगत् का उपादान कारण तथा ब्रह्म को निमित्त कारण मानता है । अतः वेदान्त और सांख्य में विरोध नहीं है । अपितु दोनों ही वैदिक सिद्धा-तों का निरूपण करते हैं । हां यदि आपके विचार से दोनों में विरोध है तो आप स्पष्ट रूप से घोषणा क्यों नहीं करते कि सांख्य का मत वेद विरुद्ध है । यदि सांख्य भी वेदानुकूल है तो आपको यह शिकायत फजूल है कि स्वामी जी ने वेदान्त को छिपा कर सांख्य दिखला दिया हर हालत में स्वामी जी ने आपके विचार अनुसार भी सांख्य को दिखाते हुए वैदिक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है ।

१७० (प्रश्न)—न्याय शास्त्र परमाणुओं को नित्य मानता है । और सांख्य प्रकृति पुरुष इन दो को । इस झगड़े का भी स्वामी

दयानन्द जी फैसला न कर सके। पृ० २३२ पं० ७।

उत्तर—जहां न्याय प्रमाणुओं को नित्य मानता है वहां जीव तथा ब्रह्म दोनों का ही आत्मा शब्द से प्रतिपादन करता है। प्रमाणु तथा प्रकृति दो वस्तु नहीं हैं जहां पर न्याय, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी के प्रमाणु तथा आकाश को विभू कह कर पांच तत्वों का वर्णन करता है वहां सांख्य इन ही पांच तत्वों को पंचतन्मात्रा कह कर इनके मजमूए को प्रकृति कह देता है। और सांख्य पुरुष शब्द से जीवात्मा तथा परमात्मा का वर्णन करता है जैसे—पुरुष बहुत्वं व्यवस्थातः ॥सांख्य० ६। ४५॥

भाषार्थ—यह निश्चय है कि जीव बहुत हैं। इससे जीवों का तथा—समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥सांख्य० ५। ११६॥

अर्थ—जीव को समाधि सुषुप्ति तथा मोक्ष में ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव होता है। इस से परमात्मा का प्रतिपादन करता है। सारांश यह कि न्याय और सांख्य दोनों ही ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि तथा जगत का कारण मानते हैं। अतः दोनों में विरोध नहीं है अपितु दोनों वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हैं और यही स्वामी दयानन्द जी का फैसला है।

१७१ (प्रश्न)—सांख्य प्रकृति पुरुष दो को और वेदान्त केवल ब्रह्म को मानता है सनातन धर्म के सम्प्रदाय में भी दो भेद हैं। शंकर अद्वैत और भगवान् माधव द्वैत मानते हैं। इसी प्रकार वेद "एकः सुपर्णः" इस मन्त्र से अद्वैत और "द्वासुपर्णा" इस मन्त्र में द्वैत कह रहा है। तो क्या अब हम वेदान्त दर्शन जगद् गुरु शंकराचार्य का सिद्धान्त और अद्वैत बतलाने वाले वेद मंत्र इन सब को मिथ्या कह कर जान बचाते हुवे धर्म्म निर्णय पर धूल डाल दें। पृ० २३२ पं० ११।

उत्तर—सांख्य प्रकृति को मानता हुआ पुरुष शब्द से ईश्वर तथा जीव को भी अनादि मानता है। तथा वेदान्त "प्रकृतिश्च" तथा "गुहा प्रविष्टावात्मानौ" इन दोनों सूत्रों में ईश्वर जीव प्रकृति को अनादि मानता है ( देखो नं० १६४ ) और मोक्ष में भी जीव को "भोग मात्र साम्यलिङ्गाच्च। वेदान्त० ४।४। २१" अर्थात् मोक्ष में जीव केवल आनन्द भोगने में ईश्वर के सदृश होता है सत्ता उसकी भिन्न ही रहती है" इस सूत्र से ब्रह्म में लय होना नहीं मानता अतः सांख्य और वेदान्त में विरोध नहीं है। अपितु दोनों ही वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। और "एकः सुपर्णः" यह वेद मन्त्र भी ब्रह्म का वर्णन नहीं करता अपितु जीव का प्रतिपादन करता है। देखो ( नं० १६४ )

रही सनातन धर्म्म की बात यह तो चूं चूं का मुरब्बा है। इस में सब बादी बलग़म समा जाती हैं। जब मांसाहारी भी सनातन धर्म्मी और अनामिष भोजी भी सनातन धर्म्मी, शराबी भी सनातनी, मद्यत्यागी भी सनातनी, ब्रह्मचारी भी सनातनी, रंडीबाज़ भी सनातनी, राम और कृष्ण भी सनातनी, रावण और कंस भी सनातनी अद्वैतवादी शंकर भी सनातनी, तथा द्वैतवादी माधव भी सनातनी तो ऐसी सूरत में इस सनातन धर्म्म की आप कब तक खैर मनावेंगे। दो किश्तियों में सवार होने वाले की भांति सनातन धर्म्म यदि आज नहीं तो कल भी नहीं इस की जान बचाने के ख्याल को, बालाये ताक़ रखकर आप इसको कफ़न-काठी का प्रबन्ध करें यह तपेदिक इसके प्राण लेकर ही छोड़ेगा। रही वेद शास्त्र की बात सो न तो वेद का कोई मन्त्र ब्रह्म को

जगत् का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" वर्णन करता है। और न ही वेदान्त दर्शन ऐसा मानता है। ऐसी सूरत में विरोध भंडार सनातन धर्म के धर्म निर्णय पर तो धूल पड़ ही चुकी अब यह धूल वेद शास्त्रों पर डालने की कृपा न करें।

१७२ (प्रश्न)—विश्व का उपादान कारण ब्रह्म है। जिस प्रकार घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है। इसी प्रकार यह समस्त विश्व प्रलय के पश्चात् ब्रह्म से उद्भूत होकर फिर प्रलय होने के अवसर पर ब्रह्म में मिल जाता है। बात यह सत्य है। और इसी का नाम पारमार्थिक सत्ता है।

पृ० २३२ पं० २३।

उत्तर—विश्व का उपादान कारण ब्रह्म नहीं अपितु प्रकृति है। जैसे घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है। वैसे ही यह समस्त विश्व प्रकृति से पैदा होकर प्रकृति में ही लय हो जाता है। ब्रह्म निमित्त कारण है। क्योंकि जैसे घट में मिट्टी के जडत्व आदि गुण मौजूद होते हैं, वैसे समस्त विश्व में चैतन्यता, सर्व व्यापकता, सर्वज्ञता, आनन्द स्वरूपता आदि गुण मौजूद नहीं हैं। अतः प्रकृति के उपादान कारण होने की बात सत्य तथा ब्रह्म के उपादान कारण होने की बात मिथ्या है। इस कारण इसका नाम परमार्थिकता नहीं अपितु मिथ्यार्थिकता है।

१७३ (प्रश्न)—संसार का व्यवहार चलाने के लिये हमको मिट्टी से भिन्न घट हांडी नांद आव मानने होंगे, ऐसा न मानें तो परमार्थिक सत्ता सत्य रहने पर भी व्यवहार नहीं चलता तथा उपास्य उपासक भाव नहीं बनता। सत्ता का व्यवहार

चलाने और जीव को अपवर्ग पद पर पहुंचाने के लिये व्यवहा
रिक सत्ता का मानना आवश्यकीय है। पृ० २३३ पं० ७।

उत्तर—संसार का व्यवहार भी सचाई से ही चलत
है, मिथ्या कल्पनाओं से नहीं, जब हम यथार्थ रूप से यह मा
लेंगे कि घट हांडी नांद आव आदि मिट्टी उपादान कारण
कार्य्य रूप हैं तो हम को इनके मिट्टी से भिन्न मानने की जरूर
ही न रहेगी। और यदि भिन्न मानेंगे तो वह मिथ्या ज्ञान होग
जो हमारे व्यवहार में मिथ्यात्व पैदा कर देगा। और हम घ
आदि को मिट्टी से भिन्न स्वर्ण आदि मान कर व्यवहार
धोका खावेंगे। और वास्तविक बात के मानने से उपास
उपासक भाव भी नहीं बिगड़ेगा। क्योंकि जीव जानता है कि
अनादि होने पर भी अल्पज्ञ, अल्प बल होने से सर्वज्ञ औ
सर्व शक्ति मान् प्रभु का उपासक हूं। और स्वयं ब्रह्म होने व
मिथ्या ज्ञान होने पर न वह ब्रह्म को उपास्य मानेगा और
उसे अपवर्ग पद पर पहुंचने की ज़रूरत महसूस होगी। क्यों
वह जानता है कि जब मैं स्वयं ब्रह्म हूं मैं तो स्वयं मोक्ष स्वरू
हूं उपासना की क्या जरूरत है। अतः संसार का व्यवह
चलाने के लिये भी यथार्थ ज्ञान ही उपयोगी हो सकता
मिथ्या ज्ञान नहीं।

१७४ (प्रश्न)—वेद ने "नासदासीत्" प्रभृति मंत्रों
परमार्थिक सत्ता और "द्वासुपर्णा" मंत्र में व्यवहारिक स
दिखलाई है। पृ० २३३ पं० २३।

उत्तर—आपके लेख से सिद्ध है कि ईश्वर मिथ्या ज्ञ
का उपदेश भी करता है। और क्या ऐसा करने वाला ईश

कहलाने का मुस्तहक़ हो सकता है। इस लिये चक्र में न पड़ियेगा। वेद का अटल सिद्धान्त है कि संसार का उपादान कारण प्रकृति, निमित्त कारण ईश्वर-तथा साधारण कारण जीव है। तीनों स्वरूप से भिन्न व्याप्य व्यापक भाव से एक हैं। और अनादिकाल से अनन्त काल तक कायम रहेंगे। यही पारमार्थिक सत्ता है और इसी का "नासदासीत" तथा "द्वासुपर्णा" इत्यादि मंत्रों ने वर्णन किया है। और यही व्यावहारिक सत्ता भी है। ब्रह्म का अभिन्न निमित्तोपादान कारण होना न कभी परमार्थिक सत्ता हुई, न है, न होगी और न ही इसका किसी भी वेद मंत्र ने वर्णन किया है। और न ही इसके व्यवहार में आने से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। अपितु इस सिद्धान्त के मानने वालों को गरुड पुराण ने मूर्ख वर्णन किया है जैसा कि—

एक एव हरिः पूर्वं ह्यविद्यावशतः स्वयम्।
अनेको भवति ह्यादादर्शे प्रतिबिंबवत् ॥१८॥
एवं वदन्ति ये मूढास्तेऽपि यांत्यधरंतमः ॥१९॥
( गरु० उत्तर० ब्रह्म० अ० २ )

भाषार्थ—पहिले एक ही ब्रह्म था फिर वह स्वयं अविद्या के कारण अनेक होगया जैसे कि अनेक दर्पणों में एक सूर्य्य के अनेक प्रतिबिंब हो जाते हैं ॥१८॥ जो मूढ लोग ऐसा कहते हैं वे भी अत्यंत नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

कहिये महाराज! अब वैदिक सिद्धान्त को मान कर उच्च गति को प्राप्त करने की इच्छा है या इसी नीचगति में ही पडकर सड़ने का इरादा है।

# सृष्टि

१७५ (प्रश्न)—वेद ने यजुर्वेद के ३१ अध्याय में सृष्टि कही। किंतु क्रमशः न कही। पृ० २३३ पं० २६।

उत्तर—ठीक है महाराज! ईश्वर ने तो क्रमशः नहीं कही अब आप कहेंगे। आप ईश्वर के दादा गुरु जो हुवे यदि आप ही ईश्वर की ग़लतियां न निकालें तो और कौन निकालेगा। अच्छा तो अब आप ही क्रमशः वर्णन कीजिये।

१७६ (प्रश्न)—"सवै नैव रेमे तस्मादित्यादि शत०१४।४। २।४ से १०" में से क्रमशः सृष्टि की पैदाइश लिखी है कि ईश्वर बहुत स्थूल पैदा हुवा फिर अपने दो हिस्से करके पती पत्नी बन गया। उस से मनुष्य पैदा हुवे। स्त्री लज्जा की मारी गौ, घोड़ी, गधी, बकरी, भेड, चींटी आदि बनती गई तथा पुरुष भी क्रमशः बैल, घोड़ा, गधा, बकरा, भेड, चयूंटी आदि बन कर सन्तान पैदा करता गया। इस प्रकार सारी सृष्टि पैदा हुई। पृ० २३४ पं० २।

उत्तर—धन्य हो महाराज! अब आप सृष्टि का क्रमशः वर्णन करने लगे हैं। प्रथम तो वेद का नाम लिख कर शतपथ का पाठ नक़ल करदिया। धर्म से बतलाइये क्या शतपथ वेद हैं। यदि नहीं तो वेद के नाम से शतपथ का पाठ लिखना कहां की ईमानदारी है। और फिर शतपथ का भी पाठ पूरा नहीं लिखा बीच में से वाक्य के वाक्य चुरा गये। और फिर अर्थ करने में तो ईमानदारी का दिवाला ही निकाल दिया। "वह इतना मोटा हुवा" "उसने अपने मोटे शरीर के" "वह इस खेद

से छिप गई" इत्यादि, इस पाठ में से किन फिक्करों का अर्थ है। और फिर यह पता नहीं लगा कि इस पाठ के देने से आपका प्रयोजन क्या हैं। क्योंकि यह सारा ही पाठ आप के सिद्धान्त का खंडन तथा स्वामी जी के सिद्धान्त का मंडन करता है। लीजिये हम पूरा पाठ तथा उसका वेदानुकूल अर्थ नीचे देते हैं।

सवै नैव रेमे। तस्मादे काकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ ॥ ४ ॥ सइममेवात्मानं द्वेधापातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्य स्तस्मादयमाकाश स्त्रियापूर्यत एव ता शं समभवंस्ततो मनुष्या अजायन्त ॥ ५ ॥ सो हेयमीक्षां चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा संभवति हन्त तिरोऽनानीति ॥ ६ ॥ सागौरभवत्। वृषभ इतरस्ता शं समेवाभवत्ततो गावो अजायन्त ॥ ७ ॥ वडवेतराभवत्। अश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ता शं समेवाभवत्तत एकशफमजायत ॥ ८ ॥ अजेतराभत्। वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्ता ँ समेव भवत्तलोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदंकिं च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्त त्सर्वमसृजत ॥ ९ ॥ सोऽवेत्। अहं वावसृष्टिरस्म्यहँ होदँ सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्टचा ँ हास्यैतस्यां भवतिय एवंवेद ॥ १० ॥

भावार्थ—वह निश्चय रचना रूप क्रीडा न कर सका। इस कारण से कि अकेला रचना न कर सकता था उस ने दूसरे को चाहा वह ऐसा था जैसे स्त्री पुरुष मिले हुवे इकट्ठे ॥ ४ ॥ उसने जीवात्माओं को दो हिस्सों में तकसीम किया उससे पति पत्नि-

यां हुईं। इसलिये यह आधे की भांति मिलकियत यह कहा याज्ञवल्क्य ने इस लिये यह आकाश स्त्री से पूर्ण किया ही उस से संगम किया उससे मनुष्य पैदा हुवे ॥ ५ ॥ उसने यह इच्छा की कैसे मैं जीवात्माओं को पैदा करके सृष्टि उत्पन्न करुं, मैं गुप्त ही रहूं ॥ ६ ॥ वे गौवें हुईं बैल दूसरे आपस में मिले उन से गौवें पैदा हुईं ॥ ७ ॥ बडवा अलहदा हुई। घोड़े बैल अलहदा पैदा हुए। गधी अलहदा हुई, गधा अलहदा हुआ। वे आपस में मिले इस से एक खुर वाले पैदा हुए ॥८॥ बकरियां अलहदा पैदा हुईं। भेड़ें अलहदा हुईं भेड़े अलहदा हुए बकरे अलहदा। वे आपस में मिले। उस से बकरी, भेड़ पैदा हुए ऐसे ही यह जो कुछ जोड़े कीड़ियों तक वह सब पैदा किये। ९॥ उसने जाना मैं ही पैदा करने वाला हूं। यह सब कुछ पैदा किया उस से सृष्टि हुई और निश्चय वह इस सृष्टि में ही है। जो इस प्रकार से जानता है ॥१०॥

बतलाइये! इसमें आप की वर्णन की हुई आंख मचोली कहा है। आपने लिखा कि वेद ने सृष्टि क्रमशः नहीं कही। यहां चांद, सूरज, सितारे, पृथिवी, जलवायु, अग्नि की पैदाइश का वर्णन ही नहीं है। क्या इन के बिना ही यह भेड़-बकरी आदि के जोड़े पैदा हो गये। इस से तो हज़ार दर्जा बेहतर यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। आप कृपया इस लेख में कोई ऐसी बात तो बतलावें जो यजुर्वेद में न हो। और यह भी बतलाने की कृपा करें कि इसमें वह कौन सी बात है जो आर्य्य समाज के सिद्धांत के विरुद्ध तथा आप के अनुकूल है। यदि नहीं तो वेद को छोड़ कर शतपथ का प्रमाण देना निरर्थक नहीं तो क्या है।

१७७ (प्रश्न)—"मनुष्या ऋषयश्च ये" वेद में यह कोई मन्त्र ही नहीं। स्वामी जी ने ताज़ा बना कर तय्यार किया है।

पृ० २३५ पं० १२।

उत्तर—सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने "मनुष्या ऋषयश्चये" "यह पाठ लिख कर कोई यजुर्वेद के अध्याय का मन्त्र का ठिकाना नहीं लिखा अपितु "यह यजुर्वेद में लिखा है" ऐसा पाठ है प्रायः स्वामी जी के ग्रन्थों की शैली इस प्रकार की है कि जहां वह वेद का पाठ वेद के शब्दों में देते हैं वहां वह अध्याय मण्डल सूक्त तथा मन्त्र का नम्बर भी साथ में देते हैं। और जहां वह वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में रखना चाहते हैं वहां वह "यह वेद का वचन है" "वेद कहता है" "यह वेद में लिखा है" ऐसा कह कर वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में लिख देते हैं। ऐसा वह इसलिये करते हैं कि वेद का पूरा पाठ देने से पुस्तक बढ़ न जाये। यहां पर भी ऐसी ही बात है। यजुर्वेद के अध्याय ३१ में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। स्वामी जी ने सारा अध्याय न देकर उस का सारांश अपने शब्दों में रख दिया है। वैसे यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र ९ में यह पाठ मौजूद है कि "साध्या ऋषश्चये" अब स्वामी जी के तथा वेद के पाठ में यह फ़र्क है कि जहां वेद में "साध्याः" पाठ है वहां स्वामी जी के लेख में "मनुष्याः" लिखा गया है। यहां केवल शब्दों का फ़र्क है अर्थ में कोई फ़र्क नहीं है। दोनों का अर्थ एक ही है। महीधर ने "ये साध्याः सृष्टि साधन योग्याः प्रजापति प्रभृतय" "जो सन्तान पैदा करने के क़ाबिल प्रजापति आदि" ऐसा अर्थ किया है। अतः यहां

पर स्वामी जी का और वेद का अभिप्राय एक ही है। यह शैली केवल स्वामी जी की ही नहीं है अपितु "भाव प्रधाना आचार्य्या भवन्ति" सब आचार्य्य भाव प्रधान होते हैं अर्थात् सब आचार्यों की यह शैली है कि वे ग्रन्थों के भाव को अपने शब्दों में वर्णन करते हैं। उदाहरणार्थ आप वेदव्यास जी को लेवें वे महाभारत आदि पर्व अध्याय १०४ श्लोक ६ में नियोग की व्यवस्था करते हुए लिखते हैं कि 'पाणि ग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्" अर्थात् नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही कहाता है यह वेदों में निश्चित है। यहां व्यास जी ने वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में वर्णन किया है। वरना अथर्व वेद कांड १८ सूक्त ३ मन्त्र २ में "हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदम्' यह पाठ है। और "पाणिग्राहस्य" यह पाठ क़तई 'हस्तग्राभस्य' का अनुवाद है। इस से व्यास जी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। ऐसे ही स्वामी जी का पाठ "मनुष्या ऋषयश्चये" भी "साध्या ऋषश्चये' का अनुवाद हो है। इस से स्वामी जी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। यदि आप को ताज़े बने हुये मन्त्रों के देखने का शौक़ हो तो निम्न मन्त्रों की वेदों में से पड़ताल कर के बतलायें कि ये मन्त्र कौन से वेद के हैं। या व्यास जी ने ताज़ा बना कर रखे हैं।

अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते ॥७॥
महा० अनुशा० अ० १९।

पिता यदाह धर्म्मः स वेदेष्वपि सुनिश्चितः ॥१६॥
महा० शांति अ० २६५।

दर्पोनामश्रियः पुत्रोजज्ञेऽधर्मादितिश्रुतिः ॥२७॥
महा० शांति० अ० ६०।

वचनं सामवेदोक्तं सन्तोजानन्ति सर्वतः ॥४॥
सूर्य्याद्धि जायते तोयं तोयात्सस्यानि शाखिनः ॥६॥
ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० २१।

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः ।
ॐ श्री दुर्गायै सर्वविघ्न विनाशिन्यै नम इति ॥८॥
ब्रह्मवैवर्त० खण्ड ४ अ० २७।

"ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्व विघ्न विनाशिने ।
मधुसूदनाय स्वाहेति" अयं मन्त्रो
महागूढः सर्वेषां कल्प पादपः। साम-
वेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥३७॥
ब्रह्म वैवर्त० खण्ड ४ अ० ७८।

आशा है आचार्य्यों की यह शैली आप की समझ में आ जावेगी।

१७८ (प्रश्न)—"ततो मनुष्य अजायन्त" यह शतपथ की श्रुति का टुकड़ा है। इसको यजुर्वेद के नाम से लिखा है। पृ० २३५ पं० १३।

उत्तर—प्रथम तो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "यह यजुर्वेद के ब्राह्मण ने लिखा है" और शतपथ ही यजुर्वेद का ब्राह्मण है।

दूसरे यदि यजुर्वेद का ही लिखा हो तो क्या हानि है। क्योंकि स्वामी जी ने यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का अभिप्राय अपने शब्दों में वर्णन कर दिया है। और यह

आचार्यों की शैली है ( नं० १७७ ) तीसरे आप तो शतपथ को यजुर्वेद ही मानते हैं, आप को एतराज करने का क्या हक् है कि यह वेद का पाठ नहीं है ।

१७६ (प्रश्न)—जवान जवान मनुष्य, स्त्रियां, घोड़े, घोडियां, भैंस और भैंसे प्रभृति सब सृष्टि जवान २ पैदा हुई। नहीं मालूम ये निराकार के जवान २ जोड़े किसी के घर से भागे या आसमान से टपके। इस की पैदाइश कैसे हुई। पृ० २३५ पं० १८।

उत्तर—अमैथुनीसृष्टि में सब प्राणी मां बाप के बिना पदा होते हैं यह सिद्धान्त निर्विवाद है । अब सवाल यह है कि वे प्राणी किस अवस्था में पैदा होते हैं। इस पर स्वामी जी लिखते हैं कि 'आदिसृष्टि में मनुष्य आदि की सृष्टि। युवावस्था में हुई। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है" इस में स्वामी जी ने जो सृष्टि के युवावस्था में युक्ति दी है। आप उस पर एक अक्षर भी नहीं लिख सके और स्वामी जी का यह लेख निराधार नहीं है अपितु वेद के आधार पर है। देखिये वेद क्या कहता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवापिता स्वया रुद्र एषां सुदुघापृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥
ऋ० ५। ६०। ५॥

भाषार्थ—सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न मनुष्य ज्येष्ठ रहित कनिष्ठ रहित होते हैं। ये भाई कल्याण के लिये एक से

बढ़ते हैं सदा जवान सदा श्रेष्ठ कर्मा, पापियों को रुलाने वाला शक्तिशाली प्रभु इनका पिता है। और उद्यमी मनुष्यों के लिये सुकाल स्थित करने वाली प्रकृति अथवा पृथ्वी इनके लिये सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है ॥५॥ वेद ने कैसे स्पष्ट शब्दों में सृष्टि के आरंभ में प्राणियों की युवावस्था वर्णन की है।

आपने भी जो "सनैवरेमे" के अर्थ में पति पत्नी गौ बैल, घोड़ा घोड़ी, भेडा भेडी, बकरा बकरी, आदि के जोड़े पैदा हुए लिख कर उन के मैथुन से फिर मनुष्य, गौवें, भेड, बकरी आदि का पैदा होना लिखा है। उन जोड़ों की उस समय क्या आयु थी? यदि वे जोड़े बालक वा बूढ़े थे तो उन्हों ने मैथुन करके सन्तान कैसे पैदा की? निराकार परमेश्वर के तो जवान जोड़े प्रकृति के घर से निकल पड़े किन्तु आपके निर्गुण ब्रह्म के ये मनुष्य से कीड़ी तक मैथुन करके सन्तान पैदा करने वाले नौजवान जोड़े कहां से टपक पड़े। "छाज तो बोले छलनी क्या बोले जिसमें सत्तर छेद" पौराणिक भी जवान पैदा होने में शक कर सकते हैं जिनके सरस्वती नौजवान पैदा हुई जिसको देख कर ब्रह्मा जी विवश हो गये पार्वती ने गणेश को जवान पैदा किया जिसने ब्रह्म की दाढ़ी उखेड़ी, विष्णु को डंडे से पीटा तथा महादेव से युद्ध किया, वसिष्ठ की गौ के शरीर से नौजवान की फौज पैदा हुई जिसने विश्वामित्र से लड़ाई की दक्ष के यज्ञ को नाश करने के लिये महादेव ने जटों से नौजवान वीरभद्र को पैदा किया, नारद जी एक तालाब में स्नान करने से स्त्री बन गये, राजा तालध्वज ने विवाह कर लिया तो गर्भाधान किया तब—

ततस्त्रयोदशे वर्षे तस्या गर्भोऽभवन्महान् ॥७५॥
पंचाशत संख्यया जाता उपसर्गादि वर्जिताः ।
आरूढयौवनाः सर्वे सुताः संग्राम कोविदाः ॥७६॥
( भविष्य० उत्तर० अ० ३ श्लो० ४७ से ७७ )

भाषार्थ—इस के पीछे तेरहवें वर्ष में उस के बड़ा भारी गर्भ हुवा जिसमें से पचास नौजवान युद्ध विशारद लड़के पैदा हुवे ॥७५। ७६॥ कहिये कुछ और पौराणिक लीलायें सुनायें या तसल्ली होगई ।

१८० ( प्रश्न )—शतपथ की समस्त श्रुति को छिपा कर "ततोमनुष्या अजायन्त" केवल इस टुकड़े को लिखना और मनमानी युवासृष्टि का पैदा होना स्वामी जी ने क्यों लिखा ।
पृ० ३२५ पं० २३ ।

उत्तर—स्वामी जी ने प्रकरण की ज़रूरत के अनुसार वेदानुकूल पाठ को लेकर दर्ज कर दिया किन्तु शेष पाठ भी स्वामी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। आप ने प्रकृति को नित्य सिद्ध करने वाला पाठ पांचवें मन्त्र में से आधा मन्त्र जिसमें "आकाश स्त्रियां पूर्यत" आकाश उस प्रकृति रूपी स्त्री से पूर्ण था, छिपा लिया। नौजवान स्त्री; पुरुष, भेड़, बकरी आदि के जोड़े जिन्होंने मैथुन करके सन्तान पैदा की इस पाठ में आपने भी तसलीम किये हैं। अतः शतपथ का यह पाठ ईश्वर जीव प्रकृति को नित्य तथा सृष्टि के तीन कारण वर्णन करने से वेदानुकूल है। और आपकी कल्पनायें वेद विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है ।

# देव जाति

१८१ ( प्रश्न )—"त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशा—यजु० २० । ११" इस मंत्र में तीन तथा ग्यारह और तेतीस देवताओं का वर्णन है । पृ० २३६ पं० ४ ।

उत्तर—यहां पर वेदों में कपोल कल्पित पौराणिक देवताओं का वर्णन नहीं है । और न ही वृहस्पति से मुराद यहां कल्पित देवताओं के गुरु से है । अपितु यहां देवता से मुराद दिव्य गुणों वाले संसार की उत्पत्ति में कारण पृथिवी आदि तेतीस देवताओं से है । और ये तीन और ग्यारह भी इन ही तेतीस में आजाते हैं । मन्त्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार से हैं—

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशा सुराधसः ।
वृहस्पति पुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा
देवैरवन्तु मा ॥ यजु० २० । ११ ॥

भाषार्थ—जो तीन प्रकार के दिव्य गुण वाले जिनमें कि बड़ों का पालन करने हारा सूर्य्य प्रथम धारण किया हुआ है । जिनसे अच्छे प्रकार कार्य्यों की सिद्धि होती वे ग्यारह तेतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे प्रकाशमान ईश्वर के परमैश्वर्य युक्त उत्पन्न किये हुवे जगत् में हैं । उन पृथिव्यादि तेतीस पदार्थों से सहित मुझ को विद्वान् लोग रक्षा और पढ़ाया करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो पृथिवी जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त, धनंजय, तथा ग्यारहवां जीवात्मा बारह महीने बिजली और यज्ञ इन तेतीस दिव्य गुण वाले

पृथिव्यादि पदार्थों के गुणकर्म स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं वे सर्वोपकारक होते हैं ॥ ११ ॥

समस्त शास्त्रों में तेतीस देवताओं से मुराद उपरोक्त सब व्यवहार सिद्धि के लिये है। सब मनुष्यों को उपासना के योग्य तो देव एक ब्रह्म ही है। उपरोक्त समस्त लेख में प्रमाण निम्न प्रकार से है—

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ। कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य नि विद्युच्यन्ते त्रयश्च त्रीच शता त्रयश्च त्रीचसहस्रेत्योमिति होवाच ॥१॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति। त्रयस्त्रिंशदित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति द्वावित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति अध्यर्ध इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच कतमेते त्रयश्चत्रीचशता त्रयश्चत्रि च सहस्रेति ॥२॥ स होवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिं शत्त्वेव देवा इति कतमेते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एक त्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥३॥ कतमेवसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥४॥ कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्या च्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥५॥ कतम आदित्या इति।

द्वादशमासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥६॥ कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति। स्तनयित्नुदेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतम स्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥७॥ कतमे षडिति। अग्निश्च पृथिवीच वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्चैते षडित्येह्येवेदं सर्वं षडिति ॥८॥ कतमेते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौद्वौ देवावित्यन्नंचैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्ध इति योऽयं पवत इति ॥९॥ तदाहुः। यदयमेक एव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति यद स्मिन्निदं सर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥१०॥

(शतपथ० १४। ६। ६। १—१०)

भाषार्थ—उस के पीछे उसको चतुर शाकल्य ने पूछा। हे याज्ञवल्क्य! देवता कितने हैं? उस ने उसी बुद्धि से प्रतिपादन किया जिस से सारे विद्वान् प्रतिपादन करते हैं—तीन और तीन सौ और तीन और तीन हज़ार ऐसा ऐसा कहा ॥१॥ कितने देव हैं हे याज्ञवल्क्य ऐसा पूछा। तेतीस हैं ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा हे याज्ञवल्क्य कितने देव हैं, छे हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा हे याज्ञवल्क्य कितने देव हैं, तीन हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं, याज्ञवल्क्य! दो हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य! डेढ़ हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य, एक हैं, तो ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा वे कौन से तीन और तीन सौ तीन और तीन हज़ार देव हैं ॥२॥ वह बोला ये सब इनकी ही महिमायें हैं वैसे देवता तो तेतीस ही हैं। वे कौन से

तेतीस देवता हैं। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ये इकत्तीस, इंद्र और प्रजापति कुल तेतीस हुए ॥ ३ ॥ कौन से वसु हैं ? अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, आदित्य, जल, चन्द्रमा, नक्षत्र ये आठ वसु हैं। इनका वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं। और यही सब के निवास करने के स्थान हैं ॥ ४ ॥ कौनसे रुद्र हैं। ग्यारह रुद्र ये कहाते हैं। जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और ग्याहरवां जीवात्मा है। क्योंकि जब ये इस शरीर से निकल जाते हैं तब मरण होने से उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं। वे निकलते हुए उनको रुलाते हैं। इस से इनका नाम रुद्र है ॥ ५ ॥ इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं। क्योंकि सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं। इसी से इनका नाम आदित्य है ॥ ६ ॥ ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है क्योंकि यह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इस लिये कहते हैं कि उससे वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजा का पालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का यह कारण है कि उन से भी प्रजा का जीवन होता है ॥ ७ ॥ कौन से छः देवता हैं—अग्नि, पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, और जल ये छः देवता हैं ॥८। कौन से तीन देवता हैं—यही तीन लोक अर्थात् स्थान नाम और जन्म क्योंकि इन में ही सब देवता हैं। कौन से दो देवता अन्न और प्राण को कहते हैं। कौनसा अध्यर्ध देव है ॥ ९ ॥ वायु का नाम अध्यर्द्ध देव इस लिये है कि वह सब का धारण और वृद्धि कर्ता है। कौन एक देव है

ब्रह्म एक देव है ऐसा कहा जाता है ॥ १० ॥

ये हैं वेद मन्त्रों में प्रतिपादित तेतीस देवता और चौंतीसवां इन सब का स्वामी महादेव ब्रह्म, बस दुनिया के समस्त पदार्थ इनही चौंतीस के अन्तर्गत आ जाते हैं। रह गए आपके फरज़ी पौराणिक देवता उनका न वेदों में वर्णन हैं और न वह इस क़ाबिल ही हैं कि उनका किसी भली पुस्तक में वर्णन हो सके। उदाहरणार्थ हम यहाँ पर समस्त देवताओं के गुरु वृहस्पति के जीवन की एक पौराणिक गाथा का वर्णन काफी समझते हैं। जैसे कि महाभारत में आता है कि—

अथोतथ्य इति ख्यात आसोद्भोमानृषिः पुरा।
ममता नाम तस्यासोद्भार्य्यापरम सम्मता ॥ ८ ॥
उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम् ।
वृहस्पतिर्वृ हत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥ ९ ॥
उवाचममतातंतु देवरंवदतां वरम् ।
अन्तर्वत्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनारम्यतामिति ॥ १० ॥
अयंच मे महाभाग कुक्षावेव वृहस्पते ।
औतथ्यो वेदमत्रापि षड़ङ्गं प्रत्यधीयत ॥ ११ ॥
अमोघरेतस्त्वंचापि द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः ।
तस्मादेवंच न त्वद्य उपारमितुमर्हसि ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्वृहस्पतिरधोरधीः ।
कामात्मानं तदात्मानं न शशाकनियच्छितुम् ॥ १३ ॥
स बभूव ततः कामी तया सार्द्धमकामया ।
उत्सृजन्तन्तुतं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥

मोस्तात मागमः कामं द्वयोर्नास्तीह संभवः ।
अल्पावकाशो भगवन् पूर्वं चाहमिहागतः ॥ १५ ॥
अमोघरेताश्च भवान् न पीडां कर्त्तुं मर्हसि ।
अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः ॥ १६ ॥
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम् ।
शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्या गर्भगतोमुनिः ।
पद्भ्यामरोधयन् मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः ॥१७॥
स्थानमप्राप्तमथ तद्रेतः प्रतिहतं तदा ।
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो बृहस्पतिः ॥ १८ ॥
तद्दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः ।
उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्मर्त्स्य भगवानृषिः ॥ १९ ॥
यन्मांत्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ।
एवमोत्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यति ॥ २० ॥
सवै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ।
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिव तेजसा ॥ २१ ॥
जात्यंधोवेदवित् प्राज्ञः पत्नीं लेभे सविद्यया ॥ २२ ॥

( महा० आदि० अ० १०४ )

भाषार्थ—पूर्वकालमें उतथ्य नाम का बुद्धिमान् प्रसिद्ध ऋषि था। उस की अति सुन्दरी ममता नाम पत्नी थी ॥ ८ ॥ उतथ्य का छोटा भाई देवताओं का गुरु महान् तेजस्वी बृहस्पति ममता के पास समागम की इच्छा से गया ॥ ९ ॥ ममता उस वागीश देवर को कहने लगी मैं तुम्हारे बड़े भाई से गर्भवती हूं इस लिये सबर कर ॥ १० ॥ हे बृहस्पते ! यह मेरी कोख में ही महाभाग उतथ्य का पुत्र यहाँ भी षडङ्ग वेद

पढ़रहा है ॥ ११ ॥ और तू भी अनिष्फल वीर्य वाला है और दो की यहां गुंजाइश नहीं। इस लिये आज ऐसा होना मुनासिब नहीं, सबर करना चाहिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार कहने पर अधीर बुद्धि वृहस्पति काम में लिप्त हुई अपनी आत्मा को रोक न सका ॥ १३ ॥ वह कामी उस अकामा के साथ प्रवृत्त हो गया उस को वीर्य छोड़ते हुवे को देख कर गर्भ में बैठा मुनि बोला ॥ १४ ॥ हे चाचा काम को मत प्राप्त हो यहां दो का रहना मुमकिन नहीं। हे भगवन् यहां स्थान बहुत कम है। और मैं पहिले आ चुका हूं ॥ १५ ॥ और आपका वीर्य भी खाली जाने वाला नहीं, मुझे कष्ट न दें। उस गर्भ वाले की बात को सुने विना ही वृहस्पति ॥ १६ ॥ उस सुन्दर नेत्रों वाली ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त हो गये। वीर्य के गर्भ में गिरने के समय को जान कर गर्भ में बैठे मुनि ने वृहस्पति के वीर्य जाने के रास्ते पार्श्वों से रोक लिया ॥ १७ ॥ रोकने से स्थान को न प्राप्त हुवा वीर्य अचानक पृथ्वी पर गिर पड़ा तब वृहस्पति क्रोध में आ गये ॥ १८ ॥ अपने वीर्य को गिरा हुवा देख कर वृहस्पति ने क्रोध से शाप दिया। गर्भ में बैठे हुवे उतथ्य के पुत्र को धमकाते हुवे ऋषि ने कहा ॥ १९ ॥ जो तूने मुझ को ऐसे समय में जो कि सब प्राणियों को प्रिय है इस प्रकार की बात कही इस लिए तेरे में तीव्र अंधकार प्रविष्ट होगा ॥ २० ॥ इस शाप से दीर्घतमा नाम का ऋषि पैदा हुआ। जो कि वृहस्पति के समान तेज वाला था ॥ २१ ॥ जन्म से अंधा वेद का जानने वाला बुद्धिमान् दीर्घतमा विद्या के बल से धर्मपत्नी को प्राप्त हुवा ॥ २२ ॥ क्या वह यही वृहस्पति हैं। कि जिन को आप देवताओं का पुरोहित वर्णन कर रहे हैं। और जिन

का जिकर वेदों में बतला रहे हैं। और क्या "स्थाली पुलाक" न्याय से सारे ही देवता इसी टाइप के हैं। यदि इनका नाम देवता है तो न मालूम फिर राक्षस किन का नाम है। इस लिये कृपया इन पौराणिक देवताओं की करतूतों को ढके ही रक्खें और वेदों में इन का वर्णन बतला कर वेदों को कलंकित करने की कुचेष्टा से बाज़ रहिये।

१८२ (प्रश्न)—"अग्निर्देवता वातो देवता इत्यादि यजु० १४।२०" इस मंत्र में वसु ८ रुद्र ११ आदित्य १२ मरुत ७ विश्वेदेवा १३ ऐसे सब मिलाकर ५८ देवता हैं। पृ० २३६ पं० ६।

उत्तर—आपने बतलाया नहीं कि वे सात मरुत देवता और १३ विश्वे देवा कौन कौन से हैं। तथा ५८ किस प्रकार से हो जाते हैं। अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा तो आठ वसुओं में शामिल हैं ही और मरुत नाम वायु का तथा वरुण नाम जल का है। यह दोनों भी वसुओं में आ गये। रहा बृहस्पति यह नक्षत्रों में होने के कारण वसु संज्ञा में आ गया विश्वेदेवा संपूर्ण देवताओं का नाम है। इस हिसाब से ये सब तेतीस में ही शामिल हो गये। इन्द्र नाम भी विजली का है वह भी तेतीस में शामिल है। अब बतावें ५८ कैसे बन गये। और फिर जब अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्र, मरुत; विश्वे देवा, बृहस्पति तथा वरुण यह सब वसु रुद्र तथा आदित्यों में ही शामिल हैं तो इन को भिन्न क्यों गिनवाया गया। अतः पता लगा कि इस मंत्र में पूर्वोक्त ३३ देवताओं से अतिरिक्त दिव्य गुणों के कारण परमेश्वर तथा विद्वानों का नाम भी देवता

वर्णन किया गया है। अतः इस मंत्र का निर्दोष ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से होग—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा
देवता वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽ दित्या
देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पति
र्देवतेंद्रो देवता वरुणो देवता ॥ यजु० १४ ।२०॥

भाषार्थ—प्रकाश स्वरूप होने से परमात्मा अग्नि देवता है। बल स्वरूप होने से परमात्मा वायु देवता है। चराचर में व्यापक होने से परमात्मा ही सूर्य्य देवता हैं। आनन्द कारक होने से परमात्मा ही चन्द्रमा देवता है। आठ वसु देवता हैं ११ रुद्र देवता हैं १२ आदित्य देवता हैं। मनन करने वाले ऋत्विगादि विद्वान् लोग मरुतदेवता हैं। सब अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्य विश्वे देवता हैं। बड़े वचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा बृहस्पति देवता हैं। ऐश्वर्य से युक्त होने से राजा इन्द्र देवता हैं। श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा वरुण देवता है ॥२०॥

इस मंत्र में तेतीस देवताओं के अतिरिक्त परमात्मा तथा विद्वानों को भी देवता शब्द से प्रतिपादन किया गया है। विद्वानों के देवता होने में निम्न प्रमाण उपस्थित हैं।

(अ) देवाः पितरः पितरो देवाः ॥ अथर्व० ६। १२३।३॥

(आ) वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपिता महास्तथादित्या ञ्छ्रुतिरेषा सनातनो ॥ मनु० ३।२८४

(इ) अन्न दाता भय त्राता पत्नी तातस्तथैव च।
विद्या दाता जन्म दाता पंचैते पितरो नृणाम् ॥१५३॥
(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० अ० १०)

(ई) द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति । सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ॥ शत० १।१।१।४॥

(उ) उशिजो वह्नितमानिति विद्वा ४३ सोह देवास्तस्मादाहोशिजो वह्नितमानिति ॥ शत० ३।७।३।१०॥

(ऊ) देवा योगिनः कपिलादयश्च ॥ उव्वट यजु० ३१।९॥

(ऋ) एवं योगिनोऽपि दीपनाद्देवा ॥ उव्वट यजु० ३१।१६॥

(ऋृ) देवि देवश्च देवी च समागम्यमदन्तरे ।
मंत्रयेते ध्रुवं किंचिदभिषेचन संहितम् ॥१५॥
(वाल्मी० अयो० स० १६)

(ऌ) धर्म्म नित्या यथाकालमग्न्यागार परा भव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत् परिपालय ॥१८॥
(वाल्मी० अयोध्या० स० ५८)

भाषार्थ—देवों का नाम पितर तथा पितरों का नाम देव हैं, (अ) २५ वर्ष के ब्रह्मचारी को पिता ४४ वर्ष वाले को पितामह तथा ४८ वर्ष वाले को प्रपितामह कहते हैं । अतः पितर होने से देव हुए, (आ) अन्न दाता, भय त्राता, पवीतात, विद्या दाता, जन्म दाता ये पांच पितर होने से देवता हुए. (इ) यह दो हैं तीसरा नहीं है । सत्य और झूठ । सत्य ही देवता हैं, झूठ मनुष्य हैं, यह मैं झूठ से सत्य को प्राप्त होता हूं, सो मनुष्यों से देवताओं को प्राप्त होता हूं, (ई) विद्वानों का नाम देवता हैं, (उ) कपिल आदि योगी देवता हैं, (ऊ) इस प्रकार से योगी भी दीप्तिमान् होने से देव हैं. (ऋ) जब दशरथ ने राम

देवि सीते देव दशरथ तथा देवी कैकेयी इकठ्ठे होकर मेरे पीछे से अभिषेक के विषय में कुछ मशविरा कर रहे हैं, (ऋ) राम ने सूत के द्वारा कौशल्या को संदेश दिया। हमेशा अग्नि होत्र करती हुई धर्म पर दृढ़ रहना हे देवि कौशल्ये देव दशरथ के पाओं को देव परमात्मा की भांति पूजना (लृ)

इन प्रमाणों में सर्वत्र विद्वानों के लिये देव शब्द पाया है।

श्रीमान् जी ! इस मंत्र में पौराणिक देवताओं का वर्णन नहीं हैं। न मालूम आप इन कल्पित पौराणिक देवताओं की क्यों वकालत कर रहे हैं। महाराज ! जाने दीजिए पौराणिक देवता। इस योग्य ही नहीं कि वे धर्म्म ग्रन्थों में स्थान प्राप्त कर सकें। ज़रा उनका स्वरूप देखिये—

अग्नि—पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितः शिवमायया।
कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः ॥१९॥

वायु—जगत् प्राणोऽपि गर्वेण मोहितः शिवमायया।
कामेन निर्जितो व्यास चक्रे ऽन्यस्त्री रतिं पुरा ॥२०॥

सूर्य्य—चण्डरश्मितु मार्तण्डो मोहितः शिवमायया।
कामाकुलो बभूवाशु दृष्ट्वाश्वीं हय रूपधृक् ॥२१॥

चन्द्र—चन्द्रश्च मोहितः शंभोर्मायया काम संकुलः।
गुरु पत्नीं जहाराथ पुतस्तेनैव चोद्धृतः ॥२२॥

वरुण—पूर्वंतु मित्रावरुणौ घोरे तपसि संस्थितौ।
मोहितौ तावपि मुनो शिव माया विमोहितौ ॥२३॥
उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा च स्कंमोमौ बभूवतुः।
मित्रः कुंभे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले ॥२४॥
ततः कुंभात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्र संभवः।
अगस्त्यो वरुणाज्जातो वडवाग्नि समद्युतिः ॥२५॥

बृहस्पति–बृहस्पति मुं निवरो मोहितः शिवमायया ।
भ्रातृपत्न्या वशीरेमे मरद्वाजस्ततोऽभवत ॥३८॥
इन्द्र—इन्द्रक्षिदशयो भूत्वा गौतमस्त्री विमोहितः ।
पापं चकार दुष्टात्मा शापं प्राप्त मुनेस्तदा ॥१८॥
विश्वे देवा—कामेन स्व सहायेन प्रबलेन मनो भुवा ।
सर्वः प्रधर्षितो वीरो विष्णवादि प्रबलोऽपि हि ॥१६॥

भाषार्थ—अग्नि कामाधीन हुआ, वायु ने परस्त्री गमन किया, सूर्य्य ने घोड़ी से मैथुन किया, चन्द्रमा ने गुरु पत्नी से मैथुन किया, वरुण का वीर्य उर्वशी को देख स्खलित हो गया, बृहस्पति ने भाई की स्त्री से भोग किया, इन्द्र ने गौतम की स्त्री से भोग किया, सब को कामाधीन होना पड़ा ।

यह है आपके पौराणिक देवताओं की करतूतें । जिनकी वकालत में ईमानदारी को भी आप धत्ता बतला रहे हैं । प्रार्थना यही है कि इस आचार हीन देवता समूह को सनातन धर्म्म मंदिर में ही निमन्त्रित कीजिये, इन श्लोकों को वेद मन्त्रों पर मढ़ने की कृपा न करें।

१८३ (प्रश्न)—'देवानां पत्नीरित्यादि अथर्व० ७।४६।१' इस मन्त्र में देवताओं की पत्नियों का वर्णन है। पृ० २३६ पं० १७।

उत्तर—यहां पर आपके पौराणिक देवताओं की पत्नियों का नाम मात्र भी नहीं है । अपितु विद्वानों की धर्म्म पत्नियों का वर्णन है । देखिये इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से है ।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये । याः पार्थिवासो या अपामपि व्रतेता नो देवीः सुहवा शर्म्म यच्छन्तु ॥ अथर्व० ७।४६।१।

भाषार्थ—जो उपकार की इच्छा करती हुई विद्वानों वा राजाओं की पत्नियां हमें तृप्त करें और बल वा स्थान के लिये और अन्न देने वाले संग्राम जीतने के लिये हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करें और भी जो पृथिवी की रानियां जलों के समान उपकार वाली हों वे सब सुन्दर बुलावे योग्य देवियां हमें घर वा सुख देवें ॥१॥

आपको पौराणिक कल्पित देवता तथा उनकी पत्नियों के सिद्ध करने का व्यर्थ ख़बत समाया हुआ है। इन देवताओं की पत्नियों के वर्णन से भला संसार का क्या उपकार होगा। यदि आपको इनके वर्णन देखने का शौक है तो देखिये—

या तु ज्ञान मयीनारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम्।
कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत ॥२६॥
स्वकीयांच सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छंभु गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७॥
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादिति संभवः।
विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत ॥२८॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८)

भाषार्थ—जो ज्ञान वाली स्त्री हो वह चाहे किसी शुभ पुरुष को वर ले। वह चाहे उसका पुत्र लगता हो चाहे पिता वा भाई लगता हो वही उसका पति बन जाता है ॥२६॥ ब्रह्मा ने अपनी पुत्री को विष्णु ने अपनी मां को तथा महादेव ने अपनी बहिन को पत्नी ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया ॥२७॥ इस वेद अनुकूल वाणी को सुन कर सूर्य्य ने भी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया ॥२८॥

यह है पौराणिक देवता तथा उनकी पत्नियों की हक़ीक़त कृपया इस पौराणिक शिक्षा तथा तदनुकूल आचरण को सनातन धर्म्म की चार दीवारी तक ही महदूद रक्खें तो बेहतर है।

१८४ (प्रश्न)—इन्द्राणीमासु इत्यादि अथर्व० २०। १२६। ११" इस मंत्र में इन्द्र देवता की पत्नी इन्द्राणी के सौभाग्य का वर्णन है। पृ० २३७ पं० ४।

उत्तर—इस मंत्र में न तो इन्द्र की पत्नी का वर्णन है। और न उसके सौभाग्य की चर्चा है, अपि तु ऐश्वर्यवान् पुरुष की शक्ति का वर्णन है देखिये मंत्र के अर्थ यों हैं—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चनजरसा मरते पतिर्वि
श्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ अथर्व० २०।१२६।११

भाषार्थ—इन चलायी गई प्रजाओं के बीच बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष की विभूति वा शक्ति को बड़ी भगवती ऐश्वर्य वाली मैंने सुना है। इस विभूति का पालन करने वाला यह मनुष्य दूसरे प्राणियों के समान वयो हानि से नहीं मरता है। बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य सब प्राणी मात्र से उत्तम है॥ ११॥

इन्द्र तथा इन्द्र-पत्नी के वर्णन से आप क्या लाभ समझते हैं। क्या इन्द्र देवता कहलाने के क़ाबिल था। हम आपको पौराणिक इन्द्र की एक और करतूत सुनाते हैं—

सुचन्द्रस्य गृहे रंभा ललाम जन्म भारते॥ ४४॥
नाना कौतुक संयुक्तां ददौ जन्मेजयायच॥ ४६॥
एकदा नृपति श्रेष्ठश्चाश्वमेधेनदीक्षितः॥ ४७॥

अश्व संगोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मंदिरे।
यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी ॥ ४८ ॥
द्रष्टुं जगाम सासाध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा।
शक्रो अश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम् ॥ ४९ ॥
तया निवार्यमाणश्चरेमे तत्र तया सह।
मूर्छामवाप शक्रश्च बुबुधेन दिवानिशम् ॥ ५० ॥
साच संभोग मात्रेणदेहं तत्याज योगतः।
नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गेजगामह ॥ ५१ ॥

(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० १४)

भावार्थ—राजा चन्द्र के घर में भारत में रंभा ने जन्म लिया ॥ ४४ ॥ उसने नाना प्रकार की सज धज से अपनी कन्या जन्मेजय को व्याह दी ॥ ४६ ॥ एक वार राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ४७ ॥ इन्द्र मकान में घोड़े के पीछे छिप कर बैठ गया। यज्ञ के घोड़े को खूबसूरत जानकर आनन्द पूर्वक वह सुन्दरी देखने गई ॥ ४८ ॥ वह साध्वी प्रसन्नता से अकेली गई। इन्द्र ने घोड़े के समीप जाकर उस सती को क़ाबू कर लिया ॥ ४९ ॥ उससे मना करने पर भी इन्द्र ने उस से भोग किया। और इन्द्र मूर्छा को प्राप्त हो गया दिन रात न जागा ॥ ५० ॥ उस स्त्री ने संभोग मात्र से योग द्वारा शरीर छोड़ दिया और इन्द्र राजा के भय तथा लज्जा से स्वर्ग को चला गया ॥ ५१ ॥

कहिये महाराज! क्या पौराणिक देवताओं की इन्हीं कारनामों के लिये कल्पना की गई है या कोई और प्रयोजन भी है। परमात्मा इन देवताओं से भारत को बचावे।

१८५ ( प्रश्न )—"उतग्नाव्यन्तु देवपत्नीरित्यादि अथर्व० ७।४६।२" इस मन्त्र में इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी, अग्नि की पत्नी अग्नायी, रुद्र की पत्नी रोदसी तथा वरुण की पत्नी वरुणानी और अश्विनी कुमारों की पत्नी का वर्णन मौजूद है। पृ० २३७। पं० ११।

उत्तर—जब इन्द्र अर्थात् बिजली, अग्नि और वरुण अर्थात् जल जड़ पदार्थ हैं तो इन की पत्नी होना असम्भव है। अश्विनी कुमारों का तेंतीस में कहीं नाम ही नहीं है। और रुद्र ११ हैं उन की पत्नी की कल्पना निरर्थक है। हां इन गुणों से युक्त पुरुषों की स्त्रियों का वर्णन ठीक है। देखिये इस मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है:—

उतग्नाव्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राणी अग्नायी
अश्विनी राट्। आरोदसी वरुणानी शृणोतु-
व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥ अथर्व० ७।४९।२॥

भाषार्थ—और भी विद्वानों वा राजाओं की पत्नियां ऐश्वर्य वाली, बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष की पत्नी, अग्नि सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री, शीघ्रगामी पुरुष की स्त्री, प्रजा की वाणियों को प्राप्त हों और ज्ञानवान पुरुष की स्त्री अथवा श्रेष्ठ-जन की पत्नी वाणियों को सुने और जो स्त्रियों का न्याय का काल है यह सब देवियां उस की चाहना करें॥२॥

भावार्थ—स्त्रियां स्त्रियों को अपनी न्याय सभा के अधिकारी बना कर घर और बाहर के झगड़ों को उचित समय पर निर्णय करें और बालकों को भी वैसी शिक्षा दें॥२॥

१८६ (प्रश्न)—"ब्रह्मचारिणंपितरो इत्यादि अथर्व०

११।५।२" इस मंत्र में पितर गंधर्व तथा छः हज़ार तीन सौ तीस देवताओं का वर्णन है। पृ० २३७ पं० २०।

उत्तर—वे छः हज़ार तीन सौ तीस देवता कौन २ से हैं जरा उन की गिनती तो गिना दी होती। वैसे देवता तेतीस ही हैं। जहां अधिक गिनाये गये हैं वहां उनकी ही महिमा मात्र है (देखो नं० १८२) इस मंत्र में तो देवता आदि विद्वानों का ही नाम है। क्यों कि यज्ञ में उनका ही सम्मिलित होना संभव है। संख्या अधिक उपस्थिति की सूचक है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार से हैं—

ब्रह्म चारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनु
संयन्ति सर्वे। गंधर्वाए नमन्वायन् त्रय
स्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहसाः सर्वान्त्स
देवांस्तपसा पिपर्ति। अथर्व० ११।५।२॥

भाषार्थ—सब व्यवहार कुशल पालन करने वाले विजय चाहने वाले पुरुष नाना प्रकार से ब्रह्मचारी के पीछे २ चलते हैं। तेंतीस तीन सौ और छे सहस्र [६३३३ अर्थात् बहुत से] पृथ्वी के धारण करने वाले (पुरुषार्थी पुरुष) इस ब्रह्मचारी के साथ साथ चले हैं। वे सब विजय चाहने वालों को अपने तप से भरपूर करता है॥२॥

भावार्थ—सब विद्वान् पुरुषार्थी जन पूर्व काल से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के अनुशासन में आनंद पाते आये हैं और पाते हैं इस प्रकरण में इस मंत्र से पूर्व और पश्चात् भी वेदारंभ संस्कार का वर्णन है। अतः उपरोक्त हमारा अर्थ ही ठीक है आपका नहीं।

१८७ (प्रश्न)—"त्रीणिशता त्रीणि सहस्राणीत्यादि यजु० ३३।७" इस मंत्र में किसी के मत में तो ३३३० में ६ को मिलाकर ३३३६ तथा किसी के मत में ३००० को ३०० से गुणा करके ३० तथा ६ का योग देकर ६०००३६ तथा किसी के मत में ३३३० को इन ही के स्वरूप में ६ अंक करके ३३३३३३३० देवताओं का वर्णन पाया जाता हैं। पृ० २३८ पं० ४

उत्तर—देवता तेतीस ही हैं। आप चाहे करोड़ की गिनती गिनें, चाहे तेतीस अर्ब की। वे सब तेतीस की ही महिमा है (देखो नं० ११८) परन्तु यहाँ पर तो शिल्प विद्या के जानने वाले विद्वानों का वर्णन है। मंत्र का ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

त्रीणी शतात्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥
यजु० ३३।७"

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी आदि तीस और नव प्रकार के ये सब और विद्वान् लोग तीन सौ तीन हज़ार कोस मार्ग में अग्नि को सेवन करें, घी वा जलों से सींचे, अंतरिक्ष को आच्छादित करें, इस अग्नि के अर्थ हवन करने वाले को सब ओर से ही निरन्तर स्थापित करें, वैसे तुम लोग भी करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम मध्यम निकृष्ट वेगों से अनेक सैंकड़ों हज़ारों कोस मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा आ सकते हैं ॥ ७ ॥ इस का नाम है अर्थ जो प्रकरण तथा सृष्टि नियम के सर्वथा अनुकूल है।

१८८ (प्रश्न)—"इन्द्रोदिव इन्द्र ईशे इत्यादि निरुक्त दैवत कांड पाद १" तथा "आद्राभ्यां हरिभ्यामित्यादि निरु० दवत० पा० २ " में देवताओं को चैतन्य वर्णन किया है। पृ० २३८ पं० २४।

उत्तर—भला इन दोनों प्रमाणों से आपकी क्या प्रयोजन सिद्धि हुई। आपने इन प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि देवता चेतन वर्णन किये हैं। हम पहिले से ही विद्वानों का नाम भी देवता मानते हैं। और वे चेतन होते ही हैं। आप के दिये हुए मंत्रों में इन्द्र शब्द के कितने अर्थ हैं देखिये।

इन्द्रः—(अग्निर्विद्युत् सूर्य्यो वा) अग्नि, बिजली' सूर्य्य (अध्यापको राजा वा) अध्यापक, राजा (सभा ऽध्यक्षः) सभापति (दुखविदारकः) दुख का नाशक (परमैश्वर्यवान् सभा शाला सेना न्यायाधीशः) संपत्ति वाला, सभापति, शालापति, सेनापति, न्यायपति, (इन्द्रियवान् जीवः) जीव इत्यादि इत्यादि इन्द्र शब्द के सैंकड़ों अर्थ हैं (देखो वेदाषकोष पृ० १८२ से १८७ तक) जहां जैसा प्रकरण अनुसार अर्थ मुनासिब हो वैसा ले लेना चाहिये। जहां जडत्वादि गुणों से इन्द्र का वर्णन होगा वहां इन्द्र शब्द से बिजली सूर्य्य आदि अर्थ लिये जायेंगे। और जहां चेतनता आदि गुणों से इन्द्र का वर्णन होगा वहां इन्द्र शब्द से राजा सेनापति जीवात्मा आदि अर्थ लिया जावेगा। अतः आप की लेख निष्प्रयोजन ही है।

१८९—(प्रश्न) स्वामी दयानन्द जी शतपथ के आधार पर तेंतीस देवता मानते हैं, और उन देवताओं को चैतन्य नहीं मानते वरन जड़ मानते हैं पृ० २४० पं० १

उत्तर—आप कतई झूठ कह रहे हैं । प्रथम तो तेतीस देवताओं में से भी ग्यारह रुद्रों में दश प्राण तथा ग्यारहवां जीवात्मा हैं। जीवात्मा चेतन है। तथा स्वामी जी विद्वानों का नाम देवता मानते हैं। स्वामी जी देवता शब्द से चेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार के पदार्थों का ग्रहण मानते हैं।

१६० (प्रश्न)—"अथाकार चेतनं देवतानामित्यादिनिरु० दैवत० पा० २" इसमें यास्क ने जड और चेतन दोनों को वेद से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहां पर श्रुति में विरोध होगा। वहां दोनों श्रुतियों का कथन सत्य स्वीकार किया जावेगा। यहां पर भी सूर्य्य आदि ग्रह मंडल जड और इन के अधिष्ठातृ देव चेतन हैं। पृ० २४२ पं० ६

उत्तर—आप यों ही विना प्रयोजन निरुक्त आदि के लंबे-लंबे पाठ दर्ज करदेते हैं। हम स्वयं मानते हैं कि देवता दो प्रकार के होते हैं। बत्तीस देवता जड तथा जीवात्मा परमात्मा विद्वान् देवता चेतन हैं। वेदों में परस्पर विरोध नहीं है। यह नियम अटल है कि जिस पुस्तक में व्याघात दोष अर्थात् परस्पर विरोध हो वह पुस्तक प्रमाण के योग्य नहीं होती। विकल्प अर्थात् दोनों पक्ष तभी सत्य माने जाते हैं यदि उनका अधिकरण एक न हो यहां चेतन तथा अचेतन देवताओं का अधिकरण एक नहीं है अतः विरोध ही नहीं है 'इन के अधिष्ठातृ देव चेतन हैं" यह निरुक्त के किस पाठ का अर्थ है। आपको झूठ बोलते ज़रा भी शर्म नहीं आती। यदि अधिष्ठातृ देव से आपका मतलब व्यापक परमात्मा से या जीवात्मा से है। तो हमें कोई ऐतराज़ नहीं। और यदि अधिष्ठातृदेव से कोई

पौराणिक कल्पित देवता मक़सद है तो उस के लिये प्रमाण चाहिये अन्यथा आपका लिखना मिथ्या ही है। हां, सूर्य्य पृथिवी आदि बत्तीस देवता जड तथा जीवात्मा परमात्मा विद्वान् चेतन। इस प्रकार से जड़ और चेतन देवता दो प्रकार के हैं। यही वेद का सिद्धान्त है इसी को उपरोक्त निरुक्त ने प्रतिपादन किया है।

१६१ (प्रश्न)—"ब्रह्मचारिणम मानते इस में ६३३३ और "त्रीणिशता" इस मंत्र में ३३३३३३३० देवता वेद ने बतलाये, स्वामी दयानन्द जी इन दोनों मंत्रों को गपोडा मानते हुए देवताओं की संख्या केवल तेंतीस लिखते हैं। पृ० २४२ पं० १२

उत्तर— स्वामी जी वेद के अक्षर 'अक्षर को सत्य मानते हैं। आप किसी ऐसी वस्तु का नाम तो लें जो तेंतीस देवता तथा एक उनका मालिक महादेव ब्रह्म इन चौंतीस से बाहर हो। इसी लिये शत पथ ने लिखा कि "महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवा इति" देवता तो तेतीस ही हैं बाकी सब इन की ही महिमा है। इस से साफ है कि चाहे देवताओं की गिनती करोड नहीं अरब भी हो वे सब तेतीस में ही आ जाती है। अतः स्वामी जी का मानना वेदानुकूल सत्य है।

१६२ (प्रश्न)—स्वामी जी मनुष्यों से भिन्न देव जाति नहीं मानते, मनुष्यों में जो लिख पढ़ गये हैं उन्हीं को आप देवता मानते हैं। पृ० २४२ पं० १७

उत्तर—बेशक तेतीस देवताओं की मानते हुवे स्वामी जी मनुष्यों में से विद्वान् योगी माता पिता आदि को देवता

मानते हैं और इस में अनेकों प्रमाण हैं (देखो नं० १८२) किन्तु आपके कपोल कल्पित आचार हीन पौराणिक देवों की हस्ती में कोई प्रमाण ही नहीं है।

१९३ (प्रश्न)—"द्विधा देवा इत्यादि" दो प्रकार के देवता हैं। एक देव योनि के देवता दूसरे मनुष्यों में देव। देव योनि के सभी देवता जन्म से विद्वान् होते हैं। यह शत पथ का कथन है। इस में से विद्वा ꣳसो हि देवाः" श्रुति के इस छोटे से टुकड़े को चुरा कर विद्वानों को देवता लिखते हैं।

पृ० २४२ पं० २०

उत्तर—प्रथम तो आपने इस प्रमाण का पता नहीं लिखा कि कहां का यह पाठ है। दूसरे आपने इस के अर्थ भी मनमाने किये हैं। भला आप बतलावें आपने "योनि" और "जन्म" से यह अर्थ किन शब्दों का किया है। और यह कहां लिखा है कि देव योनि वाले ही विद्वान् होते हैं। लीजिये हम इस का ठीक २ अर्थ करते हैं:—

द्विविधा देवा देवदेवा मनुष्यदेवाश्च
विद्वाꣳसो हि देवा।

भाषार्थ—देव दो प्रकार के होते हैं। देव देव तथा मनुष्य देव। विद्वान् ही देव होते हैं।

फरमाइये इस सारे पाठ के अर्थ में कौन सी बात स्वामी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध है। स्वामी जी ने विस्तार भय से प्रकरणानुसार जितनी ज़रूरत थी उतना पाठ दे दिया। चोरी तो आप ने की है कि प्रमाण का ठिकाना ही नहीं दिया।

विशेष प्रमाण देखिये (नं० १८२)

१६४ ( प्रश्न )—इसी प्रकार दैत्य, गन्धर्व और अप्सरा प्रभृति देव योनियों के वेद ने जाति भेद माने हैं। स्वामी दयानन्द जी की दृष्टि में ये सब मनुष्य ही हैं। पृ० २४२ पं० २७।

उत्तर—बेशक, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, देव ये सब देश गुण नाम के कारण मनुष्य जाति के ही भेद हैं। इन की पशु-पक्षीवत् भिन्न जाति नहीं है। वेद में एक शब्द भी ऐसा नहीं मिलता जो इन को भिन्न जाति वर्णन करता हो। आप के पुराणों से भी इन सब का एक जाति होना सिद्ध होता है। इन्द्र, धर्म, वायु ने कुन्ती से, अश्विनी कुमारों ने माद्री से अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम तथा नकुल-सहदेव पैदा किये तथा विश्वामित्र आदि ने मेनका आदि में शकुन्तला आदि को पैदा किया। देवों की स्त्रियों से मनुष्यों का तथा मनुष्यों की स्त्रियों से देवों का भोग विलास सन्तानोत्पत्ति आदि व्यवहार होना लिखा है। अतः देव तथा मनुष्य जाति एक है। केवल कर्म भेद ही है। रावण राक्षस सीता को रानी बनाना चाहता था तथा शूर्पणखा राम मनुष्य को पति बनाना चाहती थी, भीम मनुष्य ने हिडम्बा राक्षसी में घटोत्कच पैदा कर लिया। अतः मनुष्य और दैत्य जाति एक ही हुई। गन्धर्वों के साथ दुर्योधन की लड़ाई हुई। गन्धर्वों ने दुर्योधन को स्त्रियों समेत कैद कर लिया पांडवों ने छुड़ाया। अतः गन्धर्व तथा मनुष्य जाति एक हुई। इस के अतिरिक्त देव, गन्धर्व, दैत्य, मनुष्य, अप्सराओं का विवाहों, स्वयम्बरों, युद्धों, बरातों जंगलों में एक स्थान में निवास, खान-पान नृत्य-गीत युद्ध-यात्रा आदि अनेक व्यवहार सम्मिलित पुराणों में पाये

जाते हैं। इस से सिद्ध है कि ये सब मनुष्य जाति के ही गुण देश नाम के कारण भेद हैं। इन की जाति भिन्न नहीं है।

---

## स्वामी दयानन्द और देवजाति

१६५ (प्रश्न)—स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में इन्द्र यम वरुण सोम मरुत् जल वनस्पति श्री भद्रकाली वास्तुपति देवताओं को एक एक ग्रास का भोग लगाना लिखते हैं। इस से साबित है कि स्वामी जी देवजाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते हैं। पृ० २५ पं० ४

उत्तर—स्वामी जी ने न तो इन को देवता लिखा है। और न इनको भोग लगाना लिखा है। अपितु इन मंत्रों से पत्तल पर भोजन के भाग रख कर अतिथि को खिलाना तथा अग्नि में होम करना लिखा है। और ये उपरोक्त नाम वाले पदार्थ तेंतीस देवता तथा चौंतीसवां इनका स्वामी ब्रह्म इन से बाहर भी नहीं है। इस से साबित है कि स्वामी जी इन चौंतीस और मनुष्य योनि से भिन्न कोई देव योनि नहीं मानते इस विषय में विशेष देखें ( नं० १५१ )

१६६ (प्रश्न)—नाम करण संस्कार में स्वामी जी ने सोलह तिथियों के सोलह देवता और सताईस नक्षत्रों के सताईस देवता लिखे हैं। इस से सिद्ध है कि स्वामी जी देवता जाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते थे। पृ० २५ पं० २१

उत्तर—ये तो तिथि और नक्षत्रों के देवता लिखे हैं। ये तिथि और नक्षत्रों के दूसरे नाम हैं। जोकि इनके द्योतक

( प्रकाशक ) होने के कारण इन के देवता कहाते हैं। ये इन तिथि और नक्षत्रों को प्रकट करने के लिये सांकेतिक नाम हैं। इस प्रकार के सांकेतिक नामों का व्यवहार प्रत्येक भाषा और प्रत्येक जाति में पाया जाता है। उदाहरणार्थ इस समय भी वायसराय की तरफ से जो विलायत को तार भेजे जाते हैं वे साधारण तारों की भांति नहीं होते अपितु उनमें वाक्यों के लिये अंक नियत हैं। जिन को या वायसराय जानते हैं या वज़ीरेहिन्द जानते हैं। और लोग नहीं जानते। इनका व्यवहार प्रायः प्रबंध कार्यों में या फौजों में युद्ध के समय होता है। इनको अंगरेज़ी में "कोडवर्ड" कहते हैं। ऐसे ही सिक्खों में चनों को बादाम, प्याज़ को रूपा प्रसाद, मिर्चों को लड़ाकियां' बासी रूटी को मिठा परशादा, दूध को समुद्र, घी को पंजवां' इत्यादि अनेक सांकेतिक नाम हैं जो उन वस्तुओं के द्योतक होने से देवता कहे जा सकते हैं। जैसे संस्कृत साहित्य में चांद सूर्य्य से एक का, चक्षु से दो का, राम से तीन का, वेद से चार का, इंद्रिय से पांच का, अंग से छे का, मुनि से सात का, वसु से आठ का, अंक से नौ का बोध होता है। ये नाम भी अंकों के द्योतक होने से उनके देवता कहा सकते हैं। ऐसे ही तिथि और नक्षत्रों लिये भी कर्म कांड में उनके दूसरे सांकेतिक नाम नियत हैं। जिन को तिथि तथा नक्षत्रों का द्योतक होने से उनके देवता कहते हैं। जैसा कि गोभिलीय गृह्य सूत्र में प्रपाठक २ काण्डिका ८ के सूत्र नं १२ की टीका में श्रीचन्द्रकान्त तर्कालंकार लिखते हैं कि—

अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति ॥ १२ ॥ (गोभिलीयं प्र० ५ का० ८) पृ० ३८४ पं० १२

तत्र तिथयः प्रतिपदाद्याः। तासां देवताश्चामावस्यापर्य्यन्तानां ब्रह्म, त्वष्ट्र, विष्णु, यम, सोम, कुमार, मुनि, वसु पिशाच, धर्म्म, रुद्र' वायु, मन्मथ, यक्ष, पितरः। पौर्णमास्यास्तु विश्वे देवाः। (पृ० ३८५ पं० ३)

नक्षत्र देवताश्च यथा क्रमम्, अश्वि, यम, अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, वृहस्पति सर्प, पितृ, भग, अर्य्यमन्, सवितृ, त्वष्टृ, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, निऋति, अप, विश्वेदेवा, विष्णु, वसु, वरुण, अजपाद्, अहिर्बुध्न, पूषाणः' (पृ० ३८६ पं० ७)

गोभिल गृह्य सूत्रम्। श्री चन्द्रकान्त तर्कालंकार कृत भाष्य सहितम् कलिकाता राजधान्यां वाम्रिस्तभिषग यन्त्रे मुद्रितम्। शकाः १८०२

तैत्तरीय संहिता में भी नक्षत्रों तथा उन के देवताओं का वर्णन इस प्रकार से आता है—

कृत्तिका नक्षत्र मग्निर्देवता·····रोहिणी नक्षत्रं प्रजापति र्देवता मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवता र्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसु नक्षत्र मदिति र्देवता तिष्योनक्षत्रं वृहस्पति र्देवता श्लेषा नक्षत्रं सर्पोदेवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फाल्गुणी नक्षत्रम् ॥ १ ॥ अर्यमा देवता फल्गुनी नक्षत्रं भोगो देवता हस्तो नक्षत्रं सविता देवता चित्रा नक्षत्र मिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षत्र मिन्द्राग्नी देवतानुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता रोहिणी नक्षत्र मिन्द्रो देवता विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता अषाढ़ा नक्षत्र मापो देवता ऽषाढ़ा नक्षत्रं विश्वे-

देवा देवता श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता अविष्ठा नक्षत्रं वसवः ॥ २ ॥ देवता शतभिषङ्नक्षत्र मिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्र महिर्बुध्न्यो देवता रेवतीनक्षत्रं पूषा देवता श्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवताय भरणी नक्षत्रं यमो देवता ॥ ३ ॥

तैत्तरीय संहिता भाष्ये वेदार्थ प्रकाशे कां० ४ प्र० ४ अ० १० पृ० ४८१-४८२ । कलकत्ता १८८१ ।

इसी को ही स्वामी जी ने अपनी संस्कार विधि में लिखा है । अतः ये सिद्ध है कि ये तिथि तथा नक्षत्रों के द्योतक दूसरे नाम होने से देवता कहाते हैं । और कोई विशेष बात नहीं है इस से साबित है कि स्वामी जी उन तेतीस देवता चौंतीसवां उन का स्वामी ब्रह्म तथा विद्वानों के सिवाय देव-जाति को कोई भिन्न जाति न मानते थे ।

## वेदोत्पत्ति

१६७ (प्रश्न)—वेदों की उत्पत्ति वैदिक साहित्य में ब्रह्म से मानी है । इस विषय में वेद का सिद्धांत यह है कि उस निराकार ब्रह्म ने ब्रह्मा शरीर धारण किया, ब्रह्मा ने अपने मुख से ऋषियों को वेदों का उपदेश दिया । पृ० २४३ पं० १ ।

उत्तर—वेद ने परमात्मा को "अकाय" वर्णन किया है । वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो परमेश्वर को शरीर-धारी वर्णन करता हो । परमात्मा सर्व व्यापक होने से सब के हृदयों में विराजमान है । अतः परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों श्री अग्नि, श्री वायु, श्री आदित्य, श्रीअङ्गिरा

के हृदयों में चारों वेदों का प्रकाश कर दिया। उन्हों ने आगे ब्रह्मादि ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया। यही वैदिक सिद्धांत है।

१६८ (प्रश्न)—स यथार्द्रेन्धनाग्ने रित्यादि शत० १४। ५।४।१०" इस से सिद्ध है कि वेदों का प्रादुर्भाव ब्रह्म से ही हुआ है। पृ० २४३ पं० ४।

उत्तर—यद्यपि आपने वेद प्रमाण देने की प्रतिज्ञा कर के शतपथ का प्रमाण लिख दिया, क्या शतपथ वेद है? और क्या इस प्रकार का धोका ईमानदारी में शामिल है? तथापि यह ठीक है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु इस प्रमाण में यह कहां लिखा है कि परमेश्वर ने ब्रह्मा शरीर धारण कर के वेदों को पढ़ाया। यदि श्लोक, सूत्र आदि सारे ही ब्रह्म से हुए तो फिर वेदों में दूसरे ग्रन्थों की निस्बत क्या विशेषता है। अतः आप ने इस का अर्थ ठीक नहीं किया। इस का ठीक २ अर्थ इस प्रकार से है—

सयथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमाविनिश्च—
रन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमे
तद्यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाँगिरस इति—
हासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्य—
नुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वा—
णि निश्वसितानि ॥ शत० १४।५।४। १० ॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूवां उठता है और वह धुवां चारों तरफ फैलता है। वैसे ही उस महान् सत्य स्वरूप परमात्मा से निश्वास की भांति सहज

से यह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के ज्ञान द्वारा पुराण, इतिहास, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान आदि विद्या इस से ही ये सब प्रकट हुईं।

इस से सिद्ध हुआ कि संसार की सारी विद्याओं का आदि स्रोत वेद ही है।

१६६ (प्रश्न)–'तस्माद्यज्ञादित्यादि यजु० ३१। ७' जिस यज्ञ भगवान् का सब से प्रथम उत्पन्न होना 'तं यज्ञं' इस मंत्र में लिखा है उसी ईश्वर से ऋग्वेद, सामवेद, गायत्री आदि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुए। पृ० २४३ पं० १३

उत्तर—परमात्मा का पैदा होना वेदों में एक भी मंत्र प्रतिपादन नहीं करता। क्योंकि परमात्मा अजन्मा, अजर, अमर है। "तं यज्ञं यजु० ३१। ६" में परमात्मा का पैदा होना नहीं लिखा अपितु ऋषियों से परमात्मा का पूजा जाना वर्णन किया है। यज्ञ शब्द का अर्थ भी पूजनीय है। जब वेदों में गायत्री आदि छन्द हैं तो फिर गायत्री आदि छन्दों का पदा होना पृथक् लिखना व्यर्थ होने से छन्द शब्द से अथर्व वेद का ग्रहण है। मंत्र का ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥
(यजु० ३१)

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम को चाहिये कि उस पूर्ण अत्यन्त पूजनीय जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से ऋग्वेद सामवेद उत्पन्न होते उस परमात्मा से अथर्ववेद उत्पन्न होता और उस से यजुर्वेद उत्पन्न होता है। उसको जानो ॥७॥

इस से सिद्ध हुआ कि चारों वेदों को उस निराकार अजन्मा परमात्मा ने संसार के उपकारार्थ प्रकट किया।

२०० (प्रश्न) "ऋचः सामानि इत्यादि अथर्व० ११। ७। १। २४" प्रलय काल में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक् साम अथर्व और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए।

पृ० २४३ पं० २०।

उत्तर—आप ने आधे मंत्र का अर्थ ही छोड़ दिया क्योंकि उस से परमात्मा की व्यापकता सिद्ध होकर परमात्मा निराकार साबित होते हैं। देखिये मंत्र का अर्थ इस प्रकार से है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टा ज्जज्ञिरे सर्वेदिवि देवा दिविश्रितः॥

अथर्व० ११। ७। २४॥

भाषार्थ—ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद सहित अथर्ववेद और पुरातनवृत्तान्त यह सब और आकाश में वर्तमान सूर्य्य के आकर्षण में ठैरे हुवे सब गतिमान लोक शेष रहने वाले परमात्मा से उत्पन्न हुवे॥ २४॥

ये सब उपरोक्त पदार्थ उस व्यापक निराकार परमात्मा से पैदा हुवे।

२०१ (प्रश्न)—"ब्रह्मज्येष्ठा इत्यादि अथर्व० १६।२३।३०" इस मंत्र में "प्रथम ब्रह्म ने ब्रह्मावतार धारण किया" यह वर्णन है॥ पृ० २४४ पं० ५।

उत्तर—इस मंत्र में परमात्मा के ब्रह्मावतार का धारण नाम मात्र भी नहीं है। अपितु इस में परमात्मा की उत्कृष्टता दिखलाई गई है। पूरा मंत्र और अर्थ देखो (नं० ३१)

२०२ (प्रश्न)—"योब्रह्माणं विदधाति पूर्वं श्वेताश्वेतर ६।१८" यहां पर परमात्मा के दो रूप माने हैं। एक ब्रह्म निराकार और एक ब्रह्मावतार इस कारण यह कहा गया कि उस निराकार और ब्रह्म ही की कृपा से ब्रह्मा के अंतः करण में वेद आये। पृ० २४४ पं० १४।

उत्तर—प्रथम तो यह प्रमाण वेद का नहीं हैं अपितु उपनिषत् का है। अतः वेद प्रमाण की प्रतिज्ञा करके उपनिषत् का प्रमाण देना प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आकर पराजय प्राप्त करना है। तथापि इस पाठ में कहीं भी ब्रह्म के दो रूप नहीं लिखे और न कहीं ब्रह्मावतार का वर्णन है। मंत्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है—

यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोतितस्मै।
तं ह देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेताश्वे० ६।१८)

भाषार्थ—जो परमात्मा सृष्टि आरंभ में ब्रह्मा को पैदा करता है। और जो उस ब्रह्मा के लिये वेदों को भेजता है। मैं मोक्ष की इच्छा करने वाला उस आत्मा में बुद्धि का प्रकाश करने वाले देव की शरण में जाता हूं।

यहाँ पर ब्रह्मावतार का लेश मात्र भी नहीं है। अपितु 'परमात्मा ने ब्रह्मा के लिये अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा द्वारा वेद भेजे' ऐसा साबित होता है। परमात्मा ने आदि में चार ऋषियों पर वेद प्रकाशित किये एक पर नहीं जैसा कि 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' योग० समाधि० सू० २६॥ वह ईश्वर प्रथम उत्पन्न होने वालों का भी गुरु है क्यों

कि वह नाश रहित है। यहां 'पूर्वेषाम्' पद से साबित है कि वेद का प्रकाश चार पर हुआ यदि एक पर होता तो 'पूर्वस्य' पद यहां होता।

२०३ (प्रश्न)—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः इत्यादि मुण्डकोपनिषत्' यहां पर ब्रह्मा द्वारा ही सृष्टि के आरंभ में वेदों का प्रकाश हुआ ऐसा लिखा है। पृ० २४५ पं० १।

उत्तर—आपने आरंभ में प्रतिज्ञा की थी कि वेद का प्रमाण देंगे। अब मुण्डन का प्रमाण दे दिया यद्यपि मुण्डकोपनिषत् वेद नहीं है तथापि इस पाठ में न तो सृष्टि के आरंभ का वर्णन है। और न ही ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों के प्रकट होने का जिकर है। यहां तो एक ब्रह्मा नाम ऋषि ने अपने पुत्र को पढ़ाया इत्यादि वर्णन है। हम पूरा पाठ और अर्थ नीचे दर्ज करते हैं।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥१॥ अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्म विद्या। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥

(मुण्डकोपनिषत् प्रथम मुण्डके १–२)

भाषार्थ—ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध ब्रह्म विद्या के उपदेश द्वारा सब का उत्पादक संसार का रक्षक ब्रह्मा नामक ऋषि उत्पन्न हुआ। उसने अथर्वा नामक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या का उपदेश किया ॥१॥ पहिले अथर्वा को जिस विद्या का ब्रह्मा ने उपदेश किया अथर्वा ने

अङ्गिरा ऋषि के लिये उस ब्रह्म विद्या को कहा उस ने भारद्वाज गोत्र वाले सत्यवाह को और सत्यवाह ने अङ्गिरा ऋषि को मर और अवर विद्या का उपदेश किया ॥२॥ बतलाइये इस में चारों वेदों के प्रादुर्भाव का वर्णन कहां है ?

२०४ (प्रश्न)—ईश्वर का ज्ञान अग्नि, वायु, रवि इन ऋषियों के अन्तः करण में आया। तब इनहों ने अपने मुंह से जो कहा वही वेद है। चोखी रही संभव है ऋषियों ने अपने ही तरफ से कुछ कहा हो उनके अंतःकरण में ईश्वरीय ज्ञान आया इसका क्या सबूत। पृ० २४७ पं० १।

उत्तर—संसार में कोई मनुष्य बिना पढ़ाने वाले के अपने आप ज्ञानी वा विद्वान् नहीं बन सकता। यदि अपने आप विद्या आजावे तो अफरीका के हबशी भी एम० ए० हो जावें किन्तु ऐसा नहीं होता। सृष्टि के आरंभ में जो चार ऋषि हुये उनहें अपना कोई ज्ञान न था क्यों कि उस समय उन को ज्ञान देने वाला सिवाय परमात्मा के और कोई न था अतः उन के अंतः करण में जिस ज्ञान का प्रकाश हुआ वह ईश्वर का ही ज्ञान था, ऋषियों का अपना ज्ञान न था। ऋषि तो ग्रामो फोन के रिकार्ड की भांति निमित्त मात्र ही थे अतः आपकी शंका सर्वथा निर्मूल है। और यही शंका आपके सिद्धान्त पर भी की जा सकती है। क्यों कि इस में कोई सबूत नहीं कि ब्रह्मा ईश्वर के अवतार थे। संभव है किसी चालाक आदमी ने अपना नाम ब्रह्मा रखकर और अपने को ईश्वर का अवतार बताकर मनमाना ज्ञान वेद के नाम से सनातनियों के गले मढ दिया हो। भला एक और बात

तो बतलावें कि हम तो कहते हैं चार वेद चार ऋषियों पर प्रकट हुवे। आप कहते हैं कि चारों वेद चार मुख वाले आठ हाथों वाले ब्रह्मा पर प्रकट हुवे इस में फर्क क्या हुवा सिर्फ इतना ही न कि आप ने चार आदमियों को जोड़ कर एक बना दिया और हमने चार पृथक् २ रक्खे। जिस में हमारा कहना संभव तथा सत्य है तथा आपकी कल्पना असंभव और असत्य है।

२०५ (प्रश्न)—मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण दयानंद की दृष्टि में बहुत पश्चात् बने इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि वेदों के प्रादुर्भूत काल में वह ज्ञान ईश्वरीय समझ लिया गया हो क्यों कि उस समय कोई ग्रंथ साक्षी देने वाला नहीं था। पृ० २४७ पं० ५।

उत्तर—सृष्टि के आरंभ में चार ऋषियों की ओर से चारों वेदों के ज्ञान का प्रादुर्भूत होना उस ज्ञान के ईश्वरीय होने का स्वयं सबूत है। क्यों कि उस समय कोई ईश्वर के बिना ज्ञान दाता था ही नहीं अपने आप ज्ञान होता नहीं। सृष्टि के आरंभ के लोग इस बारे में स्वयं साक्षी थे। और उन की साक्षी से शतपथ और मनु ने लिखा जो कि वेदानुकूल और संभव होने से हमें प्रमाण हैं। और यही सवाल तो आप पर भी हो सकता है क्योंकि उपनिषत् भी आरंभ सृष्टि में न थे और किसी ग्रंथ की साक्षी के बिना ब्रह्मा के ज्ञान को भी ईश्वरीय न समझा गया हो यह भी संभव है। अतः यह युक्ति किसी दुरुस्त दिमाग़ से निकली प्रतीत नहीं होती।

२०६ ( प्रश्न )—"ब्रह्मज्येष्ठा" इस मंत्र ने जो वेद में ब्रह्मा का अवतार बतलाया 'यो ब्रह्माणम्' इस श्रुति में ब्रह्मा के अंतःकरण में वेदों का आगमन बतलाया। इसी प्रकार मुंडकोपनिषत् ने ब्रह्मा का अवतार और ब्रह्मा के ज़रिये से संसार में जो वेदों का आगमन बतलाया इन सब श्रुतियों को तो स्वामी दयानन्द जी चाट गये केवल मनु और शतपथ से ऋषियों द्वारा वेद आगमन मानते हैं। पृ० २४७ पं० ६।

उत्तर—'ब्रह्मज्येष्ठा' में न तो ईश्वर के ब्रह्मा अवतार का वर्णन है। और न ब्रह्मा पर वेदों के प्रकाश का ज़िकर है। अपितु ईश्वर की उत्कृष्टता का वर्णन है 'योब्रह्माणम्' इस में यह वर्णन है कि 'परमात्मा ने पहले ब्रह्मा को बनाया फिर उस के लिये वेद भेजे' वेद कैसे भेजे इसका कोई वर्णन नहीं, यदि आप कहें हृदय में प्रकाशित किये तो भेजना शब्द उसके लिये मौज़ूं नहीं। इस लिये हमारा ही पक्ष ठीक है कि अग्नि आदि चार ऋषियों के द्वारा ही ब्रह्मा को चारों वेद प्राप्त करवाये या भेजे। फिर जब ब्रह्मा स्वयं ही ईश्वर थे तो फिर यह बात क्या बनी कि ईश्वर ने ब्रह्मा के लिये वेद भेजे इस से तो ब्रह्मा ईश्वर के अवतार सिद्ध नहीं होते। अब रही बात मुण्डकोपनिषत् की। सो यहां पर जिन ब्रह्मा जी का वर्णन है वह आपके सृष्टि के आरंभ वाले ब्रह्मा प्रतीत नहीं होते क्योंकि सृष्टि के आरंभ वाले आपके अवतार ब्रह्मा के पुत्रों की गणना जहां पुराणों में है वहां अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, ऋतु, वसिष्ठ, वोढ, कपिल, आसुरि, कवि, शंकु, शंख, पंचशिख, प्रचेता, ( ब्रह्मवै० ख० ४ अ० ३०।३३-३४ ) आदि नाम तो ब्रह्मा के पुत्रों के आते हैं किन्तु अथर्वा

नाम ब्रह्मा के पुत्र का कहीं नहीं आता, इस से पता लगा कि यह सृष्टि के आदि वाले वेदों के निर्माता पौराणिक ब्रह्मा न थे। अपितु यह कोई और ब्रह्मा थे जिन्हों ने अपने पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या पढ़ाई। अतः आप कोई ऐसा प्रमाण पेश नहीं कर सके जिस से ब्रह्म का सृष्टि के आदि में पैदा होना तथा उसका वेद कथन करना सिद्ध हो सके। और हमारे पास हैं प्रमाण—

(क) अग्ने ऋग्वेदो वायो र्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः॥
(शत० ११।५।८।३)

(ख) यदथर्वाङ्गिरसः स य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसो अहरहः स्वाध्यायमधीते। (शत० ११।५।६।७)

(ग) अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥
(मनु० १।२३)

(घ) श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
(मनु० ११।३३)

भाषार्थ—(क) अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य्य से सामवेद प्रकट हुवे (ख) जो अथर्ववेद वाला अंगिरा मुनि वह जो इस प्रकार से जानता है कि अथर्वाङ्गिरा हमेशा स्वाध्याय करता है। (ग) ब्रह्मा ने अग्निवायु रवि से तीनों सनातन वेद ऋग्, यजु, साम लक्षण वाले यज्ञ की सिद्धि के लिये प्राप्त किये। (घ) बिना किसी संदेह के अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुई अथर्ववेद की श्रुतियों का पाठ करे। अब आप स्वयं न्याय पूर्वक सोचें कि आप का पक्ष कितना निर्बल और स्वामी जी का पक्ष कितना प्रबल है।

२०७ (प्रश्न)—स्वामी जी की दृष्टि में मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण जिसको स्वामी दयानन्द जी ने पुराण माना है। ये दोनों ही ग्रन्थ स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं। किंतु "अग्निवायुरविभ्यस्तु" इत्यादि मनु के प्रमाण और "अग्नेर्ऋग्वेदः" इत्यादि शतपथ के प्रमाण की वेदानुकूलता पाई नहीं जाती। फिर स्वामी दयानन्द जी ने इन दो प्रमाणों को स्वतः प्रमाण कैसे माना। पृ० २४७ पं० १४।

उत्तर—प्रथम आप ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं और श्लोक ग्रन्थों को भी वेदवत् ब्रह्म से ही प्रगट हुआ मानते हैं। इस से शतपथ और मनुस्मृति आप के लिये तो दोनों ही स्वतः प्रमाण हैं, आपको ननुनच करने का क्या हक् है। दूसरे आप इन दोनों प्रमाणों के साथ वेद का विरोध नहीं दिखा सके, यदि आप वेद से ब्रह्मावतार द्वारा वेदों का प्रकट होना सिद्ध कर देते तो यह दोनों प्रमाण वेद विरुद्ध होने से न मानने के योग्य हो जाते, किंतु ऐसा करने में आप कृत कार्य्य नहीं हुए अतः विरोधाभाव में विधान वेदानुकूल होने से प्रमाण है।

तीसरे इस विषय में वेद स्वयं भी इसकी ताईद करते हैं जैसे:—

अग्नि से ऋग्वेद—अग्निं मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्न धातमम् ऋ० १।१।१।
अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः।
ऋ० ९।६६।२०।

वायु से यजुर्वेद—इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठ तमाय कर्मणे इत्यादि यजु०१।१

आदित्य से सामवेद—अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये
इत्यादि। साम० १।१।१।१।१।
अग्निर्वार्कः। शत० २।५।१।४।

अङ्गिरा से अथर्व वेद—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पति बंला तेषां तन्वोऽद्यदधातु मे। अथर्व० १।१।१।

अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। अथर्व० १०।७।२०।

भाषार्थ—मैं उस अग्नि की स्तुति करता हूं जो पुरोहित तथा यज्ञ का ऋत्विज देव है तथा होता है। और वेद रूप रत्न का धारण करने वाला है। जो पवित्र सब मनुष्यों का पुरोहित है, वह ऋषि अग्नि है। वह श्रेष्ठ कर्मों के लिये देव हमारा ज्ञान दाता वेद विज्ञान के बल के लिये वायु उपस्थित है। हे अग्नि तू हम को वेद वाणी का दान करने के लिये आ। यहां अग्नि नाम सूर्य का है। वाचस्पति वेद वाणी का धारण करने वाला है। अङ्गिरा का अथर्व वेद मुख्य है।

अर्थात् जिस ऋषि पर ऋग्वेद प्रकाशित हो उस का नाम अग्नि और जिस पर यजुर्वेद प्रकाशित हो उस का नाम वायु, जिस पर साम वेद प्रकट हो उस का नाम आदित्य और जिस पर अथर्ववेद प्रकाशित हो उस ऋषि का नाम अङ्गिरा है।

शतपथ तथा मनु के प्रमाण उपरोक्त वेद मन्त्रों के अनुकूल होने से प्रमाण करने के योग्य हैं।

२०८ ( प्रश्न )—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव' ब्रह्मा सब देवताओं से प्रथम प्रकट हुआ, मनु के प्रथम अध्यायानुकूल आदि में अयोनिज ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है, फिर

वे चार ऋषि आये कहां से। इन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा ने वेद पढ़ा। इस का लेख वेद, धर्म शास्त्र, पुराण, इतिहास किसी में भी नहीं है। पृ० २४७ पं० २२।

उत्तर—हम यह साबित कर आये हैं कि 'ब्रह्मा देवानाम्' इत्यादि मुण्डक में जिस ब्रह्मा का वर्णन है। वह पौराणिक चतुर्मुख अष्ट भुज अवतार ब्रह्मा न थे। अपितु वह अन्य ब्रह्मा थे क्यों कि पौराणिक ब्रह्मा के पुत्रों में कहीं भी अथर्वा का नाम पुराणों में नहीं आता। अतः अथर्वा के पिता ब्रह्मा चतुर्मुख ब्रह्मा से भिन्न थे और वह सृष्टि की आदि में भी नहीं हुवे। यहां पर आदि का अर्थ श्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध है अर्थात् "विद्वानों में प्रसिद्ध ब्रह्मा नाम ऋषि हुए।" रही मनु के प्रथम अध्याय की बात वहां भी सृष्टि के पैदा करने वाले चतुर्मुख पौराणिक ब्रह्मा नहीं हैं। अपितु ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा हैं। जैसा कि—

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः सपुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥ (मनु० १।११)

भाषार्थ—जो वह सदा सदात्मक, नित्य, अप्रकट, कारण अर्थात् सूक्ष्म प्रकृति है उस के सहित उस व्यापक परमात्मा को ब्रह्मा कहते हैं॥११॥ उसी ने सारी सृष्टि को बनाकर आरम्भ में—

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये। (यजु० ३१।९)
देवा योगिनः कपिलादयश्चसाध्याश्च अपरे ऋषयः।
(उवट भाष्य)

भाषार्थ—योगी कपिलादि मनुष्य और ऋषियों को पैदा किया। यही बात मनुस्मृति कह रही है कि—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत् प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम्॥ (मनु० १।२२)

भाषार्थ—उस परमात्मा ने कर्मशील देवों को और मनुष्यों की अल्प संख्या तथा सनातन यज्ञ को पैदा किया ॥२२॥ इन सृष्टि की आदि में पैदा होने वालों में अग्नि आदि चार ऋषि और ब्रह्मा भी थे। तब परमात्मा ने ब्रह्मा को इन चार ऋषियों के द्वारा चार वेद प्राप्त करवाये और ब्रह्मा ने प्राप्त किये। यह तो वेद तथा धर्म शास्त्र का प्रमाण है। अब पुराण इतिहास का प्रमाण भी सायणाचार्य्य की सम्मति सहित उपस्थित है। जरा पढ़िये—

जीव विशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् 'ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्याद् ( ऐतरे० ब्रा० ५।३२ ) इति श्रुतेरीश्वरस्याग्न्यादि प्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम्॥

( सायण भाष्य भूमिका पृ० ३ संग्रह पृ० ५ पं०४ )

भाषार्थ—अग्नि, वायु, आदित्य, विशेष जीवों से वेदों के पैदा होने से ऋग्वेद ही अग्नि से पैदा हुआ, यजुर्वेद वायु से, सामवेद आदित्य से, ऐसा श्रुति होने से ईश्वर के अग्नि आदि के प्रेरक होने से, ईश्वर में वेदों का निर्माण जानना चाहिये। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि चारों वेद चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा प्रकट नहीं हुए। अपितु अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा परमात्मा ने प्रकट किये और उन के द्वारा ही ऋषि ब्रह्मा को प्राप्त कराये।

२०६ (प्रश्न)—मनु और शतपथ इन दोनों में अग्नि, वायु, रवि इन तीन का नाम आता है। यह चौथा अङ्गिरा कहां से कूद बैठा। पृ० २४७ पं० ३०।

उत्तर—चौथे वेद अथर्व के साथ प्रायः अङ्गिरा का स्वयं

ही नाम आता है अतः इन तीन के साथ उस का नाम नहीं दिया गया। और शतपथ तथा मनु में भी नाम मौजूद है। ( देखो नं० २०६ ) और आप ने अपने पुस्तक में पृ० ६७ पं० २७ में स्वयं भी लिखा है कि "अङ्गिरा ऋषि अवश्य थे" फिर अब बतलावें चौथे में क्या सन्देह है।

२१० (प्रश्न)—(१) अग्नि, वायु, रवि, अंगिरा यह ऋषि किस जमाने में हुए। (२) इनका होना वेद, धर्म्म शास्त्र, दर्शन, पुराण कहीं पर नहीं मिलता। (३) इन ऋषियों की उत्पत्ति कहां लिखी है। (४) यदि ये ऋषि थे तो इनकी माताओं का क्या नाम था। (५) और किन २ मनुष्यों के ये पुत्र थे। (६) ये किस देश में हुए। (७) इनके कितने २ भाई एवं कितनी २ बहनें थीं। (८) फिर ये किस २ के हां विवाहे गये। (९) इनके श्वसुरों और इनकी स्त्रियों का क्या क्या नाम था। (१०) तथा इन ऋषियों में से किस २ ऋषि के कितने २ पुत्र हुए। (११) इन ऋषियों के गोत्र और प्रवर क्या थे॥ पृ० २४८ पं० ४।

उत्तर—(१) सृष्टि के आरम्भ में प्रथम दिवस प्रातःकाल हुए। (२) इन का होना वेद में (देखो नं० २०७) धर्म्म शास्त्र में (देखो नं० २०६) पुराणों में (देखो नं० २०८) पर लिखा हुआ है (३) इनकी उत्पत्ति यजु० ३१। ९ में (देखो नं० २०८) लिखी है (४) अमैथुनी सृष्टि में होने के कारण इनकी गर्भ धारण करने वाली मां न थी (५) तथा नसली पिता भी न थे (६) ये त्रिविष्टिप् अर्थात् तिब्बत देश में हुए। (७) नस्लन् इनके कोई भाई बहिन न थे आत्मिक सम्बन्ध से सब पुरुष भाई तथा स्त्रियां बहनें थीं (८) ये आयु भर ब्रह्मचारी रहे, विवाह नहीं करवाया (९)

जब विवाह ही नहीं हुए तो श्वसुर और स्त्रियां कहां (१०) इन के नसली पुत्र न थे आत्मिक पुत्र सब शिष्य वर्ग थे जिन में आप के ब्रह्मा भी शामिल हैं (११) मनुष्यों के गोत्र और प्रवर इन के पीछे कल्पित किये गये हैं।

२११ (प्रश्न)—"सब्रह्म विद्याम्" मुण्डक की इस श्रुति में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को वेद पढ़ाये। और अथर्वा ने अंगिरा को अंगिरा ने सत्य वाह को वेदों का उपदेश किया यह जो क्रम वेद ने बतलाया है क्या यह झूठा है।

पृ० २४८ पं० १५।

उत्तर—यह क्रम वेद ने नहीं बतलाया उपनिषत् ने बतलाया है। उपनिषत् वेद नहीं है। इस क्रम को हम झूठा नहीं कहते किंतु यह क्रम पौराणिक चतुर्मुख ब्रह्मा का नहीं है। क्योंकि पुराणों में कहीं ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा का वर्णन नहीं है और क्योंकि प्रत्येक चार वेद वक्ता का नाम ब्रह्मा है। अतः यह क्रम किसी और ब्रह्मा का है जिस के पुत्र का नाम अथर्वा था। इससे ब्रह्मा पर वेदों का प्रकट होना सिद्ध नहीं होता।

२१२ (प्रश्न)—यह सब रचना ब्रह्मा ने की है। वही ब्रह्मा 'अग्निवायुरविभ्यस्तु' इस श्लोक में दुदोह क्रिया का कर्ता है। अर्थात् इस श्लोक में 'ऋग्यजुः साम लक्षणम्' यह कर्म है। ब्रह्मा कर्त्ता है दुदोह क्रिया है। अर्थात् 'ऋग्यजुः साम' फेल है और ब्रह्मा फाइल है एवं दुदोह मफ़ूल है। अर्थ हुआ कि 'अग्नि वायु रवि से ब्रह्मा ने वेदों को दुहा। पृ० २४६ पं० ५।

उत्तर—इस सारे संसार की रचना ब्रह्मा नाम परमात्मा ने की है जिस में अग्नि आदि तथा ब्रह्मादि ऋषि भी

शामिल हैं। 'अग्निवायु रविभ्यस्तु' इस श्लोक में ब्रह्मा कर्ता है। तथा ऋग्यजुः साम और अग्नि आदि ऋषि कर्म हैं। और दुदोह क्रिया है। दुह धातु द्वि कर्मक है तथा ण्यन्त गर्भा है। अतः अर्थ यह हुआ कि 'परमात्मा ने अग्नि वायु रवि के द्वारा ब्रह्मा को चारों वेद प्राप्त कराये'। जब आपको न संस्कृत का व्याकरण आता है न उर्दू का सरफ नहव। तो आप ख़ाह-मख़्वाह में टांग क्यों अड़ाते हैं। आपको फेल फाइल और मफूल का ही पता नहीं है। देखिये कर्ता को फाइल कर्म, को मफूल तथा क्रिया का नाम फेल है। आपने 'दुदोह' क्रिया को मफूल तथा 'ऋग् यजु कर्म को फेल लिख दिया जो क़तई उलटा है।

२१३ ( प्रश्न )—जो पदार्थ किसी पदार्थ में व्यापक होता है। वह उस में से दुहा जाता है। जैसे गौ के अंग अंग में दूध है। वह स्तनों के ज़रिये से दुह लिया जाता है। तो क्या इन तीन ऋषियों के हाड़ मांस रुधिर चमड़े में वेद व्यापक हो गया जो ईश्वर ने तीनों को पकड़ कर दुह लिया। पृ० २४६ पं० २२।

उत्तर—क़ुरबान जायें आप की दर्शन विद्या पर। यहां तो आप ने फिलासफी की टांग ही तोड़ दी। क्यों जी क्या दूध गाय के हाड, मांस, रुधिर, चमड़ा, गोबर, पेशाब सब में व्यापक है। यदि यही बात है तो आप उपरोक्त वस्तुओं को दूध के स्थान में इस्तेमाल क्यों नहीं करते। और यदि व्यापक है तो स्तनों द्वारा ही क्यों निकलता है मुख, नाक, कान, आंख, योनि, गुदा, द्वारा क्यों नहीं निकलता। जैसे खून गौ

के शरीर में व्यापक है। तो जहां ज़खम होगा वहीं से खून निकल पड़ेगा। इसी प्रकार से प्रत्येक स्थान से दूध निकलना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतः पता लगा कि दूध गौ के शरीर में व्यापक नहीं है। अपितु कुछ नाड़ियाँ दूध बनाती हैं जिन का स्तनों से संबंध है। जिन से दूध निकलता है। फिर दूध का उदाहरण ग़लत है, क्योंकि वेद ज्ञान शारीरिक वस्तु नहीं अपितु आत्मिक वस्तु है। और वह ज्ञान परमात्मा ने ऋषियों की आत्मा में व्यापक होते हुए प्रकाशित किया और उन से ब्रह्मा ने पढ़ा, इसी का नाम दोहना या प्राप्त करना है। कहिये अब भी अक़्ल ठिकाने आई या नहीं।

२१४ ( प्रश्न )—अग्नि, वायु, सूर्य्य इन पद पदार्थों में जा सूक्ष्म होके वेद के सर्वव्यापक बन गया था। उसको ब्रह्मा ने खैंच कर वेद के स्थूल रूप में कर दिया यह असली अर्थ है। पृ० २५० पं० १।

उत्तर—वेद ज्ञान है वह आत्मा का गुण है अतः वह या परमात्मा में रह सकता है या जीवात्मा में, किंतु अग्नि वायु, सूर्य्य; ये तीनों जड़ पदार्थ हैं। इन में वेद का ज्ञान सूक्ष्म होकर कैसेव्यापक बन गया था। और ब्रह्मा ने उन में से कहां से खैंचकर स्थूल रूप में कर दिया। यह फ़िलासफ़ी किस दर्शन के अनुसार है, ज़रा बतलाने की कृपा करें। वरना सोच समझ कर बात किया करें। फ़ज़ल गप्प बाज़ी से वैदिक सिद्धान्त का खंडन नहीं हो सकता। अतः मानना पड़ेगा कि अग्नि वायु सूर्य्य नाम वाले ऋषि थे जिनके द्वारा परमात्मा ने ब्रह्मा को वेद प्राप्त करवाये।

२१५ (प्रश्न)—चतुर्थ अथर्व वेद को दयानन्द जी के मत मे पता नहीं कि अब्दुल रहमान ने बनाया या डाक्टर स्मिथ ने। पृ० २५० पं० ६।

उत्तर—यह सनातन धर्म्म में ही संभव हो सकता है कि ऐरे ग़ैरे नत्थू खैरे की बनाई हुई किताब को भी वेद का दर्जा दिया जा सके। वैदिक सिद्धान्त अटल हैं। उन में मनुष्य कृत बनावटी वस्तु शामिल नहीं हो सकती। यह ठग्गी सनातन धर्म्म में ही चल सकती है कि "आग़ाखां" और "गुलाम अहमद" क़ादयानी जैसे लोग अपने आप को कृष्ण का अवतार बता कर अपनी वाणी को वेद बताकर हज़ारों हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे हैं। रही चौथे वेद अथर्व की बात सो वह अंगिरा ऋषि द्वारा परमात्मा ने ब्रह्मा को प्राप्त करवाया जिस का वर्णन शतपथ तथा मनु में मौजूद है (देखो नं० २६) तथा अथर्ववेद में स्वयं "अथर्वांगिरसो मुखम्" इन शब्दों में वर्णन मौजूद है। (देखो नं० २०७)

२१६ (प्रश्न)—जिस मनु के श्लोक को आगे रख कर तीन ऋषियों से वेदोत्पत्ति बतलाई उस के पहिले श्लोक में मनु जी कहते हैं कि ब्रह्मा ने देवता और साध्यों को पैदा किया। दयानन्द के मत में मनुष्यों से भिन्न देवता और साध्य होते ही नहीं। दयानन्द जी तो पढ़े हुए मनुष्यों को देवता एवं साध्य मानते हैं। जब हम यह श्लोक आर्य समाजियों के आगे रखते हैं कि देखो मनु ने मनष्यों की उत्पत्ति तो पहिले लिख दी और अब इस श्लोक में देवता तथा साध्यों की उत्पत्ति बतलाई गई है। इस कारण देवता तथा साध्य सृष्टि मनुष्य सृष्टि से भिन्न है। तब आर्य समाजी कहते हैं कि 'कर्मा-

त्मनाम्' यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। अत एव हम इस को नहीं मानते। जैसे 'कर्मात्मनाम्' वेदानुकूल नहीं है वैसे ही 'अग्नि वायु' यह श्लोक भी वेदानुकूल नहीं है। फिर इस को दयानन्द जी ने माना क्यों। पृ० २५० पं० ६

उत्तर—बेशक वैदिक सिद्धान्तानुसार देव साध्य, मनुष्य, राक्षस, गान्धर्व आदि सब की एक ही मनु जाति है (देखो नं० १६४) केवल देश, कर्म, नाम का भेद है 'कर्मात्मनाम्' मनु० १। २२' से पूर्व मनु में कहीं भी मनुष्यों की उत्पत्ति लिखी हुई नहीं है। आप ने यह सुफैद झूठ बोला है। यदि हिम्मत हो तो दिखलावें। वरना इस झूठ के लिये प्रायश्चित करें। और इस श्लोकका अर्थ यह है कि ब्रह्मा परमात्मा ने कर्मात्म प्राणि देव तथा साध्य पैदा किये जिन में ब्रह्मादि ऋषि भी थे। अगले श्लोक में बतलाया कि ब्रह्मा परमात्मा ने अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा चार वेद ब्रह्मा ऋषि को प्राप्त करवाये। अतः यह दोनों श्लोक वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं। और आप की सारी कल्पना निर्मूल और मिथ्या है।

२२७ (प्रश्न )—प्रजापतिर्वा इदमग्रे आसीदिति शत० ११।५।८—१से ४" इन श्रुतियों में स्पष्ट लिखा है कि तप के द्वारा प्रजापति ने तीन लोकों को बनाया। और उन तीन लोकों को तप कर अग्नि वायु सूर्य्य इन तीन ज्योतियों को बनाया। एवं इन तीन ज्योतियों को तपाकर उन से तीन वेदों को बनाया। अब पाठक विचार करें कि अग्नि वायु सूर्य्य ये तीनों ही ज्योतियां तत्व हैं या ऋषि और फिर इन ज्योतियों को तपाया है क्या वे ऋषि तपाये गये थे। पृ० २५० पं० २५।

उत्तर—यदि ऋषि न तपाये गये थे तो क्या ज्ञान शून्य जड़ तत्वों से वेद टपक पड़े थे। कभी तो बुद्धि पूर्वक विचार किया करें। यहां पर तप नाम तपाने का नहीं है अपितु ज्ञान विचार का नाम तप है। वरना वहां कोई लुहार की भट्टी थोड़ा ही थी जिसमें सब को तपाया जाता था। अपने पाठ का अर्थ भी पूरा नहीं किया हम इसका ठीक ठीक अर्थ नीचे कर देते हैं:—

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजाययेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तप्तात् त्रयो-लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥१॥ स इमांस्त्रींलोकान्मि-ततप। तेभ्य स्तप्तेभ्य स्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्नि र्योऽयंपवते सूर्यः ॥२॥ स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यमितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्ने ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ॥३॥ स इमांस्त्रीन् वेदानमितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्य स्त्रीणिशुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुवइति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात् तद्दाग्वेदेनैव होत्र-मकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवं सामवेदेनोद्गीथं यदेव त्रय्यै विद्यायै शुक्रं तेन ब्रह्मत्वमथोच्चक्राम ॥४॥

(शत० ११।५।८। १ से ४)

भाषार्थ—यह एक ही प्रजापति पहिले था उसने सोचा कि मैं प्रजा के सहित हो जाऊं। उस ने ज्ञान पूर्वक प्रयत्न किया। उस ज्ञान तथा यत्नसे उसने तीन लोक बनाये पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौ ॥१॥ उसने इन तीन लोकों को रचा, इन तीन लोकों के रचने पर उसने संसार को ज्ञान से प्रकाशित करने के लिये तीन प्रकाशमान् ऋषि पैदा किये अग्नि वायु सूर्य्य ।२॥

उसने इन तीन ज्योतिमान् ऋषियों को ज्ञान दिया उनके ज्ञान वान् होने पर तीन वेद प्रकाशित हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद ॥३॥ उसने इन तीन वेदों को प्रकाशित किया उन के प्रकाशित होने पर तीन शक्तियां पैदा हुईं भूः ऋग्वेद से भुवः यजुर्वेद से स्वः सामवेद से सो ऋग्वेद से ही होता हवन करता है। यजुर्वेद से अध्वर्यु, घी का हवन करता है सामवेद से मंगल गाया जाता है और इन तीनों विद्याओं से ज्ञानवान् हो कर ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥४॥ अब बतलावें यहां तीन ज्योतियां तत्त्व हैं या ऋषि, क्या ज्ञान तत्त्वों को दिया जा सकता है और क्या तत्त्वों से वेदों का ज्ञान प्रकाशित होना संभव है।

२१८ (प्रश्न)—अभी ब्रह्मलोक में बैठे हुवे प्रजापति ब्रह्मा ब्रह्मांड की रचना कर रहे हैं इस समय तो पृथिवी आदि लोकों में प्राण धारण करने वाले प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं हुई अभी तो पृथिवी पर एक मनुष्य भी पैदा नहीं हुवा। फिर ये अग्नि वायु रवि तीन ऋषि आये कहां से। पृ० २५१ मं० २१।

उत्तर—आप भंग की तरंग में कहां की बातें कर रहे हैं। प्रजापति परमात्मा ने तीनों लोक पैदा करके मनुष्य सृष्टि पैदा करदी और मनुष्यों को ज्ञान देने के लिये तीन प्रकाश मान् ऋषि पैदा किये जिन द्वारा वेद प्रकाशित किये। यदि आप को यह बात नज़र न आवे तो हमारा क्या कसूर ?

२१९ (प्रश्न)—अब तीन लोकों को तपाया गया उन का सार भूत तीन तत्त्व निकलेंगे या तीन लोकों में से तीन ऋषि कूद पड़ेंगे। पृ० २५१ पं० २४।

उत्तर—अब तीन लोकों में ज्ञान देने के लिये तीन ऋषियों की ज़रूरत है या तीन तत्त्वों की। तत्त्व तो पूर्व मौजूद ही थे। और तत्त्वों से ज्ञान प्रकाश असम्भव होने के कारण तीन ऋषि ही पैदा हुए तत्त्व नहीं।

२२० (प्रश्न)—जब शतपथ खुद अग्नि, वायु, रवि को ज्योति लिख रहा है फिर ये ऋषि कैसे होंगे। पृ० २५१ पं० २६।

उत्तर—जब शतपथ खुद वेदों का प्रकाश करने वाली तीन ज्योतियां लिख रहा है तो फिर ये ज्ञान-शून्य जड़ तत्त्व कैसे होंगे? ज्ञान ज्योति से प्रकाशित ऋषि ही हो सकते हैं, तत्त्व नहीं।

२२१ (प्रश्न)—दयानन्द जी ने शतपथ की श्रुति से ज़रा से टुकड़े को चुरा कर आर्य्य समाजियों को जो धोके में डाला है, यह दयानन्द जी की चोरी और सीना ज़ोरी है। पृ० २५१ पं० २७।

उत्तर—यहां तप के अर्थ तपाना और वेद के प्रकाश करने वाली ज्योति का तत्त्व अर्थ कर के जो आप ने सनातन धर्म्मियों की आंखों में धूल डाल कर अपने जैसा बनाना चाहा है यह आप की ईमानदारी नहीं है।

२२२ (प्रश्न)—फिर यह श्रुति दयानन्द के अद्वैत सिद्धान्त पर चौका लगा देती है। इस में स्पष्ट लिखा है कि अकेला प्रजापति कामना करता है 'कि मैं प्रजा बनू' श्रुति "अभिन्न निमित्तो पादान कारण" कह रही है। इसलिये दयानंद जी ने सब श्रुतियों को नहीं उठाया, जान गये कि अग्नि, वायु, रविऋषि न होकर तत्त्व बन जायेंगे। और इस से भिन्न प्रकृति

से जो हमने संसार की उत्पत्ति मानी है। वह भी मिट जायेगी।
पृ० २५२ पं०

उत्तर—आप गहरी भंग की तरंग में लिखने बैठे हैं। तभी तो स्वामी दयानन्द का अद्वैत सिद्धान्त बतला रहे हैं। होश से बात करें। स्वामी दयानन्द जी न द्वैतवादी हैं न अद्वैतवादी। वह तो त्रित्ववादी हैं। और ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं। और शतपथ का यह पाठ स्वामी जी के सिद्धान्त की ताईद कर रहा है। प्रजापति एक ही था यह ठीक किन्तु उसकी प्रजा प्रकृति और जीव भी थे तभी तो प्रजापति नाम हुआ। यदि प्रजा का अभाव होता तो प्रजापति नाम कैसे होता। क्या कभी "बेमुल्क नवाब" भी होता है। इस में "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" का गंध भी नहीं है। ऋषि दयानन्द जी ने उतना पाठ दे दिया जितने की जरूरत थी वरना यह पाठ शेष पाठ का विरोधी नहीं है। ऋषि जानते थे कि वेद ज्ञान का प्रकाश होना चैतन्य ऋषियों द्वारा ही सम्भव है। जड़ तत्वों द्वारा सम्भव नहीं अतः उन्हों ने सिद्धान्त निश्चित कर दिया कि परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा ब्रह्मादि ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया। स्वामी जी के इस सिद्धान्त की ताईद वेद, शतपथ, ऐतरेय, सायणाचार्य्य, मनुस्मृति तथा कुल्लूक भट्ट भी करते हैं। अतः यही सिद्धान्त वेदानुकूल सत्य है। और चतुर्मुख ब्रह्म द्वारा वेद का प्रकाश वेदविरुद्ध और मिथ्या पौराणिक कल्पना है।

## परिणाम—

इस सारे लेख का परिणाम यह है कि सृष्टि के आरंभ

में केवल एक ऋषि ही पैदा नहीं हुआ अपितु अनेक ऋषि पैदा हुए जैसे कि "तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये। यजु० ३१।९" में साफ लिखा है कि परमात्मा से देवता साध्य और ऋषि पैदा हुये। यहां बहुवचन से साबित है कि अनेक देवता साध्य तथा ऋषि पैदा हुए यदि एक ब्रह्मा ही आदि में पैदा हुआ होता तो वेद उसी का वर्णन करता। फिर इस की ताईद—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ योग सू० समाधिपादेसू० २६।

अर्थात् वह परमेश्वर सृष्टि की आदि में अग्नि वायु आदित्य अंगिरा को वेदों का उपदेश करने के कारण गुरु नाम वाला है। अब यहां भी यही सिद्ध होता है कि परमात्मा ने आरंभ में कई ऋषियों को वेदों का उपदेश किया तभी तो "पूर्वेषाम्" शब्द बहुत का वाची आया, वरना यदि एक ब्रह्मा ही आदि में होता तो सूत्र में "पूर्वस्यापिगुरुः" "पहिले ब्रह्मा का गुरु" ऐसा पाठ होता। इस से साबित है कि परमात्मा ने चारों ऋषियों पर चारों वेदों का प्रकाश किया उन से ब्रह्मा ने पढ़े, यही निश्चित् सिद्धान्त है।

---

## फलित ज्योतिष

२२३ (प्रश्न)—'यान्ति नक्षत्राणि इत्यादि अथर्व० १९।८।१' इस मन्त्र में नक्षत्रों से कल्याण करने की प्रार्थना करना लिखा है। पृ० २५२ पं० १४।

उत्तर—इस मन्त्र में नक्षत्रों से कल्याण की प्रार्थना नहीं की गई क्योंकि नक्षत्र सब ही जड़ हैं। इन का हमारी

तबीयत के अनुसार हमारे साथ गरमी सर्दी और रोशनी का सम्बन्ध तो है। इनका हमारे कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता है। और परमात्मा की व्यवस्था से अपने पुण्य पाप कर्मों का फल सुख और दुःख के रूप में पाता है। यदि सुख दुःख के देने वाले नक्षत्र हों तो वेद का उपदेश कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥
(यजु० ४०। २)

भाषार्थ—मनुष्य इस संसार में धर्म्म युक्त कर्मों को करता हुवा ही सौ वर्ष जीवन की इच्छा करे। इस प्रकार धर्म्म युक्त कर्मों में प्रवर्तमान तुझ नर में अधर्म युक्त अवैदिक कर्म का लोप न होगा। इसके बिना और कोई रास्ता नहीं है॥२॥ सर्वथा निरर्थक हो जावेगा। वेद का उपदेश स्पष्ट है कि कर्म करने से ही कल्याण है। किये कर्मों का फल अवश्य मिलता है। ग्रहों के कारण किये कर्म के फल से छुटकारा नहीं मिल सकता। जैसे—

नाधर्मः कारणापेक्षो कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ता खलु यथा कालं ततः समभिपद्यते॥८॥
(महा० शांति० अ० १९८)

भाषार्थ—अधर्म किसी कारण से कर्ता को छोड़ता नहीं। निश्चय रूप से करने वाला यथा समय उस के फल को अवश्य पाता है॥८॥ और ग्रहों के कारण बिना किये का फल मिलता नहीं। जैसे—

भोजनाच्छादने चैव मात्रापित्रा चसंग्रहम्।
स्वकृतेनाधिगच्छन्ति लोके नास्त्यकृतंपुरा ॥१७॥
(महा० शान्ति० अ० २८८)

भाषार्थ—भोजन आच्छादन तथा माता पिता का संग्रह जीव अपने कर्मों से प्राप्त करते हैं। विना कर्म किये फल नहीं मिलता ॥१७॥ जब ग्रह किये हुवे पापों के फल को टाल नहीं सकते और बिना कर्म किये फल दे नहीं सकते तो उन का उपयोग क्या है। और यदि फलित ज्योतिष को सिद्ध करना चाहते हैं तो ऐसा प्रमाण उपस्थित कीजिये जिस से यह साबित हो कि ग्रह किये कर्मों के फल को टाल सकते हैं या बिना कर्म किये भी फल दे सकते हैं। यदि ऐसा कोई प्रमाण नहीं तो जनता को ग्रहों का झूटा भय दिखला दिखला कर लूटना परले दरजे की बे ईमानी है। ये सब नक्षत्र ग्रह पृथ्वी की भांति जड़ हैं, न प्रार्थना से प्रसन्न और न निन्दा से अप्रसन्न होते हैं। हमारे विचार में तो फलित ज्योतिष के जानने बताने ठगने वाले ज्योतिषी ही जनता पर ग्रह रूप हैं। यदि जनता इन के पाखंड से वाकिफ़ हो जावे तो जनता को शान्ति प्राप्त हो जावे। इस मंत्र में ग्रहों से प्रार्थना नहीं अपितु आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना है। मंत्र का अर्थ नीचे दिया जाता है

यानिनक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौयानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणिममे तानि शिवानि सन्तु॥१॥
(अथर्व० १९।८।१)

भाषार्थ—हे परमेश्वर! जिन सितारों को आकाश के अंदर मध्यलोक में जिन को जल के ऊपर और जिन को पहाड़ों

के ऊपर सब दिशाओं में चन्द्रमा समर्थ करता हुआ चलता है। ये सब नक्षत्र मेरे सुख देने हारे हों ॥१॥

भावार्थ—जो नक्षत्र अपने तारागणों के साथ चन्द्रमा के आकर्षण और गति मार्ग में घूम कर वायु द्वारा जल पृथ्वी आदि पर प्रभाव डाल कर अन्न स्वास्थ्य आदि बढ़ाने का कारण हैं। विद्वान् लोग उन नक्षत्रों के ज्योतिष ज्ञान से लाभ उठावें ॥१॥ इस मंत्र में फलितज्योषित का लेशमात्र भी नहीं है।

२२४ (प्रश्न)—"शन्नो ग्रहाश्च इत्यादि अथर्व १९।९।१०" इस मंत्र में ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है।

पृ० २५२ पं० २०।

उत्तर—इस मंत्र में भी परमात्मा से आधि दैविक दुखों को दूर करने की प्रार्थना है। आप को फलित ज्योतिष की सिद्धि के लिये कोई ऐसा मंत्र पेश करना चाहिये जिस से यह साबित हो जाये कि जन्म नक्षत्र के ज्ञान से उस के भविष्य सौभाग्य का ज्ञान हो जाता है किन्तु आप इस बारे में कोई मंत्र पेश नहीं कर सकते। किन्तु आये दिन बच्चों की जन्म पत्रियां बना बना कर जनता से हज़ारों रुपए ठगे जाते हैं। जिस नक्षत्र वा मुहूर्त्त में एक राजा का लड़का पैदा होता है उसी नक्षत्र में हज़ारों मनुष्य कुत्ते बिल्ली आदि प्राणी पैदा होते हैं। किन्तु सब का सौभाग्य एक सा नहीं होता। और भविष्य कर्मफल या सौभाग्य का यदि पता लग जावे तो संसार बहुत से कष्टों से बच जावे किन्तु ऐसा होता कदापि नहीं। सैंकड़ों ज्योतिषियों की खुद लड़कियां विधवा हो जाती हैं। किन्तु उन को पहिले से उन के सौभाग्य का ज्ञान नहीं हो सकता। ज्योतिषी सैंकड़ों लोगों को यह बतला कर कि तुम्हारे पर ग्रह चढ़ा हुआ है। जप पूजा पाठ के बहाने से हज़ारों रुपया

लोगों से ठगते हैं। लोगों को भविष्य में अनाज का भाव बतलाकर सैंकड़ों के दिवाले कर देते हैं। यदि इनको जिस भाव का पता लग जावे तो यह स्वयं करोड़पति न बन जावें, दो २ पैसे पर धक्के क्यों खाते फिरें। साबित करने की तो यह बातें हैं। जो साबित नहीं हो सकतीं। मंत्र का अर्थ नीचे दिया जाता है।

शन्नो ग्रहाश्च चन्द्रमसाः शमादित्यश्चराहुणा।
शन्नो मृत्यु र्धूमकेतुः शंरुद्रास्तिग्म तेजसः ॥१०॥

(अथर्व० १९।९।१०)

भाषार्थ—हे परमात्मन् ! चन्द्रमा के ग्रह कृत्तिकादि हमें शान्ति दायक होवें। और सूर्य्य, राहु के साथ शान्ति दायक हुवे। मृत्यु रूप धूम केतु पूछल तारा हमें शांतिदायक हो, तीक्ष्ण तेजवाले गतिमान वृहस्पति आदि ग्रह शांति दायक होवें॥ १० ॥ कहिये इस मंत्र से फलित ज्योतिष कैसे सिद्ध होता है। यह तो ऐसी ही शान्ति के लिये प्रार्थना है जैसे हम नित्य प्रति प्रार्थना करते हैं कि—

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी
शान्ति रापः शान्ति रोषधयः शान्ति र्वनस्प
तयः शान्ति। विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्मा शांति
सर्व ँ शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सा मा
शान्ति रेधि॥ यजु० ३६। १७॥

भाषार्थ—हे परमात्मन्? हमारे लिये द्यौ अंतरिक्ष पृथिवी जल समस्त देव ब्रह्म सब कुछ तथा शान्ति भी शान्ति दायक हो। बतलाईये आप के दिये हुए मंत्रों में से कौनसी वस्तु बाकी रह गई। ऐसी प्रार्थनाओं का यही प्रयोजन है कि इन पदार्थों का हमारे साथ जितना सम्बन्ध और उपयोग है उतने अंश

में हमें उन से सुख मिले। इस से ग्रहों का किसी पर चढ़ कर पीड़ा देना, जन्म पत्र में भविष्य भोगों को वर्णन करना, विवाह शादी के शुभलगन, सफर में दिशाशूल तथा योगिनी विवाह आदि में शुभाशुभ मुहूर्त, वैधव्य योग आदि फलित ज्योतिष की सिद्धि कैसे हो गई।

२२५ (प्रश्न)—"ज्येष्ठघ्न्यां जातो" व्याघ्रे अह्नि" इत्यादि अथर्व० ६। ११०। २-३। इन दोनों मंत्रों में ज्येष्ठा तथा मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक की कुशलता के लिये मूल शांति करनी लिखी है। पृ० २५३ पं० ३।

उत्तर—आपने प्रतिज्ञा तो की है वेद से फलित ज्योतिष सिद्ध करने की। और समय टाल रहे हैं इधर उधर की बातों में, भला इन मंत्रों में उपरोक्त जन्मपत्रादि फलित ज्योतिष का वर्णन कहां है। इन मन्त्रों में तो माता पिता की सेवा तथा नियम पूर्वक जीवन व्यतीत करने का वर्णन है। हम इन दोनों मंत्रों के अर्थ नीचे देते हैं—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतो र्यमस्य मूल वर्हणात् परि
पाह्येनम्। अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायु—
त्वायशत शारदाय॥ अथर्व०॥ ६। ११०। २॥

भाषार्थ—ज्येष्ठ अर्थात् अतिवृद्ध वा उत्तम ब्रह्म को प्राप्त करने वाली क्रिया में प्रसिद्ध अंधकार से छुडाने वाले सूर्य और चन्द्रमा के नियम के मूल छेदन से इस जीव को सब प्रकार बचा। सब विघ्नों को उलांघ कर सौ वर्ष वाले दीर्घ जीवन के लिये इसको आप लेचलें॥ २॥

भावार्थ—मनुष्य श्रेष्ठ जनों के अनुकरण से पुरुषार्थ के साथ विघ्नों को हटा कर सूर्य्य और चन्द्रमा के समान सदा नियम में चल कर यश प्राप्त करे॥ २॥

व्याघ्रेऽह्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मामातरं प्रमिनी—
ज्जनित्रीम् ॥ अथर्व० ६ । ११० । ३ ॥

भाषार्थ—यह वीर पुरुष नक्षत्र के समान गति उपाय उत्पन्न करने वाला महावीर होता हुआ व्याघ्र के समान बलवान दिन में माता पिता के बल के समय उत्पन्न हुआ है वह बढ़ता हुआ पिता को न मारे और जन्म देने वाली माता को कभी न सतावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—शूरवीर पुरुष सुरक्षित बलवान माता पिता से जन्म पाकर उनको कष्ट से बचा कर सदा सुखी रख कर अपना सौभाग्य बढ़ावे ॥ ३ ॥ न तो इन मंत्रों में मूल नक्षत्र में पैदा हुए को विघ्न आता है ऐसा वर्णन है, न उसकी शान्ति के उपाय का जिक्र है।

२२६ (प्रश्न)—"मा ज्येष्ठं वधीदित्यादि अथर्व० ६ । ११२ । १" इस मंत्र में भी मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक के कल्याण की प्रार्थना है। पृ० २५३ पं० १६।

उत्तर—इस मंत्र में न तो मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक के विघ्न का वर्णन है और न ही उसके कल्याण की प्राथना है अपितु इस मंत्र में श्रेष्ठ पुरुष की रोगों से रक्षा का वर्णन है। हम इस मंत्र का ठीक ठीक अर्थ नीचे देते हैं।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्र एषां मूलबर्हणात् परि—
पाह्येनं । स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन्
तुभ्यंदेवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ अथर्व० ६ । ११२ । १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! यह रोग इन के बीच विद्या और वय में बहुत बड़े पुरुष को न मारे। इस पुरुष को मूल

छेदन से सर्वथा बचा। सो तू ज्ञानी होकर जकड़ने वाले गठिया आदि रोग के फंदों को खोलदे। सब विद्वान् लोग तुझ को अनुमति देवें ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों की सम्मति से श्रेष्ठ पुरुष की रक्षा का सदा उपाय करें ॥१॥

बतलाइये ! इससे फलित ज्योतिष सिद्ध होसकता है वास्तव में किसी भी काल के साथ मनुष्य के अच्छे बुरे कर्मों का कोई संबंध नहीं है। कोई किसी समय पैदा हो अपने कर्मों का फल भोगता है। अतः किसी काल को मनुष्य के कर्मों से भी जोड़ना सिद्धान्त के विरुद्ध है। देखिये महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि—

यदिकालः प्रमाणं ते न वैरं कस्यचिद्भवेत् ।
कस्मात्त्वपचितिं यान्ति बांधवा बांधवैर्हतैः ॥५३॥
कस्माद्देवासुराः पूर्वमन्योऽन्यमभिजघ्निरे ।
यदि कालेन निर्याणं सुखं दुःखं भवाभवौ ।५४॥
भिषजो भेषजं कर्तुं कस्मादिच्छन्ति रोगिनः ।
यदि कालेन पच्यन्ते भेषजैः किं प्रयोजनम् ॥५५॥
प्रलापः सुमहान् कस्मात् क्रियते शोक मूर्च्छितैः ।
यदिकालः प्रमाणं ते कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु ॥५६॥
( महा० शांति० अ० १३६ )
कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्
इति ते संशयोमाभूद्राजा कालस्य कारणम् ॥७६॥
( महा० शांति० अ० ६९ )

भाषार्थ—यदि तुझे काल प्रमाण है तो किसी से वैर नहीं होना चाहिये। फिर संबन्धी संबन्धियों से मारे हुए क्यों क्षय को प्राप्त होते हैं ॥५३॥ पूर्वकाल में देव और असुरों ने

एक दूसरे को क्यों मारा यदि सुख दुख जन्म मरण काल से ही होते हैं ॥५४॥ वैद्य रोगी की दवाई करने की क्यों इच्छा करते हैं। यदि काल से ही सब पकाये जाते हैं तो दवाई से क्या प्रयोजन ॥५५॥ शोक से मूर्च्छित हुए लोग महान् रोना पीटना क्यों करते हैं। यदि तुझे काल ही प्रमाण है तो कर्ता में धर्म्म की स्थिति क्यों है ॥५६॥ काल राजा का कारण है या राजा काल का कारण है, यह तुम को संदेह नहीं होना चाहिये राजा ही काल का कारण है ।।७६॥

इससे साबित है कि हमारे कर्मों में काल कारण नहीं है और काल का संबन्ध उत्पद्यमान चांद सूर्य ग्रहों से है इससे साबित है कि नक्षत्र हमारे अच्छे बुरे कर्मों में कारण नहीं हैं। अपितु हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं।

२७७ ( प्रश्न )—वेद ने नक्षत्र और ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है। साथ ही साथ छः नक्षत्र मूल के हैं। उनमें पैदा हुए बालक की कुशलता के लिये मूल शांति करनी लिखी है। निःसंदेह वेदों ने नक्षत्र ग्रहों से कल्याण चाह कर मूल शांति द्वारा अरिष्टागमन की निवृत्ति कही है। स्वामी दयानन्द जी ने एक भी प्रमाण न देकर वेद के लेख पर चौका लगा दिया। पृ० ५५५ पं० १०।

उत्तर—'द्वासुपर्णा' से साबित है कि ईश्वर जीव प्रकृति नित्य हैं। इन में से जीव और परमात्मा चेतन तथा प्रकृति जड़ है। जीव स्वतंत्रता से कर्म कर्ता और परमात्मा कर्मों का फल दाता है। परमात्मा ने प्रकृति से जीवों के कर्म भोगार्थ 'सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता' इस सृष्टि को उसी प्रकार से बनाया जैसे पहले बनाया करता था। परमात्मा ने दो प्रकार का जगत्

बनाया। प्राणी जैसे मनुष्य, पशु,पक्षी, वृक्षादि, अप्राणी, आग, पानी, मिट्टी, हवा, आकाश, चांद, सूर्य्य, सितारे आदि। इस जगत् में परमात्मा दृष्ट फल दाता जीव भोक्ता और शेष जगत् भोग्य पदार्थ है। मनुष्य पृथिवी में रहता, अन्न पैदा करता, अग्नि से प्रकाश और गरमी ग्रहण करता, जल से प्यास बुझाता, हवा से सांस लेता, आकाश में रहता, चांद, सूर्य्य, सितारों से अपनी तबीयत के बमूजिब गरमी, सरदी, प्रकाश, बरसात, तथा जल वायु की शुद्धता से स्वास्थ्य ग्रहण करता, औषधियों से भूख दूर करता और भी धात, पत्थर, लकड़ी आदि से आवश्यकता अनुसार उपकार लेता है। इस के दुख सुख भी तीन प्रकार के हैं। आध्यात्मिक—जो अपनी आत्मा से ही मानसिक दुख सुख मिलते हैं। आधिभौतिक—जो दूसरे प्राणियों से मिलते हैं। आधिदैविक जो उपरोक्त पृथिवी सूर्य्य सितारों आदि से सरदी गरमी प्रकाश वर्षा आंधी भूंचाल आदि द्वारा मिलते हैं। आत्मा कर्म स्वयं स्वतंत्रता से करता है परमात्मा कर्मानुसार फल उपरोक्त तीन प्रकार से सुखों द्वारा देता है। अब यदि मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना करता है कि पृथिवी, जल, नक्षत्र, औषधि मेरा कल्याण करें तो भी और यदि इनहीं पदार्थों से कल्याण की प्रार्थना करता है तो भी उसका यही अभिप्राय या इच्छा होती है कि इन पदार्थों के साथ मेरा जितना संबंध या उपयोगिता है उस बारे में मुझे इनसे सुख मिले, दुख न मिले। इस प्रकार की प्रार्थना से वस्तुओं की माहियत में फर्क नहीं आता, चेतन चेतन ही रहते हैं जड़ जड़ ही रहते हैं। अतः नक्षत्र और ग्रह हमारे योग्य पदार्थ हैं और जड़ हैं, उनसे या परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना का यही अभिप्राय या

हमारी इच्छा है कि इनके साथ हमारा जितना संबंध है उतने संबंध में इन से हम को सुख मिले, दुख न मिले। इस से ये पदार्थ चेतन या हमारे कर्मों के फल दाता नहीं बन जाते और न वे प्रसन्न या नाराज़ होकर हमें स्वयं सुख या दुख दे सकते हैं अपितु परमात्मा हमारे कर्मों के अनुसार उन द्वारा हमें आधिदैविक सुख या दुःख देते हैं। अतः उनको नाराज़ कल्पना करके उनकी शान्ति के लिये कोई क्रिया करनी सर्वथा निर्मूल और व्यर्थ है। अब रही काल की बात, इस का सम्बन्ध नित्य पदार्थों से नहीं अनित्य पदार्थों से है। सृष्टि के पैदा होने के कारण सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ से इसका संबंध है कौन वस्तु कब हुई कब कैसी अवस्था में थी, है, और होगी इत्यादि। काल का पदार्थों के साथ संबंध है। काल जड़ वस्तु है। वे भी नक्षत्रों की भांति ही हमारे अच्छे या बुरे कर्मों में कारण नहीं है। अपितु कर्म करने में हम क़तई स्वतंत्र हैं। हम अच्छे कम करें या बुरे इसमें नक्षत्रों की भांति ही काल का कोई हस्ताक्षेप नहीं है। काल तीन हैं भूत, भविष्यत, वर्तमान। परमात्मा में भूत, भविष्यत, वर्तमान का हमारी अपेक्षा से ही व्यवहार होता है। परमात्मा भूत काल की समस्त घटनाओं को संपूर्ण जानता है। जीव होश आने के पीछे अपनी और अपने से संबन्ध रखने वाले प्राणियों की भूत काल की घटनाओं को जानता है। या किन ही कार्य्यों को देखकर उनके कारणों का अनुमान करते हुवे दूसरों के भूत काल को भी किसी हद तक जान सकता है। पिछले जन्म के भूत को योगी अपने विषय में योगाभ्यास द्वारा जान सकता है। ज्योतिष से नहीं क्योंकि उस की आत्मा में कार्य्य संस्कार मौजूद हैं। दूसरों के पिछले जन्म के भूत कालको योगी भी नहीं

जान सकता। क्योंकि उनके संस्कार उन की आत्मा में हैं योगी की आत्मा में नहीं हैं। वर्तमान काल को सर्वव्यापक होने से परमात्मा सबको संपूर्णता से जानता है। जीव अपने वर्तमान को तथा समीपस्थ दूसरों के वर्तमान को भी जान लेता है। और योगी जिस स्थान का भी ध्यान करे उस स्थान के वर्तमान को योगावस्था में जान सकता है। ज्योतिष से नहीं। अब रह गई भविष्य की बात सो परमात्मा सृष्टि संबन्धी बातों को तथा जीवों के कर्म फलों के सम्बन्ध में कौन कर्म का क्या फल किस काल में देना है इस को संपूर्णतया जानता है। जीवात्मा भी जो चीज़ काइदे कानून के मुताबिक़ मुक़र्रिर हो उसके भविष्य कालको जान लेता हैं। जैसे तारीखों तिथियों ऋतुओं का परिवर्तन हिसाब सूर्य्य चांद का ग्रहण इत्यादि। क्योंकि ये सब कुछ चांद, सूर्य्य, ज़मीन, सितारों की बाक़ाइदा गर्दश पर निर्भर है जो काइदे कानून के मुताबिक़ मुक़र्रिर हैं जिस में एक सैकिंड का भी फर्क़ नहीं पड़ सकता। तथा कारण को देखकर भविष्य के कार्य्य को भी जान सकता है जैसे विवाह को देखकर सन्तान होने के भविष्य को, बादलों को देखकर वर्षा के भविष्य को गरमी सरदी आदि की जांच से आने वाली आंधी या वर्षा को इत्यादि इत्यादि और ऐसा भविष्य के विषय में अनुमानिक ज्ञान ९० फीसदी ठीक निकलना संभव है। किंतु मनुष्य से भविष्य में किये जाने वाले कर्मों के बारे में आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिंट गुज़रने पर मैं क्या करूंगा। इस बारे में मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है इस को तो ईश्वर भी नहीं जानता कारण यह कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है जिस काम के करने का अभी मैंने संकल्प भी नहीं किया उसके बारे

में ईश्वर भी यही जानता है कि मेरे दिल में संकल्प नहीं है। जब मेरे दिल में संकल्प पैदा होगा तो संकल्प के बारे में जब काम करूंगा तो काम के बारे में ईश्वर को फौरन से पहिले ज्ञान हो जावेगा। ईश्वर की सर्वज्ञता में इस से दोष नहीं आता क्योंकि सर्वज्ञ के अर्थ हैं जो सब कुछ जानता हो। सब कुछ क्या, जो दुनिया में मौजूद है। जो चीज़ दुनिया में गैर मौजूद है। उसके विषय में ईश्वर भी यही जानता है कि वह गैर मौजूद है। संकल्प से संकल्प का और कर्म से कर्म का ईश्वर को ज्ञान होने पर ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि मानने से ईश्वर अनित्य हो जावेगा यह दोष नहीं आता। क्योंकि ईश्वर असूली तौर से इस बात को जानता है कि जीव शरीर को धारण करके दुनियां में क्या कुछ कर सकता है। उसमें से जीव जो करता है उस का फल ईश्वर दे देता है इससे ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि क्या हुई। जो आदमी सौ तक गिनना जानता है उसके सामने कोई ५० तक ७० तक ९० तक गिन दे तो उस के ज्ञान में वृद्धि क्या हुई वह तो पहिले से ही सौ गिनना जानता है इसी बात को दृष्टि में रख कर ऋषि दयानन्द जी ने लिखा है कि "जो ईश्वर जानता है यह जीव करता है, जो जीव करता है वह ईश्वर जानता है" इस में पहिले हिस्से के यही अर्थ हैं। कि ईश्वर जिन बातों को जानता हैं कि जीव क्या कुछ कर सकता है। उन्हीं में से जीव करता है। इस से सिद्ध हुआ कि ईश्वर जीव से भविष्य में किये जाने वाले कर्मों को नहीं जानता यदि एक मिंट के लिये हम यह मान लें कि वह जानता है कि आज से आठवें ,दिन बारह बजकर एक मिंट गुजरने पर मैं चोरी करूंगा तो बतलाओ कि मैं उस चोरी करने के संकल्प

को तबदील कर सकता हूं या नहीं। यदि कहो तबदील कर सकता हूं तो ईश्वर का ज्ञान ग़लत होने से वह ईश्वर कहाने के क़ाबिल न रहा। यदि कहो तबदील नहीं कर सकता तो मेरे काम ईश्वर के ज्ञान में नियत होगये, जो मुझे मजबूरन करना पड़े उसके फल का मैं ज़ुम्मेवार क्यूं। उसका फल उसी को भोगना चाहिये जिसने मेरे से कोई काम ज़बरन करवाया। इस से सिद्ध होगया कि मनुष्य के भविष्य में किये जाने वाले कर्मों को जब ईश्वर नहीं जानता तो मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है। अतः जन्म पत्री तथा संपूर्ण भविष्य वाणियां असूल तौर पर गलत हैं। उन में से यदि कोई बात सच निकल जाती है तो वह घुनाक्षर न्याय से इतफाक़िया है दरिस्ता नहीं है। हम आपको आपके ही घर एक प्रमाण देते हैं कि जब राजा मुंज ने ज्योतिषी के कहने पर अपने वज़ीर वत्सराज को भोज के क़त्ल के लिये कहा तो वत्सराज ने उत्तर दिया वह यह थी कि—

त्रैलोक्य नाथो रामोऽस्ति वसिष्ठो ब्रह्म पुत्रकाः।
तेन राज्याभिषेकेतु मुहूर्तः कथितोऽभवत्॥२०॥
तन्मुहूर्तेन रामोऽपि वनंनीतोऽवनिं विना।
सीतापहारोऽप्यभवद्विरंचि वचनं वृथा॥२१॥
जातः कोऽयं नृपश्रेष्ठ किंचिज्ञ उदरंभरिः।
यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तु मिच्छसि॥२२॥

( भोज प्रबंध वल्लाल पंडित विरचित )

भाषाथ—श्री रामचन्द्र जी त्रिलोकी के नाथ थे और वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र था। उस त्रिलोकी नाथ के गद्दी पर

बठने का मुहूत ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ने निकाला ॥ २० ॥ उसी मुहूर्त में श्री राम तो पृथिवी के राज्य को छोड़ कर बन को चले गये, सीता भी चुराई गई वसिष्ठ का कहना फ़ज़ूल ही चला गया ॥ २१ ॥ तो यह थोड़ा सा जानने वाला पेटू क्या वस्तु है जिस के कहने पर कामदेव के समान सुन्दर कुमार को मारने को तैयार हुए हो ॥ २२ ॥ जो ज्योतिषी दो-दो पैसे पर जूती खोई जाने से पचास गप्प मारते हैं। वे मफ़रूरों को बता कर लाखों रुपया क्यों नहीं हासिल करते। खुफिया पुलीस के स्थान में ज्योतिष से माल और मुलज़म बतला कर क्यों लखपति नहीं बनते। इन की लड़कियां क्यों विधवा हो जाती हैं। इन के लड़के क्यों मरते हैं। जिन्स के मन्दे तेज़ को जान कर तिजारत से करोड़ पति क्यों नहीं बनते। पता लगा कि ये बातें जनता को धोके से ठग कर खाने की हैं। वास्तव में उपयोग में आने की नहीं हैं। हमारी ताईद में आप के हां तो साफ लिखा है कि—

अश्व प्लु ं वासवगर्जितं च,
स्त्रीणां च चित्तं पुरुषस्य भाग्यम्।
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥१४२॥

(भोज प्रबन्ध)

भाषार्थ—घोड़े का कूदना, इन्द्र का गर्जना, स्त्री का हृदय, मनुष्य के भाग्य, न बरसना तथा अति बरसना देवता ही नहीं जानता तो मनुष्य की तो हस्ती क्या है ॥ १४२ ॥

अतः सूर्य, चांद आदि ग्रहों को चेतन मानने वालों की

बुद्धि चेतनता रहित और भविष्य वाणी से जनता को ठग कर खाने वालों की सर्वथा मक्कारी है। है कोई माई का लाल सनातन धर्म में पैदा हुआ जो ग्रहों को चेतन और भविष्य वाणी को सत्य साबित करके फलित ज्योतिष को मृत्यु मुख से निकाल सके।

---

## स्वामी दयानन्द और फलित ज्योतिष

२२८ (प्रश्न)—गर्भाधान संस्कार में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि 'उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उसको छोड़ दें'। इन तिथियों का छोड़ना ज्योतिष के जातक और मुहूर्त ग्रन्थों में लिखा है। गर्भाधान में एकादशी आदि तिथियों का फल नेष्ट लिखा है इस कारण स्वामी दयानन्द जी ने इन का त्याग किया है। इस से साबित है कि स्वामी जी फलित ज्योतिष को मानते थे। पृ० २४ पं० ३०।

उत्तर—स्वामी जी के इस लेख का आधार कोई फलित ज्योतिष ग्रन्थ नहीं है अपितु स्वामी जी ने यह समस्त विधि मनुस्मृति अध्याय तीन श्लोक ४५ से ५० तक के आधार पर लिखा है। स्वामी जी ने तथा मनु ने जिस स्वास्थ्य की दृष्टि से पहिली चार रात्रियें मैथुन में वर्जित की हैं वैसे ही ग्यारहवीं तथा तेहरवीं रात्री मना की है। यहां एकादशी तथा त्रयोदशी रात्री हैं। तिथियें नहीं हैं। उसी बात को दृष्टि में रखकर पर्व अर्थात् पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी तथा अष्टमी को छोड़ा है क्योंकि ऋतु का समुद्र के समान चन्द्रमा से

सम्बन्ध है इन रात्रियों में ऋतु कुपित होता है। अतः वैद्यक की दृष्टि से इन रात्रियों में समागम से नपुंसकता सोज़ाक आतशक आदि रोगों के होजाने का अंदेशा है। इसी कारण मना किया है। फिर युग्म रात्री में पुत्र अयुग्म में कन्या पुरुष वीर्य आधिक्य से पुत्र, स्त्री रजाधिक्य से कन्या तथा समान से नपुंसक वा वन्ध्या पैदा होना इत्यादि सारा प्रकरण ही ऋतु के उतार चढ़ाओ तथा वैद्यक की दृष्टि से लिखा गया है। इस में फलित ज्योतिष की गंध भी नहीं है।

२२६ (प्रश्न)—तिथि तिथि—देवता नक्षत्र नक्षत्र—देवताओं की नाम करण में आहुतियां देना इस को गोभिलीय गृह्य सूत्र शुभ फल दायक मानता है। इस कारण स्वामी जी ने संस्कार विधि में आहुति चतुष्टय का ग्रहण किया है। फिर कौन कहता है कि स्वामी जी फलित ज्योतिष को नहीं मानते। पृ० २४।

उत्तर—गोभिलीय गृह्यसूत्र में कहीं भी ज्योतिष की दृष्टि से शुभ फल दायक नहीं लिखा। वैसे आहुतियें जितनी दी जाँ जल वायु की शुद्धि का हेतु होने से उतनी ही शुभ फल दायक हैं। रहा तिथि और तिथि के देवता सो हम लिख चुके हैं कि ये तिथि तथा नक्षत्रों के सांकेतिक दूसरे नाम हैं। और तिथि तथा नक्षत्रों को द्योतित अर्थात् प्रकाशित करने के कारण देवता कहाते हैं। इनका विस्तृत वर्णन (देखो नं०१६६)

अतः स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से फलित ज्योतिष की सिद्धि का प्रयत्न वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध वाक् छल मात्र है।

———

# तीर्थ

२२८ (प्रश्न)—"नमः पार्याय चार्वाय" यजु० १६।४२" इस मंत्र में तीर्थों का महात्म्य वर्णन किया गया है। पृ० २५६ पं० २५।

उत्तर—इस मंत्र में पौराणिक तीर्थों का नामो निशान भी नहीं है। क्योंकि पौराणिक लोग जलों और स्थलों में स्नान भ्रमण, दर्शन, मरण आदि से मुक्त मानते हैं जैसेः—

स्नान से—पूर्ववयसि कर्माणि कृत्वापायानि येनराः।
पश्चाद्गङ्गां निषेवन्ते तेऽपियान्त्युत्तमांगतिम् ॥३०॥
( महा० अनु० अ० २६ )

दर्शन से—भवंति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्।
गंगाया दर्शनात्तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥
( महा० शल्य० अ० २६ )

मरण से—इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो।
त्वेगमिष्यन्ति सुकृतान् लोकान् पाप वर्जितान् ॥६॥
( महा० शल्य० अ० ५३ )

भ्रमण से—पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः।
अपिदुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमांगतिम् ॥३॥
( महा० वन० अ० ८३ )

नाम लेने से—गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७१॥
( ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति खं० १० )

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी पूर्व आयु में पाप कम कर के पीछे से गंगा का सेवन करते हैं वह भी परमगति को

प्राप्त होंगे ॥३०॥ जैसे गरुड के देखने से साँप विष रहित हो जाते हैं। वैसे ही गंगा के देखने से ही मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४४ ॥ हे इन्द्र ! जो लोग इस क्षेत्र में मरेंगे वह पापों से छूट कर पुण्य लोकों को प्राप्त होंगे ॥६॥ हवा से उड़े हुवे रेणु भी कुरुक्षेत्र में किसी पर पड़ेंगे वे अति पापी को भी परम गति प्राप्त करावेंगे ॥३॥ यदि कोई आदमी चार सौ कोस से गंगा गंगा ऐसा कहेगा तो वह सब पापों से छूट कर विष्णु लोक को प्राप्त होगा ॥७१॥

पौराणिक सिद्धान्त अनुसार इस का नाम तीर्थ है। हमारा यह दावा है कि मनुष्य की मुक्ति श्रेष्ठ कर्मों से होती है जल स्थल आदि में स्नान, दर्शन, भ्रमण, मरण आदि से नहीं हो सकती। आप ने जो मंत्र पेश किया है उससे पौराणिक तीर्थों की पुष्टि नहीं होती। हम मंत्र का ठीक ठीक अर्थ नीचे कर देते हैं:—

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्त-
रणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः
शष्प्याय च फेन्याय च ॥ यजु० १६।४२ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दुःखों से पार हुवे और इधर के भाग में हुवे का भी सत्कार तथा उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुंचें या पहुंचाने और इस पार से उस पार पहुंच कर पहुंचाने वाले का सत्कार करें। वेद विद्या के पढ़ाने वालों और सत्य भाषणादि कामों में प्रवीण और समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहने वाले को भी अन्न देवें। तृण आदि काय्यों में साधु और फेन बुदबुदादि के काय्यों में प्रवीण

पुरुष को भी अन्न आदि देवें वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥४२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इसपार उस पार जा आ के देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥४२॥

बतलाइए, इस मंत्र में जलस्थल में स्नान भ्रमण दर्शन मरण आदि से मुक्ति बताने वाले कौन २ पद हैं। यदि नहीं तो फिर इन पौराणिक भ्रमजालों को वेदों के सिर मढ़ना बुद्धिमत्ता नहीं है।

२२६ (प्रश्न)–"आपो भूयिष्ठा इत्यादि ऋ० १।१६१।६" इस मन्त्र में वर्णन है कि जितेन्द्रिय सत्यवादी को तीर्थ फल देते हैं। पृ० २५६ पं० ६।

उत्तर—प्रतीत यह होता है कि अब पुराण प्रतिपादित तीर्थों पर आप का भी विश्वास नहीं रहा। वरना आप जल, स्थल में स्नान, दर्शन, मरण आदि से पाप नाश तथा मुक्ति की पुष्टि में कोई प्रमाण पेश करते, किंतु आप भी विवश हैं वेद पौराणिक तीर्थों की ताईद करते ही नहीं क्योंकि वेद ज्ञान और कर्म से मोक्ष मानते हैं। जैसे कि—

विद्यांचा विद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ यजु० ४०।१४॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१४॥ इस से साबित है कि पुराणों का जल-स्थल को तीर्थ मान मुक्ति का साधन बताना वेद के विरुद्ध होने से

मिथ्या ही है। रही आप के पेश किये मन्त्र की बात। न वेद मन्त्र में तीर्थों का प्रतिपादन है और न ही मन्त्र का यह विषय है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "ऋभवः" अर्थात् "विद्वान लोग" है। इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है कि—

आपोभूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निभूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्। वर्धयन्तो बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसा अपिंशत।

ऋ० १।१६१।९॥

भाषार्थ—एक तो कहता है कि जल बहुत हैं। दूसरा कहता है कि अग्नि बहुत हैं। एक उत्तमता से कहता है कि पृथ्वी बड़ी है। इस प्रकार से सत्य बातों को कहते हुए सज्जन वादलों की भांति पदार्थों को भिन्न करें॥९॥

भावार्थ—इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल अधिक, कोई अग्नि अधिक और कोई भूमि को बड़ी बतलाते हैं। परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है। इस प्रकार सत्य ज्ञान से मेघों के अंशों का जो ज्ञान उस के समान सब पदार्थों को अलग अलग कर सिद्धांतों की सब परीक्षा करें। इस काम के बिना ठीक प्रकार से पदार्थ विद्या को नहीं जान सकते। ९॥

बतलाइये इस मन्त्र में वे कौन से पद हैं जो पौराणिक तीर्थों को वर्णन करते हों। आप ने लिखा कि तीर्थ जितेन्द्रिय सत्यवादी को फल देते हैं। श्रीमान् जी जो सत्यवादी और जितेद्रिन्य होगा उस को पौराणिक तीर्थों की ज़रूरत ही क्या है। पौराणिक तीर्थों की तो उन को ज़रूरत है जिन्हों ने कुकर्म करते हुए मोक्ष प्राप्त करना हो। और सहज ही पापों का

नाश करना हो जैसे—

अग्नौ प्राप्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।
तथा गंगावगाढस्य सर्वं पापं प्रधूयते ॥ ४२ ॥

(महा० अनुशा० अ० २६)

यत्किंचित् दुष्कृतं कर्म स्त्रिया वा पुरुषस्यवा ।
स्नातमात्रस्य तत्सर्वं नश्यते नात्र संशयः ॥ १९९ ॥

(महा० वन० अ० ८३)

यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गंगावसेचनम् ॥ ८९ ॥
सर्वं तत्तस्य गंगापो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ ९० ॥

(महा० वन० अ० ८५)

ततो गच्छेत राजेन्द्र कुरु-क्षेत्रमिष्टुतम् ।
पापेभ्यो यत्र मुच्यन्ते दर्शनात् सर्वजन्तवः ॥ १ ॥

(महा० वन० अ० ८३)

सप्तावरान् सप्त परान् पितृ स्तेभ्यश्च येऽपरे ।
पुम स्तारयते गङ्गांवीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्यच ॥ ६२ ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२ ॥

(महा० अनु० अ० २६)

भाषार्थ—हे उत्तम द्विज ! जैसे रूई अग्नि को प्राप्त हो कर जल जाती है वैसे ही गङ्गा में स्नान करने वाले के पाप नाश हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ स्त्री चाहे पुरुष का जो भी बुरा कर्म हो वे स्नान मात्र से ही नाश हो जाता है इस में संशय नहीं है ॥ १९९ ॥ यदि सैंकड़ों पाप करके भी गङ्गा में स्नान किया है ॥ ८९ ॥ उस को गङ्गा का पानी ऐसे ही नाश कर

देता है जैसे ईन्धन को अग्नि ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र ! फिर स्तुति के योग्य कुरुक्षेत्र में जावे जहां पर सारे जीव दर्शन से ही पापों से छूट जाते हैं ॥ १ ॥ सात वरे के तथा सात परे के और उन से भी जो आगे के पितर हैं उन सब को मनुष्य गङ्गा के स्पर्श दर्शन तथा स्नान से तार देता है ॥ ६२ ॥ मनुष्य की हड्डियां जब तक गङ्गा के पानी में रहती हैं तब तक सहस्रों वर्ष स्वर्ग लोक में रहता है ॥ ३२ ॥ यह है पौराणिक तीर्थों का प्रयोजन । इस को वेदानुकूल सिद्ध करने की कृपा करें ।

२३० (प्रश्न)—"तीर्थैस्तरन्ति इत्यदि अथर्व० १८।४।७" में लिखा है कि बड़ी आपत्ति को तीर्थों से तर जाते हैं । अर्थात् बड़े बड़े भयंकर पापतीर्थों से क्षय हो जाते हैं ।

पृ० २५६ पं० २०।

उत्तर—हां अब के आपने पौराणिक सिद्धान्त की बात कही कि बड़े २ पाप तीर्थों से क्षय हो जाते हैं । किन्तु उपरोक्त वेद मंत्र में इस भाव का प्रकट करने वाला कोई भी पद नहीं हैं । अपितु इस वेद मंत्र में यह प्रति पादन किया गया है कि तरने के साधनों वेद शास्त्रों से लोग मुसीबतों से नजात पा जाते हैं । देखिये मंत्र के अर्थ इस प्रकार से हैं—

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधु र्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

अथर्व० १८।४।७॥

भाषार्थ—तरने के साधनों शास्त्रों वा घाटों आदि द्वारा मनुष्य बहुत गतियों वाली बड़ी २ विपत्तियों वा नदियों

को उस प्रकार से पार करते हैं। जिस से यज्ञ करने वाले सुकर्मी लोग चलते हैं। ऐसा निश्चय है। यहां संसार में यजमान के लिये स्थान उन पुण्यात्माओं ने दिया है जब कि दिशाओं को सत्ता वाले प्राणियों ने समर्थ बनाया है ॥७॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् धर्म्मात्माओं के वेद विहित मार्ग पर चल कर विपत्तियों से पार होवें, धर्मात्मा लोग ही संसार में मान्य होते हैं क्यों कि वे पुरुषार्थी जीव सब दिशाओं को उपकारी बनातें हैं ॥७॥

इस मन्त्र में कहीं भी पाप दूर होने की बात नहीं लिखी। और किये हुये पाप कभी दूर नहीं होते, अपितु उन का फल अवश्य ही भुगतना पड़ता है। देखिये वेद क्या कहता है—

असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति येके चात्महनो जनाः॥ यजु० ४०।३॥

भाषार्थ—जो कोई भी लोग आत्मा के विरुद्ध पापाचरण करने वाले हैं। वे जीते हुये भी दुःख पाते हैं। और मरने पर भी वे ऐसे जन्मजन्मान्तरों को प्राप्त होते हैं जो ज्ञान से रहित अन्धकार से युक्त दुःखमय लोक हैं ॥३॥

यह मन्त्र स्पष्ट रूप से वर्णन करता है कि किये हुये पाप कर्मों का फल अवश्य मिलता है वे टल नहीं सकते। महाभारत में लिखा है कि—

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥२२॥
एवं पूर्वं कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ॥२३॥

स्वकालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥२४॥

( महा० अनु० अ० ७ )

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥

( ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ३७ )

भावार्थ—जैसे हज़ारों गौवों में से बछड़ा अपनी माँ को ढूंढ़ लेता है ॥५२॥ ऐसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्ता को प्राप्त होता है। बिना प्रेरणा के ही जैसे फूल और फल ॥२३॥ अपने समय का उलङ्घन नहीं करते। वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म समय का उलङ्घन नहीं करता ॥२४॥ सौ करोड़ कल्पों तक भी किया हुआ कर्म बिना भोगे क्षय नहीं होता। किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥१७॥ इस से यह तो सिद्ध हो गया कि किया हुआ पाप क्षय नहीं होता, अपितु भोगना पड़ता है। अब देखना यह है कि वे कौन से तीर्थ हैं कि जिन से मनुष्य आपत्तियों तथा दुःखों को तर सकता है। आया वे जल-स्थल रूप तीर्थ हैं या विद्यालय, वेद, शास्त्र, सत्सङ्ग आदि तीर्थ हैं। सो इस विषय में प्रमाण उपस्थित हैं—

मन तीर्थ—मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्म ज्ञान जलेन च ।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत् स्नानं तत्त्वदर्शिनाम् ॥१३॥

( महा० अनु० अ० १०८।१३ )

सत्संग—ब्रजे वाप्यथवारण्ये यत्र सन्ति बहु श्रुताः ।
तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत् ॥९०॥

( महा० वन० अ० १९९ )

आत्मा—आत्मा नदी भारत पुण्य तीर्था
सत्ययोदका धृतिकूलादयोमिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्य कर्मा
पुण्योह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥२१॥
( महा० उद्योग० अ० ३६ )

सत्संग—तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ॥३६॥
( महा० उद्योग० अ० १०४ )

ब्रह्म ध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
दमस्तीर्थंतु परमं भाव शुद्धिपरं तथा ॥२३॥
ज्ञान हृदे ध्यान जले राग द्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥२४॥
( गरुड़० पूर्व अ० ८१ )

योग—यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन हरिचिन्तनम् ॥१२॥
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥१३॥
( गरुड० पूर्व० अ० ५० )

भावार्थ—मन से प्रकाशित ब्राह्मज्ञान रूप जल से जो मन के तीर्थ में स्नान करता है। तत्त्व दर्शियों का यह स्नान है ॥१३॥ घर में वा जंगल में जहां ज्ञानी लोग रहते हैं उसी का नाम नगर है उसी को तीर्थ कहते हैं ॥६०॥ हे भारत आत्मा नदी है। यही पवित्र तीर्थ है। सत्य का इस में जल धैर्य के किनारे तथा दया की लहरें हैं। इसमें स्नान करने वाला पुण्यात्मा पवित्र हो जाता है। आत्मा पवित्र है नित्य निर्लोभ है ॥२१॥ हे राजपुत्र दुर्योधन! विरोध छोड़ दे शांत

हो। तू कृष्ण रूप तीर्थ से अपने कुल की रक्षा कर ॥३६॥ ब्रह्म का ध्यान परम तीर्थ है। इन्द्रियों का निग्रह तीर्थ है। मन का निग्रह तीर्थ है। भाव की शुद्धि परम तीर्थ है। ज्ञान रूप तालाब में ध्यान जल में जो मन के तीर्थ में स्नान करके राग द्वेष रूप मल को दूर करता है। वह परम गति को प्राप्त होता है ॥२२—२४॥ योग से हरि का चिन्तन यौगिक स्नान है ॥१२॥ आत्मा रूप तीर्थ प्रसिद्ध ब्रह्मवादियों ने सेवन किया ॥१३॥

इन प्रमाणों से साफ सिद्ध होगया कि मोक्ष के हेतु जल स्थल स्नान दर्शन मरण आदि तीर्थ नहीं अपितु उपरोक्त तीर्थ ही दुख विनाशक ज्ञान प्रकाशक तथा मोक्ष दायक हैं।

२३१ (प्रश्न)—"सरस्वती सरयुः इत्यदि ऋ० १०।६४।९" इस मंत्र में सरस्वती सरयु आदि नदियों से रक्षा की प्रार्थना की गई है। पृ० २५७ पं० ६।

उत्तर—इस मंत्र में जल स्थल को तीर्थ मानने तथा उन के स्नान, दर्शन, भ्रमण आदि से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन नहीं है। और नही इस मंत्र में नदियों से प्रार्थना की गई है। अपितु इस मंत्र में कृषि यज्ञ का वर्णन है। और इस मंत्र का अर्थात् प्रति पाद्य विषय "विश्वे देवाः" अर्थात् समस्त विद्वान् हैं। अतः इस मंत्र का अर्थ निम्न प्रकार से है—

सरस्वतो सरयुः सिन्धुरूर्मिभि र्महो मही रवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्नवो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९॥
(ऋ० १०।१६४।९)

भाषार्थ—हे विद्वान् लोगो! आपकी कृपा से बड़ी से

बड़ी लहरों सहित सरस्वती सिंधु सरयु आदि २१ प्रकार की नदी हैं वे हमारी खेत सिंचन आदि से रक्षा हेतु आवें और हमारे कृषि यज्ञ में प्राप्त हों और दिव्य शील माता के समान प्रेरणा वाली उन का जल मधुरता युक्त जल है, वे जल देवें ॥६॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उक्त प्रकार की नदियों में से नहरें निकाल कर प्रजा की कृषि को पानी से सिंचन करके उन्हें सुखी बनावें। कहिये महाराज! इस मंत्र में आपके जल स्थल, स्नान, दर्शन, भ्रमण से मोक्ष देने वाले तीर्थों का वर्णन कहां हैं। वास्तव में ये तीर्थ हो भी नहीं सकते क्यों कि जल, स्थल, मोक्ष का हेतु नहीं हो सकते। जैसे—

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यो भूतात्मा बुद्धि र्ज्ञानेन शुद्धयति ॥१०९॥

(मनु० अ० ५)

यमो वैवस्वतं देवो यस्यैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां कुरून्गमः ॥९२॥

(मनु० अ० ८)

जटा भाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः।
भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि ॥ ६३ ॥
गृहारण्य समा लोके गतव्रीडा दिगम्बराः।
चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्तिकिम् ॥६५॥
मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर्यदिमानवाः।
मृद्भस्मवोसौ नित्यं श्वा सकिं मुक्तो भविष्यति ॥६६॥
तृण पर्णोदकाहाराः सततं वन वासिनः।
जम्बूकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्तिकिम्। ६७॥

आजन्म मरणान्तं गंगादि तटिनी स्थिताः ।
मण्डूकमत्स्य प्रमुखा योगिनस्ते भवन्तिकिम् ॥६८।

पारावतशिलाहा हराः कदाचिदपि चातकाः ।
न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्तिकिम् ॥६९॥

तस्मान्नित्यादिकं कर्मलोकरंजन कारकम् ।
मोक्षस्य कारणं साक्षात्तत्वज्ञानं खगेश्वर ॥७०॥
( गरुड़० प्रेत० अ० ४९ )

भावार्थ—जलों से शरीर शुद्ध होता है । मन सत्य से शुद्ध होता है । विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है। और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ॥ १०६ ॥ संसार को नियम में रखने वाला प्रकाशमान देव परमात्मा जो यह हृदय में मौजूद है । यदि तेरा उसके साथ विवाद नहीं है तो न गंगा को जा और न कुरुक्षेत्र को जा ॥ ६२ ॥ जटाओं के भार और मृगछाला से युक्त वेषधारी मक्कार ज्ञानियों की भांति संसार में जल स्थलों में भ्रमण करते हैं और लोगों को भ्रमण करवाते हैं ॥६३॥ जिन के लिये घर और जंगल समान हैं । नंगे लज्जा को छोड़ कर संसार में फिरने वाले गधे क्या विरक्त हो जाते हैं ॥६५॥ भस्म और धूल में लिप्त होने से यदि मनुष्य मुक्त हो जावे, मिट्टी और भस्म में निवास करने वाले कुत्ते की क्या मोक्ष गति होजावेगी ।। ६६ ॥ घास, पत्ते,पानी का आहार करने वाले तथा नित्य वन में रहने वाले गीदड़, चूहे, मृगादि क्या तपस्वी हो जावेंगे ॥६७॥ जन्म से लेकर मरने तक गंगादि नदियों के किनारे रहने वाले मेंढक मछली आदि क्या योगी होजाते हैं ॥६८॥ पत्थरों का आहार

करने वाले कबूतर और कभी भी पृथ्वी का पानी न पीने वाले चातक क्या वे व्रती हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ इस लिये नित्यादि कर्म लोगों को प्रसन्न करने के लिवे हैं। मोक्ष का साक्षात् कारण तो ज्ञान ही है ॥ ७० ॥

अब आप को निश्चय हो गया होगा कि मोक्ष का कारण जल, स्थल, स्नान, दर्शन, भ्रमणादि कारण नहीं हैं। अपि तु ज्ञानादि ही मोक्ष के कारण होने से सच्चे तीर्थ हैं। जैसे—

अगाधे विपुले सिद्धे सत्य तीर्थे शुचि हृदे।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानंतत् परमं स्मृतम् ॥ ३४ ॥
(शिव० उमा० अ० १२)

भाषार्थ—मनुष्य को अति गहरे विशाल तथा सिद्धियों से सम्पन्न सत्य रूपी तीर्थ तथा पवित्रता रूप तालाब में मानसिक स्नान करना चाहिये। वही अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान समझने योग्य है ॥ ३४ ॥

सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता।
तस्मात् पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासुवैः ॥ ४७ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० १७१)

यत्स्नानं ज्ञान सलिलैः शीलमस्म प्रमार्जितम्।
तत्पात्रं सर्वपात्रेभ्य उत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ७६ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० १८७)

भाषार्थ—सब तीर्थों में शांति परम पूजित है। इस लिये पहिले प्रयत्न से हर एक काम में शांति करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

जो ज्ञान के जल से स्नान करना तथा शील की भस्म से मांजना है। यह पात्र सब पात्रों से उत्तम कहा गया है ॥ ७६ ॥

इत्यादि पुराणों में भी सैंकड़ों श्लोक हैं। जो जल स्थल, स्नान, दर्शन, भ्रमण आदि से मुक्ति का खण्डन करके ज्ञान आदि से मुक्ति मानते हैं।

२३२ (प्रश्न)—"इमं मे गंगे यमुने इत्यादि ऋ० १०। ७५।५" इस मंत्र में गंगा यमुना को सेवन करने और प्रार्थना सुनने का वर्णन है। पृ० १५७ पं० १७।

उत्तर—इस मंत्र में भी नदियों में स्नान, दर्शन, स्पर्शन आदि से पाप दूर होने तथा मुक्ति मिलने का वर्णन नहीं है। अपितु इस मंत्र में नदियों की किस्में बयान की गई हैं। ऋषियों ने जिस नदी को जिस प्रकार की देखा वैसे ही उसका नाम वेद में से लेकर रख दिया। इस मंत्र में नदियों के लक्षण और नाम इस प्रकार से वर्णित हैं—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणु ह्यासु षो मया। ऋ० १०।७५।५।

भाषार्थ—हे गंगे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि, परुष्णि, असिक्नी, मरुद् वृधे, वितस्ता, सुषोमा, आर्जीकीये! तुम मेरे इस स्तोत्र को सेवन करो तथा सुनो—

इस मंत्र में से आप कोई एक ही शब्द बतलावें। जिससे इन नदियों में स्नान से पाप नाश तथा मोक्ष प्राप्ति वर्णन की गई हो। रहा नदियों को संबोधित करने तथा स्तुति

सुनने को कहना। सो यह बयान करने की वेद की शैली है कि अचेतनों को भी चेतनों की भांति स्तुति किया जाता है। जैसाकि ईश्वर स्वरूप के बारे में हम विस्तार पूर्वक वर्णन कर आये हैं। इन नदियों के उपरोक्त नाम किन गुणों के कारण होते हैं इसका वर्णन निरुक्त में इस प्रकार से किया जाता है।

अथैकपदनिरुक्तम्—गंगा गमनात्। यमुनाप्रयुवती गच्छतीति वा, प्रवियुतं गच्छतीति वा। सरस्वती सर इत्युदक नाम सर्त्तेस्त द्वती। शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविण्याशु तुन्नेव द्रवतीति वा।

इरावतीं परुष्णीत्याहुः—पर्ववती भास्वती कुटिला गामिनी।

असिक्न्यशुक्लासिता—सितमिति वर्ण नाम तत्प्रतिषेधोऽसितम्।

मरुद्वृधाः सर्वा नद्यो मरुत एना वर्द्धयन्ति वितस्ताऽविदग्धाविवृद्धा महाकूला। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः। ऋजीक प्रभवावर्जुं गामिनीवा, सुषोमा सिन्धु पंदेना भि प्रसुवन्तिनद्यः। सिन्धुः स्यन्दनात्॥ १॥

(निरु० अ० ६ ख० २६)

भावार्थ—अब एक २ पदका निरुक्त कहते हैं। गगन से गंगा अर्थात् गति वा चाल वा बहाव जिस का प्रशंसित हो उसका नाम गंगा। जोड़ती हुई चलने वा जुड़ी हुई चलने वाली यमुना। सर यह पानी का नाम है उत्तम जल वालो का नाम सरस्वती। शीघ्र भागने वाली शीघ्र व्यथित सी चलने वाली शुतुद्री जानो। पर्वों जोड़ों वाली, प्रकाश वाली, कुटिल

गामिनी को परुष्णा जानो। अशुक्ला वा असिता होने से असिक्ता। सित वर्ण का नाम है। उसका उलट असित। मरुद्वृधा सब नदी हैं। क्योंकि मरुत् इनको बढ़ाते हैं। विद-ग्धा वा विशेष बड़ी वा बड़े किनारों वाली को वितस्ता जानो। ऋजु गामिनी को अर्जीकीया जानो। वाऋजीक पर्वत से निकले उसको। सिन्धु उस को कहते हैं जिस में सब नदियां गिरें वा जो विशेष तौर से बहे।

इस निरुक्त के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि इन इन लक्षणों वाली नदी होती हैं। और जिस २ नदी में जो जो लक्षण पाये गये लोक में उस २ नदी को पीछे से उस २ नाम से पुकारने लगे। जैसे कि निरुक्तकार ने दो जगह स्वयं कहा है कि अर्जिकीया ऋजुगामिनी होने से विपाशा का नाम पड़ गया और पर्वों वाली आदि लक्षणों से इरावती का दूसरा नाम परुष्णी पड़ा।

इस से यह जानना चाहिये कि वेद में आये गंगादि नाम भागीरथी आदि का वाचक नहीं किन्तु वेदोक्त लक्षण युक्त होने से भागीरथी आदि के गंगा आदि नाम पीछे से प्रचलित हुए हैं।

इस से सिद्ध है कि वेद में जल स्थल के स्नान, दर्शन भ्रमणादि को तीर्थ नहीं माना गया अपितु ज्ञान योग सत्संगादि को तीर्थ माना गया है। और पुराण भी उसका अनुमोदन करते हैं।

अब हम आपको पौराणिक तीर्थों का अनुपयोग उनही के पुराणों से दिखाते हैं कि इन की मियाद भी समाप्त होचुकी

है। जैसे—

नन्द उवाच—तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्टंत्येव कियद्दिनम्।
साधवो ग्राम्य देवाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक ॥३१॥
श्रीकृष्ण उवाच – कलौदश सहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम् ॥३२॥
तदर्धमपि तीर्थानि गंगा दीनि सुनिश्चितम्।
तदर्धं ग्राम देवाश्च वेदाश्च विदुषामपि ॥३३॥
( ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ६० )

भाषार्थ—नन्द ने पूछा कि हे बेटा ये सारे तीर्थ कितने दिन तक ठैरेंगे। तथा साधु ग्रामों के देवता तथा शास्त्र ये कितने दिन तक ठैरेंगे ॥३१॥ कृष्ण जी ने कहा कि कलियुग में दश हज़ार बरस तक हरि पृथिवी पर ठैरेंगे। और मूर्ति पूजा शास्त्र और पुराण भी दश हज़ार वर्ष ठैरेंगे ॥३२॥ इस से आधा समय अर्थात् पांच हज़ार तक निश्चय रुप से गंगा आदि तीर्थ ठैरेंगे उससे भी आधे समय तक अर्थात् ढाई हज़ार वर्ष तक ग्रामों के देवता ठैरेंगे तथा वेद और विद्वान् भी ढाई हज़ार वर्ष तक ठैरेंगे।

इस समय कलियुग के ५०३४ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस से पुराणों के कथनानुसार अब कोई गङ्गादि तीर्थ पृथिवी पर मौजूद नहीं है। अतः पौराणिकों को चाहिये कि वे तीर्थों को सिद्ध करने के स्थान में उनकी अंत्येष्टि आदि क्रिया कर्म में विशेष ध्यान दें।

२३३ (प्रश्न)—स्वामी जी कहते हैं कि पण्डों के बही खाते देख लो उन से मालूम हो जावेगा कि तीर्थ थोड़े ही

काल से बने हैं। पण्डों की बही क्यों देखें। ईश्वर का बही खाता वेद क्यों नहीं देखें जिस में तीर्थों का महत्त्व भरा है। क्या स्वामी जी की दृष्टि में वह पण्डों के बही खाते के तुल्य भी महत्त्व नहीं रखता। पृ० २५६ पं १८।

उत्तर—स्वामी जी तीर्थ मानते हैं, वेद शास्त्र अध्ययन सत्सङ्ग, ज्ञान, ध्यान आदि को, जो मनुष्य को सांसारिक दुःखों से तराने का हेतु हैं, या मानते हैं किश्ती को, जो जलों से तराने का हेतु हैं। और पुराण मानते हैं तीर्थ जलों और स्थलों को, और उन में स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से मानते हैं मुक्ति। स्वामी जी के माने हुए तीर्थों का तो वेदों में वर्णन है। किन्तु पौराणिक तीर्थों का वेदों में कतई वर्णन नहीं है। इस का सबूत स्पष्ट है कि आपने जितने भी वेद मन्त्र दिये हैं उन में से आप के किये अर्थों के अनुसार एक वेद मन्त्र भी जल स्थल में स्नान दर्शनादि से पापों का क्षय और मोक्ष की प्राप्ति वर्णन नहीं करता। अतः स्वामी जी ने लिखा है कि आज कल जो जल, स्थल, तीर्थ, पाप नाशक और मुक्तिदायक माने जाते हैं। वे प्राचीन नहीं हैं अपि तु उन की कल्पना एक हज़ार वर्ष से इधर उधर हुई है। क्योंकि पण्डों के पास एक हज़ार वर्ष से अधिक कोई भी लेख मौजूद नहीं है। अतः स्वामी जी का लिखना ठीक है। आप में हिम्मत हो तो एक हज़ार वर्ष से प्राचीन कोई ताम्र पत्र या बही खाता इन तीर्थों की प्राचीन स्थिति के सबूत में पेश करें।

२३४ (प्रश्न)—इस मन्त्र का तो समस्त भाष्यकारों ने

यह अर्थ किया है कि रुद्र आप समस्त तीर्थों में विचरते हैं। इस कारण आप तीर्थ हैं। आप को मैं प्रणाम करता हूं। अब आर्य्य समाजी विचारें कि "नमस्तीर्थाय च" इस में तीर्थ का खण्डन है या मण्डन ॥ पृ० २६० पं० ४ ॥

उत्तर-- श्रीमान् जी ! तीर्थ शब्द पर तो कोई झगड़ा ही नहीं है। झगड़ा तो तीर्थ शब्द के अर्थ पर तथा उस से पाप नाश और मोक्ष प्राप्ति पर है। यद्यपि हम इस मन्त्र के सत्य अर्थ (नं० २२८) में कर आये हैं। तथापि यदि आपके और आप के पौराणिक भाष्यकारों के अर्थ को ही सामने रखा जावे तो भी उस से आप की प्रयोजन सिद्धि नहीं होती। क्योंकि इन अर्थों से न तो यह सिद्ध होता है कि गङ्गादि नदियों या कुरुक्षेत्रादि स्थलों का नाम तीर्थ है, और न ही इन में स्नान, भ्रमण, मरणादि से पाप नाश तथा मोक्ष होने का वर्णन है। रुद्र के समस्त तीर्थों में विचरने तथा रुद्र को तीर्थ मानने से तो पौराणिक जल-स्थलों की तीर्थ सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि हम आप के अर्थों के अनुसार भी यह कह सकते हैं कि "रुद्र सत्य, ज्ञान, ध्यान, शास्त्रादि तीर्थों में विचरने से स्वयं भी तीर्थ रूप थे" अतः उपरोक्त मन्त्र हर एक अवस्था में पौराणिक तीर्थों का खण्डन ही करता है। आप में हिम्मत हो तो वेद का कोई ऐसा मन्त्र पेश करें कि जिस से यह साबित हो सके कि "गङ्गा, कुरुक्षेत्र आदि जल-स्थलों में स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से पाप नाश तथा मोक्ष प्राप्ति होती है।

२३५ (प्रश्न)—रही बात 'समान तीर्थे वासी' इस सूत्र

की, इसके ऊपर तत्व बोधिनीकार लिखते हैं 'तीर्थ शास्त्र-ध्वर क्षेत्रोपायोपाध्याय मंत्रिषु योनौ जलावतारे च इति विश्व, शास्त्र, मार्ग क्षेत्र उपाय उपाध्याय मंत्री योनि जलावतार इन का नाम तीर्थ है। पृ० २६० पं० ७।

उत्तर—प्रथम तो आपने तत्व बोधिनी तो दे दी किन्तु सिद्धान्त कौमुदी के जिस पाठ पर तत्व बोधिनी है उसे हज़म कर गये। मूल के बिना टीका किसकी। लीजिये हम पहिले सिद्धान्त का मूल पाठ बतलाते हैं, देखिये—

समान तीर्थे वासी (४-४-१०७)

साधुः इति निवृत्तम्। वसतीति वासी। समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः। सिद्धान्त कौमुदी तद्धिते प्राग्वि-धीय प्रकरणम्।

इसमें सिद्धान्त कौमुदी वाले ने स्पष्ट लिखा है कि 'तीर्थ नाम गुरु का है'

दूसरे आपने तत्व बोधिनी टीका नहीं दिखाई। केवल कोष का प्रमाण दिखाया है। सो कोष में तीर्थ का अर्थ उपाध्याय कोष में मौजूद है। और उसी का इस सूत्र के साथ संबन्ध है। तीसरे तीर्थ शब्द के कितने अर्थ होते हैं इस कोष के अर्थों में भी आपने चालाकी से काम लिया है। कोष में आपने मार्ग कौन से शब्द का अर्थ किया है वहां तो "अध्वरक्षेत्र" शब्द है जिसका अर्थ है "यज्ञस्थल" आपने अध्वर का अर्थ मार्ग करके क्षेत्र को भिन्न दिखाकर धोका दिया है। चौथे—जलावतार का आपने अर्थ क्यों नहीं किया, जलावतार के अर्थ हैं जल से पार लेजाने वाली किश्ती

अतः कोष के यह अर्थ हुये कि "शास्त्र, यज्ञस्थल, उपाध्याय, मंत्रि, योनि, किश्ती" ये अर्थ तीर्थ शब्द के हैं। आपके इस लेख से स्वामी जी के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। जसा कि—

'( प्रश्न ) तो कोई तीर्थ नाम स्मरण सत्य हैं वा नहीं।

उत्तर—है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का सत्संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य्य, आचार्य्य, अतिथि, माता पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्म युक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभगुण, कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थल मय हैं। वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानितीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उन का नाम तीर्थ हैं। जल स्थल तराने वाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है। क्योंकि उन से समुद्रादि को तरते हैं" ( सत्यार्थ० समु० ११ )

स्वामी जी के इस सिद्धान्त की ताईद वेद, धर्म्म शास्त्र, इतिहास यहाँ तक कि पुराण भी करते हैं, यह हम दिखा चुके हैं।

२३६ ( प्रश्न )—क्या कोई सनातन धर्म्मी यह कहता है कि तीर्थ शब्द से केवल जल समूह का ही ग्रहण हैं शास्त्रादिकों का नहीं। पृ० २६० पं० १०।

उत्तर—तीर्थ शब्द के अर्थ जल स्थल के बिना और

भी होते हैं। चाहे सनातन धर्म्मी यह मानते भी हों तो भी वे पाप काटने और मोक्ष होने में तीर्थों के मुक़ाबले में वेद शास्त्रादि किसीं चीज़ की ज़रूरत नहीं समझते । क्योंकि वेद शास्त्र के तीर्थ मानने से तो गंगादि में स्नान का तथा काशी आदि निवास का कोई विशेष महत्त्व रहता ही नहीं। जल स्थल तीर्थों का तो महत्त्व ही इस बात में माना जाता है कि उनमें स्नान, दर्शन, स्मरण, भ्रमण, निवास, मरण मात्र से ही जन्म जन्मान्तर के पाप कट कर मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी भी मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि—

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव जन्तूनां हेतु मोक्षस्य सर्वथा ॥ ७ ॥
अत्रतीर्थे विशेषोऽस्त्यविमुक्ताख्ये पुरोत्तमे।
श्रूयताँ तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया ॥ १३ ॥
सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बाल यौवन वार्द्धकाः।
अस्याँ पुर्यां मृताश्चेत् स्युर्मुक्ता एव न संशयः ॥ १४ ॥
अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा।
विधवा वाथवा वंध्या रजोदोषयुतापि वा ॥ १५ ॥
प्रसूता संस्कृता वापि यादृशी तादृशी द्विजाः।
अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षमाङ् नात्र संशयः ॥ १६ ॥
स्वेदजश्चाण्डजो वापि ह्युद्भिजोऽथजरायुजः।
मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित् ॥ १७ ॥
ज्ञानापेक्षा न चात्रैव मत्क्यपेक्षा न वै पुनः।
कर्मापेक्षा न देव्यत्र दाना पेक्षा न चैव हि ॥ १८ ॥
संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित्।
नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां कथात्र न ॥ १९ ॥

ममक्षेत्रे मोक्षदे हि योवा वसति मानवः ।
यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम् ॥ २० ॥
( शिव० कोटि रुद्र० अ० २३ )

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका॥ ५ ॥
पुरी द्वारवतीज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ ६ ॥
( गरु० प्रेत० अ० ३८ )

नर्मदा—तर्पयित्वापितॄन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ५१ ॥
वसिष्ठाश्रम—तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ५६ ॥
पिङ्गतीर्थ—पिंगतीर्थमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियः ।
कपिलानां नर श्रेष्ठ शतस्य फलमश्नुते ॥ ५७ ॥
ततो गत्वा सरस्वत्याः सागरस्य च संगमे ॥ ६० ॥
गो सहस्र फलं तस्य स्वर्गलोकं चविन्दति ॥ ६१ ॥
पिंडारके नरः स्नात्वा लभेद्बहु सुवर्णकम् ॥ ६५ ॥
सागरस्य च सिंधोश्च संगमं प्राप्य भारत ॥ ६८ ॥
प्राप्नोति वारुणं लोकं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ६९ ॥
द्रिमीतीर्थ—जन्मप्रभृति यत्पापं तत् स्नातस्य प्रणश्यति ॥ ७३ ॥
वसु धारा—गमनादेव तस्यां हि हयमेधफलं लभेत् ॥ ७६ ॥
पंच नद—पंचयज्ञानवाप्नोति क्रमशोऽयेनुकीर्तिताः ॥ ८३ ॥
वासव—सर्वपाप विशुद्धात्मा गच्छेत् परमां गतिम् ॥ ८८ ॥
नागभवन—तत्र स्नात्वा नरोनूनं वाजपेयमवाप्नुयात् ॥
सर्व पापविशुद्धात्मा गच्छेच्च परमां गतिम् ॥ ९१ ॥
( महा० वन० अ० ८२ )

भाषार्थ—यह काशी मेरा सदा से गुप्ततर क्षेत्र है । जो कि सर्वथा सर्व प्राणियों के लिये मोक्ष का हेतु है ॥ ७ ॥

इस विमुक्ताख्य तीर्थ में विशेष उत्तमता है। हे देवि ! तुम्हें चित्त देकर सुननी चाहिये ॥ १३ ॥ सारे वर्ण सब आश्रम बालक जवान बूढ़े यदि इस पुरी में मरें तो मोक्ष को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो, कन्या हो चाहे विवाही हो, विधवा हो, वा बंध्या हो, चाहे रजो दोष से दूषित हो ॥ १५ ॥ प्रसूता हो, असंस्कृता हो, वा जैसी कैसी हो इस क्षेत्र में यदि मर जावे तो मोक्ष भागिनी होगी इस में संशय नहीं ॥ १६ ॥ स्वेदज हो, वा अंडज हो, अद्भिज हो वा जरायुज हो जैसे मर कर यहां मोक्ष को प्राप्त होता है वैसा कहीं नहीं ॥ १७ ॥ यहां ज्ञान की ज़रूरत नहीं न यहां पर भक्ति की अपेक्षा है। हे देवि ! न यहां कर्म की अपेक्षा है, न ही दान की अपेक्षा है ॥ १८ ॥ न संस्कार युक्त होने की ज़रूरत है और यहां पर न कभी ध्यान की अपेक्षा है न यहां पर नाम की अपेक्षा है न पूजा की ज़रूरत, न यहां सुजाति होने की अपेक्षा है ॥ १९ ॥ मेरे मोक्ष देने वाले नेत्र में जो भी मनुष्य बसता हैं जैसे कैसे भी मरा हुआ निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका तथा द्वारवती पुरी ये सात मोक्ष के देने वाले हैं ॥ ५-६ ॥ नर्मदा नदी में पितरों तथा देवों का तर्पण करके अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ एक रात वसिष्ठाश्रम में निवास करने से सहस्र गौ दान के फल को पाता है ॥ ५६ ॥ पिंग तीर्थ में स्नान से सौ कपिला दान के फल को पाता है ॥ ५७ ॥ तब सरस्वती और सागर के संगम में जाकर ॥६०॥ हज़ार गौ दान के फल को तथा स्वर्ग लोक को प्राप्त होता

है ॥ ६१ ॥ पिंडारक स्नान करके मनुष्य बहुत सोने को प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ हे भारत सागर और सिंधु के संगम को प्राप्त होकर ॥ ६८ ॥ अपने तेज से दीप्त वरुण लोक को प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥ द्रिमी तीर्थ में स्नान करके जन्म भर के पाप को नाश कर लेता है ॥ ७३ ॥ पंचनद में स्नान करने से पंच महा यज्ञ के फलों को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ वसुधारा में जाने मात्र से ही अश्वमेध के फल को पाता है ॥ ७६ ॥ वासव तीर्थ में स्नान से सब पापों से मुक्त होकर शुद्धात्मा परमगति को प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ नागभवन तीर्थ में स्नान करने से निश्चय मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त होता है। सब पापों से छूट शुद्धात्मा होकर परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६१ । इत्यादि हज़ारों प्रमाण हैं जो कि जल स्थल में स्नान दर्शन निवास भ्रमण मरण मात्र से पाप का छूटना और मोक्ष को प्राप्त होना मानते हैं । क्या सनातन धर्म्म में कोई माई का लाल ऐसा पैदा हुआ है जो इस प्रकार के तीर्थों को वेदों में से सिद्ध कर सके—रहा ऋषि दयानन्द जी का सिद्धान्त उस को जहां वेद प्रतिपादन करते हैं। वहां सनातन धर्म के समस्त ग्रन्थ भी स्पष्ट शब्दों में मानते हैं। जैसे कि—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥ ९ ॥

प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केन चित् ।
अहंकार निवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥

अकल्कका निरारंभो लब्धाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११ ॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः ॥
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ १२ ॥

( महा० वन० अ० ८२ )

भाषार्थ—जिसके हाथ और पैर तथा मन क़ाबू में है । और जिसके पास विद्या तप और कीर्ति है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ ९ ॥ जो दान नहीं लेता जिस प्रकार से संतुष्ट है अहंकार से मुक्त है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ १० ॥ जो बुद्धिमान् शीघ्रकारी भोजन संतुष्ट तथा जितेन्द्रिय और सब पापों से मुक्त है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! जो क्रोध से हीन, सत्यशील, दृढ़ प्रतिज्ञ, सब प्राणियों को आत्मा के समान देखने वाला है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ १२ ॥ कहिये महाभारत ऋषि के सिद्धान्त का अक्षरशः अनुमोदन करता है या कि नहीं 'अतः इस सारे लेख का परिणाम यह है । कि—

( १ ) पौराणिक सनातन धर्म्म के सिद्धान्त में जल स्थल में स्नान दर्शन भ्रमण निवास मरण आदि से पापों का दूर होना तथा मोक्षप्राप्ति का नाम तीर्थ है। इसमें ज्ञानादि साधनों की अपेक्षा नहीं ।

( २ ) वैदिक सिद्धान्तानुसार ज्ञान शास्त्र सत्संगादि तीर्थ हैं तथा किश्ती नाम भी तीर्थ हो सकता है जल स्थल का नाम तीर्थ नहीं।

( ३ ) वेदों में कहीं भी जल स्थल को तीर्थ नहीं कहा।

( ४ ) वेदों में कहीं भी जल स्थल स्नान भ्रमण आदि से मोक्ष नहीं माना।

( ५ ) वेदों में जहां गंगा यमुना सरस्वती सिंधु आदि नाम आते हैं वहां नदियों की क़िस्में तथा लक्षण और उनका उपयोग वर्णन है। न उनको तीर्थ कहा है न उनको पाप नाशक माना है और न ही उनको मोक्ष का साधन वर्णन किया है।

( ६ ) वेदों में जहां जहां तीर्थ शब्द आया है वहां वहां ज्ञान वेद शास्त्र सत्संग माता पिता गुरु आदि का नाम है, जल स्थल का नहीं। क्योंकि मनुष्य को दुःख सागर से ज्ञानादि ही तैरा सकते हैं, जल स्थल नहीं।

( ७ ) वेद की आज्ञा है कि ब्रह्म के ज्ञान से ही मोक्ष हो सकता है अन्यथा नहीं। जैसा कि—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णंतमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
( यजु० ३१। १८ )

भाषार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष! मैं जिस इस पूर्वोक्त बड़े २ गुणों से युक्त सूर्य के तुल्य प्रकाश स्वरूप अंधकार वा अज्ञान से पृथक् वर्तमान स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को जानता हूं। उसी को जानकर आप दुखदायी मृत्यु को जीत सकते हैं इससे भिन्न और कोई मार्ग मोक्ष प्राप्ति का नहीं है।

अतः ऋषि दयानन्द जी का सिद्धान्त वेदानुकूल होने से सत्य तथा पौराणिक सिद्धान्त वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है।

———

# पाप मोचन

२३७ ( प्रश्न )—जब यह मनुष्य संसार में दुःखी होता है। या अन्यों को दुःखी देखता है। तब यह अपने दुःख दूर करने की आवाज़ों को ईश्वर के पास पहुंचाता है। इस आवाज़ पहुंचाने की विधि और इस क्रन्दन को सुन कर जगदीश्वर मनुष्य के दुःख को दूर करता है। पृ० २६०पं०२२।

(उत्तर)—परमात्मा न्यायकारी है। वह जीवों को उनके कर्मों का फल यथावत् देता है। यदि कोई मनुष्य अपने या दूसरों के दुःखों को देख कर अपने किये हुए पापों की क्षमा के लिये ईश्वर के सामने गिड़गिड़ाता है। तो उसका गिड़-गिड़ाना फ़िज़ूल है। परमात्मा किये हुवे कर्मों का अवश्य फल देंगे। हां उसकी प्रार्थनाओं का यह फल हो सकता है कि वह अपनी पाप करने की वृत्तियों को नाश करके भविष्य में पाप करना छोड़ दे। बस जहां २ वेदों में पाप मोचन की प्रार्थनायें हैं। उनका यही प्रयोजन है कि जीव आत्मा से प्रतिज्ञा करता है कि मैं भविष्य में पाप न करूंगा।

२३८ (प्रश्न)—"तच्चक्षुर्देवहितमित्यादि यजु०३६।२४" इस मंत्र में अपने स्वतंत्र जीवन और इन्द्रियों के पुष्ट होने की सूर्य्य से प्रार्थना की है। पृ० २६० पं० २६।

(उत्तर)—इस मंत्र में सूर्य्य से नहीं अपितु परमात्मा से ही प्रार्थना की गई है। क्योंकि सूर्य्य जड़ है। और हमारी भांति ईश्वर का ही बनाया हुवा है। प्रार्थना करने का प्रयोजन यह है कि "जिन पदार्थों के लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। गोया हम परमात्मा के सामने इस बात की प्रतिज्ञा

करते हैं कि हम इन पदार्थों की प्राप्ति के लिये यत्न करेंगे" इस मंत्र में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसके यह अर्थ हों कि परमात्मा किये हुवे पापों को क्षमा कर देता है । इस मंत्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार से हैं—

तच्चक्षुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।
( यजु० ३६।२४ )

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! आप जो विद्वानों के लिये हितकारी शुद्ध नेत्र के तुल्य सब के दिखाने वाले पूर्वकाल अर्थात् अनादिकाल से उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं। उस चेतन ब्रह्म आप की कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें जीवें, सौ वर्ष तक शास्त्रों वा मंगल वचनों को सुनें, सौ वर्ष पर्यन्त पढ़ायें वा उपदेश करें सौ वर्ष पर्य्यन्त दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें जीवें सुनें पढ़ें उपदेश करें और अदीन रहें ॥२४॥ कहिये महाराज ! इस में पाप मोचम कहां वर्णन किया गया है। श्रीमान् जी ! वेद में पाप मोचन की आज्ञा नहीं है अपितु वेद पाप कर्मों का फल अवश्य देना वर्णन करता है जैसेः—

असुर्य्या नाम ते लोका अंधेन तमसा वृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति येके चात्म हनोजनाः ॥ यजु० ४०।३ ॥

भाषार्थ—जो लोक लोकान्तर वा जन्म जन्मान्तर अत्यन्त अज्ञानमय वा दुखमय हैं । उन लोकों को मरने के पश्चात् भी वह लोग जाते हैं जो कोई आत्मा का हनन करने वाले अर्थात् पापाचारी जन ॥३॥

२३६ ( प्रश्न )—"सुमित्रया न आप इत्यादि यजु० ३६।२३" इस मंत्र में परमात्मा से औषधियों के हमारे लिये मित्र तथा शत्रु के लिये अमित्र होने की प्रार्थना है। पृ० २६१ पं० १२।

उत्तर—आप अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध करते हुवे प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आ रहे हैं। इस मंत्र में भी पाप मोचन का क़तई जिकर तक भी नहीं है। न मालूम इन दोनों मंत्रों के देने से आप को क्या प्रयोजन सिद्धि हुई है। इस मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है कि—

सुमित्रया न आप ओषधय; सन्तु दुर्मित्रया—
स्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥यजु०६३।२३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह प्राण वा जल जौ आदि औषधियां हमारे लिये सुन्दर मित्र के समान होवें वे ही जो अधर्म्मी हम धर्मात्माओं से द्वेष करें और जिस से हम लोग द्वेष करें उसके लिये शत्रु के तुल्य विरुद्ध होवें ॥ २३ ॥

भावार्थ—जैसे अनुकूलता से जीते हुवे इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देश काल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुखदायी होते हैं ॥ २३ ॥

यहाँ वेद में पाप मोचन का वर्णन तो कहां धर्म्म से द्वेष करने वाले पापियों के लिये ओषधियों के शत्रुवत् विरुद्ध होने की प्रार्थना है। तथा वेद में भगवान् स्वयं कहते हैं कि—

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षोयत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इत्वापहन्मसि ॥ अथर्व० ८।२।१२॥

भाषार्थ—दान न करने का भाव दुखमय अवस्था दूर रहे। न छोड़ने वाली पीड़ा मांसभक्षक और रुधिर पान करने वाले और जी दुखदायी दुष्ट प्राणी हैं वे सब अंधकार के समान नष्ट कर देता हूं ॥१२॥ इससे साफ सिद्ध है कि परमात्मा पापियों को अवश्य दण्ड देते हैं।

२४० (प्रश्न)—"तनूपाऽग्नेऽसीत्यादि यजु० ३। १७" इस मंत्र में अग्नि से शरीर को रोग आदि से रक्षा करने दीर्घ आयु करने तेज देने आदि की प्रार्थना की गई है।

पृ० २६१ पं० २०

उत्तर—इस मंत्र में भी पाप मोचन का वर्णन नज़र नहीं आता अपितु अग्नि अर्थात् परमात्मा से आयु आदि की प्रार्थना है। जैसा—

तनूपा अग्नेऽसि तन्वंमे पाह्यायुर्दा अग्नेस्यायुर्मेदेहि।
वर्चोदा अग्नेसि वर्च्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥ यजु० ३। १७॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जिस कारण आप सब मूर्तिमान पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले हैं। इससे आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर जैसे आप सब को आयु के देने वाले हैं। वैसे मेरे लिये पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन दीजिये। हे सर्व विद्यामय ईश्वर! जैसे आप सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले हैं वैसे मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक पूर्ण विद्या को दीजिये। हे सब कामों को पूर्ण करने वाले परमेश्वर! मेरे शरीर में जितना बुद्धि बल और शौर्यादि गुण कर्म हैं उतना अंग मेरा अच्छे प्रकार

पूर्ण कीजिये ॥ कहिये महाराज ! इस मंत्र में पाप मोचन को वर्णन करने वाले कौन से पद हैं । परमात्मा पाप मोचक नहीं अपितु पापियों को दण्ड देकर रुलाने के कारण रुद्र कहाते हैं जैसे कि—

रुद्रस्य ये मीळहुषः सन्ति पुत्रा यांश्चोनु दाधृवि भरध्यै ।
विदे हि माता महो महीषा सेत्पृश्निः सुभ्व गर्ममाधात्
॥ ऋ० ६ । ६६ । ३ ॥

भाषार्थ—एक दानवीर पापियों को दण्ड देकर रुलाने वाले रुद्र देव के जो अनेक पुत्र हैं । और जिन के निश्चय से भरण पोषण पालन करने की सब शक्ति वह एक अद्वितीय रुद्र धारण करता है । इस महान रुद्र की शक्ति को वह प्रकृति रूपी बड़ी माता प्राप्त करती है । और जीवों की उत्तम अवस्था होने के लिये वह विविध रंग रूप वाली प्रकृति माता निश्चय से जीवों को गर्भ में धारण करती है ॥३॥

परमात्मा का रुद्र नाम ही इस बात को सिद्ध करता है कि वह पापियों के पाप को मोचन नहीं करता अपितु उन के पापों का दण्ड देकर उनको रुलाता है ।

२४१ (प्रश्न)—"नमस्तेऽग्ने ओजसे इत्यादि साम० पू० १ । १ ।" इस मंत्र में अग्नि से शत्रुओं के नाश करने की प्रार्थना की गई है । पृ० २६२ पं० ५ ।

उत्तर—आप भी अजीब आदमी हैं । प्रतिज्ञा तो करते हैं पाप मोचन सिद्ध करने की । किन्तु उस की सिद्धि के लिये मंत्र एक भी पेश नहीं कर सकते । भला बतलाइये । इस मंत्र में वे कौन से पद हैं जो यह बतलाते हों कि परमात्मा

पापों को क्षमा कर देता है। अपितु इस मंत्र में आपके अर्थ के अनुसार ही धर्म्म के शत्रुओं अर्थात् पापियों को नाश करने की प्रार्थना की गई है। मंत्र के ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

नमस्ते अग्ने ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥ साम० खं० । २ । १ ।

भाषार्थ—हे अग्ने ! हे देव ! परमात्मन् ! मनुष्य तुझे बल के लिये नमस्कार करते हैं तू बलों से धर्म के शत्रु को पीड़ित कर। भक्त भगवान से प्राण मांगते हैं और बन्दना करते हैं कि खल दण्डित हों ॥१॥

इस मंत्र में पाप मोचन नहीं अपितु पापियों को दण्ड देने का वर्णन है वास्तव में यह पाप मोचन का सिद्धान्त वैदिक है ही नहीं। और वेद ही क्या इस ग़लत सिद्धान्त का सभी खंडन करते हैं। जैसे—

यदा चरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥६॥
(वाल्मी० अयो० स० ६३)

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्य्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥८॥
(वाल्मी० अरण्य० स० २६)

भाषार्थ—हे कल्याणि ! यदि जो कुछ भी शुभ अशुभ करता है। हे भद्रे ! करने वाला वही अपने किये कर्मों के फल को प्राप्त होता है।६। करने वाला अपने पाप कर्मों का फल घोर काल आने पर अवश्य प्राप्त करता है। जैसे मौसम

आने पर वृक्ष फूलों को प्राप्त होते हैं ॥८॥ अतः पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध और मिथ्या है। और जनता को पाप करने के लिये उत्साहित करने में साधन है।

२४२ (प्रश्न)—'यद् ग्रामे यदरण्ये इत्यादि यजु० ३।४५' यह मंत्र पढ़ कर पाप नाशक देवता ईश्वर को हवि दी जाती है। पृ० २६२ पं० १०।

उत्तर—इस मंत्र में भी यह बात नहीं है कि ईश्वर पाप क्षमा कर देता है। अपितु आपके अर्थ के अनुसार ही इससे यह बात सिद्ध होती है कि 'पाप को हम क्षय करते हैं' अर्थात् हम पाप करना छोड़ते हैं। हम पाप करना छोड़ दें इस में तो कोई विवाद ही नहीं है। विवादास्पद तो यह विषय है कि ईश्वर किये हुए पापों को मोचन कर देता है वा नहीं। सो इस बारे में आप अभी तक एक मंत्र भी पेश नहीं कर सके। इस मंत्र का ठीक २ अर्थ इस प्रकार से है कि—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकमा वयमिदन्तदव यजामहे स्वाहा॥ यजु० ३।४५।

भाषार्थ—कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग, जो गृहस्थों से सेवित ग्राम वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो, विद्वान लोग जिस सभा की सेवा करते हों और योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों, उस में स्थित होके जो पाप वा अधर्म्म करा वा करेंगे, सो सब दूर करते रहें तथा जो २ उन २ उक्त स्थानों में सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण करना योग्य है, उस २ को प्राप्त होते रहें ॥४५॥

भावार्थ—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन, वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा का प्रचार कर के प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥४५॥

इस मन्त्र में पाप तथा अधर्म की वृत्तियों को बदल कर भविष्य में पाप न करने तथा धर्म्म आचरण करने का प्रतिपादन है। किये हुये पापों के क्षमा होने का वर्णन नहीं है। और न ही किये हुये पाप क्षमा हो सकते हैं। अपितु किये हुये कर्मों का पाप अवश्य भोगना पड़ता है और सभी ग्रन्थ इस की ताईद करते हैं। जैसे—

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
ऋतः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥२५॥
( बाल्मी० युद्ध० स० १११)

यत्करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम।
अवश्यं सत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥
( महा० वन० अ० २०८ )

भाषार्थ—पाप कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है। हे पते! समय आने पर कर्ता फल पाता है इस में संशय नहीं है ॥२५॥ हे उत्तम पुरुष! जो कोई शुभ या अशुभ कर्म करता है वह पुरुष अवश्य ही उस के फल को प्राप्त होता है इस में संशय नहीं है।

अतः सिद्ध हुआ कि पाप मोचन सिद्धांत वेद विरुद्ध होने से पाप जनक है।

२४३ (प्रश्न)—"अग्नेरक्षाणो इत्यादि साम० पू० १।१"

इस मंत्र में प्रार्थना है कि हे अग्निरूप परमेश्वर तुम हम को पाप से रक्षा करो। पृ० २६२ पं० १७।

उत्तर—इस मंत्र में भी आप के अर्थों के अनुसार भी पाप मोचन का वर्णन नहीं है अपितु "हमको पाप से रक्षा करो" अर्थात् पाप करने से बचाओ, ऐसा वर्णन है। और "परमात्मा को धर्म्म के शत्रुओं के मारने वाला तपाने वाला तथा भस्म करने वाला" वर्णन किया गया है। किये हुवे पापों को क्षमा करने वाला नहीं बताया। ऐसी सूरत में दुष्टों पापियों को दण्ड देने वाला तथा हम को पाप करने से रक्षा करने वाला वर्णन होने से यह मन्त्र हमारे सिद्धान्त का अनुमोदन तथा आपके सिद्धान्त का खण्न करता है। मंत्रार्थ इस प्रकार हैं—

अग्ने रक्षाणो अꣳ हसः प्रति स्मदेव रीषतः।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ साम० पृ० १।३।४ ॥

भाषार्थ—हे उपास्य देव प्रभो! हे अग्ने! स्व प्रकाश! हमें पाप और पापी हिंसक शत्रु से रक्षा कर, बचा और कभी हीन बल न होने वाला तू तपाने वाले तेजों शस्त्रों से पापो को भस्म कर डाल ॥ ४ ॥ कहिये इस मंत्र में पाप मोचन वर्णन करने वाले कौन २ से पद हैं। हैं ही नहीं और हों भी कैसे जबकि पाप क्षमा होते ही नहीं अपितु किये कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता हैं। जैसे कि महाभारत में आता है कि—

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥ १५ ॥

निरंतरंच मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव।
कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते ॥ १६ ॥
(महा० शान्ति० अ० २६०)

भाषार्थ—आंख से, मन से, वाणी से, कर्म से, चार प्रकार से जिस प्रकार का कम करता है। वैसा ही फल प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ अकेला वा मिला हुवा कर्म हे राजन प्राप्त करता है। चाहे पुण्य हो चाहे पाप हो इस का नाश नहीं होता ॥१६॥

इस से साबित है कि पाप करने की वृत्तियों का नाश होकर भविष्य में पाप करने से छूट सकता है किन्तु किये कर्म के फल का नाश नहीं होता।

२४४ (प्रश्न)—"आनो अग्ने इत्यादि साम० पू० १।१" परमेश्वर! शुद्ध करने वाले, पाप हर्ता, अन्न के बढ़ाने वाले, स्तुति योग्य धन को हमारे वास्ते दो इत्यादि।

पृ० २६२ पं० २२।

उत्तर—इस मंत्र में भी किये हुये कर्मों के फल के नाश का वर्णन नहीं है अपितु परमात्मा को पाप हर्ता इस लिये वर्णन किया गया है कि परमात्मा हमारे पाप करने की वृत्तियों का नाश करके हमें पाप कर्म करने से बचा कर शुभ कर्म में लगा देता है। इसी से परमात्मा को पाप हर्ता, शुद्धकर्ता वर्णन किया है। मंत्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है।

आनो अग्ने वायो वृध ँ रयिं पावकश ँ स्यम्।
रास्वा धन उपमाते पुरुस्पृह ँ सुनीति सुयशस्तरम् ॥
(साम० पू० ख० ४।९)

भाषार्थ—हे अग्ने ! हे पवित्र करने हारे ! हमें प्रशंसा के योग्य आयु को बढ़ाने वाला धन ऐश्वर्य दे । हे ज्ञान सम्पन्न ! हे सृष्टि के कर्ता ! उत्तम धर्म्म की निति से हमें जिस धन को बहुत लोग चाहते हैं । और जिस के प्राप्त करने से उत्तम यश भी प्राप्त होता है, वह भी दे ॥६॥ कहिये इस मंत्र में वे कौन से पद हैं जो किये कर्मों के कर्म फल का नाश या पाप मोचन वर्णन करते हैं । मंत्र में जो पावक अर्थात् पवित्र करने वाला परमेश्वर को कहा है उस के यह अर्थ हैं कि हमें पाप करने से रोक कर पवित्र कर्मों में लगाने वाला है कि कर्मों के फल का नाश या पाप मोचन नहीं हो सकता किये कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है जैसे—

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति ।
शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम् ॥८॥
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ।
करोति कुर्वतः कर्म छायेवानुविधीयते ॥९॥
येन येन यथा यद्यत् पुरा कर्म समीहितम् ।
तत्तदेव नरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना ॥१०॥
(महा० शान्ति० अ० १८१)

भाषार्थ—जिस ने जो कर्म किया है वह कर्म शीघ्र दौड़ते हुवे के साथ दौड़ता है, सोये हुये के साथ सोता है ॥८॥ बैठे के साथ बैठता है, और चलते हुये के साथ चलता है ,करते हुये के साथ करता है । सारांश यह कि किया हुवा कर्म छाया के समान मनुष्य के साथ रहता है ॥९॥ जिस जिस ने जैसे जो जो पहिले कर्म किया है । वह वह ही मनुष्य अपने किये कर्मों को नित्य भोगता है ॥१०॥

अतः सिद्ध है कि पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध तथा युक्ति शून्य होने से सर्वथैव मिथ्या है।

२४५ ( प्रश्न )—"अग्नेनय सुपथाराये इत्यादि यजु० ४० । १६" इस मन्त्र में है कि हे परमेश्वर कुटिल वञ्चनात्मक पाप को हम से पृथक् करो। पृ० २६३ पं० ४।

उत्तर—इस मन्त्र में भी मरमात्मा से कुटिल वञ्चनात्मक पाप स्वभाव को पृथक् करने की प्रार्थना की गई है। किये हुये पापकर्मों के फलभोग को पृथक् करने की प्रार्थना नहीं है। इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराण-
मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ यजु० ४० । १६ ॥

भाषार्थ—हे दिव्य स्वरूप प्रकाश स्वरूप करुणामय जगदीश्वर! जिससे हम लोग आप के लिये अधिकतर सत्कार पूर्वक प्रशंसा का सेवन करें। इस से सब को जानने वाले आप हम लोगों से कुटिलता रूप पापाचरण को पृथक् कीजिये। हम जीवों को विज्ञान धन वा धन से हुये सुख के लिये धर्मानुकूल मार्ग से समस्त प्रशस्त ज्ञानों को प्राप्त कीजिये ॥१६॥

श्रीमान् जी! बतलाईये इसमें पापों को क्षमा करने या पाप मोचन का कहां वर्णन है, यहां तो पापाचरण को दूर करने तथा धर्माचरण में प्रवृत्ति की प्रार्थना है। किये हुये पाप कर्मों का फल कभी भी क्षमा नहीं हो सकता, देखिये—

बालो युवाच वृद्धश्च यत्करोतिशुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत् फलं प्रतिपद्यते ॥ १५ ।

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १६ ॥
( महा० शांति० अ० १८१ )

भाषार्थ—बालक हो, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो, जो भी पुण्य पापकर्म करता है। उस उस अवस्था में उसके फलको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जैसे हज़ारों गौवों में बछड़ा अपनी माता को प्राप्त होता है वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म कर्ता को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

अतः साबित हुआ कि किये हुये पाप कर्मों का फल मुलतवी या पाप मोचन नहीं हो सकता हां पापाचरणों को छोड़ कर धर्म्माचरण में मनुष्य की प्रवृत्ति हो सकती है ।

२४६ ( प्रश्न )—"अपनः शोशुचदित्यादि ऋ० १ । ६७ । १" हमारा जो पाप है वह हम से निकल कर शोक में पड़ कर नष्ट हो जावे । पृ० २६३ पं० १२ ।

उत्तर—इस मन्त्र में भी पूर्व किये हुवे पाप कर्मों के फल का क्षमा वा पाप मोचन नहीं है अपितु पाप करने की आदत को दूर करके पुण्य करने की आदत डालने का अभिप्राय है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है—

अपनः शोशुचदघमग्ने शुशुध्यारयिम् ।
अपनः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १ । ६७ । १ ॥

भाषार्थ—हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर हमारे पाप स्वभाव को काष्ठ की आग के समान भस्म करके दूर कीजिये। और हमारे प्राण देह और ऐश्वर्य को शुद्ध प्रकाशित और उज्ज्वल कीजिये। पुनः प्रार्थना है कि हमारे पाप करने के स्वभाव को भस्म करके दूर कीजिये ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पूर्वकृत पाप मोचन सिद्ध नहीं होता अपितु पाप करने का स्वभाव दूर होकर पुण्य करने का स्वभाव हो जावे यही सिद्ध होता है। और पूर्वकृत पाप का फल टल भी नहीं सकता।

नाधर्मः कारणापेक्षो कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ताखलु यथा कालं ततः समभिपद्यते ॥ ८ ॥

( महा० शान्ति० अ० २६८ )

भाषार्थ— अधर्म किसी भी कारण की अपेक्षा से कर्ता को नहीं छोड़ता निश्चय रूप से करने वाला समयानुसार किये कर्म के फल को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

अतः सिद्ध हुआ कि पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

२४७ (प्रश्न)—"सुक्षेत्रिया सुगातुया इत्यादि ऋ० १ । ६७ । २ " आप की कृपा से हमारा पाप संकट में पड़ कर नष्ट हो जावे। पृ० २६३ पं० १७।

उत्तर—इस मंत्र में भी ईश्वर से अपने पाप करने के स्वभाव को नष्ट करने की प्रार्थना है। मंत्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है कि—

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसू या च यजा महे
अप नः शोशुचदघम्। ऋ० १ । ९७ । २ ॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग उत्तम क्षेत्र को प्राप्त करने की इच्छा से, उत्तम मार्ग को प्राप्त करने की इच्छा से, और उत्तम धन के प्राप्त करने की इच्छा से, हम तेरी उपासना करें। हे ज्ञान वान्! तेजस्विन्! आप हमारे पाप करने के

स्वभाव को भस्म कर डालें ॥ २ ॥

इस से पाप मोचन सिद्ध नहीं होता अपितु पाप करने के स्वभाव को दूर करना सिद्ध होता है । देखिये पुराण भी यही कहते हैं—

कृतकर्म क्षयोनास्ति कल्पकोटि शतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ३६ ॥
( शिव० कोटी रुद्र० अ० २३ )

भाषार्थ—किये हुवे कर्म का सौ करोड़ कल्प तक भी क्षय नहीं होता, किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ इस से स्पष्ट हो गया कि किये हुवे पाप कर्मों का क्षय नहीं होता । अतः पाप मोचन का सिद्धान्त वेद शास्त्र पुराण विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है । पाप करने के स्वभाव को छोड़ कर आगे को पुण्य कर्म करना ही पाप दूर होने का प्रयोजन है ।

२४८ (प्रश्न)—इस स्थल में "अपनः" इस मंत्र से लेकर "सनः सिंधुम्" इस मंत्र तक ८ मन्त्र पाक्षमायन के हैं। जिनको देखना हो, ऋग्वेद देख लें । पृ० २६३ पं० २२ ।

उत्तर—इन मन्त्रों में भी किये हुवे पाप के फल को क्षमा करने पाप मोचन वा पाप क्षमा का वर्णन नहीं हैं अपितु पाप करने के स्वभाव को नाश कर के सदाचारी बन कर आगे को पाप कर्म की निवृत्ति तथा पुण्य कर्म में प्रवृत्ति का वर्णन है । पापों का क्षमा करना ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध है । क्योंकि परमात्मा न्याय कारी है । और जो जैसा काम करे उस को वैसा फल देना न्याय है । तो किसी के पाप क्षमा

करने से परमात्मा न्यायकारी नहीं रह सकता परमात्मा का एक नाम यम है जिस का यह अभिप्राय है कि परमात्मा सब को नियम में रखता है। पाप क्षमा करने से परमात्मा का नियम भंग होजावेगा। परमात्मा का नाम रुद्र है। रुद्र उसको कहते हैं जो पापियों को दंड देकर रुलाता है। यदि पाप क्षमा कर दे तो उस का रुद्र नाम व्यर्थ हो जावे। परमात्मा का नाम दयालु है। यदि परमात्मा दुष्टों के पाप क्षमा कर दे तो जिन निर्बलों पर अत्याचार कर के दुष्टों ने पाप किया है। उन को दंड न देने से उन निर्बलों पर अत्याचार करने वाला परमात्मा माना जावेगा। परमात्मा को न्यायकारी, यम, रुद्र तथा दयालु प्रतिपादन करने वाले मंत्र निम्नलिखित हैं—

न्यायकारी—विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।
अग्निमीले स उ श्रवत्॥ ऋ० ८। ४३। २४॥

यम— परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनु-
पस्पशानम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं
राजानं हविषा दुवस्य॥ ऋ० ८। ६। ५४। १॥

रुद्र— इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय
स्वधाव्ने। अषाळ्हायसहमानाय वेधसे तिमायु-
धाय भरता शृणोतु नः। ऋ० ५। ४। १३। १॥

दयालु—यन्न नमस्यां गतिं मित्रस्य या यां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्य हिंसानस्य सश्चिरे॥ ऋ० ५।६४।३॥

भाषार्थ—प्रजाओं के अद्भुत राजा धर्म्म कार्यों के योग्य अध्यक्ष अर्थात् कर्म फल प्रदाता इस तेजस्वी देव की मैं स्तुति करता हूं। वही हमारी स्तुति सुनता है ॥२४॥ उस

व्यापक भूत समूह को अर्थात् सब प्राणियों को पुण्य-पाप के मार्गों से नियम में चलाने वाले तेजस्वरूप सब मनुष्यों को एक ही न्याय के रास्ते में चलाने वाले यम राजा परमात्मा की श्रद्धा भक्ति से स्तुति करो ॥१॥ ये स्तुतियें दृढ़ दण्ड धारी सुखदाता अन्न से पालन करने वाले, दुष्टों को दण्ड देने वाले रुद्र के लिये हैं वे इन स्तुतियों को सुने ॥१॥ यदि सद्गति प्राप्त करना चाहूं तो स्नेह मय दयालु प्रभु के बताये मार्ग से जाऊं, क्योंकि इस हिंसा न करने वाले अर्थात् दया भाव-युक्त परम प्रिय परमेश्वर के कल्याणमय मार्ग में विद्वान् आश्रय पाते हैं ॥३॥ इस से साबित हो गया कि पापों का क्षमा करना परमेश्वर के न्यायकारी यम, रुद्र, दयालु आदि गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध है। अतः पाप मोचन वेद-विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

२४६ (प्रश्न)—स्तुति करने का मतलब ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव बनाना है। आप की दृष्टि में ईश्वर में भी गुण-कर्म हैं। आप को यह भी मालूम है कि गुण जब रहेगा तब किसी आधार में रहेगा। और आधार जो होगा वह निःसन्देह साकार होगा। जब आप की दृष्टि में ईश्वर साकार ही नहीं तो उस में गुण कैसे ठहरेंगे ? पृ० २६५ पं० ४।

उत्तर—बेशक स्तुति करने का प्रयोजन ईश्वर में प्रीति तथा उस के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना है। और निःसन्देह ईश्वर में गुण और कर्म हैं। क्योंकि—

पथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

वैशे० अ० १ आ० १ सू० ५।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन नौ द्रव्यों में आत्मा भी एक द्रव्य है। और-

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्य लक्षणम्॥

वैशे० अ० १ आ० १ सू० १५।

जिस में क्रिया गुण या केवल गुण रहें उस को द्रव्य कहते हैं। उन में से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, मन और आत्मा। ये छः द्रव्य क्रिया और गुण वाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रिया से रहित गुण वाले द्रव्य हैं।

इस प्रमाण से आत्मा, क्रिया तथा गुण वाला द्रव्य है। आत्मा दो प्रकार का है। जीवात्मा तथा परमात्मा। जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों स्वरूप से निराकार हैं। वैसे ही आकाश, दिशा और काल भी स्वरूप से निराकार हैं। जीवात्मा को पुण्य-पाप कर्म करने के कारण उन का फल दुःख-सुख भोगने के लिये नैमित्तिक रूप से शरीर मिलता है। किन्तु शरीर धारण पर भी आत्मा के स्वरूप में फर्क नहीं आता रहता, वह निराकार ही है। साकार तो शरीर ही होता है जीवात्मा नहीं। शरीर के सम्बन्ध से वह सुख-दुःख कर्म फल भोगता है। परमात्मा न पुण्य-पाप कर्म करता है, न उस के फल भोगने के लिये शरीर धारता है। उस के कर्म स्वभाविक ही हैं॥ यह ठीक है कि गुण आधार अर्थात् द्रव्य में रहते हैं। किंतु आधार साकार ही होता है निराकार नहीं। यह वेद, शास्त्र, दर्शन के विरुद्ध युक्ति-शून्य उन्मत्त प्रलाप है। मालूम होता है कि आप दर्शन-ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं। वरना यह न लिखते कि आधार साकार ही होता है। देखिये, जैसे निराकार दिशा में परत्व, अपरत्व गुण रहते हैं। काल में भी

निराकार होने पर भी पहिले, पीछे गुण रहते हैं। निराकार आकाश में शब्द गुण रहता है। निराकार जीवात्मा में शरीर रहित निराकार होने पर भी मोक्षावस्था में भी ज्ञान-यत्न आनन्द गुण रहते हैं। वैसे ही निराकार परमात्मा में भी ज्ञान, प्रयत्न, आनन्द, दया, न्याय, आदि गुण विद्यमान हैं। देखो यजुर्वेद अध्याय ४० में सपर्य्यगादित्यादि ईश्वर के स्वरूप के प्रतिपादक मंत्र।

२५० (प्रश्न)—न्याय दर्शन ने उत्क्षेपन, अवक्षेपन, कुञ्चन, प्रसारण, गमन, ये पांच कर्म माने हैं। ईश्वर में उत्क्षेपन कर्म है। वह किस को उठा कर ऊपर फैंकता है। या बराबर में फैंकता है। किसी को लम्बा-चौड़ा करता है या किसी को घिस डालता है, अथवा वह चलता है। उस में कौन कर्म है। पृ० २६५ पं० ६।

उत्तर—ऊपर-नीचे, दायें-बायें आदि शब्द ईश्वर में प्रयुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे परिमित्त वस्तु के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। और ईश्वर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। हां, जीवों की अपेक्षा से ये शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। सूर्य्य, चांद, सितारों को ईश्वर ऊपर को भी चलाता है, नीचे को भी चलाता है। अतः उत्क्षेपण, अवक्षेपन कर्म ईश्वर में हुआ। ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति के समय प्रकृति के बिखरे हुये प्रमाणुओं को इकट्ठा करता है, इस से कुञ्चन कम ईश्वर में है। प्रलय के समय ईश्वर पृथिवी आदि स्थूल वस्तुओं को नाश कर के उन के प्रमाणुओं को आकाश में बखेर देता है, इस से ईश्वर में प्रसारण कर्म है। हां, गमन वह स्वयं नहीं चलता क्योंकि परिपूर्ण

व्यापक में चलना नहीं हो सकता। हां, संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को नियम में ईश्वर चलाता है, अतः गमन कर्म उस में है। इस प्रकार से ईश्वर में पांचों प्रकार के कर्म वर्तमान हैं।

२५१ (प्रश्न)—आपने तो ईश्वर को अविज्ञेय और अनिर्वचनीय तथा इच्छा रहित माना हैं। इच्छा रहित में कभी कर्म का करना बन सकता है। पृ० २६५ पं० १२।

उत्तर—स्वामी जी ने ईश्वर को अविज्ञेय तथा अनिर्वचनीय माना हैं इस का आपने कोई ठिकाना नहीं लिखा कि कहां माना है अविज्ञेयका यदि यह अभिप्राय हो कि वाह्येन्द्रियों से न जानने के क़ाबिल हैं तो ठीक हैं। यदि आपका अभिप्राय यह हो कि ईश्वर सर्वथा अविज्ञेय है तो यह स्वामी जी का मत नहीं है। स्वामी जी तो उपासना द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार मानते हैं। फिर वह अविज्ञेय कैसे मान सकते हैं। अनिर्वचनीय हम किसी भी पदार्थ को नहीं मानते और स्वामी जी ने लिखा है। रहा इच्छा का सवाल सो ईश्वर में नहीं है क्योंकि इच्छा अप्राप्त वस्तु की होती है और परमात्मा को कोई पदार्थ अप्राप्त नहीं है। हां ईश्वर में ईक्षण अर्थात् दर्शन विचार और कामना हैं जैसा कि आपने ही अपनी पुस्तक के पृ० २३१ पं० १६ में लिखा है। सो ईश्वर अपने ईक्षन से सृष्टि उत्पत्ति प्रलय कर्म फल देना आदि कर्म करता है इस में कोई भी आपत्ति नहीं है।

२५२ (प्रश्न)—एवं ईश्वर जैसे गुण मनुष्यों में आवेंगे कैसे। वह सर्वज्ञ है, सर्व व्यापक है, सर्वशक्तिमान है। आपके मत में शरीर रहित है, तो क्या दुनिया के मनुष्य

सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् बन कर अपने शरीर को छोड़ दें, ज़हर खाकर मर जावें। पृ० २६५ पं० १४।

उत्तर—आपके दिमाग़ में भी कुछ पागलपन का अंशप्रतीत होता है। वरना स्वामी जी ने यह कहां लिखा है कि मनुष्य ईश्वर जसा बन जाये, अपितु आपने ही अपनी किताब में पृ० २६४ पं० ६ में सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७ पृ० १८२ का पता देकर पाठ नकल किया है जिसमें लिखा है कि "स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना" बस स्वामी जी के लेखानुसार ईश्वर के प्रत्येक गुण से शिक्षा लेकर मनुष्य अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधार कर सकता है। जैसे परमात्मा की सर्वज्ञता से यह सुधार करें कि हम अधिक से अधिक ज्ञान की प्राप्ति का यत्न करें थोड़े से ज्ञान से संतुष्ट होकर न बैठ जावें। तथा परमात्मा की सर्वव्यापकता से यह सुधार करें कि हम एक ही स्थान में कूप मण्डूक बन कर न बैठे रहें अपितु देश देशान्तर में घूम कर विद्या धन ऐश्वर्य की वृद्धि करें। परमात्मा की सर्व शक्ति मत्ता से यह सुधार करें कि हम अधिक से अधिक शक्ति का संपादन कर के दुष्टों को दण्ड दें श्रेष्ठों का पालन करें तथा शत्रुओं का पराजय करके चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति का यत्न करें। तथा परमात्मा के शरीर रहित से यह सुधार करें कि पाप कर्मों का त्याग श्रेष्ठ कर्मों का आचरण तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से मोक्ष प्राप्ति का यत्न करें कि जिस से जन्म मरण से छूट शरीर से रहित हो परमानन्द को प्राप्त हों। बस यही स्वामी जी का प्रयोजन है। जिस को आप की अल्पबुद्धि समझने में असमर्थ रही।

२५३ (प्रश्न)—आपने सत्यार्थ प्रकाश में ईश्वर के तीन कर्म बतलाये। सृष्टि का रचना, प्रलयका करना, जीव को उस के क्रमानुसार फल देना, वेद का बनाना क्या अब ये चारों काम आर्य्य समाजी करने लगेगें।

पृ० २६५ पं० १७।

उत्तर—आर्य्य समाजी ही नहीं अपितु प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव सुधार सकता है। जैसे ईश्वर के सृष्टि रचना कर्म से मनुष्य यह शिक्षा ले सकता है कि जैसे ईश्वर ने अग्नी पानी, मिट्टी, हवा आकाश इन पांच ही तत्वों की कमी ज्यादती के हेर फेर से संसार की अनेकों वस्तुएँ बनाकर अपनी कारीगरी का सबूत दिया है। वैसे ही मनुष्य को भी धातु, मिट्टी,पत्थर, लकड़ी,आग,पानी,हवा,आकाश अदि वस्तुओं के मेल से अनेक प्रकार की वस्तुयें यान आदि बनाकर अपनी कारीगिरी का सबूत देना चाहिये। तथा परमात्मा के प्रलय कर्म से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे परमात्मा इस सृष्टि को पुरानी शक्ति हीन देखकर इस की प्रलय करके फिर से उसको नई और शक्तिशाली बनाता है वैसे ही हम लोगों को भी अपने घर, पुल, चारपाई, रेल के अंजन, यन्त्र, कलायें, इत्यादि सब वस्तुओं को पुरानी तथा शक्ति हीन देखकर उन के पुरज़ों को खोल ठीक करके फिर से नई तथा शक्तिशाली बना लेना चाहिये। परमात्मा के न्याय-पूर्वक सब जीवों को कर्मफल देने से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे परमात्मा निष्पक्षपात होकर न्याय से दुष्टों को दण्ड श्रेष्ठों का पालन तथा कर्मों का फल देता है, ऐसे ही हमको भी

अपने परिवार, माता, पिता, गुरु, आचार्य्य, पुत्र, पत्नी, भृत्य, प्रजा आदिकों के साथ निष्पक्ष हो कर न्याय अनुसार पालन, पोषण, शिक्षा, दण्ड आदि व्यवहार उन के कर्मों के अनुसार यथा योग्य करना चाहिये। परमात्मा के वेद प्रकाश कर्म से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे परमात्मा ने सब मनुष्यों के ज्ञानार्थ अपनी कल्याणी वाणी वेद का मनुष्य मात्र के लिये प्रकाश किया है, वैसी हम भी वेद विद्या तथा अपनी अन्य भी हर एक प्रकार की विद्या को मनुष्य मात्र को पढ़ा कर संसार में विद्या तथा ज्ञान की वृद्धि करें। परमात्मा के इन चारों कर्मों से शिक्षा ले कर हम इस प्रकार से अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधार सकते हैं।

२५४ (प्रश्न)—स्वभाव नाम तो शरीर का है। "स्वभवनं स्वभावः" जो साथ में पैदा हो उसका नाम स्वभाव है। क्या ईश्वर के भी शरीर है। यदि स्वभाव नाम आप आदत का मानें तो ईश्वर कैसी आदत जीवों की तो नहीं हो सकती संभव है आर्य्य समाजियों की हो जावे। पृ० २६५ पं० १६।

उत्तर—स्वभाव शब्द के बहुत से अर्थ हैं। स्वभाव स्वयं किसी वस्तु के नित्य गुण का भी नाम है। जैसे जल में शीतता पृथिवी में गंध, अग्नि में उष्णता। दूसरे स्वभाव नाम आदत का है। स्वभाव नाम शरीर का तो हो ही नहीं सकता। स्वभाव की व्युत्पत्ति है "स्वयं भवति इति स्वभावः" जो स्वयं ही हो, पैदा हुवा न हो; वह स्वभाव है। जो पैदा होता है वह स्वभाव नहीं अपितु नैमित्तिक होता है। शरीर स्वाभाविक नहीं अपितु नैमित्तिक है। यदि शरीर स्वाभाविक हो तो मोक्ष कोई हो ही न

सके। अतः शरीर स्वभाविक नहीं कर्मों के निमित्त से कर्म फल भोगार्थ मिलता है। ईश्वर के न पाप पुण्य कर्म हैं न उन के भोगार्थ ईश्वर को शरीर धारना पड़ता है। "अतः स्वभवनं स्वभावः" का अर्थ भी यही है कि "स्वयं होना स्वभाव है।" साथ में पैदा होना अर्थ ग़लत है। जब ईश्वर स्वयं पैदा नहीं होता तो उसके साथ पैदा होने के क्या माने। अतः स्वभाव शरीर का नाम तो है ही नहीं। जीव विषय में स्वभाव का नाम आदत भी हो सकता है। क्योंकि जीव में नैमित्तिक गुण भी होते हैं। किंतु ईश्वर विषय में स्वभाव के अर्थ हैं। ईश्वर के नित्य गुण। आदत अर्थ ईश्वर विषय में नहीं है। ईश्वर जैसे गुण कर्म स्वभाव जीव के नहीं हो सकते अपितु जीव ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से शिक्षा लेकर अपने गुण कर्म स्वभाव सुधार सकता है।

२५५ (प्रश्न)—फिर आपने यह किस आधार पर माना कि स्तुति करने का मतलब यही हैं कि ईश्वर के सदृश जीव के गुण कर्म स्वभाव हो जाना, स्वभाविक धर्म्म किसी का बदलता नहीं, नीम में कटुत्व और नींबु में खट्टापन, कोइले में स्याही, नमक में खारा पन, ऊख में मिठास कभी बदलते हैं? आप बातें कैसी करते हैं। पृ० २६५ पं० २३।

उत्तर—यह सिद्धान्त वेद से ही लिया गया है कि ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव में सुधार किया जावे। हम इस विषय में वेद के प्रमाण उपस्थित करते हैं।

ईश्वर के अनन्त गुण—नहि नु ते महिमानः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म। न राधसो राधसो नू तनस्येन्द्र न किर्ददृश इन्द्रियंते। (ऋ० ६।२७।३)

ईश्वर के कर्म—विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋ० १।२२।६ ॥

ईश्वर गुण कर्म का अनुकरण—तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बल मसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि । यजु० १९।९ ।

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्ते इह समसि । (यजु० ३४।४१)

भाषार्थ— हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! तेरे संपूर्ण गुणों का ज्ञान हमें नहीं है । तेरे ऐश्वर्य का भी पूर्ण ज्ञान हम नहीं कर सकते । तेरी नूतन नूतन सिद्धियों का भी हमें ज्ञान नहीं है । हे भगवन् ! तेरी शक्तियों का भी हमें दर्शन नहीं हुआ है ।३। सर्व व्यापक ईश्वर के ये सब कर्म देखिये । जिस से व्रतों को अर्थात् धर्म्म नियमों को जाना जाता है । वह जीवात्मा का योग्य मित्र है ।६। हे सकल शुभ गुणों के भंडार ईश्वर ! जो तेरे में तेज है । उस तेज को मेरे में धारण कीजिये । जो तेरे में प्राक्रम है उस प्राक्रम को मुझ में धरिये । जो तेरे में बल है उस बल को मुझ में भी धरिये । जो तेरे में सामर्थ्य है । उस सामर्थ्य को मुझ में धरिये । जो तुझ में दुष्टों पर क्रोध है उस क्रोध को मुझ में धरिये । जो तुझ में सहन शीलता है उस सहन शीलता को मुझ में भी धारण कीजिये ।९। हे पुष्टि कारक परमेश्वर ! हम लोग आपके स्वभाव वा नियम में इससे वर्तें कि जिससे कभी भी न चित्त बिगाड़ें । इस जगत् में आपके स्तुति करने वाले हुए हम सुखी होते हैं ।४१।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल वर्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते हैं।४१।

कैसे स्पष्ट शब्दों में वेद ने ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव सुधारने का उपदेश दिया है। और स्तुति का प्रयोजन बतलाया है।

बेशक किसी वस्तु का स्वाभाविक गुण नाश नहीं होता किंतु नैमित्तिक गुणों का प्रवेश भी पदार्थों में होता है। जैसे जल का स्वाभाविक गुण शीतता है किंतु आग पर उबालने से वह इतना गर्म होजाता है कि मनुष्य पर पड़ जावे तो जला देता है। इससे उसका स्वभाविक गुण शीतलता नष्ट नहीं होती क्यों कि ऐसी अवस्था में भी आग को बुझा देता है किंतु आग के संयोग से उसमें गर्मी आगई है। इस प्रकार से नीम, नींबु आग नारंगी आदि वृक्षों में भी एक दूसरे के साथ पैवन्द लगाने से एक दूसरे के नैमित्तिक गुण प्रवेश कर जाते हैं। कोयला आग के संयोग से आग की भांति चमकने लगता है इसी भांति नमक और गुड़ में भी दूसरी वस्तुओं के संयोग से नैमित्तिक गुणों का प्रवेश होजाता हैं। जैसे प्रत्येक पदार्थ में अपने स्वभाविक गुण रहते हुए भी दूसरे पदार्थों के संयोग से नैमित्तिक गुण आजाते हैं। ऐसे ही जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुणों को स्थिर रखते हुए भी परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से शिक्षा लेकर अपने गुण कर्म स्वभाव में नैमित्तिक सुधार कर सकता है। आप कैसी बहकी २ बातें बनाते हैं। क्या आपको पदार्थों में नैमित्तिक गुणों के आजाने का भी ज्ञान नहीं हैं।

२५६ (प्रश्न)—आप लिखते हैं कि "प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना" "उपासना से परम

ब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना" उपासना से जो आपने सहायक का मिलना माना है। यह सहाय कौन देगा। यह सहाय कौन देगा। आप लिखते हैं कि यदि ईश्वर पापों को क्षमा करदे तो वह दयालु न रहे। हम भी यही कहेंगे कि ईश्वर प्रार्थना से सहाय करता है। तो वह दयालु नहीं रहा। क्योंकि जिन्हों ने प्रार्थना की उन को सहाय दी और जिन्हों ने नहीं की वे टका से रह गये। प्रार्थना की रिशवत खाने वाला ईश्वर कभी दयालु हो नहीं सकता। यह आप ही का सिद्धान्त था कि पाप क्षमा कर देने से ईश्वर दयालु नहीं रहता। पृ० २६५ पं० २८।

उत्तर—कर्म तीन प्रकार के हैं। मानसिक, वाचिक, तथा शारीरिक, इस लिये प्रार्थना भी मानसिक तथा वाचिक कर्म है। यदि प्रार्थना धर्म्मानुकूल है तो उसे शुभ कर्म तथा यदि प्रार्थना धर्म्म के प्रतिकूल है तो उसे अशुभ कर्म माना जावेगा। अशुभ प्रार्थना रूप कर्म का फल मन तथा वाणी के द्वारा अशुभ मिलेगा। तथा शुभ प्रार्थना रूप कर्म का फल मन वाणी द्वारा शुभ मिलेगा। इसी का नाम सहायता है। और वह सहायता भी कर्मों का फल है। परमेश्वर अपनी तरफ से बिना कर्म के सहायता रूप फल नहीं देता। अतः उस के दयालु होने में कोई दोष नहीं आता। क्योंकि जो शुभ प्रार्थना करता है उसे शुभ फल मिलता है जो अशुभ प्रार्थना करता है उस का अशुभ फल मिलता है और जो नहीं करता उसको फल नहीं मिलता। इससे ईश्वर पर कोई दोष पक्षपात या रिश्वत का नहीं आता चूंकि प्रार्थना रूप कर्म मन वाणी तक ही महदूद है अतः उसका फल भी मन वाणी तक ही महदूद

रहेगा। उस प्रार्थना का शारीरिक फल तभी मिलेगा यदि वह उस प्रार्थना के अनुकूल शारीरिक कर्म करेगा अन्यथा शारीरिक फल न मिलेगा। इसी बात को स्वामी जी ने यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र २६ के भाष्य में इन शब्दों में वर्णन किया है "मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन को पुरुषार्थ भी करना चाहिये जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कहवा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्यादि धन वाला नहीं हो सकता किंतु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये, हां पाप कर्मों को क्षमा करने से ईश्वर अवश्य दयालु न रहेगा। क्योंकि पापियों को दण्ड न देने से लोगों को पाप करने में उत्साह होगा। तथा पापियों ने जिन पर अत्याचार किया है उनके साथ अन्याय होने से दयालुता नष्ट हो जावेगी। अतः पाप मोचन की बात सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध है।

२५७ (प्रश्न)—आप उपासना से ईश्वर मेल बतलाते हैं, ग़ज़ब कर रहे हैं। समुद्र में मिला हुआ गंगा जल कभी अलहिदा नहीं हो सकता। फिर आप यहां जीव ब्रह्म का मेल करके अपने लिखे मुक्ति से पुनरागमन का क्यों कचूमर निकाल रहे हैं। पृ० २६६ पं० ७।

उत्तर—स्वामी जी उपासना में ईश्वर तथा जीव का समुद्र और गंगाजल की भाँति मेल नहीं मानते अपितु उपासना में जीव ईश्वर का मछली जल को भांति मेल मानते हैं। जीव और ईश्वर उपासना में स्वरूप से भिन्न भिन्न रहते हैं किंतु उपास्य उपासक भाव से प्रेम में एक हो जाते हैं। अतः मोक्ष से पुनरावृत्ति सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आता।

२५८ ( प्रश्न )—फिर आप ईश्वर का साक्षात्कार होना भी मानते हैं । क्या ईश्वर शरीरी है जिस का साक्षात्कार होगा । साक्षात्कार इन्द्रिय और मन से होता है, ये सब साकार हैं । इस कारण ये साकार का ही साक्षात्कार कर सकते हैं । आपने ईश्वर का साक्षात्कार लिख कर यहां पर ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त को रगड़ डाला । पृ० २६६ पं० १० ।

उत्तर—यहाँ पर साक्षात्कार से स्वामी जी का मतलब इन्द्रिय प्रत्यक्ष से नहीं है । अपितु स्वामी जी का मतलब आत्मानुभव से है । चूंकि आत्मा भी निराकार है और परमात्मा भी निराकार है अतः निराकार आत्मा निराकार परमात्मा का अनुभव करता है । इससे ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त पर कोई आक्षेप नहीं आता ।

२५९ ( प्रश्न )—आप ने यह खूब लिखा कि 'जो केवल भांड के समान ईश्वर की स्तुति करता है" ईश्वर स्तुति करने वालों को भांड की उपमा देने वाला या तो नास्तिक चार्वाक ही हुआ था या आप ही हुए । पृ० २६६ पं० १५ ।

उत्तर—आपने स्वामी जी के आधे लेख को चुरा लिया । पूरा पाठ इस प्रकार से है कि 'इस का फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना । जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उस की स्तुति करना व्यर्थ है' अब साफ हो गया कि स्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य को स्तुति के अनुकूल अपना आचरण भी बनाना चाहिये । जो मनुष्य ईश्वर की

स्तुति तो करता है किंतु अपने चरित्र को नहीं सुधारता वह केवल भांड के समान ही है उसको स्तुति करने का कोई लाभ नहीं है। यही बात गरुड़ पुराण में भी लिखी है जैसे—

नाम मात्रेण संतुष्टाः कर्मकांड रता नराः।
मंत्रोच्चारण होमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरः॥ ६०॥
संसारज सुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्।
कर्म ब्रह्मोभय भ्रष्टं तंत्यजेदन्त्यजं यथा॥ ६४॥

भाषार्थ—जो लोग नाम अर्थात् ईश्वर स्तुति मात्र से संतुष्ट हैं। और केवल मंत्रोच्चारण होम आदि यज्ञों के विस्तार में भ्रमते हैं॥ ६०॥ और जो मनुष्य संसार के सुखों में फंसा हुआ कहता है कि मैं ब्रह्म हूं। ऐसा कर्म तथा ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट हुए मनुष्य को अत्यन्ज की भांति छोड़ देना चाहिये॥६४॥ कहिये महाराज क्या गरुड़ पुराण के कर्ता को भी आप के दरबार से चार्वाक की पदवी मिलेगी। यदि नहीं तो स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है कि चरित्र सुधार के बिना केवल ईश्वर स्तुति भांड के सदृश ही है।

२६० ( प्रश्न )—आपने यह लिखा है कि 'ऐसी स्तुति कभी न करनी चाहिये कि मेरे शत्रुओं का नाश हो और मेरे धन हो एवं मैं प्रतिष्ठावान् बनूं' इस से तो यही जाना जाता है कि आप ने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखे। जो मंत्र हम ने दिये हैं। उनमें शत्रुओं के नाश और धनी होने की प्रार्थना स्पष्ट लिखी है। क्या आप की दृष्टि में इन मंत्रों के बनाने वाले जगदीश्वर की बे समझी तो नहीं हैं। पृ० २६६ पं० १७।

उत्तर—आप ने यहां पर भी स्वामी जी के लेख को आगे

पीछे से चुरा कर बीच में से अधूरा पाठ दे दिया है। जब तक पूरा पाठ न हो नतीजा ठीक नहीं निकल सकता। स्वामी जी के पूरे पाठ का अभिप्राय यह है कि बिना पुरुषार्थ के इस प्रकार की प्रार्थनायें व्यर्थ हैं। परमेश्वर इन को नहीं सुनता। परमेश्वर भी उसी की प्रार्थना सुनता है जो पुरुषार्थ करता है पूरा पाठ इस प्रकार है—

'जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उस को वैसा ही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे उस के लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे। अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उस को स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझ को सब से बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायें इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश कर दे? जो कोई कहे कि जिस का प्रेम अधिक उस की प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिस का प्रेम न्यून हो उस के शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा कि हे ईश्वर! आप मुझ को रोटी बना कर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी हो कर बैठे रहते हैं वे महा मूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उस को जो कोई

तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा। जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ꣳ समाः॥

(यजु० अ० ४० । मं० २)

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो। देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने २ कर्म करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य कहते हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखलाते हैं अन्धे को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उस को गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।'

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

इस पाठ से पता लगता है कि स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि धर्मानुकूल सब के उपकारार्थ प्रार्थना में ईश्वर सहायक होता अधर्म है युक्त स्वाथ की प्रार्थना में ईश्वर सहायक नहीं होता। अतः यदि मनुष्य धर्म के विरोधी शत्रुओं के नाश की प्रार्थना करे और परोपकार के लिये धन

की प्रार्थना करे तथा प्रजा की रक्षार्थ प्रतिष्ठावान् बनने की प्रार्थना करे। इस प्रकार की प्रार्थना धर्मानुकूल है, करनी चाहिये तथा पुरुषार्थ करना चाहिये। ईश्वर सहायक होंगे किंतु इस से विपरीत जाती दुश्मनी में शत्रु के नाश की तथा स्वार्थ के लिये धन की और प्रजा को दुःख देने के लिये प्रतिष्ठावान् बनने की न प्रार्थना करनी चाहिये और न परमात्मा ऐसी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके सहायता करता है और पुरुषार्थ से हीन किसी प्रकार की भी प्रार्थना व्यर्थ है। वेद मन्त्रों में जो शत्रुओं के नाश तथा धन प्राप्ति की प्रार्थनायें हैं वेसब धर्म के शत्रुओं के नाश तथा परोपकारार्थ धन प्राप्ति की प्रार्थनाएं हैं। ज़ाती दुश्मनी से शत्रु के नाश तथा स्वार्थ के लिये धन की प्रार्थना नहीं हैं। अतः स्वामी जी ने पुरुषार्थ पूर्वक धर्म के शत्रुओं के नाश करने परोपकारार्थ धन प्राप्ति की प्रार्थनाओं का अनुमोदन तथा आलस्य पूर्वक ज़ाती दुश्मनी में शत्रुओं के नाश की तथा स्वार्थ के लिये धन प्राप्ति की प्रार्थनाओं का बल पूर्वक खण्डन किया है—

२६१ (प्रश्न) यह आपने खूब लिखा कि हम को रोटी बना कर खिलाइये ऐसा तो आप ने ही किया होगा।

पृ० २६६ पं० २५

उत्तर—स्वामी जी ने केवल प्रार्थना पर भरोसा रखने वाले पुरुषार्थ हीन लोगों की मनोवृत्ति का खण्डन किया है ताकि लोग धर्मानुकूल प्रार्थना के साथ पुरुषार्थ भी किया करें वरना प्रार्थना पर भरोसा करने वाले आलसी बहुत हैं। जैसे बाबा अटल के पुजारी।

बाबा टल्ल-पक्की पकाई घल्ल—

का नारा लगाते हैं। तथा राम के भक्त कहते हैं—

राम राम का नाम लो, रहो खाट पर सोय
अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होय

और कृष्ण के भक्त इस प्रकार आलस्य का प्रचार करते हैं कि—

ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्व चरित कर्मणा ॥२६॥
आमुकिं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति ।
अतो हि तत्कृते त्याज्यः प्रयत्नः सर्वथा बुधैः ॥२७॥
( पद्म पुराण पाताल खंड अध्याय ८२ )

भाषार्थ—वर्तमान में तो सदा वही होगा जो पूर्व कर्म का फल है ॥२६॥ भविष्य के लिये स्वयं कृष्ण जी करेंगे। अतः उसके लिये बुद्धिमानों को यत्न का त्याग कर देना चाहिये ॥२७॥ यह है आलस्यवाद जिसका खंडन करके स्वामी जी पुरुषार्थ का प्रचार करना चाहते थे ।

२६२ (प्रश्न)—अनेक ईश्वर भक्त हुए हैं। कौन कहता है कि ये सब आलसी थे। आलसी तो आप हैं। जो ईश्वर की स्तुति प्रार्थना से ही पिंड छुड़ा रहे हैं। पृ० २६६ पं० २५।

उत्तर—वैदिक ईश्वर भक्त ऋषि महर्षि जितने हुए हैं वे सब पुरुषार्थी थे क्योंकि वेद पुरुषार्थ की शिक्षा देता है। किंतु जितने भी पौराणिक भक्त हुए हैं वे सभी आलसी थे क्योंकि पुराण आलस्य की शिक्षा देते हैं। और पौराणिकों का परमेश्वर भी अजीब है। धन्ने भक्त के कट्टे बच्छे चराने लगा। तो नरसी की हुंडी ही तारदी, द्रौपदी के चीर बढ़ा दिये इत्यादि

आलस्य की सैंकड़ों मिसालें हैं। आज भी आलसी पौराणिक आलस्य में पड़े कृष्ण की इन्तज़ार में व्याकुल हैं कि—

'बंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड़।' इस प्रत्यक्ष में और प्रमाण की ज़रूरत ही क्या है। रही स्वामी जी की बात। वे स्तुति प्रार्थना करने का निषेध नहीं करते अपितु केवल स्तुति प्रार्थना के भरोसे पर न रहो साथ में पुरुषार्थ भी करो यह उपदेश करते हैं।

२६३ ( प्रश्न )—आपने यह भी अच्छा इनसाफ किया। कि ईश्वर भक्तों के पाप ही क्षय नहीं करता। यदि ऐसा है तो फिर ईश्वर के मानने की क्या आवश्यकता। पृ० २६६ पं० २८।

उत्तर—आपके न मानने से ईश्वर की हस्ती थोड़ा ही मिट सकती है। ईश्वर मोम की नाक नहीं है कि जैसा आप चाहें वैसा ही करे, उस के नियम हैं वह नियम के अनुसार सृष्टि को चला रहा है। उस की ज़रूरत है सृष्टि उत्पत्ति के लिये वेद का ज्ञान प्रकाशित करने के लिये तथा श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों को पाप कर्म का फल देने के लिये वह पापों को क्षमा करके अन्याय का भागी नहीं बन सकता स्वामी दयानन्द जी भी यही लिखते हैं कि—

(प्रश्न)—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निभयता और उत्साह होजाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक २ बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा होजाय कि

राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डरकर पाप करने में प्रवृत्त हो जावेंगे इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है।" क्षमा करना नहीं।

( सत्यार्थ० समु० ७ )

अतः सिद्ध हुवा कि पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

२६४ (प्रश्न)—"त्वंहि विश्वतो मुख इत्यादि ऋ० १। ७। ५। ६" का मंत्र आर्य्याभिविनय में नं० ३६ पर देकर पाप नष्ट होने की प्रार्थना की है। पृ० २६७ पं० ७।

उत्तर—यहां पर भी किये हुए पाप कर्मों के फल अर्थात् पाप मोचन की प्रार्थना नहीं है अपितु अपनी पाप करने की वृत्तियों को नष्ट करने की प्रार्थना है। वेद मंत्र तथा उसका अर्थ यों है।

त्वंहि विश्वतो मुखः विश्वतः परिभूरसि ।
अपनः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १ । ७ । ५ । ६ ॥

भाषार्थ—हे अग्ने परमात्मन् आपही सब जगत में सब ठिकानों में व्याप्त हो। अतएव आप विश्वतो मुख हो। हे सर्वतो मुखाग्ने स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो वही आपका मुख है। कृपालो आपकी इच्छा से हमारा पाप ( पाप करने का स्वभाव ) सब नष्ट हो जाए। जिससे हम लोग निष्पाप ( पाप करने के स्वभाव से रहित ) होके आप की भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें ॥६॥

इसी प्रकार से ही वेद के जितने भी मंत्रों में यह आता है कि "हे ईश्वर ! आप हमारे पापों का नाश कर दें" उसका यही अभिप्राय है कि ईश्वर हमारे पाप करने के स्वभाव को नाश करदे ताकि हम भविष्य में पाप करने की आदत से मुक्त होकर पुण्य कर्म करें। वेदों में किये हुए कर्मों के फल का वा किये हुवे कर्मों का नाश या क्षमा या पाप मोचन का कहीं भी वर्णन नहीं है। अपितु परमात्मा को न्यायकारी रुद्र अर्थात् दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला, यम अर्थात् दुष्टों को नियम में रखने वाला मन्यु अर्थात् दुष्टों पर क्रोध करने वाला वर्णन किया गया है। अतः किये हुवे पाप कर्मों का क्षमा करना ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध होने से पाप मोचन की कल्पना सर्वथैव मिथ्या है वैदिक सिद्धान्त यही है कि पाप की वृत्तियों को दूर करने की प्रार्थना तथा तदनुकुल प्रयत्न किया जावे जैसे कि:—

विश्वानि देव सवित दुंरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०।३ ॥

हे सुख देने वाले देव ! हे जगतोत्पादक प्रभो ! हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों को दूर कीजिये और जो शुभ गुण हैं वे हम को प्राप्त कराइये। इस मन्त्र के द्वारा गोया जीव प्रार्थना करता हुआ प्रतिज्ञा करता है कि मैं आज से अपने जीवन से दुर्गुणों को निकाल कर शुभ गुणों को धारण करने का यत्न करूंगा आप मेरी सहायता करें। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये।

# नाम स्मरण महत्त्व

२६५ (प्रश्न)—'कस्य नूनमित्यादि ऋ० १।२४।१' इस मन्त्र में परमात्मा के नाम स्मरण का वर्णन है। पृ० २६७ पं०२२।

उत्तर—इस मन्त्र में नाम स्मरण का वर्णन नहीं है। अपितु इस में तथा इससे अगले मन्त्र में मोक्ष से पुनरावृत्ति का वर्णन है। इस मन्त्र में प्रश्न तथा इससे अगले मन्त्र में उत्तर हैं। हम दोनों मन्त्रों का ठीक २ अर्थ लिख देते हैं।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरंच ॥१॥

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्यनाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरंच ॥२॥

( ऋग्० १।२४।१-२ )

भावार्थ—हम लोग किस का नाम पवित्र जानें। कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है। हम को मुक्ति का सुख दे कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता हैं॥ १ ॥ हम इस स्वप्रकाश स्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनन्द दे कर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म दे कर भाता पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है॥ २ ॥ इन दोनों मन्त्रों में परमात्मा के नाम को पवित्र तो वर्णन किया है। किंतु नाम के स्मरण का वर्णन नहीं है। नाम स्मरण का मन्त्र हम नीचे पेश करते हैं।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मन्त॑ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत॑ स्मर।
॥ यजु० ४०।१५॥

भाषार्थ—हे कर्म करने वाले जीव! तू ओ३म् नाम परमात्मा का स्मरण कर, सामर्थ्य के लिये स्मरण किये हुए कर्म को स्मरण कर, प्राण वायु, अपान वायु तथा परमात्मा को प्राप्त हो। यह शरीर अन्त में भस्म होने वाला है ॥१५॥ इस मंत्र में निम्न आज्ञायें हैं।

(१) ओ३म् नाम परमात्मा का स्मरण कर,
(२) अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये याद कर,
(३) किये हुये कर्म को याद कर,
(४) प्राण अपान को वश करके परमात्मा को प्राप्त कर,
(५) अन्त में शरीर भस्म होने वाला है,

चूंकि शरीर नाश होने वाला है इस लिये परमात्मा को याद रखकर शुभ कर्म कर, प्राणायाम द्वारा परमात्मा को सामर्थ्य बढ़ाने के लिये प्राप्त कर।

इस मंत्र में केवल नाम स्मरण की आज्ञा नहीं अपितु शुभ कर्म करते हुए ओम् नाम के स्मरण द्वारा परमात्मा की प्राप्ति की आज्ञा इस वेद मंत्र में है। इसी बात को ऋषि दयानन्द जी ने भी प्रतिपादन किया है कि—"और नाम स्मरण मात्र से कुछ फल नहीं होता। जैसा कि मिश्री २ कहने से मुंह मीठा और नींम २ कहने से कड़वा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा वा कड़वापन जाना जाता है। (प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र

पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है ? (उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो वह रीति झूठी है। (प्रश्न) हमारी कैसी रीति है ? (उत्तर) वेदविरुद्ध। (प्रश्न) भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलाइये ? (उत्तर) नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये। जैसे 'न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम है इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है जैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है" (सत्यार्थ ११ मूर्तिपू० )

इस से सिद्ध हुआ कि परमात्मा की आज्ञानुसार शुभ कर्म करना ही परमात्मा का नाम स्मरण है। केवल नाम का रटना शुभ कर्म के बिना व्यर्थ है।

२६६ ( प्रश्न )—"ओमित्येतदक्षरमित्यादि छान्दो० १ । १ " इसमें ओ३म् के जप करने की आज्ञा पाई जाती है। पृ० २६८ पं० ४।

उत्तर—वेद प्रमाण देने की प्रतिज्ञा कर के छान्दोग्य उपनिषत् का प्रमाण देना यह आप की ईमानदारी का नमूना है। क्या छांदोग्य वेद है फिर न मालूम आपने यह प्रमाण किस मतलब से दिया है। क्योंकि इसमें नाम स्मरण की शिक्षा ही नहीं है। भला इस पाठ में से जप करना कौन से पद का अर्थ है। लीजिये हम इसका अर्थ कर देते हैं।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ छान्दो० १ । १ ॥

भाषार्थ—ओम् जिसका नाम है। और जो कभी नष्ट नहीं होता उसकी उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं ॥ १ ॥

इसमें एक परमात्मा की पूजा विधान है। परमात्मा से भिन्न अन्य की पूजा का निषेध है। इस मन्त्र में यह शिक्षा नहीं है कि केवल ओम् नाम स्मरण से ही मोक्ष हो जाती है। आप कोई ऐसा वेद का प्रमाण पेश करें! जिससे यह पौराणिक सिद्धान्त सिद्ध हो सके कि केवल नामोच्चारण से ही मोक्ष हो जाता है। हम ईश्वर स्तुति को मानते हैं किन्तु केवल स्तुति से कोई फल नहीं। जब तक तदनुकूल चरित्र सुधार न हो जैसे—

"(प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं ? (उत्तर) करनी चाहिये (प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा। (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है। (प्रश्न) क्या है ? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति,उसके गुणकर्म स्वभाव से अपने गुणकर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। (प्रश्न) इन को स्पष्ट करके समझाओ, (उत्तर) जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजु०॥ अ० ४०। मं० ८॥

( ईश्वर की स्तुति ) वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयं सिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है वह सगुण स्तुति अर्थात् जिस २ गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना यह सगुण, ( अकाय ) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता जिसमें छिद्र नहीं होता नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस २ राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है।

( सत्यार्थ सप्तम समुल्लास )

इसी बात को ही वेद भगवान् वर्णन करते हैं कि केवल कर्म और न केवल उपासना ब्रह्म ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है अपितु दोनों इकट्ठे होकर मोक्ष का हेतु हैं जैसे—

अंधंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यया ँ रताः ॥ १२ ॥
विद्यां चा विद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वाविद्ययामृत मश्नुते ॥ १४ ॥
( यजु० ४० । १२-१४ )

भाषार्थ—वे लोग अंधकार में प्रविष्ट होते हैं जो केवल कर्म की उपासना करते हैं। और वे उस से भी अधिक अंधकार में प्रविष्ट होते हैं। जो केवल उपासना ज्ञान को ही मोक्ष साधन मानते हैं॥ १२ ॥ जो मनुष्य ज्ञान तथा कर्म को साथ ही साथ इकट्ठा करना जानता है वह कर्म से मृत्यु के भय को तर कर ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है॥ १४॥ अतः केवल नाम स्मरण से मोक्ष मानना वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है।

२६७ (प्रश्न)—"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म इत्यादि गीता ८। १३ " इस में भी ब्रह्म के नाम ओम् स्मरण से मोक्ष मिलने का वर्णन है। पृ० २६८ पं० ७।

उत्तर— कहिये महाराज! अब तो गीता को भी वेद के नाम से पेश किया जाने लगा। क्या यही वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन है, क्या सचमुच आप गीता को वेद मानते हैं। कुछ होश से काम लो, कहां महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग गीता और कहां वेद। "कहाँ गांगला तेली और कहां राजा भोज" फिर इस श्लोक में यह कहां लिखा है कि केवल नामोच्चारण से ही मुक्ति हो जाती है। इस श्लोक को गीता के दूसरे श्लोक से मिला कर अर्थ करें।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥ गी० ४।१५॥

ओ३म् इस एकाक्षर ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ मुझे याद करके जो देह को त्याग कर जाता है वह परम गति

को प्राप्त होता है ॥१३॥ इस प्रकार से जान कर पहिले मोक्ष की इच्छा करने वालों ने भी कर्म किया। इसलिये तू कर्म ही कर, जो कि पहिलों ने बहुत पहिले किया है ॥१५॥

इन दोनों श्लोकों को मिला कर यदि आप यह सारांश निकाल सकें कि ईश्वर का नामोच्चारण तभी फलदायक होता है यदि तदनुकूल शुभाचरण भी किया जावे तो ठीक और यदि आप केवल नामोच्चारण से ही मोक्ष इस श्लोक का भाव मानते हैं तो हमें वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण मानना पड़ेगा। हमारे विचार में तो पहिला श्लोक ओम् नाम के स्मरण की आज्ञा देता है। कर्म का निषेध नहीं करता। तथा दूसरा श्लोक कर्म करने की आज्ञा देता है नाम स्मरण का निषेध नहीं करता। दोनों को मिला कर यह अभिप्राय हुआ कि नाम स्मरण तथा कर्म दोनों ही साथ २ मोक्ष का हेतु हैं। दोनों में से एक कोई भी अकेला मोक्ष का हेतु नहीं है। यही वेद का सिद्धान्त है। क्योंकि वेद तो कहता है कि संपूर्ण वेद भी यदि पढ़ा जावे किन्तु ब्रह्म का ज्ञान न हो तो उच्चारण मात्र से वेद का भी कोई फल नहीं। फिर एक अक्षर का तो हो ही क्या सकता है जैसे—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि—
विश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ऋ० १।१६४।३६॥

भाषार्थ—ऋग्वेदादि से प्रतिपादित जिस सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापक, विकार रहित, परमेश्वर में सब सूर्य्य चन्द्र भूमि आदि आधेयरूप से स्थित हैं। परब्रह्म उस परमेश्वर को जो

नहींजानता है। वह वेद से क्या करेगा। अर्थात् उसका वेदाध्ययन निष्फल है जो मनुष्य उस प्रभु को जान लेता है। वे ही ब्रह्म में भली प्रकार स्थित होते हैं ॥३६॥

भावार्थ—वेद पढ़ने का लाभ तभी है। कि वेद से ईश्वर जीव प्रकृति तथा जगत् का जो शाब्दिक ज्ञान हुआ है उस ज्ञान को चरितार्थ करने के लिये योग साधन द्वारा उन का साक्षात् करने का प्रयत्न करें ॥३६॥

कहिये महाराज! ओम् नाम का तो कहना ही क्या है चारों वेद भी आचरण के बिना निष्फल हैं। जैसे—

सावित्री मात्र सारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११८॥

(मनु० २।११८)

आचार हीनान्न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ॥ भविष्य० ब्राह्म० अ० ४१ श्लो ८ ॥

भाषार्थ—जो ब्राह्मण सदाचारी हो वह केवल गायत्री जानता हुआ भी श्रेष्ठ है। और जो दुराचारी सर्व भक्षी सर्व विक्रयी है वह तीन वेदों का जानने वाला भी अच्छा नहीं है ॥११८॥ आचार हीन पुरुषों को वेद भी पवित्र नहीं करते चाहे वे छः अंगों के समेत भी पढ़े हों ॥८॥

इन सारे प्रमाणों से साबित है कि परमात्मा का नाम उच्चारण तथा वेदाध्ययन तभी फल दायक है यदि हमारा तदनुकूल आचरण हो। वरना केवल नाम स्मरण से मनुष्य को कोई लाभ नहीं है। इसी बात को दर्शाते हुए स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि—

(प्रश्न) जो २ तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशिक्षेत्रे विनश्यति" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं? (उत्तर) नहीं क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अंधों को आंख मिल जाती, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता। इस लिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता (प्रश्न)—

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १ ॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ २ ॥

प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम् ॥ २ ॥

इत्यादि श्लोक पोप पुराण के जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूर से भी गङ्गा २ कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णु-लोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है ॥ १ ॥ "हरि" इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पापों को हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण शिव भगवती आदि नामों का माहात्म्य है ॥ २ ॥ और जो मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप जाता है। यह दर्शन का माहात्म्य है ॥ ३ ॥ क्या झूठा हो जाएगा? (उत्तर) मिथ्या होने में क्या शंका? क्योंकि गङ्गा २ वा हरे राम कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुःखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे। जैसे आजकल

पोपलीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं। मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं। पर किया पाप भोगना ही पड़ता है। ( प्रश्न ) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं ? ( उत्तर ) है—वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना ब्रह्मचर्य, आचार्य्य अतिथि, माता, पिता की सेवा परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता धर्मयुक्त पुरुषार्थ ज्ञान, विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं।

समानतीर्थे वासी ॥ अ० ४। पा० ४। १०८ ॥

नमस्तीर्थ्याय च ॥ यजु० ॥ अ० १६। [ मं० ४२ ]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य्य और एक शास्त्र को साथ साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थ सेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं। नामस्मरण इसको कहते हैं कि—

यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु० ॥ [ अ० ३२। मं० ३ ]

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्व शक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म सब से बड़ा, परमेश्वर ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी, कभी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् का उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता, ब्रह्मा विविध जगत् के पदार्थों का बनाने हारा, विष्णु सब में व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सब देवों का देव, रुद्र प्रलय करने हारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे, अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, सामर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रक्खे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे, शिल्पविद्या से नानाप्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख दुःख समझे, सब की रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे, इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जान कर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है। ( प्रश्न )

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है ? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो बावन के समान; क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के

तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरु जी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग २ में अश्वमेध का फल होता है यह बात ठीक है वा नहीं ? (उत्तर) ठीक नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि सद्गुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ मूंठ कण्ठी तिलक वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चेले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं वे—

दोहा—गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेले दाँव।
भवसागर में डूबते बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले चेली कुछ न कुछ देवें हीं गे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगन्द खाने, पाप छुड़ाने आदि लालच से दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं जसे पत्थर की नौका में बैठने वाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़ राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे वह दुःख सागर में पड़ेगा। जैसी

पोपलीला पुजारी पुराणियों ने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरु माहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है॥

( सत्यार्थ० समु० ११ )

२६८ (प्रश्न)"यन्मनसान मनुते इत्यादि केन० १।५" इस में भी ब्रह्म की पूजा उपासना नाम स्मरण की आज्ञा है।

पृ० २६८ पं० १२।

उत्तर—आपने इस केनोपनिषत् के पाठ को वेद के नाम से पेश किया है। हालांकि केन वेद नहीं अपितु उपनिषत् है जो कि परतः प्रमाण है। तो भी आपने इस का अर्थ ठीक नहीं किया इस में न तो नाम स्मरण का वर्णन है। और न केवल नाम स्मरण से मोक्ष का ज़िकर है। अपितु इस में मन के ज्ञान से अतीत ब्रह्म की उपासना की शिक्षा हैं तथा प्राकृतिक पदार्थों की उपासना का निषेध है। देखिये इस का अर्थ यह है—

यन्मनसा न मनुते येनाहु र्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥२॥

(केन० उ० खं० १ मं० २)

भाषार्थ—जो मन से "इतना है" ऐसा करके मनन में नहीं आता जो मन को जानता है उसी को ब्रह्म तू जान और उसी की उपासना कर जो उस से भिन्न जीव और प्रकृति है उस की उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर॥२॥

बतलाइये, इस में केवल नाम स्मरण से मुक्ति का कहां विधान है। वेद एक नाम तो क्या संपूर्ण वेद के भी केवल उच्चारण मात्र से मुक्ति नहीं मानता। देखिये—

उतत्वः पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणो—
त्येनाम्। उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती
सुवासा। ऋ०८।२।२३।४॥

भाषार्थ—कोई वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता (अर्थ न जानने से) और कोई वेद वाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता (अर्थ न जानने के कारण) और किसी के लिये वाणी ऐसे अपनी आत्मा को प्रकाशित कर देती है जैसे ऋतु स्नाता पत्नी अपने पति के लिये॥ ४।

इस से साफ साबित है कि नामोच्चारण वा वेद पठन अर्थ समझे बिना तथा तदनुकूल आचरण किये बिना व्यर्थ ही हैं।

फलं कतक वृक्षस्य यद्यप्यम्बु प्रसादकम्।
न नाम ग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥
(मनु० ६। ६७।)

भाषार्थ—यद्यपि निर्बसी का फल पानी को साफ करने वाला है परन्तु उस के नाम मात्र से पानी साफ नहीं हो जाता॥ ६७॥

इसी प्रकार से परमात्मा मोक्ष दाता है किंतु परमात्मा के नाम स्मरण मात्र से मोक्ष नहीं मिलता अपि तु तदनुकूल आचरण करने से मोक्ष मिलता है। इसी बात को स्वामी दयानन्द जी ने भी वर्णन किया है कि—

थोड़े दिन हुए कि एक 'राम स्नेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्मको छोड़के 'राम २' पुकारना अच्छा माना है। उसी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब 'राम नाम' में से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि खान पान आदि तो गृहस्थियों के घर में ही मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं परंतु आप स्वयं मूर्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के सङ्ग में बहुत रहते हैं क्योंकि राम जी को 'राम की' के बिना आनंद ही नहीं मिल सकता। अब थोड़ा सा विशेष राम स्नेही के मत के विषय में लिखते हैं—

एक राम चरण नामक साधु हुआ है जिस का मत मुख्य कर 'शाह पुरा' स्थान मेवाड़ से चला है। वे 'राम २' पुकारने ही को परम मंत्र और इसी को सिद्धांत मानते हैं। उन का एक ग्रन्थ कि जिस में संतदास जी आदि की बाणी है ऐसा लिखते हैं—

उन का वचन

भरम रोग तब ही मिटया,
रटया निरञ्जन राई ।
तब जम का कागज फटया,
कटया कर्म तब जाई ॥

साखी ॥ ६ ॥

अब बुद्धि मान् लोग विचार लें कि 'राम २' कहने से भ्रम जो कि अज्ञान है वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं ?

यह केवल मनुष्यों को पापों में फंसाना और मनुष्य जन्म को नष्ट कर देना है। अब इन का जो मुख्य गुरु हुआ है 'राम चरण' उस के वचन—

महमा नांव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
राम चरण रसना रटी, क्रम सकल झड़ जाइ॥
जिन जिन सुमर्या नांव कूं, सो सब उतरया पार।
राम चरण जो वीसर्या, सो ही जम के द्वार
राम बिना सब झूठ बतायो॥
राम भजत छूटया सब क्रम्मा।
चंद अरु सूर देइ परकम्मा॥
राम कहे तिन कूं भै नाहीं।
तीन लोक में कीरती गाहीं॥
राम रटत जग जोर न लागै।
राम नाम लिख पथर तराई।
भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊंच नीच कुल भेद विचारे।
सो तो जनम आपणो हारै॥
संतां के कुल दीसै नाहीं।
राम राम कह राम सम्हाहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै।
हरि हरि जन को पार न पाव॥
राम सन्तां का अन्त न आवै।
आप आप की बुद्धि सम गावै॥

इन का खण्डन

प्रथम तो राम चरण आदि के ग्रन्थ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता ? यह केवल इन को भ्रम है कि राम २ कहने से कर्म छूट जायें केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं। जम का भय तो बड़ा भारी है परन्तु राज सिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात दिन राम २ किया करें कुछ भी नहीं होगा। जैसे 'शक्कर २' कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्य भाषणादि कर्म किये बिना राम २ करने से कुछ भी नहीं होगा और यदि राम २ करना इन का राम नहीं सुनता तो जन्म भर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी बार भी राम २ कहना व्यर्थ है। इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का भी जन्म नष्ट करने के लिये एक पाखण्ड खड़ा किया है सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा राम स्नेही और करते हैं रांड स्नेही का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तों को घेर रही हैं यदि ऐसे २ पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती। ये लोग अपने चेलों को जूठ खिलाते हैं और स्त्रियां भी लम्बी पड़ कर दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकांत में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है।'

(सत्यार्थ प्रकाश ११)

२६६ (प्रश्न)—ऊपर के मन्त्रों में जो नाममहत्व वेद, गीता ने बतलाया था वह स्वामी जी ने ज़रा सी हुज्जत में उड़ा दिया। पृ० २६८ पं० २०।

उत्तर—गीता में भी मन्त्र हैं, यह आप से ही पता लगा। वेद का आप ने एक मन्त्र दिया है वह भी मोक्ष से पुनरावृत्ति का है, नाम स्मरण के महत्व का नहीं है। शेष जो वेद वाक्य प्रमाण आप ने दिये हैं, उन में भी केवल नाम स्मरण से मुक्ति कोई भी नहीं मानता। और यह ठीक भी है कि परमेश्वर को जानना तथा तदनुकूल आचरण करना ही मोक्ष का हेतु है। केवल नाम स्मरण आदि और कोई साधन मोक्ष के नहीं हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय॥

यजु० ३१।१८।

भाषार्थ—जो अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप और महान् पुरुष परमात्मा है, उस को मैं जानता हूं। उस को जानने से ही मृत्यु के पार हो सकता है। मृत्यु दूर करने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है॥१८॥

कैसा साफ मन्त्र है कि परमात्मा को जाने बिना कोई दूसरा मार्ग मोक्ष का नहीं है। अतः केवल नाम स्मरण से मोक्ष नहीं हो सकती। अपितु तदनुकूल कर्म कर के ब्रह्म को जानने से मोक्ष हो सकता है।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेद फल मश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्ण फलभाग भवेत्॥ मनु० १।१०९॥

भाषार्थ—आचरण से गिरा हुआ ब्राह्मण वेद के फल को

नहीं भोग सकता, आचरण से ही सम्पूर्ण फल को भोग सकता है ॥१०६॥ अतः स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है, वह वेद तथा धर्म्म शास्त्र के आधार पर लिखा है। वेद-विरुद्ध हुज्जत बाज़ी करना आप लोगों का काम है, स्वामी जी का नहीं है।

२७० (प्रश्न)—रक्षा करने से ओ३म् कहलाता है। तो यह जो ओ३म् ईश्वर का नाम है, यह स्मरण करने से रक्षा करता है। या इस निराकार ओ३म् की पीतल की शकल बना कर सिर में टांगने से रक्षा करता है। यद्वा अपने आप स्वभाविक धर्म्म से रक्षा करता है। यहां पर स्मरण से ही रक्षा क्यों न मानें। पृ० २६६ पं० ५।

उत्तर—परमात्मा का नाम रक्षा करने से ओ३म्, न्याय करने से न्यायकारी, दुष्टों को दण्ड दे कर रुलाने से रुद्र, सब को नियम में रखने से यम, तथा पापियों पर क्रोध करने से मन्यु है। परमात्मा नामोच्चारण मात्र से न तो रक्षा करता है और न दण्ड देता है। और न ही टोपी पर पीतल का ओम् लगाना रक्षा या मुक्ति का हेतु है। जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल धर्म्माचरण करते हैं परमात्मा उन की रक्षा करता है। और जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध अधर्म्माचरण करते हैं, परमात्मा उनको दण्ड देते हैं। परमात्मा बिना आचरण के केवल नाम स्मरण मात्र से न रक्षा करते हैं, न दण्ड देते हैं। अतः केवल नाम स्मरण मात्र से रक्षा मानना ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल है।

२७१ (प्रश्न)—"प्रणवो धनु इत्यादि मुण्डक० २। ४"

यहां पर ओम् का धनुष और आत्मा का वाण छील छाल कर बढ़ई नहीं बनाता किंतु अंतःकरण में यह घटना होती है। जब ओ३म् का धनुष बनाया जावेगा तब अंतःकरण में ओ३म् का स्मरण होगा। बिना स्मरण किये ओ३म् का न धनुष बन सकता है। और न जीव ब्रह्म बन सकता है। पृ० २६६ पं० ११।

उत्तर—यहां पर आत्मा के ब्रह्म बन जाने का वर्णन नहीं अपितु ब्रह्म में मस्त मग्न होने का वर्णन है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार से है—

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवन्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥
(मुंडक० २। २। ४)

भाषार्थ—ओंकार धनुष है। निश्चय करके जीवात्मा वाण है। और उसका लक्ष्य परमात्मा कथन किया गया है। प्रमाद रहित चित्त से उसका वेधन करे वाण के सदृश तन्मय होजाय ॥४॥ इसमें जीव के ब्रह्म होने का वर्णन नहीं अपितु ब्रह्म में मग्न होने का वर्णन है। इस मंत्र में यह कहां वर्णन है कि नाम स्मरण मात्र से ही मुक्ति हो जाती है। जब तक आत्मा को यम नियम विद्या तप आदि कर्मों के द्वारा ओंकार रूप धनुष पर चढ़ने के क़ाबिल न बना लिया जावे तब तक वह वाण रूप कैसे बन सकता है। जैसे बढ़ई काष्ठ के वाण को छील कर बनाता है वैसे ही आत्मा को भी शुभ कर्मों द्वारा वाण बनाने के योग्य बनाना पड़ता है। क्या बिना संस्कार किये प्रत्येक आत्मा वाण बनाने के योग्य हो सकता है। अंतःकरण

में ओ३म् का स्मरण हो हमें क्या आपत्ति हम ओ३म् स्मरण के विरुद्ध थोड़ा ही हैं। हमारा तो यह पक्ष है कि केवल ओ३म् स्मरण से कल्याण नहीं होसकता जब तक कि तदनुकूल आचरण न किया जावे। अतः मुण्डक का उपरोक्त प्रमाण हमारी ताईद करता है। क्योंकि प्रणव रूपी धनुष में तब तक आत्मा नहीं रखा जा सकता जब तक उसे विद्या तप से शुद्ध करके शुभ कर्मों द्वारा बाण बनाने के योग्य न बना लिया जावे। अतः केवल नाम स्मरण पुरुषार्थ धर्म्माचरण के विना व्यर्थ ही है।

२७२—(प्रनश्) 'स पूर्वया निविदा इत्यादि ऋ० १। ७। ३। २" आर्य्याभिविनय मं० ४२॥ उसी विज्ञानादि धन देने वाले को विद्वान् लोग अग्नि मानते हैं। हम लोग उसी को भजें॥ पृ० २६६ पं० २१।

उत्तर—इस मंत्र में यह कौनसे पदों से सिद्ध होता है कि नाम स्मरण मात्र से मोक्ष हो जाता है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार से है—

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्य देवा अग्निं धारयन्द्रविनो दाम।
॥ ऋ० १। ७। ३। २॥

भावार्थ—हे मनुष्यो आदि सनातन सत्यता आदि गुण-युक्त अग्नि ही परमात्मा था अन्य कोई नहीं था। तप सृष्टि के आदि में स्व प्रकाश स्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता ( विचार ) करता भया सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से ही सत्य विद्या युक्त वेदों की तथा मननशील मनुष्यों की

तथा अन्य पशु वृक्षादि की प्रजा को उत्पन्न किया। परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिए, परन्तु मननशील वाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। सूर्य्य आदि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशने वाला बल से स्वर्ग ( सुख विशेष ) सब लोक अन्तरिक्ष में पृथिवी आदि मध्यम लोक और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर देव है, उसी विज्ञान आदि धन देने वाले को ही विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को ही भजें ॥२॥

यहां भजें के अर्थ हैं कि "हम लोग उस की ही उपासना करें" इस मन्त्र के अर्थ से यह सिद्ध नहीं होता कि केवल नाम स्मरण मात्र से ही मोक्ष प्राप्ति हो जाती है।

२७३ (प्रश्न)—इन्द्रियों से अग्राह्य निराकार के नाम का स्मरण ही भजन है। तो भी आप नाम स्मरण का खण्डन करते हैं। मिश्री कहने से मुंह मीठा नहीं होता, तो क्या नीम्बू कहने से भी मुंह में पानी नहीं आता ? यदि ऐसा ही है तो आप के दयालु, न्यायकारी आदि ईश्वर के नाम लेने क्यों लिखे ?

पृ० २७० पं० ५।

उत्तर—आप बड़ी ही गलत फहमी में हैं। हम परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना उपासना के विरुद्ध नहीं हैं। स्तुति और नाम स्मरण एक ही वस्तु है। किन्तु हम यह मानते हैं कि केवल स्तुति से या नाम स्मरण से कल्याण नहीं हो सकता। अपितु ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव के सुधारने से कल्याण हो सकता है। इसी का नाम स्मरण या

स्तुति हो सकता है। बेशक जैसे मिश्री २ कहने से मुंह मीठा नहीं होता, वैसे ही नीम्बू २ कहने से भी मुंह खट्टा नहीं हो सकता। वरना अचार डालने की ज़रूरत ही न रहे। रोटी खाते समय नीम्बू २ कह लिया करें। नीम्बू के स्मरण से भी उसी के मुंह में पानी आता है, जो यत्न कर के एक बार नीम्बू प्राप्त कर के उस का स्वाद ले चुका है। जिस ने कभी नीम्बू न खाया हो उस को नीम्बू स्मरण करने से तो क्या, देखने से भी मुंह में पानी न आवेगा। ऐसे ही जब तक यम-नियमादि शुभ कर्मों द्वारा योगाभ्यास कर के जब तक परमात्मा का अनुभव न कर लें तब तक केवल नाम स्मरण मात्र से कभी भी ब्रह्मानन्द या मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वामी जी ने जो दयालु, न्यायकारी आदि नामों से ईश्वर की स्तुति करना लिखा है। उस का प्रयोजन यही है कि हम भी अपने जीवन में न्याय को धारण कर के तथा निर्बलों, निरपराधों पर दया कर के अपने जीवन में सुधार करें। बस यह सिद्ध हो गया कि केवल नाम स्मरण मात्र से मोक्ष नहीं होता, अपितु तदनुकूल आचरण करने से मोक्ष होता है। अतः केवल नाम स्मरण से पाप क्षय का सिद्धान्त वेद विरुद्ध, निर्मूल, पापजनक तथा सर्वथा असत्य है।

२७४ (प्रश्न)—वेद ने स्वर्ग आदि लोगों को इस मृत्यु लोक से भिन्न माना है। पृ० २८५ पं० १६।

उत्तर—सब से पहिले हमने इस बात पर बिचार करना है कि "स्वर्ग लोक" के अर्थ क्या हैं। यह शब्द तीन शब्दों से मिलकर बना हुआ है। 'स्व' 'ग' तथा 'लोक' सब से पहिले देखें कि 'स्वः' के क्या अर्थ हैं॥ स्वः॥ [ स्वः। प्रश्नि। नाकः। गौः। विष्टप्। नभः ] ये छः नामद्यौ के हैं ( निरुक्त अ०

२ खं० १३ ) अब देखना है कि द्यौः के क्या अर्थ हैं [ अथ द्यौः कमिति सुख नाम ] द्यौ नाम सुख का है ( निरुक्त अं० २ ख० १४ ) इससे साबित हुआ कि उपरोक्त छः नाम सुख के हैं। इन छः में स्वः भी है। अतः स्वः के अर्थ सुख के हुए।

॥ ग ॥ "स्वर्ग" में जो 'ग' है वह ( गम्लृ गतौ ) गम अर्थात् गति अर्थ वाली धातु का है। गति के ( ज्ञान, गमन, प्राप्ति ) तीन अर्थ हैं। अतः ( स्वर्गम्यते प्राप्यतेऽस्मिन्निति स्वर्गः ) जिस में सुख की प्राप्ति हो उसका नाम स्वर्ग है।

॥ लोक ॥ विवाह के समय कन्या कहती है कि—

ओं प्रमे पतियानः पन्थाः कल्पता शं शिवा अरिष्टा पति लोकं गमेयम् ॥ मं० ब्रा० १ । १ । ८ ॥

( गोभि० २ । १ । १६—२२ )

भाषार्थ—मेरे जाने के रास्ते कल्याणकारी हों। मैं पति-लोक को प्राप्त होती हैं। यहां लोक के अर्थ पृथिवी से भिन्न लोक नहीं अपितु गृहस्थी अवस्था ही पति लोक है। अतः लोक के अर्थ अवस्था हुवे। विवाह में वर कहता है कि—

कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयम् ॥ मं० ब्रा० १ । २ । १ ॥

( गोभि० २ । २ । ६ )

भाषार्थ—कन्या पितृलोक से पति से पतिलोक को प्राप्त होती है। इस से साफ साबित है कि लोक नाम अवस्था का है।

त्रयो लोका एत एव। वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्ष लोकः प्राणोऽसौलोकः ॥ शत० १४ । ४ । ३ । ११ ॥

अथ त्रयो वाव लोकः। मनुष्यलोकः पितृ लोकाः देवलोक इति, सोऽयं मनुष्य लोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा, कर्मणा

पितृलोक्या विद्यया देवलोकः ॥ शत० ४ । ३ । २४॥

स्वरिति दिवम् ॥ ११ ॥
स्वरिति विशम् ॥ १२ ॥
स्वरिति पशून् ॥ १३ ॥
} (शत० २।१।४।११ से १३)

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ॥ अथर्व० १४ । २ । ५२ ॥

भावार्थ—तीन लोक यही हैं। वाणी ही यह लोक है। मन ही अंतरिक्ष लोक है। प्राण ही वह लोक है ॥ ११ ॥ ये तीन लोक हैं। पितृलोक, देव लोक, मनुष्य लोक, वह यह मनुष्य लोक पुत्र से ही जीता जाता है। और कर्म से नहीं। कर्म से पितृ लोक, विद्या से देव लोक जीता जाता है॥ २४ ॥ स्वः नाम द्यौ का है ॥ ११ ॥ स्वः नाम वैश्य का है ॥ १२ ॥ स्वः नाम पशुओं का है ॥ १३ ॥ ये पितृलोक से पति लोक को प्राप्त होने वाली कन्या प्राप्त है ॥ ५२ ॥

## सारांश

स्वः— सुख, द्यौ, वैश्य, पशु
ग—जिस में स्वः प्राप्त हो

लोक—अवस्था, मन, वाणी, प्राणपिता का स्थान, पति का स्थान, मनुष्य अवस्था, पितृ अवस्था, देव अवस्था इत्यादि जिस अवस्था तथा जिस स्थान में मनुष्य को सुख तथा सुख के विशेष सामान पशु वैश्य संबंधि पदार्थ आदि मिलें उसका नाम स्वर्ग है। चाहे वह इसी पृथिवी पर मिलें चाहे अन्य सूर्य्य चांद सितारों में मिलें। सारांश यह कि स्वर्ग नाम का कोई पृथक् स्थान कहीं है। जहां सुख और सुख की विशेष

सामग्री मिले उसी का नाम स्वर्ग है। यही बात स्वामी दया-नन्द जी कहते हैं कि—

स्वर्ग—नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

( सत्यार्थ० मन्तव्य० ४२ )

वाक् शौचं कर्म शौचं च यंच शौचं जलात्मकम्।
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्गो नात्र संशयः ॥८०॥

( महा० वन० १९९। ८० )

भाषार्थ—वाणी की पवित्रता, कर्मों की पवित्रता, जलात्मक पवित्रता, जो स्थान वा अवस्था इन तीन पवित्रताओं से युक्त हो। वही स्वर्ग है। इसमें संशय नहीं है ॥८०॥

संसार में ऐसी अवस्था वा ऐसा स्थान विशेष कर कौन सा है।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वाश्रमाः ॥७७॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेनचान्वहम्
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षय मिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥७९॥

( यजु० ३। ७७ सं ७९ )

भाषार्थ—जैसे वायु का आश्रय ले कर सारे प्राणी वर्तमान होते हैं, वैसे ही सारे आश्रम गृहस्थ का आश्रय ले कर वर्तमान होते हैं ॥७७॥ जिस कारण से तीनों भी आश्रम ज्ञान तथा अन्न से प्रति दिन गृहस्थ से ही धारण किये जाते हैं।

इसलिये बड़ा आश्रम गृहस्थ ही है ॥७८॥ इसलिये अक्षय मोक्ष और इस संसार में स्वर्ग की इच्छा करने वाले को वह गृहस्थ धारण करना चाहिये, परन्तु वह निर्बल इन्द्रिय वालों से धारण करने के योग्य नहीं है ॥७९॥

इस से सिद्ध हुआ कि संसार में स्वर्ग प्राप्ति चाहे और अवस्थाओं तथा स्थानों में भी हो, किंतु संसार में गृहस्थ स्वर्ग सुख का भण्डार है। अतः विशेष कर स्वर्ग गृहस्थ का नाम है। इस में वेद प्रमाण—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्वीणा अंगैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

अथर्व० ६।१२०।३।

भाषार्थ—जहां उत्तम हृदय तथा परस्पर मित्रता रखने वाले, श्रेष्ठ कर्मों वाले अपने शरीर के रोगों से आरोग्य लाभ कर के आनन्द पाते हैं, उस स्वर्ग लोक में हम माता-पिता दोनों का तथा पुत्रों का दर्शन करें ॥३॥

इस मन्त्र में माता, पिता, पुत्रों, मित्रों के दर्शन से गृहस्थ को ही स्वर्ग कहा गया है।

अतः सिद्ध हुआ कि इस पृथिवी से भिन्न किसी विशेष स्थान का नाम स्वर्ग नहीं है। अपितु जिस अवस्था में और जिस स्थान में सुख और सुख की सामग्री लाभ हो उस का नाम और विशेष कर गृहस्थ आश्रम का नाम स्वर्ग है।

२७५ (प्रश्न)—"अनस्था पूता इत्यादि अथर्व० ४।३४।२" तथा "घृत ह्रदा मधुकूलाः इत्यादि अथर्व० ४।३४।६" इन दो मन्त्रों में बहुत स्त्रियां, घी के तालाब आदि तथा दही,

दूध की नहरें मिलनी लिखी हैं। अतः पता लगा कि स्वर्ग पृथिवी से भिन्न लोक का नाम है ॥ पृ० २८५ पं० २१।

उत्तर—श्रीमान् जी! स्वर्ग कोई इस पृथिवी से भिन्न स्थान विशेष का नाम नहीं है। अपितु गृहस्थ आश्रम का नाम ही स्वर्ग है। क्योंकि पशुओं तथा व्यापार सम्बन्धी तमाम वस्तुओं की मौजूदगी के कारण दूध, दही, शहद आदि की नहरें और तालाब गृहस्थ में ही मनुष्य को प्राप्त हो सकते हैं। अतः इन मन्त्रों में भी गृहस्थाश्रम का वर्णन है। जैसे—

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपयन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्ग लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः ॥६॥

अथर्व० ४।३४।२-६।

भाषार्थ—जिन की हड्डियां नज़र नहीं आतीं, अर्थात् मोटे ताज़े हैं। बाहर से पवित्र तथा व्यायाम, प्राणायाम आदि द्वारा, अन्दर से भी पवन द्वारा शुद्ध हुए २ उज्ज्वल ब्रह्मचारी लोग इस पवित्र गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते हैं। अर्थात् उक्त प्रकार के जितेन्द्रिय पवित्र ब्रह्मचारी ही गृहस्थ में प्रवेश करने के योग्य होते हैं।

यद्यपि इस स्वर्ग लोक गृहस्थ में इन का बहुत सी अपनी माता, बहिन, चाची, ताई मुहल्ले की पड़ौसियों की पत्नियों, युवा लड़कियों आदि स्त्रियों के साथ रहने-सहने आदि का सम्बन्ध होता है। तथापि इन के उपस्थेन्द्रिय को कामाग्नि प्रदीप्त नहीं कर सकती ॥२॥ इस गृहस्थाश्रम में गौ आदि पशु तथा वैश्य के व्यापार सम्बन्धी सब वस्तुयें होने के कारण घी के तालाब, शहद की नहरें, अर्क, दूध. दही और पानी की भरी धारें तुझे आनन्द पूर्वक प्राप्त हों। तेरे चारों तरफ मिठास बरसाती हों, कमलों से भरी झीलें हों ॥६॥ गुरुकुल से गृहस्थ की विशेषता स्त्रियों की नज़दीकी ही तो है। ब्रह्मचारी पहले इस संपर्क से अलहिदा था, अब वह पढ़ कर, सीख कर और योग की क्रियाओं से पवित्र हो कर गृहस्थों के संसार में आया है। यह दुनिया है स्वर्ग, किंतु उसी सूरत में यदि मनुष्य काम-वासनाओं से ऊपर रहे, अपनी पत्नी के बिना सम्पूर्ण स्त्रियों को माता और बहिन की दृष्टि से देखे। फिर उसे खाने-पीने के लिये इतने दूध, घी, दही, मधु मीठे जल मिलेंगे कि उन की अधिकता को नहरों, तालाबों, झीलों से उपमा दी जा सकेगी। और तुझ को इस स्वर्ग लोक गृहस्थ में अनन्त सुख मिलेगा। यह अभिप्राय है।

२७६ (प्रश्न)—"स्वर्गे लोके न भयम् इत्यादि कठ० १।१२" यहां पर वर्णन है कि स्वग में मनुष्य को भय, बुढ़ापा, भूक, प्यास नहीं सताती। पृ० २८६ पं० ६।

उत्तर—बिलकुल ठीक है इस में सन्देह ही क्या है। जोगृहस्थ धन, धान्य, गौ आदि पशु ज्ञान, शस्त्राशस्त्र आदि पदार्थों से परिपूर्ण और निश्चिन्त होगा उस में भूख, प्यास, बुढ़ापा, भय के सताने का क्या काम ? जैसे कि—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ कठ० १। १२ ॥

भाषार्थ—धन धान्य गौ आदि पशु तथा शस्त्रास्त्र की मौजूदगी के कारण स्वर्ग लोक अर्थात् गृहाश्रम में कुछ भी भय नहीं है। न वहां पर मौत का डर है। क्योंकि ज्ञानी तथा शूरवीर लोग मौत से डरते ही नहीं। और न वहां बुढ़ापे का भय है। क्योंकि चिन्ता से ही बुढ़ापा आता है। वहां पर भूक और प्यास दोनों पर विजय पाकर शोक से पार हुआ पुरुष स्वर्ग लोक गृहस्थ में हर्ष को लाभ करता है ॥१२॥

२७७ (प्रश्न) "सहस्राश्वी इत्यादि ऐतरेय ब्रा० २। १७ में लिखा है कि बड़े मज़बूत पवन के समान वेग रखने वाले एक हज़ार घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहां से स्वर्ग है। पृ० २८६ पं० १७।

उत्तर—आपने इस पाठ के अर्थ गलत किये हैं। और यद्यपि यह वेद का प्रमाण नहीं है। तथापि इस के अर्थ इस प्रकार से हैं कि यहां पर चक्रवर्ती राज्य का प्रकरण है। ब्राह्मण ग्रन्थों ने चक्रवर्ती राज्य को भी स्वर्ग माना हैं। यहां पर उसकी

अवधि बतलाई गई है कि—

सहस्राश्वीनेवा इतः स्वर्गोलोकः ॥ ऐतरेय ब्रा० २ । १७

भाषार्थ—एक हज़ार घोड़े एक दिन में यहां से जितना दौड़ सकता है उतने वर्ग मील के साम्राज्य का नाम स्वर्ग लोक हैं ॥१७॥ इस में प्रमाण निम्न प्रकार से है कि—

साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः ॥ तांडय ब्रा० ४ । ६ । २४ ॥

चक्रवर्ती साम्राज्य का नामस्वर्ग लोक है । इस लिये हमारा अर्थ प्रकरणानुसार ठीक है । क्योंकि आप के दिये हुये पाठ में ऐसा कोई शब्द नहीं है । जिससे यह अर्थ निकले कि यहां से ऊपर को इतनी दूर स्वर्गलोक है । जिस साम्राज्य में न्यायकारी राजा राज करता हो वह स्वर्गलोक है और वह तमाम संसार से ऊपर की भांति है । अर्थात् श्रेष्ठ है । और साधारण स्थिति से पृथक् की भाँति है अर्थात् विशेषता रखता है । इसी लिये ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है कि—

उपरीव स्वर्गो लोकः ॥ तैतरीय० ३ । २ । १ । ५ ॥

स्वर्गलोक ऊपर की भाँति है । अर्थात् ऊपर को नहीं है अपितु ऊपर की भांति श्रेष्ठ है ।

पराञ्चिववैस्वर्गो लोकः ॥ शत० १३ । १ । ३ । ३ ॥

स्वर्गलोक जुदा की भाँति है । अर्थात् जुदा नहीं है किंतु आम संसार से विशेष गुणवान् होने के कारण जुदा सा है अतः सिद्ध हुआ कि स्वर्ग ऊपर को नहीं है अपितु इसी पृथिवी पर साम्राज्य का नाम स्वर्ग है जिसका परिमाण इस उपरोक्त पाठ में बताया है ।

२७८ (प्रश्न)—स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है। अब पाठक विचार लें कि आर्य्य समाज मत वैदिक है या वेद विरुद्ध है पृ० २८६ पं० २१।

उत्तर—हम पूर्ण रूप से प्रमाणों के साथ यह साबित कर चुके हैं कि सुख और सुख की विशेष सामग्री जहां हो उसका नाम स्वर्ग है। और वह पृथिवी से भिन्न कोई विशेष स्थान नहीं है। और प्रमाण देखिये—

स्वर्गो वै लोकोनाकः ॥ शत०६।३।३।१४॥
प्रतितिष्ठा शरोरः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥
(अथर्व० २।३४।५)

अर्थ—हे मनुष्य तू विद्वानों के मार्ग पर चलता हुआ सुख को प्राप्त हो और अपने शरीरों से प्रतिष्ठित हो। इन दोनों प्रमाणों से साबित है कि इसी पृथिवी पर सुख विशेष का नाम स्वर्ग है।

भला आप भी किस मुंह से कहते हैं स्वर्ग ऊपर कोई विशेष स्थान है। जब आपके हां पृथिवी पर ही स्वर्ग लिखा है। तभी तो अर्जुन ने पांच वर्ष स्वर्ग में शस्त्र विद्या की शिक्षा पाई। जैसे—

गृहीतास्त्रस्तुकौन्तेयो भ्रातॄन् सस्मार पाण्डवः।
पुरन्दर नियोगाच्च पंचाब्दानवसत् सुखी ॥५॥
(महा० वन अ० ४४)

भाषार्थ—अर्जुन ने शस्त्रों को ग्रहण करके अपने भाइयों को याद किया। इन्द्र की आज्ञा से पांच वर्ष सुख पूर्वक स्वग में निवास किया ॥५॥

तथा युधिष्ठिर इसी शरीर से स्वर्ग में गया। जैसे—

अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः।

(महा० महाप्रस्थानिक० अ० ३ श्लो० ६)

अर्थ—तू इसी शरीर से स्वर्ग में चला जायेगा इस में संशय नहीं है ॥६॥

फिर गंगा का स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरना जैसे—

पतमानां सरिच्छ्रेष्ठां धारयिष्ये त्रिविष्टपात्।
एतच्छ्रुत्वा वचो राजा शर्वेण समुदाहृतम् ॥५॥

(महा० वन० अ० १०६)

भाषार्थ—स्वर्ग से गिरती हुई गंगा को मैं सिर पर धारण करूंगा, राजा ने शिव के मुख से यह बात सुन कर ।५। गंगा से कहा और वह शिव के सिर पर गिरी।

इस के अतिरिक्त अप्सरायें भी ऋषियों से सन्तान पैदा करती रही हैं।

परिणाम—अर्जुन का स्वर्ग में शस्त्र विद्या सीख कर आना। युधिष्ठिरादि का स्वर्गार्थ पर्वत पर चढ़ना तथा सशरीर स्वर्ग में जाना गंगा का स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरना। स्वर्ग के निवासी स्त्री पुरुषों का ऋषि तथा ऋषि पत्नियों से समागम करके सन्तान पैदा करना इत्यादि घटनाओं से साबित है कि पौराणिक स्वर्ग भी पृथिवी पर ही है। और उस का नाम त्रिविष्टप है। और वह तिब्बत ही है। जैसेकि तीर्थों का वर्णन करते हुए प्रत्येक मनुष्य के लिये त्रिविष्टप तीर्थ की भी यात्रा करना लिखा है। वह तीर्थ आस्मान पर नहीं हो सकता अपितु पृथिवी पर ही हो सकता है। जैसे—

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पाप प्रणाशिनी ॥८३॥
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
सर्व पाप विशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम् ॥८४॥

(महा० वन० अ० ८३)

भावार्थ—इसके पीछे तीनों लोकों में प्रसिद्ध त्रिविष्टप (स्वर्ग) तीर्थ में जावे। वहां पर पापों के नाश करने वाली वैतरणी नाम की नदी है ॥८३॥ वहां पर स्नान करके और शिव की पूजा करके सब पापों से शुद्ध आत्मा होकर परम-गति को प्राप्त करे ॥८४॥

इससे सिद्ध हुआ कि पौराणिक स्वर्ग इसी पृथिवी पर है जिस का नाम त्रिविष्टप तिब्बत है। वहां के राजा का नाम इन्द्र पुरुषों का नाम देवता स्त्रियों का नाम अप्सरा है। और उनका भारत वर्ष के ऋषियों के साथ आना, जाना, खाना, पीना, लड़ना, व्यभिचार करना कराना, सन्तान, पैदा करना कराना आदि प्रत्येक प्रकार का व्यवहार रहा है।

---

## शूद्र को वेद का अधिकार

२७६ (प्रश्न)—वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है। उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है। पृ० २६७ पं० २०।

उत्तर—आपने कोई ऐसा वेद मंत्र पेश नहीं किया। जिस से यह साबित हो कि वेद ने शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं दिया। ताकि सिद्ध हो सके कि शूद्रों को वेद का

अधिकार भी नहीं है। लीजिये हम आप को वेद से बतलाते हैं कि जैसे परमात्मा ने वेद का अधिकार मनुष्यमात्र को दिया है वैसे ही यज्ञ का अधिकार भी मनुष्य मात्र को दिया है। जैसे—

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुरां अभिदेवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्॥
(ऋ० १०। ५३। ४)

'पंच जना मम होत्रं जुषध्वं' गंधर्वाः पितरो देवा आसुरा रक्षांसी त्येके॥ चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इत्यौपमन्यवः॥ निषादः कस्मान्निषदनो भवति निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः॥ "यत् पांच जन्ययाविशा" पंच जनीनया विशा॥ पंच पृक्ता संख्या स्त्रीपुंनपुंसकेष्व विशिष्टा॥ १॥ निरु० अ० ३ खं० ८॥

भाषार्थ—वह वीर्यवाणी का अत्युत्तम मैं समझता हूं। जिस से हम असुरों का अपमान करें। हे देवो! आप अन्न भक्षण करते हुए यज्ञ संपादन करते हुए और हे मनुष्यो निषाद को मिला कर पांचों वर्ण तुम मेरे अग्नि होत्र को सेवन करो॥ ४॥ "पांच जन मेरे अग्नि होत्र को सेवन करो" गन्धर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस, ये पांच कई मानते हैं। चारों वर्ण पांचवां निषाद ऐसा उपमन्यु के मत वाले मानते हैं। जो प्राणियों का वध करे वह निषाद। अथवा जिस में पाप स्थित हो वह निषाद है। पांच जन समुदाय ऋत्विजों के साथ हो। पांच संख्या विशिष्ट अर्थात् पांच स्त्रियां, पांच पुरुष, पांच नपुंसक, सारांश यह कि पांच कोई हों कोई खसूसियत नहीं है (निरुक्त)।

कहिये श्रीमान् जी अब तो आप को शूद्रादि के वेद पढ़ाने में शंका न होगी। जहां वेद मनुष्य मात्र को वेद तथा यज्ञ का अधिकार मानते हैं। वहां पुराण भी वेदों की ताईद करते हैं जैसे—

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छा काश्यपेनैव शासिताः।
संस्कृताः शूद्र वर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः॥ ७२॥
शिखा सूत्र समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्।
यज्ञैश्च पूजयामासुः देवं देवं शचीपतिम्॥ ७३॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग० ख० अ० २०)

भाषार्थ—मिश्र देश के पैदा हुए मलेच्छों पर कण्व ने शासन किया, उनका शूद्र वर्ण से संस्कार आरम्भ किया, वे ब्राह्मण वर्ण तक को प्राप्त हो गये॥७२॥ सिर पर चोटी रक्खी, गले में जनेऊ पहिना और उत्तम वेद को पढ़ कर यज्ञों से इन्द्राणी के पति इन्द्र की उन्हों ने पूजा की॥ ७३॥ अब तो आप के घर से ही म्लेच्छों तक का यज्ञाधिकार वेद पठन तथा यज्ञोपवीत साबित हो गया। अब आप को वेद तथा ऋषि दयानन्द जी के लेख पर क्या शंका हो सकती है।

२८० (प्रश्न)—"स्तुतामयावरदा इत्यादि अथर्व०१९। ७१। १" इस मन्त्र में गायत्री द्वारा द्विजों का ही पवित्र होना लिखा है। मन्त्र में यह स्पष्ट है कि गायत्री द्विजों को ही पवित्र करती है। द्विजेतर शूद्र यदि रात दिन गायत्री जपें वह तब भी शूद्रों को पवित्र नहीं करती॥ पृ० २६७ पं० २२।

उत्तर—द्विज उसको कहते हैं जो चार, तीन, दो या कम से कम एक वेद को अर्थ सहित जानता हो और तदनुकूल

आचरण भी करे। जो मनुष्य प्रयत्न करने पर एक वेद भी नहीं पढ़ सका। या पाठ मात्र ही पढ़ा हो अर्थ न जानता हो या अर्थ जानता हुआ भी तदनुकूल आचरण न करे। वह द्विज कहलाने का अधिकारी नहीं है। अपितु वही शूद्र है। जैसा कि निरुक्त में लिखा है कि—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न
विजानातियोऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञान विधूतपाप्मा ॥ निरुक्त १। १८॥

भाषार्थ—जो वेद को स्वर और पाठ मात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठाने वाला है। और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है। वही संपूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

सारांश यह है कि न पढ़ने वाले तथा पढ़कर भी अर्थ न जानने वाले तथा अर्थ जानकर भी तदनुकूल आचरण न करने वाले को वेद या वेद का कोई मन्त्र कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा सकता। अपितु ऐसा मनुष्य शूद्र ही रह जाता है। जो वेदार्थ को जान कर तदनुकूल आचरण करता है वही द्विज है। और वही वेद या उसके मन्त्र से लाभ उठा सकता है। इसी बात को उपरोक्त मन्त्र कहता है जैसे—

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्ता पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं

ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजतु ब्रह्म लोकम् ॥

( अथर्व० १६ । ७१ । १ )

भाषार्थ—मन को उत्साह से प्रेरणा करने वाली, द्विजों को पवित्र करने वाली, श्रेष्ठ ज्ञान देने वाली, वेद माता की मैंने स्तुति की है। मैंने अध्ययनाचरण किया है। वह वेद, माता, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, ज्ञान, तेज; मुझे देकर मुक्ति प्राप्त करावे ॥ १ ॥

यदि इस से आपका यह अभिप्राय हो कि जो द्विजों के घर पैदा हुवे हैं वही वेद पढ़ सकते हैं अन्य नहीं तो आप का यह सिद्धान्त स्वयं वेद के विरुद्ध है। क्योंकि ईश्वर कहता है कि—

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याँशूद्रायचार्याय च
स्वायचारणाय ॥ यजु० २६ । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने स्त्री सेवकादि और उत्तम लक्षण युक्त प्राप्त हुवे अन्त्यज के लिये भी इन उक्त सब मनुष्यों के लिये इस संसार में इस प्रकट की हुई सुख देने वाली चारों वेद रूप वाणी का उपदेश करता हूं। वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें ॥ २ ॥

इस से साबित है कि वेद पढ़ने का मनुष्य मात्र को हक़ है कोई अपने हक़ को इस्तेमाल करे या न करे इस बारे में प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है। जो वेद को अर्थ सहित पढ़ कर तदनुकूल आचरण करेगा वह द्विज बन जावेगा। जो नहीं

करेगा वह शूद्र रह जावेगा। यही वेद का सिद्धान्त है। आप के पुराण भी यही कहते हैं कि—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या; शूद्रा ये शुचयोऽमलाः।
तेषां मंत्रा प्रदेया वै न तु संकीर्णधर्मिणाम् ॥ ६२ ॥
(भविष्य० उत्तर० अ० १३)

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्या द्वैश्यं तथैव च ॥ ४७ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४०)

भाषार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा पवित्र शूद्र उन को वेद मन्त्र पढ़ाने चाहिये। धर्म से भ्रष्ट लोगों को नहीं ॥ ६२ ॥ वेद पढ़ने आदि से शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और वेद आदि त्याग से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। ऐसे ही क्षत्रिय और वैश्य भी शूद्र और ब्राह्मणादि बन सकते हैं।

आप ने जो वेद माता का अर्थ गायत्री किया है यद्यपि वह ठीक नहीं है। क्योंकि वेद माता का अर्थ है वेद रूप माता तथापि आप का यह कहना कि गायत्री शूद्रों को पवित्र नहीं करती यह बात आप के पुराणों के ही विरुद्ध है। यथा—

ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम्।
पंच वर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती ॥
सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छाञ्छूद्र वर्णाय चाकरोत् ॥ १६ ॥
द्वि सहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ॥ १७ ॥
तेषां चकार राजानं राजपुत्र पुरं ददौ ॥ १६ ॥
(भविष्य० प्रति सर्ग० खं० ४ अ० २१)

भाषार्थ—उन सब ने सरस्वती देवी की स्तुति की। तप किया पांच वर्ष के पीछे सरस्वती देवी प्रकट हुई। उन की पत्नियों समेत म्लेच्छों को शूद्र बना दिया ॥ १६ ॥ उन के अन्दर से दो हज़ार वैश्य बन गये ॥ १७ ॥ बाकियों को राजा बना दिया और राजपुत्र नगर उन को दे दिया ॥ १६ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि आप का लेख वेद तथा पुराणों के भी सर्वथा विरुद्ध होने से निर्मूल है।

२८१ (प्रश्न)—'अधीयीरन् इत्यादि मनु० १०। १।' इस में आता है कि पढ़ने वाले तीन वर्ण हों और पढ़ाने वाला ब्राह्मण ही हो। पृ० २६८ पं० १०।

उत्तर—हम पहिले यह साबित कर चुके हैं कि अर्थ सहित वेद को पढ़ जान कर तदनुकूल कर्म करता है वह द्विज है। जो ऐसा करता है वह शूद्र है। यहां पर प्रारम्भिक शिक्षा का वर्णन नहीं है। अपि तु गृहस्थाश्रम में रहते हुए वर्णों की वृत्ति अर्थात् पेशे का वर्णन है। तभी तो 'स्व कर्मस्था' यह पद आया है। तथा इस से अगला श्लोक मिला कर यह साफ हो जाता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वश्य अपना स्वाध्याय तो जारी रक्खें उस का कभी भी परित्याग न करें किंतु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करे। वैश्य और क्षत्रिय अपने २ वर्णानुकूल काम में स्थिर रहते हुए स्वाध्याय अवश्य करते रहें। जैसे लिखा है कि—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविनि निश्चयः ॥ १ ॥

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथा विधि।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥ २ ॥
(मनु० १०।१—२)

भाषार्थ—तीनों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने २ वर्णानुसार कर्मों में क़ायम रहते हुए स्वाध्याय तो करें किंतु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करे। वैश्य, क्षत्रिय पढ़ाने का काम न करें। यह निश्चित व्यवस्था है ॥ १ ॥ सब की वृत्ति के उपाय ब्राह्मण को विधिपूर्वक जानने चाहिये। और दूसरों को बताते हुए स्वयं भी वैसा होना चाहिये ॥ २ ॥ जो मनुष्य द्विज बनने के नाक़ाबिल साबित होकर शूद्र वर्ण में व्यवस्थित हो चुका है। बेशक उस को पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार नहीं है। क्योंकि वह पढ़ने पढ़ाने की योग्यता ही नहीं रखता। यदि उसमें पढ़ने पढ़ाने की योग्यता होती तो वह शूद्र ही क्यों बनाया जाता। यह इन श्लोकों का अभिप्राय है।

यदि इस श्लोक से आप का यह अभिप्राय हो कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के घरमें पैदा हुए बालक हैं। उनमें से शूद्र के बालकों को पढ़ने का हक़ ही नहीं है। और वैश्य तथा क्षत्रिय के बालक भी पढ़ने का ही हक़ रखते हैं।पढ़ाने का नहीं। अर्थात् चारों वर्णों में जो बालक जिस वर्ण में पैदा हों वे उसी २ वर्ण में रहेंगे। तरक़्क़ी या तनज़्ज़ुल नहीं हो सकता तो यह बात प्रथम तो वेद के ही विरुद्ध है। क्योंकि वेद मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने तथा तरक़्क़ी करने का हक़ देता है। दूसरे आप का यह विचार मनु के स्वयं भी विरुद्ध है। क्योंकि मनु जी जन्म के पश्चात् तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुल के सिद्धान्त को तसलीम करते हैं। जैसे कि—

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ ४२॥
शनकैस्तु क्रिया लोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥ ४३॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जात मेवंतु विद्याद्वैश्यात्तथैवच॥ ६५॥

(मनु० अ० १०)

भाषार्थ—कोई तप के प्रभाव से विश्वामित्र की भांति कोई बीज के प्रभाव से ऋष्यशृंग की भांति सब मनुष्य प्रत्येक युग में इस संसार में जन्म की अपेक्षा तरक्की और तनज़्ज़ुल को प्राप्त होते हैं॥ ४२॥ शनैः शनैः कर्मों के भ्रष्ट हो जाने से और ब्राह्मणों उपदेशकों के दर्शन न होने से ये क्षत्रियों की जातियां शूद्रवर्ण को प्राप्त हो गईं॥ ४३॥ शूद्र वेद के पढ़ने तथातदनुकूल कर्म करने से ब्राह्मण बन जाता है। तथा ब्राह्मण वेद के विरुद्ध कर्म करने से शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार से ही क्षत्रिय तथा वैश्य भी ब्राह्मण और शूद्र बन जाते हैं॥ ६५॥

इस से साबित है कि प्रत्येक मनुष्य को वेद पढ़ने का हक़ है और तदनुकूल कर्म करने से प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार वेद तथा मनुस्मृति के अनुकूल है।

२८२ (प्रश्न)—"नशूद्रे पातकमित्यादि मनु १०।१२६" तथा "धर्मेप्सव इत्यादि मनु १०।१२७" मनु ने इस प्रकरण में स्पष्ट लिख दिया कि शूद्र वेद मंत्र का उच्चारण न करे। केवल प्रमाण करता हुआ मंत्र वर्जित पंचयज्ञों को पूर्ण करे।

२६८ पं० १६।

उत्तर—हम बता चुके हैं कि जो वेद अर्थ सहित पढ़ कर तदनुकूल कर्म करता है, वह द्विज है। और जो ऐसा नहीं करता वह शूद्र है। जब शूद्र वेद के न जानने के कारण ही उसे बनाया गया है। तो फिर वह वेद मंत्र उच्चारण करेगा ही कैसे। और यदि वह क़ाबलियत न रखते हुए वेद का उच्चारण करेगा तो वह उच्चारण अशुद्ध वा अर्थ रहित होगा। जिस से कोई लाभ न होगा। हां यदि वह शूद्र रहते हुए धर्म में श्रद्धा रखता है तो वह पांचों महायज्ञ मंत्रों का, उच्चारण न करते हुए भी कर सकता है। उस के लिये धर्मानुष्ठान की मनाही नहीं है। इस बात को मनु जी ने इस प्रकार से वर्णन किया है।

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्नच संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारोऽस्ति धर्म्मे न धर्म्मात्प्रतिषेधनम् ॥१२६॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मंत्रवर्ज्यं नदुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवंतिच ॥१२७॥

(मनु० अ० १०)

भावार्थ—शूद्र में कोई पाप कर्म, मांस भक्षण, सुरापान असत्य भाषण, चोरी, व्यभिचारादि नहीं होना चाहिये। वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने की योग्यता न रखने के कारण वह यज्ञोपवीत आदि वैदिक संस्कारों का हक़दार नहीं। इसका ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के धर्म्मों में प्रवृत्त होने का अधिकार नहीं तथा साधारण धर्म्म में प्रवृत्ति रखने का इस को निषेध भी नहीं है॥ १२६॥ धर्म्म की इच्छा रखने वाले साधारण धर्म को जानने

वाले और सत्पुरुषों के आचरण का अनुकरण करने वाले शूद्र यदि मंत्रों का उच्चारण न करते हुए नित्य कर्मों को करें तो कोई दोष नहीं है । और प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १२७ ॥

इन श्लोकों से यह साफ साबित है कि जो लोग वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने की योग्यता न रखने के कारण शूद्र रह गये हैं। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के कर्मों में हस्ताक्षेप न करें क्योंकि वे इन कामों की योग्यता नहीं रखते, हां उन को साधारण धर्म्म का पालन करना चाहिये और कोई पापाचरण न करना चाहिये । क्योंकि पापाचरण करने से वे शूद्र भी न रह सकेंगे अपितु आचार हीनता के कारण राक्षसों में उन का शुमार हो जावेगा । इन श्लोकों का यही अभिप्राय है ।

यदि आप के विचार में इन श्लोकों का यह अभिप्राय है कि जिनका शूद्र के घर जन्म हो गया । वह वेदाध्ययन करके तरक्की कर ही नहीं सकते। और जिनका जन्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के घर हो गया वे किसी हालत में भी शूद्र नहीं बन सकते। अर्थात् वेद का पढ़ना आदि जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था पर ही है। कर्मानुसार वर्ण तबदील नहीं हो सकता तो यह बात स्वयं वेद के विरुद्ध तथा मनुस्मृति के भी बरखिलाफ है। देखिये मनु जी क्या कहते हैं—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात् ॥९२॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रियादिह कामतः।
ब्राह्मणः सप्त रात्रेण वैश्य भावं नियच्छति ॥९३॥
(मनु० १०)

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपोहि दुरति क्रमम् ॥ २२८॥
(मनु० ११)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१६८॥
आचार्य्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा जरामरा ॥ १४८ ॥
(मनु० २)

भाषार्थ—मांस बेचने से ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता है। लाख और नमक के बेचने से भी तत्काल पतित हो जाता है। ब्राह्मण दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥९२॥ अपनी इच्छा से दूसरी वस्तुओं का व्यापार करते हुए ब्राह्मण सात रात्रि में वैश्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है ॥९३॥ जो कठिनता से तरने के योग्य अर्थात् संसार रूप समुद्र जो कठिनता से प्राप्त होने योग्य इसी शरीर से शूद्र का ब्राह्मणादि बनना। जो दुख से जाने योग्य देश देशान्तर तथा जो दुःख से करने योग्य योगाभ्यासादि कर्म हैं। वे सब तप से सिद्ध हो जाते हैं। तप का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता ॥२३८॥ जो द्विज वेद न पढ़ के अन्यत्र प्रयत्न करता है। वह जीता हुआ इसी जन्म में शीघ्र ही परिवार सहित शूद्र वर्ण को प्राप्त हो जाता है ॥१६८॥ वेदों का पारग आचार्य्य वेद के अनुसार गायत्री से इस की जिस जाति को

कर्मानुसार नियत कर देता है। वही सत्य है वही अजर है वही अमर है ॥१४८॥

इस से साफ साबित हो गया कि मनु जी महाराज मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार मानते हैं। जो वेद को अर्थ सहित पढ़ कर तदनुकूल कर्म करता है वह द्विज बन सकता है। और जो ऐसा नहीं करता वह शूद्र रह जाता है। उसका जन्म चाहे किसी के घर का भी क्यों न हो वेद पढ़ने तथा तरक्की करने का हर एक को हक़ हासिल है। कोई अपने हक़ को इस्तेमाल करके तरक्की करे या न करे इसमें प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है। ऐसा ही मनु जी का अभिप्राय है। अतः आपकी यह प्रतिज्ञा कि जन्म के शूद्र को वेद पढ़ने का हक़ नहीं है। वह वेद तथा स्मृति के भी विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या और निर्मूल है।

२८३ (प्रश्न)—'संस्कार परामर्शादित्यादि शारी० अ० १ पा० ३ सू० ३६" बताता है कि संस्कार का अभाव होने और अभिलाप से शूद्र वेद विद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं है। पृ० २६६ पं० ७।

उत्तर—श्रीमान् जी वेदान्त का यह सूत्र तो हमारी ही ताईद करता है आप की नहीं। भला बतलाइये तो सही इस सूत्र में यह कहां लिखा है कि "जिसका जन्म शूद्र के घर का हो उस को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं।" और इस सूत्र में यह भी नहीं है कि 'शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है' अपितु सूत्र यह कहता है कि 'निकृष्ट संस्कारों के कारण जिस में सामर्थ्य वेद पढ़ने की न हो' उस को वेद

पढ़ने का अधिकार नहीं है। चाहे उसका जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। जिस में वेद पढ़ने की क़ाबलियत नहीं है वही शूद्र है और उस को ही वेद पढ़ने के अधिकार का निषेध वर्ण किया गया है। जैसे कि—

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—(च) और (संस्कारपरामर्शात्) संस्कारों के नतीजे के तौर से (तदभावाभिलापात्) सामर्थ्य का अभाव पाये जाने से अधिकार का निषेध है ॥ ३५ ॥ कहियेगा इस में शूद्र को वेद पढ़ने का कहां निषेध है। और अभिलाप के अर्थों को क्यों हड़प कर गये। जिस का अर्थ सामर्थ्य है।

इस से सिद्ध हुआ कि निकृष्ट संस्कारों के कारण जिस में वेद पढ़ने की सामर्थ्य नहीं है उसी का नाम शूद्र है और उसे ही नाक़ाबिल होने के कारण वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। चाहे उस का जन्म ब्राह्मणादि किसी के घर का हो यही इस सूत्र का अभिप्राय है।

यदि आप इस सूत्र का यह अभिप्राय निकालते हैं। कि जिस का जन्म शूद्र के घर का हो। और जातकर्मादि वैदिक संस्कार न होने के कारण उस को वेद वा यज्ञ का अधिकार नहीं तो—

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
ताँ ऊन्वत्स्य सवनस्य पीतय आवो वाजा ऋभवो वेदयोमसि ॥

ऋ० ४।३६।२ ॥

(निरुक्त अ० ३ खं० ८ पर दुर्गाचार्य्य)

भाषार्थ—हे निपुण कारीगरो! जो आप लोग शुद्ध

चित्त हो कर मन के पूर्ण ध्यान से सुन्दर गोल सीधा रथ बनाते हैं उन आप लोगों को इस यज्ञ का भाग लेने के लिये हम आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

दुर्गाचार्य रथकार को निषाद मानता है। और उस को यज्ञाधिकार में यह प्रमाण देता है। तथा पुराणों में कितने ही शूद्र और अन्त्यज बिना संस्कारों के ब्राह्मण बन गये। जैसे कि—

विद्वत्सदसि योऽप्याह संस्काराद् ब्राह्मणो भवेत्।
न्यायज्ञैः सनिराकार्यो वाक्यैर्न्यायानुसारिभिः ॥७॥
संस्कृतोऽपिदुराचारो नरकं याति मानवः।
निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा ॥१६॥
आचारमनुतिष्ठन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः।
गर्भाधानादि संस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥२०॥
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः।
बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तन्निबोधत ॥२१॥
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
शुक्याः शुकः कणादाख्यास्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥२२॥
मृगीजोऽथर्ष्यशृंगोऽपि वसिष्ठो गणिकात्मजः।
मन्दपालो मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते ॥ २३ ॥
मांडव्यो मुनिराजस्तु मंडूकी गर्भ संभवः।
बहवोऽन्येदिडविप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववद् द्विजाः ॥ २४ ॥
(भविष्य० ब्र० अ० ४२)

भाषार्थ—विद्वानों की सभा में जो भी कहे संस्कार ब्राह्मण होता है। न्याय के जानने वालों को न्यायानुसार वचनों से उनका खंडन करना चाहिये ॥ ७ ॥ संस्कार हुवा

दुराचारी मनुष्य नरक में जाता है। बिना संस्कारों के भी सदाचारी सदा उत्तम ब्राह्मण होता है ॥ १६ ॥ व्यासादि श्रेष्ठ मुनि गर्भाधान आदि संस्कार कलाप से रहित भी आचार का अनुष्ठान करते हुवे स्पष्टब्राह्मण बने ॥ २० ॥ और शोभा को प्राप्त हुवे और सारे संस्कार में पूज्य बने। बहुत से कहे जा सकते हैं। कुछ के नाम सुनो ॥ २१ ॥ व्यास मल्लाहनी के पैदा हुवे पराशर चांडाली के पैदा हुवे। शुक देव शुकी के पैदा हुवे। कणादमुनि उलूकी के पैदा हुवे ॥ २२ ॥ ऋषि अशृंग मृगी के पैदा हुवे। वसिष्ठ कंजरी के पैदा हुवे। मन्दपाल श्रेष्ठ मुनि नाविका के पैदा हुवे ॥ २३ ॥ मुनिराज मांडव्य मेंडकी के पैदा हुवे। और भी बहुत सारे हैं जो पहिले की भांति ब्राह्मण बन गये ॥ २४ ॥

कहिये महाराज ये सारे शूद्र चांडाल अन्त्यज कंजरादि के घर पैदा होकर क्या बिना वेद पढ़े ही ब्राह्मण बन गये। क्या इन को वेद का अधिकार न था। यदि था तो स्पष्ट स्वीकार करो कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने से ब्राह्मण तक भी बनने का अधिकार है।

२८४ (प्रश्न)—'श्रवणाध्ययनार्थ० इत्यादि शा० अ० १ पा० ३ सू० ३८' स्मृति से शूद्र का वेद श्रवण और अध्ययन का निषेध है। पृ० २६६ पं० १०।

उत्तर—हम सिद्ध कर चुके हैं कि जो मनुष्य प्रयत्न करते हुवे भी वेद नहीं पढ़ सकता। उसी का नाम शूद्र है। उसी को वेद सुनाने तथा पढ़ाने का स्मृतियों ने निषेध किया है। क्योंकि उस को वेद सुनाना तथा पढ़ाना व्यर्थ है। इसी बात को उक्त सूत्र वर्णन कर रहा है।

श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—(च) और (स्मृतेः) स्मृति से भी (श्रवणाध्यध्यनार्थ प्रतिषेधात) श्रवण तथा अध्ययन का प्रतिषेध पाया जाता है॥ ३७ ॥

इस सूत्र का वही अभिप्राय है जो हमने ऊपर वर्णन किया है। कोई आदमी किसी के घर भी पैदा हुवा हो यदि वह अर्थ सहित वेद को पढ़के तदनुकूल आचरण नहीं करता तो वह शूद्र है। उसी को योग्यता का अभाव होने से वेद का सुनाना और पढ़ाना मना है। इसके यह माने नहीं हैं कि जो मनुष्य शूद्र के घर पैदा हो कर भी पढ़ने की योग्यता रखता हो उस को भी पढ़ने का अधिकार नहीं है।

यदि आप ऐसा मानेंगे तो—

यत्पाञ्च जन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणादबर्हणा विप्रोऽर्यो मानस्य सक्षयः ॥

(ऋ० ६। ४। ४३। १)
(निरुक्त अ० ३ खं० ८ में दुर्गाचार्य)

भाषार्थ—जब पञ्चनद समुदाय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद के साथ ऋत्विग लोग वर्षा न होने पर वर्षा के लिये इन्द्र की स्तुति करते हैं। तब उन स्तुतियों को सुन कर प्रसन्न चित्त हुआ इन्द्र वर्षा के लिये मेघों को अपने बढ़े हुए वज्र से ताड़न करता हुआ सारे जगत का ईश्वर बल का निवास वर्षा का विस्तार करता है। यहां पर दुर्गाचार्य निषाद तथा शूद्रों को यज्ञ तथा वेद का अधिकार स्वीकार करते हैं।

इस के अतिरिक्त पुराण तो शूद्र को यज्ञोपवीत का अधिकार भी स्वीकार करते हैं जैसे—

कुशसूत्रं द्विजानांस्याद्राज्ञां कौशेय पट्टकम् ।
वैश्यानां चीरणं क्षौमं शूद्राणां शण वल्कजम् ॥ ६ ॥
कार्पासं पद्मजंचैव सर्वेषाँ शस्तमीश्वर ।
ब्राह्मण्याकर्तितंसूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम् ॥ ११ ॥

(गरु० आ० का० अ० ४३)

भाषार्थ—कुश का यज्ञोपवीत ब्राह्मणों का, क्षत्रियों का रेशम का, वैश्यों का सूत का और शूद्रों का सन का होना चाहिये ॥ ६ ॥ हे राजन् ! अथवा सब के लिये ही सूत का है । जो ब्राह्मणी के हाथ का कता हुआ तीन बार तिहरा किया हो ॥ ११ ॥ यज्ञोपवीत के अधिकार देने यज्ञ तथा वेद का अधिकार देना स्वयं स्पष्ट है ।

महाभारत में तो एक ब्राह्मण ने व्याध से ब्रह्म विद्या का उपदेश लिया ऐसा आता है । देखिये—

ब्राह्मण उवाच—ब्रवीषि सुनृतं धर्म्मं यस्यवक्ता नविद्यते ।
दिव्य प्रभावः सुमहानृषिरेवमतोऽस्मिमे । १३॥
व्याध उवाच—यत्तेषांच प्रियं तत्ते वक्ष्यामि द्विजसत्तम ।
नमस्कृत्वाब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मीं विद्यांनिबोधमे ॥१५॥

(महा० बन० अ० २०६)

भाषार्थ—ब्राह्मण बोला कि तू अत्यन्त सत्य धर्मानुकूल बोलता है । जिस का बोलने वाला कोई नहीं । तुम्हारा बड़ा दिव्य प्रभाव है । मैं तुम को ऋषि मानता हूं ॥ १३ ॥

व्याध बोला—जो उन ब्राह्मणों को तथा तुम को प्रिय है वह मैं हे ब्राह्मण ! कहता हूं । ब्राह्मणों को नमस्कार करके

मेरे से ब्रह्म विद्या का उपदेश सुनो ॥ १५ ॥

कहिये महाराज ! यदि व्याध को वेद पढ़ने का अधिकार न था तो उस ने ब्राह्मण को ब्रह्म विद्या का उपदेश कसे किया। तथा आप के पुराण भविष्य वाणी बोलते हैं कि--

शूद्रा धर्म्मं प्रवक्ष्यन्ति ब्राह्मणाः पर्य्युपासकाः ॥ ६४ ॥
( महा० वन० अ० १९० )

भाषार्थ—कलियुग में शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उन के उपासक होंगे ॥ ६४ ॥ कहियेगा शूद्र वेद पढ़े बिना ब्राह्मणों को कैसे उपदेश करेंगे। और जब पुराण कहते हैं। कि कलियुग में शूद्र धर्म्म का उपदेश करेंगे तथा ब्राह्मण उन के उपासक होंगे। फिर अब आप का शूद्रों को वेद का अधिकार न देना पुराणों से बग़ावत नहीं है तो और क्या है।

२८५ (प्रश्न)—कोई भी न्याय शील धार्मिक विवेकी यह नहीं कह सकता कि शूद्र को वेद पढ़ाना वेदाज्ञा है। और इसे पढ़ने से शूद्र का कल्याण होगा। पृ० २९९ पं० १४

उत्तर—प्रत्येक न्याय शील मनुष्य इस बात को तसलीम करेगा कि परमात्मा के ज्ञान वेद का मनुष्य मात्र को अधिकार है। जो मनुष्य अपने अधिकार को काम में लाकर अर्थ सहित वेद को पढ़कर तदनुकूल आचरण करता है वह द्विज बन जाता है। जो वेद के पढ़ने में यत्न नहीं करता या यत्न करने के बावजूद नहीं पढ़ सकता वह शूद्र रह जाता है। चाहे उस का जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। आपके अभिप्राय के अनुसार भी जिस का जन्म शूद्र के घर का हो उस को वेद पढ़ने का वाक़ई अधिकार है यदि

उस को अधिकार न होता तो पूर्व वर्णित व्यास आदि शूद्र से ब्राह्मण कैसे बन जाते। यदि शूद्र उन्नति कर के ब्राह्मण बन जावे तो क्या उस का कल्याण नहीं है, अवश्य है। अतः वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है यही ईश्वर तथा वेद की आज्ञा है।

२८६ (प्रश्न)—स्वामी जी शूद्रों को भी वेद पढ़ाना चाहते हैं। स्वामी जी इतने भोले हैं कि अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३८ में लिख आये हैं कि "शूद्रमपि कुल गुण संपन्नं मंत्र वर्जमनुपनीतमध्यापये-दित्येके" सुश्रुत। और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उस को मंत्र सहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे यह मत किन्हीं आंचार्य्यों का है॥ फिर अपने सत्यार्थ प्रकाश के पृ० २८ में लिखा है कि "शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें" स्वामी जी ने संस्कार विधि में केवल द्विजों का ही उपनयन किया है। शूद्रों का नहीं। बिना उपनयन के वेदारंभ होता नहीं। इस कारण उपनयन निषेध से शूद्रों के वेदाधिकार का भी निषेध कर दिया। पृ० ३०० पं० २२।

उत्तर—स्वामी जी वेद के अनन्य भक्त थे उन्हों ने जो कुछ वेद की आज्ञा थी उस को संसार के सामने रक्खा कि "यथेमां वाचम्" इस मंत्र में ईश्वर की आज्ञा है कि वेद के पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार है" स्वामी जी भोले नहीं हैं आप ही वाक् छल से काम ले रहे हैं। और वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना कर रहे हैं। आप प्रकरण विद्या

से भी अनभिज्ञ हैं। स्वामी जी ने जो सुश्रुत का प्रमाण दिया है। वे केवल इस लिये दिया है कि क्षत्रिय तथा वैश्य को भी यज्ञोपवीत देने का अधिकार है। ऐसा कई एक आचार्य्यों का मत है। नहीं अधिकार अनधिकार का प्रकरण है और न ही स्वामी जी ने अधिकार अनधिकार निर्णय के लिये यह प्रमाण दिया है। यज्ञोपवीत प्रकरण में यह प्रमाण दिया है। और यज्ञोपवीत के बारे में जो कुछ इस प्रमाण में है वह स्वामी जी मानते हैं। शेष वेद में अधिकार अनधिकार का आगे प्रतिपादन करते हुए अपना सिद्धान्त "यथेमाम्" इस मंत्र के द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि वेद के पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार है। रही बात सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि की सो स्वामीजी वेद प्रतिपादित कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था मानते हैं। जब तक बालक स्वयं कर्म करने में समर्थ तथा स्वतंत्र नहीं होते तब तक उनके संस्कार माता पिता के वर्ण के अनुकूल ही होते हैं। अतः बालकों को उनके माता पिता के वर्ण के अनुकूल ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के बालकों को यज्ञोपवीत देकर तथा शूद्रों के बालकों को यज्ञोपवीत के बिना गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है। गुरुकुल में प्रविष्ट होने के कुछ समय पश्चात् आचार्य देखेगा कि जो बालक विद्या पढ़ने के क़ाबिल होंगे उनको यज्ञोपवीत देकर विद्या आरम्भ करादी जावेगी। इसी लिये सत्यार्थ प्रकाश में तृतीय समुल्लास पृ० ३६ में लिखा है कि "प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य्य कुल में हो" इस से स्पष्ट है कि जिनका यज्ञोपवीत घर न हुआ हो उनका आचार्य्य कुल में योग्यता देख कर करवाया जावे। आप के मतानुसार

भी यदि बिना यज्ञोपवीत के वेदारम्भ नहीं हो सकता तो विद्यारंभ तो हो सकता है। विद्यारंभ के पीछे योग्यता देख कर यज्ञोपवीत करके वेदारंभ हो सकता है। अतः स्वामी जी के लेख में परस्पर विरोध नहीं है। आपकी ही बुद्धि में विकार है इसे ठीक कीजिये।

२८७ (प्रश्न)—स्वामी जी लिखते हैं कि "तुम कुवां में पड़ो और श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पित है" स्वामी जी ने केवल शतपथ ब्राह्मण को देखा उस में यह श्रुति नहीं है। इस कारण कपोलकल्पित लिख दिया। किन्तु केवल शतपथ ही ब्राह्मण नहीं है शतपथ से भिन्न भी वेदों के अनेक ब्राह्मण हैं। जो इस समय मिलते नहीं। जो यह श्रुति उन ब्राह्मणों में निकल आये तब तो कपोल कल्पित नहीं। पृ० ३०१ पं० १०।

उत्तर—श्रीमान् जी श्रुति तो नाम ही वेद का है। ब्राह्मण ग्रन्थों का श्रुति नहीं है। और चारों वेदों में यह पाठ है नहीं। अतः यह पाठ "स्त्री शूद्रौ नाधीयाता मिति श्रुतिः" कपोल कल्पित ही है। यह पाठ यदि किसी आप के कपोल कल्पित ब्राह्मण ग्रन्थों में निकल भी आवे। तब भी न इस का नाम श्रुति हो सकता है। और न ही यह वेद विरुद्ध होने से प्रमाण हो सकता है।

२८८ (प्रश्न)—"स्तुता मया वरदा वेद माता" यह मन्त्र तो कपोल कल्पित नहीं है। यह तो तीन ही वर्णों को गायत्री और वेद का अधिकार देता है। फिर तुम वेदाज्ञा के विरुद्ध शूद्रों को वेद पढ़ाओगे कैसे। पृ० ३०१ पं० १६।

उत्तर—हम पूर्व साबित कर चुके हैं कि जो मनुष्य अर्थ सहित वेद पढ़ कर तदनुकूल आचरण करते हैं वे द्विज

कहाते हैं। और जो ऐसा नहीं करते वे ही शूद्र हैं। चाहे उन का जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। बस यह वेद मन्त्र भी यही कहता है कि जो लोग अर्थ सहित वेद पढ़ कर तदनुकूल आचरण करने से द्विज बन गये हैं वेद माता उन्हीं को पवित्र करती है। और जो लोग ऐसा न कर के शूद्र हर जाते हैं उनको वेद माता पवित्र नहीं करती। इस मन्त्र में शूद्र के घर जन्म लेने वालों को वेद पढ़ने का निषेध नहीं है। अपितु प्रयत्न करने पर भी जो वेद न पढ़ सकें उन शूद्रों का वेद माता पवित्र नहीं करती यह वर्णन है। इस से यह मन्त्र मनुष्य मात्र को वेद अधिकार का निषेध नहीं करता अपितु शूद्र रह जाने वालों की निंदा करता है ताकि प्रत्येक मनुष्य द्विज बनने का यत्न करे इस का विशेष व्याख्यान देखो।

(नं० २८०)

२८६ (प्रश्न)—रही बात "यथेमां वाचं कल्याणी" की। आज तक जितने भी वेद ज्ञाता हुए उन सब ने इस मन्त्र का यह अर्थ माना कि पूर्व मंत्र में भूत साधनी वाणी का वर्णन है। उस भूत साधनी वाणी का इस मंत्र में भी अध्याहार होता है। पृ० २०१ पं० २३।

उत्तर—आपके भाष्यों के अनुसार भी पिछले मंत्र में जिस भूत साधनी वाणी का वर्णन है। वह सब भूतों को सिद्ध करने वाली वेद वाणी का ही वर्णन है। क्योंकि सब भूतों अग्नि आदि पांच तत्त्वों तथा सब प्राणियों के साथ योग्य स्वरूप को वेद वाणी ही सिद्ध अर्थात् वर्णन करती है। हम पिछले मंत्र के उतने भाग तथा उस पर भाष्य को भी उद्धृत करते हैं।

मन्त्र पाठ—सप्त स ँ सदो अष्टमी भूत साधनी सकामाँ २ ॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मे अमुना ॥ २६।१ ॥

उव्वट—विज्ञानात्मा वोच्यते । यस्य तव सप्त संपदः । मनश्च बुद्धिश्च पंच बुद्धीन्द्रियाणि च । अष्टमी च वाक् भूत साधनी भूत प्रज्ञप्तिकरी । तं त्वां ब्रवीमि । सकामान् अध्वनः कुरु अस्माकम् । संज्ञानं च अस्तु मे मम अमुना ॥१॥

महीधर—विज्ञानात्मा वोच्यते । यस्य तव सप्त संसदः मनश्च बुद्धिश्च पंच बुद्धीन्द्रियाणि अष्टमी च वाक् भूत साधनी भूत प्रज्ञप्ति करी । त्वं त्वा ब्रवीमि स कामान् अध्वनः कुरु अस्माकम् । संज्ञानं च आयु मे मम अमुना ॥१॥

भाषार्थ—और विज्ञान स्वरूप परमात्मा का वर्णन किया जाता है । जिस आपके सात, पांच ज्ञान इन्द्रिय मन और बुद्धि ज्ञान स्थान हैं । आठवीं भूत साधनी अर्थात् भूतों का ज्ञान कराने वाली वाणी है । वे आप हमारे रास्तों को कामनाओं से पूर्ण करें । इस के साथ मेरा ज्ञान संगत हो या इस प्रकार से मुझे सम्यक् ज्ञान हो। यह मैं आप से प्रार्थना करता हूं ॥१॥

अब आपके भाष्यों के अनुसार भी विज्ञान स्वरूप परमात्मा की वह वाणी जिससे मनुष्य को सम्यक् ज्ञान हो सके । वेद के बिना और कौन सी हो सकती है । अतः निश्चय रूप से पिछले मंत्र में समस्त भूतों का ज्ञान कराने वाली वेद वाणी का ही वर्णन है । और आपके मतानुसार उसी वेद वाणी का ही इस "यथेमाम्" मंत्र में अध्याहार है ।

२६० (प्रश्न)—मनुष्य को दान देने के लिये जैसे भूत साधनी "भोजन दो" इस वाणी को सब मनुष्यों के लिये मैं

नम्रता से कहता हूं। ऐसे ही तुम भी कहो। यह बात यज्ञ करता अपने भृत्यों से कहता है। यह कल्याण कारणी वाणी ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र तथा वैश्य स्वीय भृत्य अति शूद्र से बोलो। इन सब को मधुर वचनों के साथ सुंदर भोजन खाने को दो। मनुष्य मात्र को भोजनादि देने से मैं देवता तथा परमेश्वर का प्रिय बनूंगा। धन पुत्र लाभ जो मेरा कार्य्य है। यह समृद्धि को प्राप्त हो और मुझे परलोक सुख मिले। पृ० ३०१ पं० २६।

उत्तर—यहां पर आकर आपके भाष्यकार और आप बोखला गये। और ऊपर के मंत्र में जो विज्ञान स्वरूप परमात्मा को सर्व भूतों का ज्ञान कराने वाली और सम्यक् ज्ञान देने वाली वेद वाणी का वर्णन चला आता था उसे बदल कर यज्ञकर्ता की वाणी "भोजन दो" बना डाला। क्यों न हो यदि ऊपर वाला ही अर्थ यहां कर देते तो सनातन धर्म्म की लुटिया डूब जाती। और परमात्मा की वह सम्पत्ति जो कि सब के लिये सब का कल्याण करने वाली है। और जिस पर कि सनातन धर्म्म के ठेकेदारों ने अकेले ही क़बज़ा करके अपनी ही जायदाद समझ कर सब को महरूम कर रक्खा था। वह लुट जाती और यह ठेकेदार दूसरों के बराबर ही माने जाते। और यह मुफ़्त की नंबरदारी ज़ब्त हो जाती। इस नम्बरदारी की रक्षा के लिये प्रकरण को ही बदल डाला। भला हो स्वामी दयानन्द जी का कि जिस ने इस कल्याणी वाणी वेदामृत को इन नाजाइज़ क़बज़ा करने वाले ठेकेदारों के क़बज़े से निकाल कर मनुष्य मात्र को इस कल्याणी वाणी से फैज़याब कर दिया।

(५) कहिये महाराज! ऊपर के मन्त्र में भूत साधनी

वाणी तो ज्ञान स्वरूप परमात्मा की वर्णन की गई है। यह यज्ञ कर्ता की कैसे बन गई ।

( २ ) "भोजन दो" यह वाणी सर्वभूतों का ज्ञान करवा कर हम को सम्यक् ज्ञान कराने वाली कैसे होगी।

( ३ ) दोनों मन्त्रों में वह कौन से पद हैं जिनका अर्थ "भोजन दो" ऐसा बनता है। या घर से ही कल्पना कर ली।

( ४ ) वास्तविक कल्याण जो मोक्ष है। "भोजन दो" यह वाणी मोक्ष कैसे दिलायेगी जब कि ज्ञान बिना मोक्ष हो हो ही नहीं सकता ।

इन हेतुओं से स्वामी जी का अर्थ वेद वाणी ठीक है और आपकी तथा आपके भाष्यकारों की कल्पना "भोजन दो" अपने ही लेखानुसार प्रकरण विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल तथा मिथ्या है।

२६१ ( प्रश्न )—मन्त्र में "दक्षिणायै" इस से दक्षिणा और "दातुः" इस से दान स्पष्ट है। अर्थात् सब को भोजन दक्षिणा दो। पृ० ३०२ पं० २।

उत्तर—धन्य हो महाराज ! 'दक्षिणायै' का अर्थ 'भोजन' तथा 'दातुः' का अर्थ 'दो' कोई आप जैसा ही विद्वान् कर सकता है । तो क्या हम यह मान लें कि आप को विभक्ति का भी ज्ञान नहीं है। और सुबन्त तिङन्त का भी ज्ञान नहीं है । क्या दक्षिणायै कर्म में द्वितीया है । या चतुर्थी और दातुः क्रिया है या षष्ठी का एक वचन। और 'भोजन की दक्षिणा' यह भी एक ही कहीं। क्या श्राद्ध का निमन्त्रण तो याद नहीं आगया। वरना आपके हां ही स्मृतियों में भोजन

की दक्षिणा को पैशाची दक्षिणा लिखा है। तथा वैदिक ग्रन्थों में संस्कारों तथा यज्ञों में तो दक्षिणा का विधान है किन्तु भोजन पर दक्षिणा का विधान नहीं है। जैसे—

संभोजनो साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैक वेश्मनि ॥ १४१ ॥

(मनु० अ० ३)

भाषार्थ—भोजन के साथ दक्षिणा को द्विजों ने पैशाची दक्षिणा कहा है। वह परलोक फल नहीं देती। अपितु जैसे अन्धी गौ एक ही मकान में बन्द रहती है वैसे ही यह दक्षिणा भी इसी लोक में ही रहती है॥ १४१॥

और फिर क्या? क्षत्रिय वैश्य शूद्र अति शूद्र को भी आप भोजन के साथ दक्षिणा मानते हैं। अतः इन पदों से 'भोजन दक्षिणा दो' अर्थ की कल्पना करनी अति निर्मूल तथा मिथ्या है।

वास्तविक अर्थ इस मन्त्र का इस प्रकार से है।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च
स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै
दातुरिहभूयास मयं मेकामः समृध्यता-
मुपमादो नमतु॥ यजु० २६। २॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) उत्तम लक्षण युक्त प्राप्त हुवे अत्यन्ज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमां)

इस प्रकट की हुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेद रूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं। वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं (दातुः) दान वाले के संसर्गी (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रियः) मनोहर प्यारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयं) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मां) मुझे (अदः) वह परोक्ष सुख (उपनमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे॥ २॥

भावार्थ—परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेद रूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैं ने उपदेश की है। इस में किसी को अनधिकार नहीं है। जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्तमान हुआ प्यारा हूं वैसे आप भी होओ। ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे॥ २॥

इस को कहते हैं अर्थ करना। कैसा साफ और सीधा है। इस मंत्र का देवता ईश्वर है। और (वाचम्) शब्द मंत्र के अंदर ही पड़ा हुआ है। इस मंत्र के अर्थ में न तो अध्याहार की ज़रूरत है। न ही पदों को तोड़ मरोड़ करने की। स्पष्ट शब्दों में ईश्वर मनुष्य मात्र को वेदों के पढ़ने के अधिकार का प्रतिपादन कर रहे हैं इतना स्पष्ट होने पर भी यदि किसी को शूद्रों के लिये वेद अधिकार वेदों में नज़र न आवे तो हम भर्तृ हरि के इस श्लोक के पाठ के विना और क्या कह सकते हैं कि—

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो
वसन्तस्य किमित्यादि ॥

२९२ (प्रश्न)—जब ईश्वर निराकार है तब वह ब्राह्मणादि मनुष्यों को वेद कैसे पढ़ा देगा। पृ० ३०२ पं० ८।

उत्तर—परमात्मा सर्वत्र व्यापक है मनुष्यों के हृदयों में भी व्यापक है। परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के हृदय में चारों वेदों का प्रकाश कर दिया। उन्हों ने ब्रह्मा आदि सब मनुष्यों को वेद पढ़ाये ( देखो वेदोत्पत्ति प्रकरण )।

२९३ (प्रश्न)—'स्वाय' पद का अर्थ इस मंत्र के वेद भाष्य में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि 'अपनी स्त्री और सेवक को भी मैं वेद पढ़ाता हूं' जब ईश्वर आर्य्यसमाज के मत में सर्वथा निराकार है। तो फिर निराकार ईश्वर के स्त्री और नौकर कैसा। पृ० ३०२ पं० १

उत्तर—'आप ने पढ़ाता हूं' अपनी तरफ से घड़ लिया। स्वामी जी ने 'उपदेश करता हूं' अर्थ 'किया है। क्या झूठ बोलने का आपने ही ठेका ले रक्खा है। यहां पर स्त्री के अर्थ बीवी और सेवक के अर्थ नौकर नहीं हैं। अपितु स्त्री के अर्थ स्त्री जाति तथा सेवक के अर्थ भक्त लोग हैं। यदि कोई आप से पूछे कि आप के घर में कितनी स्त्री और कितने पुरुष हैं। और आप उस का उत्तर दें कि मेरे घर में आठ स्त्री और आठ पुरुष हैं। तो क्या इस के यह अर्थ होंगे कि आप के घर में आठ बीवी और आठ खाविंद हैं। क्या उन औरतों में आप की मां, बहिन, बेटियां तथा पुरुषों में भाई, पुत्र, पिता आदि

शामिल न होंगे। अतः साबित हुआ कि यहां पर स्त्री के अर्थ स्त्री जाति तथा सेवक के अर्थ पुरुष जाति है। और परमेश्वर ने निराकार होते हुए मनुष्य मात्र (चारों ऋषियों के हृदय में व्यापक होते हुए चारों वेदों का प्रकाश करके उन के द्वारा) उपदेश किया इस की विशेष व्याख्या देखो।

(अवतार वाद तथा स्वामी दयानन्द)

(प्रश्न)—इस मन्त्र का देवता वाणी है। किंतु आर्य-समाजियों ने ईश्वर बना दिया। पृ० ३०३ पं० १

उत्तर—आप के उव्वट और महीधर ने इस मन्त्र का कोई देवता नहीं लिखा अपितु उव्वट तथा महीधर ने यूं तो लिखा है कि—

येऽत्र सम्बद्धा मन्त्रास्तेषां तदेवार्षम्। असम्बद्धानां तु आदित्य एव। अविनियुक्तानां मन्त्राणां लैङ्गिको विनियोगः। यो हि यमर्थं वदितुं समर्थः स तत्र श्रुत्या विनियुज्यते। वायुश्चांतरिक्ष च आदित्यश्च द्यौश्चआपश्च वरुणश्च सप्त संसदः परमात्मोच्यते। एवमुत्तरेष्वपि योज्यम्। (यजु० २६।१ पर उव्वट भाष्य)

भाषार्थ—जो मन्त्र लगाये हुए हैं उनका वही देवता है। जो नहीं लगाये हुए उनका आदित्य ही देवता है। जो मन्त्र नहीं लगाये हुए उनका लैङ्गिक विनियोग हैं। जो जिस अर्थ को कहने में समर्थ है। वह वहां श्रुति से लगाया जावे। वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आप, वरुण, ये सात परमात्मा के नाम हैं। इसी प्रकार से अगले मन्त्रों में भी देवता जोड़ लेने चाहिये ॥२६।१।

अब इन क़ाइदों के बमूजिब 'यथेमाम्' का कोई देवता न होने से आदित्य ही देवता माना जावेगा और आदित्य नाम है ईश्वर का। इसलिये इस मन्त्र का देवता ईश्वर हुआ।

दूसरे यदि लैङ्गिक देवता देवता है। तो इस मन्त्र में वाचंकर्म है आवदानि क्रिवा है। ईश्वर कर्ता है। इस लिये कर्ता की प्रधानता से ईश्वर को ही देवता माना जावेगा। वाणी को नहीं अत एव हर हालत में इस मन्त्र का देवता ईश्वर ही हो सकता है वाणी नहीं हो सकता।

२९५ (प्रश्न)—स्वामी जी लिखते हैं कि 'यदि ईश्वर को शूद्रों को वेद पढ़ाना न होता तो वह उन के शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रियां क्यों रचता'। श्रोत्र इन्द्रियां तो पशु पक्षियों के भी हैं। फिर आप उनको वेद क्यों नहीं पढ़ाते। वाक् इन्द्रिय से स्पष्ट वर्णात्मक शब्द निकालने वाले तोता मैना को भी वेद पढ़ने का अधिकार ईश्वर ने 'यथेमां' मंत्र में क्यों नहीं दिया। पूर्व कर्मानुसार वेद पढ़ने का अधिकार जिन आर्य्य समाजियों को ईश्वर ने नहीं दिया। जो आज भी निरक्षर हों उन को श्रोत्र वाक् इन्द्रियां क्यों दीं। पृ० ३०३ पं० ३

उत्तर—क़ुर्बान जायें आप की मनतक़दानी के। आपने तो लाल भुजक्कड़ को भी मात कर दिया। क्या आपको इतना भी ज्ञान नहीं है कि मनुष्य से भिन्न सब पशु पक्षी आदि भोग योनियां हैं। वे सब पिछले कर्मों का फल भोगते हैं। आगे के लिये कोई पुण्य पाप का कर्म नहीं करते। इस लिये उन के लिये कोई वेद शास्त्र नहीं हैं। वेद शास्त्र केवल मनुष्यों के लिये है। जो कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। और अपनी इच्छा से

पाप पुण्य कर्म कर सकते हैं। इसी लिये मंत्र में 'जनेभ्यः' अर्थात् मनुष्यों के लिये स्पष्ट लिखा हुआ है। यदि परमात्मा ने शूद्रों के लिये वेद न बनाये होते तो वे गाय भैंस आदि की भांति यत्न करने पर भी वेद न पढ़ सकते। और वे उन को कानों से सुन तथा मुख से उच्चारण न कर सकते। किंतु ऐसा देखने में नहीं आता अपितु शूद्र भी ब्राह्मण आदि की भांति वेदों को पढ़ तथा सुन सकते हैं। अतः शूद्रों को वेद का अधिकार स्वभाव से सिद्ध है। तोता मैना भी भोग योनि है। तथा वे सिवाय आवाज़ की नक़ल करने के किसी पदार्थ ज्ञान को नहीं जान सकते। अतः उन के लिये वेद ज्ञान नहीं है। रहा मूर्ख आर्य्य समाजियों का सवाल। सो उनका मनुष्य योनि में जन्म लेना ही इस बात की दलील है कि उन को वेद पढ़ने का अधिकार है। और उनके श्रोत्र तथा वाक् इन्द्रिय का होना ही सिद्ध करता है कि परमात्मा की तरफ से इन को वेद पढ़ने का अधिकार है। यह उनका अपना क़सूर है कि उन्हों ने अपने हक़ का इस्तेमाल करके वेद नहीं पढ़े। अतः स्वामी जी की यह दलील सर्वथा सत्य है। कि मनुष्यों में से यदि किसी को परमेश्वर की तरफ से वेद पढ़ने का अधिकार न होता तो परमात्मा उसके वाक् श्रोत्र इन्द्रिय ही न बनाता। इस से साबित है कि परमात्मा की तरफ से वेद पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार है।

२६६ (प्रश्न)—फिर आप लिखते है कि 'जैसे परमात्मा ने पृथिवी जल अग्नि वायु चन्द्र सूर्य्य अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं। वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये है'। आपकी यह बात भी ग़लत है। गौ आदि कई एक पशुओं

के लिये सूर्य्य हित का है किंतु भैंसों के लिये घाम में चलना आफत हो जाती है। पक्षियों में चिड़ियां आदि अनेक पक्षियों को सूर्य्य ज्योति वाला कर देता है। किन्तु बाज़ और उल्लू के दोनों फाटक बंद हो जाते हैं। अग्नि में समस्त पक्षी भस्म हो जाते हैं किंतु एक पक्षी विशेष का अग्नि भक्ष्य पदार्थ है। इसी प्रकार भैंस आदि को जल हितकारी और बकरी प्रभृति कई एक पशुओं को हानि कारक हैं। फिर एक सा कहां हुआ। पृ० ३०३ पं० १०

उत्तर—आपने यहां भी वाक् छल से ही काम लिया है। यहां पर वेदों का प्रकरण होने से मनुष्यों का ही वर्णन है, पशुपक्षियों का नहीं है। क्योंकि पशु भोग योनि है और उन के लिये वेद का ज्ञान नहीं है। अतः ऋषि ने बतलाया कि जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अन्नादि-पदार्थ सब मनुष्यों के लिये समान लाभ दायक बनाए हैं। वैसे ही वेद भी मनुष्य मात्र के लिये प्रकाशित किये हैं। यद्यपि यहां मनुष्यों का प्रकरण होने से पशु पक्षियों का दृष्टान्त युक्त ही नहीं है तथापि फिर भी आपने समान जातियों में सूर्य्य जल, अग्नि आदि का भिन्न प्रभाव नहीं दिखाया, अपितु असमान जातियों में दिखलाया है। आप के विचार में आकृति भिन्न होने के कारण जैसे गौ और भैंस में चिड़ी और उल्लु में तथा भैंस और बकरी में सूरत शकल आदि का कुदरती फ़र्क़ है। वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि में भी परस्पर सूरत शकल बनावट आदि में कोई फ़र्क़ है। यदि नहीं तो मनुष्यों के प्रकरण में पशुओं की परस्पर भिन्न जातियों का दृष्टान्त कैसे संगत हो सकता है। क्योंकि मनुष्य मात्र की

बनावट में कोई फ़र्क न होने से सब की एक ही जाति है। ब्राह्मण शूद्रादि भेद कर्मों के कारण नैमित्तिक हैं जोकि तबदील होकर ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण इसी जन्म में बन सकता है किंतु गाय की भैंस और भैंस की गाय तथा चिड़ी का उल्लू और उल्लू की चिड़ी इत्यादि इस जन्म में नहीं बन सकते। अतः स्वामी जी का लेख युक्ति युक्त होने से सत्य तथा आप का लेख युक्ति विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

२६७ (प्रश्न)—आप लिखते हैं कि "जहां कहीं निषेध किया है। उस का यह अभिप्राय है कि जिस को पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। इस लेख में आप ने यह तो मान लिया कि शूद्र को वेद पढ़ाने का निषेध वेदादि सच्छास्त्रों में आता है।

पृ० ३०३ पं० १८

उत्तर—आपने न वैदिक सिद्धान्तों को पढ़ा है और न ही मनन किया है। अतएव आप को अक़्ल सिद्धान्तों के बारे में चक्कर खा जाती है। लीजिये हम आपको यह बात भी समझा देते हैं।

वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दो प्रकार के होते हैं। एक संभावित, ब्राह्मणादि, दूसरे व्यवस्थित ब्राह्मण-आदि। संभावित ब्राह्मणादि वे बालक हैं। जो ब्राह्मणादि के घरों में पैदा हुवे हैं। वे स्वयं कर्म करने में असमर्थ हैं। ब्राह्मण-आदि माता पिता उनकी अपनी २ योग्यता तथा अपनी २ सहूलियत के अनुसार खान, पान, पोषण, संस्कार, शिक्षा आदि का प्रबन्ध करते हैं। और जब वे गुरुकुल में जाने के योग्य हो

जाते हैं। तब उन को अपने २ वर्ण की मर्यादा के अनुसार ही गुरुकुल में प्रविष्ट कर देते हैं। चूंकि वे बालक नाबालिग़ होने के कारण स्वयं स्वतंत्रता से कोई काम नहीं करते। सब कुछ उनके माता पिता ही करते हैं। और वे बालक भी यदि कुछ करते हैं तो अपने माता पिता की आज्ञा से उन के अनुसार ही करते हैं। अतः ऐसी अवस्था में वे अपने माता पिता के अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र नामों से प्रसिद्ध रहते हैं। जिस का वास्तविक अभिप्राय यह होना है कि ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के बालक हैं। चूंकि वे वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं होते। अपने माता पिता के कारण उनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है। इस लिये उन का नाम संभावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है।

दूसरे व्यवस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वे लोग हैं जो गुरुकुल में शिक्षा पाने के पश्चात् विद्या सभा तथा राज सभा की ओर से उन को गुण कर्म स्वभाव के अनुसार परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निश्चित रूप से बना दिये जाते हैं।

सारांश यह है कि जो शूद्रों के बालक हैं उन का नाम संभावित शूद्र तथा जिन की पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वे निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाते हैं। वे व्यवस्थित शूद्र हैं। जहां वेदों में "यथेमाम्" इस मंत्र में शूद्रों को वेद का अधिकार दिया गया है वहां पर संभावित शूद्र अर्थात् शूद्रों के बालकों से मुराद है और जहां पर "स्तुतामयावरदा वेदमाता"

इस मंत्र में आता है कि वेद माता द्विजों को पवित्र करती है, शूद्रों को नहीं, वहां शूद्र से मुराद व्यवस्थित शूद्र अर्थात् बावजूद कोशिश के जो वेद न पढ़ सकें उनसे है। स्मृतियों में जहां "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" शूद्र ब्राह्मण बन जाता है यह आता है। वहां शूद्र से मुराद संभावित शूद्र अर्थात् शूद्र के बालक से है और जहां पर यह आता है कि "नचास्याधिकारोऽस्ति धर्म्मे" शूद्र का धर्म्म में अधिकार नहीं है वहां शूद्र से मुराद व्यवस्थित शूद्र है। इसी प्रकार से सर्वत्र समझ लेना चाहिये। यदि आप इस व्यवस्था को नहीं मानते तो बतलाइये कि "यथेमाम्" इत्यादि वेदों में तथा "शूद्रो ब्राह्मणता मेति" इत्यादि स्मृतियों में तथा व्यास पराशर वसिष्ठ आदि शूद्र अंत्यजों को पुराणों में जो वेद का अधिकार देकर ब्राह्मण तक बनने का अधिकार प्रति पादन किया गया हैं। उस का क्या मतलब है। अतः स्वामी जी का यह सिद्धान्त कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। वेदानुकूल होने से सर्वथा सत्य है। और स्मृति, पुराण, इतिहास, दर्शन भी उस की ताईद करते हैं!

---

## वेदों में स्त्रियों का अधिकार

२६८ (प्रश्न)—वेद प्रथम उपनयन बतलाता है। और उपनयन के पश्चात् वेदाध्ययन। पृ० ३०४ पं० ४।

उत्तर—आप ठीक कहते हैं कि प्रथम यज्ञोपवीत और फिर वेद का अध्ययन होना चाहिये। चूंकि स्त्री को वेद अध्ययन का अधिकार है। अतः वेद ने स्त्री के लिये यज्ञोपवीत की

भी आज्ञादी है जैसे—

देवा एतस्यामवदन्त पूर्व सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः। भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धांदधाति परमेव्योमन्।

(ऋ० १०।१०९।४)

भाषार्थ—दिव्य शक्तिसम्पन्न पूर्व नियमानुसार रचित सप्त ऋषि अर्थात् नाक, कान आदि इन्द्रियां जो ज्ञान के लिये निरंतर गति करते रहते हैं। वे इस उपनीत ब्राह्मणी के विषय में मानों कह रही हैं। कि वेदाध्येता की जाया अर्थात् पत्नी यज्ञोपवीत धारण करके भयंकर सबला बन जाती है। अन्य दुष्ट प्रकृति वाले को भी उत्कृष्ट सुखमय अवस्था में धारण कर देती है॥ ४॥

इस मंत्र से स्त्री का यज्ञोपवीत स्पष्ट होने से वेदाधिकार भी स्पष्ट है।

२९९ (प्रश्न)—"उपनीयतु यः इत्यादि मनु० २।१४०" से सिद्ध हो गया कि उपनयन होने के अनन्तर ही वेदाध्ययन होता है। और स्त्री के लिये उपनयन की विधि नहीं। अतः स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। पृ० ३०४ पं० ६।

उत्तर—आपने वेद का नाम ऊपर लिख कर नीचे मनुस्मृति का श्लोक दे दिया। क्या मनु स्मृति वेद है। कुछ शरम तो नहीं आती। और फिर आपने कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया जिस से यह साबित हो सके कि स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद का अधिकार नहीं है। रहा आपका 'उपनीयतु' यह श्लोक सो यह भी सामान्य है। जैसे पुरुषों के लिये है वैसे ही स्त्रियों के लिये भी है। अर्थात्—

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥१४०॥
(मनु० २)

भाषार्थ—जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन करके कल्प और रहस्य के साथ वेद पढ़ावे उस को आचार्य्य कहते हैं॥ १४० ॥

यह श्लोक जैसे पुरुष को यह आज्ञा देता हैं कि वह बालकों को यज्ञोपवीत देकर चारों वेद पढ़ा कर आचार्य्य बने वैसे ही स्त्री को भी आज्ञा देता है कि वह कन्याओं को यज्ञोपवीत देकर चारों वेद पढ़ा कर आचार्या बने।

यदि आप यह शंका करें कि 'इस श्लोक में (यः, द्विजः, तम्, आचार्यं) पुरुष वाची शब्द हैं, स्त्री वाची शब्द नहीं हैं। अतः पुरुष को ही आचार्य्य बनने का अधिकार है स्त्री को नहीं। तो यह शंका आपकी निर्मूल है। क्योंकि क़ानून स्त्री पुरुष के लिये समान होता है चाहे वह पुरुष वाची शब्दों से ही बयान किया गया हो जैसे मनु में आता है कि—

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्क दर्शनात्।
पश्चिमांतु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥ १०१॥
(मनु० २)

आचारः परमोधर्म्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवच।
तस्मादस्मिन् सदायुक्तोनित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥ १०८॥
(मनु० १)

भाषार्थ—प्रातः सन्ध्या में गायत्री का जप करता हुआ सूर्य के दर्शन तक बैठे। तथा सायं की सन्ध्या में बैठा हुआ

तारों के नज़र आने तक गायत्री का जप करता रहे ॥ १०१ ॥ श्रुति तथा स्मृति में कहा हुआ आचार परम धर्म है। इस लिये ब्राह्मणादि द्विज को चाहिये कि वह इस में सदा संयुक्त अर्थात् नित्य लगा हुआ आत्मवान् बने ॥ १०८ ॥ ये दोनों श्लोक भी ( जपन्, समासीनः, युक्तः, आत्मवान्, द्विजः) पूर्व श्लोक की भांति ही पुरुष वाची शब्दों से बयान किये गये हैं। तो क्या इस का यह मतलब है कि ये दोनों श्लोक भी पुरुष के लिये ही संध्या करने तथा सदाचारी बनने की आज्ञा देते हैं स्त्री के लिये नहीं। और क्या पुरुष को ही संध्या करने तथा सदाचारी बनने का हक़ है स्त्री को नहीं । यह हर्गिज़ भी मानने योग्य बात नहीं है। अतः यह तीनों ही श्लोक स्त्री तथा पुरुष के लिये सामान्य होने से समानाधिकार का प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् जैसे पुरुष को संध्या करने सदाचारी बनने तथा आचार्य्य बनने का हक़ है वैसे ही स्त्री को भी संध्या करने सदाचारिणी बनने तथा आचार्या बनने का हक़ हासिल है। हम इसमें एक आप के ही घर का अत्यन्त पुष्ट प्रमाण देते हैं। देखिये। —

इन्द्र वरुण भव शर्व रुद्र मृड हिमाऽरण्य यव यवन मातुलाचार्याणामानुक् ( ४।१।४६ )

'मातुलोपाध्याययोरानुग्वा' मातुलानी, मातुली, उपाध्यायानी, उपाध्यायी, 'यातु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वाङीष वाच्यः' उपाध्यायी, उपाध्याया, 'आचार्योपसर्जनश्च' आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी' पुंयोग इत्येव। आचार्य्या स्वयं व्याख्यात्री ॥

( सिद्धान्त कौमुदी स्त्री प्रत्यय प्रकरण )

इस में यह स्पष्ट है कि जो उपाध्याय की स्त्री है उस का नाम उपाध्यायानी है। और जो स्वयं अध्यापिका है उस का

नाम उपाध्याया है। तथा जो आचार्य की स्त्री है उसका नाम आचार्याणी है किंतु जो स्वयं वेदों का व्याख्यान करने वाली हैं अर्थात् स्वयं वेद पढ़ाती है उस का नाम आचार्य्या है। फिर उपाध्याय किस को कहते हैं—

एक देशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः सउच्यते ॥ १४१ ॥

(मनु० २)

भाषार्थ—जो वेद के एक हिस्से को या वेद के अंगों को अपनी वृत्ति के लिये पढ़ाता है उस को उपाध्याय कहते हैं ॥ १४१ ॥ इस से साबित है कि वेद के एक हिस्से को या वेद के अंगों के पढ़ाने वाली स्त्री का नाम उपाध्याया तथा चारों वेदों को पढ़ाने वाली स्त्री का नाम आचार्या है—

शिव पुराण भी इस की ताईद करता है कि:—

घृत स्नानं ततः कृत्वा पुत्रस्य गिरिजा स्वयम्।
त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम् ॥ ४२ ॥
सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका।
उद्दिश्य शिव गायत्रीं षोडशाक्षर संयुताम् ॥ ४३ ॥

(शिव० कोटि० रुद्र० अ० १३)

भाषार्थ—स्वयं पार्वती ने गणेश का घृत स्नान करवा कर तीन लड़ी से युक्त एक ग्रन्थी वाला यज्ञोपवीत ॥ ४२ ॥ अपने सुन्दर पुत्र को पहिना दिया और सोलह अक्षर वाली शिव गायत्री का उपदेश कर दिया ॥ ४३ ॥

अतः सिद्ध हुवा कि स्त्री को यज्ञोपवीत देने आचार्य्या उपाध्याया बन कर वेद के पढ़ाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

३०० (प्रश्न)—"वैवाहिको विधिः इत्यादि मनु० २।६७" इस में स्त्रियों के लिये केवल वैवाहिक विधि ही वदिक संस्कार कहा है। जब उपनयन आदि संस्कारों में से केवल विवाह संस्कार ही स्त्री को कहा गया है शेष संस्कारों का मनु निषेध करते हैं। तो मनु के विरुद्ध स्त्री का उपनयन संस्कार कैसे होगा। और बिना उपनयन के हुवे स्त्री वेद कैसे पढ़ेगी।

पृ० ३०४ पं० १२

उत्तर—आपने स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन निषेध में कोई वेद मंत्र पेश नहीं किया और मनु के इस श्लोक के आशय को भी आप नहीं समझे देखियेः—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥

(मनु० २)

भाषार्थ—विवाह की विधि ही स्त्रियों के लिये उपनयन संस्कार है। पति की सेवा ही गुरुकुल निवास है। घर का काम ही प्रातः सायं का अग्नि होत्र है ॥ ६७ ॥

इस मंत्र में विवाह विधि, पति सेवा, गृहकृत्य, की उत्कृष्टता दिखाई गई है। इससे उपनयन, गुरुकुल निवास, प्रातः सायं अग्नि होत्र करने का निषेध नहीं है।

यदि आप इस प्रकार से निषेध मानेंगे तो मनु ने माता पिता तथा आचार्य की स्तुति करते हुए लिखा है किः—

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदा स्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ २३० ॥

(मनु० २)

भावार्थ—माता, पिता, तथा आचार्य्य, वे ही तीनों लोक हैं। वे ही तीनों आश्रम हैं वे ही तीनों वेद हैं तथा वे ही तीनों अग्नियें हैं। २३० ॥

तो क्या आप यहां पर यह मानने को तय्यार हैं कि मनु ने तीनों लोकों, तीनों आश्रमों, तीनों वेदों तथा तीनों अग्नियों के सेवन का निषेध कर दिया है। हर्गिज़ भी नहीं है अपितु यहां पर माता पिता गुरु की उत्कृष्टता दिखाई है। तीनों लोक आदि का निषेध नहीं हैं। बस इसी प्रकार से ही उपरोक्त मंत्र में भी विवाह आदि की उत्कृष्टता दिखाई हैं। उपनयनादि का निषेध नहीं है। जैसे कि—

अमन्त्रिकातु कार्य्यं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्। ६६ ॥

(मनु० २)

भावार्थ—स्त्रियों के ये संपूर्ण संस्कार जो ऊपर पुरुषों के वर्णन किये हैं बिना विचारे ही कर देने चाहियें अर्थात् अवश्य ही कर देने चाहिये। यथा काल यथा क्रम शरीर के संस्कार के लिये अवश्य कर देने चाहिये ॥ ६६ ॥

यहां 'अमंत्रिका' का अर्थ 'बिना वेद मंत्रों के' ऐसा नहीं है। अपितु 'अमंत्रिका का अर्थ बिना विचार 'अर्थात्' अवश्य है जैसे कि—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

(मनु० ८)

भाषार्थ—चाहे गुरु हो, बालक बूढ़ा हो, ब्राह्मण वा ज्ञानी हो जो आततायी हो उसे बिना बिचारे ही मार देना चाहिये॥ ३५० ॥ यहां बिना विचारे का यह मतलब नहीं कि विचार करे ही नहीं अपितु यह मतलब है कि अवश्य ही मारदे। यही मतलब उपरोक्त श्लोक में अमंत्रिका का है।

यदि आप 'अमंत्रिका' का अर्थ 'वेद मंत्र वर्जित' करके स्त्रियों के संस्कारोंमें वेद मंत्रोंका निषेध मानेंगे तो ऐसी अवस्था में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, इन तीन संस्कारों को क्या करेंगे। क्यों कि इनमें बालक या बालिका का निश्चय नहीं किया जा सकता। और द्विजों के गर्भाधान से सारे ही संस्कार संमंत्रक करने का विधान है जैसे—

निषेकादिश्मशानान्तो मंत्रैर्यस्योदितोविधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥१६॥
(मनु० २)

भाषार्थ—गर्भाधान से लेकर श्मशान तक जिसकी विधि मंत्रों से हो उसको इस शास्त्र के पढ़ने का अधिकार है दूसरे किसी को नहीं॥ १६॥

दूसरे यह अर्थ मनु के सिद्धान्त के भी विरुद्ध होंगे क्योंकि मनु जी स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद पढ़ना ही नहीं मानते। अपितु यज्ञ का होता होना भी मानते हैं जैसे—

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा॥ ३६ ॥
(मनु० ११)

भाषार्थ—अग्नि होत्र का होता कन्या, युवती, अल्प-विद्य, मूर्ख तथा संस्कार शून्य को नहीं होना चाहिये॥ ३६॥

यहां पर कन्या तथा युवती के निषेध से साबित है कि वृद्ध, स्त्री, अग्निहोत्र की होता बन सकती है । वरना कन्या और युवती के निषेध की क्या ज़रूरत थी । स्त्री मात्र का ही निषेध कर देते । और यदि स्त्रियों को संस्कारों का निषेध होता तो फिर 'असंस्कृतः' शब्द से स्वयं ही स्त्रियों का भी निषेध हो जाता । किंतु 'असंस्कृतः' पद के होते हुए भी कन्या तथा युवती का निषेध सिद्ध करता है कि स्त्रियों को संपूर्ण संस्कारों का समंत्रक अधिकार है । और यज्ञ में भी होता बनने का अधिकार है । अतः सिद्ध हुआ कि अमंत्रिका का अर्थ मंत्र वर्जित नहीं अपितु बिना विचारे अर्थात् अवश्य अर्थ है, और स्त्रियों को उपनयनादि संस्कारों तथा वेदों के पढ़ने का निषेध नहीं हैं । जैसे कि—

(क) अत एव हारीतेनोक्तम्—द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्या । वधूनां तूपस्थिते विवाहे कथांचिदुपनयन-मात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः ॥

(ख) तथा च यमः

पुराकल्पेतु नारीणां मौंजीबंधनमिष्यते ।
अध्यापनं चवेदानं सावित्री वाचनं तथा ॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः ।
स्वगृहेचैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते ॥
वजयेदजिनं चीरं जटाधारणमेवच ॥
( पराशर माधव २ अ० आ० का० पृ० ४८५ )

ऋगथर्व सूक्त संग्रहः । संस्कृत भूषण शुचिव्रत लक्षण पालेन शास्त्रिणा संगृह्य संपादितः । रईस आज़म श्री भाई

मनोहर लाल महोदयेन प्रकाशितः। विक्रम संवत १९८५ सप्तमं संस्करणम् २०००) पृ० ५० ॥

(ग) ततः शैलवरः सोपि प्रीत्या दुर्गोपवीतकम्।
कार्यामास सोत्साहं वेद मंत्रैः शिवस्यच ॥ १ ॥
(शिव० रुद्र० पार्व० अ० ४७)

(घ) प्रावृत्तां यज्ञोपवीतनोमभ्युदानयऋजपेत्।
सोमोऽदद् गंधर्वायेति ॥ गोभिल० २।१।१६ ॥

(ङ) यज्ञोपवीत मार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनो।
सा पृथिव्यां पृथु श्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥ ३० ॥
(वालमी० युद्ध० स० ८१)

(च) श्वेत चम्पकवर्णाभांरत्न भूषण भूषिताम्।
वहि शुद्धांशुकाधानां नाग यज्ञोपवीतिनीम् ॥ २ ॥
(ब्रह्मवै० प्रकृति० अ० ४६)

भाषार्थ—(क) इस लिये हारीत ने कहा है। स्त्रियें दो प्रकार की होती है। ब्रह्मवादिनी और सद्योवधु। उन में से ब्रह्मवादिनियों के लिये यज्ञोपवीत अग्नि होत्र वेदाध्ययन और अपने घरों में भिक्षा मांगना तथा सद्यः बधु के लिये विवाह के उपस्थित होने पर किसी प्रकार से यज्ञोपवीत करके विवाह कर देना चाहिये। (ख) तथा यम ने भी कहा है। पहिले कल्प में स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत विधान था। वेदों का पढ़ना तथा गायत्री का बोलना भी। पिता वा भाई वा चाचे का लड़का उस को पढ़ावे और कोई न पढ़ावे। अपने ही घरों में कन्या का भिक्षा मांगना ठीक है। और चर्म धारण जटा धारण और वल्कल धारण नहीं करने चाहिये। [यह दोनों प्रमाण भृगयव

सूक्त संग्रह जोकि लाहौर के भाई मनोहर लाल जी रईसे आज़म ने संवत १९८५ में सातवीं वार २०००) छपवाकर मुफ्त वांटा है। उसके पृ० ५० से लिये गये हैं]

(ग) उस के पश्चात् हिमाचल ने प्रेम पूर्वक उत्साह से मंत्रों के साथ पार्वती तथा शिव का यज्ञोपवीत करवाया।

(घ) तब कन्या को कपड़े से ढक कर जनेऊ पहिन कर पति अपने सामने निकट ला कर 'सोमोऽददत्' मंत्र पढ़े।

(ङ) रावण ने छल से बनाई विचारी सीता को यज्ञोपवीत मार्ग से काट डाला। वह सुन्दरी पृथिवी पर गिर पड़ी।

(च) सुफेद चमेली के रंग के समान शोभा वाली रत्नों के भूषणों से भूषित साफ कपड़े पहिने हुए नाग के समान यज्ञोपवीत पहिने हुई को देखा।

इन संपूर्ण प्रमाणों से सिद्ध है कि मनु के श्लोकों का हमारा किया हुआ अर्थ शास्त्रानुकूल है और स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद पढ़ने का संपूर्णतया अधिकार प्राप्त है।

३०१ (प्रश्न)—जब स्त्रियों को उपनयन संस्कार ही नहीं कहा तो फिर वेद अध्ययन का अपने आप निषेध हो गया। पृ० ३०४ पं० २०।

उत्तर—हम सिद्ध कर चुके हैं कि स्त्री को यज्ञोपवीत लेने का ही नहीं देने का भी अधिकार है। जब उपनयन का अधिकार सिद्ध होगया तो वेदाधिकार तो स्वयं ही सिद्ध है। स्त्रियों को पढ़ने का तो कहना ही क्या है। ऋषि बनने का हक़ है। चुनांचे कितनी स्त्रियें ऋषिका हो गुज़री हैं। जिनके नाम वेद के मन्त्रों पर बतौर ऋषि के दर्ज हैं।

| संख्या | नाम ऋषिका | कौन से वेद मंत्र की | प्रतीक |
|---|---|---|---|
| १ | सार्प राज्ञी कद्रू | यजु० ३ । ६ | आयङ्गौः |
| २ | लोपा मुद्रा | यजु० १७ । ११ | नमस्ते हरसे |
| ३ | सरस्वती | यजु० २८ । २४ | होता यक्षत् |
| ४ | गायत्री. | साम० पू० १ । ६ । १ | अग्ने ओजिष्ठ |
| ५ | वाजिनां स्तुति | साम० पू० ५।५।६ | आविर्मर्य्या |
| ६ | शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य-पत्नी | ऋ० ८।१।३४ | पन्वस्य |
| ७ | आपालात्रेयी | ऋ० ८।६१।१ | कन्यावा |
| ८ | सिकता निवावरी | ऋ० ६।८६।११ | अभिक्रन्दन् |
| ६ | यमी वैवस्वती | ऋ० १०।१०।१ | ओचित् |
| १० | अदितिर्वा दाक्षायणी | ऋ० १०।७२।१ | देवानांनु |
| ११ | वागाम्भरणी | ऋ० १०।१२५।१ | अहं रुद्रेभिः |
| १२ | रात्रिर्वा भारद्वाजी | ऋ० १०।१२७।१ | रात्रीव्यख्यद् |
| १३ | इन्द्राणी | ऋ० १०।१४५।१ | इमां खनामि |
| १४ | श्रद्धा कामायनी | ऋ० १०।१५१।१ | श्रद्धयाग्नि |

इत्यादि अनेकों स्त्रियां मन्त्रों की ऋषिका वेदों में लिखी पड़ी हैं। मन्त्रों के अर्थों को साक्षात् कर के प्रचार करने वाले को ऋषि कहते हैं। जब स्त्रियों को वेद मन्त्र के अर्थ को साक्षात् कर के उस के प्रचार का हक़ है तो कौन कह सकता है कि स्त्रियों को उपनयन तथा वेदाध्ययन का हक़ नहीं है।

३०२ (प्रश्न)—क्या मज़ा है धोकेबाज़ हों तो ऐसे हों।

उत्तर—जिस को पित्त का रोग होता है उस को दूध भी पीला ही दिखाई देता है। वरना बताया तो होता. धोका

क्या किया है ? मन्त्र के अर्थ साफ तौर से किये गये हैं। जैसे आपने ही अपनी पुस्तक के पृ० ३०५ पं० ४ में दे रखे हैं कि—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्व० ११।५।१८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त हो के युवती विदुषी अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं। वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।( सत्यार्थ० समु० ३ ) कहियेगा महाराज इन अर्थों में आप को क्या धोका नज़र आता है।

३०३ (प्रश्न)—'ब्रह्मचर्येण युवानम्' यह 'पतिं' का विशेषण है। किंतु स्वामी 'ब्रह्मचर्येण' इस पद को कन्या में लगाते हैं। यह धोका है। पृ० ३०५ पं० १४।

उत्तर—हमारा अनुमान सत्य ही निकला। अपनी नीयत में ख़लल है। धोकेबाज़ औरों को बता रहे हैं। यहां 'युवानं' 'पतिं' का विशेषण है 'ब्रह्मचर्येण' किसी का विशेषण नहीं है। अपितु हेतु है। जो 'कन्या' और 'युवानं' दोनों के साथ लग सकता है। और स्वामी जी ने लगाया भी दोनों के साथ है 'जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से' ऐसा अर्थों में लिखा हुआ है। किंतु आप ने 'ब्रह्मचर्येण' को 'युवानम्'

के साथ जोड़ कर फिर 'पतिं' का विशेषण बता कर धोखा देने की कोशिश की है। अतः स्वामी जी का 'ब्रह्मचर्येण' हेतु को लड़कों तथा कन्या दोनों में लगाना ठीक तथा आप का उस को विशेषण बताना सर्वथा मिथ्या है।

३०४ (प्रश्न)—यहां पर 'युवानम्' में 'ब्रह्मचर्येण' हेतु है। अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुए पति को कन्या प्राप्त करती है। पृ० ३०५ पं० १८।

उत्तर—'ब्रह्मचर्येण' केवल 'युवानम्' में हेतु नहीं है अपितु 'कन्या' में भी हेतु है। अर्थात् ब्रह्मचर्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य से युक्त जवान पति को प्राप्त करती है।

३०५ (प्रश्न)—'पतिं' पुल्लिङ्ग है। उस का विशेषण 'ब्रह्मचर्येण युवानम्' यह भी पुल्लिङ्ग है। फिर कोई लिखा पढ़ा मनुष्य यह कैसे मान लेगा कि 'ब्रह्मचर्येण इस हेतु को कन्या में लगाओ। क्या हम को यह मानना पड़ेगा कि स्वामी जी को हेतु का ज्ञान नहीं। या हम मान लें कि स्वामी जी को अभी तक लिंग का ज्ञान न हुआ।

पृ० ३०५ पं० १६।

उत्तर—हमें इस बात के मानने में कोई संकोच नहीं कि स्वामी जी का ज्ञान लिंग विषयक व्याकरण तक ही महदूद था और आप ने इस लिंग के विषय को बचपन से ही बड़े परिश्रम से अध्ययन कर के अनुभव किया है तथापि जब आप ब्रह्मचर्य्येण को हेतु मान रहे हैं। और हेतु में तृतीया विभक्ति मौजूद है। तो भला फिर कोई पढ़ा लिखा आदमी यह से मान सकता है 'द्वितीयान्त पतिं' का विशेषण "तृतीयान्त

ब्रह्मचर्य्येण" भी बन जावेगा। अतः होश हवास से बात कीजिये युवानं तो पतिं का विशेषण है और ब्रह्मचर्य्येण युवानं तथा कन्या दोनों में हेतु है क्योंकि कन्या संज्ञा होती ही उसकी है जो ब्रह्मचारिणी अर्थात् अक्षत योनि हो इस में प्रमाण निम्न लिखित है—

अकन्येति तुयः कन्यां प्रब्रूयाद्द्वेषण मानवः ॥ मनु० ८। २२५।
नेयं कन्या क्षतयोनिरियमिति योमनुष्यो द्वेषण ब्रूयात्।
( कुल्लूक भट्ट )

भाषार्थ—यह कन्या नहीं है अपितु क्षत योनि है ऐसा जो मनुष्य कहे। यहां अकन्या का नाम क्षत योनि तथा कन्या का नाम अक्षतयोनि है। और अक्षत योनि को वर्णन करने के लिये ब्रह्मचर्य्य शब्द से बढ़ कर दूसरा कोई सुन्दर शब्द नहीं मिल सकता। यहां कन्या को ब्रह्मचारिणी कहना इस लिये भी जरूरी था कि विवाह के मन्त्र कन्या अर्थात् अक्षत योनि ब्रह्मचारिणी में ही प्रतिष्ठित हैं जैसा कि—

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव पतिष्ठिताः।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्म्म क्रियाः हिता।
॥ २२६ ॥ (मनु० ८).

अर्थ—विवाह के मन्त्र कन्याओं में ही प्रतिष्ठित हैं अकन्याओं में नहीं क्योंकि मनुष्यों में अकन्या धर्म को लुप्त करने वाली हैं ॥ २२६ ॥ कन्या के विषय में पूछने की जरूरत ही न रहे इस लिये बल पूर्वक कह दिया कि जो ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या हो वह ब्रह्मचर्य से जवान पुरुष से ही शादी करे। ब्रह्मचारी अर्थात् अक्षत वीर्य कुमार सारांश यह कि—

अब्रह्मचारिणी अर्थात् क्षतयोनि कन्या से तथा ब्रह्मचारिणी अर्थात् अक्षतयोनि कन्या अब्रह्मचारी अर्थात् क्षतवीर्य जवान पुरुष से शादी न करे। ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारी से तथा अब्रह्मचारिणी अब्रह्मचारी से बिवाह करे यह वेद का दृढ़ नियम है। अतः ब्रह्मचर्य्येण हेतु 'पति' तथा कन्या दोनों के साथ लगाना आवश्यक था। अब अर्थ इस प्रकार होंगे कि ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य से युक्त जवान पति को प्राप्त हो। आशा है अब आप को इस के समझने में कठिनता न रहेगी।

३०६ ( प्रश्न )—वीर्य्य रक्षा का नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। वीर्य पुरुषों में ही होता है। इस लिये ब्रह्मचर्य्य का साधन पुरुष ही कर सकता है। स्त्री के शरीर में वीर्य्य नहीं होता 'रज' होता है। रज को शास्त्र ने कहीं पर भी ब्रह्मचर्य्य के नाम से स्मरण नहीं किया। फिर कन्या में ब्रह्मचर्य्य का लगाना शास्त्रानभिज्ञता और पागलपन नहीं तो क्या है। पृ० ३०५ पं० २३।

उत्तर—आप इस प्रकार के विचित्र जन्तु हैं कि आपको जो सूझती है अनोखी ही सूझती है। आप दुनियां भर में पहिले आदमी हैं जिनको नियोटन को पृथिवी में आकर्षण की भान्ति यह बात सब से पहिले सूझी है कि स्त्री में वीर्य्य नहीं होता। तो वैद्यक ग्रन्थों में जो लिखा है कि मनुष्य के शरीर में रस, रुधिर, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा तथा वीर्य्य ये सात धातु होती हैं। तो स्त्री के शरीर में आप के ख्याल से एक धातु वीर्य्य होती ही नहीं। गोया स्त्री के शरीर में छः ही धातु होती हैं सातवीं होती ही नहीं।

हमें अफसोस से कहना पड़ता है कि आप की यह सूझ क़तई मिथ्या है। स्त्री में भी वैसे ही सातों धातु हैं जैसे पुरुष में। जैसे पुरुष में वीर्य होता है वैसे ही स्त्री में होता है। बोलने चालने में भेद प्रतिपादन के लिये स्त्री के वीर्य को ही रज के नाम से पुकारते हैं। वरना यह वह रज नहीं होता जो स्त्री को प्रत्येक मास में प्रथक चार रात्री में आता है। जिस के शुद्ध होने पर गर्भाधान की आज्ञा है। ऋतुमती होने में चार दिन जो विकृत खून आता है वह और चीज़ है। और जिस का पुरुष के वीर्य के साथ मिलाप होकर स्त्री को गर्भ ठहरता है वह और चीज़ है। और शास्त्रों में स्त्री और पुरुष दोनों के वीर्य्य को शुक्र या बीज के नाम से भी वर्णन किया है जैसे—

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान् पुंस्त्रियौवा क्षीणेऽल्पे विपर्ययः ॥४९॥
(मनु० ३)

पुंसोबीजेऽधिकेऽयुग्मास्वपि यत्रो जायते। स्त्री बीजेऽधिके यग्मा स्वपि दुहितैव। स्त्री पुंसयोस्तु बीज साम्येऽपुमान्नपुंसक जायते। पुंस्त्रावितियमौच। निःसारेऽल्पे चोभयोरेव बीजे गर्भ स्यासंभवः ॥४९॥ (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—पुरुष के बीज अधिक होने पर अयुगम रात्रियों में भी पुत्र ही होगा। स्त्री के बीज अधिक होने पर युग्य रात्रियों में भी कन्या ही होगी। स्त्री और पुरुष के बीज बराबर होने पर नपुंसक पैदा होता है। वा लड़के लड़की का जोड़ा। यदि स्त्री तथा पुरुष दोनों का बीज साररहित हो अथवा थोड़ा हो तो गर्भ ठैहरना असंभव है ॥४९॥

अब यहां पर स्त्री तथा पुरुष दोनों के वीर्य को शुक्र तथा बीज के नाम से वर्णन किया गया है। अतः आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा मिथ्या है कि स्त्री के वीर्य नहीं होता। ब्रह्मचर्य्य केवल वीर्य रक्षा का नाम नहीं है अपितु वीर्य की रक्षा करते हुवे वेद के पढ़ने तथा ईश्वर की उपासना का नाम ब्रह्मचर्य है। और इस ब्रह्मचर्य के धारण करने का भी मनुष्य को अधिकार है। जैसे कि स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य शब्द आता है कि—

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म्म एक पत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथाते ब्रह्मचारिणः ॥१६०॥

(मनु० ५)

शृणुयाच्चैव यानारी तद्भक्ता ब्रह्मचारिणी।
पितृपक्षे मातृपक्षे पूज्या भवति देववत् ॥१३२॥

(महा० शान्ति० अ० २८४)

भाषार्थ—मरने तक नियम पूर्वक ब्रह्मचारिणी रहे। एक पुरुष की पत्नियों का जो उत्तम धर्म है उस की इच्छा करती रहे ॥१५८॥ पति के मरने पर साधु स्वभाव वाली स्त्री ब्रह्मचर्य में क़ाइम रहते हुए बिना पुत्र के भी स्वर्ग में जाती है। जैसे वे धार्मिक ब्रह्मचारी स्वर्ग में जाते हैं ॥१६०॥ जो स्त्री स्तुति को सुने और भक्ति में मस्त ब्रह्मचारिणी रहे। वह पिता तथा माता के पक्ष में देवता के समान पूजा के योग्य होती है ॥१३२॥

कहिये महाराज अब तो पूरे तौर से साबित हो गया कि स्त्री के साथ ब्रह्मचर्य का शब्द शास्त्रों में प्रयुक्त हुवा है। फिर ब्रह्मचर्य शब्द को कन्या के साथ लगाने पर शंका करना शास्त्रानभिज्ञता और पागल पन है या नहीं ?

३०७ (प्रश्न)—रही बात यह कि "इमं मंत्र पत्नी पठेत्" यह लेख किसी भी गृह्य सूत्र और श्रौत सूत्र में कहीं पर भी नहीं है। पृ० ३०६ पं० ७।

उत्तर—पक्षपात् ने आपकी अकल पर ऐसा ताला लगा दिया है कि अपाको सीधी बात भी उलटी नज़र आती है। आप ने यह समझ लिया कि "इमं मंत्र पत्नी पठेत्" यह किसी वेद शाख गृह्य सूत्र वा श्रौत सूत्र का मंत्र सूत्र वा पाठ है। श्रीमान् जी ऐसा नहीं है। यदि यह अक्षरशः किसी पुस्तक का पाठ होता तो स्वामी जी इस का ठिकाना नोट कर देते। स्वामी जी ने कर्म काँड के पुस्तकों का यह अभिप्राय लिखा है कि यज्ञ में स्त्री को मन्त्र उच्चारण करने पड़ते हैं यदि स्त्री को वेद का अधिकार न होता तो यज्ञ में उस को मंत्र उच्चारण का अधिकार क्यों दिया जाता। स्वामी जी के लेख को ज़रा ग़ौर से पढ़ने की कृपा करें।

"(प्रश्न)—क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें।

उत्तर—अवश्य, देखो श्रोत सूत्रादि में—इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्। अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेद आदि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वर सहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सके (सत्यार्थ०समु०३)"

इससे साफ साबित है कि 'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्' इस पाठ के देने से स्वामी जी का यह मतलब नहीं है कि उपरोक्त पाठअक्षरशः श्रोत सूत्रादि में मौजूद है। अपितु स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि श्रोत सूत्रादि में स्त्री को यज्ञ में मन्त्र उच्चारण की आज्ञा मौजूद है। और स्वामी जी की यह बात सोलह आने ठीक है कि यज्ञ में स्त्री को वेद मन्त्रों के बोलने की आज्ञा और अधिकार श्रौत सूत्रादि पुस्तकों में मौजूद है। ध्यान पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

(१) कात्यायन श्रौत सूत्र—प्रक्षालितेषु महिष्यश्वमुप संविशत्याहमजानीति (का० २०।६।१४)

भाषार्थ—पशु के प्राणों के शुद्ध होने पर यजमान की पत्नी घोड़े के पास सोती है और 'अहमजनि इत्यादि यजु० २३।१९' मन्त्र को बोलती है (देखो इसी मन्त्र का महीधर भाष्य)

(२) कात्यायन श्रौत सूत्र—

अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीती।

(का० २०।६।१६)

भाषार्थ—यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को योनि में डाल कर "वृषा वाजी इत्यादि यजु० २३।२०" इस मंत्र को बोले (देखो इसी मंत्र का महीधर भाष्य)।

(३) गोभिल गृह्यसूत्र—

पश्चादग्नेः संवेष्टितकूटमेवञ्जातीयं वाऽन्यत् पद्या प्रवर्तयन्तीं वाचयेत् प्रमे पतियानः पन्थाः कल्पतामिति।

(गोभिल० २।१।१९—२२)

भाषार्थ—एवं अग्नि के पीछे स्थापित कर या इसी प्रकार का अन्य आसन कन्या के पैर से चल कर अग्नि के समीप बिछाया हुआ बर्हि तक ले आवे उस समय वधू को "प्रमे" मन्त्र पाठ करावे ।

(४) आश्वलायन श्रौत सूत्र—

वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेद्धोताऽध्वर्यु र्वा वेदोऽसिविचित्तिरसि ।

( आश्व० श्रौ० १ । ११ । १ )

भाषार्थ—वेद पत्नी को देकर होता व अध्वर्यु यह मन्त्र बुलवावे "वेदोऽसिविचित्तिरसि इत्यादि"

(५) ऋग् विधान—

इमामिति जपेत् कन्या नाभिमालभ्य नित्यशः ॥११७॥

एवमेव जयेद्भर्ता ततो दीर्घायुषौ तु तौ ॥११८॥

( शौनकाचार्य कृतऋग् विधान अ० ३ खं० २२ )

भाषार्थ—"इमांत्वमिद्रमीढ्वः इत्यादि ऋ० १० । ८५ । ४५" इस मन्त्र का कन्या नाभि का स्पर्श करके जप करे ऐसे ही पति भी जप करे तो निश्चय से दोनों की दीर्घ आयु हो जावेगी।

( ६ ) ऋग्विधान—

इमामिति त्र सूक्तेन दशकृत्वोदशावरम् ।

सपत्नीं बाधते तेन पतिश्चातीव मन्यते ॥ ६३ ॥

( शोनकाचार्य कृत ऋगवि० अ० ४ खं० १२ )

भाषार्थ—'इमाम्' इत्यादि ऋग्वेद के इस सूक्त को यदि दश दश वार जपें तो सौत को नुकसान पहुंचावे तथा उस का पति भी उसका आदर करे ॥

( ७ ) चारों वर्ण की स्त्रियों को वेदाधिकार—

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां स्त्री जनेश्वर ।
यथा क्रमेण पूज्यैनां गन्ध पुष्पजलाक्षतैः ॥ ८२ ॥
कुङ्कुमालक्तकैर्दीपै र्माषान्नवटकैः शुभैः ।
कुसुमैर्वत्सकंचापि मंत्रेणानेन पाण्डव ॥ ८३ ॥
"ओं माता रुद्राणां दुहिता व सूनां स्वसादित्यानो
ममृतस्यनाभिः । प्रनुवोचंचिकितुषे जनाय ।
मा गामनागामदितिं वधिष्ट" नमोनमोनमः स्वाहा ॥ ८४ ॥
इत्थं संपूज्य गांपृष्ट्वाश्वात्तां चक्षमापयेत् ॥ ८५ ॥

( भविष्य० उत्तर० अ० ६६ )

भाषार्थ—हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रों की स्त्रियां क्रमशः इस गौ की गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत, से पूजा करके और कुंकुम पुष्प युक्त दीपक तथा उर्द अन्न की बड़ियों से तथा फूलों से गौ को बछड़े समेत " ओंमातारुद्राणाम्' इस प्रकार पूजा करके पीछे गौ को विसर्जन करे ॥ ८२ से ८५ तक यह मन्त्र "ऋ० मं० ८ सूक्त० १०१ मं० १५" है । जब चारों ही वर्णों की स्त्रियों को इस के उच्चारण का अधिकार है । तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

( ८ ) वेश्या को वेदाधिकार—

कोऽदाति पठेन्मन्त्रंध्यायंश्चेतसिमाधवम् ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृजेद् द्विज पुङ्गवम् ।
शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥ ५४ ॥

( भविष्य० उत्तर० अ० १११ )

भाषार्थ—वेश्या को चाहिये कि वह 'कोऽदादिति' इस वेद मन्त्र को पढ़े और माधव का चित्त में ध्यान करके फिर ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके उस को उसके घर भेज दे और शय्या आसन आदि सब ब्राह्मण के घर पहुंचा देवे ॥ ५४ ॥ यह मन्त्र 'यजु० ७।४८' का है जब वेश्या को भी इस के उच्चारण का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

( ६ ) शिव ने पार्वती को मन्त्रोपदेश—

उपदिष्टास्त्वया देव मंत्राः सप्रणवा मताः ।
तत्रादौश्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थंविनिश्चितम् ॥ २१ ॥
( शि० कैलाश० अ० २ )

भाषार्थ—पार्वती ने शिव से कहा कि हे देव आपने जो प्रणव सहित मन्त्रों का मुझे उपदेश किया है इन में से मैं पहिले प्रणव का अर्थ निश्चित रूप से सुनना चाहती हूं ॥ २१ ।

शिवका पार्वती को मन्त्रोपदेश करना स्त्रियों के वेदाधिकार को स्पष्ट सिद्ध करता है ।

(१०) राधा कृष्ण के विवाह में—

श्रीकृष्ण हस्तंराधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ।
स्थापयामास मन्त्रास्त्रीन् पाठयामास राधिकाम् ॥ १२६ ॥
पुटांजलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः ॥ १२६ ॥
पाठयामासवेदोक्तान् पंच मंत्रांश्च नारद ॥ १३० ॥
(ब्रह्मवैवर्त० खण्ड ४ अ० १५)

भाषार्थ—ब्रह्मा ने श्री कृष्ण के हाथ को राधा की पीठ पर रखवा कर तीन मन्त्र राधा को पढ़ाये ॥ १२६ ॥ फिर

ब्रह्मा ने कृष्ण तथा राधा की पुटाञ्जलि करवा कर ॥ १६ ॥ वेद के पांच मन्त्र दोनों को पढ़ाये ॥ १३० ॥

जब ब्रह्मा ने स्वयं राधा को वेद मन्त्र पढ़ाये तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

३०८ (प्रश्न)—स्त्रियों को केवल मन्त्र भाग के पढ़ने का निषेध है। अन्य शास्त्रों का नहीं। गार्गी प्रभृति जितनी भी विदुषियां भारतवर्ष में हुई हैं। ये सब शास्त्रों की विदुषियां थीं। किंतु मन्त्र भाग से सब की सब अनभिज्ञ थीं। फिर स्त्रियों का वेद पढ़ना तो इतिहास से भी सिद्ध नहीं। पृ० ३०६ पं० १५।

उत्तर—आपका यह लिखना कि 'स्त्रियों को केवल मन्त्र भाग के पढ़ने का निषेध है" यह साबित करता है कि ब्राह्मण भाग के पढ़ने का स्त्रियों को अधिकार है। तो क्या आप ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते। यदि मानते हैं तो आपके कथन से ही स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार साबित होगया। फिर आपने स्वयं अपने पुस्तक के पृष्ठ २६७ पं० २२ में लिखा है कि "वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है" और फिर आप पृ० ३३७ पं० १६ में लिखते हैं कि "अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं" तो इस से आपके कथन से ही स्त्री को वेद का अधिकार सिद्ध होगया।

और आप अपने पुस्तक के पृ० २७२ नं० २ पर स्वयं लिखते हैं कि इस ( आयं गौः ) मंत्र का सर्पराज्ञी कद्रू

ऋषि हैं। और ऋषि कहते ही उसको हैं जो वेद के तत्व को जानता हो। अतः आपके लेख से ही स्त्री को वेद का अधिकार सिद्ध होगया।

(१) शुद्धाः पूतायोषितो यज्ञिया इमाः इत्यादि ऋ० ६। १२२। ५॥ ये शुद्ध और पवित्र स्त्रियां यज्ञ के क़ाबिल हैं॥ ५॥

यादम्पति समनसा सुनुतआ च धावतः। देवानित्यया शिरा॥ ऋ० ८। ३१। ५॥ स्त्री पुरुष को इकट्ठे प्रसन्नता पूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये॥ ५॥

ये दोनों मन्त्र बतलाते हैं कि स्त्री पुरुष को इकट्ठे मिल कर यज्ञ में शामिल होना चाहिये।

यजमानः सपत्नीकः पुत्र पौत्र समन्वितः।
पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् याग मण्डपम्॥ १६॥
(भविष्य० मध्यम० भाग २ अ० २०)

यजमान अपनी पत्नी तथा पुत्र पौत्र सहित पश्चिम द्वार को प्राप्त होकर यज्ञमण्डप में प्रवेश करे॥ १६॥

(३) इसी विधि को पूरा करने के लिये राम ने सोने की सीता बनाई।

कांचनींमम पत्नीं च दीक्षायां यज्ञांश कर्मणि॥ २५॥
(बाल्मी० उत्तर० स० ९१)

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे चपत्न्यर्थं जानकी कांचनी भवत्॥ ७॥
(बाल्मी० उत्तर० स० ९८)

यज्ञ कर्म की दीक्षा में सीता के स्थान में मेरी सोने की पत्नी बनाओ॥ २५॥ सीता के पश्चात् राम ने दूसरी पत्नी

स्वीकार नहीं की। प्रत्येक यज्ञ में पत्नी के स्थान में सोने की सीता रक्खी जाती थी ॥ ७ ॥

(४) कौशल्या तथा द्रौपदी यज्ञ में—

होता ऽ ध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन्।
महिष्या प्रवृत्त्याथ वावातापरां तथा ॥ ३५ ॥

(वाल्मी० बा० स० १४)

ततः संज्ञाप्य तुरगंग विधिवद्याजकास्तदा।
उपसंवेशयनराजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम्।
कलाभिस्तिसृभीराजन् यथा विधि मनस्विनीम् ॥ २ ॥

(महा० अश्वमे० आ० ५६)

कौशल्या को दशरथ के साथ तथा द्रौपदी को युधिष्ठिर के साथ यज्ञ के कर्मों में प्रयुक्त किया गया स्पष्ट है।

(५) कौशल्या का हवन करना—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रत परायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मंत्र वत्कृतमंङ्गला ॥ १५ ॥

(वाल्मी० अयोध्या० स० २०)

धर्मनित्या यथा कालमग्न्यागारपरामव।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय ॥ १८ ॥

(वाल्मी० अयोध्या० स० ५८)

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्नि होत्रं पुरस्कृत्य परस्थास्ये येन राघवः ॥ १४ ॥

(वाल्मी० अयो० स० ७५)

भाषार्थ—जब राम कैकेयी के महलों से कौशल्या के महलों में पहुंचा। तब वह कौशल्या सूक्ष्म वस्त्र पहिने प्रसन्न चित्त व्रत परायण होकर मंगलार्थ वेद मंत्रों से अग्नि होत्र कर

रही थी ॥ १५ ॥ राम ने वन से सारथी के हाथ कौशल्या को संदेश दिया। हे देवि ! नित्य धर्म का पालन करते हुवे समयानुसार अग्नि होत्र का पालन करना। और देव दशरथ के पार्श्वों को ईश्वर की भांति पूजना ॥ १८ ॥ जब भरत मामा के घर से आया तब कौशल्या ने कहा। अथवा मैं स्वयं ही सुमित्रा को साथ लेकर सुख पूर्वक अग्नि होत्र को आगे कर के वहीं चली जाऊंगी जहां राम है ॥ १४ ॥'

श्रुत्वा पुष्पे च पुत्रस्य यौवराज्येऽभि षेचनम्। प्राणायामेन पुरुषंध्या यमाना जनार्दनम्॥ ३३ ॥

(वाल्मी० अयो० स० ४)

पुत्र के अभिषेक को सुन कर कौशल्या ने प्राणायाम द्वारा ईश्वर का ध्यान किया ॥ ३३ ॥

(६) सीता का संध्या तथा अग्नि होत्र करना—

सन्ध्या कालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वर वर्णिनी ॥ १४ ॥

(वाल्मी० सुन्दर० स० ४९)

वदेही शोक संतप्ता हुताशनमुपागमत् ॥ २५ ॥

( वाल्मी० सुन्दर० स० ५३)

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियत मानसः।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ॥१॥
प्रगृह्यशिरसापात्रीं हविषो विधिवत्ततः।
महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितानिले ॥२॥

(वाल्मी० अयो० स० ६)

भाषार्थ—हनुमान् सीता को ढूंढते २ जब अशोक-वाटिका में पहुचे तब प्रातः अनुमान किया—सायं का काल हो जाने से सन्ध्या करने के लिये वह श्यामा संध्या सुन्दरी सीता इस शुद्ध जल वाली नदी पर अवश्य आवेगी ॥४६॥

जब हनुमान् जी के पकड़े जाने का समाचार सीता को मिला तो—सीता शोक से दुःखित होकर अग्नि होत्र करने चली गई ॥२५॥ पुरोहित ने अभिषेक का समाचार सुनाया तो—पुरोहित के चले जाने पर राम ने स्नान किया और मन को एकाग्र करके अपनी सुन्दर नेत्रों वाली पत्नी सीता के साथ प्रथम संध्या की ॥१॥ फिर प्रतिष्ठा पूर्वक सामग्री के पात्र को लेकर विधि अनुसार परमात्मा की आज्ञा पालन के लिये अग्नि में घृत का हवन किया ॥२॥

(७) कैकेयी वेद ज्ञाता थी—

तदासुमन्त्र मन्त्रज्ञा ककेयी प्रत्युवाचह ॥५९॥

(वाल्मी० अयो० स० १४)

तब मंत्रों को जानने वाली कैकेयी ने सुमंत्र को कहा—

( ८ ) द्रोपदी पण्डिता थी—

प्रिया च दर्शनीया च पंडिता च पतिव्रता ।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनं मब्रवीत् ॥ २ ॥

( महा० वन० अ० २७ )

भाषार्थ—प्रेम के योग्य दर्शन के क़ाबिल पण्डिता और पतिव्रता द्रोपदी ने धर्मराज से ये वचन कहे ।

( ९ ) स्त्री को योगाधिकार तथा सन्यासाधिकार—

सा प्राप्य मिथिलां रम्यां प्रभूत जन संकुलाम्।
भैक्ष्यचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरम् ॥ १२ ॥
ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम्।
पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत् ॥ १४ ॥
अथ भुक्तवतां प्रीत्या राजानां मन्त्रिभिर्वृतम्।
सर्वभाष्यविदां मध्येचादेयामास भिक्षुकी ॥ १५ ॥
सुलभात्वस्य धर्म्मेषु मुक्तो नेति ससंशया।
सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपतेः ॥ १६ ॥
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्यरश्मिभिः।
सास्म संचोदयिष्यंति योगबधैर्वबंन्धह ॥ १७ ॥
जनकोऽप्युत्समयन्राजा भावमस्या विशेषयन्।
प्रति जग्राह भावेन भावमस्या नृपोत्तम ॥ १८ ॥

( महा० शान्ति० अ० ३२० )

भाषार्थ—वह योगिनी सन्यासिनी सुलभा जन समूह से पूर्ण मिथिला में भिक्षा के उद्देश्य से राजा जनक के पास गई ॥ १२ ॥ तब राजा ने उसका स्वागत करके श्रेष्ठ आसन दिया। पात्रों धोकर उसकी पूजा की तथा श्रेष्ठ अन्न से उसको तृप्त किया ॥ १४ ॥ प्रेम से भोजन करके मन्त्रियों से युक्त राजा को सब भाष्य जानने वालों के मध्य में उस सन्यासिनी ने प्रेरणा की ॥१५॥ सुलभा को संशय हुआ कि यह राजा धर्मों में मुक्त हैं वा नहीं। योग के जानने वाली अपने सत्त्व से राजा के सत्त्व में प्रवेश कर गई ॥१६॥ तब उस सुलभाने अपने नेत्रों की ज्योतिसे राजा के नेत्रों की ज्योति को क़ाबू करके योग के बंधनों से राजा को बांधकर

प्रेरणा की ॥१७। राजा जनक भी मुस्कराता हुवा उस के भाव को अधिक जान कर अपने भाव से उस के भाव को ग्रहण कर गया ॥१८॥

(१०) स्त्री को राज्याधिकार—

कुमारो नास्तियेषां च कन्यास्तत्राभिषेचय।
कामाशयो हि स्त्रीवर्गः शोकमेवं प्रहास्यसि ॥४५॥
(महा० शान्ति० अ० ३३)

भाषार्थ—जिन के लड़का न हो वहां पर कन्या को राज्याभिषेक कर दो। कामनाओं की आशा करने वाला स्त्रीवर्ग होता है। उन के शोक को तू इस प्रकार कम कर सकेगा ॥४५॥

(११) स्त्री को युद्धाधिकार—

प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता।
मम वेषं शुभं कृत्वातारकं जहि माचिरम् ॥ ६९॥
तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम्।
छित्त्वाशस्त्राणि खड्गेन शिरः कायादपाहरत् ॥२०६॥
(भविष्य० प्रति सर्ग० अ० ३२)

भाषार्थ—ब्रह्माने अपनी स्त्री वेला से कहा कि हे प्यारी! घोड़े पर चढ़ कर शीघ्र युद्ध स्थल में जा। मेरा वेष धारण करके तारक को मार, देरमत कर ॥१९६॥ तब वेला ने महाशत्रु बलवान् तारक के शस्त्रों को अपने खड्ग से तोड़ फोड़ कर उस के शिर को धड़ से अलग कर दिया ॥२०६॥

(१२) चारों वेदों की पण्डिता स्त्री—

कुशध्वजस्य पत्नी चदेवी मालावती सती।
सा सुषाव च कालेन कमलाशीं सुतां सतीम् ॥ ३ ॥

सा च भूतल संबन्धाज्ज्ञान युक्ता बभूव ह ।
कृत्वा वेद ध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिका गृहे ॥ ४ ॥
वेदध्वनिं साचकार जात मात्रेण कन्यका ।
तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५ ॥
सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्च चत्वार एव च ।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे साच वेदवती स्मृता ॥ ६४ ॥

( ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० १४ )

भाषार्थ—कुशध्वज की धर्म्मपत्नी मालावती नाम की सती स्त्री थी। कुछ समय के पश्चात् उसने कमला के अंश सती पुत्री को पैदा किया ॥ ३ ॥ वह जन्म लेते ही पृथिवी के संबन्ध से ज्ञान वाली हो गई। प्रसूति गृह में वेद की स्पष्ट ध्वनि करके खड़ी होगई ॥ ४ ॥ वह कन्या पैदा होते ही वेद की ध्वनि करने लगी। इस कारण से वे लोग बुद्धिमान् उस को वेदवती कहने लगे ॥ ५ ॥ निश्चय से चारों वेद मूर्तिमान होकर सदा उसकी ज़बान के अग्रभाग में रहते थे। इसलिये उसका नाम वेदवती था ॥ ६४ ॥

(१३) अत्रसिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेदपारगा
अधीत्य सकलान् वेदान् लेभेऽसंदेहमक्षयन्।

( महा० उद्योग० अ० १०८ श्लो० १८—१९ )

भाषार्थ—यहां पर शिवा नाम वाली सिद्धा ब्राह्मणी वेदों का पार पाने वाली सब वेदों को पढ़ कर अक्षय विश्वास को प्राप्त हुई ( १८—१९ )।

कहिये महाराज ! अब तो स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार वेद स्मृति शास्त्र इतिहासादि सब से साबित हो गया। अब और कहिये क्या शंका है।*

*प्रश्न तथा पाठ्य सामग्री का क्रम ठीक है। पृष्ठ सं. अशुद्ध हैं।

# विवाह काल

( ३०६ ) प्रश्न—सोलह संस्कारों का वर्णन वेद में नहीं है। वरन धर्मशास्त्रों में विधान है। जब समस्त सोलह संस्कारों का विधान स्मार्त है। तो विवाह भी स्मृति प्रतिपाद्य ही हुआ। पृ० ३३५ पं० ६।

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा कि सोलह संस्कारों का वर्णन वेदों में नहीं है। क़तई ग़लत है। अपितु वेदों में सोलह संस्कारों के करने की आज्ञा तथा सोलह संस्कारों का मूल मौजूद है। उसी मूल के आधार पर धर्मशास्त्रों तथा गृह्य सूत्रों ने विस्तार पूर्वक संस्कारों की व्याख्या की है।

## सोलह संस्कारों के करने की आज्ञा

षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥

यजु० ८। ३३ ॥

भाषार्थ—सोलह संस्कारों से युक्त परमैश्वर्य देने वाले गृह आश्रम करने के लिये तुझ को आज्ञा देता हूं ॥ ३३ ॥

इस मंत्र में परमेश्वर ने गृहस्थों के लिये सोलह संस्कारों के करने की स्पष्ट आज्ञा दी है।

अब हम आप को सोलह संस्कारों का मूल वेदों में से दिखाते हैं।

## ( १ ) गर्भाधान संस्कार

पर्वताद्विो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम्।
शेपोगर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवादधत् ॥

अथर्व० का० ५ सूक्त २५ मं० १ ॥

भाषार्थ—जननेन्द्रिय गर्भ में वीर्य का धारण करने वाला है। जननेन्द्रिय वीर्य के कारणरूप मेरुदण्ड मस्तिष्क और प्रत्येक अंग से इकट्ठे हुए वीर्य को वाण में पंख की तरह योनि में धारण कराता है॥ १॥

## ( २ ) पुंसवन संस्कार

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वैपुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रिष्वामरामसि॥

अथ० ६। ११। १॥

भाषार्थ—घोड़े के सदृश बलवान् मनुष्य शान्त स्वभाव वाली स्त्री पर आरोहण कर चुका है। इस लिये यह पुंसवन संस्कार किया गया है। यह संस्कार ही सन्तान प्राप्ति कराने वाला है। वही संस्कार हम स्त्रियों का करते हैं॥ १॥

## ( ३ ) सीमन्तोन्नयन संस्कार

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु न सुभगा बोधतुत्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥४॥

ऋ० २। ३२

भाषार्थ—मैं दान देने वाली अच्छी प्रकार से बुलाये जाने योग्य स्त्री को अच्छी स्तुति द्वारा बुलाता हूं। और वह उत्तम ऐश्वर्य वाली मेरे आह्वान को सुने और अपने आत्मा से मुझे अच्छी प्रकार समझे और वह हमारे प्रजनन कर्म को बारीक सूई से जैसे वस्त्र के छिद्रों को सी कर पूरा कर लेते हैं, ऐसे ही वह भी इसे अच्छे प्रकार सी दे और बलवान् सैंकड़ों प्रकार से दानादि देने वाले प्रशंसनीय पुत्र मुझे दे॥ ४॥

## ( ४ ) जातकर्म संस्कार

दश मासाञ्छशयानः कुमारोऽधि मातरि ।
निरतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥

ऋ० ५ । ७८ । ६ ॥

भाषार्थ—हे परमात्मन् ! दश महीने तक माता के उदर में सोने वाला सुकुमार जीव प्राण धारण करता हुआ जीती हुई अपनी माता से बिना किसी दुख के अर्थात् सुख पूर्वक बाहर निकले ॥ ६ ॥

## ( ५ ) नामकरण संस्कार

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कानामासि ।
यस्यते नामामन्महि यंत्वा सोमेनातीतृपाम भूर्भुवः स्वः
सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥

यजु० ७ । २९ ॥

भाषार्थ—हे बालक ! तू प्रकाश रूप हो । अतिश प्रकाश रूप हो । तू परमात्मा का है । तू आत्म नाम वाला है । जिस तेरे नाम को हम जानते हैं । जिस तुझ को शांतिदायक पदार्थों से हम तृप्त करते हैं । अनेक गुण युक्त परमात्मा की कृपा से सन्तानों से मैं सुन्दर सन्तान वाला होऊं । वीर सन्तानों से अच्छे वीरों से युक्त होऊं । अन्य पोषणीय भृत्यादि से सुन्दर पोषण रक्षा करने वाला होऊं ॥ २९ ॥

## ( ६ ) निष्क्रमण संस्कार

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्य्याचद्रमसावुभा ॥

अथ० । ८ । २ । १५ ॥

भाषार्थ—हे बालक ! तेरे लिये औषधियें कल्याणकारी हों, और तुझ को अन्दर से बाहर लाया हूं, प्रकाशमान् सूर्य्य और चन्द्रमा दोनों तेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥

## ( ७ ) अन्न प्राशन संस्कार

अन्नपते ऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

यजु० ११ । ८३

भाषार्थ—हे अन्न के स्वामी परमात्मा ! रोग रहित बल कारक अन्न को हमारे लिये दीजिये, बढ़ाइये । हमारे भृत्यों और गौ आदि पशुओं के लिये भी बल कारक अन्न को दीजिये ॥ ८३ ॥

## ( ८ ) मुण्डन संस्कार

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापति र्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥

( अथ० कां० ६ सू० ६८ मं० २ )

भाषार्थ—अखंडित अर्थात् तेज़ छुरा केशों को काटे । जल वेग युक्त स्वभाव से केशों को गीला करे । सन्तान का पालक पिता इस बालक को दीर्घ जीवन तक देखने के लिए रोग को निवृत्त करे ॥ २ ॥

## ( ९ ) कर्ण वेध संस्कार

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्त्तामश्विनो लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥

अथ० ६ । १४१ । २ ॥

भाषार्थ—धातु के शस्त्र से दोनों कानों को छेद। वैद्य उस शोभावर्धक कार्य्य को करें। वह प्रजा के कल्याण का निर्वाह करने वाला हो ॥ २ ॥

## ( १० ) उपनयन संस्कार

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुतेगर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयंति देवाः ॥
( अथ० ११ । ७ । ३ )

भाषार्थ—ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत देने वाला आचार्य्य अपने अन्दर करता है। उस ब्रह्मचारी को अपने उदर में तीन रात्रि तक रखता है। जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है तब उस को देखने के लिये सब विद्वान् सब ओर से इकट्ठे होते हैं ॥३ ॥

## ( ११ ) वेदारंभ संस्कार

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्कर स्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत् ॥ यजु० २ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे विद्या दान से रक्षा करने वाले पुरुषो! तुम जिस प्रकार यह ब्रह्मचारी इस संसार में शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त कर विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य होवे उस प्रकार गर्भ के समान कोमल विद्या ग्रहण के लिये पुष्पों की माला धारण किये हुए इस ब्रह्मचारी को स्वीकार

## समावर्त्तन संस्कार

स्नातो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।

स खण्व एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥
अथ० ११ । ७ । ६ ॥

भाषार्थ—तेज से प्रकाशित कृष्ण चर्म धारण करता हुआ व्रत के अनुकूल आचरण करने वाला और बड़ी बड़ी मूछों वाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह लोगों को इकट्ठा करता हुआ बारम्बार उन को उत्साह देता है। और पूर्व से उत्तर समुद्र तक शीघ्र ही पहुंचता है ॥ ६ ॥

## ( १३ ) विवाह संस्कार

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥
अथ० ११ । ५ । १८ ॥

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तम ग्रभीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्म्मणाहं गृहपतिस्तव ॥
अथ० १४ । १ । ५१ ॥

भाषार्थ—ब्रह्मचारिणी कुमारी ब्रह्मचर्य्य सम्पन्न युवा पति को प्राप्त करती है। ब्रह्मचर्य्य बल से सम्पन्न होने पर ही वृषभ और अश्व संज्ञक पुरुष भोग्य पदार्थों का भोग कर सकते हैं ॥ १८ ॥ हे वरानने ! ऐश्वर्य युक्त मैं तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूं। धर्म युक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूं। तू धर्म से मेरी पत्नी है। मैं तेरा स्वामी हूं ॥५१॥

## ( १४ ) वानप्रस्थ संस्कार

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नरयसि
कथा ग्रामं न पृच्छसि नत्वा भीरि

भाषार्थ—यह जंगलों जंगलों घूमने वाला वानप्रस्थी गावों से दूर प्राप्त होता है। अर्थात् गावों में नहीं रहता। परन्तु उन से दूर रहता है। वह तू नगरों तथा गावों में जाने की बात या दशा को क्यूँ नहीं पूछता। तुझ को इस निर्जन बन में घूमते हुए क्या भय नहीं लगता है ॥ १ ॥

## ( १५ ) सन्यास संस्कार

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु में ॥

अथ० १९ । ४३ । १ ॥

भाषार्थ—जिस लोक को वेद वेत्ता ब्रह्मज्ञानी सन्यासी लोग अहिंसा सत्य भाषण आदि व्रतों से और तप के द्वारा प्राप्त करते हैं। सर्वाग्रणी प्रभु मुझे उसी अवस्था में पहुंचाये। और मुझ में सदसद्विवेकिनी उत्तम बुद्धि को धारण कराये ॥१॥

## ( १६ ) अन्त्येष्टि संस्कार

आरभस्व जातवेद स्तेजस्वद्धरो अस्तुते ।
शरीरमस्य संदहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥

अथ० १८ । ३ । ७१ ॥

भाषार्थ—हे अग्ने ! इस मृत देह को प्राप्त हो और तेरा हरण सामर्थ्य तेजस्वी हो। इस प्राणी के मृत शरीर को जला दे। और इस को पुण्यात्माओं के लोक स्वर्ग लोक में धारण कर ॥ ७१ ॥

अब आप ने देख लिया कि जैसे और संस्कारों का वेद में वर्णन है। वैसे ही विवाह संस्कार का भी वेद में वर्णन है अतः और संस्कारों की भांति विवाह भी वैदिक ही है,

केवल स्मार्त नहीं है ।

(३१०) प्रश्न—स्मृतियों में विवाह काल निम्न प्रकार से वर्णित है। पढ़ कर देखिये—

अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी ।
दश वर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥
( अंगिरा स्मृति )

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयं ॥ ७ ॥
यस्तां समुद्वहेत्कन्या ब्राह्मणो मदमोहितः ।
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषली पतिः ॥ ९ ॥
( पाराशर स्मृति अ० ७ )

तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥
( संवर्त स्मृति )

यावन्तः ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना ।
तावन्त्यो भ्रूण हत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम् ॥
( नारद स्मृति )

कन्या द्वादश वर्षाणि या ऽप्रदत्ता वसेद् गृहे ।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥
( यम स्मृति ) पृ० ३३५ से ३३७

भाषार्थ—आठ वर्ष की कन्या को गौरी और नौ वर्ष की कन्या को रोहिणी तथा दश वर्ष की कन्या की कन्या संज्ञा होती है। दश वर्ष के पश्चात् कन्या रजो धर्म्म वाली होती

है। माता, पिता तथा ज्येष्ठ भाई यदि रजस्वला होने तक कन्या का विवाह न करें तो ये तीनों नरक को जाते हैं।

( अंगिरा )

जो बारहवें वर्ष में कन्या का विवाह नहीं करता उस कन्या के जो मास मास में ऋतु धर्म द्वारा शोणित प्रस्रवित होता है उस शोणित को उस के पितर स्वयं पीते हैं। बारह वर्ष की कन्या होने के पश्चात् जो वर ब्राह्मण कन्या से विवाह करता है, वह मदमोहित है। उस के साथ में कभी बोलना न चाहिये। उस को पंक्ति में भोजन न खिलाना चाहिये। उस को वृषली पति समझो। ( पाराशर )

कन्या को ऋतुमती होने से पहिले विवाह दे और कन्या के अष्टम वर्ष में विवाह करना बहुत ही श्रेष्ठ है ( संवर्त )

पति के बिना कन्या की जितनी ऋतुयें बीतती हैं उतनी ही भ्रूण हत्या का पाप उस को लगता है, जो ऋतु काल से पहिले कन्या का विवाह नहीं करता ( नारद )

बारह वर्ष तक बिना व्याही हुई कन्या के घर में रहने से उस कन्या के माता पिता को ब्रह्म हत्या लगती है। इस के पश्चात् कन्या को स्वयंवर द्वारा विवाह करने का हक़ है ( यम )

उत्तर—आप की ये संपूर्ण स्मृतियां तथा उन के श्लोक वेद विरुद्ध होने से कपोलकल्पित और मिथ्या हैं। क्यूँकि वेद स्त्री तथा पुरुषों को जवान आयु में विवाह करने की आज्ञा देते हैं—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥

( अथर्व० ११। ५। १८ )

भाषार्थ—ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य्य से युक्त जवान पति को प्राप्त होती है। फिर वेद कहता है कि—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः।
स शुक्रेभिःशिक्वभिरेवदस्मे दीदायानिध्मोघृतनिर्णिगप्सु ॥

ऋ० २। ३५। ४॥

भाषार्थ—जो उत्तम ब्रह्मचर्य्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध जवान कन्यायें जैसे जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं। वैसे हम को प्राप्त होने वाली उस ब्रह्मचर्य्य और विद्या से परिपूर्ण शुभ लक्षण युक्त जवान पति को अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं। वह ब्रह्मचारी शुद्ध गुण और वीर्य आदि से युक्त होके हमारे मध्य में अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे। जैसे अन्तरिक्ष वा समुद्र में जल को शोधन करने हारा आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है। इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रह कर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥४॥

मनुस्मृति भी इसकी ताईद करती है—

त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेतकुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वंतु काला देतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०॥

( मनु० ९ )

भाषार्थ—कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इस से पूर्व नहीं।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८६॥
( मनु० ९ )

चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त कुमारे रहें और कन्या ऋतुमती भी घर रहे परन्तु गुणहीन के साथ कभी भी विवाह न करना चाहिये अर्थात् सदृश गुण कर्म स्वभाव वालों का ही विवाह होना योग्य है। और फिर सुश्रुत इस को विस्तृत रूप से वर्णन करता है कि—

ऊन षोडश वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥४७॥
जातोवा न चिरंजीवेद्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥४७॥
( सुश्रुत शारीरक स्थान अ० १० )

भावार्थ—सोलह वर्ष से न्यून वय वाली स्त्री में; पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रह कर उत्पन्न नहीं होता ॥४७॥ अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिर काल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। इस कारण से अति बाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भस्थापन न करे ॥४८॥ आप की स्मृतियों के प्रमाण वेद विरुद्ध होने से निष्फल ही हैं। क्योंकि—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहिताः स्मृताः ॥९५॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतो ऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९६॥
(मनु० १२)

भाषार्थ—जो स्मृतियें वेद से विरुद्ध हैं और भी जो कोई कुशिक्षा देने वाले ग्रन्थ हैं वे सब के सब संसार विषयक तथा परलोक विषयक निष्फल हैं क्योंकि वे अज्ञान में स्थित हैं ।९५।

जो वेद से बाहर स्मार्त ग्रन्थ हैं वे चाहे जो कोई हों पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं । वे सब नवीन कालिक होने के कारण निष्फल और झूठे हैं ।। ९६ ।।

इस असूल के अनुकूल आपके दिये प्रमाणों तथा स्मृतियों की गति वेद विरुद्ध होने से निष्फल तथा असत्य है। इसके अतिरिक्त इन प्रमाणों के अन्दर स्वयं असम्भव तथा परस्पर विरोध दोष है।

( १ ) आपने अर्थ करते हुए आठ तथा नौ वर्ष की लड़की का नाम भी कन्या ही माना है । फिर गौरी और रोहिणी संज्ञा कहां गई और कन्या संज्ञा में क्या विशेषता हुई।

( २ ) मनु० ९ ।८९ में "कन्यर्तुमत्यपि" कह कर मरने तक ऋतु मती की भी कन्या ही संज्ञा मानी है । जब प्रत्येक अवस्था में लड़की का नाम कन्या है तो आपकी संज्ञायें व्यर्थ हुईं ।

( ३ ) "रजो दर्शन के खून को प्रत्येक मास में पितर पीते हैं।" क्या यह भी कोई स्वधा पदार्थ है । और इस में पितरों का क्या कसूर । आपने पितरों की भी अच्छी दुर्गति बनाई ।

( ४ ) उधर तो आप बारह वर्ष की कन्या के साथ शादी

करने वाले ब्राह्मण को पंक्ति से ख़ारिज करने की धमकी देते हैं उधर बारह वर्ष से पीछे कन्या को स्वयंवर रीति से विवाह की आज्ञा देते हैं ।

( ५ ) उधर तो मनु जी ९ । ८९ में माता पिता को आज्ञा देते हैं कि कन्या को अयोग्य वर से न विवाहा जावे, चाहे कन्या मरने तक कुमारी रहे उधर विवाह न करने वाले को नारकी ब्रह्महत्यारा और गर्भघातक बतलाया जा रहा है ।

इत्यादि हेतुओं से ये समस्त श्लोक अत्यन्त दूषित हैं । अतः इन स्मृतियों का कथन कि "ऋतुमती होने से पहिले कन्या की शादी करे" वेद तथा युक्ति विरुद्ध होने से अधर्म्म है। तथा वेद की आज्ञा कि "ब्रह्मचर्य से युक्त जवान लड़की का ब्रह्मचर्य से युक्त जवान लड़के से विवाह हो" धर्म्म है ।

(३११) प्रश्न—और भी प्रमाण पढ़िये ।

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्म्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥
( मनु० ९ )

भाषार्थ—तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की मनोहर कन्या के साथ व्याह करे अथवा चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या को विवाहे । वह शीघ्र ही धर्म में दुःख पाता है । पृ० ३३७ मं ११

उत्तर—श्रीमान् जी यह श्लोक तो हमारी ही ताईद करता है कि जो आदमी ३० वर्ष की आयु में बारह वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष वाला ८ वर्ष की कन्या से विवाह करेगा वह गृहस्थ धर्म में शीघ्र ही दुख पावेगा ॥ क्योंकि वेद से विरुद्ध

काम का नाम पाप होता है और पाप का फल दुःख है। जब वेद जवान आयु में लड़का लड़की के विवाह की आज्ञा देता है तो कम आयु में शादी करने वाला अवश्य ही दुःख पावेगा इस में संदेह ही क्या है। क्यूंकि वेद की आज्ञा है कि—

आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवा नाममुरत्वमेकम् ॥

ऋ० ३। ५५। १६॥

भाषार्थ—जो दुही नहीं हैं ऐसी गौवों की तरह अविवाहित बालकावस्था से रहित सब उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करने वाली कुमारावस्था को उल्लंघन कर यौवनावस्था को प्राप्त होती हुई नवीन नवीन शिक्षा से युक्त विद्वानों द्वारा दिये गये विज्ञान को प्राप्त पूर्ण शिक्षित युवतियां गर्भ धारण करें॥ १६॥ इस से साबित है कि वेद स्त्रियों का युवावस्था में विवाह होना मानता है, बालावस्था में नहीं।

(३१२) प्रश्न—जो द्विज चौबीस वर्ष की अवस्था में वेदाध्ययन छोड़े उस को आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करना योग्य है। क्योंकि वेदाध्ययन छोड़ने से दूसरे दिवस ही अग्निहोत्र लेना पड़ेगा और अग्निहोत्र विना स्त्री के होता नहीं इस कारण आठ वर्ष की कन्या से विवाह होना शास्त्र ने लिखा है। इस बात को मनु ने भी स्पष्ट कर दिया है। तीस वर्ष की अवस्था में जो वेदाध्ययन छोड़े वह बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे। पृ० ३३७ पं० १७

उत्तर—कहिये महाराज! क्या ब्रह्मचारी अध्ययन अवस्था में अग्निहोत्र नहीं करता जो उसे वेदाध्ययन छोड़ने पर दूसरे ही दिन अग्निहोत्र लेना पड़ता है। यह आपकी बात कृतई

बनावटी है । जब ब्रह्मचर्य अवस्था में बिना स्त्री के अग्निहोत्र कर सकता है तो अध्ययन छोड़ने पर अकेले को अग्निहोत्र करने में क्या मनाही है। और जो भीष्म की भांति आयु भर ब्रह्मचारी रहना चाहे, क्या उसे स्त्री के बिना अग्निहोत्र करना मना होगा। देखिये—

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम् ।
आसमावर्तनात्कुर्यात् कृतोपनयनो द्विजः ॥ १०८ ॥
( मनु० २ )

भाषार्थ—उपनयन करने से लेकर समावर्तन संस्कार तक द्विज को चाहिये कि वह अग्निहोत्र भिक्षाचरण नीचे सोना और गुरु का हित करता रहे ॥ १०८ ॥ अतः आप को यह प्रतिज्ञा तो निराधार है। क्यूंकि ब्रह्मचारी को हर हालत में बिना स्त्री के अग्निहोत्र करने का हक़ है।

आपका यह लिखना कि "अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं" स्त्री को अग्निहोत्र यज्ञ तथा वेदाध्ययन का अधिकार सिद्ध करता है।

फिर यदि आप की बात मान भी ली जावे कि "वेदाध्ययन छोड़ने पर अग्निहोत्र लेने के लिये स्त्री से विवाह करना ज़रूरी है" तो तीस वर्ष वाला बीस वर्ष की कन्या से तथा चौबीस वर्ष वाला सोलह वर्ष की स्त्री से विवाह कर सकता है। यह क्या ज़रूरी है कि बारह और आठ वर्ष की स्त्री से ही विवाह करे। और इस में क्या प्रमाण है। जब वेद युवा तथा युवती का ही विवाह होना बताता है। तो बालकावस्था का विवाह वेद विरुद्ध होने से पाप तथा दुःख का कारण है ।

जैसा कि मनु ने स्पष्ट लिख दिया है कि "तीस वर्ष का बारह वर्ष की से तथा चौबीस वर्ष वाला आठ वर्ष की कन्या से विवाह करके गृहस्थ धर्म्म में दुःख पाता है"। आप का इस श्लोक से यह भाव निकालना क़तई ग़लत है कि "जो तीस वर्ष वाला बारह वर्ष से कम आयु वाली कन्या से या चौबीस वर्ष वाला आठ वर्ष से कम आयु वाली कन्या से विवाह करेगा वह गृहस्थ धर्म में दुःख पावेगा, अपितु वही अर्थ ठीक है जो हम ने किया है। क्यों कि बारह तथा आठ वर्ष की आयु में भी कन्या का विवाह करना वेद विरुद्ध होने से पाप है। जैसे—

अपश्यंत्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्येनाधमानाम्।
उपमामुच्चा युवतिर्भूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्र कामे॥
ऋ० १०। १८३। २॥

भाषा—हे वधू! सौंदर्ययुक्त अपने शरीर का ऋतु कालीन संयोग चाहती हुई तुझ को मैं मन से चाहता हूं। हे सन्तान चाहने वाली वधू! अत्यन्त तरुणावस्थासम्पन्न तू मुझे विवाह द्वारा प्राप्त कर और और सन्तानोत्पत्ति कर॥ २॥

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि जवान स्त्री उस समय शादी करे जब वह ऋतु स्नाता हो कर पुत्र की कामना से गर्भ धारण करने को तय्यार हो। बारह तथा आठ वर्ष की कन्या उक्त प्रकार की होती ही नहीं। अतः आठ तथा बारह वर्ष की लड़की की शादी वेद विरुद्ध होने से पाप है।

११३ ( प्रश्न ) शास्त्र कन्याओं का विवाह थोड़ी उम्र में

और पुरुषों का विवाह अधिक उम्र में लिखता है। पृ० ३३७ पं० २०

उत्तर—"ब्रह्मचर्य्येण कन्या" इत्यादि वेद के मंत्रों में स्पष्ट वर्णन है कि जवान कन्या जवान पति से ही शादी कर सकती है। वह वृद्ध से या अयुवा से नहीं कर सकती। जैसा कि आपके शास्त्रों में भी वृद्ध विवाह की निन्दा लिखी है।

न श्रेयसे नीयते मन्द बुद्धिः
स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा।
ध्रुवं न रोचेद्भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टि वर्षः ॥ १५ ॥
( महा० सभा० अ० ६३ )

भाषार्थ—वह मन्द बुद्धि दुर्योधन कल्याण की तरफ नहीं ले जाया जा सकता जैसे वेदपाठी की दुराचारणी स्त्री। और दुर्योधन धृतराष्ट्र की बात को वैसे ही नहीं मानता जैसे कुमारी साठ व[ष] के बुड्ढे को पति बनाना नहीं चाहती ॥१५॥

जब वृद्ध पिप्पिलाद ने अनरण्य राजा से युवती पद्मा को भार्यार्थ मांगा तो—

रुरोद राजा स गणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम् ॥ २० ॥
राजा सर्वान् परित्यज्य दत्वा वृद्धाय चात्मजाम्।
ग्लानिं चित्ते समाधाय जगाम तप सेवनम् ॥ ३३ ॥
तद्भार्योपि वनं याते प्राणनाथे तदा गिरे।
मर्तुश्च दुहितु श्शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ॥ ३४ ॥
( शिव० रुद्र० पार्वती अ० ३४ )

भाषार्थ—राजा ब्राह्मण को बूढ़ा देख कर रो पड़ा ।२०।

राजा वृद्ध को कन्या देकर तथा सब कुछ त्याग करके चित्त में ग्लानि को धारण करके वन को चला गया ॥ ३३ ॥

उसकी स्त्री भी पति के वन जाने पर पति तथा पुत्री के शोक से प्राणों को छोड़ गई ॥ ३४ ॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि वृद्ध विवाह को शास्त्र अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसलिये आपकी यह प्रतिज्ञा कि पुरुषों का विवाह अधिक आयु में ठीक है। कतई वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध है। और जवान लड़की का जवान पति से ही विवाह वेद शास्त्र सम्मत है।

३१४ ( प्रश्न ) शास्त्र ने यह भी लिखा है कि स्त्रियों का विवाह यदि अधिक उम्र में किया जाये तो रजस्वला होने के पहिले हो, इसके बाद शास्त्र सम्मत नहीं। भारत वर्ष में गर्मी सरदी की अधिकता और न्यूनता से देश भेदानुसार कन्या रजस्वला शीघ्र और देर में होती है। अतः समस्त देशों में रजस्वला होने से पहिले ही विवाह की विधि है। पृ० ३३७ पं० २१

उत्तर—आप के समस्त लेख का सार यह है कि अधिक से अधिक कन्या का विवाह रजस्वला होने से पूर्व हो जाना चाहिये। किन्तु यह आपकी प्रतिज्ञा वेद तथा शास्त्रों के अत्यन्त विरुद्ध है। क्योंकि विवाह का एक बड़ा भारी प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। और वह रजस्वला होने से पहिले हो नहीं सकता। अतः ऋतुकाल से पूर्व विवाह का करना व्यर्थ है। देखिये—

इहैव स्तंमाव्यौष्टंविश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वेगृहे ॥ २ ॥

ऋ० ८ । ३ । २८

भाषार्थ—विवाहित स्त्री पुरुषों के लिये ईश्वर की आज्ञा है कि तुम दोनों गृहस्थ आश्रम के शुभ व्यवहारों में रहो। विरोध करके अलग कभी मत हो। संपूर्ण आयु को सुख से भोगो। अपने घर में आनन्दित होके पुत्र और पौत्रों के साथ नित्य धर्म पूर्वक क्रीडा करो॥ २॥

इस से साफ साबित है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। जो रजस्वला होने से पहिले सिद्ध नहीं हो सकता। अतः रजस्वला होने से पूर्व विवाह करना वेद विरुद्ध तथा निष्प्रयोजन है।

(३१५) प्रश्न—विवाह अन्य जातियों की भाँति स्त्री-सुख का साधन नहीं। क्यूंकि धर्म्मशास्त्रों ने इस को संस्कार और भुक्ति मुक्ति का दाता माना है। पृ० ३३७ पं० २६।

उत्तर—श्रीमान् जी! भुक्ति के क्या अर्थ हैं। कहीं इसके अर्थ स्त्री सुख तो नहीं। खैर, आप ने विवाह के एक बड़े प्रयोजन का ज़िकर ही नहीं किया। लीजिये हम आपको विवाह के प्रयोजन बतलाते हैं—

प्रजनार्थं महाभागाः॥ मनु० ९। २६॥
उत्पादनमपत्यस्य॥ मनु० ९। २७॥
अपत्यं धर्म कार्य्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह॥ २८॥
(मनु० ९)

भाषार्थ—सन्तान पैदा करना स्त्रियों की महाभाग्यता है॥ २६॥ सन्तान का पैदा करना विवाह में प्रयोजन है॥ २७॥ सन्तान पैदा करना, धर्म के काम सेवा तथा उत्तम रति अपना

और पितरों का सुख स्त्री अर्थात् विवाह के आधीन है ॥ २८ ॥

३१६ ( प्रश्न )—पुरुष के उपनयन संस्कार का अष्टम वर्ष से आरम्भ होकर द्वादश वर्ष तक समय रहता है । स्त्रियों के उपनयन संस्कार है नहीं। किन्तु उपनयन संस्कार के स्थान में विवाह संस्कार है। इस कारण स्त्रियों के विवाह का समय पुरुषों के उपनयन के होने से मिलता जुलता रक्खा है और यही शास्त्रों का अभिप्राय भी है । पृ० ३३८ पं० २।

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा ग़लत है कि स्त्री के यज्ञोपवीत नहीं है। क्यूंकि वेद कहता है कि "भीमाजाया ब्राह्मणस्योपनीता" इस मंत्र में स्त्री को यज्ञोपवीत की आज्ञा है ( देखो नं० २९८ ) जब स्त्री को उपाध्याया आचार्य्या तथा ऋषि बनने और यज्ञ का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं है। अतः आपकी इस प्रतिज्ञा के खण्डन से आप के सारे ताने बाने का खण्डन हो गया। यद्यपि आपका संपूर्ण लेख वेद विरुद्ध है तथापि आप के लेखानुसार भी कन्या के विवाह का समय ५ से २४ वर्ष तक सिद्ध हो जाता है। जिससे आप की दोनों मर्यादायें कि "ऋतु के पीछे शादी करने वाला नारकी ब्रह्म हत्यारा और गर्भ घातक होता है" तथा "आठ तथा बारह वर्ष से पूर्व विवाह करने वाला गृहस्थ में दुख पाता है" खंडित हो जाती हैं। क्यूंकि यज्ञोपवीत का समय ५ से २४ वर्ष तक है जैसे—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे ।
राज्ञोबलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥
आषोडषाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।

आद्वाविंशात् क्षत्रबंधोराचतुर्विंशतेविशः ॥ ३८ ॥
( मनु० २ )

भाषार्थ—ब्रह्म तेज की कामना वाले ब्राह्मण का पांचवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो। बल की कामना वाले क्षत्रिय का छठे और धन की कामना वाले वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो ॥ ३७ ॥ सोलह वर्ष तक ब्राह्मण की सावित्री अर्थात् यज्ञोपवीत का समय अतिक्रमण नहीं होता। क्षत्रिय का बाईस वर्ष तथा वैश्य का चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत का समय अतिक्रमण नहीं होता अर्थात् ज़ाइदुलमियाद नहीं होता ॥ ३८ ॥ इस से स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत ५ वर्ष से २४ वर्ष तक किया जा सकता है। अतः आप के मत में कन्या का विवाह भी पांच वर्ष से चौबीस वर्ष की आयु तक किया जा सकता है। चूंकि वेद कन्या का विवाह युवावस्था में करने की आज्ञा देता है। और युवावस्था सोलह से पूर्व कन्या की होती नहीं। अतः सोलह से कम आयु में कन्या का विवाह वेद विरुद्ध होने से निषिद्ध तथा १६ वर्ष से २४ वर्ष तक वेदानुकूल होने से ठीक है। वाहवाह, कैसी बढ़िया बात हुई।

"आप अपने जाल में सय्याद आ गया"

३१७ ( प्रश्न )—शास्त्रों ने यह काल विवाह काल नियत किया है। यह सहवास काल नहीं। सहवासकाल स्त्री की सोलह वर्ष की अवस्था से पाया जाता है। पृ० ३३८ पं० ७

उत्तर—अजी महाराज! जिन का नाम आप ने शास्त्र मान रखा है। उन की तो चुप ही भली है। आप के शास्त्रों में तो इसी अवस्था में सन्तानोत्पत्ति होने की भविष्य वाणी मौजूद है। ज़रा देखिये—

सप्तवर्षाष्टवर्षाचस्त्रियो गर्भधरानृप ॥ ६० ॥
दश द्वादश वर्षाणां पुंसाँ पुत्रः प्रजायते ॥ ६१ ॥
( महा० वन० अ० १८८ )

पंचमे वाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते ॥ ४६ ॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा ॥ ५० ॥
( महा० वन० अ० १९० )

भाषार्थ—सात तथा आठ वर्ष की स्त्रियें गर्भधारण करने वाली होंगी ॥ ६० ॥ दश तथा बारह वर्ष के पुरुषों के पुत्र पैदा होंगे ॥ ६१ ॥ पाँचवें या छठे वर्ष में कन्या प्रसूता बनेगी ॥ ४६ ॥ सात वा आठ वर्ष के पुरुष औलाद पैदा करेंगे ॥ ५० ॥

यह तो है आपके शास्त्रों की अवस्था जिन की कोई एक सम्मति ही नहीं है। अतः इनकी बात तो रहने दीजिये। आपने विवाह काल में तथा सहवास काल में जो अन्तर रक्खा है। इस में कोई प्रमाण नहीं दिया। क्या कोई शास्त्र विवाहकाल और सहवासकाल में आठ वर्ष वा चार वर्ष का अन्तर मानता है। यदि कोई प्रमाण हो तो पेश करो। वरना आप के हां तो विवाह पद्धतियों के साथ स्थान स्थानमें चतुर्थी कर्म की विधि दी है। जिसके अर्थ हैं चौथी रात्री में गर्भाधान संस्कार करना—

## अथातश्चतुर्थी कर्म ॥ १ ॥

'अथ' अनन्तरम्, 'अतः' इत आरभ्य 'चतुर्थीकर्म विवाह रात्रितः चतुर्थ्यांतिथौ करणीयम् वच्मीतिशेषः ॥ १ ॥ (सामाश्रमी)

भाषा—अब चतुर्थी कर्म जो विवाह की रात से चतुर्थी तिथि को होता है कहता हूं ॥ १ ॥

उद्ध्वंत्रिरात्रात् संभव इत्येके यदर्त्तुमतोभवत्युपरतशोणिता तदा संभव काल: ॥ ७, ८ ॥

भाषार्थ—विवाह रात्री से तीन रात्री ब्रह्मचर्य्य में व्यतीत कर चौथी रात्री में स्त्री प्रसंग करे। यह कई एक आचार्य्यों का मत है। गोभिल के मत से नवोढा पत्नी पति के घर पर आने से पुनः ऋतुमती होने पर जिस समय उसका शोणित वेग कम होगा वही पति के घर पर प्रकाशित आद्य ऋतु प्रथम संगम काल होगा ॥ ७-८ ॥

( गोभिलगृह्यसूत्र प्र० २ खं० ५ सू० १-८ )

तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम् ॥ ७ ॥

एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण तां वधूं उदुह्य विवाहयित्वा विवाह कर्मणा भार्यात्वं संपाद्य यथर्तु प्रवेशनम् ऋतु काल मृतु काल प्रवेशनमभिगमनं कुर्यादिति शेष: ॥

( भास्कर गृह्य सूत्र एकादश कंडिका हरिहर भाष्य )

भाषार्थ—इस प्रकार से विवाह करके प्रत्येक ऋतु काल में उसके साथ समागम करे ॥ ७ ॥

अत: ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं ॥ ७ ॥

( आश्वलायन० १।८।११ )

भाषा—विवाह के तीन रात या बारह रात्री के पीछे समागम करें ॥ ११ ॥

गृह्यसूत्रेषु तावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयीयाताम् ॥ ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् संभव: । तथा च स्मृतय: —

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
एकत्वमागता भर्तु: पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥

( निरुक्त पं० शिवदत्त शर्म्मा महामहोपाध्याय कृत टिप्पणी "कुहस्विद् दोषा" इत्यादि पर पृ० २२२-२२३ )

भाषार्थ—गृह्य सूत्रों में आता है कि स्त्री और पुरुष दोनों विवाह से लेकर तीन रात खारा तथा नमकीन न खाते हुए ब्रह्मचारी रह कर इकट्ठे पृथिवी पर सोयें। तीन रात पीछे समागम करें। और स्मृतियें कहती हैं कि विवाह से निवृत्त होने के पीछे चौथे दिन रात्री को पति के साथ पिंड गोत्र तथा सूतक में एक हो जाती हैं।

यह हम ने चतुर्थी कर्म का नियम दिखलाया कि विवाह से चौथी रात्रि में गर्भाधान का विधान गृह्य सूत्रों में मौजूद है। इसी विधि के अनुसार शिवजी ने हिमाचल के घर में ही पार्वती का गर्भाधान संस्कार किया। जैसा कि—

चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थी कर्म शुद्धितः।
बभूव विधिविद्येन विना खंडित एव सः ॥ २१ ॥
( शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ५३ )

भाषार्थ—चतुर्थी कर्म की शुद्धि से चौथा दिन आने पर बिना किसी नियम के भोग किये विधि पूर्वक शिव ने पार्वती से समागम किया ॥ २१ ॥

पांच पांडवों के द्रौपदी के साथ पांच दिन में फेरे हुए। प्रत्येक रात्रि में उसके साथ प्रत्येक का समागम हुआ। जैसे—

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा
वरस्त्रियस्ते जगृहुस्तदा करम्।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो
महारथाः कौरव वंशवर्द्धनाः ॥ १३ ॥

इदं च तत्राद्भुत रूपमुत्तमं
जगाद देवर्षिरतीव मानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा
बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ॥ १४ ॥

( महा० आदि० अ० १९४ )

भावार्थ—इसी सिलसिले से पांडव पुत्रों ने उस उत्तम स्त्री द्रौपदी के हाथ को एक एक दिन में ग्रहण किया। वे पांडव उत्तम रूप के धारण करने वाले महारथी तथा कौरवों के वंश की वृद्धि करने वाले थे ॥१३॥

उस में एक अद्भुत बात अति उत्तम रूप से देव ऋषि ने कही जो मनुष्यों के ज्ञान से अतीत थी कि वह महानुभाव युवता सुन्दरी द्रौपदी प्रत्येक दिन के गुजरने पर कन्या ही हो जाती थी ॥१४॥

हम पहिले लिख आये हैं कि कन्या का अर्थ अक्षत योनि है। ऊपर के श्लोकों से साफ साबित है कि जब द्रौपदीके पांच दिन में पांचों से फेरे हुए। तो प्रत्येक दिन में जिस के साथ फेरे होते थे वही रात्री में द्रौपदी के साथ समागम कर के उस के कन्यात्व को नष्ट कर देता था। तभी तो महाभारतकार को लिखना पड़ा कि वह प्रत्येक दिन में कन्या ही हो जाती थी। यदि उस का कन्यात्व समागम से खण्डित न किया जाता तो यह लिखने की क्या आवश्यकता थी कि वह प्रति दिन कन्या ही हो जाती थी।

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से यह साबित है कि चतुर्थी कर्म अर्थात् गर्भाधान विवाह का आवश्यक अङ्ग है। अतः ऐसे

समय में विवाह होना चाहिये जब कन्या गर्भाधान के योग्य हो। और वह समय १६ वर्ष है। अतः सिद्ध हुआ कि कन्या का विवाह कम से कम १६ वर्ष की आयु में होना चाहिये। अतः आप का विवाह काल तथा सहवास काल में ४ वा ८ वर्ष का अन्तर वेद तथा गृह्य सूत्र आदि ग्रन्थों के बिल्कुल विरुद्ध है।

( चतुर्थी कर्म के अतिरिक्त विवाह के साथ ही गर्भाधान ) ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा जी जब राधा और कृष्ण की शादी करवाकर गये तभी कृष्ण ने राधा का गर्भाधान संस्कार किया जैसे—

गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिता वक्र चक्षुषा ,। १३७ ॥
साददर्श हरेर्वक्त्रंचच्छादव्रीडया मुखम् ॥ १३८ ॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामासवक्षसि ।
चकार शिथिलंवस्त्रंचुम्बनंचचतुर्विधम् ॥ १४८ ॥
शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार काम शास्त्रवित् ॥ १५२ ॥
( ब्रह्मवैवर्त० खंड ४ अ० १५ )

भाषार्थ—ब्रह्मा के चले जाने पर उस राधा देवी ने टेढ़ी आंख से ॥ १३७ ॥ कृष्ण के मुख को देखा तथा लज्जा से मुख छिपा लिया ॥ १३८ ॥ कृष्ण ने उस को हाथ से पकड़कर बगल में बिठा लिया। और उसकी धोती ढीली कर दी तथा उसे चार प्रकार से चूमा ॥ १४८ ॥ काम शास्त्र के जानने वाले कृष्ण ने आठ प्रकार से राधा के साथ शृङ्गार किया ॥ १५२ ॥

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से गांधर्व विवाह करते ही गर्भाधान किया जिस से भरत पैदा हुवा। जैसे कि—

जग्राहविधिवत् पाणावुवास च तयासह।
विश्वास्यचैनां स प्रायादब्रवीच्चपुनः पुनः॥ २०॥
( महा० आदि० अ० ७३ )

भाषार्थ—दुष्यन्त ने शकुन्तला का विधि पूर्वक हाथ ग्रहण किया और वहां पर कण्व के आश्रम में ही उस के साथ सोया और उसको विश्वास दिला कर वह चला और वार वार बोला॥ २०॥

जब पराशर ने सत्यवती से गांधर्व विवाह किया तो किश्ती में उसी समय ही गर्भाधान किया जिस से व्यास जी पैदा हुए। जैसा कि--

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभाव गुण भूषिता।
जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुत कर्मणा॥७६॥
(महा० आदि० अ० ६३)

भाषार्थ—तब वर प्राप्त करके प्रीति से स्त्री के भावों से भूषित सत्यवती उस अद्भुत कर्म वाले पराशर से संसर्ग को प्राप्त हुई॥७७॥

जब सूर्य ने कुन्ती से गांधर्व विवाह किया तो तत्काल ही कुन्ती से उस के बाप के घर में ही गर्भाधान किया जिस से कर्ण पैदा हुआ।

जैसा कि—

एवमुक्त्वा स भगवान् कुन्ति राज सुतां तदा॥७॥
प्रकाशकर्ता तपनः संबभूव तया सह॥१८॥
(महा० आदि० अ० ११९)

भावार्थ—यह कह कर भगवान् प्रकाश करने वाले

सूर्य ने कुन्ती के साथ समागम किया॥ १७-१८॥

इस से साबित है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। अतः कन्या का विवाह ऐसी अवस्था में होना चाहिये जब वह सन्तान उत्पन्न करने के योग्य हो। आठ वा बारह वर्ष की कन्या सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं होती, अतः उस का विवाह व्यर्थ है।

३१८ (प्रश्न)—इतिहास में १६ वर्ष से पहिले भी गर्भ स्थिति हुई है ऐसा भी लेख मिलता है। इस विषय में अभिमन्यु, उत्तरा प्रभृति के अनेक उदाहरण हैं। फिर हम किस तरह से मान लें कि सन्तान कमज़ोर होती है। परीक्षितादि थोड़ी अवस्था के रहने पर भी जो गर्भ में आये वह कमज़ोर नहीं थे। पृ० ३३८ पं० ६।

उत्तर—आप को यह मालूम होना चाहिये कि इतिहास वहीं तक प्रमाण है जहां तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के मुताबिक है, जहां इतिहास वेद तथा वेदानुकूल स्मृति के विरुद्ध होगा वहां वह धर्म के विषय में प्रमाण नहीं हो सकता। यदि युधिष्ठिर ने जुआ खेला तो युधिष्ठिर ने उस का फल पाया, किन्तु वेद विरुद्ध होने के कारण वह धर्म में प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार से ही चूंकि वेद की आज्ञा है कि युवा कन्या नवयुवक से विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे। अतः यदि इतिहास में कोई ऐसे प्रमाण भी हों कि जिन से यह साबित हो सके कि किन्हीं लोगों ने छोटी अवस्था में विवाह करके गर्भाधान संस्कार किया तो भी वे वेद के विरुद्ध होने से धर्म में प्रमाण नहीं माने जा सकते।

अब रही बात अभिमन्यु की तथा उत्तरा कुमारी की। आपने इस बारे में कोई प्रमाण नहीं दिया कि अभिमन्यु तथा उत्तरा कुमारी ने छोटी अवस्था में सोलह वर्ष से पहिले ही विवाह या गर्भ स्थिति की। यद्यपि हमें अभिमन्यु की आयु पर कुछ लिखने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि आप स्वयं पुरुष के विवाह की आयु कम से कम २४ वर्ष मानते हैं। ('० ३११ से ३१३)

तथापि हम आपको बतलाना चाहते हैं कि जब पांडवों को वनवास हुआ तो जंगल में भीम सेन ने युधिष्ठिर के सामने प्रस्ताव पेश किया कि दुर्योधन ने हमारे साथ मक्कारी से काम लिया है। अतः हमें इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं करना चाहिये और अभी दुर्योधन से युद्ध करके उससे अपना राज्य ले लेना चाहिये। आप जो कहते हैं कि प्रतिज्ञा का पालन करना धर्म्म है। तो जहां पर प्रतिज्ञा धर्म्मानुकूल हो उसका पालन करना धर्म्म है। आपकी यह ज़िद्द कि आवश्यक रूप से प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये मैं आपकी इस सम्मति का अनुमोदन नहीं करता और न ही नकुल सहदेव अर्जुन तथा अभिमन्यु अनुमोदन करते हैं। जैसा कि—

नैव धर्म्मेण तद्राज्यं नार्ज्जवेन न चौजसा।
अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै ॥ ३ ॥
भवतः प्रियमित्येवं महद्व्यसन मीदृशम्।
धर्म कामे प्रतीतस्य प्रतिपन्नाः स्म भारत ॥ ८ ॥
यां न कृष्णो न बीभत्सुर्नाभिमन्युर्न सृंजयाः।
नचाहमभिनन्दामि नच माद्री सुता विभौ ॥ १२ ॥

भवान् धर्मो धर्म इति सततं व्रत कर्षितः ।
कश्चिद्राजन्न निर्वेदादापन्नः क्लीब जीविकाम् ॥ १३ ॥
कर्षणार्थो हि यो धर्म्मो मित्राणामात्मनस्तथा ।
व्यसनं नाम तद्राजन् न सधर्मः कुधर्म तत् ॥ २० ॥
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून् समागतान् ।
धार्त्तराष्ट्रं बलं पार्थ मया पार्थेन नाशय ॥५१ ॥
(महा० वन० अ० ३३ )

भाषार्थ—दुर्योधन ने न धर्म से राज्य लिया है और न नम्रता और बहादुरी से लिया है। अपितु द्यूत की धोके बाज़ी से छीन लिया है ॥ ३ ॥

यह इस प्रकार का बड़ा भारी व्यसन आपको प्यारा है। हे युधिष्ठिर ! धर्म काम में हम आपके पीछे लगे हुए हैं ।८।

आपकी इस अवस्था का न कृष्ण न अर्जुन न अभिमन्यु न सृंजय न नकुल और सहदेव तथा न मैं अनुमोदन करता हूं ॥ १२ ॥

आप धर्म धर्म इस व्रत से खिंचे हुए हे राजन् किसी प्रकार से दुख पूर्वक नपुंसकों की जीविका को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १३ ॥

जो धर्म मित्रों तथा अपने दुख देने के लिये हो। हे राजन् उस का नाम व्यसन है, वह धर्म नहीं कुधर्म है ॥ २० ॥

आप धर्म को प्राप्त हों। प्राप्त हुए शत्रुओं को मारें। हे पार्थ दुर्योधन की सेना को आप मेरे तथा अर्जुन द्वारा नाश करें ॥ ५१ ॥

यह वनवास का प्रथम वर्ष है। इस समय कृष्ण अर्जुन

भीम नकुल और सहदेव के साथ साथ अभिमन्यु की राय को भी वज़न दार माना जाता था। इससे पता लगा कि उस समय अभिमन्यु सम्मति देने के योग्य बालिग़ अर्थात् कम से कम १८ वर्ष के लग भग था। वरना उसकी सम्मति को क्यों वज़नदार समझा जाता। इसके १२ वर्ष पीछे अभिमन्यु की शादी होती है। इससे साबित है कि शादी के समय अभिमन्यु कम से कम ३० वर्ष के लग भग आयु में था।

अब रही उत्तरा कुमारी की बात सो इस प्रकार से पता लगेगा कि उत्तरा कुमारी के विवाह प्रस्ताव के समय जब अभिमन्यु की आयु ३० के लग भग थी तो अर्जुन की आयु ५० वर्ष व ५५ से कम क्या होगी। तो जिस उत्तरा कुमारी की शादी के लिये अर्जुन ५० वर्ष आयु वाले से प्रार्थना की जाती है वह अठारह बीस वर्ष से कम नहीं हो सकती। यह हमारा क़यास ही नहीं है। अपितु जब अर्जुन से उत्तरा कुमारी के विवाह का प्रस्ताव किया गया। अर्जुन ने जहां यह कहा कि मैं इस का आचार्य्य तथा पिता के समान हूं, 'वहाँ यह भी कहा कि जवान अवस्था में उत्तरा मेरे पास एक वर्ष एकान्त में रही है' यदि मैं शादी करलूं तो लोग हमारे पूर्व एकान्त वास में भी संदेह करेंगे और आप की बदनामी होगी। इस लिये उसे मैं पुत्रवधू स्वीकार करता हूं।

वयःस्थया तया राजन् सह संवत्सरोषितः।
अति शंकाभवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो॥ ४।
(महा० विराट० अ० ७२)

भाषार्थ—हे राजन् उस आयु आरूढ (उम्र रसीदा)

उत्तरा के साथ मैं एक वर्ष रहा हूं। ऐसे मौके में आप को तथा संसार को प्रति शंका होगी ॥४॥ अर्थात् यदि मैंने इस से शादी कर ली तो लोग कहेंगे कि इन का तो पहले से ही शादी हो रही थी। जब जवान लड़की एकान्त में एक वर्ष तक नाचना गाना सीख रही थी तो क्या ये दोनों आचरण में पवित्र थोड़े ही रहे होंगे। इससे अति स्पष्ट है कि उस समय उत्तरा वयःस्थ अर्थात् यौवन आरूढ़ थी।

इस सारे लेख से सिद्ध हुआ कि अभिमन्यु तथा उत्तरा दोनों ही विवाह के समय युवावस्था में थे। और उन्होंने युवावस्था में ही गर्भाधान संस्कार किया फिर उनकी संतान परीक्षित निर्बल कैसे हो सकता था। हां अत्यंत शोकातुरा होने के कारण उत्तरा के परीक्षित मीयाद से पहिले पैदा हुआ। अतः वह जन्म समय मृतवत् पैदा हुआ जो कृष्ण के उपाय से होश में आया। अतः आपका ऐतिहासिक प्रमाण भी आप की पुष्टि नहीं, करता अपितु हमारी ताईद करता है।

३१६ ( प्रश्न )— इस से भिन्न शास्त्र दृष्टि से सहवास में कन्या की उम्र सोलह वर्षकी ली है। और पुरुषकी पच्चीस वर्षके ऊपर फिर कमज़ोर सन्तान का प्रश्न ही नहीं रहता। पृ०३३८ पं० १३

(उत्तर)—'कुफ़्र टूटा खुदा खुदा कर के' आखिर आप को यह बात माननी ही पड़ी कि 'शास्त्र की दृष्टि में कन्या की आयु १६ वर्ष तथा वर की आयु पच्चीस वर्ष से ऊपर गर्भाधान के लिये ली गई हैं' अब कृपया आप यह बतलावें कि गर्भाधान की योग्यता से पूर्व विवाह करने का क्या प्रयोजन तथा लाभ है। आप के लेखानुसार यदि २४ वर्ष

का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले तथा ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले तो पहिले को सहवास के लिये ८ वर्ष तथा दूसरे को ४ वर्ष का इन्तज़ार करना होगा। क्या इतने वर्ष पूर्व विवाह विधवाओं की संख्या बढ़ाने में कारण तो न बन जायेगा। भला इतने वर्ष पहिले कन्या की आयु को खतरे में डालने से क्या लाभ। हम पहिले सिद्ध कर चुके हैं कि विवाह की चौथी रात्री में गर्भाधान की शास्त्र की आज्ञा है। और आप शादी के पीछे ८ वर्ष तथा ४ वर्ष तक गर्भाधान को रोकते हैं। अतः आपकी कल्पना शास्त्र के विरुद्ध है।

फिर आप के लेखानुसार रजस्वला होने से पहिले कन्या का विवाह करके माता पितादि तो पाप से बच जाते हैं, किन्तु १२ वर्ष से १६ वर्ष तक गर्भाधान की मनाही के कारण वर और कन्या दोनों ही घोर पाप के भागी बनते हैं। जैसे—

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारंनोपसर्पति।
सामतानरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥
ऋतु स्नातां तु योभार्यां सन्निधौनोपगच्छति।
घोरायां भ्रूण हत्यायां युज्यतेनात्र संशयः ॥ १५ ॥
( पाराशर स्मृति अ० ४ )

भाषार्थ—ऋतु से स्नान की हुई जो स्त्री पति के पास नहीं जाती वह मर कर नरक में जाती है और बार बार विधवा होती है ॥ १४ ॥ ऋतु से स्नान को हुई स्त्री के पास जो पुरुष नहीं जाता। वह घोर भ्रूण हत्या के पाप में संयुक्त होता है इस में संशय नहीं है ॥ १५ ॥

इन संपूर्ण दोषों के कारण गर्भाधान की योग्यता से पूर्व अर्थात् कन्या का १६ वर्ष तथा वर का २५ वर्ष से पूर्व विवाह वेद के विरुद्ध तथा महा पाप कारक है। अतः लड़का लड़की का विवाह तथा सहवास दोनों ही युवावस्था में होने वेदानुकूल होने से धर्म्म हैं।

३२० ( प्रश्न )—विवाह के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य तथा ऋतुगमन की पद्धति को लोक में प्रचलित रखा जावे तो फिर यह प्रश्न ही उड़ जाता है। पृ० ३३८ पं० १८

उत्तर—विवाह होने के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य्य यहा है कि वह ऋतु गामी बने जैसे कि—

ऋतुकालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥४५॥

ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥५०॥ (मनु० ३)

भाषार्थ—ऋतु काल के अनुसार स्त्री गमन करने वाला बने। और सदा अपनी स्त्री में ही प्रसन्न रहे परस्त्री गमन न करे ॥४५॥

वह जिस किसी आश्रम में रहता हुआ भी ब्रह्मचारी ही होता है ॥५०॥

और यदि विवाह कराने के पीछे ब्रह्मचारी रहने का आपका यह अभिप्राय हो कि वह ८ वर्ष तक या ४ वर्ष तक स्त्री गमन ही न करे तो यह क़तई ग़लत है। प्रथम तो ऋतु के के अनुसार गमन न करने में स्त्री तथा पुरुष दोनों को पाप होता है। देखो (प्रश्न नं० ३१९) और बिना गर्भाधानके विवाह का और प्रयोजन भी क्या है। देखिये मनु जी क्या कहते हैं कि—

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥९६॥ (मनु०९)

यस्माद् गर्भं ग्रहणार्थं स्त्रियः सृष्टा गर्भाधानार्थं च मनुष्यास्तमाद् गर्भोत्पादनमेवानयोः अग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सह साधारणः, क्षौमे वसानावग्नीनादधीयातां, इत्यादि वेदेऽभिहितः। तस्माद् भार्यां बिभृयादिति पूर्वोक्तस्य शेषः (कुल्लूक)

भाषार्थ--जिस लिये गर्भ ग्रहण के लिये ईश्वरने स्त्रियें बनाईं हैं तथा गर्भ धारण कराने को पुरुष बनाये हैं। इस लिये सन्तान पैदा करना ही इन का अग्नि आधानादि भी धर्म पत्नी के साथ साधारण "क्षौम इत्यादि" से वेद में कहा है। इस प्रयोजन से पत्नी को धारण करे, यह पूर्वोक्त श्लोक का अभिप्राय है ॥९६॥

जब विवाह का मुख्य प्रयोजन ही गर्भाधान संस्कार है तो फिर गर्भाधान की योग्यता से पूर्व विवाह व्यर्थ है। अतः स्त्री पुरुष को विवाह तभी करना चाहिये जब वे गर्भाधान करने के योग्य हो जावें, अर्थात् कन्या कम से कम १६ वर्ष की तथा पुरुष कम से कम २५ वर्ष का होने पर शादी करे और विवाह करते ही गर्भाधानसे सन्तानोत्पत्ति का काम करें। यही वेद शास्त्रों की आज्ञा है।

हां, यह तो सप्रमाण बतलाया होता कि यह द्विरागमन की पद्धति कौन से वेद धर्मशास्त्र वा गृह्य सूत्रों में वर्णन की गई है। हमें तो यह विधि कहीं वेद स्मृति तथा इतिहास में मिली नहीं और न ही इस पर कभी अमल हुआ वर्णन है।

और न ही यह युक्ति युक्त है। हमें तो यह बचपन की शादी का बच्चा प्रतीत होता है जो वेद विरोधी लोगों की कल्पना मात्र है।

(१) विवाह समय राम तथा सीता की आयु--

अश्विनाविव रूपेण समुपस्थित यौवनौ ॥३॥
अतिथि परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥८॥
(बाल्मी० बाल० स० ४८)

पुत्रादशरथस्येमेरूपयौवनशालिनः ॥७॥
(बाल्मी० बाल० स० ७२)

पति संयोग सुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता।
चिन्ता मभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ।३।४)
(बाल्मी० अयो० स० १८)

मम भर्ता महातेजा वयसः पञ्चविंशकः ।११॥
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनिगण्यते ॥१०॥
(बाल्मी० अरण्य० स० ४७)

सर्वं विद्या व्रत स्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ।२०॥
बाल्मी० अयो० स० १)

सम्यग्विद्याव्रत स्नातो यथा वत्सांग वेद वित् ॥३४॥
(बाल्मी० अयो० स० २)

भाषार्थ—यह राम तथा लक्ष्मण अश्विनी कुमारों के सदृश सुन्दर तथा नौजवान हैं ॥ ३ ॥

दशरथ के पुत्र हमारे परम अतिथि प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥

ये दशरथ के पुत्र हैं जो रूप और जवानी से भरपूर हैं ॥ ७ ॥

सीता ने अनुसूया से कहा कि मेरा पिता मेरी आयु को पति के संयोग के काबिल देख कर ऐसे चिन्ता में पड़ गया जैसे निर्धन धन के नाश से चिन्ता में पड़ जाता है ॥ ३४ ॥

मेरा तेजस्वी पति विवाह समय २५ वर्ष की आयु का था और मेरे जन्म को अठारह वर्ष बीते थे यह सीता ने रावण से कहा ॥ १०–११ ॥

राम सर्व विद्याव्रत स्नातक थे तथा अंगों सहित वेद के जानने वाले थे ॥ २० ॥

राम अच्छे प्रकार से विद्याव्रत स्नातक थे तथा अंगों सहित वेद जानते थे ॥ ३४ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि सीता तथा राम का विवाह युवावस्था में हुआ और यहां पर द्विरागमन विधि का ज़िकर तक भी नहीं है ॥

(२) अश्वपति ने अपनी पुत्री सावित्री को स्वयं आज्ञा दी—

तां दृष्ट्वा यौवनं प्राप्तां स्वच्छां तां देव रूपिणीम् ।
उवाच राजा संमन्त्र्य स्मृत्यर्थं सह मंत्रिभिः ॥ १५ ॥
( भविष्य० उत्तर० अ० १०२ )

पुत्री प्रदान कालस्ते न च कश्चिद् वृणोति माम् ।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ ३१ ॥
इदं मे वचनं श्रुत्वा भर्तुरन्वेषणे त्वर ॥ ३५ ॥
महा० वन० अ० २९२

तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धश्च तपोवने ।
सत्यवाननुरूपो मे भर्तेति मनसा वृतः ॥ १० ॥
महा० वन० अ० २९३

भाषार्थ—अश्वपति उस अपनी पुत्री सावित्री को नौजवान स्वच्छ सुन्दरी देख कर अपने मंत्रियों से मशविरा करके बोला ॥ १५ ॥

हे पुत्री तेरा विवाह का समय है और कोई वर मुझे मिला नहीं, इस लिये तू अपने गुणों के सदृश स्वयं पति स्वीकार कर ले ॥ ३१ ॥

मेरा यह वचन सुनकर पति की खोज में शीघ्रता कर ॥ ३५ ॥

पति को खोज कर सावित्री ने कहा कि द्युमत् सेन का पुत्र शहर में पैदा हुआ और वन में जवान हुआ सत्यवान नाम है, यह पति मेरे अनुकूल है, मैंने मन से स्वीकार कर लिया ॥ १० ॥

इस से साबित है कि सावित्री सत्यवान् का विवाह युवावस्था में हुआ। यहां द्विरागमन का नाम तक नहीं।

(३) द्रौपदी तथा अर्जुन का स्वयंवर—

विद्धन्तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा
पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य ।
आदाय शुक्लाम्बर माल्यदाम
जगाम कुन्ती सुतमुत्स्मयन्ती ॥ २८ ॥
सतामुपादाय विजित्य रंगे
द्विजाति भिस्तैरभिपूज्यमानः ।
रङ्गान्निरक्रामदचिन्त्यकर्मा
पन्त्या तया चाप्यनुगम्यमानः ॥ २९ ॥

( महा० आदि० अ० १९० )

भाषार्थ—द्रौपदी ने लक्ष्य बींधा हुआ देख कर और अर्जुन को इन्द्र के समान देख कर श्वेत वस्त्र माला ले कर मुस्कराती हुई अर्जुन के पास चली गई ॥ २८ ॥

मैदान में जीत उसे साथ ले ब्राह्मणों से पूजित उस पत्नी से अनुगम्यमान शूरवीर अर्जुन मैदान से बाहर निकल गया ॥ २९ ॥

यहां पर अर्जुन तथा द्रौपदी का युवावस्था में विवाह हुआ है और विवाह के पश्चात् द्विरागमन का महाभारत में ज़िकर तक नहीं।

(४) नल दमयन्ती का स्वयंवर—

दमयंति ततोरङ्गं प्रविवेश शुभानना ।
मुष्णन्ती प्रभया राज्ञां चक्षूंषिचमनांसि च ॥ ८ ॥
नैषधं वरयामास भैमी धर्म्मेण पांडव ॥ २७ ॥
स्कन्धे देशेऽसृजत्तस्य स्रजं परम शोभनाम् ।
वरयामास चैवैनं पतित्वे वर वर्णिनी ॥ २८ ॥

( महा० वन० अ० ५७ )

भाषार्थ—तब सुन्दरी दमयन्ती मैदान में दाखिल हुई। अपनी कान्ति से वह राजाओं के नेत्रों तथा मनों को हर रही थी ॥ ८ ॥ हे पांडव ! भीम की पुत्री दमयन्ती ने धर्म से निषिध के राजा नल को वर लिया ॥ २७ ॥ और अति सुन्दर माला उसके कंधे पर डाल दी और उस वर की कामना करने वाली ने उसको पतिभाव से वर लिया ॥ २८ ॥

यहां नल और दमयन्ती का युवावस्था में विवाह हुआ और यहां पर द्विरागमन का क़तई बर्णन नहीं है ।

(५) संज्ञा का स्वयंवर—

षोडशाब्दे वयः प्राप्ते संज्ञायास्तत्पितासुखी।
विवाहार्थी सुरान् सर्वानाह्वयन्मेरुमूर्द्धनि ॥ ४ ॥
( भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ १८ )

भाषार्थ— संज्ञा के बाप ने संज्ञा को १६ वर्ष की आयु होने पर सुख पूर्वक उस के विवाह के लिये मेरु पर्वत की चोटी पर बुलाया ॥ ४ ॥

यहां संज्ञा का विवाह युवावस्था में हुआ, यहां पर द्विरागमन का ज़िकर भी नहीं।

इतिहास में इस प्रकार की सैंकड़ों घटनायें मौजूद हैं जिन में कन्या तथा वर ने युवावस्था में विवाह करके सन्तानोत्पन्न की। वहां पर बाल विवाह तथा द्विरागमन का गंध तक भी नहीं है ।

३२१ ( प्रश्न )—"ऊनषोडशवर्षायामित्यादि" सुश्रुत के इन श्लोकों के लिये वेदानुकूलता का झगड़ा क्यू उड़ा दिया गया। वेद में किसी मंत्र में भी यह नहीं लिखा कि गर्भाधान के समय पुरुष की आयु २५ वर्ष और स्त्री की आयु १६ वर्ष की हो। पृ० ३४१ पं० ५।

उत्तर—"ब्रह्मचर्य्येण कन्या" "तमस्मेरा" इत्यादि अनेक वेद मंत्र हैं जो कि स्त्री पुरुष को युवावस्था में विवाह की आज्ञा देते हैं। और विवाह तथा गर्भाधान काल एक ही बात है। चूंकि उपरोक्त श्लोक इन मंत्रों की शिक्षा के अनुकूल ही युवावस्था में गर्भाधान की आज्ञा देते हैं। अतः ये सुश्रुत के श्लोक वेदानुकूल होने से ग्राह्य हैं। धर्म्म के कामों में

वेदानुकूलता की शर्त किसी सूरत में भी नज़रअंदाज़ नहीं की जासकती।

३२२ ( प्रश्न )—"ऊनषोडशवर्षायाम्" इस श्लोक की जगह अनेक पुस्तकों में "ऊन द्वादशवर्षायाम्" पाठ है उस पाठ को स्वामी जी ने क्यूं नहीं लिया। पृ० ३४१ पं० १६।

उत्तर—यद्यपि आपने सुश्रुत के किसी ऐसे पुस्तक का पूरा पता नहीं लिखा कि फलां प्रेस में फलाँ मनुष्य ने जो सुश्रुत का पुस्तक छापा है उस में "ऊनद्वादशवर्षायाम्" पाठ मौजूद है। तथापि यदि कहीं ऐसा पाठ मौजूद भी हो तो भी वह वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के क़ाबिल नहीं है। क्योंकि वेद कन्या को युवावस्था में विवाह की आज्ञा देता है और कन्या को १२ वर्ष की आयु में कोई भी शास्त्र युवती नहीं मानता।

३२३ ( प्रश्न )—इन श्लोकों में विवाह काल कब कहा है। इन में तो गर्भाधान काल है। पृ० ३४१ पं० २३।

उत्तर—हम साबित कर चुके हैं कि विवाह का प्रयोजन ही गर्भाधान है। इसीलिये विवाह के साथ ही शास्त्रों ने चतुर्थी कर्म अर्थात् गर्भाधान की आज्ञा दी है। और गर्भाधान के बिना विवाह निष्प्रयोजन है। अतः इन श्लोकों में गर्भाधान समय का वर्णन ही विवाह समय का वर्णन मानना पड़ेगा।

अथास्मै पंचत्रिंशति वर्षाय द्वादश वर्षां पत्नीमावहेत्।
सुश्रुत॥

३२४ ( प्रश्न ) "विद्या संपन्न पुरुष को जिस की

अवस्था २५ वर्ष की हो उस को बारह वर्ष वाली कन्या विवाहे" यहां पर स्वामी जी ने सुश्रुत के विवाह काल को छिपाया और गर्भाधान काल को विवाह काल बनाया ॥ पृ० ३४२ पं० ३।

उत्तर--आपने उपरोक्त प्रमाण का सुश्रुत का ठिकाना नहीं लिखा। यद्यपि इससे प्रतीत होता है कि उपरोक्त पाठ आपका कपोल कल्पित है। तथापि यह यदि हो भी तो भी वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं माना जा सकता क्योंकि वेद कन्या को युवावस्था में शादी की आज्ञा देता है। और १२ वर्ष की कन्या का नाम युवती है नहीं। दूसरे आपकी प्रतिज्ञा "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्" ( नं० ३११ ) कि "३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह करे" के विरुद्ध तथा धर्म्म शास्त्र के विरुद्ध होने से आपके मत में भी प्रमाण के क़ाबिल नहीं है।

३२५ (प्रश्न)—"एक क्षणा भवेद् गौरी" ठीक ही है। वेद की मिट्टी कूटना स्वामी जी और आर्य्य समाजियों का परम धर्म्म है। पृ० ३४२ पं० १४।

(उत्तर) आर्य्यसमाज और स्वामी जी वेदों को धर्म्म पुस्तक मानते हैं। और उनका पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना तथा तदनुकूल आचरण करना परम धर्म्म मानते हैं। हां वेद विरुद्ध शीघ्रबोधादि ग्रन्थों की मिट्टी कूटना हमारा परम कर्तव्य है। चूंकि "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" यह वेद विरुद्ध ग्रन्थों की कल्पना संसार के लिये हानिकारक थी अतः स्वामी जी ने इसका युक्तियुक्त खंडन करके वेद मत का प्रतिपादन करदिया।

३२६ (प्रश्न)—"सोमो गौरी अधिश्रितः "ऋग्वेद" सोम गौरी का उपभोग करता है। जिस समय कन्या की गौरी संज्ञा होती है। उस समय कन्या के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है। पृ० ३४२ पं० १८।

उत्तर—कहिये महाराज! ऋग्वेद के मंत्र का ठिकाना क्यों दर्ज नहीं किया। क्या यह भय था कि कहीं पोल न निकल जावे। अच्छा देखिये यह पाठ ऋग्वेद मंडल ६सूक्त १२ मंत्र ३ का एक भाग है। यहां पर न तो विवाह प्रकरण है और न ही कन्या की यहां पर गौरी संज्ञा की गई है। इस मंत्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "पवमानः सोमोदेवता" पवित्र करने वाला सौम्य स्वभाव विद्वान् है। और यहां पर गौरी नाम वेद वाणी का है। और इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि सौम्य स्वभाव विद्वान् वेद वाणी का आश्रय लेता है। इस का यही अर्थ आप के भाष्यकार सायणाचार्य करते हैं, जैसे—

'सोमो गौरी अधिश्रितः, ऋ० ६। १२। ३।

विपश्चित् विद्वान् सोमो गौरी अधि। अधीति सप्तम्यर्थानुवादः। माध्यमिकायांवाच। गौरी गांधर्वीति वाङ् नामसु पाठात्। श्रितो मिश्रयति "सायण"

भाषार्थ—सौम्य स्वभाव विद्वान् वाणी में आश्रय करता है। ३।

कहियेगा महाराज! जब सोम गौरी नाम की कन्या से आप के विचार में भोग कर लेता है। तो फिर उसका कन्यापन तो नाश हो जाता होगा। फिर विवाह की क्या ज़रुरत बाकी रहती है। शोक शत शोक है आप लोगों की बुद्धि पर जो

पक्षपात में डूबे हुवे वेद मंत्रों का अनर्थ कर के जनता को धोका दे रहे हैं। और गौरी रोहिणी आदि कल्पित संज्ञायें कन्याओं की रख कर वेद के सिर मढ रहे हैं। परमात्मा आप को सुमति प्रदान करें।

३२७ ( प्रश्न )—"उत्कृष्टायाभिरूपाय" इस श्लोक में कन्या का विवाह कन्या के आधीन नहीं किंतु अन्य के आधीन लिखा गया है। इसी प्रकार "काममामरणात्तिष्ठेत्" इस श्लोक में भी अयोग्य पुरुष के साथ कन्या का विवाह न करना सिद्ध करता है कि कन्या का विवाह करना किसी अन्य के आधीन है। "यस्मैदद्यात्" मनु के इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि कन्या का विवाह कन्या का पिता या भ्राता करे यदि ये दोनों कन्या का विवाह न करें "तत्र त्रीणिवर्षाणि" यह श्लोक है। मनु का अभिप्राय यह है कि आठ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक कन्या का विवाह उसके पिता या भाई आदि अवश्य करदें। यदि वह न करें तो ऋतु काल होने के पश्चात् तीन वर्ष तक कन्या प्रतीक्षा करे, पश्चात् किसी के साथ विवाह करले। पृ० ३४३ पं० १।

उत्तर—समस्त शास्त्रों का अभिप्राय यह है कि विवाह में मुख्य प्रयोजन वर तथा कन्या का है। अतः विवाह के बारे में मुख्य सम्मति वर और कन्या की ही होगी। हां, मां बाप भाई आदि की सम्मति भी गौण रूप से मानी जावेगी। जहां पर वर कन्या माता पिता भाई आदि की सर्व सम्मति हो वहां तो कोई झगड़ा ही नहीं है। जहां पर कन्या का माता पिता वा भाई से मतभेद हो वहां पर कन्या की सम्मति को मुख्य माना जाना चाहिये। माता पिता भाई आदि को उसमें रुकावट

डालने का हक नहीं है। अतः शास्त्रों में जहां जहां यह वर्णन आता है कि वर वा कन्या का विवाह माता पिता भ्राता आदि के आधीन हो वहाँ पर शास्त्र का अभिप्राय सर्व सम्मति से होने का है। वहां यह अभिप्राय नहीं है कि कन्या के विरोध करने पर भी माता पिता भाई आदि उसका विवाह कर सकते हैं। और जहां जहां कन्या को स्वयंवर से विवाह की आज्ञा है वहां वहां शास्त्र का यह अभिप्राय है कि विवाह में मुख्य सम्मति कन्या की है और माता पिता आदि भी सहमत हैं अथवा मत-भेद होने पर कन्या की सम्मति ही मानी जावे माता पिता आदि की नहीं। इसी बात को वेद ने "ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस मंत्र से वर्णन किया। और इसी मंत्र की तशरीह करते हुए मनु धर्म्म शास्त्र ने ब्रह्मचर्य्यकाल नियत करने के लिये और कन्या की युवावस्था बतलाने के लिये "त्रीणिवर्षाण्यु इत्यादि" श्लोक से बतला दिया कि रजस्वला होने से तीन वर्ष पीछे युवावस्था होती है। इसको अति स्पष्ट करने के लिये सुश्रुत ने "ऊनषोडशवर्षायाम्" इस के द्वारा नियम कर दिया कि १६ वर्ष से पूर्व कन्या तथा २५ वर्ष से पूर्व पुरुष विवाह तथा गर्भाधान न करें। इस की विशेष पुष्टि हेतुदेकर महाभारत ने कर दी कि—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती।
चतुर्थेत्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत्॥ १५॥
प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ।
अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः॥ १६॥

(महा० अनुशासन० अ० ४४)

भाषार्थ—कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष एक प्रतीक्षा करे, चौथा वर्ष प्राप्त होने पर स्वयंवर से पति प्राप्त करे ॥ १५ ॥ उसकी सन्तान न मरेगी तथा उसकी रति भी क्षीण न होगी। इस से विपरीत करने पर परमात्मा से निन्दित होगी ॥ १६ ॥

इस असूल के अनुसार सीता द्रौपदी दमयन्ति तथा सावित्री आदिके स्वयंवर सर्वसम्मतिसे हुए उनमें मुख्य सम्मति सीता द्रौपदी दमयन्ती तथा सावित्री की पति चुनाव में मानी गई। माता पिता भाई आदि की इस में सहमति थी। किंतु रुक्मणी हरण सुभद्रा हरण संयोगिता हरण आदिमें कन्याओं की सम्मति थी, माता पिता भाई आदि की सम्मति न थी। परन्तु कन्या की सम्मति को मुख्य मानते हुए इन विवाहों को पाप नहीं माना गया। चूंकि मनुधर्म शास्त्रकी यह आज्ञा है कि—

*असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।*
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ मनु० ३)

भाषार्थ—जो लड़की पिता के गोत्र की न हो और माता तथा पिता की छः पुश्त तक जिसका सिलसिला खानदान न मिलता हो, उस लड़की से शादी की जावे ॥ ५ ॥ अतः मनु ने यह बतलाया कि यदि कोई कन्या स्वयंवर में ऐसे वर को स्वीकार करले जो उपरोक्त नियम के कुछ थोड़ा विरुद्ध भी हो। तो ऐसी सूरत में माता पिता आदि को उस शादी में रुकावट न डालनी चाहिये अपितु विवाह कर देना चाहिये। जैसा कि

उत्कृष्टायाभि रूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥८८॥ मनु० ९।

भाषार्थ—उत्तम रूप सम्पन्न सदृश वर के लिये ( पांचवीं

चौथी पुश्त में होने के कारण ) प्राप्त न होने वाली कन्या को भी विधि पूर्वक दे देना चाहिये ॥ ८८ ॥ फिर यदि कन्या को कोई वर पसंद न आया हो तो माता पिता को अयोग्य नापसंद वर के साथ कन्या की मरज़ी के बिना ज़बरदस्ती कभी न करना चाहिये। जैसे—

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८६॥ (मनु० ६)

भाषार्थ—कन्या ऋतुमती होने पर भी चाहे मरण पर्य्यन्त घर में बैठी रहे किंतु गुणहीन वर के लिये उसे हर्गिज़ नहीं देना चाहिये ॥ ८६ ॥ फिर कन्या के लिये यह शिक्षा दी गई है कि स्वयंवर रीति से माता पिता भाई आदि की सर्वसम्मति से विवाह होजाने पर यदि पीछे से पति के साथ कोई मत भेद हो जावे तो भी उस को निभाने का प्रयत्न करना चाहिये। जैसे कि—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥१५१॥ (मनु० ५)

भाषार्थ—पिता व पिता की सम्मति से भाई उस को जिस के लिये दे दे। उस की जिंदगी में सेवा करे और उस का उल्लंघन न करे अर्थात् व्यभिचार न करे ॥ १५१ ॥

इस से सिद्ध हुआ कि "उत्कृष्टाय" "काममामरणात्" "यस्मैदद्यात्" ये तीनों श्लोक "पिता आदि को विवाह में रुकावट डालने" "ज़बरदस्ती कन्या की मरज़ी के विना कन्या का विवाह करने" को मना करते तथा "विवाह हो जाने पर पति से मतभेद पर भी निर्वाह करने" की शिक्षा देते हैं।

ये कन्या को पशुवत् आधीन नहीं करते । क्यूंकि कन्या विवाह विषयक प्रस्ताव में मुख्य सम्मति की अधिकारी है। वरना—

इच्छयाऽन्योऽन्य संयोगः कन्यायाश्चवरस्यच ।
गांधर्वः सतुविज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥३२॥ (मनु० ३)

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते ।
विक्रियं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषोभुवि ॥ ४ ॥
( महा० आदि० अ० २२३ )

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥
( महा० आदि० अ० २२१ )

विवाहानां हि रम्भोरु गांधर्वः श्रेष्ठ उच्यते । ४ ॥
( महा० आदि० अ० ७३ )

आत्मनो बंधुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः ।
आत्मनैव आत्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्म्मतः ॥ ७ ॥
( महा० आदि० अ० ७३ )

भाषार्थ—कन्या और वर का इच्छा से एक दूसरे से संयोग हो जाना यह काम तथा मैथुनसे हुआ गांधर्व विवाह कहाता है ॥३२॥ कन्या का दान पशुओं की भांति कौन मानसकता है। और कौन पुरुष पृथिवी में अपनी सन्तान को बेच सकता है ॥४॥

क्षत्रियों के लिये स्वयंवर विवाह श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

विवाहों में गांधर्व विवाह श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ४ ॥

आत्मा ही आत्मा का बंधु है। और आत्मा ही आत्मा की गति है । अतः आत्मा से ही आत्मा का दान कर सकते हो ॥ ७ ॥

इन सब प्रमाणों का क्या अर्थ होगा। अतः पूर्वोक्त श्लोक कन्या को पराधीन नहीं करते। और "त्रीणि वर्षाणि' यह श्लोक भी मज़बूत नहीं है कि पिता आदि शादी न करें, तब तीन वर्ष इन्तज़ार कर के कन्या शादी करे अपितु यह श्लोक स्वतंत्रता से विवाह की आयु प्रतिपादन करता है। और इस का सबूत यह है कि महाभारत में यह अकेला ही श्लोक आया है और हेतु सहित बड़ी आयु में विवाह का प्रतिपादन करता है। अतः १६ से कम आयु में कन्या का विवाह वेद शास्त्र स्मृति तथा इतिहास के क़तई विरुद्ध है।

३२८ (प्रश्न)—'त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत' मनु का यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। इस के प्रमाण मानने का दयानंद और आर्य्यसमाज को क्या हक़ है। पृ० ३४४ पं० ७।

उत्तर—आप अपनी प्रतिज्ञा में कोई वेद मंत्र दे कर इस श्लोक को वेद विरुद्ध साबित करने की कृपा करें, वरना "ब्रह्मचर्येण कन्या" इस मंत्र के अनुकूल होने से हमें इस के प्रामाणिक मानने का हक़ हासिल है। क्यों कि वेद मंत्र भी कन्या की युवावस्था में विवाह की आज्ञा देता है और यह श्लोक भी ऋतुमती होने से तीसरे वर्ष पीछे युवावस्था में ही कन्या के विवाह का प्रतिपादन करता है।

३२९ (प्रश्न)—मनु जी ने "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्" इस श्लोक में जो २४ वर्ष का पुरुष, आठ वर्ष की कन्या से और ३० वर्ष का पुरुष, १२ वर्ष की कन्या से विवाह करना लिखा है। इस को स्वामी दयानन्द जी ने क्यों छिपाया। पृ० ३४४ पं० ८।

उत्तर—इस श्लोक में स्वयं लिखा है कि ऐसा विवाह

करने वाला गृहस्थ धर्म में दुःख पाता है 'धर्मे सीदति-सत्वरः' यदि आप इस का यह अर्थ मानें कि 'इस से पहले विवाह करने वाला धर्म में दुःख पाता है तो—

त्रिंशद्वर्षो दश वर्षां भार्यां विन्दते नग्निकाम् ।
एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥१३॥

(महा० अनु० अ० ४४)

भाषार्थ—तीस वर्ष का पुरुष दश वर्ष की नग्निका भार्या को प्राप्त हो तथा २१ वर्ष का पुरुष सात वर्ष की पत्नी को प्राप्त हो ॥१३॥

कहिये महाराज ! अब यह कम की आज्ञा क्या सनातन-धर्म को नरक में धकेलने के लिये है। आप के ग्रन्थों की किसी विषय में एक सम्मति नहीं है। अतः वेद का प्रमाण ही धर्म के विषय में कसौटी है। चूंकि वेद कन्या को युवावस्था में विवाह और गर्भाधान करने की आज्ञा देते हैं अतः छोटी उम्र की शादी को वर्णन करने वाले सब प्रमाण वेद विरुद्ध होने से मानने के काबिल नहीं हैं। और बिना गर्भाधान तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये छोटी उम्र की शादी वैसे भी व्यर्थ और युक्ति शून्य है। और सनातनधर्म को तो इस विषय में अब बोलना भी नहीं चाहिये, क्योंकि इन के हां तो लिखा है कि—

न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते ॥३६॥
स्वयं ग्राहा भविष्यन्ति युगांते समुपस्थिते ॥३७॥

(महा० वन० अ० १९०)

युग के अंत आने पर न कोई कन्या मांगेगा और न कोई कन्या देगा। अपितु स्वयंबर विवाह होंगे।

# वर्ण व्यवस्था

३३० ( प्रश्न )—संसार में ईश्वर ने जितनी जातियां रची हैं। उन सब में भेद रक्खा है। पृ० ३०६ पं० २२

उत्तर—आप ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जाति कहते ही उस को हैं जो दूसरी जातो की निस्बत सूरत और शकल में भिन्नहो। इसी बात को व्याकरणकार ने इन शब्दों में लिखा है कि—

आकृतिग्रहणा जातिः ।। सिद्धान्त कौमुदी ।।

आकृतिः अवयवसन्निवेश विशेषः ।। बाल मनोरमा ।।

( सिद्धान्त० स्त्री प्रत्यय "जातेरस्त्री विषयात्" सूत्र पर )

अर्थ—जाति उस को कहते हैं जो सूरत और शकल में विशेषता के कारण दूसरी जातियों से भिन्न पहचानी जावे। अतः एक जाति का दूसरी से सूरत शकल आकृति में भेद आवश्यक है।

३३१ ( प्रश्न )—सबसे पहिले संसार में तृण जाति की उत्पत्ति हुई। किन्तु उस तृण जाति में भी ईश्वर ने अनेक भेद दिखाये। तृण एक जाति है। किंतु उस में दूब, मुसेल, धुरियां मोथा आदि अनेक जाति भेद दीखते हैं। पृ० ३०६ पं० २३

उत्तर—बेशक, तृण जाति वृक्ष जाति से आकृति में भिन्न है। और वृक्षों से तृण सूरत और फिर तृणों में भी दूब, मुसेल, मोथा, धुरियां आदि में से भी प्रत्येक की आकृति दूसरे से भिन्न है। और यदि सब को एक स्थान में रक्खा जाये। तो पृथक् पृथक् पहिचाने जा सकते हैं। अतः वृक्षों के मुक़ाबले में तृण जाति है। और तृणों में भी दूब आदि पृथक् २ जातियां हैं।

३३२ ( प्रश्न )—तृण के पश्चात् ईश्वर ने अन्न जाति की उत्पत्ति की। अन्न अन्न एक जाति। किंतु अन्न एक जाति में भेद प्रतिपादक सैंकड़ों अवान्तर जातियां दृष्टि गोचर होती हैं। धान, ज्वार, बाजरा, मकई, कोदों, सांवा, उर्द, मूंग, रवांस, चना, जौ, गेहूं, मटर, मसूर, अर्हर, इत्यादि। पृ० ३०६ पं० २५

उत्तर—बेशक तृण तथा वृक्षों को निस्बत सूरत शकल और आकृति भिन्न होने से अन्न जाति भिन्न है। और अन्नों में भी परस्पर एक दूसरे की आकृति भिन्न होने से पृथक २ जातियां हैं। यदि धान, ज्वार, बाजरा, मकई, उर्द, मूंग, चना, जौ, गेहूं आदि सब अन्नों को मिला दिया जावे तो सब की शकल सूरत भिन्न २ होने के कारण उन को चुन कर भिन्न २ किया जा सकता है। अतः अन्नों में अनेक जातियां हैं।

३३३ ( प्रश्न ) इसके पश्चात् वृक्ष जाति की उत्पत्ति की। वृक्ष वृक्ष एक जाति किंतु उसमें बट, पीपल, नीम, आम, जामुन खजूर, ताल, तमाल, शाल, सागौन, साखू, शीशम, बबूर, गूलर, पिलखन, अर्जुन प्रभृति अनेक भेद सिद्ध करने वाली अवांतर जातियां ईश्वर ने ही रची हैं। पृ० ३०७ पं० ३।

उत्तर—ठीक है वृक्षों की आकृति तृण तथा अन्न की निस्बत भिन्न होने से वृक्ष जाति भिन्न है। और वृक्षों में भी परस्पर एक दूसरे को पत्तों पुष्प फलों आदि में आकृति भिन्न २ होने के कारण अनेक जातियां हैं। यदि किसी बाग़ीचे में बट, पीपल, नीम, आम, जामुन, अनार, अमरूद आदि वृक्ष इकट्ठे हों तो प्रत्येक की उसके पत्तों फलों पुष्पों आदि की आकृति भिन्न होने से पहचान की जा सकती है अतः वृक्षों में भी अनेक जातियां हैं।

३३४ (प्रश्न) वृक्ष के अनन्तर पक्षी जाति को उत्पत्ति हुई। पक्षी पक्षी एक जाति' किंतु इस पक्षी एक जाति में चील' काक, कोयल, गोध, बाज, शिकरा, सारस, तीतर, बटेर, बगुला, हंस, चिड़िया, उल्ल, प्रभृति भेद सिद्ध करने वाली अनेक अवान्तर जातियां सृष्टि के आरम्भ में ही रची गईं। पृ० ३०७ पं० ६।

उत्तर—सत्य है, बेशक पक्षियों की जाति पशु मनुष्य आदि से आकृति भिन्न होने के कारण पृथक् है। और पक्षियों में भी परस्पर एक दूसरे को आकृति भिन्न होने के कारण अनेक जातियां हैं। यदि चील, काक, कोयल, गिध, बाज, शिकरा, तोता, मैना, कबूतर, बटेर, आदि सब को मिला कर बिठा दिया जावे। तो सब की आकृति भिन्न २ होने के कारण सब को पृथक् पृथक् पहिचाना जा सकता है। अतः सिद्ध हुआ कि पक्षियों में भी अनेक जातियां हैं।

३३५ (प्रश्न)—पक्षी जाति के बाद पशु जाति उत्पन्न हुई। उस में भी भैंस, गौ, बकरी, हिरण भेड, ऊंट, घोड़ा, गधा, जबरा, रोज, शावर, प्रभृति अनेक अवान्तर जातियां भेद सिद्ध करने वाली मौजूद हैं। पृ० ३०७ पं० १०।

उत्तर—आप ठिकाने की बात कह रहे हैं। बेशक पशुओं की जाति आकृति के भिन्न होने के कारण वृक्ष तृण पक्षी तथा मनुष्यों की जाति से भिन्न है। और पशुओं में भी परस्पर एक दूसरे की आकृति भिन्न होने से अनेक जातियां हैं। यदि गाय भैंस ऊंठ गधा घोड़ा भेड़ बकरी आदि को मिला कर खड़ा कर दिया जावे तो सब को भिन्न २ आकृति के कारण

पहिचाना जा सकता है। अतः पशुओं में भी अनेक जातियां मौजूद हैं। तथा न्याय दर्शन में जाति का लक्षण किया गया है कि—समानप्रसवात्मिका जातिः ॥ न्याय० २। २। ७१ ॥

अर्थ—जो नर और मादा मिलकर अपने जैसी सन्तान पैदाकर सकें और उनका सिलसिला नसल भी आगे चले, वे नर तथा मादा एक जाति में शुमार किये जावगे। जैसे "घोड़ा और घोड़ी" तथा गधा और गधी" आपस में मिलकर अपने जैसी औलाद पैदा करते हैं तथा उनका वंश भी आगे चलता है। अतः पता लगा कि "घोड़ा घोड़ी" तथा 'गधा गधी' दोनों एक ही जाति में हैं। परन्तु "गधा और घोड़ी" ये दोनों मिल कर जिस सन्तान को पैदा करते हैं वह उन जैसी नहीं होती अपितु उन दोनों से भिन्न शकल वाली "खच्चर" की शकल में होती है। और उनका वंश भी आगे नहीं चलता। खच्चर पर ही खतम। इस से पता लगा कि "घोड़ी और गधे" की एक जाति नहीं है, अपितु इनकी जाति भिन्न २ है। इस असूल के अनुसार पता चलता है कि पशुओं में अनेक जातियां हैं।

३३६ ( प्रश्न )—शास्त्र कहता है कि पशु जाति के पश्चात् देव जाति की उत्पत्ति हुई। देव देव एक जाति, किंतु उसमें भी विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत, ये दश अवान्तर जातियां हैं। पृ० २०७ पं० १३।

उत्तर—भूत तो कोई विशेष जाति ही नहीं है। अपितु सर्व प्राणियों का नाम भूत है। और राक्षस तथा पिशाचों को भी देव जाति मानना आप का ही काम है। वरना शास्त्र तो मानते नहीं। हां वास्तव बात यह है कि देव गंधर्व राक्षस

पिशाचादि ये सब मनुष्य जाति के ही कर्मानुसार तथा देशानुसार भेद हैं। इन की आकृति में परस्पर भेद नहीं हैं। विद्वानों का नाम देव, अविद्वानों को असुर, पापियों को राक्षस, और अनाचारियों को पिशाच कहते हैं। इसी प्रकार से दूसरों के भी कर्मभेद तथा देश भेद से भिन्न २ नाम हैं। वरना ये सब मनुष्य ही हैं। सूर्य्य देवता ने कुन्ती मनुष्य स्त्री में कर्ण समान सन्तान पैदा की और उस का वंश भी चला अतः सूर्य और कुन्ती की एक ही जाति हुई। इन्द्र, वायु, धर्म्म तथा अश्विनी कुमार देवताओं ने कुन्ती तथा माद्री मनुष्य स्त्रियों में युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल तथा सहदेव को समान सन्तान पैदा किया तथा उन का आगे वंश भी चला इस से सिद्ध हुवा कि इन्द्र धर्म्म वायु अश्विनिकुमार कुन्ती तथा माद्री सब की एक ही जाति थी। विश्वामित्र मनुष्य ने मेनका अप्सरा में शकुन्तला समान सन्तान पैदा की और उस का वंश भी आगे चला। इस से साबित हुवा कि विश्वामित्र तथा मेनका की एक ही जाति थी। इसी प्रकार से और भी दृष्टान्त देकर यह साबित किया जा सकता है कि ये सब मनुष्य जाति के ही कर्मभेद तथा देश भेद से नाम हैं। ये कोई भिन्न जातियां नहीं हैं। यदि हैं तो हमारे सनातन धर्म्मी भाई इनको हस्ती का कोई सबूत पेश करें।

३३७ (प्रश्न)—भाव यह है कि कीट पतंग वनचर नभचर जलचर आदि समस्त जातियों में अवान्तर जाति भेद अवश्य होते हैं। पृ० ३०७ पं० १५।

उत्तर—आप का फ़रमाना दुरुस्त है। क्योंकि कीट

पतंग वनचर नभचर जलचर आदि जातियों में से प्रत्येक के अन्दर भी अनेक प्रकार के जन्तुओं का परस्पर आकृति भेद होने से अनेक प्रकार की जातियां होती हैं। और वे आकृति भेद के कारण भिन्न २ पहचानी जाती हैं।

३३८ ( प्रश्न )—ये जाति भेद जड़ पदार्थों में भी पाये जाते हैं। पत्थर एक जाति रहने पर भी उस पत्थर में संगे अस्वद संग मूसा संग मरमर एवं लाल पत्थर तथा सुफेद पत्थर आदि अनेक जाति भेद हैं। पृ० ३०७ पं० १७।

उत्तर—इस में क्या संदेह है जड़ पदार्थों में भी आकृति भेद रंग भेद से अनेक जातियां मौजूद हैं। और वे एक स्थान में रखने पर अपने आकृति भेद तथा रंग भेद से भिन्न २ पहचानी जाती हैं। जैसे यदि संग अस्वद संग मूसा संगमरमर लाल पत्थर सुफेद पत्थर आदि सब को एक ही स्थान में रख दिया जावे तो वे भी परस्पर आकृति भेद तथा रंग भेद होने के कारण भिन्न २ पहचाने जा सकेंगे।

३३९ (प्रश्न)—इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में रची हुई मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि अनेक भेद पाये जाते हैं। ये अनादि हैं, ईश्वर कृत हैं इन में अन्य जातियों की भांति परिवर्तन रहित भेद हैं। पृ० ३०७ पं० १६।

उत्तर—आप को यहां पर धोका लगा है। जैसे पशु जाति मे गौ, भैंस, ऊंट, घोड़ा, गधा आदि जातियों में परस्पर आकृति भेद है। जैसे पक्षी जाति में मोर, तीतर, बटेर, मैना आदि में परस्पर आकृति भेद होने से अवांतर जातियां हैं। वैसे मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि में

परस्पर आकृति भेद नहीं है। और यदि इन सब को इकट्ठा कर दिया जावे तो पहिचाना भी नहीं जा सकता। जैसे युधिष्ठिर एक वर्ष राजा विराट के पास ब्राह्मण बन कर रहा, कोई भी नहीं पहिचान सका। कर्ण ने ब्राह्मण बन कर परशुराम से विद्या पढ़ी तथा पांचों पांडु मुद्दत तक ब्राह्मण बन कर गुप्त रहे। अर्जुन, भीम तथा कृष्ण ब्राह्मण बन कर जरासंध को मारने गये किंतु इन को कोई न पहिचान सका। और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में यदि एक दूसरे की स्त्री से एक दूसरे का विवाह हो जावे तो परस्पर संयोग से समान संतान उत्पन्न होती है और उन का वंश भी आगे चलता है। इस से पता चलता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन सब की एक ही जाति है और वह मनुष्य जाति है। यदि इन की जाति भिन्न होती तो इन में भी एक दूसरे की स्त्री के संयोग से खच्चर की भांति भिन्न प्रकार की संतान पैदा होती और उन का वंश भी आगे न चलता।

अतः पता लगा कि एक ही मनुष्य जाति में गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चार भेद हैं। ये भेद अनादि काल से नहीं हैं। क्योंकि इन में परिवर्तन हो जाता है। ब्राह्मण से शूद्र तथा शूद्र से ब्राह्मण बन जाते हैं। और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ईसाई और मुसलमान बन जाते हैं। इत्यादि परिवर्तन होते ही रहते हैं। अतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सब की एक ही मनुष्य जाति है। जो पैदा होने से मरने तक तबदील नहीं हो सकती। और मनुष्य जाति के ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि ये भेद कर्मानुसार हैं। जो परिवर्तन भी होते रहते हैं।

३४० ( प्रश्न )—मनुष्योंकी उत्पत्ति स्थानमें ही भेद प्रतिपादन करता हुआ वेद "ब्राह्मणोऽस्य" इस मन्त्र में कहता है कि "इस यज्ञ पुरुषके मुख से ब्राह्मण हुए और बाहु से क्षत्रिय ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्र ॥ पृ० ३०७ पं० २१।

उत्तर—आप का यह अर्थ सर्वथा अशुद्ध और स्वयं वेद के ही विरुद्ध है। क्यूंकि वेद ईश्वर को निराकार अकाय वर्णन करते हैं। जैसे "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरमित्यादि यजु० ४०।८" वर्णन करता है कि "वह परमात्मा सर्वव्यापक शीघ्रकारी, अकाय व्रणरहित नस तथा नाडी के बंधन से रहित है" जब परमात्मा के शरीर ही नहीं है। तो उस के मुख से ब्राह्मण बाहु से क्षत्रिय ऊरु से वैश्य तथा शूद्रों को परमात्मा के पावों से पैदा हुआ मानना बंध्या के पुत्र के विवाह में मिठाई खाने की भांति असंभव तथा उन्मत्त प्रलाप के सिवाय और क्या हो सकता है। इस मंत्र के वास्तव अर्थों को जानने के लिये इस से पूर्व मंत्र के अर्थों का जानना आवश्यक है। जिसमें प्रश्न किया गया है। और जिसके उत्तर में यह मंत्र है। दोनों मंत्र इस प्रकार से हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखंकिमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ ११ ॥
( यजु० ३१। १०–११ )

भावार्थ—जिस परमात्मा को कई प्रकार से कल्पना करते हुए पुरुष वर्णन करते हैं। उस पुरुष का मुख क्या है।

उसकी भुजा कौन हैं। उसके ऊरू कौन तथा पाओं कौन कहे जाते हैं॥ १०॥

इस मंत्र में जो परमात्मा को कई प्रकार की कल्पना करके वर्णन करने का ज़िकर है। वह कल्पना क्या वस्तु है। इस को दूसरे शब्दों में अलंकार भी कहते हैं।

सौन्दर्य्यमलङ्कारः॥ २॥

( काव्यालंकार सूत्र वृत्ति। १। १। २)

भाषार्थ—किसी बात को सौन्दर्य से वर्णन करने का नाम अलंकार है। अलंकार बहुत प्रकार के होते हैं उनमें से एक अलंकार का नाम है उपमालंकार। उसका लक्षण यह है।

उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा॥ १॥

उपमान से उपमेय के गुणों की कुछ समानता का नाम उपमा है। वह उपमा दो प्रकार की है।

सा पूर्णा लुप्ता च॥४॥

वह पूर्णा तथा लुप्ता दो प्रकार की है। पूर्णा का लक्षण—

गुण द्योतकोपमान उपमेय शब्दानां समग्र्ये पूर्णा॥५॥

जिस में उपमान् उपमेय उपमा वाचक शब्द तथा गुण द्योतक शब्द सारे मौजूद हों वह पूर्ण उपमा है। जैसे—

'कमल मिव मुखं मनोज्ञमिति' मुख कमल की भांति सुन्दर है। इस वाक्य में—

कमल—उपमान—जिस से उपमा दी जावे।

मुख—उपमेय—जिस को उपमा दी जावे।

मनोज्ञ—साधारण धर्म समान गुण जो दोनोंमें मिलताहो।

इव-उपमा वाचक शब्द, जिन से समानता बताई जावे।

यहां उपमाके चारों अङ्ग मौजूद हैं, अतः यहां पूर्ण उपमा है।

लोपे लुप्ता ॥६॥ (काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति) ४। २। १-६

जिस में किसी अङ्ग का लोप हो जावे वह लुप्त उपमा है

जैसे—'शशीव राजा' 'चांद जैसा राजा' इस में साधारण धर्म जो गुण दोनों में मिलता है। जिस के कारण राजा को चांद जैसा कहा गया है वह लुप्त है। अतः इस का नाम 'धर्म लुप्तोपमा' है।

'दूर्वा श्यामेयम्' 'यह स्त्री काली दूब है' यहां पर उपमा वाचक शब्द का लोप है। जो समानता को बयान करता है। अतः इस का नाम 'वाचक लुप्तोपमा' है।

'शशि मुखी' 'चन्द्र मुखी' यहां पर साधारण धर्म और उपमा वाचक शब्द दोनों का लोप है। इस को 'वाचक धर्म लुप्तोपमा' कहते हैं।

हम इस के चन्द उदाहरण देते हैं—

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीता मृतं महत्॥

भावार्थ—सब उपनिषद गौवें हैं। दोहने वाले कृष्ण हैं। पीने वाला बुद्धिमान् अर्जुन बछडा तथा महान् अमृत गीता दूध है।

यहां पर उपनिषदों को गौवों की, कृष्ण को दोहने वाले की, अर्जुन को बछडे की तथा गीता को दूध की उपमा दी गई है। यहां उपमा वाची शब्दों तथा साधारण धर्म्म का लोप है। अतः यहां पर "वाचक धर्म्मलुप्तोपमा" है।

यहां पर गीता को दूध की उपमा दी गई है वास्तव में गीता दूध नहीं है। यदि कोई आदमी इस श्लोक को ठीक रूप से न समझ कर गीता को कटोरे में डाल कर किसी को कहे कि लीजिये दुग्ध पान कीजिये तो सब लोग उसे मूर्ख ही कहेंगे बुद्धिमान् नहीं।

आत्मानदी संयमपुण्य तीर्था
सत्योदका शीलतटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरू पाण्डु पुत्र
न वारिणा शुद्धयति चांतरात्मा॥

भाषार्थ—आत्मा नदी है संयम पवित्र तीर्थ वाली सत्य जल वाली शीतल तट तथा दया लहरों वाली है। हे युधिष्ठिर उस में स्नान कर जल से आत्मा शुद्ध नहीं होता।

इस श्लोक में आत्मा को नदी की उपमा देकर तरंगों को भी उपमा दी गई है। किंतु आत्मा वास्तव में नदी नहीं है—

प्रणवोधनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

भाषार्थ—प्रणव धनुष हो, ये आत्मा तीर हो, उस का ब्रह्म लक्ष्य हो, होशयारी से लक्ष्य को वेधना चाहिये, तीर की भांति तन्मय हो जावे।

यहां आत्मा को तीर की उपमा दी गई है, परन्तु वास्तव में आत्मा तीर नहीं है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच॥
इन्द्रियाणि हयानाहु र्विषयान् तेषु गोचरान्।
आत्मबुद्धि मनोयुक्तः कर्तेति उच्यते बुधैः॥

भाषार्थ—आत्मा को सवार जान, शरीर को रथ समझ बुद्धि को सारथी जान, मन को लगाम समझ। इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को उन की खुराक कहते हैं। बुद्धि और मन से युक्त आत्मा को बुद्धिमान् लोग कर्ता कहते हैं। यहां आत्मा को रथी की उपमा देकर तत् संबंधी वस्तुओं को भी उपमा दी है। किंतु वास्तव में आत्मा रथी नहीं है।

इन सब स्थलों में "वाचक धर्म्मलुप्तोपमा" अलंकार हैं। जिन में उपमा वाची शब्द तथा साधारण धर्म्म का लोप है। इसी प्रकार के अलंकार वेदों में भी हैं जैसे—

अजोवा इदमग्रेव्यक्रमत तस्योर इयममवद् द्यौः पृष्ठम्।
अंतरिक्षं मध्यम् दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी॥ २०॥
सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः।
एषवा ऽपरिमितो यज्ञो यदजः पंचौदनः॥ २१॥
अथर्व० ९। ५।

भाषार्थ—यह बकरा आगे आया, इस की छाती यह पृथिवी, द्यौः पीठ, आकाश पेट तरफें पसवाडे समुद्र बग़ले ज्ञान तथा सत्य दोनों आंखें और संपूर्ण सत्य और श्रद्धा प्राण और ब्रह्मांड सिर है वह यह अपरिमित यज्ञ है जिस को पंचौदन अज कहते हैं।

इस मंत्र में परमात्मा को अज अर्थात् बकरे की उपमा देकर उस के अंगों की भी कल्पना करके परमात्मा का वर्णन किया गया है। परमात्मा वास्तव में बकरा नहीं है।

बस इसी प्रकार से ही "यत्पुरुषंव्यदधुः" इस मंत्र में परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर पूछा है कि उस के मुख

बाहु ऊरू तथा पाओं कौन हैं। इस का उत्तर ही अगले मंत्र में "ब्राह्मणोऽस्य" दिया गया है कि "ब्राह्मण उस का मुख हैं। भुजा क्षत्रिय किये। उस के ऊरू जो ये वैश्य हैं। पाओं के लिये शूद्र हुए" इस मंत्र में परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को उस पुरुष के मुख बाहु ऊरू तथा पांव कल्पना किया गया है। यह पूर्ववत् उपमा अलंकार है, वास्तव में परमात्मा निराकार है उस के मुखादि अंग नहीं हैं। यहां पर परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र को उस के मुख बाहु ऊरू तथा पैर कल्पना करने का यही प्रयोजन है कि मनुष्य सृष्टि में जो लोग मुख के समान सर्व साधारण से पांच गुणा ज्ञान रखते हों, लोगों को उलटे रास्ते से हटा कर सीधे रास्ते पर चलावें तथा अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ावें, वे ब्राह्मण कहलाने के योग्य हैं। तथा मनुष्य सृष्टि में जो लोग भुजा के समान अपने आप को खतरे में डाल कर भी दूसरों की रक्षा करें वे क्षत्रिय कहलाने के क़ाबिल तथा जो लोग पेट के समान मुल्क के कच्चे माल को पक्का माल बना कर उस की तिजारत से जो नफ़ा हो उस से अपने देश की परवरिश करें वे वैश्य कहलाने के क़ाबिल हैं। और मनुष्य सृष्टि में जो लोग न दिमाग़ी काम कर सकें, न रक्षा और व्यापार का काम कर सकें केवल पाओं के समान बोझ उठाने अर्थात् कुलीपने का काम जानते हों वे शूद्र कहाने के क़ाबिल हैं। यह मंत्र वर्ण व्यवस्था को गुण कर्म स्वभाव से प्रतिपादन करते हैं जन्म से नहीं। अतः हमारा किया हुआ अर्थ वेदानुकूल तथा आप का अर्थ स्वयं वेद के ही विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

३४१ ( प्रश्न ) हमारे इसी अर्थ की पुष्टि "लोकानां तु विवृद्धयर्थं" ( मनु० १ । ३१ ) तथा "उत्तमाङ्गोद्भवाद्" ( मनु० १ । ९३ ) और "यज्ञसिद्धयर्थम्" ( हारीत० १ । १२ ) तथा शूद्रांश्च पादयोः" ( हारीत० १ । १३ ) आदि स्मृतियां करती हैं । पृ० ३०८ पं० ५ ।

उत्तर—ये स्मृतियां आपके अर्थ की पुष्टि नहीं करतीं अपितु हमारे अर्थ की पुष्टि करती हैं । और इन श्लोकों के अर्थ इस प्रकार से हैं—

लोकानांतु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ मनु० १ । ३१ ॥
उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैवधारणात् ।
सर्वस्यैव सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ मनु०१ । ९३ ॥
यज्ञसिद्धयर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत् क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यानप्युरुदेशतः ॥ १२ ॥
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥
( हारीत० १ । १२–१३ )

भावार्थ—संसार की तरक्की के लिये मुख भुजा पेट तथा पैर के समान ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र बनाये ॥ ३१ ॥ मुख के समान होने तथा श्रेष्ठ होने और वेद के धारण करने के कारण इस सारे संसार का धर्म से ब्राह्मण स्वामी है ॥ ९३ ॥ यज्ञसिद्धि के लिये पाप रहित ब्राह्मणों को मुख के समान पैदा किया, भुजा के समान क्षत्रियों को बनाया और वैश्यों को भी पेट के समान बनाया ॥ १२ ॥ और शूद्रों को पावों के समान

बनाकर क्रमशः उनका विस्तार किया। इसी प्रकार से ही ब्रह्मा ने भी कहा है ॥ १३ ॥ इन स्मृति वाक्यों के यही अर्थ संगत हो सकते हैं, वरना यदि आप इनका यह अर्थ करेंगे कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र परमात्मा के मुख बाहु ऊरू तथा पैरों से पैदा हुए, तो—

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तोव्ययञ्जन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासोत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः सएव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥ ( मनु० १ )
एकाकारमनानंतंबुद्धौरूपमनामयम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥
आत्मना बहिरंतः स्थं शुद्धंचामीकरप्रभम् ।
रहस्येकान्त मासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥ (हारीत०अ०७)

भावार्थ—उसके पश्चात् नित्य स्वरूप, इन्द्रियों से अगोचर, अखण्डित तेज वाला, प्रकृति का प्रेरक इन पांच महाभूतों के जगत् को प्रकट करके प्रसिद्ध हुआ ॥ ६ ॥ जो वह इन्द्रियों से अगोचर, अत्यन्त सूक्ष्म, अवयव रहित, सनातन चिन्तन के अयोग्य, सर्व भूतों में व्यापक परमात्मा स्वयं प्रसिद्ध हुआ ॥७॥ एकाग्र मन होकर अपनी बुद्धि में अनन्त सुख स्वरूप सूक्ष्म से सूक्ष्म जगत् के आधार अविनाशी परमात्मा का ध्यान करे ॥ ५ ॥ एकान्त में बैठ कर मरने तक अपनी आत्मा के द्वारा अन्दर बाहर सर्वत्र व्यापक प्रकाश स्वरूप परमात्मा का ध्यान करे ॥६॥

जब यही स्मृतियें परमात्मा को अवयव से रहित इन्द्रियों से अगोचर, सूक्ष्म से सूक्ष्म, आत्मा से जानने योग्य

शरीर रहित, निराकार वर्णन कर रहीं हैं। तो फिर पूर्व श्लोकों में ईश्वर को शरीर धारी और साकार मान कर उस के अङ्गों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है।

और वेद भी परमात्मा को अकाय मानता है अतः आप का अर्थ ठीक मानने से स्मृतियां वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण हो जावेंगी तथा हमारा अर्थ मानने से वेदानुकूलता के कारण प्रमाण मानी जा सकेगी। इस कारण हमारा अर्थ वेदानुकूल होने से ठीक तथा आप का वेद विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

हमारे अर्थ की पुष्टि में आप का पांचवां वेद इस प्रकार लिखता है कि—

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संस्थितौ विशः ॥१३॥
पादौशूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च ॥१४॥
(महा० वन० अ० १८६)

ब्रह्मवक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः ।
पादौयस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः ॥६७॥
(महा० शान्ति० अ० ४७)

भावार्थ—ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा तथा दोनों जांघ वैश्य और शूद्र परिश्रम के कारण तथा नम्बरवार पाओं हैं॥१३। १४

ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, सारे जांघ और पेट वैश्य तथा जिस के पाओं के शूद्र आश्रित हैं। उस वर्णात्मक ईश्वर को नमस्कार है॥६७॥

ईश्वर निराकार शरीर से रहित है। यदि उस का

शरीर कल्पना करना हो तो ब्राह्मण ही उस का मुख क्षत्रिय ही उस की भुजा, वैश्य ही उस के जांघ तथा पेट और शूद्र ही उस के पांओं हैं। और कोई परमेश्वर के मुख भुजा जांघ पेट पाओं आदि अङ्ग नहीं हैं। इसी अर्थ की ताईद आप के भाष्यकार उव्वट करते हैं।

यत्पुरुषमिति—यत्पुरुषं देवा इन्द्रादयः तस्मिन् यज्ञे व्यदधुः कृतवन्तो यथा। तद्वत् योगिनः आत्म यज्ञे पुरुषं ज्ञानम् यत् ज्ञानान्तं तत्कृतवन्तः कति प्रकारं विकल्पितवन्तः। तस्यैवं विधस्य किं मुखम्, कौ बाहू, कौ ऊरू पादौ उच्येते उच्यन्तामित्यर्थः ॥३१। १०॥

ब्राह्मणोऽस्येति—अस्य यज्ञोत्पन्नस्य पुरुषस्य ये केचिद् ब्राह्मणाः ते मुख मासीत्। ये क्षत्रियाः ते बाहू कृताः। ये वैश्याः ते अस्य ऊरू कृताः। ये शूद्राः ते पद्भ्याम् अजायन्त इति कल्प्यन्ते तदस्योत्पन्नत्वादिति। एवमेतेऽवयवाः शिरः प्रभृतयः पुरुषस्य विद्यन्ते नान्ये इति ॥ ३१। ११ ॥

भाषार्थ—जिस परमात्मा को इन्द्रियों के स्वामी विद्वान् योगियों ने आत्म यज्ञ में कई प्रकार से कल्पना किया है। उस इस प्रकार से कल्पना किये हुए परमात्मा का मुख कौन है, भुजा कौन हैं, जांघ कौन और पाओं कौन कहे जाते हैं। उत्तर दो। यह अर्थ है ॥ १० ॥

उस यज्ञ में कल्पना किये हुए पुरुष परमात्मा के जो कोई ब्राह्मण हैं वे मुख हैं। जो क्षत्रिय हैं वे भुजा किये गये। जो वैश्य हैं वे इस के जांघ माने गये। जो शूद्र है वे पाओं स्थानीय हुए, ऐसी कल्पना की जाती है उस से पैदा होने के

कारण । ऐसे ये ही अवयव शिर आदि परमात्मा के हैं और नहीं हैं ॥ ११ ॥

कैसा स्पष्ट हो गया कि ये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ही परमात्मा के मुख भुजा जांघ पेट पैरादि अवश्य कल्पना किये जा सकते हैं। वरना परमात्मा के और कोई अवयव नहीं हैं।

अतः परमात्मा के मुखादि अवयवों से ब्राह्मणादि की पैदाइश मानना सर्वथा वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

३४२ (प्रश्न)—"यस्मादेते इत्यादि" शतपथ भी हमारे अर्थ की ताईद करता है कि ब्राह्मणादि परमात्मा के मुखादि अंगों से पृथक २ स्थानों से पैदा हुए। पृ० ३०८ पं० १४

(उत्तर) शतपथ के इस पाठ का यह अर्थ नहीं है जो आप करते हैं। अपितु यह शतपथ भी हमारी ताईद करता है, आप की नहीं। देखिये इस शतपथ का अर्थ यूं है, कि—

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि- जिसकारण ब्राह्मण सब वर्णों में मुख्य हैं। इस लिये यह अर्थ संगत होता है कि मुख के समान पैदा हुए।

बतलाइये, इस से यह कहां से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणादि परमात्मा के मुखादि अंगों से पैदा हुए।

३४३ (प्रश्न)—पुरुष सूक्त तीन विषयों का वर्णन करता है। इस का प्रथम विषय इतिहास है, द्वितीय विषय पुरुष मेध यज्ञ का क्रम, तीसरा विषय सृष्टि रचना है। पृ० ३०९ पं० १७

उत्तर—पुरुष सूक्त का मुख्य विषय सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन करना है। गौण रूप से वेदोक्त धर्म का उपदेश तथा

वर्णों के कर्म मनुष्य जाति के कर्तव्यों का भी वर्णन है। यदि पुरुष मेध यज्ञ के क्रम से आप का यही अभिप्राय है कि सूक्त में मनुष्य के कर्तव्यों को क्रमशः वर्णन किया गया है तो ठीक है। और यदि आप का अभिप्राय पुरुष मेध से पुरुष को मार कर होम करना है तो इस पौराणिक लानत का यजुर्वेद में नाम तक भी नहीं है। इतिहास से भी यदि आप का अभिप्राय सृष्टि उत्पत्ति के सिलसिले के वर्णन से हो तो ठीक है। और यदि आपका अभिप्राय इतिहास से मनुष्यों की तवारीख़ से हो तो आपका लेख ग़लत है। क्यूंकि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान हैं। इन में इतिहास का होना असंभव है। क्यूंकि इतिहास किसी मनुष्य के जन्म के पीछे लिखा जाता है, अनादि वेद में उस का वर्णन कैसे हो सकता है।

३४४ (प्रश्न)—"तं यज्ञंबर्हिषि इत्यादि यजु० ३१। ६।" इस मन्त्र में तो इतिहास है। पृ० ३०६ पं० २१।

उत्तर—इस मन्त्र में किसी विशेष पुरुष का इतिहास नहीं है। अपितु असूली तौर से बतलाया है कि जिस परमात्मा का ऋषि महात्मा लोग सृष्टि की आदि में पूजन करते थे उसी का तुमको पूजन करना चाहिये। जैसा कि—

तं यज्ञं बर्हिषिप्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये॥ यजु० ३१। ६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् और योगाभ्यासादि साधन करते हुए मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस सृष्टि के पूर्व प्रसिद्ध हुए, सम्यक पूजने योग्य पूर्ण परमात्मा को मानस ज्ञान यज्ञ में सींचते अर्थात् धारण करते हैं। वे ही

उस के उपदेश किये हुए वेद से उस का पूजन करते हैं। उस को तुम लोग भी जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदय अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ॥६॥

कहिये महाराज ! इस मन्त्र में कौन सा किस का इतिहास है। यदि नहीं तो वेद में इतिहास बतला कर उस को अनित्य होने के कलंक से कलंकित न कीजिये।

३४५ (प्रश्न)—फिर इस के आगे 'मुखं किमस्यासीत्' इस मन्त्र में पुरुष मेध के लिये निराकार पुरुष के अङ्गों का प्रश्न है कि पुरुषका मुख, बाहु, ऊरू, पाद क्या हैं। इसके आगे 'ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीत्' यह मन्त्र है। इस मन्त्र में मुख, बाहु, उरू यह तीन पद प्रथमान्त हैं, जैसे यह प्रथमांत हैं ऐसे ही पाद शब्द भी प्रथमान्त होना चाहिये था। किंतु वह पंचम्यन्त है। इस का मतलब यह है कि इस मन्त्र के दो अर्थ होंगे। पृ० ३०९ पं० २५

उत्तर—शुकर है, आपने परमात्मा को निराकार तो माना। परन्तु यह क्या लिख दिया कि 'निराकार पुरुष के अङ्गों का प्रश्न' क्या निराकार के भी अङ्ग होते हैं। आप इस मन्त्र में पढ़ें 'व्यकल्पयन्' पद को चुराना चाहते हैं। जिस का अर्थ है कि 'कल्पना करते हैं, जिस से स्पष्ट है कि निराकार के अङ्ग नहीं होते किन्तु वर्णन में सुन्दरता लाने के लिये कल्पना किये गये हैं। वेदों में विभक्तियों का व्यत्यय हो जाया करता है। अतः वेद में विभक्तियों की इतनी प्रबलता नहीं होती जितनी अविरोधी अर्थ की प्रबलता होती है। चूंकि वेद की भाषा

अनादि है और व्याकरण भाषा के पीछे बना करता है। अतः व्याकरण वेद की वाणी को पूरे तौर से अपने में नहीं बान्ध सका। तभी तो व्याकरण के कर्ता ने कहा कि 'व्यत्ययो बहुलम्' 'बहुलम् छन्दसि' क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्य देव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

अप्रवृत्ति के स्थान में प्रवृत्ति, प्रवृत्ति के स्थान में अप्रवृत्ति, विकल्प, कहीं कुछ और ही, वेदों के विधान को बहुत प्रकार से विचार कर बहुल को चार प्रकार का कहते हैं। अतः विभक्तियों का जोड़ मेल आप के लिये विशेष लाभदायक न होगा। तथापि दोनों मंत्रों में प्रथमान्त सात पद हैं। और पंचम्यन्त केवल एक पद। अतः सात की प्रबलता से एक भी प्रथमान्त ही माना जावेगा। और यदि "पद्भ्याम्" को चतुर्थी का द्विवचन मान लें तो भी अर्थ प्रथमान्त के अनुकूल ही निकल पड़ता है। आप चाहे वेद मंत्र के दो छोड़ पचास अर्थ करें, हमें कोई आपत्ति नहीं है। यदि वह परस्पर विरुद्ध अथवा वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। अच्छा अब अर्थ कीजिये।

३४२ (प्रश्न)—प्रथम अर्थ में मुख बाहु ऊरू पाद ये चारों शब्द प्रथमान्त लिये जावेंगे। ब्राह्मण इस पुरुष का मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरू, शूद्र पाद यह अर्थ हुवा। इस अर्थ से प्रथम मंत्र के प्रश्नों का उत्तर भी होगया पृ० ३१० पं० २

उत्तर—परमात्मा आप का भला करे। आखिर ठिकाने पर आ ही गये। यदि सुबह का भूला शाम को घर आजावे तो उसे भूला न जानना चाहिये। यदि इसी प्रकार

से अक़्ल से काम लेते तो आप को इस किताब में कुफ़र तोलने की तथा हमें इस के जवाब में कुफ़र तोड़ने की नौबत ही क्यों आती ।

३४७ ( प्रश्न )—जहां वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है वहां ब्राह्मण का पूजन होगा । क्यूंकि ब्राह्मण ईश्वर का मुख है । जहां ईश्वर की भुजाओं का पूजन होना है वहां क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरू पूजन में वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा । इस अर्थ से पुरुष मेध का पूजन क्रम निकला । पृ० ३१० पं० ६ ।

उत्तर—आपने उपरोक्त लेख से कई एक वैदिक सचाइयों को स्वीकार कर लिया । प्रथम तो शूद्रों को पूज्य क़रार देकर आप ने अछूतोद्धार पर मञ्जूरी की मुहर लगादी । दूसरे आप ने तसलीम कर लिया कि केवल ब्राह्मण ही पूज्य नहीं हैं, अपितु चारों वर्ण परस्पर एक दूसरे के लिये पूज्य हैं । तीसरे अब परमात्मा की मूर्ति बनाने की ज़रूरत ही बाक़ी न रही । जिसने सम्पूर्ण ब्रह्म की पूजा करनी हो वह चारों वर्णों की पूजा कर ले । चौथे परमात्मा को पुरुष कल्पित करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र को उसका मुख भुजा ऊरू पाद कल्पना करने का प्रयोजन चारों वर्णों की योग्यता का प्रतिपादन मानकर कर्म से वर्णव्यवस्था को मान लिया । पांचवें आपने पुरुष को बलि का खण्डन करके परस्पर पूजा को ही पुरुषमेध यज्ञ मान कर यज्ञ में हिंसा का निराकरण मान लिया ।

३४८ ( प्रश्न ) दूसरे अर्थ में मुख बाहु ऊरू इन तीन पदों को वैसे ही पंचम्यन्त बनाना पड़ेगा, जैसे पद्भ्यां पंचम्यन्त

है। ऐसा करने पर अर्थ यह होगा कि "ईश्वर के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय ऊरू से वैश्य पैरों से शूद्र मंत्र के अन्त में "अजायत" क्रिया पडी है। जिस का अर्थ हैं "उत्पन्न हुए" यह सृष्टि उत्पत्ति का अर्थ है। पृ० ३१० पं० ११

उत्तर—आप का यह अर्थ सर्वथा असंगत वेद विरुद्ध और असंभव है। चूंकि प्रथम मंत्र में यह प्रश्न है कि इस कल्पित पुरुष के मुखादि कौन है। अतः उत्तर यही संगत हो सकता है कि कल्पित पुरुष के मुखादि ब्राह्मणादि ही हैं। जब प्रथम मंत्र में ब्राह्मणादि की पैदाइश का प्रश्न ही नहीं हैं तो उत्तर में ब्राह्मणादि की पैदाइश का वर्णन करना प्रकरण विरुद्ध होने से असंगत हैं।

चूंकि वेद कहता है कि "अकायमव्रणमस्नाविरम्" परमात्मा शरीर रहित घावशून्य तथा नसनाडी के बंधन से रहित है। जब परमात्मा के शरीर ही नहीं है तो उस के मुखादि शरीर अवयवों से ब्राह्मणादि की पैदाइश मानना वेद विरुद्ध होने से असत्य हैं। चूंकि परमात्मा सर्वव्यापक सर्वदेशी निराकार निरवयव है अतः उस के शरीर से ब्राह्मणादि की पैदाइश असंभव है। जब आप का अर्थ ही असंगत वेद विरुद्ध तथा असंभव हो गया तो उस के लिये एक विभक्ति के मुक़ाबले में सात विभक्तियों को तबदील नहीं किया जा सकता। रही बात "अजायत" क्रिया की, सो "अजायत" का अर्थ प्रकट होना, प्रसिद्ध होना भी है। और यदि "पदा हुए" ही अर्थ करना है तो शूद्र पाओं के सदृश पैदा हुए यह अर्थ संगत हो सकता है। यदि पद्भ्यां को चतुर्थ्यन्त

मान लें तो पाओं स्थानी शूद्र पैदा हुए यह अर्थ भी संगत हो जाता है। अतः आप की सारी ही कल्पना मिथ्या है। अब हम यह विचारना चाहते हैं कि आप ब्राह्मणादि को ब्रह्म के मुखादि अवयवों से पैदा होने के असंभव अर्थ पर इतना बल क्यूं देरहे हैं। हां याद आया। आप ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य तथा शूद्रों के पैदाइश स्थानों को भिन्न २ साबित करके वर्णपरिवर्तन का निषेध करना चाहते हैं। सो हो न सकेगा। देखिये मनुष्य के शरीर में उपादानकरण माता और पिता का संपूर्ण शरीर होता है। क्यूं कि माता पिता का वीर्य शरीर के अंग २ से पैदा होकर बच्चे के शरीर को बनाता है। अतः बच्चे की शकल माता पिता के शरीर जैसी होती है। माता की योनि तो महज़ बच्चे के बाहर आने का साधन ही होता है। इसी प्रकार से आप ब्राह्मणादि की पैदाइश ब्रह्म के सारे शरीर से और मुखादि को केवल बाहर आने का साधन योनिवत् मानते हैं या ब्रह्म के मुख भुजा ऊरू तथा पाद को पृथक् पृथक् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र की पैदाइश में माता पिता के शरीरवत्उपादान कारण मानते हैं। यदि पहिली बात हो कि ब्राह्मणादि के शरीर का उपादान कारण तो ब्रह्म का सारा शरीर है। मुखादि तो केवल योनिवत् बाहर आने का साधन ही हैं। तो फिर सारे मनुष्य ही ब्राह्मण हैं। क्यूंक सब के शरीर का उपादान कारण ब्रह्म का सारा शरीर है। बाहर आने के रास्ते भिन्न २ होने से कोई फर्क नहीं पड़ सकता। जैसाकि—

सर्वे वर्णा ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च सर्वे नित्यंव्याहरन्ते च ब्रह्म।

सर्वं शास्त्रं ब्रह्म बुद्ध्या ब्रवीमि सर्वं विश्वं ब्राह्मचैतत् समस्तम् ॥ ८६ ॥

ब्रह्मास्यतो ब्राह्मणाः संप्रसूताः, बाहुभ्यां वै क्षत्रियाः संप्रसूताः । नाभ्यां वैश्याः पादतश्चापिशूद्राः, सर्वेवर्णा नान्यथा वेदितव्याः ॥ ६० ॥ (महा० शान्ति० अ० ३१८)

न विशेषोऽस्ति वर्णानाम् सर्वं ब्रह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥
(महा० शान्ति० अ० १८८)

भाषार्थ—सारे वर्ण ब्राह्मण हैं, क्यूंकि ब्रह्म से पैदा हुए हैं और सब ब्रह्म का उच्चारण करते हैं । ब्रह्म बुद्धि से तत्व का विचार करके कहता हूं । यह सारे का सारा जगत् ही ब्रह्म है ॥ ६६ ॥ ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए । भुजा से क्षत्रिय पैदा हुए । नाभि से वैश्य तथा पाओं से शूद्र पैदा हुए । अतः सारे वर्णों को अन्यथा न जानना चाहिये ॥ ६० ॥ वर्णों में कोई विशेषता नहीं है । यह सारा ही जगत् ब्राह्मण है । ब्रह्म ने ही पूर्व रचा है । कर्मों के अनुसार वर्ण भाव को प्राप्त हो गया ॥१०॥

और यदि दूसरी बात मानें कि ब्रह्म के मुखादि पृथक् २ ब्राह्मण आदि के शरीरों में माता पिता वत् उपादान कारण हैं तो फिर ब्राह्मणों की आकृति मुख के समान गोल २ कद्दू की भांति होनी चाहिये । क्षत्रियों के शरीर भुजा की भांति लंबे २ डंडे से तथा वैश्यों के शरीर पेट की भांति घड़े के समान वा जांघों के समान तथा शूद्र के शरीर पग के समान होने चाहिए । किंतु ऐसा संसार में नज़र नहीं आता । चारों वर्णों की आकृति एक सी ही है । और बनावट से कोई ब्राह्मणादि का पता नहीं

लगता। इस से साबित है कि ब्रह्म के अंगों से पैदा होने की कल्पना मिथ्या ही है। चारों वर्णों की एक ही मनुष्य जाति है। वर्णों का भेद कर्मानुसार है। जैसा कि—

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संकरात् सर्व वर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥ ३१ ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ् मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम् ॥ ३२ ॥
इदमार्षं प्रमाणंच ये यजामह इत्यपि ।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः ॥ ३३ ॥
( महा० वन० अ० १८० )

भावार्थ—युधिष्ठिर ने कहा कि हे महामति सर्प ! यहाँ मनुष्य जाति चारों वर्णों में मिली हुई होने से परीक्षा में नहीं आ सकती। ऐसा मेरा निश्चय है ॥ ३१ ॥ सब वर्णों के पुरुष सब वर्णों की स्त्रियों में सदा सन्तान पैदा करते हैं। वाणी, मैथुन, जन्म, तथा मरण सब वर्णों का समान ही है ॥ ३२ ॥ यह ऋषियों का प्रमाण है कि जो यज्ञ करें वह द्विज हैं। अतः जो तत्व के जानने वाले हैं, वह गुण कर्म स्वभाव को ही वर्णों में प्रधान कारण समझते हैं। ३३ ॥

यदि आप केवल मुख से पैदा होना ही ब्राह्मणपन में हेतु मानते हैं तो पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि कई मुख से पैदा होकर भी ब्राह्मण न बने, तथा कई मुख से न पैदा होकर भी ब्राह्मण बन गये। जैसे कि—

पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवान्ऋक्षपुंगवः
जृम्भमानस्य मे सहसा मम वक्त्राद्जायत ॥ ७ ॥
( वाल्मी० बाल० स० १७ )

चरणाभ्यां तथा द्वौ तु पादाभ्यां द्वौ तथा खग ॥ २६ ॥
य एते मत्सुता राजन्नर्च्या ब्राह्मण सत्तमाः ॥ ३१ ॥

भविष्य० ब्रह्म० अ० ११७

भावार्थ—ब्रह्मा जी बोले कि पहले पहिल मैंने जाम्बवान् नाम का श्रेष्ठ रीछ पैदा किया। जंभाई लेते हुए मेरे मुख से अचानक पैदा हो गया। ७ ॥ चूंकि रीछों का वंशधर जाम्बवान् ब्रह्मा के मुख से पैदा हुआ था तो क्या सब रीछों को ब्राह्मण मानने को तय्यार हैं। यदि नहीं तो साबित हुआ कि केवल मुख से पैदा होना ब्राह्मण पन में कारण नहीं हो सकता।

सूर्य्य ने कहा कि दो मेरे चरणों से तथा दो मेरे पाओं से पैदा हुए ॥ २६ ॥ हे राजन्! जो ये मेरे पुत्र हैं, ये सब पूजा करने के क़ाबिल श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥ ३१ ॥

अब यहां सूर्य के चरणों से पैदा हुए चार पुत्र ब्राह्मण बन गये। और यहां पर कपिला से ब्राह्मणों की पैदाइश बताई है। जैसे—

अमृतं ब्राह्मणा गावो गंधर्वाप्सरसस्तथा।
अपत्यं कपिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम् ॥ ५२ ॥

महा० आदि० अ० ६५

भावार्थ—अमृत, ब्राह्मण, गौवें, गंधर्व, तथा अप्सरायें दक्ष की पुत्री कपिला से पैदा हुए। यह पुराणोंमें लिखा है। ॥ ५२ ॥ अतः साबित हुआ कि मुख से बिना पैदा हुए भी ब्राह्मण बन सकते हैं। जब मुख से पैदा होकर भी कई ब्राह्मण न बने और कई बिना मुख से पैदा हुए ब्राह्मण बन गये तो महज़ मुख से पैदा होना साबित करने के लिये निराकार शरीर

रहित ब्रह्म के मुखादि की कल्पना करना वेद विरुद्ध होने से महा पाप है ।

३४९ ( प्रश्न )—तृण अन्न वृक्ष पक्षी पशु पाषाण प्रभृति किसी भी जाति में गुणाधिक्य और गुणाभाव से परिवर्तन नहीं होता फिर मनुष्य जाति में कैसे होगा । पृ० ३१० पं० २१

उत्तर—श्रीमान् जी ! होश से बात करें । जाति कहते हो उस को हैं जो पैदा होने से मरने तक कोशिश करने पर भी तबदील न हो सके । कोई आदमी को गधा तथा गधे को आदमी इन की ज़िंदगी में नहीं बना सकता । क्यूंकि गधे में गधा पन तथा आदमी में आदमी पन ये जातियां हैं, जो तबदील नहीं हो सकतीं । परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये जातियां नहीं हैं, ये वर्ण हैं जो कि गुण कर्म स्वभाव की तबदीली से तबदील भी हो जाते हैं । जैसे--

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतिः ॥ २१ ॥
शूद्रेतु यद् भवेल्लक्ष्मद्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥ २५ ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणाः स्मृतः ॥
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २६ ॥

महा० वन० अ० १८०

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि हे सर्पराज ! सत्य दान क्षमा शील नम्रता तप पाप से घृणा, ये बातें जिस में नज़र आवें वह ब्राह्मण है ॥ २१ ॥ यदि शूद्र में ये चिह्न वा लक्षण हों और ब्राह्मण में ये लक्षण न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं

और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं ॥ २५ ॥ जिसके जीवन में ये लक्षण न हों उसी को शूद्र कहते हैं ॥ २६ ॥ इस से सिद्ध है कि और जातियों की भांति मनुष्य जाति भी तबदील नहीं हो सकती। किंतु वर्ण तबदील हो जाते हैं। क्यूंकि वर्ण और चीज़ है। जाति और चीज़ है।

३५० (प्रश्न) तद्य इह रमणीयाचरणा अभ्याशो हयन्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्योनिं वा ऽथयइह कपूयाचरणा अभ्याशो हयन्ते कपूयां योनि-मापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डाल योनिं वा ॥ ७ ॥

(छांदोग्य० ५। १०।७)

भाषार्थ—सो जो यहां शुभाचरण करता हैं। वे शीघ्र ही रमणीय योनि को प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण योनि वा क्षत्रिय योनि वा वैश्य योनि को प्राप्त होते हैं। और जो जीव यहां निन्दित कर्म वाले हैं। वे जीव निन्दित योनि को प्राप्त होते हैं। कूकर योनि को वा शूकरयोनि को वा चांडाल यानि को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

कल्पना करो एक मनुष्य ने पहिले जन्म में ऐसे कर्म किये जिन कर्मों से वह शूद्र योनि में उत्पन्न हुवा और उस का नाम झगडू रक्खा गया। अब वह पढ़ गया, पढ़ने पर ब्राह्मण बनना चाहता है, कैसे बनेगा। क्या वह पंडित शेखर-चन्द्र के पूर्वजन्मों के कर्मों से बन जावेगा,। वह पूर्व जन्म के कर्म किस के पूर्व कर्म से बदल डालेगा। पृ० ३१० पं० २४।

उत्तर—यह ठीक है कि किसी जीव का जन्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चांडाल के घर पूर्व शुभाशुभ कर्मों के अनुसार होता है। किन्तु जन्म होने के पश्चात् पिछले कर्म

उस को तरक्की और तन उज्जुल करने में रुकावट नहीं डालते। क्यूंकि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। पिछले शुभाशुभ कर्मों का फल उस को सुख वा दुःख के रूप में मिलेगा। किंतु पिछले किये हुए कर्म अगले किये जाने वाले कर्मों में रुकावट नहीं डालते। यदि अगले किये जाने वाले कर्मों में पिछले किये हुए कर्मों को कारण मान लिया जावे तो जीवन एक वार पाप कर्म करके नीच योनि को प्राप्त हो जावेगा फिर वह कभी भी उन्नति कर ही न सकेगा। क्यूंकि पिछले पाप कर्मों के कारण वह आगे को भी पाप कर्म ही करता चला जावेगा और पतित होता चला जावेगा। अतः यही ठीक है कि पिछले किये हुए कर्म अगले किये जाने वाले कर्मों में कारण नहीं हैं, पिछले कर्मों का फल सुख दुःख रूप में मिलेगा। आगे को वह स्वतंत्रता से अच्छे काम करके उन्नति तथा बुरे काम करके अवनति को प्राप्त हो सकता है। यदि कोई जीव अपने पिछले कर्मों के कारण शूद्र के घर पैदा होगया तो उस झगड़ू शूद्र को हक़ हासिल है कि वह आगे को शुभ कर्म करके उन्नति करके ब्राह्मण तक बन सके। वह किसी शेखरचन्द्र के कर्मों से नहीं अपितु अपने इस जन्म के शुभ कर्मों से उन्नति करेगा। जैसे कि अनेकों ने की। देखिये—

असितो देवलश्चैव तथानारद पर्वतौ।
काक्षीवान् जामदग्न्यश्च रामस्ताण्ड्यस्तथात्मवान्॥ १५॥
वशिष्ठो यमदग्निश्च विश्वामित्रोऽत्रिरेवच।
भरद्वाजो हरिश्मश्रुः कुण्डधारः श्रुतश्रवाः॥ १६॥
एते महर्षयः स्तुत्वाविष्णुमृग्मिः समाहिताः ।

लेभिरे तपसासिद्धिं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १७ ॥
अनर्हाश्चार्हतां प्राप्ताः सन्तं स्तुत्वा तमेव ह ।
नतुवृद्धि मिहान्विच्छेत् कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥ १८ ॥
( महा० शांति० अ० २६२ )

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्मसु ।
दाम्भिको दुष्कृतः प्रायः शूद्रेण सदृशो भवेत् ॥ १२ ॥
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः ।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः ॥ १३ ॥
महा० वन० अ० २१५

भाषार्थ--असित और देवल तथा नारद और पर्वत, काक्षीवान्, जामदग्न्य राम तथा आत्मवान् ताण्ड्य ॥ १५ ॥ वसिष्ठ यमदग्नि, और विश्वामित्र तथा अत्रि, भारद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधर, श्रुतश्रवा ॥ ९६ ॥ ये महर्षि एकाग्र मन से ऋचाओं द्वारा विष्णु की स्तुति करके उस बुद्धिमान् की दया से तप द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ अपूज्य थे किंतु उसी सन्त की स्तुति करके पूज्यपन को प्राप्त हो गये । इस संसार में किसी मनुष्य को पाप कर्म करके वृद्धि की इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥ १८ ॥

ब्राह्मण पतित करने वाले पाप कर्मों में वर्तमान हुआ मक्कार कुकर्मी प्रायः शूद्र के सदृश होता है ॥ १२ ॥ जो शूद्र दम, सत्य, और धर्म्म में सदा उन्नति करता है । उस को मैं ब्राह्मण मानता हूं । क्यूंकि आचार से ही द्विज होता है ॥ १३ ॥ इस से सिद्ध हुआ कि पूर्व कर्मानुसार हीन वर्ण में पैदा हो कर भी पुरुषार्थ से प्रत्येक मनुष्य उन्नति करके ब्राह्मण तक के पद को प्राप्त हो सकता है ।

३५१ ( प्रश्न ) जाति नाम शरीर का है। वह बदलेगा कैसे। हर्गिज़ नहीं बदल सकता ॥ पृ० ३११ पं० १३।

उत्तर—श्रीमान् जी ! यदि जाति नाम शरीर का है तो भी कोई आपत्ति नहीं। क्यूंकि ब्राह्मण से शूद्र तथा शूद्र से ब्राह्मण बनने के लिये शरीर के बदलने की ज़रूरत नहीं। अपितु गुणकर्म स्वभाव के बदलने से ही वर्ण बदल जाता है। जैसे कि—

जात कर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः षट्सु कर्म स्ववस्थितः ॥ २ ॥
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरु प्रियः।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥ ३ ॥
सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ४ ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययन संगतः।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५ ॥
विशत्याशु पशुम्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥ ६ ॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्व कर्मकरो शुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥ ७ ॥
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥ ८ ॥
( महा० शान्ति० अ० १८९ )

भावार्थ—जो जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत, शुद्ध, वेदों का स्वाध्याय करने वाला छे कर्मों में कायम हो ॥ २ ॥ शुद्ध आचार में क़ायम, पाप रहित भोजन करने वाला गुरु का

प्यारा सदा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला सत्यवादी हो, वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ३ ॥ सत्य, दान, अद्रोह, नम्रता कुकर्म से लज्जा घृणा तथा तप ये जहाँ पर नज़र पड़ें वह ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ४ ॥ क्षत्रियों के कर्मों का सेवन करने वाला, वेदों के अध्ययन में लगा हुआ, कर लेने तथा दानदेने में प्रेमी जो हो, वह क्षत्रिय कहा जाता है ॥५॥ जो पशुओं की विद्या में शीघ्र प्रवेश करने वाला, खेती करने दान देने में प्रेमी, शुद्ध वेदाध्ययन करने वाला हो, उस की वैश्य संज्ञा है ॥ ६ ॥ जो सदा सर्व भक्ष में प्रेमी, सब सेवा के काम करने वाला, अशुद्ध रहने वाला, वेदों का पढ़ना जिसने छोड़ दिया, आचार हीन हो वही शूद्र कहाता है ॥ ७ ॥ ये लक्षण यदि शूद्र में हों तथा द्विजमें न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं तथा वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं। अर्थात् जिस में जो लक्षण हों वह वही है ॥ ८ ॥ यहां कैसे स्पष्ट शब्दों में चारों वर्णों के गुण कर्म स्वभाव तथा वर्ण परिवर्तन का वर्णन है।

यद्यापि जाति शब्द वर्ण के लिये प्रयुक्त करना मुनासिब नहीं, तथापि जहां पर किसी ग्रन्थकार ने वर्ण के लिये जाति शब्द प्रयुक्त किया है, वहां पर जाति को परिवर्तन शील तथा जाति को शरीर से भिन्न भी माना है। जैसे—

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माताच भारत।
आचार्य शास्तायां जातिः सापुण्या साजरामरा ॥ ८ ॥
(महा० उद्योग० अ० ४३)

भाषार्थ—हे भारत! पिता और माता ये दोनों शरीर को बनाते हैं। आचार्य्य से नियत की हुई जो जाति है वही पवित्र

अजर और अमर है। यहां स्पष्टरूप से जाति को शरीर से भिन्न तथा परिवर्तन शील माना है। अतः यहां जाति नाम वर्ण का है और वस्तु का नहीं।

३५२ (प्रश्न) योग दर्शन लिखता है "जिस कर्म से जाति आयुभोग मिले हैं। जब तक उस कर्म को नहीं भोग लिया जावेगा जाति आयु भोग बदल नहीं सकती। पृ ३११ पं० १५

उत्तर—आपने वह सूत्र क्यूं नहीं दिया। केवल योग दर्शन का नाम लिख कर मनमाना अर्थ लिख दिया। लीजिये हम असल सूत्र और उस का वास्तव अर्थ देते हैं

सति मूले तद्विपाके जात्यायुर्भोगः ॥ योग० ॥

भाषार्थ—कर्मों के मूल कारण होने पर उस के फल में मनुष्य को जाति आयु तथा भोग मिलता है।

इस सूत्र से स्पष्ट है कि मनुष्य को कर्मों के अनुसार जाति आयु तथा भोग मिलता है। यहां भी जाति शब्द वर्ण का ही वाचक है। जैसे कंगाल आदमी पुरुषार्थ से सम्पत्ति प्राप्त करके भोग बदल सकता है। जैसे मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि साधनों से आयु को अधिक कर सकता है। वैसे ही प्रत्येक मनुष्य गुण कर्म स्वभाव से जन्म जाति को भी बदल सकता है। जैसे कि—

उत्पाद्यपुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र च।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः ॥ १३ ॥
पितामहश्चमेपूर्वमृष्यशृङ्गश्च कश्यपः।
वेदस्ताण्ड्यः कृपश्चैव काक्षीवत् कमठादयः ॥ १४ ॥
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः।
आयुर्मतङ्गो दत्तश्चदुपदो मात्स्य एव च ॥ १५ ॥

एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसो श्रयात् ।
प्रतिष्ठाता वेद विदो दमेन तपसैव हि ॥ १६ ॥
मूल गोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
अङ्गिराः कश्यपश्चैव वशिष्ठो भृगुरेव च ॥ १७ ॥
कर्मतो अन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
नामधेयानितपसा तानि च ग्रहणं सताम् ॥ १८ ॥

( महा० शान्ति० अ० २९६ )

भाषार्थ—मुनि लोगों ने जहां कहीं से पुत्रों को पैदा करके हे राजन् उन को अपने तप से फिर ऋषि बना दिया ॥१३॥ मेरा दादा वसिष्ठ, ऋष्यशृङ्ग, कश्यप, वेद, ताण्डय, कृपः, काक्षीवत् कमठ आदि ॥ १४ ॥ यवक्रीत, द्रोणाचार्य्य, आयु, मतङ्ग, दत्त, द्रुपद, माटव्य ॥ १५ ॥ हे जनक ये सब तप के आश्रय से अपनी पदवी को प्राप्त हुए, वेद के जाननेसे प्रतिष्ठित हुए, दम तथा तप से उन्नति कर गये ॥ १६ ॥ हे राजन् ! मूल गोत्र चार ही पैदा हुए । अंगिरा कश्यप वशिष्ठ और भृगु ॥ १७॥ हे राजन् ! अन्य गोत्र कर्म से पैदा हुए । सत्पुरुषों के तप के कारण नाम ग्रहण कर लिये गये ॥ १८ ॥

इस से स्पष्ट है कि कर्मानुसार आयु तथा भोग की भांति ही जाति अर्थात् वर्ण भी कर्मानुसार बदल जाता है ।

३५३ ( प्रश्न ) वेद में अनेक जातियों का वर्णन है । यजु० १६ । २८ में निषाद जातिका, १६ । २६ में क्षत्ता जाति का, १६ । २८ में तक्ष, रथकार, कुम्हार जाति का, ३० । ५ में अयोगू, मागध जाति का, ३० । ६ में सूत, शैलूष, रथकार जाति का ३० । ७ में मणिकार जाति का, ३० । ८ में धानुक जाति का,

३०। ११ में पीलवान्, साईस, गोपाल, अजपाल, सुराकार, जाति का, ३०। १६ धीवर दाश, वैन्द कैवर्त्त किरात जाति का, ३०। १७ में हिरण्यकार ३०। २० में वीणा वाद तलब जातिका, ३१। ३१ में चाण्डाल वंश नर्तन जाति का ३०। १२ में धोबी रंगरेज जाति का ३०। १५ में चमार जाति का ३०। १६ में भील जाति का, ३०। १४ में लुहार जाति का नाम मौजूद है। यदि गुणाधिक्य और गुण हीनता के आधार पर चार ही जातियां बन सकती हैं। तो फिर वेद ने इन विविध जातियों का उल्लेख क्यूं किया। पृ० ३११ पं० १६।

उत्तर—आप भी विचित्र प्रकृति के मनुष्य हैं। आप झूठ बोलने को तो चूर्ण की गोली समझते हैं। आपने यजुर्वेद के जितने प्रमाण पेश किये हैं एक में भी जाति शब्द मौजूद नहीं है। और न हीं वेद मनुष्यों में आप के कपोल कल्पित जाति भेद को मानता है। यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के तो जो आपने मन्त्र दिये हैं इन में तो प्रत्येक प्रकार के मनुष्य के साथ यथा योग्य वर्ताव की वेद ने शिक्षा दी है। इनमें जातियों का गन्ध भी नहीं है। जैसे कि—

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो। राथभ्यो-रथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः। संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो। महद्भ्योऽर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ २६॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः। कुलालेभ्यः कर्मारिभ्यश्च वो नमो नमो। निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नम नमः। श्वनिभ्यो मृग्युभ्यश्च वो नमः॥ २७॥

(यजु० अ० १६)

भाषार्थ—हे राज और प्रजा के पुरुषो ! जैसे हम लोग शत्रुओं को बांधने हारे सेनास्थ पुरुषों का सत्कार करते और तुम सेना के नायक प्रधान पुरुषों को अन्न देते हैं। प्रशंसित रथों वाले पुरुषों का सत्कार और तुम रथों से पृथक् पैदल चलने वालों का सत्कार करते हैं क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए के लिये अन्नादि पदार्थ देते और तुम अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करने हारों का सत्कार करते हैं। विद्या और अवस्था में वृद्ध पूजनीय महाशयों को अच्छा पकाया हुआ अन्नादि देते और तुम क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का निरंतर सत्कार करते हैं। वैसे तुम लोग भी दिया किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—राज पुरुषों को चाहिये कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षा पूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म्म से राज्य का पालन करें ॥ २६ ॥ हे मनुष्यो जैसे राजा आदि हम लोग पदार्थों को सूक्ष्म क्रिया से बनाने हारे तुम को अन्न देते और बहुत से विमानादि यानों को या बनाने हारे तुम लोगों का परिश्रमादि का धन दे के सत्कार करते हैं। प्रशंसित मट्टीके पात्र बनाने वालों को अन्नादि पदार्थ देते और खड्ग बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनाने वाले तुम लोगों का सत्कार करते हैं। वन और पर्वतादि में रहकर दुष्ट जीवों को ताड़ना देने वाले तुम को अन्नादि देते और श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण तुम्हारा सत्कार करते हैं। कुत्तों को शिक्षा करने हारे तुम को अन्नादि देते और अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का सत्कार करते हैं। वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोग जो पदार्थ विद्या को जान के अपूर्व कारीगरी युक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें उनको सुख प्राप्त करावें ॥ २७ ॥

कहियेगा श्रीमान् जी ! इसमें जातियों का वर्णन कहां है

( १ ) १६ ।२६ में किसी क्षत्ता नाम की जाति का वर्णन नहीं है अपितु वेद ने एक उदाहरण देकर हमें यह आज्ञा दी है कि प्रतिलोमज सन्तान का भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार यथा वर्ण अन्नादि पदार्थों तथा नमस्कारादि प्रिय शब्दों से सत्कार करो—

( २ ) १६ । २७ में किसी निषाद जाति का वर्णन नहीं है अपितु जो वन और पर्वतादि में रह कर दुष्ट जीवों को ताड़ना दे, उसी का नाम निषाद है ।

( ३ ) १६ । २७ में तक्ष नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो पदार्थों को सूक्ष्म क्रिया से बनावे उसी का नाम तक्ष है ।

( ४ ) १६ । २७ में रथकार किसी विशेष जाति का नाम नहीं हैं अपितु जो बहुत से विमानादि यानों को बनावे उसी का नाम रथकार है ।

( ५ ) २६ । २७ में कुम्भकार व कुलाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो प्रशंसित मिट्टी के पात्र बनावे उसी का नाम कुलाल है ।

यजुर्वेद के इन दोनों मंत्रों में जैसे सेना, सेनानि, रथि, अरथि, संग्रहीता, महान्, अर्भक, कर्म, पुञ्जिष्ठ, स्थनि, मृदु,

ये विशेष जातियों का नाम नहीं अपितु विशेष गुण वाले तथा विशेष अवस्था वाले मनुष्यों का वर्णन है। वैसे ही क्षत्ता, तक्ष, रथकार, कुलाल तथा निषाद भी विशेष गुण रखने वाले मनुष्यों का नाम है। विशेष जातियों का नाम नहीं है। और विशेष गुणों के कारण उपरोक्त सब प्रकार के विशेष गुण रखने वाले मनुष्यों का अन्नादि पदार्थों तथा नमस्कार आदि प्रिय वचनों से आदर सत्कार करने की वेद ने आज्ञा दी है।

अब रही बात यजुर्वेद के तीसवें अध्याय की, सो इस में भी कर्मानुसार मनुष्य जाति के विभागों का वर्णन है, विशेष जातियों का वर्णन नहीं है। इस बात को स्वयं वेद ही कहता है। जैसे कि—

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥४॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस सुखों के निवास के हेतु आश्चर्य रूप धन का विभाग करने हारे, सब के उत्पादक सब मनुष्यों के अन्तर्यामी स्वरूप से सब कामों के देखने हारे परमात्मा की हम लोग प्रशंसा करें, उस की तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥४॥

भावार्थ—हे राजन्! जैसे ईश्वर अपने २ कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है। वैसे आप भी देओ। जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्य रूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस के लिये देता है वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म हैं उस को वैसा वा उतना फल दीजिये। जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़ कर सब जीवों में वर्तता है। वैसे आप भी वर्तिये ॥४॥

इस की ताईद आप के भाष्यकार उव्वट भी करते हैं कि—

'विभक्तारं कर्मानुरूपेण विभक्तारम्' कर्मों के अनुसार विभाग करने वाले परमात्मा को स्वीकार करें।'

बस इस मन्त्र की रोशनी में सारे अध्याय का अर्थ कर्मानुसार (पेशों के मुताबिक) मनुष्य जाति का विभाग करता है, जैसे कि—

( ६ ) "अक्रायाया अयोगूम्" ३०। ५ में अयोगू किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो लोहे के हथियार विशेष के साथ चलने वाला जन हो, उसी का नाम अयोगू है।

( ७ ) "अतिक्रुष्टाय मागधम्" ३०। ५ इस मंत्र में मागध किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो मनुष्यों की प्रशंसा करे उसी का नाम मागध है।

( ८ ) "नृताय सूतम्" ३०। ६ इस मंत्र में सूत किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो नाचने का काम करे उसी का नाम सूत है।

( ९ ) "गीताय शैलूषम्" ३०। ६ में शैलूष किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो गाने हारा नट का काम करे उसी का नाम शैलूष है।

( १० ) "मेधायै रथकारम्" इस मंत्र में रथकार किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो विमानादि को रचने हारा कारीगर हो उसी का नाम रथकार है।

( ११ ) "रूपाय मणिकारम्" इस मंत्र में मणिकार किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो भी मणियों के बनाने का काम करे उसी का नाम मणिकार है।

( १२ ) "नदीभ्यः पौंजिष्ठम्" ३० । ८ इस मंत्र में पौंजिष्ठ नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो जन नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हो उसका नाम पौंजिष्ठ है।

( १३ ) "अर्मेभ्यो हस्तिपम्" ३० । ११ में हस्तिप नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो हाथियों का रक्षक हो उसी का नाम हस्तिप है।

( १४ ) "जवाय अश्वपम्" ३० । ११ में अश्वप किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो कोई भी घोड़ों का रक्षक शिक्षक होगा उसी का नाम अश्वप होगा।

( १५ ) "पुष्ट्यै गोपालम्" ३० । ११ में गोपाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो गौवों के पालने हारा हो उसी का नाम गोपाल है।

( १६ ) "वीर्यायाविपालम्" ३० । ११ यहां पर अविपाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो भेड़ों का पालन पोषण करे उसी का नाम अविपाल है।

( १७ ) "तेजसेऽजपालम्" ३० । ११ यहां पर अजपाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो बकरियों की रक्षा करे उसी का नाम अजपाल है।

( १८ ) "कीलालाय सुराकारम्" ३० । ११ यहां पर सुराकार नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जो भी सोम आदि औषधियों का रस निकालने वाला हो उसी का नाम सुराकार है।

(१९) "सरोभ्यो धैवरम्" ३०।१६ यहां पर धीवर नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो समुद्र दरया तालाबों

आदि में तैरने आदि की बुद्धि पूर्वक क्रिया को ग्रहण करता है उसी का नाम धीवर है।

(२०) 'उपस्थावराभ्योदाशम्' ३०।१६ इस में दाश नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जिस को खान-पान देकर सेवक के काम पर लगाया जावे उसी का नाम दाश है।

(२१) "वैशन्ताभ्योवैन्दम्" ३०।१६ यहां पर वैन्द नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जो छोटे २ जलाशयों का प्रबंध करे उसी का नाम वैन्द है।

(२२) "अवाराय कैवर्तम्" ३०।१६ में कैवर्त नाम किसी विशेष जाति का नहीं है; अपितु जो जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाला हो, उसी का नाम कैवर्त है।

(२३) "गुहाभ्यः किरातम्" ३०।१६ यहां किरात नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो पहाड़ों की गुहा में रहने वाला जंगली मनुष्य हो उसी का नाम किरात है।

(२४) "वर्णाय हिरण्यकारम्" ३०।१७ यहां पर हिरण्य-कार नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो भी सोने आदि धातुओं का काम करे उसी का नाम हिरण्यकार है।

(२५) "महसे वीणावादम्" ३०।२० यहां पर वीणावाद किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो भी वीणा को बजावे उसी का नाम वीणावाद है।

(२६) "आनन्दायतलवम्" ३०।२० यहां पर तलव नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो भी राग में ताली आदि के बजाने वाला हो उसे ही तलव कहते हैं।

(२७) "वायवे चाण्डालम्" ३०।२२ यहां पर चांडाल नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जो भी नीच काम करे उसी का नाम चांडाल है।

(२८) "अंतरिक्षाय वंशनर्तिनम्" ३०।२१ यहां पर वंश नर्ती किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी बांस लेकर उससे नाचने खेलने का काम करे उसी का नाम वंशनर्ती है।

(२९) "मेधायवासः पल्पूलीम्" ३०।१२ में वासः पल्पूली किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी वस्त्रों को साफ करने वाली ओषधि वा स्त्री हो उसी का नाम वासः पल्पूली है।

(३०) "प्रकामाय रजयित्रीम्" ३०। १२ यहां पर रजयित्री नाम किसी विशेष जाति का नहीं है। अपितु जो भी उत्तम रंग करने वाली औषधि व स्त्री हो, उस का नाम रजयित्री है।

(३१) "साध्येभ्यश्चर्मम्नम्" ३०।१५ यहां पर चर्मम्न नाम किसी विशेष जाति का नहीं है। अपितु जो चमड़े के विज्ञान में अभ्यास करने वाला है, उसी का नाम चर्मम्न है।

(३२) "स्वनेभ्यः पर्णकम्" ३०।१६ यहां पर पर्णक नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो रक्षा करने में निन्दित हो उसी का नाम पर्णक है।

(३३) "मन्यवेऽयस्तापम्" ३०।१४ यहां पर अयस्ताप नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो भी लोहे को तपाकर उस से विविध प्रकार की वस्तुएं बनावे उसी का नाम अयस्ताप है।

ये जातियें नहीं हैं, अपितु कर्मानुसार पेशे के लिहाज़ से मनुष्य जाति के भेदों का वर्णन है। और पेशे के बदलने से नाम भी बदल जाते हैं। इन में से मागध, शैलूष, तलव, वीणावाद्, ब्राह्मण और अयोगू, वैन्द, वर्णक क्षत्रिय तथा तक्ष, रथकार, कुंभकार, मणिकार, हस्तिप, अश्वप, गोपाल, अविपाल, अजपाल, सुराकार, धैवर, कैवर्त, हिरण्यकार, वंशनर्ती, पल्पूली, रजयित्री, चर्मघ्न, अयस्ताप, ये सब वैश्य तथा दाश शूद्र वर्ण में तथा चांडाल, पौंजिष्ठ, सूत, निषाद, तथा किरात ये अति शूद्र हैं। इससे साबित हुआ कि मनुष्य जाति में ये कर्मानुसार नाम भेद चारों वर्णों में आजाता है और जो चार वर्ण से बाहर हैं वे अति शूद्र कहे जाते हैं। अतः यहां जन्म जाति का वर्णन नहीं अपितु कर्मानुसार मनुष्य जाति में वर्ण भेद तथा नाम भेद का वर्णन है।

३५४ ( प्रश्न ) जाति का आधार पेशा नहीं है किन्तु रजवीर्य है। फिर हम कैसे मान लें कि जाति पेशे से होती है। पृ० ३१२ पं० १४।

उत्तर—हम जातिका आधार पेशा नहीं मानते अपितु वर्ण का आधार पेशा मानते हैं। और यदि जाति शब्द से आपका अभिप्राय वर्ण से है। तो वर्ण का आधार रजवीर्य नहीं है, अपितु गुणकर्म स्वभाव है। और गुणकर्म स्वभाव की तबदीली हो जाती है। जैसे कि—

शरीरमेवसृजतः पिता माता च भारत।
आचार्य शिष्टाया जातिः सादिव्या साजरामरा ॥१८॥
(महा० शान्ति० अ० १०८)

चातुर्वर्ण्यमयासृष्टं गुणकर्म विभागशः ॥ १३ ॥
( महा० भीष्म० अ० २८ )

वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥ १० ॥
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योधव्यं क्षत्रबंधुना ।
शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ॥ ११ ॥
सलिलादुत्थितोवह्निर्येनव्याप्तंचराचरम् ।
दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम् ॥ १२ ॥
आग्नेयः कृत्तिका पुत्रो रौद्रो गांगेय इत्यपि ।
श्रूयते भगवान् देवः सर्वगुह्यमयो गुहः ॥ १३ ॥
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः ।
विश्वामित्र प्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥ १४ ॥
आचार्य्यः कलशाज्जातोद्रोणः शस्त्रभृतांवरः ।
गोतमस्यान्ववायेचशरस्तम्बाच्च गौतमः ॥ १५ ॥
भवतां च यथा जन्म तदप्यागमितं मया ॥ १६ ॥
( महा० आदि० अ० १३९ )

आचार्य्य त्रिविधा योनौ राज्ञां शास्त्रविनिश्चये ।
सत् कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनाँ प्रकर्षति ॥ ३५ ॥
यद्ययं फाल्गुणो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति ।
तस्मोदेषोऽङ्गविषये मयाराज्येऽभिषिच्यते ॥ ३६ ॥
(महा० आदि० अ० १३८)

एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ॥ ९ ॥
तस्मिन्नेव तदातीर्थे सिंधुद्वीपः प्रतापवान् ।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत् ॥ १० ॥
तथाच कौशिकस्तात तपो नित्यो जितेन्द्रियः ।

तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥ ११ ॥
(महा० शल्य० अ० ४०)

भाषार्थ—हे भारत! माता पिता तो शरीर ही बनाते हैं। परन्तु आचार्य्य से नियत की हुई जाति है वही दिव्य है, वही अजर अमर है॥ १८॥ मैंने चारों वर्णों को गुण कर्म के विभाग से बनाया है। ॥ १३॥ हे भीम! इस प्रकार की बात कहना तुम्हें योग्य नहीं है ॥ १०॥ क्षत्रियों में बल ही प्रधान है, क्षत्रिय बन्धु से युद्ध करना चाहिये। शूर वीर और नदियों के निकास जानने कठिन हैं ॥ ११॥ पानी से आग पैदा हुई जो सारे जगत् को व्याप्त कर रही है। दधीच की हड्डी से दानवों का नाशक वज्र बनाया गया ॥ १२॥ कृत्ति का पुत्र कर्तिकेय अग्नि से पैदा हुआ, गांगेय रुद्र से पैदा हुआ सुनते हैं कि देव सर्वगुह्य मय गुहक था ॥ १३॥ क्षत्रियों में से कई एक ब्राह्मण बन गये, विश्वामित्र आदि अक्षय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए ॥ १४॥ द्रोणाचार्य्य शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कलश से पैदा हुए। गोतम के कुल में शरस्तम्ब से कृपाचार्य्य पैदा हुए ॥ १५॥ और आप लोगों का भी जैसे जन्म हुआ है, मैं जानता हूं ॥ १६॥

हे आचार्य्य! शास्त्र के निश्चयानुसार राजाओं की तीन प्रकार की योनि है, सत्कुलीन, शूरवीर, और सेनापति ॥ ३५॥ यदि यह अर्जुन युद्ध में बिना राजा के साथ युद्ध करना नहीं चाहता तो मैं दुर्योधन इस कर्ण का अंग देश के राज्य के लिये अभिषेक करता हूं ॥ ३६॥

वह प्रतापी अधिषेण इस प्रकार से सिद्ध बन गया

॥ ६ ॥ उस ही तीर्थ में प्रतापी सिंधुद्वीप और देवापि दोनों ब्राह्मणता को प्राप्त होगये ॥१०॥ हे प्यारे विश्वामित्र भी इन्द्रियों को जीत तप कर उस तप से ब्राह्मण बन गया ॥ ११ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि कोई मनुष्य कहीं से भी पैदा हुआ हो किन्तु वह गुण कर्म स्वभाव के अनुसार प्रत्येक वर्ण को प्राप्त हो सकता है। वर्णका आधार जन्म तथा रजवीर्य शरीर में ही कारण है। वर्ण की तबदीली के लिये शरीर की तबदीली की ज़रूरत नहीं। पेशे के बदलने से वर्ण भी बदल जाता है।

५५ ( प्रश्न )—ब्राह्मण्यां वैश्य संसर्गाज्जातोमागध उच्यते ।
वन्दित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः ७ ॥
( औशनस स्मृति )

भावार्थ—ब्राह्मणी में जो वैश्य के संसर्ग से उत्पन्न हो उसे मागध कहते हैं। यह ब्राह्मणों तथा विशेष कर क्षत्रियों का वन्दी ( स्तुति करने वाला ) होता है।

एक मागध जाति का ही यह नियम नहीं है वरना जितनी भी जातियां स्मृतियों ने दिखलाई हैं। पहिले उन जातियों की उत्पत्ति का कारण फिर जाति का नाम, नामके पश्चात् जाति का पेशा बतलाया है। इस व्यवस्था को देख कर कोई भी न्यायशील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि पेशे से जातियां बनती हैं। पृ० ३१२ पं० २६

उत्तर—वेद ने "क्षत्तृभ्यो नमः" यजु० १६।२६ में इशारा करके हमें बतला दिया कि प्रतिलोमजों की कर्मानुसार यथा वर्ण आदर सत्कार नमस्कारादि प्रियवचनों से

पूजा करो। इस का अभिप्राय यह है कि प्रतिलोमजों की उन के कर्मों के अनुसार वर्ण व्यवस्था कर के तदनुसार उन का सत्कार करना चाहिये। इसी बात को मनु जी महाराज ने वर्णन किया है कि—

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षंचापकर्षंच मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

( मनु० १० )

भाषार्थ—वे अनुलोमज तथा प्रतिलोमज प्रत्येक युग में प्रतिलोमज तप के प्रभाव से तथा अनुलोमज तप और बीज के प्रभाव से इस संसार में मनुष्यों में जन्म की निस्बत ऊंचे वर्ण को तथा नीचे वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

जब अनुलोमज तथा प्रतिलोमज कर्मानुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र बन सकते हैं। तो फिर आप की वह ध्यूरी कि पहिले वर्ण का निश्चय होकर फिर कर्म का निश्चय होना चाहिये, वेद के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है। और आप की स्मृति भी वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा मिथ्या प्रलाप ही है।

३५६ (प्रश्न)—बंध्या गौ न प्रसूता होती है और न दूध ही देती है। किंतु जाति की वह गौ ही रहती है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मण का कार्य्य न कर सकने पर भी ब्राह्मण ही रहता है। पृ० ३१३ पं० १।

उत्तर—आपका दृष्टान्त विषम होने से असत्य है। क्योंकि गौ जाति की भान्ति ब्राह्मण जाति नहीं है। अपितु ब्राह्मण वर्ण है। हां गौ जाति की भांति मनुष्य जाति है। जैसे

वंध्या गौ प्रसूता न होने तथा दूध न देने पर भी गौ ही रहती है, इसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य भी विद्या और गुण हीन होने पर भी जाति से मनुष्य ही रहता है। जैसे बंध्या गौ को दुधार नहीं कह सकते, ऐसे ही मूर्ख मनुष्य को भी ब्राह्मण नहीं कह सकते। मनुष्य जाति में गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। जो कि गुण कर्म स्वभाव के तबदील होने पर तबदील हो जाते हैं। जैसा कि—

(१) पृथुस्तु विनयाद् राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥४३॥ मनु ०७

गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान् (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—विनय से पृथु और मनु ने राज्य को प्राप्त किया तथा कुबेर ने विनय से धनैश्वर्य को प्राप्त किया। और गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने क्षत्रिय होते हुए उसी देह से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया।४२॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रियात्।४२। मनु १०

भाषाथ—ब्राह्मण मांस लाख और नमक के बेचने से तत्काल पतित हो जाता है। और तीन दिन दूध बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

(३) वाशिष्ठीं समतिक्रम्य सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥४८॥
( महा० वन० अ० ८४ )

भाषार्थ—वाशिष्ठी नदी में स्नान करने से सब वर्ण ब्राह्मण बन जाते हैं ॥४८॥

(४) इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः क्षत्रियः कर्मणाभवत् ॥११॥
( महा० शान्ति० अ० २२ )

भाषार्थ—इन्द्र ब्रह्मा का पुत्र होकर भी कर्म से क्षत्रिय बन गया ॥११॥

(५) शूद्रो राजन् भवति ब्रह्मबन्धु
दुश्चरित्रो यश्चधर्म्मादपेतः ।
वृषलीपतिः पिशुनोनर्त्तनश्च
ग्राम प्रेष्यो यश्च भवेद्विकर्मा ॥४॥
(महा० शान्ति० अ० ६३ )

भाषार्थ—हे राजन् ! जो ब्राह्मण बदचलन, धर्म्म से पतित, शूद्रापति, चुगलखोर, नचनवा, सिंधारा, पहुंचाने वाला, और दुष्कर्मी हो वह शूद्र हो जाता है ॥४॥

(६) युधिष्ठिर उवाच—वीत हव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः ।
तदेव तावद्गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ।३।
भीष्म उवाच—शृणु राजन् यथा राजा वीत हव्यो महा यशाः ।
राजर्षि र्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोक सत्कृतम् ।५।
( महा० अनुशा० अ० ३० )

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने पूछा कि मैंने सुना है कि राजा वीत हव्य ब्राह्मण बन गया । हे गांगेय प्रभो ! वह अब मैं सुनना चाहता हूं ॥३॥

भीष्म ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! जिस प्रकार से राज ऋषि वीतहव्य महान् यशस्वी पूजा के योग्य ब्राह्मण पद को प्राप्त हुआ, वह सुनिये ॥५॥ राजा प्रतर्दन ने वीत हव्य के पुत्रों पर चढ़ाई की और उसने वे सब लड़ाई में मार दिये तब

वीतहव्य नगर से भाग कर भृगु के आश्रम में चला गया। भृगु ने उसको अभय दान दिया। उसके पीछे ही पीछे प्रतर्दन गया। और आश्रम में आवाज दी। तब भृगु मुनि बाहर निकले और राजा प्रतर्दन का सत्कार किया। प्रतर्दन ने कहा कि आपके आश्रम में वीत हव्य राजा आया है। उसने हमारा वंश नाश कर दिया है। मैं उस का वध करूंगा। यह सुन कर भृगु जो बोले—

तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्म्मभृतां वरः ॥५२॥
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित् सर्वे हीमे द्विजातयः।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ॥५३॥
पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्।
एवमप्यस्मि भगवन् कृतकृत्यो न संशयः ॥५४॥
य एष राजा वीर्येण स्वजाति त्याजितो मया।
अनुजानीहि मां ब्रह्मन् ध्यायस्व च शिवेन माम् ॥५५॥
त्याजितो हि मया जाति मेष राज भृगूद्वह।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः ॥५६॥
यथागतं महाराज मुक्त्वा विषमिवोरगः।
भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ॥५७॥
एवं विप्रत्वमगमत् वीतहव्यो नराधिपः।
भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ ॥६६॥

(महा० अनुशा० अ० ३०)

भावार्थ—धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ भृगु दयालु हो कर प्रतर्दन से बोले ॥ ५२ ॥ इन में से क्षत्रिय यहां कोई भी नहीं है। ये सब ब्राह्मण हैं। इस प्रकार से भृगु की

सत्य वाणी को सुन कर प्रतर्दन ॥ ५३ ॥ आहिस्ता से पाओं छू कर हर्ष पूर्वक बोला। भगवन् मैं इस प्रकार से भी निः-संदेह कृतकृत्य हूं ॥ ५४ ॥ जो ये राजा बल से मैंने अपनी जाति से हीन कर दिया। हे ब्राह्मण ! मुझे आज्ञा दे तथा मेरे लिये कल्याण वचन दे ॥ ५५ ॥ हे भृगूद्वह ! मैंने यह राजा जाति से हीन कर दिया उस के पीछे राजा प्रतर्दन आज्ञा लेकर चला गया ॥ ५६ ॥ जिधर से आया था उधर ही चला गया, जैसे सांप विष का त्याग करके चला जाता है। भृगु के वचन मात्र से ही वह वीतहव्य ब्रह्म ऋषि पद को प्राप्त हो गया ॥ ५७ ॥ राजा वीत हव्य इस प्रकार से ब्राह्मण पद को प्राप्त होगया। हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! हे राजेन्द्र ! इस प्रकार भृगु की कृपा से क्षत्रिय वीत हव्य ब्राह्मण व गया ॥ ६६ ॥

न नाभागोदिष्टपुत्रोऽभूत्स तु ब्राह्मणतां गतः।
स्वक्षत्र वंशं संस्थाप्य ब्रह्मकर्ममिरावृतः ॥ ४८ ॥
धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयंगतां क्षितौ ॥ ४९ ॥
(शिव० उमा० अ० ३६)

भाषार्थ—नाभागदिष्ट के पुत्र हुए और ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए, अपने क्षत्रिय वंश को स्थापन करके ब्राह्मण के कर्मों में प्रवृत्त हुए ॥ ४२ ॥ धृष्ट से धार्ष्ट हुए, वे पहिले क्षत्रिय थे फिर पृथिवी पर ब्राह्मण बन गये ॥ ४९ ॥

(८) वृषघ्नस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः।
पालयामास गायत्तो रात्र्यां वीरासन व्रतः ॥ ५३ ॥
सएकदाऽगतं गोष्ठे व्याघ्रं गा हिंसितुं बली।
श्रुत्वा गो क्रन्दनं बुद्धो हन्तुं तं खड्गधृग्ययौ ॥ ५४ ॥

अजानन्नहनद्वभ्रो शिर श्शार्दूल शंकया ।
निश्चक्राम समीव्याघ्रोदृष्ट्वा तंखड्गिनं प्रभुम् ॥ ५२ ॥
श्रुत्वातद्वृत्तमाज्ञायतं शशापकृतागसम् ।
अकामतो विचार्य्येति शूद्रो भव न क्षत्रियः ॥५८॥
एवं शप्तस्तु गुरुणा कुलाचार्येण कोपतः ।
निसृतश्च वृषघ्नस्तु जगाम विपिनं महत् ॥५९॥

(शिव० उमा० अ० ३६)

भाषार्थ—वृषघ्ननाम मनु पुत्र को गुरु ने गोपाल बनाया। और वह बीरासन लगा सावधान हो रात्रि में गौवों का पालन करता था॥ ५३ ॥ किसी समय गौवों को मारने के लिये गोशाला में आये व्याघ्र को देख गौवों के रुदन को सुन, जागके उस को मारने के लिये खड्ग धारण करके वह बली गया ॥ ५४ ॥ और सिंह के भ्रम से विना जाने गाय के बछड़े के शिर को काट दिया। तब उस खड्गधारी प्रभु को देख वह व्याघ्र भय भीत हो बाहर निकल गया ॥ ५५ ॥ उस वृत्तान्त को सुन के गुरु ने उस अपराधी को शाप दिया। अकाम से बिना विचार के काम करने से तू शूद्र होगा क्षत्रिय न रहेगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार कुलाचार्य्य गुरु ने उसे क्रोध से शाप दिया तब वह वृषघ्न निकल के सघन बन में चला गया ॥ ५९ ॥

(९) इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः-
ब्राह्मणःसप्त रात्रेणवैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥

(मनु० १०)

भाषार्थ—और तिजारत की चीज़ों को इच्छानुसार इस

संसार में बेचने से ब्राह्मण सात रात में वैश्य पद को प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥

ये थोड़े से प्रमाण दे दिये हैं। इस प्रकार के सैंकड़ों प्रमाण ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। जिन से यह साबित है कि मनुष्य जाति में ये चारों वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र गुण कर्म स्वभाव के अनुसार हैं और गुणकर्म स्वभाव के तबदील होने से ये भी तबदील हो जाते हैं। इस से यह साबित है कि ब्राह्मणादि वर्ण गौ आदिवत् जातियाँ नहीं हैं। अपितु ये मनुष्य जाति के ही कर्मानुसार वर्ण भेद हैं। और ब्राह्मण के घर पैदा होकर ब्राह्मण के कर्म न करने वाला इतना ही नहीं कि ब्राह्मण नहीं रहता अपितु क्षत्रिय वैश्य शूद्र यहां तक कि रावण की भांति राक्षस भी हो जाता है।

३५७ ( प्रश्न )—तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः ॥
( महाभाष्य पस्पशाह्निक )

भाषार्थ—तप, विद्या, योनि, इन तीन से पूर्ण ब्राह्मण बनता है। विद्या और तप इन दो से हीन रहा ब्राह्मण जाति का ब्राह्मण है॥

उत्तर—निम्न हेतुओं से आपका श्लोक तथा तत् प्रतिपादित विषय मिथ्या होने से अप्रमाण हैं।

( १ ) यह श्लोक महाभाष्य के पस्पशाह्निक में नहीं है।

( २ ) आपने अपनी पुस्तक में पृ० १३९ पं० २२ में लिखा है कि शब्द विषय में व्याकरण स्वतः प्रमाण है। अतः धर्म्म विषय में आप के ही लेखानुसार महाभाष्य प्रमाण नहीं हो सकता।

( ३ ) जमदग्नि की माता गाधी की लड़की क्षत्राणी सत्यवती थी किंतु वह ब्राह्मण बने। ( महा० अनु० अ० ४ )

( ४ ) विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी किन्तु आप उसे जन्म से ही ब्राह्मण मानते हैं। ( महा० अनु० अ० ४ )

( ५ ) हरिणीगर्भसंभूतः ऋष्यशृङ्गो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणोजातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—हरिणी के गर्भ से पैदा होकर ऋष्यशृङ्ग मुनि ब्राह्मण तप से बन गये, इस में संस्कार कारण था ॥ २६ ॥

( ६ ) श्वपाकीगर्भ संभूतः पिता व्यासस्य पार्थिव।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २७ ॥

भाषार्थ—चाण्डाली के गर्भ से पैदा होकर व्यास का पिता पराशर तप से ब्राह्मण बन गया, इस में संस्कार कारण है ॥ २७ ॥

( ७ ) उलूकी गर्भ संभूतः कणादाख्यो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २८ ॥

भाषार्थ—उलूकी के गर्भ से पैदा हो कर महामुनि कणाद तप से ब्राह्मण बन गये, इस में संस्कार कारण था ॥२८॥

(८) गणिका गर्भ संभूतो वशिष्टश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥२९॥

भाषार्थ—गणिका के गर्भ से पैदा हो कर महामुनि वशिष्ठ तप से ब्राह्मण बन गये। क्या इस में संस्कार कारण था ॥२९॥

(९) नाविका गर्भ संभूतो मन्दपालो महामुनिः।

तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥३०॥

(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

भावार्थ—नाविका के गर्भ से पैदा हो कर महामुनि मन्दपाल तप से ब्राह्मण बन गये। इस में संस्कार कारण था ॥३०॥

(१०) व्यास की माता सत्यवती ब्राह्मणी न थी किंतु व्यास जी ब्राह्मण थे। (महा० आदि० अ० १०५)

(११) कृपाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी किंतु वह ब्राह्मण बन गये। (महा० आदि० अ० १३०)

(१२) द्रोणाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी किंतु वह ब्राह्मण बन गये। (महा० आदि० अ० १३१)

(१३) सोमश्रवा की माता सांपनी थी किंतु वह ब्राह्मण बन गये। (महा० आदि० अ० ३)

(१४) शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नर वराधिप ॥५१॥

(वाल्मी० अयो० स० ६३)

अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥५५॥

(वाल्मी० अयो० स०६४)

भावार्थ—सरवण ने कहा—हे राजन्! मैं वैश्य से शूद्रा में पैदा हुआ हूं ॥५१॥

सरवण के बापने कहा कि हे दशरथ! चूंकि तू क्षत्रिय ने अज्ञान से सरवण मुनि को मार दिया इस लिये तुझ को ब्रह्म हत्या नहीं लगती।

सरवण की माता शूद्रा थी वह ब्राह्मण बन गया।

तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु।
वैश्यः स्वजात्यां विन्देत तास्वपत्यं समं भवेत् ॥१०॥

(महा० अनु० अ० ४४)

अब्राह्मणान्तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात्।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत् ॥१७॥

भावार्थ—ब्राह्मण की ब्राह्मणी क्षत्राणी वैश्या तीन स्त्रियां हैं, क्षत्रिय की क्षत्राणी तथा वैश्या दो, वैश्य को एक वैश्या ही स्त्री है उन से पैदा हुई सन्तान समान वर्ण ही होगी अर्थात् पिता के अनुकूल वर्ण होगा ॥१०॥

बेवकूफी से कई लोग शूद्रा के पुत्र को ब्राह्मण नहीं मानते, किन्तु तीनों ब्राह्मणवर्णों की स्त्रियों में ब्राह्मण से पैदा हुआ ब्राह्मण ही होता है ॥१७॥

(१६) एतैः कर्मफलैर्देवि न्यून जाति कुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागम संपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥४६॥
ब्राह्मणो वाप्य सद्वृत्तः सर्व संकर भोजनः।
ब्राह्मण्यं समनूत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥४७॥
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥५०॥

(महा० अनु० अ० १४३)

भावार्थ—हे देवि! इन कर्मों के फल से हीन जाति कुल में पैदा हुआ शूद्र भी वेद से सम्पन्न हुआ संस्कार से द्विज हो जाता है ॥४६॥ और ब्राह्मण भी दुराचारी सर्व भक्षी ब्राह्मण पद को छोड़ कर शूद्र ही हो जाता है ॥४७॥ ब्राह्मण बनने में न योनि कारण है न संस्कार और न श्रुत और न सन्तति

कारण हैं। अपितु ब्राह्मण बनने में आचरण अर्थात् कर्म ही कारण है।

३५८ (प्रश्न)—"भूतानां प्राणिन इत्यादि मनु० १।९६-९७" इन श्लोकों में साफ लिखा है कि मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ। विना पढ़े ब्राह्मण होते हैं तब तो मनु ने दो प्रकार के ब्राह्मण माने। एक विना पढ़े और एक विद्वान्। पृ० ३१३। पं० १०

उत्तर—कुर्बान जायें आपकी मन्तक् दानी के। आपने तो लाल भुजक्कड़ को भी मात कर दिया। यदि मनु ने यह कह दिया कि ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं तो क्या इससे यह साबित हो गया कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है। तो क्या सब की विद्या समान ही होती है। कदापि नहीं। श्रीमान जी! ब्राह्मणों में भी विद्या की कमी ज़ियादती के कारण अनेक भेद हैं। जैसे विप्र, ब्राह्मण, मुनि, ऋषि, उपाध्याय, गुरु, आचार्य, ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता, होता। अतः यहां पर ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं इसका यह अभिप्राय है कि ब्राह्मणों में जो विशेष विद्वान् हैं, वे श्रेष्ठ हैं। इन श्लोकों का अर्थ निम्न प्रकार से है, कि—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ९६॥
ब्राह्मणेषु चविद्वांसो विद्वत्सुकृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः॥ ९७॥ मनु० अ० १

भाषार्थ—भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं। प्राणियों में बुद्धि से जीवन व्यतीत करने वाले श्रेष्ठ हैं। बुद्धि वालोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं॥ ९६॥ ब्राह्मणों में जो विशेष विद्वान्

हैं वह श्रेष्ठ हैं। और विद्वानों में भी जो विशेष बुद्धि रखते हैं वे श्रेष्ठ हैं। और बुद्धिवालों में भी जो कर्मकाण्डी है, वे श्रेष्ठ हैं, कर्मकाण्डियों में से भी ब्रह्म के जानने वाले श्रेष्ठ हैं ॥ ९७ ॥

कहिये महाराज जी! जैसे आप "ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं" इस फ़िक़रे से यह अभिप्राय निकालते हैं कि "मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है" वैसे ही "विद्वानों में बुद्धिमान् श्रेष्ठ हैं" इस फिक़रे से भी यह अभिप्राय निकाल लीजियेगा कि "विद्वानों में भी बुद्धि हीन और मूर्ख होते हैं" कैसी मज़ेदार बात है। और कैसे सुन्दर अर्थ और युक्ति युक्त अभिप्राय हैं। शर्म तो नहीं आती क्या इन ही प्रमाणों के आधार पर जन्म से वर्ण व्यवस्था सिद्ध करने चले थे। मूर्खों को ब्राह्मण साबित करते २ विद्वानों को भी मूर्ख सिद्ध कर गुज़रे। होश कीजिये महाराज! मूर्खों का नाम ब्राह्मण भी कहीं हो सकता है। आप ज़रा ब्राह्मण के लक्षण तो पढ़िये—

योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयीत वा।
दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३६ ॥
ब्रह्मचारी च वेदान् योऽप्यधीयाद्द्विजपुंगवः।
स्वाध्याये चाप्रमत्तो वै तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३७ ॥
(महा० वन० अ० २०५)

शृणु यत्र कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥१०३॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः न शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥१०६॥
(महा० वन० अ० ३१२)

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्य धनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥ मनु० २
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपासते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विज कर्मणः ॥१०३॥
गोऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः ॥१६८। मनु० २
ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः संध्यां न पश्चिमाम् ॥१९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्र कर्माणि कारयेत् ।२०॥
( महा० अनु० अ० १०४ )

भाषार्थ—जो वेद पढ़ावे, वेद पढ़े, यज्ञ करे, यज्ञ करवावे और यथा शक्ति दान दे, विद्वान् लोग उसको ब्राह्मण कहते हैं ॥३६॥ जो ब्रह्मचारी हों और वेदों को पढ़े स्वाध्याय में सुस्ती न करे उसको विद्वान् लोग ब्राह्मण कहते हैं ॥३७॥
हे प्यारे यक्ष ! सुन ब्राह्मण बनने में न कुल कारण है नकेवल स्वाध्याय और विद्या कारण हैं, अपितु ब्राह्मण बनने में कर्म ही कारण हैं इसमें संशय नहीं है ॥१०६॥ चारों वेदों का पढ़ा हुआ भी दुराचारी शूद्र से अधिक नहीं है जो अग्नि होत्र करने वाला पवित्र आचार वाला हो वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥१०६॥ ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़ाई है। क्षत्रियों में बल से बड़ाई है। वैश्यों में धान्य धन से बड़ाई है। केवल शूद्रों में ही जन्म से बड़ाई है ॥१५५॥ इन श्लोकों से यह साबित हो गया कि मूर्ख का नाम ब्राह्मण नहीं है अपितु जो वेद को पढ़े तथा तदनुकूल आचरण करे उसी का नाम ब्राह्मण है । तथा यह भी सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में ज्ञान के थोड़ा बहुत होने से छुटाई बड़ाई है। अतः "ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं" इसका यही अभिप्राय

है कि "जो ब्राह्मणों में विशेष ज्ञान वाले हैं, वे श्रेष्ठ हैं" इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है क्योंकि विद्या तथा कर्म हीन ब्राह्मण रहता ही नहीं अपितु वह शूद्र हो जाता है। जैसाकि—

जो प्रातः काल संध्या नहीं करता और जो शाम को भी संध्या नहीं करता उसको शूद्रों की भांति सब कामों से बाहर निकाल देना चाहिये ॥१०३॥ जो ब्राह्मण वेद न पढ़ कर अन्यत्र परिश्रम करता है। वह जीते हुए ही परिवार समेत शूद्र पद को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥१६८॥ जो ब्राह्मण प्रातः और सायं संध्या नहीं करते धार्मिक राजा का यह फर्ज़ है कि उन सब से शूद्र का काम करवावे ॥१६-२०॥

अतः आपकी कल्पना कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है यह सर्वथा वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

३५६ (प्रश्न)—स्वामी जी गुण कर्म स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था बतलाते हैं। और फिर अपने मत को वैदिक कहते हैं। यही आश्चर्य्य है। श्रुति स्मृति में कहीं पर भी गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं लिखी। पृ० ३१७ पं० २५

उत्तर—"ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" की मौजूदगी में गुण कर्म स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था से इनकार करना आश्चर्य्य नहीं तो क्या है। संपूर्ण श्रुति स्मृति तथा इतिहास इस वैदिक सिद्धान्त की ताईद करते हैं। चारों वेदों में एक मंत्र भी ऐसा मौजूद नहीं है जो जन्म से वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन करता हो।

३६० (प्रश्न)—सत्यकाम विश्वामित्र और मतंग को

बतलाया है कि ये तीनों अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये। सत्यकाम आदि का अब्राह्मण से ब्राह्मण बन जाना लिखना सुफैद झूठ हैं। पृ० ३१८ पं० ४

उत्तर—स्वामीजी का लिखना सर्वथा सत्य है कि सत्यकाम विश्वामित्र तथा मतंग अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये। इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार न करना हठधर्म्मी तथा आत्म हत्या के विना क्या कहा जा सकता है।

३६१ (प्रश्न)—'किं गोत्रो नु सौम्येत्यादि छान्दो० प्र०४ खं० ४" में सत्यकाम के पूछने पर उस की माता जाबाला ने कहा कि "युवावस्था में घर आये अतिथि रूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी। युवावस्था में तू उत्पन्न हुआ फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये मैं गोत्र नहीं पूछ पाई। मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मैं इतना जानती हूं। मेरा नाम जबाला तेरा नाम सत्यकाम है। इस से सत्यकाम अब्राह्मण कैसे सिद्ध हुए। पृ० ३१८ पं० १०

उत्तर—यदि सत्यकाम अब्राह्मण न थे तो कृपया आप ही बतलावें कि इस पाठ में वे कौन से वाक्य हैं जिन से सत्यकाम का ब्राह्मण होना सिद्ध होता है। और यह भी बतलाने की कृपा करें कि "घर आये अतिथि रूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी। फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये मैं गोत्र नहीं पूछ पाई" यह अर्थ कौन से संस्कृत वाक्यों का है। वास्तव बात तो यह है कि "अज्ञात कुलोत्पन्न जबाला ने अठारह गरदी हुए यौवन अवस्था में अनेक पुरुषों से व्यभिचार करते २ गर्भ धारण किया था। वह निश्चय पूर्वक न

बतला सकती थी कि सत्यकाम का पिता कौन है?' । छान्दोग्य का पूरा पाठ तथा अर्थ इस प्रकार से है कि—

सत्यकामोह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयां चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किं गोत्रोऽहमस्मीति ॥१॥ सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेदतात यद्गोत्रस्त्वमसि बहूहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे । साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नामत्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥२॥ स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥३॥ तꣳ ह होवाच किं गोत्रो नु सौम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरँ सा माप्रत्ब्रवीद्बहूहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भोइति ॥ ४ ॥ तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सोम्याहरोपत्वानेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृष्णा नामबलानां चतुः शता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानु संव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रं संपेदुः ॥५॥

( छान्दो० अ० ४ खं० ४ )

भाषार्थ—जाबाली सत्यकाम अपनी माता जबाला से कहने लगे । श्रीमति जी मैं ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करना चाहता हूं, मेरा गोत्र क्या है ॥ १ ॥ वह उस को बोली—हे प्यारे मैं यह नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है । मैंने बहुत फिरते हुए यौवन में आवारा गर्दी से तुझ को प्राप्त किया है । सो मैं यह

नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मेरा नाम जबाला है तेरा नाम सत्यकाम है। वह तू जाबाल सत्यकाम ही अपने को बोल ॥२॥ वह हारिद्रमत गौतम के पास जाकर बोला मैं आप के पास ब्रह्मचर्य्य वास करूंगा। इस कारण आप को प्राप्त हुआ हूं ॥ ३ ॥ उस को गौतम ने कहा, सौम्य तेरा क्या गोत्र है। उस ने कहा मैं यह नहीं जानता मेरा क्या गोत्र है। मैंने माता से पूछा था उस ने मेरे से कहा मैंने बहुत फ़िरते हुए यौवन में आवारा गर्दी से तुझ को प्राप्त किया है, वह मैं यह नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है। मैं जबाला नाम हूं तेरा नाम सत्यकाम है। सो मैं सत्यकाम जाबाल हूं ॥ ४ ॥ उस को गौतम बोला यह बिना ब्राह्मण के कोई नहीं कह सकता। हे सौम्य! तू समिधा ला। मैं तेरा यज्ञोपवीत करूंगा। तू सत्य से नहीं डिगा। उसको यज्ञोपवीत देकर कमज़ोर और दुबली चार सौ गौ बाहर निकाल कर बोला। हे सौम्य इन के पीछे जा। उन को रवाना करते हुए बोला एक हज़ार होने से पहले मत लौटना। वह बहुत वर्षों तक बाहर रहा वे जब तक एक हज़ार हो गईं। ५ ॥

(१) गोत्र पूछने से ऋषि का अभिप्राय खान दान तथा पिता का वर्ण पूछना था ताकि तदनुकूल संस्कार किया जावे। तभी तो पता न लगने पर गौतम ने सत्य के लक्षण से सत्य-काम का संभावित ब्राह्मण वर्णानुसार यज्ञोपवीत किया।

(२ क्या अतिथि सेवा में लगने तथा पति के तपस्या को चले जाने से गोत्र वर्ण तथा पति के नाम का भी पता न लग सकता था। क्या अड़ौसी पड़ौसी संबंधी पुरोहित आदि सभी गोत्र वर्ण तथा पति का नाम भूल गये थे।

(३) यदि सत्यकाम को व्यभिचार से पैदा न किया था तो जबाला ने पिता का नाम क्यों न बतलाया, अपना ही नाम क्यों बतलाया।

(४) यदि पिता के निश्चित ज्ञान न होने से वह पिता का नाम तथा गोत्र न बतला सकती थी तो अपना वर्ण तो बतला सकती थी। किंतु जबाला ने अपना भी कोई वर्ण नहीं बतलाया।

(५) छांदोग्य के किसी पाठ से भी जबाला तथा सत्यकाम का जन्म से ब्राह्मण होना साबित नहीं होता।

(६) गौतम ने जो सत्यकाम की बात को सुन कर कहा कि यह बात बिना ब्राह्मण के कोई नहीं बतला सकता। तो अपनी पैदाइश को व्यभिचार से बताना ही गौतम की दृष्टि से इतना उस के लिये गौरव का कारण हो सकता है। साधारण बात से इतना गौरव नहीं हो सकता। क्योंकि माता का अतिथि सेवा में लगना पिता का तपस्या को जाना तो कोई भी बतला सकता है। यह सचाई कोई कड़वी सचाई नहीं है। हां अपने को व्यभिचार से पैदा हुआ बताना यह एक ऐसी कड़वी सचाई है कि जिस को प्रत्येक आदमी नहीं बतला सकता अपितु साधारण मनुष्य छिपाने का यत्न करता है। किंतु सत्यकाम ने ऐसी कड़वी सचाई भी गौतम से कह सुनाई। अतः गौतम के मुख से अनायास यह वाक्य निकल गये कि ब्राह्मण के बिना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता।

इस से साबित हुआ कि केवल सत्यकाम ही अज्ञात कुलोत्पन्न तथा अब्राह्मण न था। अपितु जबाला भी अज्ञात कुलोत्पन्ना तथा अब्राह्मणी आवारह गर्द चलती फिरती वैश्या ही थी।

३६२ (प्रश्न) वेदारंभ से पहिले जो वेदारम्भ के लिये उपनयन संस्कार हुआ करता है। अभी वह भी नहीं हुआ फिर सत्यकाममें कौन विद्याका गुण आया और बिना वेद पढ़े कौन कौन उस ने वैदिक कर्म किये जिस से वह गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बना। पृ० ३१९ पं० २

यद्यपि छान्दोग्य के पाठ से यह साबित नहीं होता कि सत्यकाम की आयु छोटी थी। क्योंकि उस का स्वयं माता से गुरुकुल में जाने की प्रार्थना करना और गुरु से इस प्रकार की बात चीत करना तथा चार सौ गौओं को चरा कर एक हज़ार बनाना ये काम सत्यकामकी छोटी आयु को सिद्ध नहीं करते। तथापि वेदारम्भ से पूर्व तथा यज्ञोपवीत से भी पूर्व सम्भावित वर्णानुसार यज्ञोपवीतादि संस्कार होते हैं। अर्थात् बालक के माता पिता कुल, गोत्र, आचार को मद्देनज़र रख कर भावी जीवन में उस बालक के जिस वर्ण में जाने की आश उस वर्ण के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार किए जाते हैं। वह बालकों का संभावित वर्ण होता है। और जब विद्या पूरी होने के पश्चात् गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार आचार्य वर्ण नियत करता है वह उन का व्यवस्थित वर्ण होता है। तो गौतम आचार्य ने सत्यकाम में सत्य भाषण गुण देख कर उस के ब्राह्मण बनने की संभावना में उस को संभावित ब्राह्मण जान कर ब्राह्मण वर्णानुसार उसका यज्ञोपवीत संस्कार करवा दिया। भावी कर्मों की सम्भावना के अनुसार भी नाम रक्खे जाते हैं। इस में निरुक्त का निम्न लिखित प्रमाण उपस्थित है। जैसे कि—

यथो एतदपरस्माद्भावात् पूर्वस्य प्रदेशो नोपपद्यते इति पश्यामः

पूर्वोत्पन्नानां सत्त्वानामपरस्माद्भावान्नामधेय प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा बिल्वादो लम्बचूडक इति ॥ निरु० अ० १ खं० १४ ॥

भाषार्थ—जो यह कहा जाता है कि आने वाले भाव से पूर्व वाले का प्रदेश उत्पन्न नहीं होता। हम देखते हैं कि पहिले पैदा हुए प्राणियों के होने वाले कर्मों को मद्दे नज़र रख कर नाम किन्हीं के रक्खे जाते हैं किन्हीं के नहीं। जैसे लम्ब चूडक ( लंबी चोटी वाला ) बिल्वाद ( बिल्व खाने वाला )

जो बालक अभी पैदा हुए हैं न उन की लम्बी चोटी है और न ही वे बिल्व खाते हैं किन्तु आगामी जीवन में उन की लम्बी चोटी होने तथा बिल्व खाने की संभावना में उनका नाम लम्बचूडक तथा बिल्वाद रक्खा जाता है। इसी का नाम संभावित संज्ञा है ।

३६३ (प्रश्न)—यहां पर तो उपनयन संस्कार होने से पहिले ही गौतम ने सत्यकाम से कह दिया "मैं जानता हूं तू ब्राह्मण है, ब्राह्मण के बिना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता" फिर सत्यकाम का गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण बन जाना संसार की आंख में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है। पृ० ३१६ पं० ५

उत्तर—सत्यकाम की माता जबाला ब्राह्मणी न थी सत्यकाम के बाप का उसकी माता भी निश्चय न कर सकी कि कौन किस वर्ण तथा किस नाम का था। सत्यकाम के गोत्र कुल वर्ण आदि का कोई पता न था । गौतम ने सत्यकाम के यह कड़वी सचाई बयान करने पर कि "मेरी माता ने फिरते २ आवारागरदी में यौवनावस्था में मुझे प्राप्त किया है, मेरे गोत्र

का कोई पता नहीं" उसके ब्राह्मण होने की संभावना की। इतने पर भी सत्यकाम को जन्म से ब्राह्मण बतलाना संसार की आंखों में धूल झोंकना नहीं तो क्या है।

३६४ ( प्रश्न )—विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना वे लोग मानेंगे कि जिन्होंने विश्वामित्र की गाथा को न पढ़ा हो। पृ० ३१६ पं० ११।

उत्तर—वास्तव में विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। आप की गाथा वेद स्मृति रामायण और स्वयं महाभारत के विरुद्ध है। यह हम आगे चल कर सिद्ध करेंगे। अब विश्वामित्र की वास्तव कथा सुनिये—

राजासीदेष धर्म्मात्मा दीर्घकालमरिंदमः ।
धर्म्मज्ञः कृतविद्यश्च प्रजानां च हिते रतः ॥ १७ ॥
प्रजापति सुतस्त्वासीत्कुशो नाम महापतिः ।
कुशस्य पुत्रो बलवान् कुशनाभः सुधार्मिकः ॥ १८ ॥
कुशनाभ सुतस्त्वासीद्गाधिरित्येव विश्रुतः ।
गाधेः पुत्रोमहातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । १६ ॥
विश्वामित्रो महातेजाः पालयामासमेदिनीम् ।
बहुवर्ष सहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥ २० ॥

( बाल्मीकि० बाल० स० ५१ )

भाषार्थ—यह बहुत पहिले शत्रुओं का जीतने वाला धर्मात्मा राजा था। धर्म का जानने वाला विद्वान् प्रजा के हित में लगा रहता था ॥ १७ ॥ प्रजापति का पुत्र महाराज कुश था। कुश का पुत्र धार्मिक और बलवान् कुशनाभ था ।१८। कुशनाभ का पुत्र गाधी नाम से मशहूर था। गाधि का पुत्र महाते-

जस्वी महामुनि विश्वामित्र था।१९। महातेजस्वी विश्वामित्रने पृथिवी का पालन किया। और राजा विश्वामित्र ने कई हज़ार वर्ष राज्य किया।२०॥ कभी राजा विश्वामित्र सेना साथ में लेकर पृथिवी का चक्कर लगाते हुए वशिष्ठ के आश्रम में आये। उस आश्रम में वसिष्ठ ने विश्वामित्र का स्वागत करके कुशल पूछा। पश्चात् वसिष्ठ ने सेना सहित विश्वामित्र का अतिथि सत्कार किया। राजा विश्वामित्र ने वसिष्ठ से शबला गौ मांगी। वसिष्ठ ने शबला के देने से इनकार कर दिया। तब राजा विश्वामित्र ने ज़बरदस्ती शबला गौ को ले जाना चाहा। वसिष्ठ ने विश्वामित्र से युद्ध किया और विश्वामित्र की सारी सेना का नाश कर दिया। पराजित होकर विश्वामित्र घर आया और अपने एक पुत्र को राज्य सौंप कर आप तप करने वन में चला गया और बड़े भारी तप से दिव्य शस्त्रास्त्र प्राप्त किये। और बड़े घमंड से वसिष्ठ के आश्रम पर चढ़ाई की। इस लड़ाई में वसिष्ठ ने अपने ब्रह्म दण्ड से विश्वामित्र के संपूर्ण शस्त्रास्त्रों का नाश कर दिया। यह देख कर विश्वामित्र ने कहा कि—

धिग्बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानिमे॥ ३॥
तदेतत्प्रसमीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रिय मानसः।
तपो महत्समास्थास्येयद्वै ब्रह्मत्वकारणम्॥२४॥
(बाल्मी० बाल० स० ५६)

भाषार्थ—क्षत्रियों के बल को धिक्कार है। ब्रह्म तेज ही बल है। एक ही ब्रह्मदण्ड ने मेरे सारे अस्त्रों को निकम्मा करदिया

॥ २३ ॥ यह सब कुछ देखकर प्रसन्न मन होकर मैं ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये बड़ा भारी तप करूंगा ॥ २४ ॥ यह कहकर वन में तप करने चले गये। और बड़ा भारी तप किया—

ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ १८ ॥
विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन्।
ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ॥ १९ ॥
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक।
दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन्ददामि समरुद्गणः ॥ २० ॥
ततः प्रसादितो देवै र्वसिष्ठो जपतां वरः।
सख्यंचकार ब्रह्मर्षिरेवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मर्षिस्त्वंन संदेहः सर्वं सम्यद्यते तव।
इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम् ॥ २६ ॥
(बाल्मी० बाल० स० ६५)

भाषार्थ—तब ब्रह्मा समेत सारे देवता ॥ १८ ॥ महात्मा विश्वामित्र को मीठे वचन बोले। हे ब्रह्मर्षे! हम तेरा स्वागत करते हैं। आपने हमको तप से संतुष्ट कर दिया है ॥ १९ ॥ हे कौशिक! आप ने घोर तप से ब्राह्मण पद को प्राप्त कर लिया है। और हे ब्राह्मण मैं तुझको देवताओं समेत बड़ी आयु देता हूं ॥ २ ॥ तप देवताओं ने जप करने वालों में श्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रसन्न किया तब वसिष्ठ ने मित्रता करके कहा ऐसा ही होगा ॥ २५ ॥ तू ब्रह्मर्षि है इस में संदेह नहीं है। और तेरे में सब कुछ योग्य है। यह कहने पर देवता भी सब चले गये ॥ ६ ॥ यही कथा अक्षरशः संक्षेप से महाभारत आदि पर्व अध्याय १७७ में लिखी हुई है। और इस कथा के आदि तथा अन्त में

ये श्लोक मौजूद हैं कि—

कान्य कुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ ।
गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः ॥३॥
तस्य धर्म्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः ।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥४।
विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विन्नो वाक्यमब्रवीत् ।
धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ॥४४॥
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम् ।
स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ॥४५॥
भोगांश्चपृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनो दधे ।
स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान् विष्टभ्य तेजसा ॥४६॥
तताप सर्वान् दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ।
अपिबच्च ततः सोममिन्द्रेण सह कौशिकः ॥४७॥

( महा० आदि० अ० १७१ )

भाषार्थ—कान्य कुब्ज देश में कुशिक का पुत्र बड़ा प्रसिद्ध गाधि नाम का राजा था ॥३॥ उस धर्म्मात्मा का पुत्र सामान बल से समृद्ध शत्रुनाशक विश्वामित्र प्रसिद्ध था ॥४॥ विश्वामित्र ने क्षत्र भाव से दुःखी होकर यह बात कही कि क्षत्रिय बल को धिक्कार है ब्रह्मतेज ही बल है ॥४४॥ बल अबल का निश्चय करके तप ही परम बल है । उसने राज्य को तथा प्रकाशित श्री को छोड़ कर ॥४५॥ भोगों को पीछे छोड़ कर तप में ही मन को लगाया । उसने तप से सिद्धि को प्राप्त करके और लोकों को तेज से काबू करके ॥४६॥ अपने तेज से सबको तपाकर ब्राह्मण पद को प्राप्त किया और उस कौशिक विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोम रस का पान किया ॥४७॥

यहां पर बाल्मीकि तथा व्यास दोनों ने ही विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना लिखा है। आपके विचार के अनुसार क्या इन दोनों को विश्वामित्र के इतिहास का पूर्ण ज्ञान न था। यदि था तो फिर साफ सिद्ध हो गया कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने।

३६५ ( प्रश्न )—अनुशासन पर्व के आरंभ में भीष्म ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि कर्म के द्वारा कोई अन्य जाति ब्राह्मण नहीं बन सकती। पृ० ३१९ पं० १२

उत्तर—श्रीमान् जी! अनुशासन पर्व के वे श्लोक तो पेश कर दिये होते जहां भीष्म ने दूसरी जतियों के लिये कर्म द्वारा ब्राह्मणत्व को अप्राप्य वस्तु लिखा है। अनुशासन पर्व के प्रथम अध्याय में "मनुष्य की मृत्यु में अपने ही किये हुए कर्म कारण हैं" और दूसरे अध्याय में "गृहस्थी मृत्यु को कैसे जीत सकता है", इन दो विषयों का वर्णन है। इन अध्यायों में वर्ण व्यवस्था का जिकर तक भी नहीं है। न जाने आपने यह सुफैद झूठ लिख कर क्यों आत्म हत्या की है। क्या इस झूठ का आप कोई प्रायश्चित्त करेंगे।

३६६ (प्रश्न)—राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि—

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥१॥
विश्वामित्रेण धर्म्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥
( महा० अनु० अ० ३ )

भगवन् नरेश भीष्म! यदि क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये तीन

वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते तो फिर विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे बन गए, यह हम याथातथ्य सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हम से कहें। पृ० ३१६ पं० १४

उत्तर—या बेईमानी तेरा ही आसरा। ऊपर तो भीष्म के नाम से गप्प हांक दी। यहां दुष्प्राप्य के अर्थ ही "तीन वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते" करदिया। श्रीमान् जी! दुष्प्राप्य का अर्थ कष्ट साध्य है असाध्य नहीं है। आर्य समाज भी क्षत्रिय वैश्य शूद्र से ब्राह्मण बनना सुसाध्य नहीं मानता अपितु कष्ट साध्य मानता है। हां पौराणिक साहित्य सुसाध्य अवश्य मानता है। जैसाकि—

विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्व जिगीषया।
तपश्चचार विपुलं संतापाय दिवौकसाम्।
ब्राह्मणत्वं न लेभे ऽसौ लेभे विघ्राननेकशः ॥ ५६ ॥
ततस्तु नियमात्तासां तिथीनां प्रवरा तिथिः।
उपोषिता बहुविधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम् ॥ ५७ ॥
ततोदेवो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते।
इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम् ॥ ५८ ॥
तिथीनां प्रवरा ह्येषा तिथीनामुत्तमातिथिः।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयुः ॥ ५९ ॥

(भविष्य० ब्राह्म० अध्याय १६)

भाषार्थ—हे राजेन्द्र विश्वामित्रने तो ब्राह्मणत्व के प्राप्त करने की इच्छा से देवताओं को संताप देने के लिये घोर तप किया किंतु वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं हुआ अपितु अनेक विघ्नों को प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ फिर तो उन तिथियों में से

श्रेष्ठ तिथि प्रतिपदा में बहुत प्रकार से नियमानुसार उपवास किया इस बात को जानकर कि यह तिथि ब्रह्मा की प्यारी है ॥ ५७ ॥ तब देव ब्रह्मा ने बुद्धिमान् विश्वामित्र के लिये इस ही जन्म में इस ही देह से दुर्लभ ब्राह्मणत्व दिया ॥ ५८ ॥ यह तिथि तिथियों में श्रेष्ठ है, यह तिथि तिथियों में उत्तम है। इस से क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र ब्राह्मण पद को प्राप्त हो सकते हैं ॥ ५९ ॥

कहिये महाराज ! यह तो केवल प्रतिपदा के व्रत से ही ब्राह्मणपद की प्राप्ति होने लगी। क्या इस से सस्ता सौदा भी कहीं संसार में हो सकता है। फिर युधिष्ठिर के प्रश्न से पता लगता है कि वह विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बना ही मानते थे।

३६७ (प्रश्न) भीष्म ने उत्तर दिया कि गाधि क्षत्रिय की लड़की सत्यवती का विवाह ऋचीक ब्राह्मण से हुआ। गाधि की स्त्री के कहने से सत्यवती ने सन्तानार्थ अपने पति से कहा। ऋचीक ने दोनों के लिये दो चरु बनाये। गाधि की स्त्री के लिये क्षात्र तेज प्रधान चरु बनाया तथा अपनी स्त्री के लिये ब्रह्मतेज प्रधान चरु बनाया। अपनी स्त्री को गूलर तथा गाधि की स्त्री को पीपल से मिलने को कहा। माँ बेटियों ने आपस में चरु भी तबदील कर लिये और पेड़ों का मिलना भी तबदील कर लिया। जब ऋचीक को इस बात का पता लगा तो उन्हों ने अपनी स्त्री सत्यवती से कहा कि चरु तथा वृक्षों के मिलने के तबदील करने का यह परिणाम होगा कि तेरी माता श्रेष्ठ ब्राह्मण को तथा तू उग्रकर्मा क्षत्रिय को पैदा करेगी। सत्यवती की प्रार्थना पर ऋषि ने कहा कि

अच्छा तुम्हारे पुत्र इस प्रकार का न होगा किंतु पौत्र इस प्रकार का होगा। समय आने पर सत्यवती के जमदग्नि नाम बालक पैदा हुआ और जमदग्नि के परशु राम पैदा हुआ। तथा गाधि की स्त्री ने यशस्वी ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को पैदा किया। अब कौन मनुष्य कह सकता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया। जबकि उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मवक्ता एवं ब्रह्मर्षि कहा है, फिर इस का क्षत्रिय होना मानेगा कौन। पृ० ३१६ पं० १५।

उत्तर—बाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के आदि पर्व में विश्वामित्र की पैदाइश गाधि से लिखी है और उनको क्षत्रिय राजा से ब्राह्मण होता माना है। वहां चरु आदि का कतई जिकर नहीं है। देखो (नं० ३६४)

(२) गाधि की लड़की सत्यवती क्षत्रिया थी और ऋचीक ब्राह्मण थे। ऋचीक से विवाह होने पर सत्यवती ब्राह्मणी बन गई या कि क्षत्रिया ही रही। यदि क्षत्रिया ही रही तो उन की सन्तान जमदग्नि को वर्ण संकर मानना पड़ेगा। यदि ब्राह्मणी बन गई तो इस से ही क्षत्रिया का ब्राह्मणी बनना गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था का साधक है।

(३) महाभारत वन पर्व अध्याय ११५ श्लोक २१ से ४३ तक में यह वर्णन है कि चरु ऋचीक के पिता सत्यवती के श्वसर भृगु ने तय्यार किये। जैसे कि—

ततः प्रसादयामास श्वशुरं सा पुनःपुनः ॥४२॥

( महा० वन० अ० ११५ )

भाषार्थ—तब सत्यवती ने अपने श्वशुर भृगु को बार २ प्रसन्न कियां ॥४२॥ इत्यादि इत्यादि

इन दोनों में से कौन सी बात ठीक है। हमारे विचार से तो परस्पर विरोध होने के कारण चरु की कल्पना ही मिथ्या है।

(४) वृक्षों के साथ आलिंगन का क्या प्रयोजन था। क्या वृक्षों का आलिंगन भी गर्भस्थिति में कारण था। क्या वृक्ष भी स्त्री में गर्भाधान कर सकते हैं। यदि करसकते हैं तो सन्तान किस वर्ण की होगी।

(५) चरु भक्षण के पश्चात् गाधि की स्त्री तथा ऋचीक की स्त्री ने गाधी तथा ऋचीक से समागम किया या नहीं। यदि कहो कि पतियों से गर्भाधान द्वारा वीर्यदान लिया था तो फिर विश्वामित्र की मां क्षत्राणी तथा पिता गाधी क्षत्रिय और विश्वामित्र भी क्षत्रिय ही हुआ।

(६) यदि कहो कि पतियों से वीर्य दान नहीं लिया तो गर्भ कैसे ठहरा। क्यूं कि वेद कहता है कि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्॥

इत्यादि (यजु० १६।७६)

अर्थ—पुरुष की इन्द्रिय स्त्री की योनि में प्रवेश होकर गर्भ में वीर्य छोड़ती है तब गर्भ होता है तथा मनु भी कहता है कि—

क्षेत्र भूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
क्षेत्र बीज समायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम्॥ ३३॥

(मनु० ६)

भाषार्थ—स्त्री खेत है और पुरुष बीज है। खेत और बीज के संयोग से ही सब शरीरधारियों का पैदा होना मुमकिन है।

(७) यदि कहो कि चरु में बीज मौजूद था उससे गर्भ हो गया, तो क्या बीज के खाने से स्त्री के गर्भ होना संभव है या चरु को योनि की तरफ से ही इस्तेमाल किया गया था।

(८) यदि चरु में बीज था तो वह किस प्रकार का बीज था, क्या ऋचीक के शरीर से पैदा हुआ बीज था या वेद मंत्रों से पैदा किया हुआ विशेष बीज था जिस में ऋचीक का शारीरिक भाग न था।

(९) यदि कहो कि ऋचीक का शारीरिक बीज चरु में था तो वह किस विधि से ऋचीक के शरीर से निकाल कर चरु में दाखिल किया गया था और ऋचीक के बीज से गाधि की स्त्री में गर्भाधान, जवाई के बीज से सास में गर्भ क्या शास्त्र विहित है, यदि नहीं तो क्या विश्वामित्र को नाजायज़ औलाद मानना पड़ेगा।

(१०) एक ही ऋचीक के शरीर से दो प्रकार का वीर्य होना कैसे संभव है। अर्थात् एक क्षत्रिय पैदा करने वाला, दूसरा ब्राह्मण पैदा करने वाला।

(११) यदि कहो कि ऋचीक के शरीर का बीज में कोई भाग न था अपितु वेद मंत्रों की शक्ति से ही इस चरु में बीज पैदा किया गया था तो क्या बिना मनुष्य के शरीर के इस प्रकार का बीज तैयार किया जा सकता हैं कि जो गर्भ धारण में काम दे सके। और क्या वेदमंत्रों से किसी वस्तु में ब्राह्मण-पन तथा क्षत्रियपन के गुण पैदा किये जा सकते हैं।

(१२) और यदि विना किसी प्रकार के शारीरिक संबंध के केवल वेद मंत्रों से ही ब्राह्मणपन तथा क्षत्रियपन के गुण

पैदा किये जा सकते हैं तो फिर न ब्राह्मण ख़ानदान में पैदा होना ज़रूरी है न ब्राह्मण का बीज और न ब्राह्मणी की योनी ही ब्राह्मण बनने के लिये ज़रूरी हैं। अपितु जहां भी वेद मंत्रों से ब्राह्मणपन तथा क्षत्रियपन के गुण पैदा कर दिये जावें वहीं ब्राह्मण तथा क्षत्रिय है। इस से तो वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं, अपितु गुण कर्म स्वभाव से सिद्ध हो गई।

(१३) पुत्र के न होने की शिकायत सत्यवती की माता को थी, सत्यवती को तो न थी फिर दोनों के लिये चरु क्यों तय्यार किया गया। क्यूंकि ऋचीक के सत्यवती से तीन पुत्र थे। जमदग्नि, शुनक तथा शुनः शेप।( बाल्मी० बाल० स० ६१) विश्वामित्र के साथ २ चरु से तो केवल जमदग्नि ही पैदा हुआ था शेष दो तो बिना चरु के हो हुए। जब पिछले दो बिना चरु के पैदा होगये तो पहिले के लिये भी चरु की क्या ज़रूरत थी। अतः दो॰ों के लिये चरु बनाने की बात केवल चरु के तबादले से विश्वामित्र को जन्म से ब्राह्मण साबित करने के लिये जन्माभिमानी लोगों की कल्पना ही है।

(१४) इन तमाम बातों को छोड़ कर यदि इस कथा को ठीक भी मान लिया जावे तो विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी। चरु ब्राह्मण तेज प्रधान खाया तो विश्वामित्र ब्राह्मण पैदा हो गया। किंतु, जमदग्नि की माता सत्यवती क्षत्रिया थी और चरु भी क्षात्रतेज प्रधान खाया तब जमदग्नि क्षत्रिय क्यूं न बना। यदि पुत्र नहीं तो पौत्र ही परशु राम क्षत्रिय क्यूं न माना-गया। इस से साबित है कि यह गाथा वेद शास्त्र युक्ति विरुद्ध होने से क़तई मिथ्या है। वास्तव में गाधि क्षत्रिय था

विश्वामित्र गाधि का पुत्र जन्म से क्षत्रिय था, वह तप से कर्मानुसार ब्राह्मण बन गया। इस घटना को संस्कृत ग्रन्थों में अनेक स्थलों में वर्णन किया गया है।

(१) पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेवच।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥
(मनु० ७)

गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान् (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—पृथु ने विनय से राज्य को प्राप्त किया और मनु ने भी। कुबेर ने विनय से धन ऐश्वर्य को प्राप्त किया। और विनय से ही गाधि का पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए उस ही शरीर से ब्राह्मण बन गया ॥ ४२ ॥ यहां मनु तथा कुल्लूक दोनों ने विश्वामित्र को क्षत्रिय माना है।

(२) तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षंच मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥
(मनु० १०)

तपः प्रभावेन विश्वामित्रवत्। बीज प्रभावेन ऋष्यशृङ्गवत्। (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—मनुष्यों में प्रत्येक युग में इस संसार में कोई तप के प्रभाव से विश्वामित्र की भांति कोई बीज के प्रभाव से ऋष्यशृङ्ग की भांति अपने जन्म की अपेक्षा उन्नति तथा अवनति को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ यहां कुल्लूक भट्ट ने विश्वामित्र की उन्नति में बीज को कारण नहीं माना अपितु तप को कारण माना है।

(३) यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गंयच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३३८ ॥
(मनु० ११)

यद्दुःखेन प्राप्यते क्षत्रियादिना यथा विश्वामित्रेण तेनैव शरीरेण ब्राह्मण्यादि (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—जो कठिनता से तैरने योग्य है जो दुःख से प्राप्त करने योग्य क्षत्रियादि से जैसे विश्वामित्र ने उसी शरीर से ब्राह्मण पद आदि जो कठिनता से गमन करने योग्य है। जो कठिनता से करने योग्य है। वे सब तप से साध्य है। क्यूंकि तप दुर्लंघ्य शक्ति है ॥ ३३८ ॥

(४) पूर्वं राजर्षि शब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥५४॥
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ।
तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम ॥५५॥
(वाल्मी० बाल० स० १८)

भाषार्थ— राजा दशरथ ने विश्वामित्र से कहा कि आप पहिले तप के कारण राजर्षि शब्द से प्रकाशित हुए ॥५४॥ फिर ब्रह्मर्षि बन गये, अतः मेरे से अत्यन्त पूज्य हैं। हे विप्र यह अद्भुत घटना है आप परम पवित्र मेरी दृष्टि में हैं ॥५५॥

(५) विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ।
क्षत्रियोऽथाभवद्विप्रः प्रसिद्धं त्रिभवेत्विदम् ॥५३॥
(शिव० उमा० अ० १२)

भाषार्थ—हे महामुने ! गाधि का पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए तप से ही ब्राह्मण बन गया। यह तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥५३॥

(६) शृणु तात न विप्रोऽहं गाधिक्षत्रिय बालकः ।
विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः ॥६॥
विश्वामित्र वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षि र्नात्र संशयः ।
अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि ॥१३॥
ततोऽकार्षीत् ससंस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा ॥१४॥

(शिव० रुद्र० कुमार ख० ३)

भाषार्थ—विश्वामित्र ने कहा—हे प्यारे सुन मैं ब्राह्मण नहीं हूं। गाधि क्षत्रिय का बालक हूं। विश्वामित्र नाम से प्रसिद्ध हूं। ब्राह्मणों का सेवक क्षत्रिय हूं ॥६॥ शिव पुत्र ने कहा हे विश्वामित्र! मेरे वर से तू ब्राह्मर्षि है। इस में संशय नहीं है इस लिये तू मेरी आज्ञा से मेरा संस्कार कर सकता है ॥१३॥ तब विश्वामित्र ने शिव पुत्र का यथा विधि प्रीति से संपूर्ण संस्कार करवाया ॥१४॥

(७) क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।
धर्मस्य वचनात् प्रीतो विश्वामित्रस्तथाभवत् ॥१८॥

( महा० उद्योग० अ० १०५ )

भाषार्थ—तथा विश्वामित्र धर्म के वचन से प्रीति पूर्वक क्षात्र भाव को छोड़ कर ब्राह्मण पद को प्राप्त हो गया। १८॥

(८) विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाभवम् ।
ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितोभवः ।
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत् ॥१६॥

( महा० अनुशा० अ० १८ )

भाषार्थ—तब विश्वामित्र बोला कि तब मैं क्षत्रिय था। मैं ब्राह्मण होना चाहता हूं, मैंने ऐसी प्रार्थना ब्रह्मा से की। उस

ब्रह्मा की कृपा से मैंने दुर्लभ ब्राह्मण पद को प्राप्त किया ॥१६॥

इतने स्पष्ट प्रमाणों की मौजूदगी में विश्वामित्र के क्षत्रिय से ब्राह्मण बनने में किसको शंका हो सकती है। अतः विश्वामित्र का जन्म से ब्राह्मण या ब्रह्मर्षि मानना पौराणिक गप्पाष्टक ही है।

३६८ (प्रश्न)—ब्राह्मण से जो क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न होता है उसमें माता के रज से कुछ क्षत्रियत्व विकार रहता है इसी कारण मन्वादि धर्म्म शास्त्रों ने ऐसी सन्तान को पूर्ण ब्राह्मण न लिख कर मूर्धाभिषिक्त लिखा है। विश्वामित्र ने अपने घोर तप से मातृ रज को अपने शरीर से निकाल दिया। निकालने के पश्चात् वह पूर्ण ब्राह्मण बन गया। जब चरु ब्रह्म वीर्य से युक्त था और महाभारत ने उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि मान लिया इतना होने पर भी विचार शील मनुष्य यह नहीं मान सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय के वीर्य से पैदा हुआ विद्या पढ़ कर ब्राह्मण बन गया। पृ० ३२१ पं० ११

उत्तर—(१) आपने विश्वामित्र को ब्राह्मण से क्षत्रिया कन्या में पैदा होने के कारण मूर्धाभिषिक्त माना है। और चरु में ब्रह्मवीर्य की मौजूदगी मानी है। और गाधि के वीर्य से उत्पत्ति का निषेध कर दिया है। तो आपके लेख से सिद्ध हुआ कि ऋचीक के वीर्य तथा गाधि की स्त्री के रज मिलने से विश्वामित्र की पैदाइश हुई। गोया जवाई के वीर्य से सास में गर्भ का होना आपने तसलीम कर लिया। क्या इसे सनातन धर्म्म शास्त्र के अनुकूल धर्म्म मानता है।

(२) एक तरफ तो आप विश्वामित्र को जन्म समय

अपूर्ण ब्राह्मण मानते हैं। दूसरी तरफ जन्म से ही ब्रह्मर्षि मानते हैं, क्या यह परस्पर विरोध तो नहीं है।

(३) जब आप यह मानते हैं कि तप से मातृ रज को शरीर से निकाला जा सकता है तो क्या उसी प्रकार से पितृ वीर्य को भी तप से बाहर निकाल कर प्रत्येक मनुष्य ब्राह्मण नहीं बन सकता। अतः आपकी सारी कल्पना निर्मूल होने से सर्वथा मिथ्या है। वास्तव में विश्वामित्र क्षत्रिय, क्षत्रिया के रज वीर्य से पैदा होकर तप से ब्राह्मण बना था।

३६६ (प्रश्न)—"केवल चरु मात्र से गर्भ नहीं रह सकता यह निरी गप्प है" यह कहना ठीक नहीं क्योंकि यह महाभारत में लिखा है। यदि महाभारत गप्प है तो गाधि का होना गप्प, गाधि की स्त्री से विश्वामित्र का होना गप्प, तथा विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना गप्प। फिर इस गप्प युक्त विश्वामित्र की कथा को तुम ने क्यों सत्य माना। पृ० ३२१ पं० २३।

उत्तर—श्रीमान् जी महाभारत स्वतः प्रमाण नहीं है अपितु परतः प्रमाण है। महाभारत की बातें भी यदि वेद के विरुद्ध हों तो वह प्रमाण नहीं मानी जासकतीं। चूंकि वेद कहता है कि रजवीर्य के योग से ही सन्तानोत्पत्ति हो सकती है। (नं० ३६७) अतः केवल चरु से गर्भ स्थिति वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा गाधि तथा गाधि की स्त्री के रजवीर्य से विश्वामित्र का पैदा होना वेदानुकूल होने से प्रमाण है। भला यह तो बतलाइये कि महाभारत में यह कहां लिखा है कि चरु खाने के पीछे उन स्त्रियों ने पति से समागम नहीं किया। और फिर कौनसी खुराफ़ात है जो मौजूदा महाभारत से नहीं मिल सकती।

व्यास कहते हैं महाभारत चौबीस हज़ार है गरुड कहता है छैः हज़ार था। अब एक लाख के लगभग मौजूद है, जिस ग्रन्थ में इतना हेर फेर हो वह भी कहीं क़ाबिल प्रमाण हो सकता है। देखिये—

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा कृते युगे भारते षट् सहस्रयाम्।
निष्कास्यकांश्चन् नवनिर्मितानां निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम् ॥६९॥

(गरु० उत्तर ब्रह्म० अ० २)

भाषार्थ—सब राक्षस लोग ब्राह्मणों के खानदानों में पैदा होकर धर्मात्मा राजा के राज्य में बनी छे हज़ार की भारत संहिता में से कुछ श्लोक निकाल कर और कुछ नये बनाये श्लोकों को दाखिल करने का काम हमेशा करते हैं॥ ६९॥ अतः महाभारत की बात वेदानुकूल होने से ही प्रमाण मानी जासकती है अन्यथा नहीं। और आप तो विश्वामित्र में रज और वीर्य दोनों की मौजूदगी भी मानते हैं (नं० ३६८)

३७० (प्रश्न) प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतद्वदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

(सायण भाष्य भूमिका)

भाषार्थ—जो उपाय प्रत्यक्ष में नहीं आता और जो अनुमति अक्लिया दलील में नहीं बैठता। वह वेद के अनुष्ठान से मिल जाता है। यही वेद की वेदता है। पृ० ३२२ पं० ६।

उत्तर—आपका तथा आपके सायण का यह ख्याल कि "वेद उन्हीं बातों का प्रतिपादन करता है जो प्रत्यक्ष तथा अनुमान से न जानी जावें" क़तई निर्मूल है। अपितु वेद सब सत्य विद्याओं के भंडार हैं। जिन में मनुष्योपयोगी

संपूर्ण विषयोंका वर्णन है। जैसे मनुने कहा है कि—

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाःपृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यंच सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥ ९७॥

भाषार्थ—चारों वर्ण तीनों लोक चारों आश्रमों के उपयोगी जो विद्या होचुकी हैं और होगी वे सब वेदसेही प्रसिद्ध होती हैं। चूंकि वेद "रेतो मूत्रमित्यादि पजु० १९।७९" में कहता है कि रजवीर्य के संयोगसे गर्भ होता है अतः केवल चरुसे गर्भ-स्थिति वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

३७१ (प्रश्न)—वेदोक्त पुत्रेष्टि यज्ञ होने पर केवल चरु-मात्र से पुत्र उत्पन्न होता है इस को न्याय दर्शन ने माना है कि त्रिपिंडी श्राद्ध के मध्यमपिंड के भक्षण से स्त्री को गर्भ रहता है यह भी एक वेद का महत्त्व है। इस को मनु ने भी लिखा है। कात्यायण श्रौत सूत्रमें इस की विधि है। पृ० ३२२ पं० १०।

उत्तर—आप ने न्याय दर्शन का कोई प्रमाण नहीं दिया कि पुत्रेष्टि यज्ञ होने पर केवल चरु से ही गर्भ हो जाता है। पुत्रेष्टि यज्ञ के शेष भोजन से प्रसव विरोधी रोगों का ही दूर होना संभव है। केवल चरु भक्षण से गर्भ असम्भव तथा वेद के ही विरुद्ध होने से मिथ्या है। मध्यम पिण्ड के भोजन से गर्भ स्थिति पौराणिक गप्प ही है। चाहे वह मनु में लिखा हो चाहे किसी श्रौत सूत्र में उस की विधि हो। चूंकि वेद रज और वीर्य के योग से गर्भ स्थिति मानता अतः रज, वीर्य के योग के बिना गर्भ स्थिति बतलाने वाले सम्पूर्ण लेख वेद के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं।

३७२ (प्रश्न) आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ।
(यजु० २ । ३३)

हे पितरो ! तुम गर्भ स्थापन करो और कमल की माला पहिनने वाला इस स्त्री के पुत्र पैदा हो । यह स्वतः वेद कहता है फिर हम कैसे मान लें कि चरु से गर्भ नहीं रहता ।
(पृ० ३२२ पं० १४)

उत्तर—यहां वेद में गर्भाधान का प्रकरण ही नहीं है । यहां पर तो वेदारम्भ का वर्णन है । यजमान अपने पुत्र को आचार्य के हवाले करता हुआ कहता है कि हे ज्ञान से रक्षा करने वाले आचार्य तथा अध्यापको ! आप इस बालक को गर्भ वत् धारण करें । जैसा महाभारत में भी आता है कि—

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य,
भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति
प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम् ॥६॥
(महा० उद्योग० अ० ४३)

भावार्थ—जो इस संसार में आचार्य रूप योनि में प्रवेश करके गर्भ रूप हो कर ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं । वे इसी संसार में शास्त्रों के कर्ता बनते हैं और देह को त्याग कर परम धाम को प्राप्त होते हैं ॥६॥

कहिये श्रीमान् जी । यहां वेद मन्त्र में यह कौनसे शब्दों का अर्थ है कि रज वीर्य के योग के बिना केवल चरु से ही गर्भ स्थिति हो जाती है । इस वेद मन्त्र में तो इस बात का गन्ध मात्र भी नहीं है । अतः विश्वामित्र, गाधि तथा उस

की धर्मपत्नी के रज वीर्य के योग से ही पैदा हुआ था। और जन्म से क्षत्रिय होता हुआ तप करके गुण, कर्म, स्वभावानुसार ब्राह्मण बन गया।

३७३ (प्रश्न) कित्ती ब्राह्मण का पुत्र मतङ्ग नामक था। वह रथ पर सवार हो कर यज्ञ कराने को जा रहा था कि उस को गधी के साथ बातचीत से पता लगा कि मैं ब्राह्मणी में नाई से पैदा हुआ चाण्डाल हूं। उस ने वापस आ कर पिता को सब वृत्तान्त कह सुनाया और स्वयं मातङ्ग ने ब्राह्मण बनने के लिये घोर तप किया। किन्तु इन्द्र ने कहा कि ब्राह्मण जाति तप से प्राप्त नहीं हो सकती। अतः मतंग पूर्ववत् चांडाल बना रहा। यह मतंग का इतिहास है (महा० अनु० अ० २७—२६) इस कथा से मतंग का ब्राह्मण होना लिखना सर्वथा अन्याय है। पृ० ३२२ से ३२४ तक

उत्तर—श्रीमान् जी! स्वामी जीका लेख बिलकुल सत्य है कि मातंग ऋषि चाण्डाल से ब्राह्मण बन गये थे। और यह वही मातंग थे कि जिन के घर से विश्वामित्र ने कुत्ते का मांस चुराकर खाया था। जिस का संवाद कि महाभारत शांतिपर्व अ० १४१ में दर्ज है। जिस में यह श्लोक मौजूद है कि—

विश्वामित्रस्तु मातंगमुवाच परिसन्त्वयम्।
क्षुधितोऽहंगतप्राणो हरिष्यामिश्वजाघनीम् ॥ ४९ ॥
(महा० शान्ति० अ० १४१)

भाषार्थ—विश्वामित्र ने मातंग को शान्त करते हुए कहा कि मैं भूख से मरा जाता हूं। मैं कुत्ते की जांघ ज़रूर चुराऊंगा ॥ ४६ ॥ और महाभारत के पढ़ने से यह भी पता लगता है कि

वह वेद शास्त्रका ज्ञाता था तभी तो उसने वेद तथा धर्म शास्त्र का प्रमाण देकर विश्वामित्र को उपदेश किया है । जैसा कि--

नेदं सम्यक् व्यवसितं महर्षे धर्म्मगर्हितम् ।
चांडाल स्वस्य हरणममक्ष्यस्य विशेषतः ॥ ५६ ॥
यद्येष हेतुस्तव खादनेऽस्य न ते वेदः कारणं नार्य्यधर्म्मः ।
तस्माद्भक्षेऽभक्षणेवा द्विजेन्द्र दोषं न पश्यामि यथेदमत्र ॥ ८७ ॥

( महा० शान्ति० अ० १४९ )

भावार्थ—हे महर्षे ! आपने यह धर्म्म से निन्दित सम्यक् यत्न नहीं किया कि चाण्डाल के धन का चुराना और विशेष करके अभक्ष्य वस्तु का ॥ ५६ ॥ यदि इस कुत्ते के मांस खाने में आपका यह हेतु है । तो पता लगा कि आपके लिये वेद तथा आर्य धर्म प्रमाण नहीं हैं । इस लिये भक्ष अभक्ष में आप दोष नहीं समझते मैं यहां जैसा कि देख रहा हूं ॥ ८७ ॥

अब वह उन्नति करके ब्राह्मण बना । यह हम महाभारत से दिखलाते हैं—

जैसा कि—

उत्पाद्य पुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र ह ।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः ॥१३॥
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः ।
आयुर्संतङ्को दृप्तश्च द्रुपदो मात्स्य एव च ॥१५॥
एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसोऽग्रयात् ॥१६॥

(महा० शान्ति० अ० २९६)

भावार्थ—हे राजन् ! मुनि लोगों ने जहां तहां से पुत्रों को पैदा करके उन को अपने तप से ही उन को ऋषि बना दिया ॥१३॥

हे राजन् ! यवक्रीत, द्रोणाचार्य, द्रुपद, आयु, दत्त और मात्स्य तथा 'मतङ्ग', हे जनक ! ये सब तप के आश्रय से ही अपनी अवस्था को प्राप्त हुए हैं ॥१५-१६॥ विशेष देखो (नं० ३५२)

इस से साबित है कि मतङ्ग ऋषि भी चाण्डाल से द्रोणाचार्य जैसा ब्राह्मण बन गया। जन्माभिमानी लोगों ने इस सचाई को छिपाने के लिये उपरोक्त कथा घड़ी, जो कि सर्वथा असम्भव, मिथ्या, वेदशास्त्र तथा इतिहास के विरुद्ध है। इस कथा के मिथ्यात्व में निम्न हेतु हैं—

(१) मतङ्ग के पिता का नाम नहीं लिखा कि वह किस ब्राह्मण का पुत्र था और उस की माता तथा नाई का क्या नाम था।

(२) एक स्थान में ब्राह्मण का पुत्र तथा दूसरे स्थान में नाई का पुत्र लिखना परस्पर विरोध होने से दोनों मिथ्या हैं।

(३) गधी का बोलना तथा उस से मतङ्ग को ज्ञान होना अत्यन्त असम्भव बात है। क्या गधी, नाई तथा मतङ्ग की माता के व्यभिचार के समय मौजूद थी और क्या गधी और मतङ्ग परस्पर एक दूसरे की भाषा को समझते थे। जिस बात को गधी ने जान लिया तथा उस समय के ब्राह्मणों ने न जान पाया, क्या वे ब्राह्मण उस गधी से भी बुद्धि हीन थे। ऐसा नहीं माना जा सकता अतः यह कथा सर्वथा मिथ्या ही है।

(४) क्या मतङ्ग पहले यज्ञ कराता रहा था वा नहीं। यदि कराता रहा था तो आप के लेखानुसार ही चाण्डाल होते हुए ब्राह्मण का काम करता रहा, किंतु कोई उसे न पहिचान सका।

अतः पता लगा कि ब्राह्मणों में सिवाय कर्म करने के और कोई क्षत्रिय चाण्डाल आदि से विशेषता नहीं है।

(५) गधी ने भी उस के क्रूर कर्म से ही चाण्डाल होने का अन्दाज़ा लगाया शक्ल से नहीं। अतः पता लगा कि मनुष्यों में कर्मानुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य, शूद्र, चाण्डालादि का पता लग सकता है, अन्यथा नहीं।

(६) मतङ्ग ने जो ब्राह्मण बनने के लिये तप किया तो उस समय तप करने से ब्राह्मण बन जाते होंगे तभी तप किया। यदि तप से ब्राह्मण बनने का रिवाज ही न होता तो ब्राह्मणार्थ तप का साहस कैसे होता।

(७) इन्द्र का कहना कि तप से कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता स्वयं महाभारत के ही विरुद्ध है। क्यों कि इससे अगले ही अध्याय में वीत हव्य के ब्राह्मण बनने का ज़िकर है।

शृणु राजन् यथा राजा वीत हव्यो महायशः।
राजर्षि र्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोक सत्कृतम् ॥५॥

(महा० अनु० अ० ३०)

भाषार्थ—हे राजन्! सुनो जैसे महायश राजर्षि राजा वीतहव्य दुर्लभ पूज्य ब्राह्मण पद को प्राप्त हुआ ॥५॥

(८) विश्वामित्र तथा अनेकों ने यत्र तत्र जन्म लेकर तप से ब्राह्मण पद को प्राप्त किया, जिन का इस वर्ण व्यवस्था प्रकरण में विस्तार पूर्वक वर्णन है।

(९) भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व खंड १ अध्याय ३३ श्लोक ३ से २४ तक में लिखा है "त्रिपाठी नाम का एक ब्राह्मण था, उसकी स्त्री का नाम कामिनी था। एक वार वह

ब्राह्मण किसी दूसरे ग्राम में कथा करने गया और वह एक मास तक घर न आया, तो कामिनी ने कामातुर होकर एक लकड़ियां बेचने वाले निषाद को पांच रुपये देकर उससे भोग किया। उस के गर्भ हो गया। दश मास पश्चात् पुत्र पैदा हुआ। त्रिपाठी ने उस का जात कर्म संस्कार किया और वही व्याध कर्मा अन्त में राजा विक्रमादित्य के यज्ञ का आचार्य्य बना। जैसा कि—

विक्रमादित्य राज्ये तु द्विजाः कश्चिदभूद्भुवि।
व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत् ॥३॥
विक्रमादित्य भूपस्य यज्ञाचार्यो बभूव ह ॥२४॥

(भविस्य० प्रति स० ख० १ अ० ३३)

भाषार्थ—विक्रमादित्य के राज्य में कोई ब्राह्मण हुआ है। उस का नाम व्याधकर्मा प्रसिद्ध है तथा जो कि ब्राह्मणी में शूद्र से पैदा हुआ था ॥३॥ वह विक्रमादित्य के यज्ञ में आचार्य बना।

जब व्याधकर्मा चाण्डाल से ब्राह्मण बन गया तो मतङ्ग के ब्राह्मण बनने में रुकावट क्यों?

(१० इस कथा के अन्त में लिखा है कि—

छन्दो देव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि।
कीर्तिश्च ते अतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति ॥२४॥

(महा० अनु० अ० २९)

भाषार्थ—इन्द्र ने वर दिया कि हे वत्स! तू वेदों का विद्वान् प्रसिद्ध होगा तथा स्त्रियों से पूज्य होगा और तेरी तीनों लोकों में अत्यन्त कीर्ति होगी ॥२४॥ इस मिथ्या कथा में भी यहां वेदों का विद्वान् होना तथा ब्राह्मणी आदि समस्त

स्त्रियों का पूज्य तथा तीनों लोकों में कीर्ति वाला होना भी ब्राह्मण पद की प्राप्ति को साबित करता है।

अतः प्रत्येक अवस्था से सिद्ध है कि मतङ्ग अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गया।

३७४ ( प्रश्न ) फिर स्वामीजी ने जो "स्वाध्यायेनेत्यादि मनु० २ । २८" यह श्लोक देकर सिद्ध किया है कि स्वाध्याय आदि से यह शरीर ब्राह्मण का हो जाता है, यह लेख ग़लत है। पृ० ३२४ पं० १५।

उत्तर—स्वामी जी ने जो लिखा है वह बिल्कुल ठीक है। वह श्लोक तथा अर्थ इस प्रकार से है कि—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यायसुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ २८॥ ( मनु० २ )

इस का अथ पूर्व कर आये हैं। यहां भी संक्षेप से कहते हैं। ( स्वाध्यायेन ) पढ़ने पढ़ान ( जपैः ) बिचार करने कराने ( होमैः ) नाना विध होम के अनुष्ठान, ( त्रैविद्येन ) संपूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारण सहित पढ़ने पढ़ाने ( इज्यया ) पूर्णमासी, इष्टि आदि के करने ( सुतैः ) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म्म से सन्तानोत्पत्ति ( महायज्ञैश्च ) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ, और अतिथियज्ञ (यज्ञैश्च ) अग्निष्टोमादि यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार सत्यभाषण परोपकारादि सत्यकर्म और संपूर्ण शिल्प विद्यादि पढ़ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठ चार में वर्तने से ( इयम् ) यह ( तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का ( क्रियते ) किया जाता है॥ २८॥

३७५ ( प्रश्न ) प्रथम तो यह श्लोक मनु का है। किसी भी

वेद मन्त्र के अनुकूल नहीं। फिर यह आर्य्य समाज को कैसे प्रमाण होगा। पृ० ३२४ पं० १८।

उत्तर—मनु का यह श्लोक "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् यजु० ३१।११" के अनुकूल होने से आर्य्यसमाज को प्रमाण है। आप कोई वेद मन्त्र पेश करके इस श्लोक को वेद के विरुद्ध साबित करें।

३७६ ( प्रश्न )—यज्ञ स्वामी जी ने वेदों से उड़ादी। जब वेद में यज्ञ रहे ही नहीं, तो आर्य्य समाजी करेंगे कहां से। पृ० ३२४ पं० २०।

उत्तर—स्वामी जी वेदों में यज्ञ के विधान को तसलीम करते हैं। और उपरोक्त श्लोक के अर्थ में स्वामी जी ने अपने मन्तव्य के अनुकूल ही (इज्यया, यज्ञ, महायज्ञ) शब्दों का अर्थ करते हुए यज्ञ शब्द की तशरीह भी कर दी है। हां, स्वामी जी आपके मन्तव्यानुसार अश्वमेध, गौ मेध, अजामेध, नर मेध आदि यज्ञों में घोड़े, गौ, बकरे तथा मनुष्य आदि को मार कर उन के मांस से हवन करने को वैदिक नहीं मानते।

३७७ (प्रश्न) स्वामी जी ने पाठ बदल कर श्लोक में 'व्रतैर्होमैः' के स्थान में 'जपैर्होमैः' बना लिया। जप बार २ उच्चारण का नाम है। उस का स्वामी जी मूर्ति पूजा में खण्डन कर चुके। यहां पर उस को ही शुभ कर्म बतला दिया।

पृ० ३२४ पं० २७

३७७ (उत्तर) स्वामी जी ने यहां चौथे समुल्लास में वर्ण व्यवस्था प्रकरण में इस श्लोक को दर्ज करते हुए लिखा है कि 'इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं'। सो यही श्लोक स्वामी

जी ने तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचारियों को उपदेश प्रकरण में दिया है। वहां पर पाठ 'व्रतैर्होमैः' ही है और उस का अर्थ इस प्रकार से किया है कि '( व्रतैः ) ब्रह्मचर्य सत्य भाषणादि नियम पालने' और यहां पर इस प्रकार से अर्थ किया है कि '(जपैः) विचार करने कराने' ये दोनों ही अर्थ स्वामी जी के मन्तव्य के अनुकूल हैं। और दोनों ही शुभ कर्म भी हैं। इस पाठ को बदलने में स्वामी जी को कोई स्वार्थ प्रतीत नहीं होता। और न ही इस पाठ भेद से वास्तव श्लोक के अर्थों में कोई भेद पड़ता है। और जैसे सनातन धर्म व्रत तथा जप को शुभ कर्म मानता है वैसे ही आर्यसमाज भी मानता है। केवल अर्थों का फर्क है। स्वामी जी व्रत का अर्थ ब्रह्मचर्य सत्य भाषणादि नियम तथा जप का अर्थ विचार करना कराना मानते हैं। अतः यह पाठ भेद हमारे सिद्धान्त का बाधक तथा स्वार्थ साधक नहीं है।

३७८ (प्रश्न) "ब्राह्मीयं" का अर्थ "ब्राह्मण का" नहीं हो सकता! इस का अर्थ है कि "इन अनुष्ठानों से ब्रह्म प्राप्ति के योग्य शरीर बनता है" पृ० ३२५ पं० २२

उत्तर—श्रीमान् जी यह "ब्राह्मीयं" एक शब्द नहीं है। अपितु "ब्राह्मी इयं" इन दो शब्दों का मजमूआ है। स्वामी जी ने यहां चौथे समुल्लास में संक्षेप से ब्राह्मी का अर्थ किया है "ब्राह्मण का" किंतु तीसरे समुल्लास में विस्तार पूर्वक "ब्राह्मी" का अर्थ किया है "वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधार रूप ब्राह्मण का शरीर" स्वामी जो वेद तथा परमेश्वर की प्राप्ति को ही ब्राह्मणपन में हेतु मानते हैं। ब्रह्म नाम वेद तथा

परमेश्वर दोनों का है। इस लिये "शरीर का ब्रह्म प्राप्ति के योग्य' बनना तथा "ब्राह्मण का शरीर" बनना एक ही बात है। इस में ज़रा भी फर्क नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण का लक्षण भी यही है, जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है। जैसा कि—

जन्मना जायते शूद्रो व्रत बन्धाद्द्विजो भवेत्।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणो भवेत्॥

["वज्र सूची" सटीक लघुटंक नाम टीका पृ० २४]

सं० १८३६ ई

प्रकाशक ऐल विलकिंसन पोलीटिकल एजंट भूराल। वर्तमान पुस्तक स्वतंत्रानन्द पुस्तकालय हीरा मारकीट बाज़ार कसेरियां अमृतसर में प्राप्य है।

भाषार्थ—जन्मसे प्रत्येक मनुष्य शूद्र पैदा होता है। यज्ञोपवीत धारण करने से द्विज हो जाता है। वेद का अभ्यास करने वाला विप्र हो जाता है। ब्रह्म का जानने वाला ब्राह्मण होता है। यद्यपि वर्तमान वज्र सूची उपनिषद् ज़ोकि उपनिषदों के गुटके में ३७ नंबर पर पाई जाती है। उस में यह श्लोक मौजूद नहीं है। जन्माभिमानी लोगों ने उसे निकाल दिया है। तो भी वर्तमान वज्र सूची उपनिषद् वर्ण व्यवस्था को कर्मानुसार ही प्रतिपादन करती है। जैसे कि—

## वज्र सूचिकोपनिषत्

यज्ज्ञानाद्यान्ति मुनयो ब्राह्मण्यं परमाद्भुतम्।
तत् त्रैपदं ब्रह्म तत्त्वमहमस्मीति चिन्तये॥१॥

ओ३म्। आप्यायन्त्विति शान्तिः॥ चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्ति साक्षिणे। नमो वेदान्त वेद्याय ब्रह्मणेऽनन्त रूपिणे।

ओं वज्रसूचिं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् । दूषणं ज्ञान हीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥१॥ ब्रह्म क्षत्रिय वैश्य शूद्रा इति चत्वारो वर्णा स्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेद वचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् ॥ तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम, किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानम् , किं कर्म, किं धार्मिक इति ॥ तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न अतीतानागतानेक देहानां जीवस्यैक रूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेक देह संभवात् सर्व शरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च । तस्माच्च जीवो ब्राह्मण इति ॥ तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत्तन्न आचांडालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पांच भौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाज्जरामरण धर्माधर्मादिसाम्य दर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात् । पित्रादि शरीर दहने पुत्रादानां ब्रह्महत्यादि दोष संभवाच्च । तस्माच्च देहो ब्राह्मण इति ॥ तर्हि जाति र्ब्राह्मण इति चेत्तन्न तत्र जात्यन्तर जन्तुष्वनेकजाति संभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यशृङ्गो मृग्यः । कौशिकः कुशात् । जाम्बूको जम्बूकात् । वाल्मीको वल्मीकात् । व्यासः कैवर्तकन्यायाम् । शशपृष्ठात् गौतमः । वसिष्ठउर्वश्याम् । अगस्त्य कलशे जात इति श्रुतत्वात् । एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति तस्माच्च जाति र्ब्राह्मण इति ॥ नर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इतिचेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थ दर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति । तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति ॥ तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्ध संचितागामि कर्म साधर्म्य दर्शनात्कर्मभिः प्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति ॥ तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति ।

तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति ॥ तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम ॥ यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जाति गुण क्रियाहीनं षड्ऊर्मिषड् भावे त्यादि सर्वं दोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेनवर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादि दोष रहितः, शमदमादि संपन्नो भाव मात्सर्य तृष्णाशामोहादि रहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेतावर्तते ॥ एवमुक्त लक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुति स्मृति पुराणेतिहासानामभिप्रायः ॥ अन्यथाहि ब्राह्मणत्व सिद्धिर्नास्त्येव ॥ सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्मभावयेदात्मानं सच्चिदानन्दं ब्रह्मभावयेदित्युपनिषत् । ओं आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इतिवज्रसूच्युपनिषत्समाप्ता ॥

यह उपनिषद् ३८ उपनिषदों के गुटके में ३७ नम्बर पर मौजूद है।

३७९ (प्रश्न)—इस श्लोक में कई बातें ऐसी हैं । जिन को आर्य्य समाज वैदिक ही नहीं मानता। पृ० ३२५ पं० ७

उत्तर—आपका यह लिखना क़तई ग़लत है। यदि आर्य्य समाज इस श्लोक को वेदानुकूल न मानता तो इस का प्रमाण ही न देता। अतः आर्य्य समाज इस श्लोक में प्रतिपादित सब सत्कर्मों को वैदिक मानता है जैसा कि—

(१) स्वाध्याय–"अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः मनु० १०।१" इस श्लोक में व्यवस्थित तीनों वर्णों को प्रतिदिन स्वाध्याय

करने की आज्ञा है, ताकि वह अपना ब्रह्मचर्य्य अवस्था का पढ़ा हुआ भूल न जावें, और पढ़ाने की आज्ञा केवल ब्राह्मण को ही है। और व्यवस्थित शूद्र को स्वाध्याय की आज्ञा नहीं, क्यूंकि शूद्र कहते हो उस को हैं जो बावजूद कोशिश के न पढ़ सका हो। हां संभावित चारों वर्णों को पढ़ने का हक़ है। अर्थात् चारों वर्णों की सन्तान को वेदादि पढ़ने का अधिकार है।

(२) व्रत—ब्रह्मचर्य्य सत्य भाषणादि नियम का पालन तथा मधु मांस वर्जनादि नियमों का पालन आर्य्य समाज वेदानुकूल मानता है। जिसका पूरा वर्णन सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में मौजूद है।

(३) होम—नानाविध होम के अनुष्ठान को आर्य्य समाज वैदिक मानता है। तीसरे समुल्लास में सावित्री अर्थात् गायत्री मंत्र से भी होम की आज्ञा दोनों समय करने की है। और चरु नाम सामग्री का है जो हवन में एक आवश्यक वस्तु है।

(४) त्रैविद्य—संपूर्ण वेदों को शब्द अर्थ संबंध स्वरोच्चारण सहित पढ़ने पढ़ाने का व्रत आर्य्य समाज के गुरुकुलों में ब्रह्मचारी गण हमेशा ही पालन करते हैं।

(५) इज्या—पौर्णमासी आदि पार्वणिक यज्ञ तथा ब्रह्मचर्य्य अवस्था में देव अर्थात् विद्वानों ऋषि अर्थात् वेद के ज्ञाताओं पितृ अर्थात् अन्न बल तथा ज्ञान से रक्षा करने वाले आचार्य्य आदि पितरों की सेवा करके उनको तृप्ति करना आर्य्यसमाज को इष्ट है।

(६) सुत—धर्म से सन्तानोत्पत्ति आर्य समाज वेदानुकूल मानता है।

( ७ ) महायज्ञ--पांच महायज्ञों को आर्य्य समाज वेदानुकूल धर्म मानता ही है।

( ८ ) यज्ञ--अग्निष्टोम अर्थात् ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को भी आर्य्य समाज वेदानुकूल तसलीम करता है।

अब बतलाइये इस श्लोक में वह कौनसी बात है जिस को आर्यसमाज अवैदिक कहता है। यदि नहीं तो आप का झूठ बोलना आत्म हत्या है या नहीं। इस से साबित हैं कि आप झूठ बोलकर आत्म हत्या करके सनातन धर्मियों को गुमराही के समुद्र में गिरा रहे हैं।

३८० ( प्रश्न ) "येनास्येत्यादि पर" स्वामी जी! पिता पितामहादिक इस आपके नकली ईसाई मार्ग से नहीं चले। वर्णव्यवस्था का न बदलना यही वेद का सिद्धान्त है। पृ० ३२५ पं० २६।

उत्तर—आपने वेद का कोई प्रमाण नहीं दिया, जिससे यह साबित हो कि वर्ण व्यवस्था तबदील नहीं होती। और हमने वेद स्मृति इतिहास के अनेक प्रमाण दिये हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वर्ण कर्मानुसार है जन्म से नहीं है। क्योंकि यदि वर्ण जन्म से हो तो उसकी व्यवस्था करने की क्या ज़रूरत रही, जब वह जन्म से व्यवस्थित ही है। अतः वर्ण के साथ व्यवस्था शब्द की मौजूदगी ही वर्णों को गुण कर्म स्वभावानुसार व्यवस्था का मोहताज साबित कर रही है। गुणकर्म स्वभावानुसार वर्णों का बदलना ही वेद का सिद्धान्त है। स्वामी जी ने यह सिद्धान्त ईसाइयों से नहीं लिया। अपितु ईसाइयों ने यह सिद्धान्त हमारे वेद शास्त्रों से लिया है। और हमारे पिता

पितामहादि परम्परा से इस सिद्धान्त को मानते आये हैं। जैसा कि हमने वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराणों के प्रमाणों से इस को साबित किया है। हम गुण कर्म स्वभाव अनुसार वर्णव्यवस्था की पुष्टि में एक महाभारत का और प्रमाण पेश करते हैं। न्याय प्रिय सज्जन न्यायानुसार इस पर विचार करके सत्यसिद्धान्त को स्वीकार करें—

युधिष्ठिर उवाच—कोदृशः कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते।
शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्यंन भारत ॥ १९ ॥
भीष्म उवाच—मातापितृभ्यांयस्त्यक्तः पथियस्तं प्रकल्पयेत्।
न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां स हि कृत्रिमः ॥ २० ॥
अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन् संप्रतिलक्षयेत्।
योवर्णः पोषयेत्तं च तद्वर्णस्तस्य जायते ॥ २१ ॥
युधिष्ठिर उवाच—कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्यवाकथम्।
देया कन्या कथंचेतितन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २२ ॥
भीष्म उवाच— आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तथा।
त्यक्तो मातापितृभ्यांयः सवर्णं प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥
तद्गोत्रबंधुजंतस्य कुर्यात् संस्कारमच्युत।
अथदेयातु कन्या स्यात्तद्वर्णस्य युधिष्ठिर ॥ २४ ॥
( महा० अनुशा० अ० ४६ )

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने पूछा कि किया हुआ पुत्र कैसे संग्रह से जाना जाता है। जहां पर बीज तथा क्षेत्र प्रमाण नहीं माना जाता ॥ १६ ॥ भीष्म ने उत्तर दिया कि माता और पिता ने जिस को त्याग दिया हो और जो उस को रास्ते में प्राप्त कर ले। और उस के माता पिता को हम जानते नहीं

वही कृत्रिम पुत्र है ॥ २० ॥ लावारिस का वारिसपना जिस में जाना जावे उस का जो वर्ण भी पालन पोषण करे वही वर्ण उस का हो जाता है ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर ने फिर पूछा कि उस का संस्कार कैसे करना चाहिए और वह किस का कैसे है, और उस को कन्या कौन दे, यह मेरे से कहिये ॥ २२ ॥ भीष्म ने उत्तर दिया कि जो वर्ण उस का पालन पोषण करता है वह अपने समान ही स्वामी बन कर उस का संस्कार करे । जो माता पिता ने त्याग दिया वह पालने वाले का सवर्ण ही होता है ॥ २३ ॥ अपने गोत्र तथा बंधु के समान उस का संस्कार करे । और उसी वर्ण का पुरुष उसे कन्या भी दे ॥ २४ ॥ यह सब वृत्त कर्ण के साथ हुआ । ( महाभारत )

कहिये महाराज ! यदि शूद्र का पुत्र ब्राह्मण को तथा ब्राह्मण का पुत्र शूद्र को पड़ा हुआ मिल जावे । और वह उस का पालन पोषण करके अपने ही वर्ण में उस की शादी कर दे तो बालकों का वर्ण पालन करने वाले के अनुकूल होने से वर्ण में परिवर्तन हो गया, याकि नहीं । अब आप किस मुख से कह सकते हैं कि वेदों तथा धर्म्म शास्त्र में वर्ण परिवर्तन का विधान नहीं है ।

३८१ (प्रश्न)—जो ब्राह्मण या क्षत्रिय ईसाई मुसलमान हो गया वह अब भी जाति का ब्राह्मण क्षत्रिय ही है । जाति तो शरीर के पतन पर बदलेगी । यदि कहो उससे खान पान और विवाहादि संबंध क्यों नहीं करते । वह भ्रष्ट हो गया है इस कारण उस का जाति में ग्रहण नहीं होता । पृ० ३२६ पं० ३

उत्तर—यदि कोई ब्राह्मण वा क्षत्रिय ईसाई वा मुसल-

मान होजाये तो आप उस से रोटी बेटी का व्यवहार क्यूं नहीं करते। जब आप वर्ण व्यवस्था जन्म से मानते हैं कर्म से नहीं। तो ईसाई मुसलमान होने से उन का जन्म तो तबदील होता नहीं और कर्मों की आपको दृष्टि में कोई वुकअत ही नहीं है। और जाति की तबदीली शरीर की तबदीली से होती है। और शरीर उन का तबदील होता नहीं अतः आप के ख्याल में वे दोनों जाति से भी ब्राह्मण क्षत्रिय ही हैं। फिर यह बतलावें कि वे भ्रष्ट किस पदवी से होगये जो आप उन के साथ रोटी बेटी का व्यवहार करने को तय्यार नहीं हैं। और उन को जाति में भी ग्रहण करने को तय्यार नहीं हैं। बस जिस तबदीली के कारण उन को भ्रष्ट माना जाता है। और जिस तबदीली के कारण आप उस से रोटी बेटी व्यवहार करने को तय्यार नहीं हैं। और प्रायश्चित करने के पीछे जिस की तबदीली के कारण आप फिर से उसे उत्कृष्ट मानने तथा रोटी बेटी का व्यवहार भी करने को तय्यार हो जाते हैं। उसी का नाम ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्व है जो कर्मों के तबदील होने से तबदील होते रहते हैं। शरीर या जन्म का नाम ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं है। अपितु शरीर का नाम मनुष्यत्व है जोकि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ईसाई मुसलमान ही है। इन सब में शरीर जन्म मरण आदि समान होते हुए भी कर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो एक दूसरे में ब्राह्मणत्वादि भेद का कारण है। इससे साबित है कि ब्राह्मण आदि वर्ण कर्मानुसार ही हैं, जन्म से नहीं हैं।

३८२ (प्रश्न)—सभी मनुष्य लड्डू खाते हैं किंतु जो लड्डू

मैले से भिड़ गया, उस को कोई नहीं खायेगा। क्यूंकि वह भ्रष्ट हो गया। इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय ईसाई मुसलमान हो जाने से जाति के ब्राह्मण क्षत्रिय रहने पर भी भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव उन का व्यवहार छोड़ दिया जाता है। पृ० ३२६, पं० ६

उत्तर—यद्यपि ये नियम कि गंदी नाली में गिरने से व्यवहार के योग्य नहीं रहता, महज़ मनुष्यों से बनाई हुई खाने की चीज़ों पर ही लागू होता है। वरना लड़का, लड़की, स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस, कपड़ा, रुपया, चांदी, सोना, सब्ज़ी, फल, अन्न सब गन्दी नाली मे निकाल कर शुद्ध करके बरते जाते हैं। इनसान के खाने की चीज़ नहीं। इस की शुद्धि भी लिखी है। 'अद्भि गात्राणि' इति मनु० ५। ब्राह्मण के लिये लड्डू की मिसाल मौजूं नहीं है। क्योंकि जैसे लड्डू अपनी विशेष गोल आकृति के कारण जलेबी, बालुशाही, शक्करपारा, बरफी आदि मिठाइयों में से स्पष्ट पहिचाना जाता है। वैसे ब्राह्मण को कोई विशेष आकृति नहीं है जिस से वह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राक्षस, चाण्डाल, ईसाई, मुसलमानों में स्पष्ट रूप से पहिचाना जावे। हां मनुष्य के लिये लड्डू की मिसाल मौजूं है, क्योंकि मनुष्य भी लड्डू की भांति गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि में से अपनी विशेषाकृति के कारण स्पष्ट पहिचाना जाता है। जैसे लड्डू [illegible] गिरने के पश्चात् रहता तो लड्डू ही है परन्तु अपनी [illegible]ने के कारण काबिल खुराक नहीं रहता। [illegible]से गिर कर ईसाई, मुसलमान [illegible]रण वर्ण नष्ट हो जाने

के कारण वह व्यवहार के योग्य नहीं रहता। अतः ब्राह्मण वर्ण लड्डू की भान्ति नहीं, अपितु मनुष्य लड्डू की भान्ति तथा ब्राह्मण वर्ण लड्डू की पवित्रता की भांति है जो कि तबदील हो कर अपवित्रता, भ्रष्टता की सूरत में तबदील हो जाती है वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्ण भी ईसाई, मुसलमान की सूरत में तबदील हो जाता है। इस से साबित है कि मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ईसाई, मुसलमानादि भेद कर्मानुसार हैं जन्म से नहीं हैं। और गन्दी नाली में गिरने से लड्डू की भ्रष्टता भी हीन कर्म से मनुष्य गिर जाता है यही साबित करती है।

३८३ (प्रश्न)—"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस मन्त्र में निराकार ईश्वर को अनुवृत्ति स्वामी जी बतलाते हैं। इस अध्याय में तो निराकार ईश्वर कहा ही नहीं। इस अध्याय में तो "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इस मंत्र द्वारा साकार विराट् का वर्णन है। आगे चल कर "तं यज्ञं" इस मंत्र में यह वर्णन किया कि जो सब से पहिले पैदा हुआ था उस यज्ञ पुरुष विराट् का ऋषियों ने पूजन किया। फिर यहां निराकार कहां से धंस बैठा।

पृ० ३२६ पं० १२

उत्तर—आप ने स्वामी जो के लेख को चुरा कर मनमाना पाठ लिख दिया। स्वामी जी का लेख यूँ है कि "यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति" इस से साफ ही साबित है कि स्वामी जो "पुरु[illegible] अर्थ "निराकार व्यापक परमात्मा" [illegible] शब्द इस से पहले मन्त्र "यत्प[illegible] के अर्थ करते हुए [illegible]

पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा ।
पूरयत्यन्तरि इत्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य ॥

"यस्मात्परं नापरमस्तिकिञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्" इत्यपि निगमो भवति ॥ १ ॥ ( निरु० अ० २ खं० ३ )

भाषार्थ—पुरुष उस को कहते हैं कि जो इस सारे संसार में व्यापक हो रहा है । जो स्वयं परमेश्वर इस सारे जगत् को अपने स्वरूप से व्याप्त कर रहा है उसी का नाम पुरुष है । पुर कहते हैं ब्रह्मांड और शरीर को । उस में जो सर्वत्र व्याप्त और जो जीव के भीतर भी व्यापक अर्थात् अन्तर्यामी है । उस का नाम पुरुष है ।

जिस पूर्ण परमेश्वर से उत्तम कोई नहीं, और जिस से प्राचीन कोई नहीं और जिस परमात्मा से सूक्ष्म तथा महान् कोई नहीं । जो वृक्ष की भांति सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदि को धारण करके अचल रूप से अद्वितीय आकाश में व्यापक हो कर ठैरा है । उस परमात्मा से ही यह सारा जगत् पूर्ण हो रहा है । यह भी प्रमाण है । इस प्रमाणसे साबित है कि पुरुष का अर्थ सर्व व्यापक है ॥ १ ॥ और सर्वव्यापक निराकार पदार्थ ही हो सकता है । साकार सर्वव्यापक नहीं होता । अतः पुरुष का अर्थ निराकार व्यापक परमात्मा बिलकुल ठीक है । "सहस्र-शीर्षा" "तथा तं यज्ञं" इन दोनों मन्त्रों में भी व्यापक तथा निराकार परमात्मा का ही वर्णन है । अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य तथा वेदानुकूल है ।

३८४ (प्रश्न)—आप का यही तो अर्थ है कि "जो सब

में उत्तम हो वह ब्राह्मण, आप के हिसाब से राजा ब्राह्मण, मंत्री ब्राह्मण, पहलवान ब्राह्मण, गायक शिरोमणि ब्राह्मण, खूबसूरत ब्राह्मण, रंडी ब्राह्मण, जो उत्तम होंगे वे सब ब्राह्मण होंगे। इनमें कुछ न कुछ उत्तमता ज़रूर रहती है। पृ० ३२६ पं० २०

उत्तर—वाह महाराज! खूब समझे। इस समझ ने तो आप को बूझ बुझक्कड़ का भी दादा साबित कर दिया। क्या आप उपमालंकार को भी नहीं समझते। श्रीमान् जी! उपमालंकार में उपमान् के गुणों का उतना ही हिस्सा लिया जाता है जितने गुणों से कहने वाला उपमेय के गुणों की साम्यता करना चाहता है। यदि मैं आप को किसी समय यह कह दूं कि आप बड़े शेर हैं तो इस का यह मकसद नहीं कि मैं आप को हैवान दरिन्दा या पूंछ वाला कहना चाहता हूं अपितु मेरा यही मकसद होगा कि आप शेर जैसे बहादुर हैं। यदि मैं आप को धर्मपत्नी को 'माता जी नमस्ते' कह दूं तो इस का यह मक़सद नहीं कि मैं उस को अपने बाप की पत्नी कहना चाहता हूं। अपि तु मैं उसे माता के समान पूज्या समझता हूं। इसी प्रकार से ही स्वामी जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि 'जो पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह द्विज' इस का यह अभिप्राय हैं कि 'जैसे मुख में बाकी जिस्म की निस्बत पांच गुणा ज्ञान है और मुख शरीर को उलटे रास्तेसे हटा कर सीधे रास्ते पर चलाता है और मुख ही अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ाता है। वैसे ही जो मनुष्य आम पब्लिक की निस्बत बहुत अधिक उत्तम ज्ञान रखता हो, लोगों को उलटे रास्ते से हटा कर सीधे रास्ते पर चलावे तथा

अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ावे वह द्विज कहाने का हक़दार है'। जैसा कि मनु ने भी लिखा है कि 'विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्' (मनु० २। १५५) विप्रों को ज्ञान के कारण ज्येष्ठ माना जाता है। यदि कोई राजा, मन्त्री, पहलवान्, गायक, खूबसूरत, तथा रण्डी भी अपने २ काम को छोड़ कर मुख के समान अत्यन्त ज्ञानी हो कर उपदेशक तथा तथा अध्यापक का काम करने लग जावें तो निःसंदेह वे द्विज बन सकते हैं अन्यथा नहीं, हां सनातन धर्म के सिद्धांतानुसार एक पुरुष या स्त्री, विप्र के घर जन्म ले कर मद्य पान, मांस भक्षण, वेश्या-पन, वेश्या गमन, गो घात, गो मांस भक्षण, चोटी कटा, यज्ञोपवीत उतार, मुसलमान, ईसाई हो गो मांस का व्यापार इत्यादि २ अनेक प्रकार के कुकर्म करते हुए भी ब्राह्मण ब्राह्मणी कहा सकते हैं, क्यों कि सनातन धर्म जन्म से वर्ण व्यवस्था मानता है, कर्म से नहीं। देखो (नं०३८१)

३८५ (प्रश्न)—'जिस में बल, वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय' बलवान् क्षत्रिय, शेर क्षत्रिय और भैंसा क्षत्रिय। पृ० ३२६ पं० २४।

उत्तर—बेशक, जिस मनुष्य में बल, वीर्य अधिक हो। जैसे दोनों भुजा अपने आप को आपत्ति में डाल कर भी बाकी शरीर की रक्षा करती हैं। वैसे ही जो पुरुष अपने आप को आपत्ति में डाल कर भी सब प्रजा की रक्षा करता है वह क्षत्रिय कहाता है। जैसे कि 'क्षत्रियाणां तु वीर्यतः। मनु० २। १५५'। क्षत्रियों की बल से उत्तमता मानी जाती है। वेद ने चूंकि वर्ण व्यवस्था पुरुषों के लिये प्रतिपादन की है पशुओं

के लिये नहीं। और न ही पशु अपने बल और वीर्य से दूसरे पशुओं की रक्षा कर सकते हैं। अपि तु बलवन् पशु निर्बलों को सताते और मार खाते हैं। अतः शेर तथा भैंसे को क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता।

३८६ प्रश्न)—'ऊरू के बल से जो देश विदेश जावे वह वैश्य' कोई आर्यसमाजी पण्डित पेशावर से पैदल चल कर कलकत्ते पहुंच जावे तो वह आप की दृष्टि में वैश्य, क्योंकि ऊरू के बल से आया है। आप के इस लक्षण से तो द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हाथी, घोड़ा, ऊंट गधा, गाय, भैंस, भेड, बकरी सभी वैश्य हो जावेंगे। क्यों कि ये सब ऊरूके बल से चलते है। पृ० ३२६ पं० २७।

उत्तर—ग़लत इबारत लिख कर जनता को धोका देना आप का मुख्य धर्म है। देखिये स्वामी जी की तहरीर इस प्रकार से है कि "जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरु के बल से आवे जावे। प्रवेश करे वह वैश्य" बेशक जो भी मनुष्य पदार्थों में प्रवेश करने के लिये अर्थात् व्यापार वा खेती वा शिल्प कारी के लिये, पदार्थों के प्राप्त करने के लिये ऊरु के बल से देश देशान्तर में जावेगा वह वैश्य कहा जावेगा। चाहे वह आर्य्य समाज का उपदेशक हो वा जन्म से ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र आदि कोई भी हो। जैसे कि—

विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरुचिः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः॥ ६॥
(महा० शान्ति० अ० १८६)

वैश्यानांधान्यधनतः। मनु० २।१५५

भाषार्थ—जो पशुओं तथा खेती आदि में शीघ्र प्रवेश करता है। दान देता है, शुद्धि में प्रेम रखता है, वेद पढ़ता है वह वैश्य है ॥ ६ ॥ वैश्यों में धान्य धन से बहुपन है ॥ १५५ ॥ अतः पशु खेती अन्न, धन आदि समस्त पदार्थों में हर प्रकार से प्रवेश करने वाले का नाम वैश्य है। हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि पशुओं को वैश्य नहीं कहा जा सकता, क्यूंकि प्रथम तो वेद ने वर्ण व्यवस्था पशुओं के लिये नहीं, लिखी दूसरे पशु संपूर्ण पदार्थों चांदी, सोना, हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा आदि व्यापार तथा शिल्प की वस्तुओं में प्रवेश की बुद्धि नहीं रखते। शूद्रों की व्युत्पत्ति करके भी उस को योग्यता से ही चरितार्थ किया जाता है। जैसे पति के अर्थ हैं रक्षा करने वाला। तो क्या आप विना योग्यता का विचार किये प्रत्येक रक्षा करने वाले पिता पुत्र, भाई, चौकीदार, सेनापति, राजा, कुत्ता, बैल, गधा, घोड़ा आदि को प्रत्येक स्त्री का पति तसलीम कर लेंगे। अतः योग्यता के अनुसार ही व्युत्पत्ति के अर्थ चरितार्थ हुआ करते हैं।

३८७ (प्रश्न)—"जो पैर के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र" आप की दृष्टि में पैर मूर्ख हैं। और भुजा चारों वेद पढ़ी हैं। पैर दर्शनों का पण्डित है। और ऊरु वैयाकरण हैं। यह आप कहाँ की अक़्ल खर्च कर हैं। पैर बोलते नहीं, तो भुजा पेट ऊरू भी तो सत्यार्थ प्रकाश नहीं बांचते। पृ० ३२७ पं० ३

उत्तर—आप यहां पर उपमालंकार के असूल को फिर भूल गए, यहां पर स्वामी जी की इबारत यूं है कि "जो पग

के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है' यहां पर स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि जैसे पाओं नीचा अंग है वैसे ही मूर्खत्वादि घटिया गुण जिस में हों, वह शूद्र है। दूसरे जैसे पाओं सारे शरीर के बोझ को उठाते हैं वैसे ही जो मनुष्य केवल बोझ उठाने अर्थात् कुली-पन का काम जानता हो वह शूद्र है। यह स्पष्ट है कि जैसे मुख में ज्ञान, भुजा में रक्षा, तथा पेट में कच्चे पदार्थ को पक्का बनाने के गुण हैं वे गुण पगों में नहीं हैं। मुख बाहु पेट ऊरू की अपेक्षा पैर गुण हीन हैं। तभी शूद्रों को पगों से उपमा दी गई है। क्यूंकि शूद्र भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की अपेक्षा गुण हीन हैं। अन्यत्र साहित्य में भी यदि किसी को किसी से हीन वर्णन करना हो तो कहा जाता है कि वह उस के पाओं के बराबर भी नहीं है। जैसा कि—

न पादरजसा तुल्या ममेयं गोपकन्यका।

(पद्मा० सृष्टि० अ० १७ ब्रह्मासावित्री संवाद)

राधेयस्य न पादभाक्।

(महाभारत)

भाषार्थ—सावित्री ने ब्रह्मा से कहा कि जिस गोप कन्या से आप ने विवाह किया है यह तो मेरे पैर की धूल के बराबर भी नहीं है।

अर्जुन तो कर्ण के पाओं के समान भी नहीं है।

इससे सिद्ध हुआ कि स्वामी जी का अर्थ बिलकुल ठीक है। आपने उपमालंकार के असूल को छोड़ कर स्वामी जी के अर्थ पर मखौल उड़ाने की चेष्टा की है। इस प्रकार से तो प्रत्येक

उपमा पर मखौल उड़ाया जा सकता है। जैसे गीता का श्लोक है कि—

विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वान् विनीत ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में समान दृष्टि रखते हैं। वे पण्डित हैं। आपके पण्डित होने में तो किसे संदेह हो सकता है। तो क्या आप इस श्लोक की शिक्षा के अनुसार—

(१) गौ, हाथी, कुत्ते तथा चांडाल को ब्राह्मण मान कर उन से वेद पढ़ने के लिये जाते हैं। अथवा उनको कभी दूसरे ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध में भोजन कराते हैं। अथवा उनके लड़के लड़कियों के साथ आप अपने लड़के लड़कियों का रिश्ता करने को तैय्यार हैं।

(२) ब्राह्मण, हाथी, कुत्ता तथा चांडाल को गौ मान कर उनका दूध निकाल कर कभी स्वयं तथा अपने परिवार को पिलाते हैं।

(३) ब्राह्मण गौ कुत्ते और चांडाल को हाथी मान कर उनके ऊपर सवारी करते हैं।

(४) ब्राह्मण गौ हाथी और चांडाल को कुत्ता मान कर उनसे कुत्ते का सा व्यवहार करते हैं।

(५) ब्राह्मण गौ हाथी और कुत्ते को चांडाल मान कर उन से चांडाल का सा व्यवहार करते हैं।

यदि ऐसा नहीं करते तो क्या आप पण्डित कहलाने के क़ाबिल हैं। आप गौ को माता कहते हैं। क्या वह आपके

बाप की धर्म्म पत्नी है । और जैसे आप गौ को सांड के पास ले जाते तथा उसका दूध निकाल कर उससे मक्खन निकालते हैं, वैसे ही माता के साथ भी व्यवहार करते हो। यदि नहीं तो साफ तौर से आप को मानना पड़ेगा कि उपमा का उतना ही भाग लिया जावेगा जितना कहने वाले का मकसद हो जैसे गीता के श्लोक में सब की आत्मा को अपनी आत्मा के समान जानने का उपदेश है। तथा गौ को माता कहने से यह प्रयोजन है कि माता के समान पालन करने वाली होने से माता के समान ही पालन करने, रक्षा करने तथा इज्ज़त करने के क़ाबिल है। वैसे ही शूद्रों को पाओं की उपमा देने का भी यही प्रयोजन है कि जो पग के समान बोझ उठाने वाले हीन कर्म करने वाले तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की अपेक्षा विद्या आदि गुणों से हीन हैं वह शूद्र कहाते हैं।

भला आप के सिद्धान्तानुसार यदि मुख बाहु पेट ऊरु तथा पगों में गुणों की न्यूनाधिकता नहीं और सब अंग गुणों में समान ही हैं तो शूद्रों के पगों से पैदा होने के कारण आप दूसरों से नीच क्यों मानते हैं।

अतः स्वामी जी ने जो अर्थ किया है वह सर्वथा वेदानुकूल होने से सत्य हैं।

३८८ ( प्रश्न )—शतपथ का जो आपने प्रमाण दिया वह तो हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है । शतपथ का अर्थ यह है कि "ब्राह्मण सब में मुख्य हैं। इसलिये इनको विराट के मुख से रचा"। इस अर्थ से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि है या आप के सिद्धान्त की। पृ० ३२७ पं० १३।

उत्तर—शतपथ के प्रमाण से स्वामी जी के सिद्धान्त की पुष्टि होती है, आपके सिद्धान्त की नहीं। आपने इसका अर्थ ग़लत किया है। इस प्रमाण में विराट् शब्द का नामोनिशान भी नहीं है। देखिये, इसका अर्थ इस प्रकार से है कि—

"यस्मादेते मुख्या स्तस्मान्मुखतोह्यसृज्यन्त इत्यादि।

जिस से ये मुख्य है इस से मुख के सदृश उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है। अर्थात् जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्णविद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है"

अतः शतपथ का प्रमाण भी गुण कर्म स्वभाव से ही वर्णव्यवस्था को मानता है, जन्म से नहीं।

३८६ ( प्रश्न )—आप विराट् को भी निराकार मानते हैं यह आपकी विलक्षण बुद्धि है। पृ० ३२७ पं० १९।

उत्तर—स्वामी जी ने इस स्थल में कहीं भी विराट् के अर्थ निराकार नहीं किये। अपितु यह लिखा है कि 'जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं तो मुखादि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि—यजु० ४० में परमात्मा को स्पष्ट "अकायमस्नाविरम्" "शरीर से रहित तथा नाड़ीनस के बन्धन से रहित" बतलाया गया है। हाँ यदि स्वामी जी के विराट् शब्द के अर्थ देखने हों तो—

ततोविराडजायत। यजु० ३१।५

ततः—उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्ड रूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता है।

यह मौजूद हैं। अतः आपकी तहरीर सर्वथा असत्य है।

३६० (प्रश्न)—कार्य्यं उपादान कारण के सदृश होता है" यदि कार्य उपादान कारण के सदृश होता है तो फिर यह मनुष्य पानी से पैदा होता है। यह कठिन शरीर का क्यों हो गया। बट का वृक्ष ज़रा से गोल बीज से उत्पन्न होता है। तो फिर यह बीज के सदृश क्यों गोल नहीं, सरसों का पेड़ लंबा क्यों, यह भी कारण के सदृश होना चाहिये। पृ० ३२३ पं० २९।

उत्तर—बेशक स्वामी जी की तहरीर सत्य है कि 'कार्य, उपादान, कारण के सदृश होता है। यदि द्विजादि का उपादान कारण मुखादि हैं तो द्विजादिको मुखादिके सदृश शकल में गोलादि आकृति का होना चाहिये, मनुष्य पानी से पैदा नहीं होता। अपि तु पुरुष के शरीर में पांचों तत्व हैं जिन में पृथिवी प्रधान है। और वीर्य पुरुष शरीर के अङ्ग २ से पैदा होता है। अतः वीर्य का उपादान कारण पुरुष का शरीर है। अतः उस वीर्य से जो मनुष्य उत्पन्न होता है वह भी पिता के शरीर की तरह कठोर अर्थात् पृथिवी तत्व प्रधान होता है। इसी प्रकार से ही बट और सरसों के बीज का उपादान कारण भी बड़ तथा सरसों का वृक्ष ही होता है। अतः बड़ तथा सरसों के बीज से जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं वे बड़ तथा सरसों के वृक्षों के समान ही होते हैं अन्यथा नहीं। अब या तो आप भी यह तसलीम करें कि ब्राह्मणादि का उपादान कारण ब्रह्मा का सारा शरीर है। मुखादि महज़ बाहर आने के योनि वत् साधारण कारण ही हैं। तो ऐसी सूरत में आप के मत में ब्राह्मण तथा शूद्र में कोई भेद न रहेगा। और

ादि आप ब्राह्मणादि में मुखादि को पृथक २ उपादान कारण मानते हैं तो फिर स्वामी जी का एतराज़ ठीक है कि ाह्मण आदि की आकृति अपने उपादान कारण मुखादि के सदृश गोल आदि होनी चाहिये।

३९१ (प्रश्न)—स्वामी जी लिखते हैं कि "सृष्टि के आ-म्भ में जो लोग मुख से पैदा हुए थे वे ब्राह्मण थे किंतु आज ल के ब्राह्मण तो मुख से पैदा नहीं हुए फिर ये ब्राह्मण कैसे" ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होता है। जैसे बैल का पुत्र बैल और ऊंट का पुत्र ऊंट इस प्रकार से जब घोड़े का पुत्र घोड़ा और गधे का पुत्र गधा होता है। तो फिर ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय एवं वैश्य का पुत्र वैश्य और शूद्र का पुत्र शूद्र कैसे न होगा। जो व्याकरण पढ़े हैं वे जानते हैं "ब्राह्मणस्य पुत्रःपुमान् ब्राह्मणः"।

उत्तर—स्वामी जी का आक्षेप ठीक है कि "यदि तुम मुखादि से पैदा होना ही ब्राह्मणादि होने में कारण मानते हो तो जो मुखादि से पैदा हुए होंगे वे ब्राह्मणादि होंगे। किंतु तुम तो सब लोगों की भाँति गर्भाशय से पैदा हुए हो, मुखादि से पैदा नहीं हुए तुम ब्राह्मणादि कैसे।" आपने इस के उत्तर में लिखा है कि जैसे गधे घोड़े ऊंट बैल के पुत्र गधे घोड़े बैल ऊंट ही होते हैं वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के पुत्र भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ही होंगे। आप का यह उत्तर ठीक नहीं है। क्योंकि जैसे गधे घोड़े बैल ऊंट में परस्पर आकृति भेद है और वे भिन्न पहचाने जाते है, वैसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों में परस्पर आकृति भेद नहीं है और न ही वे भिन्न २

पहिचानी जाती हैं । अपितु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र एक ही मनुष्य जाति के कर्मानुसार भेद हैं। इसी जन्म में कोई गधे से बैल और बैल से गधा नहीं बन सकता किन्तु शूद्र से ब्राह्मण और ब्राह्मण से शूद्र बन जाता है । जैसा कि हम साबित कर आये हैं। अतः ब्राह्मणादि वर्णों के लिये बैलादि जातियों का दृष्टान्त ठीक नहीं है । हां यह ठीक है कि मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होगा । फिर वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र में से जिस वर्ण के कर्मों को करेगा। उसी वर्ण में शुमार किया जावेगा। आपने व्याकरण की भी खूब टांग तोड़ी है। ज़रा बतला तो दिया होता कि ब्राह्मण शब्द से अपत्य अर्थ में किस सूत्र से कौनसा प्रत्यय होकर, किस सूत्र से सर्वथा लोप होकर, ब्राह्मण का ब्राह्मण ही शेष रह जाता है। हम आपको डंके की चोट चैलेंज करते हैंकि आप व्याकरण से 'ब्राह्मणस्य पुत्रः पुमान् ब्राह्मणः" सिद्ध करके दिखलावें। वरना व्याकरण का नाम लेकर जनता को धोके में डालना ईमानदारी से बईद है। ब्राह्मणादि किस को कहते हैं देखो—( नं० ३५१ )

३९२ ( प्रश्न )—"शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। स्वामी जी ने इस को प्रमाण कैसे माना। पृ० ३२८ पं० १८ ।

उत्तर—मनुस्मृति का यह श्लोक "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" के अनुकूल है। अतः स्वामी जी ने प्रमाण माना है।

३९३ ( प्रश्न )—इस श्लोक में कहीं पर गुण कर्म स्वभाव नहीं है। इन तीनों को स्वामी जी ने अर्थों में मिला दिया है। पृ० ३२८ पं० २०।

उत्तर—श्रीमान् जी ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र शरीर का नाम नहीं है। और न ही आत्मा का नाम है। ये गुणकर्म स्वभाव से ही मनुष्य जाति में चार भेद हैं और इनकी तबदीली से ही शूद्र से ब्राह्मण तथा ब्राह्मण शूद्र से बन सकता है। अतः स्वामी जी ने इस श्लोक का अर्थ ठीक ही किया है कि—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥३५॥ मनु०१०

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य हो जाए। वैसे ही जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जावे। वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ वर्ण में गिनी जावे।

३६४ (प्रश्न)—"शूद्रोब्राह्मणतामेति" इसके पहले शूद्रायाब्राह्मणाज्जातः" श्लोक है। इन दोनों श्लोकों का इकट्ठा अर्थ होता है। एक श्लोक को छोड़ा और एक को लिया। स्वामी जी की यह चालाकी है। पृ० ३२८ पं० १७

उत्तर—"शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः" यह श्लोक वेद के विरुद्ध है। और दोनों श्लोकों को मिला कर जो आप अर्थ करते हैं। वह अर्थ वेद स्मृति रामायण और महाभारत सबके विरुद्ध हैं। वास्तव में यह श्लोक जाति अभिमानी लोगों ने पीछे से

मनु में शामिल किया है। इसका प्रमाण यह है कि "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह श्लोक भविष्य पुराण ने भी वर्ण व्यवस्था प्रकरण में दिया है किन्तु इसके साथ "शूद्रा।ांब्राह्मणाज्जातः" यह श्लोक नहीं है। भविष्य पुराण का पाठ इस प्रकार से है।

वेदानध्यापयंतोऽपि तेऽधीयानाः श्रुतिक्रमात्।
ब्राह्मण्यात्प्रहीयन्ते दुराचारविधायिनः॥ ४३॥
तस्मान्न जातिरेकत्र भृतात्मास्त्यनपायिनी।
नाशित्वादत्र च श्लोकान्मानवाः समधीयते॥ ४४॥
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयी॥ ४५॥
गोरक्षकान् वाणिजिकां स्तथा कारु कुशीलवान्।
प्रेष्यान वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान्मनुरब्रवीत्॥ ४६॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियोयाति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च॥ ४७॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४०)

भाषार्थ—वेद को पढ़ाते हुए तथा श्रुति क्रम से पढ़ते हुए भी दुराचारी लोग ब्राह्मण पद से गिर जाते हैं॥ ४३॥ इस कारण नाश होने वाला होने से वर्ण एक ही आत्मा में स्थिर नहीं है। इस विषय में मनुष्य श्लोक पढ़ते हैं॥ ४४॥ द्विज, मांस लाक्षा और नमक के बेचने से तत्काल ही पतित हो जाता है। और जो द्विज दूध बेचता है वह तीन दिन में शूद्र हो जाता है॥ ४५॥ गोरक्षक, व्यापारी, सेवा काम करने वाले, नचार, दूत, सूद खोर ब्राह्मणों को मनु ने शूद्र कहा है॥ ४६॥ शूद्र ब्राह्मण हो जाता है, तथा ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

क्षत्रिय विप्र बन जाता है। और वैश्य भी ब्राह्मण वा शूद्र हो जाता है ॥ ४७ ॥ आशा है कि आप को इस लेख से वर्ण व्यवस्था विषयक तसल्ली हो जावेगी और यह भी निश्चय हो जाएगा कि "शूद्रायाम्" यह श्लोक प्रक्षिप्त है। वरना भविष्य इसे अवश्य लिखता।

३९५ (प्रश्न)—इन दोनों श्लोकों का अर्थ इस प्रकार से है कि—

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचेत्प्रजायते।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥
(मनु० १०)

शूद्रों में ब्राह्मण से जो सन्तान उत्पन्त हो वह पारशव-आख्य वर्ण होता है। यदि वह कन्या हो और उस को द्विज विवाह ले फिर उस के भी कन्या हो इसी प्रकार सात पीढ़ी तक कन्या होती जाये तथा उस का विप्र से सम्बन्ध होता जाये तो पारशव वर्ण में जो शूद्रत्व है। उस का नाश हो कर सप्त कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जायेगी। इसी प्रकार 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' शूद्र वर्ण ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। यदि शूद्रा में ब्राह्मण से लड़का उत्पन्न हो और उस का सम्बन्ध शूद्रों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में ब्राह्मणत्व का नाश हो जावेगा। और वह ब्राह्मण वीर्य शूद्रता को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे 'ब्राह्मश्चैति शूद्रताम्' ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होगा। इसी प्रकार शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न हुई कन्या सप्त पीढ़ी तक यदि उस का सम्बन्ध बराबर क्षत्रिय से होता रहे

तो सप्तम कन्या शुद्ध क्षत्रिय कन्या हो जावेगी। यदि शूद्र स्त्री में क्षत्रिय से लड़का हो और उस का सम्बन्ध बराबर शूद्र से होता जाये तो वह सप्तम पीढ़ी में शूद्र हो जावेगा। ऐसे शूद्र क्षत्रिय और क्षत्रिय शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शूद्रा स्त्री में वैश्य से कन्या उत्पन्न हुई हो और उस का सम्बन्ध बराबर सातवीं पीढ़ी तक वैश्यों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में पह वणिक् कन्या होगी। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पुत्र सात पीढ़ी तक शूद्रों में सम्बन्ध करता जावे तो वह शूद्र हो जावेगा इस प्रकार वैश्य शूद्र और शूद्र वैश्य होगा।

(पृ० १३० तथा पृ० ३२८ पं २२)

उत्तर—आप के इस लेख में निम्न प्रकार से दोष हैं—

(१) यदि ब्राह्मण से क्षत्रिया तथा वैश्या में तथा क्षत्रिय से वैश्या में पुत्र पुत्री हों तो उन की वर्ण व्यवस्था क्या होगी यह आप ने नहीं बतलाया। यदि वीर्य की प्रधानता से पिता का वर्ण सन्तान का होगा तो शूद्रों में भी पैदा की गई सन्तान वीर्य की प्रधानता से पिता के वर्ण की क्यों न हो।

(२) शूद्रा में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य से पैदा हुई सन्तान यदि विवाह न करे तो किस वर्ण में शुमार की जावेगी।

(३) आप का यह अर्थ सातवीं पीढ़ी में सन्तान पिता के वर्ण की होगी। मनु के निम्न लेख के विरुद्ध है।

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ॥ १० । ६७ ॥
यस्माद् बीज प्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्मात् बीजं प्रशस्यते ॥ १० । ७२ ॥
तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ १० ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से पदा किया पुत्र गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो जाता है ॥ ६७ ॥ जिस कारण बीज के प्रभाव से तिर्यग् ( टेढ़ी-नीच ) जाति में पैदा हुए भी ऋषि बन गये, पूजा तथा प्रशंसा के योग्य हो गये। इस लिये बीज ही प्रधान है ॥ ७२ ॥ वह अनुलोमज तथा प्रतिलोमज कोई तप के प्रभाव से कोई बीज के प्रभाव से प्रत्येक युग में इस संसार तथा इसी जन्म में जन्म की निस्बत मनुष्यों में उन्नति तथा अवनति को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ जब मनु के कथनानुसार वीर्य प्रधान है तो फिर सातवीं पीढ़ी में वर्ण की उन्नति स्वयं मनु के ही विरुद्ध है।

( ४ ) मनु कहता है कि स्त्री का वर्ण पति के अनुसार है—

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्यते यथा विधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ ९ । २२ ॥
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैःशुभैः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार के गुणों वाले पति से स्त्री संयुक्त होती हैं उसी प्रकार के गुणों वाली हो जाती है। जैसे नदी समुद्रमें मिल कर समुद्र रूप हो जाती है ॥ २२ ॥ अधमयोनि से पैदा हुई अक्षमाला वसिष्ठ से विधि पूर्वक संयुक्त हो कर और अधम कुलोत्पन्न शारङ्गी मन्दपाल से संयुक्त हो कर पूजा के योग्य पदवी को प्राप्त हो गई ॥ २३ ॥ ये भी और भी बहुत

सी स्त्रियां इस संसार में अधम कुल में पैदा हो कर अपने २ पतियों के गुणों से उन्नति को प्राप्त हो गईं ॥ २४ ॥ जब मनु के कथनानुसार विवाह होने पर स्त्री का वर्ण पति के अनुसार ही हो जाता है तो फिर उन की सन्तान का सातवीं पीढ़ी में पिता का वर्ण प्राप्त करना मनु की तहरीर के घोर विरुद्ध है।

( ५ ) निम्न लिखित महात्मा शूद्रा तथा चाण्डाली आदि में पैदा हो कर तप से ब्राह्मण बन गये—

( १ ) पराशर चाण्डाली से, ( २ ) वसिष्ठ कञ्जरी से, ( ३ ) मन्दपाल मल्लाहनी के उदर से, ( ४ ) व्यास कैवर्ती के पेट से, ( भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२ ) ( ५ ) बाल्मीकि भीलनी के पेट से, ( भारत सार अ० ५५ श्लो० २१ ) ( ६ ) सरवण शूद्रा के पेट से, ( वाल्मी० अयो० स० ६३ ) इत्यादि २।

जब इस प्रकार के अनेकों ऋषि मुनि शूद्रा तथा चाण्डाली के उदर से पैदा हो कर उसी जन्म में ब्राह्मण बन गये तो फिर सात पीढ़ी की कैद स्वयं ही वेद, शास्त्र, इतिहास विरुद्ध है।

इस से साबित है कि 'शूद्रायाम्' इत्यादि श्लोक स्वयं मनु के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है।

भला यह तो बतलाइये 'आसप्तमाद्युगात्' का अर्थ 'सातवीं पीढ़ी' कैसे किया। इस से तो यदि 'सातवां वर्ष' इस का अर्थ कर लो तो यह श्लोक मनु के अनुकूल बन सकता है कि 'शूद्रा में ब्राह्मण से पैदा हुआ यदि श्रेष्ट हो तो सातवें वर्ष में निकृष्ट जाति से उत्कृष्ट जाति को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् यज्ञोपवीत के समय गुण देख कर उसे ब्राह्मण के ढङ्ग

से यज्ञोपवीत दिया जा सकता है। देखिये—

अब्राह्मणं तू मन्यते शूद्रा पुत्रमनैपुणात्।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत् ॥ १७ ॥

( महा० अनु० अ० ४७)

भावार्थ—शूद्रा के पुत्र को लोग बेवकूफी से ब्राह्मण नहीं मानते वरना ब्राह्मण से क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा तीनों वर्णों में पैदा हुआ ब्राह्मण ही है ॥ १७ ॥

अतः सातवीं पीढ़ी में उस का ब्राह्मण होना मानना डबल बेवकूफी है।

३९६ ( प्रश्न )—आपस्तम्ब के सूत्रों में स्वामी जी 'जाति परिवृत्तौ' पद के अर्थ को दबा लेते हैं। अर्थ यह होता है 'धर्माचरण से छोटे वर्ण बड़े २ वर्ण को प्राप्त होते हैं जाति बदल जाने पर। अधर्माचरण से बड़े २ वर्ण छोटे २ वर्ण को प्राप्त होते हैं जाति बदल जाने पर।' जाति शरीर में रहती है। शरीर बदलने पर जाति बदलती है। सूत्र तो कहते हैं कि शरीर के बदलने पर वर्ण बदल जाता है। और स्वामी जी सूत्रों के दो पद चुरा कर तुरन्त ही वर्ण बदल देते हैं।

( पृ० ३२६ पं ३ )

उत्तर—इन सूत्रों में जहां २ जाति शब्द वर्ण का वाचक आता है। वहां २ इस का इसी जन्म में इसी शरीर से परिवर्तन भी मिलता है जैसे कि—

आचार्यस्त्वस्यया जातिं विधिवत् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सासत्या साजरामरा ॥ १४८ ॥

( मनु० २ )

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्याघातिरघ्नेय मद्ययोः ।
जह्र्यं च मैथुनं पुंसि जाति भ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६७ ॥
(मनु० ११)

भावार्थ—वेदों के पार को जानने वाला आचार्य तो इस मनुष्य की जिस जाति (वर्ण) को गायत्री से पैदा करता अर्थात् बनाता है वही सत्य है वही अजर अमर है ॥ १४ ॥ ब्राह्मण को कष्ट देना, सूंघने के नाकाबिल वस्तु तथा शराब का सूंघना, कुटिलता, पुरुषों में मैथुन, ये काम जाति से भ्रंश करने वाले हैं ॥ ६७ ॥ यहां पर पहिले श्लोक में इसी जन्म में आचार्य द्वारा जाति का पैदा होना तथा दूसरे श्लोक में दुष्ट कर्मों के बदले जाति का नाश माना गया है। इस से साबित हुआ कि यहाँ पर जाति नाम वर्ण का जो कि इसी जन्म में कर्मानुसार बनता और नाश भी हो जाता है। बस इसी प्रकार से इन सूत्रों में भी जाति नाम वर्ण का ही है। जो कि परिवर्तनशील है।

अतः इन दोनों सूत्रों से पहिला तथा पिछला प्रकरण साबित करता है कि यह सब इसी जन्म में कर्त्तव्य हैं। अगले जन्म का यहां वर्णन नहीं है। जैसे कि—

राज्ञः पन्था ब्राह्मणेनासमेत्य ॥५॥ समेत्य तु ब्राह्मणस्यैव पन्थाः ॥६॥ यानस्य भाराभिनिहितस्यातुरस्य स्त्रिया इति सर्वे दातव्यः ॥७॥ वर्ण ज्यायसां चेतरवर्णैः ॥८॥ अशिष्टपतितमत्तोन्मत्तानामात्मस्वस्त्ययनार्थं न सर्वैरेव दातव्यः ॥९॥ धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥१०॥ अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरि-

वृत्तौ ॥११॥ धर्म्मप्रजासम्पन्ने दारेणान्यां कुर्वीत ॥१२॥ अन्यतराभावे कार्या प्रागग्न्याधेयात् ॥१३॥ आधाने हि सति कर्मभिस्सम्बध्यते येषामेतदङ्गम् ॥१४॥ सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत् ॥१५॥ मातुश्च योनि संबन्धेभ्यः ॥१६॥

(आपस्तम्बीय धर्म्म सूत्र प्र० २ प० ५ खं० ११)

भाषार्थ—यदि मिलने वाला अब्राह्मण हो तो वह राजा के लिये मार्ग छोड़ दे ॥५॥ यदि ब्राह्मण से मेल हो तो राजा ब्राह्मण के लिये मार्ग छोड़े ॥६॥ सवारी, बोझ उठाने वाले, रोगी और स्त्री के लिये सब रास्ता छोड़ दें ॥७॥ ऊंचे वर्ण के लिये सब नीचे वर्ण मार्ग छोड़ें ॥८॥ असभ्य, पतित, मूर्ख तथा पागल के लिये अपनी आत्मा के कल्याणार्थ सब मार्ग छोड़ दें ॥९॥ धर्म्म के आचरण से छोटा छोटा वर्ण बड़े बड़े वर्ण को प्राप्त होता है वर्ण परिवर्तन होने में ॥१०॥ पापाचरण से ऊंचा २ वर्ण नीचे नीचे को प्राप्त होता है वर्ण परिवर्तन होने में ॥११॥ धर्म्म तथा सन्तान वाली स्त्री की मौजूदगी में दूसरी स्त्री न करे ॥१२॥ यदि धर्म या सन्तान से हीन हो तो अग्नि आधान से पहिले दूसरी करले ॥१३॥ अग्नि आधान होने पर कर्मों के साथ संबंध हो जाता है जिन का यह अंग है ॥१४॥ समान गोत्र वाले को कन्या न दे ॥१५॥ माता के साथ जिनका योनि संबंध हो उनको भी न दे ॥१६॥

उपरोक्त सारी आज्ञायें इसी जन्म के साथ संबंध रखती हैं। अतः वर्ण परिवर्तन की आज्ञा भी इसी जन्म के साथ सम्बन्ध रखती है। परजन्म के साथ नहीं। मनु ने हूबहू इन्हीं सूत्रों के भाव को यों वर्ण न किया।

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ।

उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥४२॥ मनु० १०)

भावार्थ—अनुलोमज तथा प्रतिलोमज सब मनुष्य कोई तप कोई बीज के प्रभाव से प्रत्येक समय में इस ही जन्म में जन्म की अपेक्षा ऊंचे वर्ण तथा नीचे वर्ण को प्राप्त होते हैं ।

स्वामी जी ने "जाति परिवृत्तौ" पद को चुराया नहीं अपितु सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि में भी इस पद के अभिप्राय को स्पष्ट लिख दिया है "कि वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे" । आप ज़रा आंखें खोल कर पढ़ें तो आपको पता लग जावेगा वर्ण शरीर के बदलने से नहीं अपितु कर्मों के बदलने से बदल जाता है । इन सूत्रों से साबित है ।

(प्रश्न—"नतिष्ठति तु यः पूर्वामित्यादि मनु० २।१०३" इस श्लोक में ब्राह्मण शूद्र हो जाता है ऐसा नहीं है अपितु शूद्र वत् हो जाता है ऐसा है । आर्य्य समाजियो ! तुम शूद्र और शूद्र वत् में घपला मचा कर मूर्खों को जाल में फंसा सकते हो विद्वान् को नहीं । पृ० ३२६ पं० २७ ।

उत्तर—न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्चपश्चिमाम् ।

सशूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥१००॥

जो मनुष्य प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं करता वह समस्त द्विज कर्म से शूद्र की भांति बाहर कर देने योग्य है ।१०३।

अब आप ही इन्साफ से बतलावें कि जिसको समस्त द्विज कर्म से बाहर निकाल दिया जावे वह शूद्र नहीं तो क्या है । इसी बात को महाभारत में यों लिखा है कि—

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः संध्यां न पश्चिमाम् ॥१९॥
सर्वास्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥२०॥
(महा० अनु० अ० १०४)

भाषार्थ—जो ब्राह्मण प्रातः सायं सन्ध्या न करें धार्मिक राजा उन सबसे शूद्र के काम करवावे। कहिये महाराज! शूद्र के काम करता हुआ भी क्या वह शूद्र न होगा। इसलिये आर्य्य समाजी घपला नहीं मचाते आप घपला मचाते हैं। आर्य्य समाजी तो यह श्लोक भी पेश करते हैं कि—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात् ॥ ९२ ॥ मनु० १०

भाषार्थ—ब्राह्मण लाख नमक तथा मांस के बेचने से तत्काल पतित हो जाता है। और दूध बेचने से ब्राह्मण तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥ ९२ ॥ कहिये महाराज! अब तो शूद्र-वत् का भी घपला नहीं है। अब तो साफ शूद्र होना लिखा है। अब तो स्वीकार कीजिवे कि वर्णव्यवस्था कर्म से है जन्म से नहीं।

३६८ ( प्रश्न )—वेदव्यास कहारी का लड़का नहीं क्षत्रिय कन्या का पुत्र है। पृ० ३३० पं० १६।

उत्तर—श्रीमान् जो आपके ही मान्य ग्रन्थ कह रहे हैं। कि— ( १ ) जातोव्यासस्तु कैवर्त्याः।

भविष्य० ब्राह्म० ४२, २२

( २ ) व्यासः कैवर्त कन्यायाम् ( वज्रसूची उपनिषत् )

( ३ ) कैवर्त गर्भ संभूतो व्यासोनाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम् ॥ २० ॥
( भारत सार अध्याय ५५ )

( ४ ) कैवर्तेदाशधीवरौ ॥ १५ ॥ (अमरकोश वर्ग १० )

व्यास जी मल्लाहनी से पैदा हुए। ( १ ) व्यास जी मल्लाह की कन्या में पैदा हुए। ( २ ) मल्लाहनी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि व्यास तप से ब्राह्मण बन गये । इस लिये जाति कारण नहीं। ( ३ ) कैवर्त, दाश, धीवर ये तीन नाम मल्लाह के हैं। ( ४ ) व्यास जी कहारी के नहीं तो मल्लाहनी के पुत्र अवश्य हैं, इस में संदेह नहीं है। किन्तु क्षत्रिय कन्या के पुत्र न थे।

३६६ ( प्रश्न )—महाभारत आदिपर्व अध्याय ६३ में कथा इस प्रकार है कि उपरिचर वसु नाम के राजा के एक पुत्री और एक पुत्र हुआ। पुत्री दास को पालने को दे दी और लड़का आप रख लिया। उस लड़की से व्यास जी पैदा हुए। जब सत्यवती उपरिचर वसुनामक राजा के वीर्य्य से उत्पन्न हुई। तब हम उस को दास की पुत्री किस प्रकार मान लें। पृ० ३३० पं० २२ ।

उत्तर—हम ऊपर साबित कर आये हैं कि व्यास जी मल्लाह कन्या के गर्भ से पैदा हुए थे । जन्माभिमानी लोगों को यह बात कैसे रुच सकती थी कि कोई मल्लाहनी के गर्भ से पैदा होकर ब्राह्मणों का गुरु बन जावे। इस बात को मलिया-मेट करने तथा जनता की आँखों में धूल झोंक कर जन्मा-भिमान को क़ायम रखने के लिये एक असंभव कथा घड़कर महाभारत में दाखिल की गई, जिस कथा के अनुसार सत्यवती की पैदाइश को आप मछली समेत ही श्राद्ध के लड्डू की भान्ति हड़प कर गये और बनावटी बातें लिखकर जनता को धोके में डालना चाहा है। कहिये महाराज ! उपरिचर राजा के जो

एक पुत्र और एक पुत्री हुई वह कौनसी रानी के गर्भ से हुई, और पुत्री को जो दास को पालनार्थ दिया तो क्या जहां पुत्र का पालन हो सकता था वहां पुत्री का पालन न हो सकता था। और फिर यदि पालन के लिये ही दी थी तो दास को यह साहस कैसे हुआ कि लड़की को किश्ती चलाने के काम में लगावे। और उसकी शादी के विषय में भी राजा शान्तनु से स्वयं ही बातचीत करें और राजा उपरिचर इसका कोई नोटिस न ले। और फिर यह भी न बतलाया कि सत्यवती से व्यास की पैदाइश कैसे हुई। महाभारत की जिस कथा को आप छिपाना चाहते हैं वह इस प्रकार से है कि—

उपरिचर नाम का एक राजा था उसकी स्त्री का नाम गिरिका था। वह ऋतु स्नाता हुई तो राजा शिकार खेलने चला गया। वहां बन में स्त्री के ख्याल से राजा का वीर्य-पात हो गया। राजा ने उसे पत्ते में बन्द करके अपनी स्त्री के पास पहुंचाने के लिये बाज़ को रवाना किया, बाज़ लिये जारहा था कि दूसरे बाज़ से लड़ाई होने के कारण उस से वह वीर्य यमुना नदी में गिर पड़ा। उसको एक मछली ने खा लिया। मछली के गर्भ हो गया। दश मास के पीछे मछली को मछीहारों ने पकड़ लिया। उसका पेट चीरा तो उस से एक लड़का और एक लड़की निकले। मछलीहारों ने इन दोनों को राजा के पेश किया। राजा ने लड़का रख लिया जो मत्स्य नाम का प्रतापी राजा बना। और बदबू के कारण लड़की मछलीहारे को दे दी। बड़ी होकर वह किश्ती चलाने लगी। एक बार यात्रा करते हुए पराशर यमुना नदी से पार

होने लगे तो लड़की पर मोहित होगये। और उस से समागम की इच्छा की। लड़की ने कहा लोग देख रहे हैं। पराशर ने कुहर पैदा करके अंधेरा कर दिया। लड़की ने कहा, मेरा कन्या पन नाश हो जावेगा। ऋषि ने वर दिया कि समागम करने पर भी तू कन्या ही हो जावेगी। ऋषि ने वर देकर उस की बदबू दूर करके खुशबू पैदा कर दी। तभी सत्यवती ऋतुमती होगई। पराशर ने उस से समागम किया उस समय व्यास जी पैदा हुए। और माता को यह कह कर कि कभी काम हो तो मुझे याद करना बन में तप करने चले गये॥ ( महा० आदि० अ० ६३ )

अब यह कथा सारी की सारी सर्वथा असंभव है।

( १ ) राजा को जंगल में फिरते वीर्यपात होगया। क्या पौराणिक लोगों में यह असाध्य रोग सब को तंग करता है।

( २ ) पत्ते में बन्द करके वीर्य को स्त्री के पास भेजने का प्रयोजन, क्या उससे गर्भ संभव है।

( ३ ) मछली के पेट में तो लड़का लड़की दश मास में पैदा होने योग्य बने। तथा व्यास जी मिंटों में ही पैदा हो गये।

( ५ ) यदि राजा को ज्ञान था कि लड़का लड़की मेरे हैं। तो लड़का लेकर लड़की क्यों न ली। यदि बदबू के कारण तो वह बदबू लड़के में भी होगी।

( ६ ) पराशर ने व्यभिचार किया तो ऋषिपन में क्यों फ़र्क न आया।

( ७ ) पराशर ने कुहर पैदा की, क्या पहिले न होती थी।

( ८ ) यदि सत्यवती ऋतुमती होगई। तो चार दिन से पहिले समागम शास्त्र विरुद्ध है।

( ६ ) व्यास का पैदा होते मां से बात करना तप करने जाना भी असंभव ही हैं ।

सारांश यह कि यह सारी कथा ही असंभव और सर्वथा असत्य है । वास्तव बात वही सत्य है कि सत्यवती मल्लाह की पुत्री थी उस के कन्यावस्था में व्यभिचार से व्यास जी पैदा हुए । और वह तप से ब्राह्मण बन गये मनुस्मृति का टीकाकार भी सत्यवती को निकृष्ट योनि से ही मानता हैं । वह "एताश्चान्याश्च । मनु० ६।२४" के टीका में लिखता है कि—

एताश्चान्याश्च सत्यवत्यादयो निकृष्ट प्रसूतयः ।
स्वभर्तृ गुणैः प्रकृष्टै रस्मिल्लोके उत्कृष्टतां प्राप्ताः ॥

ये भी और भी सत्यवती आदि स्त्रियां बहुत सी निकृष्ट योनि से पैदा हुई अपने पतियों के उत्कृष्ट गुणों से संसार में उत्कृष्ट बन गईं । इससे साफ सिद्ध है कि सत्यवती मल्लाह की लड़की थी । यदि आपके लेखानुसार भी सत्यवती को राजा की पुत्री माना जावे तो भी क्षत्रिया के पेट से व्यास ब्राह्मण कैसे बने । यदि आप कहें कि वीर्य प्रधान होने से ब्राह्मण बने । तो यदि आप वीर्य को प्रधान मानते हैं तो सत्यवती को क्षत्रिया साबित करने में क्यों पानी २ हो रहे हैं । सत्यवती यदि मल्लाह की पुत्री हो तो भी पराशर का वीर्य प्रधान होने से व्यास जी ब्राह्मण बन जावेंगे । यदि वीर्य ही प्रधान है तो फिर क्षेत्र की तो कोई कैद न रही । स्त्री चाहे कोई भी हो पुरुष का वीर्य प्रधान होने से पुरुष के अनुसार ही वर्ण माना जावेगा और यदि वीर्य प्रधान है तो व्यास जी ने अम्बिका अंबालिका तथा दासी में जो धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर को पैदा किया वे ब्राह्मण क्यों

न बने। क्षत्रिय क्यों बने। जैसा कि कुल्लूक भट्ट ने भी "विशिष्ट कुत्रचिदिति मनु० ६।३४" के भाष्य में लिखा है कि—

विचित्र वीर्यं क्षेत्रे क्षत्रियायां ब्रह्माणोत्पादिता अपि धृतराष्ट्रादयः क्षत्रियाः क्षेत्रिण एव पुत्रा बभूवुः।

विचित्रवीर्यं के क्षेत्र क्षत्रिया में ब्राह्मण से पैदा किये हुए भी धृतराष्ट्र आदि क्षत्रिय क्षेत्र वाले के ही पुत्र हुए।

अतः न क्षेत्र प्रधान है न वीर्य, अपितु वर्ण व्यवस्था में कर्म ही प्रधान हैं।

४०० ( प्रश्न )—बाल्मीक को भील का लड़का कहना जान बूझ कर लोगों की आँख में धूल झोंकना है। जब कि बाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

एतदाख्यानमायुष्य स भविष्यं सहोत्तरम्।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्वमन्यत॥

( बाल्मी० उत्तर० स० १११ )

यह आख्यान आयु का बढ़ाने वाला भविष्य और उत्तर सहित प्रचेता के पुत्र वाल्मीक ने निर्माण किया और ब्रह्मा ने इस का अनुमोदन किया है। पृ० ३३४ पं० २१।

उत्तर—हम बाल्मीक को भील का लड़का नहीं कहते अपितु भीलनी का लड़का कहते हैं। और यह आप के ग्रन्थों में लिखा है। जैसे कि—

भिल्लिका गर्भ संभूतो बाल्मीकिश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥ २१॥

( भारत सार अध्याय ५५ )

भावार्थ—भीलनी के गर्भ से पैदा होकर बाल्मीक महा-

मुनि तप से ब्राह्मण बन गये। इस लिये जाति कारण नहीं है ॥ २१ ॥ जब बाल्मीक भीलनी के पुत्र थे तो फिर बाल्मीक को जन्म से ब्राह्मण कहना जनता की आंखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है।

४०१ ( प्रश्न ) वसिष्ठ मित्रावरुण से उर्वशी बिजली में अयोनिज मानसिक पुत्र है। पृ० ३३० पं० २०।

उत्तर—धन्य हो महाराज ! आपने बड़ी ही हिम्मत की जो उर्वशी को बिजली मान लिया। यदि आप उर्वशी का अर्थ बिजली करें तो हमें कोई एतराज़ नहीं। किन्तु यहां पर मित्रावरुण यह दोनों कौन थे उन से वसिष्ठ कैसे पैदा हुए। ज़रा यह बतला तो दिया होता किन्तु आप बतलावें भी क्या। आप के पुराण आप के अनुकूल नहीं पड़ते। देखिये इस कथा को रामायण में इस प्रकारसे लिखा है कि—

'इतनेमें उर्वशी इच्छानुसार घूमती हुई आ निकली। उस रूपवती उर्वशी को फिरते देख कर वरुण कामातुर हो गये। और मैथुन के लिये प्रार्थना की। उर्वशी ने कहा कि आप से पहिले मुझे मित्र ने बुलाया है। वरुण ने कामातुर हो कर कहा कि यह मैं अपना वीर्य घड़े में ढ़ालता हूं यदि तू समागम नहीं करती। उर्वशी ने कहा मेरा मन तुम्हारा हो चुका है और शरीर मित्र का है। उर्वशी मित्र के पास गई तो क्रोध में आकर मित्र ने कहा कि पहिले मैंने तो बुलाई थी तूने और पति कर लिया। तू दुराचारिणी है। मित्र ने भी अपना वीर्य उसी घड़े में ड़ाल दिया।

कस्यचित्त्वथकालस्य मित्रावरुण संभवः ।

वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदेवतम् ॥ ७ ॥

( बालमी० उत्तर० स० ५७ )

भाषार्थ—कुछ काल के पश्चात् मित्रावरुण से पैदा होने वाला इक्ष्वाकु कुल का देवता तेजस्वी वसिष्ठ पैदा हुआ ॥ ७ ॥ श्रीमान् जी ! उर्वशी का अर्थ बिजली कर के ज़रा इस कथा को सङ्गत करने की कृपा करें। और मित्रावरुण तथा वसिष्ठ के भी और अर्थ करके इन की ऐतिहासिक सत्ता से ही इन्कार करें। वरना इस बात को तसलीम करें कि यहां पर उर्वशी बिजली नहीं अपि तु वेश्या का नाम है।

४०२ (प्रश्न)—वसिष्ठ कभी गणिका के गर्भ से पैदा ही नहीं हुए। पृ० ३३१ पं० ४

उत्तर—निम्न हेतुओं से उर्वशी गणिका ही थी।

(१) उपरोक्त रामायण की कथा में मन वरुण को तथा शरीर मित्र को अर्पण करना वेश्या होने का चिह्न हैं।

(२) घृताची, मेनका रम्भा, पूर्वचित्तिः, स्वयंप्रभा।
उर्वशी, मिश्रकेशीच, दण्डगौरी, वरूथिनी ॥२९॥
गोपाली, सहजन्याच, कुंभयोनिः, प्रजागरा।
चित्रसेना, चित्रलेखा, सहा च, मधुरस्वना ॥३०॥
एताश्चान्याश्च ननृतुस्तत्र तत्र सहस्रशः।
चित्त प्रसादने युक्ताः सिद्धानां पद्मलोचनाः ॥३१॥
महाकटितट श्रोण्यः कम्पमानैः पयोधरः।
कटाक्षहावमाधुर्यैश्चेतो बुद्धि मनोहरैः ॥३२॥

(महा० वन० अ० ४३)

भाषार्थ—इन्द्र के दरबार में घृताची आदि तथा और

भी हज़ारों नाचती थीं। कमल जैसे नेत्रों वाली प्रसन्नता से सिद्ध लोगों के चित्त को प्रसन्न कर रही थीं । ॥३१॥ सुन्दर कटि तथा श्रोणि वाली कांपते हुए स्तनों से आंखों के मधुर कटाक्षों से चित्त बुद्धि मन को हरने वाली चेष्टाओं से युक्त थीं ॥३२॥

इन में उर्वशी का भी होना उसके वेश्यापन का सबूत है।

(३) विभांडकस्य विप्रर्षेस्तपसा भावितात्मनः ।३१।
तस्यरेतः प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ॥३३॥
(महा० वन० अ० ११०)

भाषार्थ—तप में श्रेष्ठ विप्रों में ऋषि विभांडक का उर्वशी अप्सरा को देख कर वीर्य पात हो गया ॥३३॥

सब को लुभायमान करते हुए घूमना तथा सब के वीर्य पात का कारण तथा तप भंग का कारण होना वेश्यापन का सबूत हैं।

(४) सर्वाप्सरःसुमुख्यासुप्रनृत्यासु कुरूद्वह ।
त्वं किला निमिषः पार्थमामेकां तत्र दृष्टवान् ॥ २८ ॥
त्वत्कृतेऽहं सुरेशेन प्रेषितोवरवर्णिनी ।
प्रियं कुरु महेंद्रस्य मम चैवात्मनश्चह ॥ ३२ ॥
तद्गुणाकृष्टचित्ताहमनङ्गवशमागता ।
चिराभिलषितो वीर ममाप्येष मनोरथः ॥ ३५ ॥
अनावृत्ताश्च सर्वाः स्म देवराजाभिनन्दन ।
गुरु स्थानेन मां वीर नियोक्तुंत्वमिहार्हसि ॥ ४२ ॥
( महा० वन० अ० ४६ )

भाषार्थ—हे अर्जुन ! सब नाचने वाली मुख्य अप्सराओं में से तूने निश्चय मेरे को ही टिकटिकी बांध कर देखा था। ॥ २८ ॥ इसलिये इन्द्र ने तेरे लिये मेरे को भेजा है। तू इन्द्र

को भी खुश कर, मुझे तथा अपने को भी भी प्रसन्न कर ॥ ३२ ॥ तेरे गुणों से मेरा मन आकर्षित होकर मैं काम के वश हो रही हूं। मेरे दिल में भी यह मनोरथ देर से था ॥३५॥ हे इन्द्र, पुत्रार्जुन ! हम सब बेहद आज़ाद हैं। तू मुझे अपने बड़ों के स्थान में न समझ ॥ ४२ ॥

उर्वशी का अर्जुन को भ्रष्ट करने की चेष्टा करना तथा अपने को नंगी आज़ाद कहना वेश्यापन का सबूत है। इन से साबित है कि उर्वशी इन्द्र सभा की नाचने गाने तथा इन्द्र की आज्ञा से ऋषियों का तप भंग करने वाली अप्सरा वेश्या या गणिका थी और वसिष्ठ जी उनके गर्भ से पैदा हुए। जैसा कि—

उर्वशी गर्भ संभूतोवसिष्ठो हि महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम् ॥ २६ ॥
( भारत सार अ० ५५ )

भावार्थ—उर्वशी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठ तप से ब्राह्मण बन गये। अतः ब्राह्मण बनने में जाति कारण नहीं। इस से सिद्ध हुआ कि वसिष्ठ जी उर्वशी गणिका के गर्भ से पैदा हुए थे।

४०३ ( प्रश्न )—श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगु वसिष्ठोदक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥

मरीची, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ दक्ष नारद ये दश ब्रह्मा के पुत्र हैं। यही बात मनु ने लिखी है। जब वसिष्ठ इस जन्म में ब्रह्मा के अयोनिज पुत्र हैं तो गणिका पुत्र हो ही नहीं सकते ॥ पृ० ३३१ पं० ७।

उत्तर—( १ ) यहां सृष्टि के आदि में हुए वसिष्ठ नाम ऋषि का विवाद नहीं अपितु इक्ष्वाकुकुल के पुरोहित का विवाद है ( नं० ) ४०१

( २ ) भागवत में तो ये दश ब्रह्मा के पुत्र लिखे हैं किन्तु मनुस्मृति में मनु के पुत्र लिखे हैं । जैसे कि—

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजानामसृजं' महर्षीनादितोदश ॥ मनु० । १ । ३४ ॥
मनोर्हैरण्य गर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥ मनु०३ । १९४ ॥
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च ॥ मनु० ७ । ४२॥

मैंने ( मनु ने ) प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से घोर तप करके प्रजा के पति दश महर्षियों को पैदा किया ॥ ३४ ॥ हिरण्यगर्भ मनु के ये मरीचि आदि दश पुत्र थे ॥ १९४ ॥ पृथु ने और मनु ने विनय से राज्य को प्राप्त किया ॥ ४२ ॥

कहिये भागवत का लेख सत्य है या मनु का । और मनु जी तो राजा अर्थात् क्षत्रिय थे उनके पुत्र वसिष्ठ ब्राह्मण बन गये इससे भी कर्मानुसार वर्णव्यवस्था सिद्ध है अतः आप के लेखानुसार ही हमारा पक्ष सिद्ध, तथा आप का ग़लत है ।

४०४ (प्रश्न) श्रीमद्भागवत के स्कंध ९ अध्याय १३ में लिखा है कि वसिष्ठ जी निमि के शाप से मर गये । मरने के पीछे दूसरी बार—

मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥६॥

मित्र वरुण के सकाश से वसिष्ठ ने उर्वशी में जन्म धारण किया । पृ० ३३१ पं० १८

उत्तर—भागवत का भी खूब प्रमाण दिया। जिस से अपना पक्ष स्वयं ही खण्डित कर दिया। आप के प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि आदि सृष्टि वाले वसिष्ठ और थे वह निमि के शाप से मरे तथा उर्वशी के पुत्र वसिष्ठ दूसरे थे।

कहिये महाराज! मित्र तथा वरुण से दोनों से एक उर्वशी में वसिष्ठ कैसे पैदा हुए, क्या दो पुरुषों से एक स्त्री में सन्तान सम्मिलित (मुशतरका) पैदा हो सकती है।

उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा चस्कंमोभौवभूवतुः।
मित्र, कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले ॥२४॥
ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्र सम्भवः।
अगस्त्यो वरुणाज्जातो बडवाग्नि समद्युतिः ॥२५॥

(शिव० उमा० अ० ४)

जवान उर्वशी को देख कर मित्र तथा वरुण का वीर्य पात होगया। मित्र ने अपना वीर्य घड़े में डाल दिया तथा वरुण ने जल में डाल दिया ॥२४॥ तब घड़े से मित्र का पुत्र वसिष्ठ पैदा हुआ तथा जल से वरुण का पुत्र अग्नि समान तेजस्वी अगस्त्य पैदा हुआ।

कहिये महाराज यहां पर दोनों की हिस्सा पत्ति गुम है। और दोनों का वीर्य भी एक ही स्थान घड़े में नहीं डाला गया। अपितु एक का घड़े में दूसरे का जल में डाला गया। एक से वसिष्ठ तथा एक से अगस्त्य पैदा हुए, अतः मित्रा वरुण दोनों से वसिष्ठ की पैदाइश ग़लत हो गई। फिर रामायण में वरुण ने अपना वीर्य घड़े में डाला लिखा है तथा यहां जल में डालना लिखा है। अतः पुराणों की कथायें परस्पर विरोध होने से मिथ्या ही हैं। वास्तव में बात यह है कि उर्वशी गणिका थी

उस में न मालूम किस से गर्भ ठहरा। जिस से वसिष्ठ पैदा हुए। वह तप से ब्राह्मण बन गये। जैसा कि—

वसिष्ठ उर्वश्याम् ( वज्र सूची उपनिषद्)

वसिष्ठो गणिकात्मजः ॥२३॥ (भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

वसिष्ठ उर्वशी में पैदा हुए ॥ वज्र ॥ वसिष्ठ गणिका के पुत्र थे। भविष्य कहिये। महाराज! अब तो वसिष्ठ के गणिका पुत्र होने में संदेह नहीं। अच्छा एक बात और तो बताइये कि उर्वशी का क्या वर्ण था तथा मित्रा वरुण का क्या वर्ण था जिस से जन्म से वसिष्ठ ब्राह्मण हुए।

आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशश्च मरुतस्तथा ॥ २३ ॥
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥ २४ ॥
इत्येतत् सर्वं देवानां चातुर्वर्ण्यंप्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥

( महा० शान्ति० अ० २०८ )

आदित्य क्षत्रिय। मरुत वैश्य। अश्विनी कुमार शूद्र। तथा आंगिरस देवता ब्राह्मण हैं। अब उर्वशी के वर्ण का तो पता ही नहीं और मित्र तथा वरुण, अग्नि तथा जल का नाम होने से आदित्य हैं। वे क्षत्रिय हुए। अब उनसे यदि वसिष्ठ पैदा हुए तो भी जन्म से ब्राह्मण नहीं।

४०५ (प्रश्न)—यह कथा पुराण में ही नहीं किंतु वेद में भी है। देखिये "विद्युन्न या पतन्तीत्यादि" मंत्र तथा इस पर निरुक्त दैव० अ० ११ खं० ३६ में उर्वशी को देवता मान कर दीर्घायु की प्रार्थना की है। जब उरुवशी मध्य स्थानीय देवता है। तो फिर इस को गणिका मानना शास्त्र अनभिज्ञता है या नहीं। पृ० ३३२ पं० १२

उत्तर—वेदों में इतिहास और कथायें नहीं होतीं। क्यों कि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान हैं। इतिहास किसी के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है, पूर्व नहीं। अतः वेदों में किसी मनुष्य का इतिहास या कथा नहीं है। और न ही वसिष्ठ या उसकी पैदाइश का वर्णन है। मध्य स्थानी देवता "वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्ष स्थानः। निरु० अ० ७ खं० ५" वायु तथा इन्द्र अर्थात् बिजली है॥ जिस को वेद ने उर्वशी के नाम से वर्णन किया है। यहां वसिष्ठ की माता उर्वशी का वर्णन नहीं है। अपितु "उर्वभ्यश्नुते" बहूदकं व्याप्नोति" जो बहुत पानी में व्यापक है। अतः बिजली को उर्वशी कहते हैं। उसी का इस वेद मंत्र में वर्णन है। जैसे—

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्धरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः॥१०॥
(ऋ० मं० १० सू० ९५)

निरुक्त परतः प्रमाण हैं। अतः उसका ऐतिहासिक पक्ष वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है। वेद मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—"अब विद्युत् होकर गिरती हुई जो चमकती है उत्पन्न हुआ है उससे मनुष्यों के लिये हितकारी शुभ जन्म वाला जल, इस प्रकार जल और जल से अन्न द्वारा वह बिजली दीर्घ आयु बढ़ाती है॥१०॥ कहिये महाराज! इस वेद मंत्र में वसिष्ठ और उसकी पैदाइश का वर्णन कहां है।

४०६ "उतासि मैत्रा वरुणो" इस मन्त्र का तथा उसके निरुक्त अ० ५ खं० १४ में उस उर्वशी अप्सरा से वसिष्ठ की उत्पत्ति वेद ने बतलाई है। पृ० ३३३ पं० २१

उत्तर—श्रीमान् जी ! वेदों में मनुष्यों के इतिहास का वर्णन नहीं होता। अपितु मनुष्य वेदों को देख कर अपने नाम रख लिया करते हैं। जो निरुक्त वेदों में इतिहास बतलाता हो वह वेद विरुद्ध होने से मिथ्या तथा अप्रमाण है। इस वेद मन्त्र में वसिष्ठ तथा वसिष्ठ की माता उर्वशी का वर्णन नहीं है। अपितु वसिष्ठ से जीवात्मा तथा उर्वशी से प्रकृति का वर्णन है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से हैं।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वा ददन्त॥११॥
(ऋ० मं० ७ सू० ३३)

भाषार्थ—हे देह में बसे प्राणों में सर्व श्रेष्ठ जीव ! और तू मित्र और वरुण प्राण और अपान दोनों का स्वामी है। हे बुद्धिशील जीव ! तू अतिकान्तिमती तैजस सात्विक विकार से युक्त वा "उरु" अतिविस्तृत व्यापक प्रकृति के ऊपर मनन शक्ति द्वारा भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है। समस्त किरणों के समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्य्यवत् तेजस्वी महान् परमब्रह्म परमेश्वर से प्रदत्त वीर्य के समान तुझ को समस्त दिव्य शक्तियां पुष्टिकारक तत्त्व में धारण करती हैं ॥११॥

आपको वेद में यौगिक शब्द देख कर रूढ़ी नामों वाले व्यक्तियों की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

४०७ (प्रश्न)—हम वसिष्ठ को गणिका पुत्र मानें तो कैसे मानें। पृ० ३३४ पं० २०

उत्तर—आप अपने ग्रन्थों के लेखानुसार वसिष्ठ को गणिका पुत्र मानने पर मजबूर हैं। देखिये—

गणिका गर्भ संभूतो वसिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेनकारणम् ॥२९॥

(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

भाषार्थ—कंजरी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठ जी तप से ब्राह्मण बन गये। अतः ब्राह्मण बनने में संस्कार कारण नहीं हैं ॥२६॥

आशा है कि इतने स्पष्ट प्रमाण की मौजूदगी में आपको वसिष्ठ के गणिका पुत्र होते हुए तप से ब्राह्मण बनने में अब कोई संदेह न रहेगा।

---

# स्वामी दयानन्द और वर्ण व्यवस्था

४०८ ( प्रश्न )—स्वामी दयानन्द जी वर्ण व्यवस्था जन्म से मानते हैं। पृ० २२ पं० १३

उत्तर—आपका यह लिखना क़तई ग़लत है। क्योंकि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अपने मन्तव्यों को लिख दिया है। ताकि आप जैसी क़ुमाश के लोग स्वामी जी के नाम से ग़लत बयानी करके धोका न दे सकें। चुनांचे वर्णव्यवस्था के बारे में ऋषि इस प्रकार से लिखते हैं कि—

१६—"वर्णाश्रम" गुणकर्मों की योग्यता से मानता हूं॥

४०९ ( प्रश्न )—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८८ में लिखा है कि "(प्रश्न) जाति भेद ईश्वर कृत है या मनुष्य कृत ( उत्तर ) ईश्वर कृत और मनुष्य कृत भी जाति भेद है ( प्रश्न ) कौन से ईश्वर कृत और कौन से मनुष्य कृत ( उत्तर ) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल जन्तु आदि जातियां परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्रादि, पक्षियों में हंस, काक, वकादि, जल जन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जाति भेद हैं वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्त्यज जाति भेद ईश्वर कृत हैं"

यहां पर स्वामी जी ने मनुष्य जाति में ब्राह्मणादि जातियां ईश्वर कृत मानी हैं। ईश्वर कृत कार्य्य में कोई तबदीली नहीं कर सकता इस लिये तुम्हारा लगाया गुण कर्म स्वभाव का अड़गा निष्प्रयोजन है। पृ० २२ पं० १५

उत्तर—आपने स्वामी जी का अधूरा पाठ उद्धृत करके धोखा देने की अनधिकार चेष्टा की है। जो पाठ आप ने दिया है। उससे आगे सत्यार्थप्रकाश में पाठ इस प्रकार से है कि—

"परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि की सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेष जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्ण वर्णाश्रम व्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण कर्म स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था माननी अवश्य है। इस में मनुष्य कृतत्व उनके गुण कर्म स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि वर्णों की परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है"

अब उस पाठ से आगे इस पाठ को मिलाकर पढ़ें तो आपको स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि "किसी जीव का ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि के घर पैदा होना तो पूर्व जन्म के कर्मानुसार ईश्वर कृत है। परन्तु मनुष्य का काम करने में स्वतंत्र होने के कारण श्रेष्ठ कर्म करके शूद्रादि से ब्राह्मणादि बन जाना अथवा निकृष्ट कर्म करके ब्राह्मणादि का शूद्रादि बन जाना यह मनुष्य कृत है"। ईश्वर कृत कार्य जो मनुष्य शरीर है उसमें हम तबदीली नहीं कर सकते किंतु गुण कर्म स्वभाव की उत्कृष्टता तथा निकृष्टता से वर्ण परिवर्तन कर सकते हैं।

४१० (प्रश्न)—सत्यार्थप्रकाश पृ० २८ में लिखा है कि—

"६ वें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के

लड़कियों को भेज दें। और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें"

यहां पर स्वामी जी ने जाति भेद वर्ण व्यवस्था को जन्म से माना है द्विजों को आचार्य्यकुल में प्रवेश करवाया है और शूद्रों को आचार्य्य कुल में फटकने नहीं दिया, उनके पढने के लिये गुरुकुलों की व्यवस्था लिख दी। द्विजों के लड़कों का उपनयन करना लिखा और शूद्रों के लड़कों के उपनयन का का निषेध किया, यह बात सनातन धर्म्म मानता है पृ० २२ पं० २५ (उत्तर) स्वामी जी की परिभाषा में आचार्य्यकुल तथा गुरुकुल एक ही वस्तु हैं। जैसा कि स्वामी जी के लेख से पता लगता है। स्वामी जी ने चतुर्थ समुल्लास के आरंभ में "गुरुणा-नुमतः" इस का अर्थ करते हुए लिखा है कि—

"गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रम पूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अपने वर्ण अनुकुल सुन्दर लक्षण युक्त कन्या से विवाह करे।"

आचार्य्यकुल में दाखिल करना तथा गुरुकुल से निकलना सिद्ध करता है कि आचार्य्यकुल तथा गुरुकुल एक ही चीज़ है दो नहीं। रही बात यज्ञोपवीत की जब तक बच्चे माता पिता के अधीन हैं। उनके संस्कार माता पिता के वर्णानुकूल होते हैं। जब वे कर्म करने में समर्थ स्वतन्त्र हो जाते हैं तब उन के संस्कार उन के गुण कर्मानुसार होते हैं। अतः द्विजों के बालकों को उन के माता पिता के वर्णानुसार यज्ञोपवीत देकर तथा शूद्रादि के बालकों को उन के माता पिता के वर्णानुसार बिना यज्ञोपवीत के ही गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है। फिर गुरुकुल

में दाखिल होने के पश्चात् आचार्य्य सब बालकों को योग्यता को देख कर पुनः यज्ञोपवीत देता है। शूद्रादि के जो बाल विद्या पढ़ने के योग्य होते हैं उन को यज्ञोपवीत देकर वेदारंभ संस्कार करवाता है। और द्विजों के जो बालक विद्या पढ़ने में बुद्धिहीन साबित होते हैं उनको गुरुकुल से निकाल देता है। जैसे कि स्वामी जी ने तृतीय समुल्लास में "कन्यानां संप्रदानं" श्लोक के नीचे लिखा है कि—

"प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठ शाला में आचार्य्यकुल में हो" इसका वही प्रयोजन है जो हम ने ऊपर वर्णन किया है।

यदि सनातन धर्म भी शूद्रादि के बालकों को गुरुकुल में दाखिल करना उन को वेदादि की शिक्षा देना तथा उन की योग्यतानुसार यज्ञोपवीत देना स्वामी जी की भांति मानता है तो मुबारिक है, देश के भाग्य जाग पड़े।

४११ (प्रश्न)—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३८ में लिखा है कि—

'ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्र वर्ज मनुपनीतमध्यापयेदित्येके' यह सुश्रुत के सूत्र स्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय क्षत्रिय तथा वैश्य वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत करा के पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उस को मन्त्र संहिता छोड़ कर सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उस का उपनयन न करे। यह मत अनेक आचार्यों का है।

यहां स्वामी जी ने शूद्रों को उपनयन करने तथा वेद पढ़ाने का निषेध किया है।

उत्तर—स्वामी जी ने स्पष्ट लिख दिया है कि 'यह मत अनेक आचार्य्यों का है' इस से साबित है कि यह स्वामी जी का अपना मत नहीं है। स्वामी जी का अपना मत यह है कि—

'यथेमां वाचमित्यादि। यजु० २६। २'··· ··

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्री आदि और शूद्र आदि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों"

स्वामी जी ने यह प्रमाण इस लिये दिया है कि "क्षत्रिय तथा वैश्य को यज्ञोपवीत देने तथा पढ़ाने का और शूद्र को विद्या पढ़ने का हक़ तो सनातन धर्म के भी अनेक आचार्य्य मानते हैं"

४१२ ( प्रश्न )—स्वामी जी संस्कार विधि में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन ही वर्णों का उपनयन लिखते हैं। और तीन ही वर्ण के लिये उपनयन के आरम्भ में क्रम से पयोव्रत यवागु आमिक्षा ये तीन व्रत बतलाते हैं। अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में गृह सूत्र मनु और शतपथ के प्रमाण भी दिये हैं। स्वामी जी के मत में तीन ही वर्णों का उपनयन संस्कार होता है शूद्र का नहीं। उपनयन में वर्ष संख्या एवं भिन्न २ प्रकार के पृथक् २ व्रत जाति को जन्म से सिद्ध करते हैं। नामकरण संस्कार में भी स्वामी जी ने ब्राह्मण बालक का नाम शर्मा और

क्षत्रिय बालक का नाम वर्म्मा तथा वैश्य के बालक के नाम के अन्त में गुप्त लगा कर नाम रखना लिखा है। ११ दिन के बच्चे की जाति गुण कर्म स्वभाव से कभी हो नहीं सकती। नाम रखने में वर्ण व्यवस्था जन्म से ही है। सनातन धर्मी इस को प्रमाण मानते हैं। पृ० २३ पं० १८

उत्तर—जिस बालक की माता गुण कर्म स्वभावानुसार पूरे तौर से ब्राह्मणी हो और पिता गुण कर्मानुसार पूरे तौर से ब्राह्मण हो और ब्राह्मण के ढंग से ही उसके संस्कार किये जायें तो नव्वे प्रतिशतक ऐसे बालक के ब्राह्मण ही बनने की संभावना होती है। हां दशप्रतिशतक यह संभावना भी है कि वह बालक ब्राह्मण के कर्मों से हीन होकर शूद्र बन जावे। और जिस बालक की माता पूरे तौर से शूद्र तथा पिता भी पूरे तौर से शूद्र हो और उस का पालन पोषण भी शूद्रों के ही ढंग से हुआ हो तो नव्बे प्रति शतक ऐसे बालक के शूद्र ही बनने की संभावना है। हां, दश प्रति शतक उसको हक हासिल है कि वह ब्राह्मणादि बन सके। बालक चूंकि माता पिता के अधीन होते हैं, कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं होते अतः उनके संस्कार भी नाम करणादि से गुरुकुल प्रवेश तक माता पिता के अनुकूल ही होते हैं। और उन की भावी संज्ञा को लक्ष्य में रख कर ब्राह्मणादि के बालकों के शर्म्मादि नाम रक्खे जाते हैं। तथा ब्राह्मणादि के बालकों का उपनयन करके तथा शूद्रादि के बालकों को बिना उपनयन के गुरुकुल में दाखिल कर दिया जाता है। गुरुकुल में गुरु उन सब बच्चों के उन की योग्यतानुसार उपनयन करवा देता है। और विद्या पूरी होने पर परीक्षा

पूर्वक गुण कर्मानुसार उन की वर्णव्यवस्था करदी जाती है। जैसे कि स्वामी जी ने लिखा है कि—

"यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोल हवें वर्ष तथा पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये'।

(सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ सन्तान परिवर्तन के उत्तर में)

'जिस २ पुरुष में जिस २ वर्ण के गुण कर्म हों उस २ वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नति शील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे। और सन्तान भी डरती रहेगी कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्या युक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उत्साह बढ़ेगा'।

( सत्यार्थ० समु० ४ "एकमेव तु शूद्रस्य" से आगे )

यदि सनातन धर्म्म भी बालकों के माता पिता के वर्णानुसार संस्कार तथा गुरुकुल प्रवेश और समावर्तन के समय परीक्षा पूर्वक गुण कर्मस्वभावानुसार वर्णों की व्यवस्था से पुरुषों तथा स्त्रियों के भी वर्ण परिवर्तन को मानता है। तो देश के सौभाग्य उदय होने में क्या संदेह है।

---

* ओ३म् *

पौराणिक पंडित कालूराम जी शास्त्री

लिखित—

"आर्य समाज की मौत"

का करारा जवाब—

# पौराणिक पोल प्रकाश

( द्वितीय भाग )

लेखक—

पं मनसाराम जी "वैदिक तोप"

महोपदेशक—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मंदिर

हस्पताल रोड लाहौर

प्रथम वार २००१] १९३६ ई० मूल्य २)

प्रकाशक:—
श्री भीमसेन वर्मा, मैनेजर
आर्य साहित्य मन्दिर,
हस्पताल रोड लाहौर

---

# आर्य सेवक

## ( सं० भीमसेन वर्मा )

आर्य समाज का निर्भीक मासिक पत्र जिस में विपक्षियों की ओर से किए गए आक्षेपों का मुंह तोड़ उत्तर होता है। वार्षिक मूल्य १॥) नमूना मुफ्त

मैनेजर, 'आर्य सेवक'
आर्य साहित्य मंदिर, लाहौर

---

मुद्रक:—
लाला साहिब दित्ता मल्ल
जगजीत इलैक्ट्रिक प्रेस
मोहन लाल रोड
लाहौर

# पौराणिक पोल प्रकाश

—o—

श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज की अनमोल सम्मति—

मैंने 'पौराणिक पोल प्रकाश' को जहां तहां से पढ़ा है। मेरी सम्मति में यह नाम इसके लिये उचित नहीं है। स्वामी विवेकानन्द जी के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है वह कहते थे, पश्चिमी साधारण वस्तु रेशम में लपेट कर जनता को दिखाते हैं और पूर्वी बहूमूल्य को चिथड़े में लपेट कर दिखाते हैं! इसी प्रकार इस पुस्तक का नाम जहां कर्णकटु है वहां उसके विषय के अनुकूल भी नहीं है। सनातन धर्म की पुरानी पद्धति है वह नाम भटकीले रखते हैं जैसे दयानन्द तिमरप्रकाश, परन्तु आर्यसमाज की रीति वह नहीं हैं उसका उत्तर लिखा भास्करप्रकाश। इसी प्रकार ऐसा नाम छोड़ कर नई रीति डालना उचित प्रतीत नहीं होता है।

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और प्रत्येक विषय पर जो प्रश्न होते हैं उनका उत्तर सप्रमाण और युक्तियुक्त है। जिसके लिये पं० मनसा राम जी बधाई के पात्र है। यह पुस्तक प्रत्येक आर्य समाज में होना चाहिये और प्रत्येक उपदेशक को अपने पास रखनी चाहिये जिन सज्जनों को आर्य समाज और सनातन धर्म के विषय में भेद जानने की अभिलाषा है उनको इसका पाठ अवश्य करना चाहिये। —स्वतन्त्रतानन्द

# विषय सूची


| वि० | पृ० |
|---|---|
| मृतक श्राद्ध | ७५३ |
| जीव पितर नहीं | ७५४ |
| जीवित ही पितर हैं | ७५६ |
| ये निखाता का अर्थ | ७५७ |
| आयन्तु नः पितरः | ७५६ |
| पितर ब्राह्मण के पेट में | ७६३ |
| कर्मों का फल कर्ता को | ७६८ |
| श्राद्ध में मांस प्रयोग | ७७३ |
| श्राद्ध से पितरों को कष्ट | ७७६ |
| अभोज्य ब्राह्मण | ७८० |
| तैल कुतिया की कथा | ७८८ |
| पितरों से गर्भ | ७९१ |
| स्वकृत कर्म श्रेष्ठ | ७९५ |
| प्रेतों का विचित्र भोजन | ८०० |
| राजा श्वेत की स्वर्ग से वापसी | ८०३ |
| जीवित पितरों में प्रमाण | ८०८ |
| अग्निष्वात्त का अर्थ | ८१४ |
| पौराणिक पितरों की उत्पत्ति | ८१६ |
| यम का अर्थ | ८२४ |
| मृतक श्राद्ध और स्वामी दयानन्द | ८२७ |

| वि० | पृ० |
|---|---|
| परदेश गये की नारायण बलि | ८३८ |
| अपसव्य का अर्थ | ८४३ |
| पिण्डों से शरीर | ८४६ |
| पिण्ड जीवितों में | ८४७ |
| परिणाम | ८४८ |
| पत्यन्तर विधान— | |
| नियोग में जरूरत | ८४६ |
| कुहस्विद्दोषा | ८५१ |
| गर्भवती प्रकरण | ८५५ |
| उतथ्य की कथा | ८६१ |
| विधवा दो अपने लिए दो दो अन्य चार के लिए | ८६५ |
| दिव्यादेवी के २१ पति | ८६७ |
| वार्क्षी के दश पति | ८६८ |
| पुत्र संख्या | ८६९ |
| माधवी के ५ पति | ८७० |
| उदीर्ष्व नारी का अर्थ | ८७२ |
| आश्वलायन में अनुस्तरणी | ८७६ |
| नियोग में प्रमाण | ८८२ |
| जीवित पति नियोग | ८८५ |
| सुदर्शन की कथा | ८८६ |

| वि० | पृ० |
|---|---|
| अन्यमिच्छस्व का अर्थ | ८९२ |
| पति परदेश पर नियोग | ८९५ |
| नियोग धर्म है | ९०६ |
| ११ पति में प्रमाण | ९०९ |
| पत्यन्तरविधान और स्वामी दयानन्द | ९१६ |
| पत्नी शब्द पर प्रमाण | ९१९ |
| रामायण और विधवोद्वाह | ९२१ |
| भविष्य में विधवा विवाह | ९३१ |
| महाभारत में विधवा विवाह | ९३४ |
| साहित्य की रक्षा | ९३५ |
| ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं | ९३६ |
| भागवतादि की नवीनता | ९३८ |
| तर्क की आवश्यकता | ९३९ |
| स्मृति सदाचार तथा तर्क वेदानुकूल होने से प्रमाण | ९४१ |
| पुराण नाम पुराणा विद्या | ९४४ |
| १८ पुराणों के नाम | ९५० |
| वेदानुकूल कर्म करो | ९५७ |
| वेदानुकूल ही धर्म है | ९५८ |
| ब्राह्मण वेद नहीं हैं | ९६० |
| अथर्ववेद और पुराण शब्द | ९६६ |
| चत्वारिशृंगा और पुराण | ९७२ |
| वेद तथा ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव समान नहीं | ९७६ |

| वि० | पृ० |
|---|---|
| ब्राह्मण वेद का व्याख्यान हैं | ९८१ |
| ब्राह्मण वेद नहीं ऋषियों की सम्मति | ९८४ |
| मन्त्र भाग में इतिहास नहीं | ९९२ |
| ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं | ९९५ |
| ११२७ शाखा वेद नहीं | १०११ |
| शाखा वेद व्याख्या हैं | १०१९ |
| यज्ञ का वास्तव अर्थ | १०२३ |
| पौराणिक यज्ञ | १०२४ |
| यज्ञ शब्द के अर्थ वेद से | १०२५ |
| भू भ्रमण | १०२५ |
| पृथवी का आधार और रामायण भू भ्रमण में वेद | १०२८ |
| रामायण और महाभारत | १०३० |
| भू भ्रमण और निरुक्त | १०३१ |
| यजुर्वेद में भू भ्रमण | १०३५ |
| पृथवी गेंद की भांति गोल है चबुतरे की भांति नहीं | १०४४ |
| पृथवी के अचला होने में युक्तियों का खंडन | १०४९ |
| ध्रुव का अचलत्व | १०५१ |
| भूभ्रमण में पुराण | १०५४ |
| वेदानुकूलता | १०५४ |
| वेदानुकूलता की कसौटी | १०५५ |

| वि० | पृ० |
|---|---|
| वेदानुकूला की जरूरत | १०५९ |
| निमाज़, रोज़ा, ईसा, कुरान आदि की वेद प्रतिकूलता | १०६३ |
| "शूद्रोंब्राह्मणता मेति" का वेदानुकूलता | १०६६ |
| "गुरोः प्रेतस्य" तथा वेद | १०६७ |
| "दृष्टिं पूतं न्यसेत् पादं" तथा वेद | १०७० |
| राजा के इन्द्र आदि नाम और वेद | १०७३ |
| वेद में ब्रह्मा और उस की पुत्री | १०८३ |
| छान्दोग्य की वेदानुकूलता | १०८८ |
| वेदों के उपाँगों की वेदानुकूलता | १०९१ |
| "माता शत्रुः पिता वैरी" तथा वेद | १०९३ |
| सब मनुष्य कृत ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं | १०९५ |
| सोलह संस्कार और वेद | १०९६ |
| चोटी' यज्ञोपवीत वेद में | १०९७ |
| पंच महा यज्ञ वेद में | १०९८ |
| धायी का प्रयोग और वेद | ११०८ |
| धायी और सुश्रुत | १११० |

| वि० | पृ० |
|---|---|
| धायी में ऐतिहासिक प्रमाण | १११२ |
| सन्तान परिवर्तन और वेद | ११२४ |
| राज सभा वर्ण व्यवस्थापक | ११२६ |
| सन्तान परिवर्तन और मनु | ११२८ |
| सन्तान परिवर्तन और पुराण | ११३२ |
| पुराणों में विचित्र परिवर्तन | ११३४ |
| विवाह में विचित्र तथा इतिहास परिवर्तन और वेद | ११३६ |
| पसंद करना और पुराण | ११३८ |
| चोटी कटाने में वेद | ११४३ |
| स्त्री पुरुष का विवाह समय और वेद | ११५० |
| जीवित पितरों के श्राद्ध वेद में | ११५४ |
| स्वयंम्वर तथा वेद | ११५६ |
| तिब्बत में प्रथम सृष्टि और वेद | ११५७ |
| नमस्ते में वेद प्रमाण | ११६२ |
| नमः तथा ते का प्रयोग | ११६३ |
| पूजा का प्रयोग | ११६५ |

| वि० | पृ० |
|---|---|
| नमस्ते परस्पर प्रयोग | ११६६ |
| भोग के पीछे औषध प्रयोग और वेद | ११७४ |
| गर्भाधान विधि वेद में | ११७६ |
| पौराणिक गर्भाधान | ११७८ |
| ४०० वर्ष की आयु वेद में | ११८० |
| ईश्वर की त्रिकालज्ञता और वेद | ११८३ |
| मन को पीठ की हड्डी आदि शरीर के अंग में लगाना तथा वेद | ११८४ |
| गर्भाधान से सन्तान को शिक्षा और वेद | ११८६ |
| आचमन विधि वेद में | ११६० |
| मार्जन की विधि वेद में | ११६२ |
| हवन से दूर देश वायु की शुद्धि और वेद | ११६३ |
| वेदी बनाने की आज्ञा वेद में | ११६५ |
| हवन में वेद मन्त्र पढने की विधि तथा प्रयोजन वेद में | ११६७ |
| सन्तानों की शिक्षा में राज नियम वेद में | १२०१ |

| वि० | पृष्ठ |
|---|---|
| भूः तथा प्राण ईश्वर के नाम होने में प्रमाण | १२०३ |
| सोलह आहुति में वेद मूल | १२०४ |
| स्वाहा शब्द का अर्थ | १२०५ |
| अग्नि होत्र की विधि वेद में | १२०७ |
| शूद्र का लक्षण और वेद | १२१२ |
| वैश्य का लक्षण और वेद | १२१४ |
| विवाह होते ही गर्भाधान और वेद | १२१७ |
| ब्रह्मा का लक्षण वेद में | १२२० |
| ब्रह्मा के ऋषि के होने में प्रमाण | १२२२ |
| दुष्ट गुरु को दण्ड और वेद | १२२४ |
| मांस खाने का निषेध वेद में | १२२६ |
| जल, पृथवी, राहु, केतु, आदि ईश्वर के नाम होने में प्रमाण | १२२८ |
| गृह, कायस्थ, दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश' आर्य्य समाज आदि ईश्वर के नाम न होने में प्रमाण | १२३१ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| नीच जाति का भोजन | १२३३ |
| इतिहास वेदानुकूलता से प्रमाण | १२३५ |
| कड़वी सचाई | १२३७ |
| तुम कुआं में पड़ो | १२३७ |
| शठ कोप कंजर | १२३८ |
| मुनिवाहन चाण्डाल | १२४० |
| यावनाचार्य मुसलमान | १२४२ |
| नाभा डूम | १२४३ |
| दयानन्द कापड़ी | १२४५ |
| नरक चतुर्दशी | १२४६ |
| राण्ड स्नेही | १२४६ |
| वेश्यावन | १२४७ |
| मूर्ति पूजा बड़ी खाई | १२४९ |
| ईश्वर को बुलाना | १२५० |
| हनुमान को जूता | १२५१ |
| मूर्ति पूजा कुकर्म | १२५२ |
| भटियारे के टटटू | १२५३ |
| लिंग पूजक पामर निर्लज्ज | १२५३ |
| शरीर को भाड़ में | १२५४ |
| भागवत तथा लाल भुजक्कड | १२५४ |
| व्यास की स्तुति | १२५५ |
| पुराण कर्ता कसाई | १२५६ |
| आचार्य्यों की भाव प्रधानता | १२५७ |
| मनुष्या ऋषयश्च ये ततो | १२६२ |
| मनुष्या अजायन्त | १२६२ |
| पृथिवी को चटाई की भांति लपेटना | १२६७ |
| प्रह्लाद तथा खंभा पर च्यूंटि | १२६६ |
| रामायण और मूर्ति पूजा पत्र | १२७३ |
| पूर्वं महादेवः | १२७३ |
| वेद पढ़त ब्रह्मा मरे | १२७५ |
| आचार्यों का यन्त्र निर्माण अधिकार | १२७८ |
| ओं वाक् वाक् | १२७९ |
| ओं भूः पुनातु शिरसी | १२८२ |
| देव तर्पण में वेद प्रमाण | १२८३ |
| ऋषितर्पण और वेद | १२८५ |
| पितृ तर्पण और वेद | १२८६ |
| बलि वैश्व देव के मंत्र और वेद | १२८६ |
| ऋषि दयानन्द और वेद भाष्य | १२६३ |
| ईश्वर में मूर्खत्व | १२६५ |

* ओ३म् *

# पौराणिक पोल प्रकाश

( द्वितीय भाग )

—:o:—

## मृत्तक श्राद्ध

(४१३) प्रश्न—वेदों में वितृयज्ञ और धर्म्म शास्त्रों में इस को श्राद्ध कहते हैं पृ० २८७ पं० ३॥

उत्तर—आप के लेख ही से यह स्वयं सिद्ध है कि चारों वेदों में "मृत्तक श्राद्ध" शब्द मौजूद नहीं है अपितु यह पीछे की कल्पना है।

(४१४) प्रश्न—वेद के प्रत्येक मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि श्राद्ध मृत्तक पितरों का होता है पृ० २८७ पं० ४॥

उत्तर— प्रथम तो श्राद्ध शब्द ही जीवितों पर प्रयुक्त हो सकता है मृत्तकों पर नहीं। क्योंकि "श्रत्"नाम सत्य का है और श्रद्धियतेऽस्यां सा श्रद्धा" जिस में सत्य विद्यमान् हो वह श्रद्धा "श्रद्धयाक्रियेत तच्छ्राद्धम्" जो श्रद्धा पूर्वक पितरों की सेवा की जावे उस का नाम श्राद्ध है। चूंकि सेवा जीवितों की ही हो सकती है मृत्तकों की नहीं। अतः जीतों का ही नाम पितर है मृतकों का नहीं। दूसरे पितर शब्द ही जीवितों के लिये प्रयुक्त हो सकता है मृतकों के लिये नहीं। क्योंकि हमारे जो माता पिता बहिन भाई के संबंध हैं वे शरीरों के साथ हैं जीवों के साथ नहीं है। क्योंकि माता पिता हमारे शरीर को पैदा करते हैं जीव को नहीं। क्योंकि जीव अनादि तथा अनुत्पन्न हैं। जैसा कि—

न जायते म्रियते वा कदाचित् ॥ गीता २।२०

जीव कभी भी न पैदा होता है न मरता है। अपितु शरीर ही पैदा होता और मरता है जैसा कि—

वा साँसि जीर्णा नियथा विहाय ॥ गीता २।२३

अर्थात् जैसे हम पुराने कपड़ों को छोड़ कर नये कपड़े पहन लेते हैं वैसे ही जीव भी पुराने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारण कर लेता है।

जब जीव शरीर से निकल कर कर्मानुसार दूसरे जन्म में चला जाता है। और शरीर को फूंक दिया जाता है फिर पितर कौन शेष रहता है। यदि कहो कि मरने के पीछे जीवों के साथ भी माता पिता बहिन भाई के संबंध बने रहते हैं। तो पुनर्जन्म में माता का पुत्र से, बहिन का भाई से, बेटी का बाप से विवाह होना संभव हो जावेगा। अतः जीवों के परस्पर माता पितादि सम्बन्ध नहीं हैं। जैसाकि—

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥३६॥
माता पितृ सहस्राणि पुत्रदाराशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्यते कस्यवावयम् ॥३८॥
नैवास्य कश्चिद्भवितानायं भवतिकस्यचित्।
पथिसंगतमेवेदं दारबन्धु सुहृज्जनैः॥३९॥
अनित्येप्रियसम्बासे रसंसारे चक्रवद्भौ!
पथिसंमतमेवैतद्भ्राता माता पिता सखा ॥४१॥

(महा० शान्ति० अ० २८)

भाषार्थ—जैसे महासागर में लकड़ियाँ आपस में मिल जाती हैं। और मिल कर विछुड़ जाती हैं। वैसे ही जीवों का परस्पर समागम है ॥३६॥ हज़ारों माता पिता तथा सैंकड़ों पुत्र स्त्रियों का संसार में अनुभव किया। किस के वे तथा किस के हम ॥३८॥ न इस का कोई है तथा न यह किसी का है यह पत्नी बन्धु मित्रजनों से समागम रास्ते का ही समागम है ॥३९॥ इस चक्र के समान गति करने वाले बसने में प्यारे अनित्य संसार में यह भ्राता, माता, पिता, मित्र आदि संबंध रास्ते में समागम के समान ही है ॥४१॥

इस से सिद्ध है कि मरने के पीछे जीवों से माता पिता आदि का संबंध शेष नहीं रहता अतः जीतों के साथ ही माता पिता आदि संबंध है। पिता किस को कहते हैं देखिये—

पिता पाता वा पालयिता वा जनयिता

(निरु० अ०४ खं०२१)

अध्यापयामास पितॄञ्शिशुराङ्गिरसः कविः।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्यतान् ॥१५१॥
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागत मन्यवः।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यंवः शिशुरुक्तवान् ॥१५२॥
अज्ञोभवति वैबालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञंहिबालमित्याहुः पितेत्येवतु मन्त्रदम् ॥१५३॥

(मनु०अ० २)

अन्नदाता भय त्राता पत्नी तातस्तथैवच।
विद्यादाता जन्मदाता पंचैतेपितरो नृणाम् ॥१५३॥

(ब्रह्मवैवर्त० ब्र० अ० १०)

भाषार्थ—रक्षा करने वाले तथा पालन करने वाले और पैदा करने वाले को पिता कहते हैं (निरुक्त)

बालक आंगिरा कवि ने अपने पितरों को पढ़ाया। और उन को जान से ग्रहण करके पुत्र कहा ॥१५१॥ वे पितर गुस्से में आकर यह अर्थ देवों से पूछने लगे। देवों ने इकट्ठे होकर उन से कहा कि बालक ने तुम्हारे से न्याय पूर्वक ही कहा है ॥१५२॥ अज्ञानी बालक होता है। तथा मंत्र को देने वाला पिता होता है। अतः अज्ञानी को बालक तथा मंत्र देने वाले को ही पिता कहा जाता है (मनु)॥१५६॥ अन्न देने वाला भय से तराने वाला स्त्री का पिता विद्या देने वाला, तथा जन्म देने वाला ये पांच मनुष्यों के पिता कहाते हैं ॥१५३॥ (ब्रह्मवैवर्त)

उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि पितर शब्द जीवितों के लिये ही प्रयुक्त हो सकता है मृत्तकों के लिये नहीं। अतः जीवित पितरों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करने का नाम ही श्राद्ध है। वेद का एक मन्त्र भी मृतक श्राद्ध की पुष्टि नहीं करता।

(४१५) प्रश्न—"ये निखाता इत्यादि अथर्व० १८।२।३४" यह मंत्र गाड़े फूंके पड़े पितरों के बुलाने का है पृ०२८७ पं०५।

उत्तर—आप का यह अर्थ ग़लत और युक्ति शून्य है क्योंकि आप हवि खाने के लिये उनको बुलाते हैं। जो गाड़े फूंके और पड़े हुये हैं अब यह गाड़ना और फूंकना आदि शब्द जीवों पर तो प्रयुक्त हो नहीं सकते क्योंकि—

नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि नैनंदहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयंत्यापोन शोषयति मारुतः ॥२३॥

(गीता अ० २)

भाषार्थ—इस जीव को शस्त्र काट नहीं सकता, इसको आग जला नहीं सकती, इस को पानी गला नहीं सकता और इस को हवा सुखा नहीं सकती ॥२३॥ अब रह गये शरीर सो उन का खाने के लिये आना असंभव है अतः इस मंत्र का आपका किया हुआ अर्थ ठीक नहीं है मंत्र का ठीक २ अर्थ इस प्रकार से है कि—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता ।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥३४॥
(अथर्व० १८।२।३४)

भाषार्थ—यजमान पुरोहित से कहता है कि हे विद्वान ! जो पदार्थ ज़मीन में गाड़े हुये होते हैं (आलु, मूली, गाजर आदि) और जो पदार्थ बोये जाते हैं (गेहूं, चावल आदि) जो पदार्थ भून कर खाये जाते हैं (चने, मक्की, धान आदि) और जो पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं (सिंहाड़े, कमलगट्टे आदि) इन सब पदार्थों को निमन्त्रण में साधु महात्मा आदि पितरों को खाना खिलाने के लिये ला कर दे ॥३४॥ इस मंत्र में जो प्रोप्ता शब्द पड़ा हुआ है इस के अर्थ बीजे जाने वाले पदार्थों के हैं। और बीजे जाना अनाजों सबज़ियों का ही संभव है। अतः यह मंत्र मृत्तक श्राद्ध को सिद्ध नहीं करता अपितु जीवितों की सेवा को ही सिद्ध करता है। जैसा कि—

ये समानाः समन सो जीवा जीवेषुमामकाः ।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिल्लोके शतꣳसमा ॥४६॥
(यजु० १९।४६)

देवाः पितरः पितरोदेवाः ॥अथर्व० ६।१२३।३॥
अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ।
न्यस्त शस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥१९२॥
वसून्वन्ति तुपितॄन् द्रांश्चै व पितामहान् ।
प्रपितामहास्तथादित्या ञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥२८४॥

(मनु० अ० ३)

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथपितामहान् ।
आचार्य्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥२५॥

(महा० भीष्म० अ० २५)

न क्षत्रियारणे राजन् वर्जयन्ति परस्परम् ।
निर्मर्य्यादं हियुध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥५॥

(महा० भीष्म० अ० १८३)

भाषार्थ—जो इस लोक में जीते हुओं में समान गुण कर्म स्वभाव वाले,समान धर्म्म में मन रखने हारे मेरे जीते हुये पिता आदि हैं। उनकी लक्ष्मी मेरे समीप सौ वर्ष पर्य्यन्त समर्थ होवे ॥४६॥ देवों का नाम पितर है पितरों का नाम देव है ॥३॥ क्रोध से रहित शुद्ध रहने वाले ब्रह्मचारी शस्त्र हीन महाभाग विद्वानों का तथा बजुर्गों का नाम पितर है ॥१८२॥ वसुओं का नाम पितर, रुद्रों का नाम पितामह तथा आदित्यों का नाम प्रपितामह है यह वेद वचन है ॥२८४॥वहांपर अर्जुन ने मैदान जंग में पितर, पितामह, आचार्य्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्रों तथा मित्रों को खड़ा देखा ॥२५॥ हे राजन् क्षत्रिय रण में एक दूसरे को आपस में छोड़ते नहीं मर्यादा को छोड़ कर पितरों तथा

भाइयों से लड़ते हैं ॥५॥ इन सम्पूर्ण प्रमाणों से साबित है कि पितर नाम जीतों का ही है मृत्तकों का नाम पितर नहीं है।

(४१६) प्रश्न—"आयन्तु नः पितरः इत्यादि यजु०१८।५८" इस मन्त्र में भी मृत्तक पितरों को भोजन तथा उपदेशार्थ बुलाया है।

उत्तर—मृतक पितरों का यज्ञ में आना तथा भोजन करके प्रसन्न होना और यजमान को उपदेश करना तथा उसकी रक्षा करना संभव नहीं है। ये सारे काम जीवित पितरों से ही होने संभव हैं। मंत्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽ
ग्निष्वात्ताः पथिभिर्देव यानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधयामदन्तोऽ
धिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥
(यजु० १६।५८)

भाषार्थ—जो चन्द्रमा के तुल्य शांत शमदमादि गुण युक्त अग्नि आदि पदार्थ विद्या में निपुण हमारे अन्न और विद्या के दान से रक्षक जनक अध्यापक और उपदेशक लोग हैं। वे आप्त लोगों के जाने आने योग्य धर्म मुक्त मार्गों से आवें। इस पढ़ाने, उपदेश करने, रूप व्यवहार में वर्तमान होके अन्नादि से आनन्द को प्राप्त हुये हम को अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी सदा रक्षा करें ॥५८॥

आपने अग्निष्वाता के अर्थ अग्नि से जले हुये किया है। सो ठीक नहीं है। क्योंकि जीव तो अग्नि में जलते नहीं, जसा कि—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवच ।
नित्यः सर्वगतः स्थानुस्चलोऽयं सनातनः ॥२४॥
(गीता अ० २)

भाषार्थ—यह जीव अछेद्य अदाह्य अक्लेद्य अशोष्य नित्य सर्वगत स्थानु अचल तथा सनातन है ॥१४॥ रही शरीर की बात वह जलने के पीछे आकर उपदेश कैसे करेगा । अतः हमारा अर्थ ठीक है कि अग्नि विद्या में निपुण मनुष्यों का नाम अग्निष्वाता है ।

आप के सिद्धान्तानुसार भी अग्नि में जले हुओं का नाम अग्निष्वात नहीं है देखिये—

अग्निष्वाताश्च देवानां मारीचा लोक विश्रुताः ॥१९५॥
(मनु०३)

भाषार्थ—अग्निष्वात मरीचि ऋषि के पुत्रों का नाम है । और वह देवों के पितर है ॥१९५॥ शिव पुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा पुत्री पर आसक्त हुये तो महादेव ने डांटा इस से ब्रह्मा को पसीना आगया । उस से अग्निष्वात पितर पैदा हुये । जैसा कि ब्रह्मा जी स्वयं बतलाते है कि—

मच्छरी रात्तु घर्माभो यतपपात द्विजोत्तम् ।
अग्निष्वाताः पितृगणाजाता पितृगणास्ततः ॥४८॥
(शिव० रुद्र० सती अ० ३१)

मेरे शरीर से पसीने का जल जो गिरा उस से अग्निष्वात पितर और दूसरे पितर भी पैदा हुये ॥४८॥ इस से साबित है कि अग्नि में जलों का नाम अग्निष्वात नहीं है अपितु अग्नि विद्या में निपुण का नाम ही अग्निष्वात है । और वे जीते ही हो सकते हैं मरे हुओं का नाम पितर नहीं है ।

(४१७) प्रश्न—जो मृतक पितर पितृ लोक में जाते हैं वे इस पितृ यज्ञ श्राद्ध में सूक्ष्म शरीर से भोजन खाने के लिये स्वतः आते हैं। ऐसे पितरों को इन दो मन्त्रों में बुलाया है इसी के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि—

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्।
वायु वच्चानुगच्छन्ति तथा सीना नुपासते ॥ ३।१८६॥

नि मन्त्रित पितर ब्राह्मणों के साथ २ वायु भूत होकर आते हैं और ब्राह्मणों के साथ बैठ कर भोजन करते हैं। पृ० २८७पं० १६।

उत्तर—हम पूर्व लिख आये हैं कि मृतकों की पितर संज्ञा ही नहीं होती। फिर पितर लोक भी, कोई भिन्न स्थान नहीं है जहां माता पिता साधु महात्मा ज्ञानी-लोग रहते हैं उसी का नाम पितर लोक है। और वहाँ से ही बुलाना इन मंत्रों में लिखा है पौराणिकों से मिथ्या कल्पित कोई विशेष पितर योनि नहीं है अपितु जीव इस शरीर को छोड़ते ही कर्मानुसार दूसरे शरीर को प्राप्त होजाता है। जैसा कि—

यथातृणज लौका हि पश्चात्पादं तदोद्धरेत् ॥७५॥
स्थितिर ग्रयस्य पादस्य यदा जाता दृढा भवेत॥ ७६॥
देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिः पक्षीन्द्रे त्यवधारय ॥ ८३ ॥
वासांसि जीर्णानि यथाविहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥८४
(गरुड़ ० प्रेत० अ० १०)
प्रविशेत्स नवेदेहेगृहे दग्धेगृही यथा (गरुड़०प्रेत०अ०३श्०९६)

भाषार्थ—जैसे घास की सूंडी तब पीछे से दूसरा पाओं उठाती है ॥७५॥ जब अगले पाओंकी दृढ़ स्थिति होजाती है ७६॥ वैसे ही जीव तब पहिले शरीर को छोड़ता है जब उसका दूसरे शरीर से संबंध हो जाता है। जैसे जीव इस शरीर में कुमार युवा तथा बुढ़ापे को प्राप्त होता है वैसे ही इस को दूसरे शरीर की प्राप्ती होती है ॥८३॥ जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़ों को धारण करता है वैसे ही जीव पुराने शरीरको छोड़ कर नये शरीर को धारण कर लेता है ॥ ८४ ॥

जसे—मनुष्य घर के जल जाने पर नये घर में प्रवेश करता है वैसे ही जीव भी देह के नाश होने पर दूसरी देह को धारण करता है ॥ ९६ ॥ देह भी चार प्रकार की है जैसे कि—

एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्।
चतुरशीति लक्षाणि निर्मिता योनयः पुरा ॥१०४॥
उद्भिजाः स्वेदजाश्चैव अण्डजाश्च जरा युजाः ॥१०५॥
(गरुड० प्रेत० अ०३)

भाषार्थ—ऐसे ही मैंने आप के लिये चार प्रकार का शरीर बतलाया। चौरासी लाख योंनियें पहले बनाई गईं ॥१०४॥ उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज ॥ १०५॥ इनमें पितर या प्रेत योनी का नाम भी नीं है अतः न पितर योनी होती है और न कोई और पितर लोक है और न कोई पितर योनी में जाता है। यह सब पोप पाखण्ड ही है जब पितर योनि ही नहीं तो फिर पितरों का निमन्त्रित ब्राह्मणों के पीछे फिरना तथा उनके साथ खाना स्वयं ही मिथ्या सिद्ध हो गया।

कहिये श्रीमान् जी ! यदि पितर निमंत्रित ब्राह्मणों के पीछे२ फिरते हैं तो पितरों की बड़ी दुर्दशा होती होगी। क्योंकि जब ब्राह्मण टट्टि आदि जाते होंगे तो भी पितरों को उन के पीछे पीछे ही रहना पड़ता होगा। यदि पितर भोजन करते हैं तो पितर ब्राह्मणों से पहले भोजन करते हैं या पीछे या साथ ही, यदि पितर भोजन पहले करते हैं तो ब्राह्मण झूटा खाते हैं। और ब्राह्मण पहले भोजन करता है तो पितर झूटा खाते हैं। यदि दोनों इकट्ठा खाते हैं तो दोनों ही झूटा खाते हैं और यह धर्म कर्मशास्त्र के विरुद्ध भी है जैसे कि—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥
(मनु० २।५६)

न किसी को झूटा देवे और न किसी के साथ इकठ्ठा खावे। फिर आप के हां तो यह भी लिखा है कि पितर ब्राह्मण के अंदर घुस कर खाते हैं जसा कि—

निमन्त्रितास्तु येविप्राः श्राद्ध पूर्व दिने खग।
प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वाया न्तिस्वमालयम्॥२६॥
श्राद्धकर्त्तातुयद्येकःश्राद्धे विप्रोनिमंत्रितः।
उदरस्थः पिता तस्य वामपार्श्वे पितामहः ॥२७॥
प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्टतः पिण्डभक्षकः ॥२८॥
(गरुड़० प्रेत० अ० १०)

हे खग ! जो ब्रह्मणश्राद्ध से पहले दिन निमन्त्रित किये जाते हैं पितर उन में प्रवेश करके भोजन करके अपने घर चले जाते है ॥२६॥ श्राद्ध करने वाले ने यदि एक ही ब्राह्मण को न्योता दिया हो तो श्राद्ध करने वाले का पिता ब्राह्मण के पेट में

बायें पसवाड़े में दादा तथा दायं पसवाड़े में परदादा और पीठ में बैठ कर भी पिण्डों को खाते हैं ॥२८॥ कहिये जनाब आपकी बात ठीक है या गरुड़ पुराण की । निश्चय जानिए दोनों ही वेद विरुद्ध होने से मिथ्या हैं।

(४१८) प्रश्न—कई एक लोगों की यह शंका है कि वे पितर हम को दीखते क्यों नहीं । इस के ऊपर शतपथ लिखता है कि—

तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः ।

(शत० २।३।४।२१)

सूक्ष्म होने के कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य होते हैं क्योंकि—

आप्य तैजस वायव्यानि लोकान्तरे शरी राणि ॥

(न्याय० ३।१।२८ वात्स्यायनभाष्य)

लोकान्तर में जल अग्नि वायु के शरीर होते हैं। जब अग्नि वायु जल के शरीर अति सूक्ष्म होते हैं फिर वे दृष्टि में कैसे आवेंगे। पृ० २८८ पं० ५।

उत्तर—बेशक प्रत्येक बुद्धिमान के दिल में यह ख्याल पैदा होता हैं कि जब पितर ब्राह्मणों के पीछे पीछे भी फिरते हैं और भोजन भी करते हैं तो फिर वह नज़र क्यों नहीं आते। शत पथ के पाठ में कोई ऐसा शब्द नहीं है जिसके अर्थ "सूक्ष्म" किये जासकें और आपने "इव" शब्द के अर्थ ही नहीं किये शत पथ के वास्तव अर्थ यह हैं कि "पितर मनुष्यों से छिपे हुवों की भांति रहते हैं" छिपे हुवे नहीं अपितु छिपे हुवों की भांति रहते हैं। यह वाक्य उन वानप्रस्थ और सन्यासी महा-

त्माओं के लिए है जो ज्ञान से रक्षा करने के कारण पितर कहाते हैं और बनों जंगलों पर्वतों आदि के एकान्त स्थानों में रहते हैं जिनके दर्शन कभी २ होते है। यदि यह वाक्य पौराणिक सूक्ष्म कल्पित पितरों के लिये होता तो इसमें "इव" लिखने की जरूरत न थी। और न्याय के पाठ का यह मतलब नहीं हैं। कि लोकान्तर में केवल अग्नि जल तथा वायु के शरीर होते हैं। अपितु उस का यह मतलब है कि लोकान्तर में वायु जल अग्नि तत्त्व प्रधानशरीर होते हैं। जैसे हमारे शरीर पृथ्वी के हैं इसके यह अर्थ नहीं कि हमारे शरीर केवल पृथ्वी के ही हैं और उनमें अग्नि जल वायु का सर्वथा अभाव है अपितु इसके यह अर्थ है कि हमारे शरीरों में पृथ्वी तत्त्व प्रधान है। वैसे ही पक्षियों के शरीरों में वायु तत्त्व प्रधान तथा जलचरों के शरीरों में जलतत्त्व प्रधान तथा गर्म देश के रहने वाले जानवरों के शरीरों में अग्नि तत्त्व प्रधान है। दूसरे तत्त्व भी गौण रूप से मौजूद हैं। केवल एक ही तत्त्व से किसी प्राणी का भी शरीर बनना असम्भव है। क्योंकि एक तत्त्व के शरीर में एक ही ज्ञानइन्द्रिय हो सकेगी किन्तु पितरों के शरीर में आप पांचों ज्ञान इन्द्रियां मानते हैं फिर उनका शरीर एक ही तत्त्व से कैसे। भला यदि पितरों के शरीर अग्नि वायु या जल के ही बने हुए हैं तो वे पार्थिव अन्न को कैसे ग्रहण कर सकते हैं। अतः न पितर कोई योनि है और न ही इस प्रकार के कोई शरीर हैं। अपितु यह पौराणिक कल्पना मिथ्या ही है आप तो कहते हैं पितर नज़र नहीं आते। महाभारत में जरत्कारू ने अपने पितर यायावरगढे में उलटे लटकते हुये देखे।

(आदि० प० १३ ) और आपका गरुड पुराण कहता है कि पितर सीता को नज़र आये जैसा कि—

गुरुत्मच्छृणु वक्ष्यामियथादृष्टास्तुसीतया ।
पितरो विप्रदेहेवै श्वशुराद्यास्त्रयः क्वचित् ॥३२॥
पिता तव मया दृष्टोब्राह्मणाग्रे तु राघव ।
सर्वाभरण संयुक्तो द्वौचान्यौ चतथाविधौ ॥४४॥
स्व हस्तेन कथं देयं राज्ञेवा भोजनं मया ॥४६॥
तृणपात्रेकथं तस्मै अन्नंदातुं हि शक्नुयाम् ॥४७॥
अपकृष्टास्मितेनाहं त्रपया रघुनन्दन ॥४८॥
( गरुड० प्रेत० अ० १० )

भाषार्थ—हे गरुड ! सुन मैं तेरे से कहता हूं कि जैसे सीता ने कहीं ब्राह्मणों के शरीर में श्वसुर आदि तीन पितर देखे ॥३२॥ सीता ने कहा हे राम ! मैंने ब्राह्मण के आगे आपका पिता देखा जो सारे गहनों से सज्जित था तथा वैसे ही दो और देखे ॥४४॥ मैं अपने हाथ से राजा को भोजन कैसे देती ॥४६॥ मैं तृण के पात्र में कैसे उसको अन्न दे सकती थी ॥४७॥ हे राम ! इस कारण मैं शरम से भाग कर छिप गई थी ॥४८॥ कहिये महाराज ! आप सच्चे हैं वा महाभारत तथा गरुडपुराण और सीता महारानी सच्ची है। निश्चय जानिये आपका तथा महाभारत, गरुड का दोनों ही लेख वेद विरुद्ध तथा मिथ्या हैं।

(४१६) प्रश्न—इन से भिन्न जो पितर अन्य योनियों में गये हैं। उनके लिये स्वधा देकर उस स्वधा को ईश्वर से पितरों को पहुंचा देने की प्रार्थना की जाती है। पृ०२८८ पं०१०

उत्तर—कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है। अन्य के कर्मों का फल अन्य को नहीं मिलता। और न ही किया हुआ कर्म फल भोगे बिना छूटता है। और न ही परलोक में कोई किसी की सहायता कर सकता है। यह ईश्वर का अटल नियम है, जिसकी वेद शास्त्र इतिहास ताईद करते हैं कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवंत्वयिनान्यथेतोऽस्तिनकर्मलिप्यतेनरे ॥२॥
असुर्यानामते लोका अन्धेन तमसावृत्ताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः ॥३॥
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः ॥ १ ॥
अंधंतमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ॥ ९ ॥
(यजु० ४० )

भाषार्थ—हे मनुष्यो तुम कर्म करते हुये सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो इस प्रकार से तुझ नर में बुरे कर्मों का लेपन होगा। इस के बिना और कोई रास्ता नहीं है ॥२॥ जो लोग आत्म हत्या करते हैं वे लोग जीते हुये भी दुख पाते हैं। और मरने पर भी ऐसे जन्मों को प्राप्त होते हैं जो अत्यन्त अ-ज्ञान मय हैं ॥३॥ त्याग भाव से कर्मों का फल भोगो ॥१॥ जो लोग प्रकृति की उपासना करते हैं वे नरक में जाते हैं ॥९॥ इन मंत्रों से स्पष्ट है कि कर्मों का फल कर्ता को अवश्य भोगना पड़ता है।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
नपुत्र दारा न ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥२३९॥
एकःप्रजायते जन्तु रेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एवचदुष्कृतम् ॥२४०॥
(मनु० ४)

परलोक में माता पिता पत्नी पुत्र संम्बन्धी कोई सहायता नहीं कर सकता केवल धर्म्म ही सहायता करता है ॥२३९॥ जीव एक ही पैदा होता है। एक ही मरता है अकेला ही पुण्य फल भोगता है और अकेला ही पाप भोगता है ॥२४०॥ यहाँ पर मनु धर्म्म शास्त्र भी इसकी ताईद करता है कि कर्मों का फल कर्ता को ही मिलता है ।

यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात् प्रवस्तां श्राद्धं न तत्पथ्यशनंभवेत् ॥१५ ॥
( वाल्मी० अयो० स०१०८ )

एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम्
मज्जत्ये को हि निरय एकः स्वर्गेमहीयते ॥तथा॥ १०२।१५

भाषार्थ—यदि यहां दूसरे का खाया हुआ दूसरे के शरीर में पहुंच जाता है तो प्रदेश गये हुओं का श्राद्ध करना चाहिये ताकि उसको रास्ते में भोजन न करना पड़े ॥१५॥ एक ही संसार का पालन करता है अकेला ही नरक में डूबता हैं और अकेला ही स्वर्ग में जाता है ॥१५॥ रामायण से भी साबित है कि किसी का किया किसी को नहीं मिलता कर्म का फल कर्ता को ही मिलता है ।

न कर्मणा पितुः पुत्रः पिता वा पुत्र कर्मणा ।
मार्गेणानेनगच्छन्ति बद्धाः सुकृत दुष्कृतैः ॥३८॥
यत्करोति शुभं कर्म तथा कर्म सुदारुणम् ।
तत् कर्तैव समश्नातिबांधवानां किमत्रह ॥४१॥
(महा० शान्ति० अ० १५३)

बालो युवा च वृद्धश्चयत्करोतिशुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं प्रतिपद्यते ॥१५॥
यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मात्रम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥०६॥
(महा० शान्ति० अ० १८१)
एक एव चरेद्धर्म्मेनास्ति धर्म्मे सहायता ।
केवलं विधि मासाद्य सहायः किंकरिष्यति ॥३२॥
(महा० शान्ति० अ० १९३)०

भावार्थ— पिता के कर्म से पुत्र तथा पुत्र के कर्म से पिता नहीं अपितु अपने किये पुण्य पापों से बंधे हुये इस मार्ग से जाते हैं ॥३८॥ जो शुभ कर्म करता है अथवा पाप कर्म करता है उन को करने वाला ही भोगता है । इस में रिशतेदारों का क्या है ॥४१॥ बालक जवान बूढ़ा जो भी शुभ अशुभ कर्म करता है उस २ अवस्था में उस के फल को भोगता है ॥१५॥ जैसे हज़ारों गौंवों में से बछड़ा अपनी माता को ढूंढ लेता है वैसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्ता को प्राप्त होता है ॥१६॥ अकेला ही धर्म का आचरण करे क्योंकि धर्म में सहायता नहीं है । केवल विधी का आश्रय लेकर सहायक क्या करेगा ॥३२॥ इत्यादि महाभारत भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन करता है ।

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥५॥
(वैशेषिक० ६।१।५)

भावार्थ— अन्य आत्मा के गुणों को अन्य आत्मा में कारण न होने से, एक आत्मा के अनुष्ठान किये हुये कर्म का

फल दूसरे आत्मा को नहीं मिलना चाहिए। किंतु कर्म का फल कर्ता को मिलना चाहिये। इस सूत्र का यह अभिप्राय है कि कर्ता को कर्म का फल न मिलने से कृतहानि तथा अकर्ता को कर्म का फल मिलने से अकृताभ्यागम दोष आता है अतः अन्य योनियों में गये हुये जीवों को कुछ भी पहुंचाने की प्रार्थना वा यत्न ईश्वरीय नियम के विरुद्ध व्यर्थ कल्पना ही हैं।

आपने अभी तक कोई ऐसा वेद मंत्र पेश नहीं किया जिस से यह साबित हो सके कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से मृतपितरों को मिलता है। आप की वेद विरुद्ध कल्पना से तो पौराणिक पितरों पर एक और मुसीबत नाज़िल होती है कि आप के बुरे कर्मों का फल भी पितरों को भुक्तना पड़ता है जैसे कि—

यथोक्तवादिनंदृतं क्षत्रधर्म्मरतानृपः।
योहन्यात् पितरस्तस्य भ्रूणहत्यामवाप्नुयुः ॥
(महा० शान्ति० अ० ८५ श्० २७)

श्राद्धं भुक्त्वा त्वधीयीत वृषलीतल्पगश्चयः।
पुरीषेतस्य तंमासं पितरस्तस्य शेरते ॥१३॥
ज्ञान पूर्वंतुयेते भ्यःप्रयच्छन्त्यल्प बुद्धयः।
पुरीषं भुंजतेतस्य पितरः प्रेत्यनिश्चयः ॥१७॥
(महा० अनु० अ० ९०)

श्राद्धं दत्त्वा चभुक्त्वा च पुरुषोयः स्त्रियं व्रजेत्।
पितरस्तस्य तं मासं तस्मिन् रेतसिशेरते ॥२४॥
(महा० अनु० अ० १२५)

भाषार्थ—क्षत्रिय धर्म्म पर चलने वाला राजा यदि ठीक २ बोलने वाले दूत को मार दे तो उस राजा के पितरों को गर्भ हत्या का दोष लगता है ॥२७॥ श्राद्ध का भोजन करके यदि कोई वेद पढ़े या शूद्रा से समागम करे तो उस के पाखाने में उसके पितर एक मास शयन करेंगे ॥१३॥ जो आदमी ज्ञान पूर्वक बेवकूफी से ज्वारी, गर्भघातक ,क्षयरोगी, पशुपालक बडेरू,प ग्रामदूत, सूदखोर, नचार, रागी, दुकानदार, पागल शराब बेचने वाला, समुद्र यात्रा करने वाला, राजा का नौकर चोर, कारीगर, ज्योतिषी, पुजारी, खेती करनेवाला इत्यादि ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन कराता है परलोक में उस के पितर निश्चय से पाखाना खाते हैं ॥१७॥ जो श्राद्ध देकर वा खाकर स्त्री गमन करता है उसके पितर उस महीने उसके वीर्य में निवास करते हैं ॥२४॥

अतः यही वैदिक सिद्धान्त ठीक है कि कर्म का फल कर्ता को ही मिलता है अन्य को नहीं ।

(४२०) प्रश्न—"ये चेह पितर इत्यादि यजु० १९।६७" इस मन्त्र में ईश्वर से जानने न जानने वाले पितरों को स्वधा पहुंचाने की प्रार्थना है । पृ २८८ पं० १२॥

उत्तर— कहिये महाराज ! आपके अर्थ के अनुसार भी इस में ब्राह्मणों द्वारा पितरों को तृप्त करने का वर्णन नहीं है अपितु अग्नि वा ईश्वर द्वारा ही है और "इह" के अर्थ यहां हैं "शरीर धारन करके इस लोक में आये हुये" मंत्र के किन पदों का अर्थ है । क्या आप किनही मृत पितरों को जानते भी हैं कि वे कहां हैं । यदि नहीं जानते तो मंत्र में जिन को हम

जानते हैं" ये वाक्य जीवित पितरों के लिये ही सार्थक हो सकते हैं। मृतकों के लिये नहीं अतः आप का किया हुआ अर्थ ठीक नहीं है इस मंत्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्चविद्मयां २ ॥ उच
प्रविद्म । त्वंवेत्थ यदिते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ९ँ
सुकृतं जुषस्व ॥ यजु०१९।६७ ॥

भाषार्थ—हे नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वान ! जो यहां ही पिता आदि ज्ञानी लोग हैं। और जो यहां नहीं हैं और हम जिन को जानते हैं और जिन को नहीं जानते हैं । उन यावत पितरों को आप जानते हैं और वे आप को भी जानते हैं उनकी सेवारूप पुण्य जनक सत्कार रूप व्यवहार को अन्नादि से सेवन करो ॥६७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं उन सब को बुला अन्नादि से सदा सत्कार करो। जिस से आप भी सर्व सत्कार युक्त होवो ॥६७॥

स्वधा शब्द निरुक्त अ० २ खं०२४ में जल के नामों में तथा निरुक्त अ० ३ खं० ७ में अन्न के नामों में पढ़ा गया है । अतः इस मन्त्र से जीवित पितरों का अन्न जल से तृप्त करना ही सिद्ध होता है मृतकों का नहीं।

श्रीमन् जी आपके यहाँ तो श्राद्ध को नित्य कर्म लिखा है

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥८२॥
(मनु० ३)

भाषार्थ—पितरों को प्रसन्न करने के लिये अन्नादि उदक दूध, मूलफल आदि से हर रोज़ श्राद्ध करें ॥८२॥

फिर आप केवल आश्विन के १५ दिनों में और उन दिनों में से भी एक पितर के लिये एक दिन ही श्राद्ध करते हैं। भला वर्ष भर में एक दिन के श्राद्ध से पितरों की क्या संतुष्टि हो सकती है। हां आपके यहां दीर्घकाल तक संतुष्टि करने के उपाय तो लिखे हैं जैसे कि—

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा।
दत्तेन मासं प्रियन्ते श्राद्धेन पितरो नृप ॥३॥
द्वौ मासौ तु भवेत्तृप्ति र्मत्स्यैः पितृगणस्य च।
त्रीन् मासानाविकेनाहुश्चतुर्मासं शशेनह ॥५॥
अजेन मासान् प्रियन्ते पञ्चैव पितरो नृप।
वाराहेणतु षन्मासान् सप्त वै शाकुनेनतु ॥६॥
मासानष्टौ पार्षतेन रौरवेन नव प्रभो।
गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दश मासिकी ॥७॥
मांसेनैकादशप्रीतिः पितृणां माहिषेण तु।
गव्येनदत्ते श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते ॥८॥
यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषासह।
वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्ति र्द्वादश वार्षिकी ॥९॥
आनन्त्याय भवेद्दत्तं खड्गिमांसं पितृक्षये।
कालशाकं च लौहं चाप्यानन्त्यां छाग उच्यते ॥१०॥

(महा० अनु० अ० ८८)

एवमुक्ताश्चतेसर्वे प्रोक्षयित्वा च गांतदा ।
पितृभ्यः कल्पयित्वातु ह्युपायुंजत भारत ॥१६॥
विप्रयोनौ तुयन्मोहान्मिथ्यापचरितंगुरौ ।
तिर्य्यग्योनौ तथा जन्म श्राद्धाज्ज्ञानं च लेभिरे ॥३५॥
पितृप्रसादाद्यु ष्माभिः सांप्राप्तं सुकृतं भवेत् ।
गां प्राक्षयित्वा धर्म्मेणपितृभ्यश्चोप कल्पिता ॥५०॥

(शिव० उमा० अ० ४१)

अश्वमेधं गवालंभं सन्यासं पलपैतृकम् ॥११२॥
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौपंचविवर्जयेत् ॥११३॥

(ब्रह्मवैवर्तखं० ४ अ० ११५)

धारयन् ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन् ।
आमन्त्रयतिविप्रान् श्राद्धमुद्दिश्यनिर्घृण ॥५६॥
भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम् ।
तान् द्विजान् भोजभामास श्राद्ध दृष्टेन कर्मणा ॥५७॥

(बालमी० अरण्य० स० १२)

नियुक्तस्तु यथा न्यायंयो मांसं नात्ति मानवः ।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवाने कविंशतिम् ॥३५॥

(मनु० ५)

भाषार्थ—तिल,चावल, जौ,उर्द, जल, मूल, फल, श्राद्ध में देने से हे राजन् पितर एक मास तृप्त रहते हैं ॥३॥ और मछलियों के माँस के देने से पितरगण की तृप्ति दो मास होती है। मेड़ का मांस देने से तीन मास तथा खरगोश के मांस से चार मास ॥५॥ और बकरे के मांस से पितर पांच मास तृप्त होते हैं । सुअर के मांस से छः मास तथा पक्षियों के मांस से सात मास

तृप्त होते हैं ॥६॥ पृषत् के मांस से आठ महीने रूरू के मांस से नौ महीने पितरों की तृप्ति होती है, और रोझ के मांस से दश महीने पितरों की तृप्ति होती हैं ॥७॥ भैंसे के मांस से ग्यारह महीने पितरों की तृप्ति होती है। गौं का मांस देने से पितरों को बारह महीने तृप्ति होती है ॥८॥ जैसे—गौ के मांस से वैसे ही खीर में घी मिला कर देने से बारह महीने तृप्ति रहती है। वाघ्रीणस के मांस से बारह बरस पितरों की तृप्ति होती है ॥९॥ खड्गि जानवर के मांस से पितरों की अनन्त तृप्ति होती है। कालशाक तथा लाल बकरे के मांस से भी अनन्त तृप्ति होती है ॥१०॥ ऐसा कहने पर उन सब ने तब गौ को प्रोक्षण करके पितरों के निमित्त कल्पना करके उस गौ को मार कर खा लिया ॥१९॥ ब्राह्मण के जन्म में उन्हों ने गुरु से झूट बोला इस से वे पशु की योनि में गये तथा श्राद्ध के पुण्य से ज्ञान की प्राप्ति की ॥३५॥ पितरों की कृपा से तुम को पुण्य की प्राप्ति होगी क्योंकि तुम ने धर्म्म से गौ को प्रोक्षण करके पितरों के लिये अर्पण की ॥५०॥

अश्वमेध, गौमेध, सन्यास, श्राद्ध में मांस, देवर से सन्तान उत्पत्ति ये पांच कलयुग में वर्जित हैं ॥११२-११३॥ इलबिल ब्राह्मणों का रूप धारन करके संस्कृत बोलता हुआ ब्राह्मणों को श्राद्ध का निमन्त्रण देता था ॥५६॥ तब अपने भाई वातापि को जो मेंढा बना होता था मारकर उसका मांस बना कर श्राद्ध की विधी से उन ब्राह्मणों को खिला देता था ॥५६॥

न्याय पूर्वक श्राद्ध आदि में प्रयुक्त किये हुये मांस को जो नहीं खाता वह मर कर इक्कीस जन्म तक पशु की योनी में जाता है ॥३५॥

किंतु आप इस विधी के अनुसार आचरण करके पितरों की तृप्ति क्यों नहीं करते। हां प्रतीत होता है कि आप के भी यह बात समझ में आगई है कि यह भी मृतक पितरों के बहाने से मांसाहारी लोगों की मांस खाने की कल्पना ही है। इसी बात को जान कर किसी ने लिखा है कि—

सुरामत्स्यो मधु मांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतत् नैतद्वेदेषुकल्पितम् ॥६॥

(महा० शान्ति० अ० २६४)

भाषार्थ—शराब, मच्छली, आसव, मांस आदि वस्तुयें धूर्त लोगों ने यज्ञ में शामिल करदी हैं यह वेदों में लिखा हुआ नहीं है ॥६॥

निश्चय जानिये यह सारा ही पाखण्ड और पाप मृत्तक श्राद्ध की कल्पना का फल है। आशा है कि आप इसे त्याग कर वैदिक मत को स्वीकार करेंगे।

(४२१) प्रश्न—"येऽग्निष्वाता इत्यादि यजु०१९।६०" जिनका *अग्नि ने स्वाद लिया जिनका नहीं लिया वे पितर स्वर्ग में* स्वधा से प्रसन्न होते हैं "अग्नि स्वदिताः अग्निष्वाताः" जलाते हुये अग्नि ने जिन का स्वाद ले लिया उन का नाम है "अग्निष्वाताः" "यानग्निरेवदहन स्वदयतितेपितरोऽग्निष्वाताः शत० कां० २" जिनका भस्म करते समय अग्नि ने स्वाद लिया है। वे ही पितर अग्निष्वात हैं। पृ० २८८ प० १७।

उत्तर—"हम प्रश्न नं० ४१६ के उत्तर में सिद्ध कर आये हैं कि *अग्निष्वात्ता पितर अग्निमें जले हुओं का नाम नहीं है।*

क्योंकि अग्नि में शरीर जलता है जीव नहीं जलसकता। और जले हुये शरीर का यज्ञ में आकर भोजन करना तथा उपदेश करना असंभव है। पौराणिकों के मतानुसार शिव पुराण में ब्रह्मा के पसीने से तथा मनु में मरीचि ऋषि से अग्निष्वात्त पितरों की पैदाइश है। और वे देवताओं के ही पितर हैं मनुष्यों के नहीं हैं यदि अग्नि में जले हुओं का नाम ही अग्निष्वात्ता हो तो फिर सभी जले हुओं का नाम अग्निष्वात्ता होना चाहिये, वे सभी मनुष्यों के पितर होने चाहियें। केवल देवतओं के क्यों? अतः आप का कथन तो आप के ही ग्रन्थों से असत्य सिद्ध होता है। और आप ने जो शतपथ का प्रमाण दिया है उसका ठीक पता नहीं बतलाया प्रतीत होता है कि आप ने मनघढन्त पाठ शतपथ के नाम से रख दिया है अतः आपकी व्युत्पत्ति तथा शतपथ दोनों ही वेद विरुद्ध युक्ति शून्य तथा आपके अपने ही ग्रन्थों के विरुद्ध हैं। "अग्निष्वाताः" की व्युत्पत्ति इस प्रकार से ठीक और युक्तियुक्त है कि "यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीताते अग्निष्वाताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जानने वाले हों वे अग्निष्वात्त अथवा "अग्निः परमेश्वरोऽभ्युदयाय सुष्ठुतयाऽऽत्तो गृहीतो यैस्तेऽग्निष्वात्ताः" जो अग्नि नाम परमेश्वर को कल्याणार्थ समयक् ग्रहण करते हैं वे अग्निष्वात् अथवा "होम करणार्थं शिल्प विद्या सिद्धयेच भौतिकोऽग्निः सुष्ठुतयाऽऽत्तोगृहीतोयैस्तेऽग्निष्वात्ताः" होम करने के लिए और शिल्प विद्या की सिद्ध के लिये भौतिक अग्नि जिन्हों ने अच्छे प्रकार ग्रहण किया है वे अग्निष्वात्त पितर कहाते हैं। यही अर्थ वेदानुकूल युक्ति युक्त तथा ग्रन्थ सम्मत है जैसा कि—

तांस्तु शूरान् महेष्वा सांस्तदा निवसतोवने।
अन्वयु ब्राह्मणा राजन् साग्नयोऽनग्नयस्तथा ॥५॥

(महा० वन० अ० ५०)

भाषार्थ—उन शूरवीर बहादुर पांडवों के बन में रहते हुये अग्नि सहित तथा अग्नि रहित ब्राह्मण पीछे २ चलते थे ॥५॥ इन्हीं का नाम अग्निष्वात्त पितर कहा जाता था। अब आप मन्त्र के वास्तवार्थ को पढ़ने की कृपा करें। आप ने आधा मन्त्र दिया है। जिस से भ्रम होना संभव है। पूरा मन्त्र इस प्रकार से है।

येऽग्निष्वात्ता येऽनग्निष्वात्ता मध्ये दिवःस्वधया मादयंते।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथा वशन्तन्वङ्कल्पयाति ॥६०॥

(यजु० १९)

भाषार्थ—जो पितर अग्नि विद्या और अग्नि से भिन्न जलादि की विद्या के जानने वाले तथा जोकि दिव अर्थात् विज्ञान रूप प्रकाश के बीच में सुख भोग से आनन्दित रहते हैं उनके हितार्थ स्वराट् जो स्व प्रकाश स्वरूप परमेश्वर है, वह प्राण विद्या का प्रकाश कर देता है। इसलिए हम प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! आप अपनी कृपा से उनके शरीर को सदा सुखी तेजस्वी और रोग रहित रखिये कि जिस से हमको उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहे ॥६०॥ इस मन्त्र में पितरों के शरीर को रोग रहित रखने की प्रार्थना से सिद्ध है कि पितर जीवितों का ही नाम हैं मृतकों का नहीं।

श्रीमान् जी हमें तो यह बड़ी चिन्ता है कि यह मृतक श्राद्ध आपके मतानुसार जैसे पितरों के लिये हानिकारक हैं, वैसे ही श्राद्ध भोक्ता तथा कर्ता के लिए भी हानिकारक हैं। जैसे कि—

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षेयः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितर स्वयम् ॥७॥
(पाराशर स्मृति अ० ७ आपका पुस्तक पृ० ३३५)
यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलष्टयो गुडान् ॥१३३॥
सोमविक्रयिणे विप्रा भिषजे पूयशोणितम्।
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ ॥१८०॥
इतरेषु त्वपांक्तेषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु।
मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थि यदन्त्यघ्नं मनीषिणः ॥१८२॥
(मनु० ३)

भाषार्थ—बारहवां वर्ष प्राप्त होने पर जो कन्या का विवाह नहीं करता। उस लड़की के रजको प्रत्येक मास में उसके पितर स्वयं पीते हैं ॥ ७॥ कहिये महाराज यह भी स्वधारस है क्या जिसे पितर पीते हैं। इसमें पितरों का क्या दोष है बताने की कृपा करें। हव्य और कव्य में जितने ग्रासों को वेद का न जानने वाला खाता है मरने के पश्चात कर्ता और भोक्ता दोनों उतने ही तपे हुवे लोहे के शूल तथा गोलों को निगलता है॥१३३॥ कहिये महाराज! यह क्यों आप अनपढ़ ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन करवा कर अपने तथा उन के लिए कांटे बोरहे हैं अब भी होश संभालो। शराब बेचने वाले को भोजन श्राद्ध

में कराने से विष्ठा वैद्य को कराने से पीप तथा खून कर्ता भोक्ता और पितरों को मिलता है। पुजारी का खिलाया नष्ट हो जाता है तथा सूद खोर को खिलाया हुवा अप्रतिष्ठा का कारण होता है॥ १८०॥ (१) चोर (२) पातकी (३) नामर्द (४) नास्तिक (५) ब्रह्मचारी (६) वेदविद्या रहित (७) श्वेत चर्म वाला (८) ज्वारी (९) बहुत यज्ञ कराने वाला (१०) वैद्य (११) पुजारी (१२) मांस-बेचनेवाला (१३) दुकानदार (१४) ग्राम तथा राजा का दूत (१५) भ्रष्ट नखों वाला (१६) काले दांतों वाला गुरुविरोधी (१८) अग्निहोत्र न करने वाला (१९) सूद खोर (२०) क्षय रोगी (२१) पशुपालक (२२) परिवेता (२३) पंच यज्ञ रहित (२४) ब्राह्मण विरोधी (२५) परिविक्ति (२६) गणों का याजक (२७) नचार (२८) खंडित ब्रह्मचर्य (२९) शूद्रापति (३०) पौनर्भव (३१) काणा (३२) उपपतियुक्त (३३) नौकरी लेकर पढ़ाने वाला (३४) नौकर अध्यापक से पढ़ने वाला (३५) शूद्रशिष्य (३६) शूद्रगुरु (३७) बदज़बान (३८) कुण्ड (३९) गोलक (४०) माता पिता गुरु से त्यागा हुवा (४१) पतित संम्बन्धी (४२) घर जलाने वाला (४३) मरण के हेतु धन दाता (४४) कुण्ड का अन्न खाने वाला (४५) शराब बेचने वाला (४६) समुद्रयात्री (४७) स्तुति करने वाला (४८) तेल निकालने वाला (४९) झूटी गवाही देने वाला (५०) पिता से विवाद करने वाला (५१) जुवा खिलाने वाला (५२) शराबी (५३) कोढ़ी (५४) श्रापदाता (५५) फरेबी (५६) रस बेचने वाला (५७) धनुष बाण का बनाने वाला

( ५८) अग्रेदिधिषुपति (५९) मित्र द्रोही (६०) द्यूत वृत्ति (६१) पुत्र का आचार्य (६२) मृगी रोगी (६३) गण्डमाला रोगी (६४) श्वेत कुष्ठी (६५) चुग़लीखोर (६६) पागल (६७) अंधा (६८) वेद निन्दक (६९) हाथी बैल घोडे को दमन करने वाला (७०) नक्षत्रों से कमाने वाला (७१) पक्षी पालक (७२) युद्धका आचार्य (७३) स्रोतों का भेदक (७४) स्रोतों को रोकने वाला (७५) गृह प्रवेश जीवी (७६) दूत (७७) वृक्षारोपक (७८) कुत्ते से खेलने वाला (७९) बाज वृत्ति (८०) कन्या दूषक (८१) हिंसक (८२) शूद्रवृत्ति (८३) गणयाजक (८४) आचार हीन धर्म्म भीरू (८५) नित्य याचक (८६) खेती करने वाला (८७) फोलपा रोगी (८८) महात्माओं से निन्दित (८९) गड़रिया (९०) भैंसपोषक (९१) पनुर्भू पति (९२) प्रेत जीवी (९३) इन पंक्ति बहिष्कृत दुष्ट ब्राह्मणों को खिलाया हुवा अन्न दाता भोक्ता तथा पितरों के लिये चरबी खून मांस मज्जा हड्डी बन जाता है ऐसा बुद्धिमानों का कहना है ( मनु० ३।१३३-१८२) देखिये श्रीमान् जी आपके मतानुसार भी आज कल श्राद्ध करने में कर्ता भोक्त तथा पितरों को दुख सागर में डूबना पड़ता है क्योंकि श्राद्धों में भोजन करने वाले प्रायः उपरोक्त ब्राह्मण ही मिलते हैं। अतः हर प्रकार से मृतक श्राद्ध त्याज्य ही है।

(४२२) प्रश्न—"येऽग्निदग्धा इत्यादि अथर्व १८।२।३५" यहां अग्निष्वाता के स्थान में अग्निदग्धा पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते लिखा है। पृ० २८२ पं० ७।

उत्तर—यहां पर भी अग्निदग्ध नाम अग्निविद्या में चतुर पितरों का है। क्योंकि अग्नि में शरीर ही जलते हैं जीव

नहीं। और जले हुये शरीरों का स्वधा अर्थात् अन्न जल से प्रसन्न होना भी असंभव है। और फिर मनु में लिखा है कि—

अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यान् वर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेवनिर्दिशेत् ॥१९९॥

(मनु० ३)

भाषार्थ—अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्ता सौम्य ये सब ब्राह्मणों के ही पितर हैं ॥१९९॥

यदि अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध एक ही बात है तो श्लोक में इन का भिन्न २ पाठ क्यों आया।

यदि जले हुओं का नामही अग्निदग्ध और अग्निष्वात्त है तो ये केवल ब्राह्मणों के ही पितर क्यों हैं सब के क्यों नहीं। श्लोक १९५ में सौम्यों को साध्यों के पितर तथा अग्निष्वात्तों को देवों के पितर लिखा है। किंतु इस श्लोक मे दोनों को ब्राह्मणों का ही पितर लिखा है। क्या ये परस्पर विरोध है या साध्य और देव ब्राह्मणों का ही नाम है।

श्लोक १९५ में अग्निष्वात्त मरीचि ऋषि के पुत्रों का नाम बताया है। तो क्या मरीचि के पुत्र जले हुये पैदा होते थे और उनका आम लोगों से क्या संबंध ?

यदि वे ब्राह्मणों के ही पितर हैं तो दूसरे लोग इनका श्राद्ध क्यों करें ?

उपरोक्त हेतुओं से साबित है कि अग्निदग्ध नाम अग्नि विद्या में चतुर पितरों का है जले हुओं का नाम नहीं है। जैसा कि—

ब्रह्मणाः साग्निहोत्राश्च तथैवचनिरग्नयः॥१४॥
बहवो ब्राह्मणास्तत्र परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥१५॥
(महा० वन० अ० २४)

भावार्थ— अग्निहोत्र से युक्त तथा अग्नि से रहित ब्राह्मणों ने वहां वन में युधिष्ठिर को घेर लिया ॥१४-१५॥

बस इन्ही का नाम अग्निदग्ध है आप ने मन्त्र आधा दिया है अतः भ्रमजनक है। पूरा मन्त्र, तथा उसके ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं।

येऽग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्वधयामादयन्ते।
त्वंतान् वेत्थ यदिते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिंजुषंताम् ॥
(अथर्व० १८।२।३५)

भावार्थ—जो अग्निहोत्र वा शिल्पविद्या संबंधि अग्निविद्या में चतुर तथा जो अग्नि से भिन्न जलादि की विद्या में चतुर और विज्ञानि लोग दिव अर्थात् विज्ञान रूप प्रकाश के बीच में सुख भोग से आनन्दित रहते हैं। हे सर्वज्ञ परमात्मन् यदि तू उनको अपनावे तो वे अन्न जल आनन्द को प्राप्त होते हुये इस यज्ञ को सेवन करें ॥३५॥

ब्राह्मणों के पेट को लैटरबक्स बनाने का तो इस मन्त्र में भी संकेत मात्र नहीं है। अतः साबित है कि जो अन्नबल तथा ज्ञान से हमारी रक्षा करने वाले ज्ञानी महात्मा योधा लोग हैं उन्हीं का नाम पितर है। तथा उन्हें श्रद्धापूर्वक भोजन कराने का नाम श्राद्ध तथा तृप्त करने का नाम तर्पण है। और यह मृतक श्राद्ध की कल्पना वेद विरुद्ध नवीन कल्पित है जैसा कि—

निमि का पुत्र श्रीमान् मर गया तो निमि ने शोक से व्याकुल होकर अपने पुत्र-का श्राद्ध किया। और फिर पछताने लगा कि—

तत् कृत्वा समुनिश्रेष्ठो धर्मसंवरमात्मनः ।
पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥१६॥
अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।
कथं नु शापेन नमां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥१७॥

(महा० अनु० अ० ६१)

भाषार्थ—वह श्रेष्ठ मुनि स्वयं धर्म विरुद्ध यह काम करके पीछे से पश्चात्ताप से तपायमान हुआ चिन्ता करने लगा कि ॥१६॥ मैंने यह क्या पूर्व मुनियों से न किया हुआ काम कर लिया। कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण लोग मुझे शाप से भस्म कर दें ॥१७॥

मुनि का मृत्तक श्राद्ध करके पछताना साफ साबित करता है कि मृतक श्राद्ध पीछे की वेद विरुद्ध मिथ्या कल्पना हैं।

अतः "ये निखाता" "आयन्तु" "ये चेहपितरः" येऽग्निष्वात्ताः" एवं "येऽग्निदग्धा" इन पांचों मन्त्रों से जीवित पितरों के श्राद्ध ही साबित होते हैं। क्योंकि मरने के पीछे न तो जीव गाड़े जाते हैं और न पड़े रह जाते हैं न फूंके जाते हैं और न जीवों को बुलाकर भोजन कराया जा सकता है रहा शरीर वह जड़ होने से न भोजन कर सकता है, न आ सकता है न उपदेश और रक्षा कर सकता है। अतः मंत्रों का हमारा किया हुआ अर्थ ही ठीक है। और जीवित

पितरों का हमारे यज्ञ में आना भोजन करना उपदेश करना तथा रक्षा करना संभव हो सकता है। अतः जीवित पितरों का श्राद्ध तर्पण ही वेदानुकूल तथा युक्ति युक्त है मृत्तकों का नहीं।

(४२३) प्रश्न—स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः ॥७८॥
स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यो ॥ ८० ॥
(अथर्व० १८। ४। ७८ से ८०)

इन मन्त्रों में पृथिवी अंतरिक्ष तथा स्वर्ग में रहने वाले पितरों के लिये स्वधा देने का वर्णन है। जीवित पितर अंतरिक्ष स्वर्ग में रह ही नहीं सकते इन लोकों में तो शरीर छोड़ने पर ही प्राणी जाते हैं। इस कारण श्राद्ध इन तीन मन्त्रों से भी मृतक पितरों का ही सिद्ध होता है। "पृथिवी षद्भ्यः" से भी मृतक ही लिये जावेंगे (१) मृत्तकों के पृथिवी पर जन्म धारने (२) अंतरिक्ष तथा स्वर्ग वाले पितरों के साहचर्य्य (३) स्वधा लेकर अग्नि में छोड़े जाने से। पृ० २८६ पं० १८।

उत्तर—आप मानते हैं कि शरीर छोड़ने पर प्राणी अंतरिक्ष तथा स्वर्ग में जाते हैं तो शरीर तो रह गये पृथिवी पर और जीव चले गये अंतरिक्ष और स्वर्ग में, जीवों के साथ माता पिता आदि सम्बन्ध हैं नहीं क्यों कि जीव अनुत्पन्न अनादि है जैसे कि—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता
वा न भूयाः अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्य ते हन्य मानं शरीरे ॥ गीता २। २०
माता पितृसहस्राणि पुत्र दार शता नि च।

अना गतान्यतीता निकस्यतेकस्य वा वयम् ॥ ८५ ॥
अहमेको न मे कश्चि न्नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामियोमम ॥८६॥
न तेषां भवता कार्यं न कार्यन्तवतैरपि ।
स्वकृतैस्तानि जातानिभवांश्चैव गमिष्यति ॥८७॥

( महा० शांति० अ० ३२१)

भाषार्थ—यह जीव न पैदा होता है न कभी मरता है और न यह कभी होकर होगा तथा हुआ है । यह अज नित्य सदा तथा पुराना है । यह शरीर के नाश से नाश नहीं होता ॥२०॥

माता पिता हज़ारों पुत्र स्त्री सैकड़ों होंगे तथा हो चुके वे किस के और हम किसके अर्थात् कोई किसी का नहीं ॥८५॥ मैं एक हूं मेरा कोई नहीं है न मैं अन्य किसी का हूं । वह मुझ को दिखाई नहीं देता जिसका मैं हूं न वह दीखता है, जो मेरा हो ॥८६॥ न उसका आपसे काम है न आपका उनसे काम है । अपने कर्मों से वे पैदा हुये और आप भी कर्मानुसार चले जायेंगे ॥८७॥

फिर स्वधा किन के लिये पहुंचाई जा रही है । वह भी ब्राह्मणों के द्वारा नहीं अपितु अग्नि के द्वारा । तथा दूसरे का किया दूसरे को कर्मफल मिलता नहीं जैसे कि—

नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते ।
करोतियादृशं कर्मतादृशं प्रतिपद्यते ॥२१॥

( महा० शान्ति० अ० २६०)

भावार्थ—यह जीव दूसरे के पुण्य तथा पाप का सेवन नहीं करता जैसा कर्म करता है वैसे ही फल को प्राप्त होता है ॥२१॥ अतः आपकी मृतक पितरों को स्वधा पहुंचाने की सारी कल्पना ही निर्मूल तथा मिथ्या है । अपितु ये मन्त्र भी जीवित पितरों को ही अन्नादि प्रदान करने की आज्ञा देते हैं। और इनके वास्तव अर्थ ये हैं कि—

पृथ्वी पर विराजने वाले पालक माता पितादि पूजनीय पुरुषों को अन्नादि पुष्टिकारक पदार्थ प्राप्त हों ॥७८॥

(२) अन्तरिक्ष में विराजने वाले अर्थात् विमानों द्वारा आकाश में घूमने वाले पालक रक्षक पुरुषों को अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों ॥७९॥

( ३ ) मोक्षमार्ग में चलने वाले ज्ञानी पूज्य गुरुजनों को अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों ॥८०॥

ये तीनों मन्त्र जीवित पितरों की सेवा की ही आज्ञा देते हैं (१) स्वधा के अग्नि में छोड़ने का मन्त्रों में वर्णन न होने से । ( २ ) अन्तरिक्ष में विमानों द्वारा तथा दिवा अर्थात् मोक्ष मार्ग में जीवित पितरों के वर्तमान होने से । (३ जीवों के साथ पितृत्व सम्बन्ध न होने तथा मृत शरीरों के अन्नादि ग्रहण न करने से ।

श्रीमान् जी ! आप के ग्रन्थों के अनुसार भी दूसरी योनि में गये पितरों को अन्न नहीं मिलता। चुनांचि ऋषि पंचमी की कथा में वर्णन है कि विदर्भ देश का श्येनजित् राजर्षि राजा था। उसके राज्य में सुमित्र नाम ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री का नाम जयश्री था। वह स्त्री ऋतु समय में बरतनों को

छूती रहती थी कुछ दिनों के पीछे वे दोनों मर गये। ऋतु सम्पर्क दोष से सुमित्र का बल का जन्म तथा जयश्री का कुतिया का जन्म हुआ। सुमित्र के बेटे का नाम सुमति तथा पुत्रबधु का नाम चन्द्रावती था। वे बैल तथा कुतिया अपने बेटे के ही घर में रहते थे। एक दिन सुमति के यहां पिता का श्राद्ध था। सुमति बैल को लेकर खेत में हल जोतने गया। चन्द्रावती ने खीर बनाई उसमें सांप ज़हर डाल गया, कुतिया ने देख लिया। कुतिया ने इस विचार से कि इसे खाकर ब्राह्मण मर जायेंगे, खीर में मुंह डाल दिया। चन्द्रावती ने उस कुतिया को जलती लकड़ी से इतना मारा कि उसकी कमर टूट गई। भोजन फिर बनाया गया। ब्राह्मणों को खिला दिया। किंतु कुतिया को झूठन भी न दी। आधी रात को कुतिया बैल के पास गई, और अपनी सारी राम कहानी सुनाई और कहा कि मैं भूक से मरी जा रही हूं। आज झूठा टुकड़ा भी नहीं मिला। यह सुन कर बैल ने कहा कि यह पूर्व कर्मों का फल है। देख तेरे पाप से मेरी कैसी गति हो रही है कि—

किं करोमि अशक्तोऽहं भारवाहत्वमागतः।
अद्याहमात्मनः क्षेत्रे वाहितः सकलं दिनम् ॥४०॥
मारितश्चात्मजेनाहं मुखंबध्द्वाबुभुक्षितः।
वृथा श्राद्धंकृतंतेन जाताऽद्यमम कष्टता ॥४१॥

(भविष्य० उत्तर० अ० ७८)

(भविष्योत्तरपुराणोक्त ऋषिपञ्चमी कथा

भाषार्थ—मैं क्या करूँ बेबस हूं। मैं बोझ ढोने वाला बैल बन गया, आज सारा दिन अपने ही खेत में हल बाहता रहा हूं। और पुत्र ने मेरा मुख बांध कर मुझे खूब मारा मैं भी बहुत भूखा हूं। इसने वृथा ही श्राद्ध किया है। जिससे मुझे कष्ट हुआ है। यही कथा हूबहू पद्म पुराण उत्तर खंड ६ अ० ७८ में मौजूद है।

इस कथा से साफ़ साबित है कि श्राद्धों में भोजन खिलाया हुआ मृत पितरों को नहीं मिलता। अपितु ब्राह्मण ही डकार जाते हैं।

(४२४) प्रश्न—जिस मनुष्य के सन्तान न होती हो उसको सन्तान उत्पन्न करने के हेतु श्राद्ध करना लिखा है। इस श्राद्ध में तीन पिंड होते हैं, मध्यम पिंड को पत्नी खाती है। इस पर गृह्य सूत्र लिखता है कि—

आधत्तपितरो गर्भमितिमध्यमंपिंडं पत्नी प्राश्नीयात्।

आचार्य तो "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मन्त्र को पढ़े। और श्राद्ध करने वाले की पत्नी मध्यम पिंड को भक्षन करे। इस की ताईद मनु० ३।२६२-२६३ में भी की गई है कि ऐसा करने से आयु वाले यशवान्, बुद्धिमान्, धनी, सात्विक, धर्मात्मा पुत्र को पैदा करती है। "आधत्त पितरो गर्भं" यजु० २।३३ इस मन्त्र वाले श्राद्ध में पितरों से यह प्रार्थना करते हैं कि ऐसी कृपा करो जिस से हमारी स्त्री को गर्भ रहे। यह प्रार्थना मृतक पितरों से तो कर सकते हैं किंतु जीवितों से नहीं कर सकते। पृ० २६० पं० ६

उत्तर—धन्य हो महाराज ! मृतक पितरों को मांस आदि भोजन से तृप्त करते २ अब उनसे सन्तान पैदा कराने का काम भी लेने लगे। हमें यह पता नहीं था कि मृतक पितरों की तृप्ति इस प्रकार से भी की जाती है। और बात भी ठीक है भोजन से तो क्षुधा निवृत्ति ही हो सकती है। सब प्रकार की तृप्ति भोजन मात्र से थोड़ी ही हो सकती है। स्वामी साहिब ! यह काम जीवित पितरों से ही क्यों न ले लिया गया। संभव है मरने के पश्चात् पितर इस कार्य में अधिक निपुण हो जाते हों। कहिये महाराज ! भोजन की भांति यह काम भी पितर ब्राह्मणों द्वारा ही करते हैं या इस काम में यजमान पत्नि का सीधा ही सम्बन्ध पितरों से हो जाता है ? या महीधर की विधी अनुसार किसी घोड़े आदि पशु को ही पितर मान कर उस से यह काम लिया जाता है ? जैसा कि सन्तान के अभाव में कौशल्या के साथ ऐसा किआ गया। या वह मृतक पितर ही स्वयं गर्भाधान में यजमान की सहायता करता है जैसा कि ( महा० आदि० अ० १२१ श्लो ७-३५) में व्युषिताश्व ने मरने के पश्चात् काक्षीवती में सात पुत्र स्वयं गर्भाधान करके पैदा किये। या केवल पिंड खाने से ही गर्भ हो जाता है। वा यजमान को फिर भी कोई विशेष यत्न करना ही पड़ता है। इस वेद विरुद्ध अश्लील लेख को मानते हुये आप को शर्म तो नहीं आती।

श्रीमान् जी ! यह मन्त्र गर्भाधान का नहीं है। अपितु यह मन्त्र वेदारंभ संस्कार का है। आपके गृह्यसूत्र तथा मनुस्मृति ने वेद

विरुद्ध कल्पना करके इस मन्त्र को गर्भाधान में लगाया है इस मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

आधत्तपितरो गर्भं कुमारं पुष्कर स्रजम् ।
यथेह पुरुषो ऽसत् ॥ यजु० २।३३

भाषार्थ—हे विद्या के देने वाले पितर लोगो ! इस कुमार ब्रह्मचारी की गर्भ के समान रक्षा करके उत्तम विद्या दीजिये कि जिस से वह विद्वान् होके जैसे पुष्पों की माला धारन करके मनुष्य शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही यह भी विद्या पाकर सुन्दरतायुक्त होवे और जिस प्रकार इस संसार में मनुष्यों की विद्यादि सद्गुणों से उत्तमकीर्ति और सब मनुष्यों को सुख प्राप्त हो सके वैसे प्रयत्न आप लोग सदा कीजिये ॥३३॥

आपको गर्भ शब्द देखकर भ्रम हुआ है किंतु गर्भ शब्द केवल गर्भाधान में ही नहीं आता अपितु लाक्षणिक रूप से कई स्थानों में प्रयुक्त होता है । जैसा कि—

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे ॥यजु०१३।४॥

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तंरात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तंजातं द्रष्टुमभि संयन्तिदेवाः ।
(अथर्व० ११।५।३)

तत्रयद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जी बन्धन चिह्नितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पितात्वाचार्य्य उच्यते ॥१७०॥
(मनु० २)

आचार्य्य योनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरंति ।
इहैवते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहायदेहं परमंयान्ति योगम्॥६॥
(महा० उद्योग० अ० ४३)

भाषार्थ—वह परमात्मा प्रकाशमान् सूर्य्य चन्द्रादि का धारन करने वाला है ॥४॥ आचार्य्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञा पूर्वक समीप रख के तीन रात्री पर्यन्त आचार की शिक्षा कर उसके आत्मा के भीतर गर्भ रूप विद्या स्थापन करने के लिये उसको धारण कर और उसको पूर्ण विद्वान कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है तब उसको देखने के लिये सब विद्वान लोग सम्मुख जा कर बड़ा मान्य करते हैं ॥३॥ वहाँ जो इस ब्रह्मचारी का यज्ञोपवीत से चिह्नित ब्रह्मजन्म है वहां इसकी माता गायत्री है और पिता आचार्य्य है ॥१७॥ जो इस संसार में आचार्य्य की योनि में प्रवेश करके गर्भ होकर ब्रह्मचर्य्य का आचरण करते हैं, वे यहां ही शास्त्रों के कर्ता हो जाते हैं शरीर छोड़कर परम योग को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

आशा है कि अब आप गर्भ शब्द को ही देख कर मृतक पितरों से गर्भ करवा ने के व्यर्थ झंझट में किसी पतिव्रता देवी को डालने का वेद विरुद्ध युक्ति शून्य उपहास योग्य कार्य्य न करेंगे।

(४२५)प्रश्न—उदन्वती त्यादि अथर्व०१८।२२।४८"इस मन्त्र में पितरों के रहने के उदन्वतो पीलु तथा द्यौ तीन स्थान बताये हैं। जो पुण्य आत्मा पितर हैं वे पितृ तथा स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं। और जिन का पुण्य कुछ कम है वे याम्य गति को पहुंचकर कर्मानुसार अनेक योनियों में चले जाते हैं जो पितर पितृलोक प्रभृति लोकों में निवास करते हैं वेद ने उन का आवाहन लिखा है। और जो पितर कर्मानुसार योनियों में गये

हैं उन को ईश्वर द्वारा श्राद्ध कर्म का फल उन्हीं योनियों में पहुंचता है। जब श्राद्ध में बुलाये जाने वाले पितर "प्रद्यौ" तृतीय आकाश में रहते हैं और यही श्राद्ध में आकर भोजन करते हैं तो फिर जीवित पितरों का श्राद्ध कैसे माना जावेगा।

पृ० २६१पं० ११ ॥

उत्तर—आपके लेखा नुसार उदन्वति उस आकाश का नाम है जहां तक जल के प्रमाणु जा सकते हैं और पीलू उस आकाश का नाम है जहाँ तक अग्नि वायु के प्रमाणु जा सकते हैं प्रद्यौ इन दोनों से ऊपर है जहां पितर निवास करते हैं। और वही श्राद्धों में आते हैं। कहिये श्रीमान् जी जब प्रद्यौ में कोई भी प्रमाणु नहीं जा सकते तो पितरों के शरीर वहां पर किसे चीज़ के हैं यदि पितरों के शरीर हैं ही नहीं तो फिर उनका आना जाना खाना पीना मिथ्या ही कल्पना हुई। आप पीछे मान आये हैं कि पितरों के शरीर अग्नि जल वायु के होते हैं। जब प्रद्यौ में किसी प्रमाणु की गति ही नहीं तो फिर शरीर कैसे। फिर आप लिखते हैं कि पुण्यात्मा पितर पितृलोक तथा स्वर्ग लोक में जाते हैं तो क्या प्रद्यौ आकाश का नामही पितृलोक तथा स्वर्ग लोक है या ये दोनों लोक पृथक् हैं? यदि ये दोनों लोक पृथक् हैं तो आपका प्रथम लेख कि "पितर प्रद्यौ आकाश में रहते हैं" ग़लत साबित हुवा। और यदि एक ही हैं तो वे लोक तथा वहां का सामान किस वस्तु का बना हुवा है जब कि वहाँ किसी वस्तु के प्रमाणु तो पहुंच ही नहीं पाते। अतः आपकी प्रथम कल्पना तो सर्वथा निर्मूल है। रही दूसरी बात कि थोड़े पुण्य वाले जन्म लेते हैं और ईश्वर श्राद्ध का फल उनको उनही

योनियों में पहुंचा देता है सो श्रीमान् जी क्या पितरों को वही वस्तु मिलती है जो ब्राह्मणों को खिलाई जाती है या उनकी योनियों के अनुकूल खुराक बन कर पहुंचती है। यदि कहो कि वही वस्तु पहुंचती है। तो यदि पितर शेर आदि की योनि में हों और ब्राह्मणों खिलाई गई खीर पूरी सबजी आदि या पितर गौ आदि की योनि में गये हों और ब्राह्मणों को खिलाया गया हो मांस तो इन दोनों सूरतों में विप्रीत भोजन से पितर भूखे ही रहेंगे। और यदि वही नहीं पहुंचता अपितु उसके फलसे तदनुकूल पदार्थ मिलता है तो प्रथम तो यह कल्पना निरर्थक हो जाती है कि हमारे पितरों को फुला फुलां वस्तु भाति थी वही वस्तु देनी चाहिये। और भी लिखा है कि

अपिनः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्यच्छाये कुञ्जरस्य च ॥२७४॥
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्।
मात्सय हारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥३७॥
ऐणारौरववाराहशाशमांसैर्यथा क्रमम्।
मासवृद्ध्यापि तुष्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥३८॥

(गरुड० अचार० अ० ९९)

भाषार्थ—पितर चाहते हैं कि हमारे कुल में कोई ऐसा पैदा हो जो हमको त्रियोदशी को खीर शहद और घी से मिली हुई हाथी की छाया से पहले दे ॥२७४॥ हवन योग्य अन्न से एक मास खीर से एक वर्ष तथा मछली, हरिण, औरभ्र, पक्षी, बकरा, पार्षत, ऐणेय, रौरव, खरगोश के मांस से नंबरवार एक२ मास अधिक पितरों की तृप्ति होती है ॥३७—३८

यदि दी हुई वस्तु नहीं मिलती फल मिलता है तो इन वस्तुओं का विशेष विधान क्यूं किया गया है। और फिर गरुड में तो लिखा है कि

न पितुः कर्मणा पुत्रः पिता वायुत्रकर्मणा।
स्वयंकृतेत गच्छन्ति स्वयंबद्धाः स्वकर्मणा ॥२७॥
(गरुड० आचार० अ० ११३)

भूतपूर्वं कृतंकर्म कर्तारश्नुतिष्ठति।
यथाधेनुसहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम् ॥५४॥
(गरु० आचार० अ० ५)

क्व माता क्व विता मूढ़ जाया क्व सुतःसुहृत्।
स्वकर्मो पार्जितं भुंक्षव मूर्खयाता श्चिरंपथि ॥१०॥
गरु० प्रेत० अ० ५

अधिकारो यदा नास्ति यदि नास्ति च निश्चायः।
जीविते सति जीवायदद्याच्छाद्धं स्वयंनरः॥१०॥
(गरु० प्रेत० श० ८)

आत्मनश्च शुभं कर्मकर्तव्यं पारलौकिकम् ॥३४॥
विमुक्तः सर्व दुःखेभ्यो येनाञ्जोदुर्गतिं तरेत्।
भ्रातरः कस्य के पुत्राः स्त्रियोऽपिस्वार्थ को विदाः॥३५॥
न कार्यस्तेषु विश्रम्भःस्वकृतंभुज्यते यतः।
गृहेष्वर्था निवतन्ते श्मशाने चैव बांधवाः॥३६॥
शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सहव्रजेत्।
तस्मादाशु त्वया सम्यगात्मनः श्रेय इच्छता ॥३७॥
अस्थिरेण शरीरेणकर्तव्यञ्चौर्ध्वदेहिकम् ॥६८॥

(गरु० प्रेत० अ० ६

भाषार्थ— न पिता के कर्म से पुत्र न पुत्र के कर्म से पिता आप तु अपने किये हुये कर्मों से स्वयं बंधे हुये जाते हैं ॥२७॥ पूर्व किया कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है जैसे हज़ारों गौवों में से बछड़ा अपनी माँ को प्राप्त होता है ॥५४॥ हे मूढ़ ! कहां माता है कहां पिता है कहां स्त्री पुत्र और मित्र हैं ॥११५॥ जब अधिकार न हो और यदि निश्चय न हो तो जीते हुये ही स्वयं मनुष्य को अपने लिये श्राद्ध देना चाहिये ॥१०॥ परलोक के लिए अपने वास्ते शुभ कर्म करना चाहिये जिस से जीव सर्व दुःखों से मुक्त होकर दुर्गति को तर सके, भाई किसके हैं पुत्र कौन हैं स्त्रियें भी स्वार्थ में चतुर हैं ॥३४-३५॥ उनमें विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि मनुष्य स्वयं किये कर्म को भोगता है धन घर में ही रह जाते हैं बन्धु लोग शमशान में रह जाते हैं ॥३६॥ शरीर लकड़ीयों में रह जाता है पाप पुण्य किया हुआ साथ जाता है ॥३७॥ इस लिये तुझ को शीघ्रतया अपनी आत्मा के कल्यान की इच्छा से ॥३७॥ इस अस्थिर शरीर से परलोकार्थ कर्म करने चाहिये ॥३८॥

इन प्रमाणों से साफ साबित है कि कर्मों का फल कर्ता को मिलता है और एक दूसरे के कर्म का फल एक दूसरे को नहीं मिलता यही परमात्मा का नियम है। अतः परमात्मा कर्मों का फल करने वालों को देता है एक के कर्म का दूसरे को फल नहीं देता। यदि ऐसा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जावे। अतः मृत्तक पितरों के बारे में आप की सारी कल्पना मिथ्या है। इस मन्त्र में आकाश के तीन विभागों

का वर्णन नहीं है अपितु पृथिवी के तीन विभागों का वर्णन है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है।

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीतिमध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यांपितर आसते ॥४८॥

भाषार्थ—सबसे नीचे दर्जे की पृथिवी भोगमय तामसलोगों की रिहायश के कारण उदन्वती कहलाती है। बीच के दर्जे की भूमि कर्म फल संयुक्त राजस पुरुषों के निवास कारण पीलुमती कहाती है। तीसरे दर्जे की सब से उत्तम पृथिवी सात्विक वृत्ति वाले पालक पूज्य गुरु माता पिता साधु महात्माओं के निवास के कारण प्रद्यौ कहलाती है। ४८॥

इस मन्त्र में भी जीवित पितरों का ही वर्णन है मृतकों का नहीं। क्योंकि इसमें आकाश निवासी पितरों का वर्णन नहीं अपितु पृथिवी निवासी जीवित पितरों का वर्णन है॥

श्रीमान् जी आपके सिद्धान्तानुसार भी श्राद्ध करने से कोई लाभ नहीं है जसे कि—

एका दशाहे प्रेतस्य यस्यनोत्सृज्यते वृषः।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥१४॥
स्व हस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम् ॥२०॥

(गरु० प्रेत० अ० १३

देहान्तरं परिप्राप्य स्वहस्तेन कृतं चयत् ॥७॥
धनं भूमि गतं यद्वत् स्वहस्तेन निवेशितम्।
तुद्वत् फलमाप्नोति ह्यह वच्मि खगेश्वर ॥८॥
तस्मात् सर्वं प्रकुर्वीत चंचले जीविते सति।
गृहीतदानपाथेयः सुखंयाति महाध्वनि ॥१२॥

अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ॥१३॥

गरु० प्रेत० अ० १४

भाषार्थ—ग्यारहवें दिन जिस प्रेत का बैल न छोड़ा जाय वह प्रेत योनि में स्थिर हो जाता है चाहे सैंकड़ों श्राद्ध भी करो ॥१४॥ अपने हाथ से दिये हुये दान का मरने के पीछे अक्षय फल होता है ॥२०॥ दूसरे जन्म को प्राप्त होकर अपने हाथ से जो कर्म किया हुआ है ॥७॥ जैसे अपने हाथ से रक्खा हुआ भूमि में दबा हुआ धन फल देता है वैसे ही अपने हाथ से किया कर्म फल देता है ॥८॥ इस लिये सब कुछ इस चंचल जीवन के रहते हुये करना चाहिये दान रूप मार्ग भोजन लेकर जीव दीर्घ मार्ग में सुख पाता है ॥ २॥ वरना जीव ऐसे ही दुःख पाता है जैसे मुसाफिर खर्च के बिना रास्ते में दुःख उठाता है ॥१३॥ अतः साफ साबित है कि अपना किया कर्म ही परलोक में काम आता है अन्य के कर्म का फल अन्य को नहीं मिल सकता अतः मृत्तक श्राद्ध निरर्थक तथा जीवित श्राद्ध सार्थक है।

(४२६) प्रश्न—"इममोदनमित्यादि अथर्व० ४।३४।८" इस मंत्र में पितरों को पहुंचाने तथा तृप्त करने के लिये ब्राह्मणों को भी भोजन कराना लिखा है। पृ०२९१ प० २५।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो श्राद्ध शब्द है और न ही पितुर शब्द मौजूद है। आप के अर्थों के अनुसार भी यह सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मणों को कराया हुआ भोजन मृत्त पितरों की तृप्ति करता है अपितु आप के अर्थ से भी भोजन कराने वाले को ही फल की प्राप्ति लिखी है जैसा कि "और कामधेनु

के समान मुझ को समस्त मनोवांछित फल दे" इस में हमें भी मत भेद नहीं है क्योंकि विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण ही ज्ञान द्वारा रक्षा करने के कारण स्वयं साक्षात् पितर हैं उनको भोजन आदि से प्रसन्न करने से वे हमारी ज्ञान द्वारा रक्षा करेंगे। फिर इससे तो जीवित श्राद्ध ही सिद्ध हुआ मृतक नहीं, वास्तव में इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है। आपको ओदन शब्द से भ्रम हुआ है। ओदन शब्द का केवल अन्न ही अर्थ नहीं है।

परमेष्ठी वा ऐष यदोदनः। तै० १। ७। १०। ६॥
प्रजापतिर्वा ओदनः॥ शत० १३। ३। ९। ७॥
रेतोवा ओदनः॥ शत० १३। १। १४। ४॥

भावार्थ—परमेष्ठी का नाम ओदन है (तै०) प्रजापति का नाम ओदन है (शत०) वीर्य का नाम ओदन है (शत०) इस मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
समेमाक्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा
मे अस्तु॥ अथर्व० ४।३४। ८॥

भावार्थ—मैं इस सर्वव्यापक सुखमय मोक्ष रूप समस्त लोकों को जीतने वाले ओदन नाम प्रजापति ब्रह्म को ब्राह्मणों अर्थात् ब्रह्म ज्ञानियों में उपदेश करता हूं। अमृत से समस्त मुक्तात्माओं को तृप्त करने वाला वह ओदन प्रजापति का स्वरूप मुझ ममुक्षु के लिये नष्ट न हो प्रत्युत मुझ मुमुक्षु के लिए वह प्रजापति प्रमेष्ठी ब्रह्म सब प्रकार की कामधेनु होकर समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारी हो॥८॥

कहिये महाराज ! जब आप मानते हैं कि गंगा में अस्थि प्रवाह से मृत्तक की मोक्ष हो जाती हैं। तो फिर श्राद्धों का अन्न खाने के लिये पितरों को क्यों कष्ट दिया जाता है। क्या उसकी मोक्ष में संदेह रहता है। फिर आप आचार्य्य निवेडना पीपल पर पानी का घड़ा लटकाना बरनी करवाना आदि अनेक मोक्ष के उपाय करते हैं। तो क्या इन उपायों से पितरों की मोक्ष नहीं होती जो फिर भी श्राद्ध की अवश्यक्ता रहती है और फिर गरुड़ में तो लिखा है कि—

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीतिकुबुद्धिरेषा।
पुराकृतं कर्म सदैव भुज्यतेदेहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्

( गरु० प्रेत अ० १५। ८९ )

भाषार्थ—सुख दुःख का कोई दाता नहीं है। दूसरा सुख दुःख देता है यह बेवकूफी है। सदा जीव पूर्व किये कर्म भोगता है। हे जीव ! तूने जैसा किया है उसे भोग ॥८९॥

जब दूसरे से सुख दुःख मिलता ही नहीं तो मृत्तक श्राद्ध व्यर्थ हैं और फिर आपको भोजन पहुंचाने की ज़रूरत ही क्या है क्योंकि—

श्लेष्म मूत्रपुरोषोत्थं शरीराणां मलैः सह।
उच्छिष्टैश्चैव चान्यैश्च प्रेतानां भोजनं भवेत् ॥५५॥
गृहाणि चाप्यशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणिच।
मलिनानि प्रसूतानि प्रेता भुंजन्ति तत्रवै ॥५६॥
भर्तृहीना चयानारी परवीर्यं निषेवते।

बीजं मूत्र समायुक्तं प्रेता भुंजंतितत्तुवै ॥६१॥
यत्स्त्रीरजो योनिगतं प्रेता भुंजंतितत्तुवै ॥६२॥

(गरु० प्रेत० अ० २२)

भावार्थ—बलग़म, मूत्र, पाखाना, शरीर के मल, नाक कान, आंख; मुख, त्वचा से पैदा हुये, उच्छिष्ट, ये प्रेतों के भोजन हैं ॥५५॥ अशुद्ध घर, जो कूड़े से भरे हों, प्रसूत स्थान, मलीन स्थान, वहां बैठ कर प्रेत भोजन करते हैं ॥५६॥ जो स्त्री पति से हीन होकर दूसरे के वीर्य का सेवन करती है वह वीर्य मूत्र से मिला हुआ प्रेत भोजन करते हैं ॥६१॥ जो स्त्री का रज योनि में वर्त्तमान हो उसे प्रेत भोजन करते हैं॥६२॥

जब प्रेतों का यही भोजन है तो वे इस भोजन की स्वयं तलाश कर लेंगे। या आप को ही तलाश करके पहुंचाना पड़ेगा सोच कर निश्चय कर लीजिये। शरम, शरम, शरम, अति शरम।

(४२७) प्रश्न—"यं ब्राह्मणो इत्यादि अथर्व० ६।५।१६" इस मन्त्र में अग्नि से प्रार्थना है कि जो अन्न हम ने ब्राह्मणों को खिलाया है वह हमारे पितरों को पहुंचाओ। "यस्यास्येने त्यादि मनु० १।९५" में भी लिखा है कि ब्राह्मण के मुख से देवता हव्य तथा पितर कव्य खाते हैं। ब्राह्मणों को पितृ अन्न का खिलाना और उन के द्वारा उस अन्न का फल पितरों को मिलना जो वेद ने बतलाया है यह मृत्तक श्राद्ध को ही सिद्ध करता है। पृ० २९२ पं० ७।

उत्तर— इस मन्त्र में न तो कहीं पितर शब्द है और न ही इस मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण का किया भोजन मृत्त पितरों को मिलता है और आप का अर्थ भी

सर्वथा कल्पित है। आप भोजन तो प्रोस रहे हैं ब्राह्मणों के आगे और पहुंचाने की प्रार्थना कर रहे हैं अग्नि से। भला ब्राह्मण का खाया हुआ अग्नि कैसे पहुंचावेगा। जो भोजन बनाने में बिन्दु उड़े क्या वह भी पितरों को पहुंच जाते हैं। यदि वे बिना ब्राह्मणों के ही पहुंच जाते हैं तो भोजन भी बिना ब्राह्मणों के पहुंच जाता होगा। आप "उदन्वती" मन्त्र के अर्थ में लिखते हैं कि "जो पितर स्वर्ग में जाते हैं उन का आवाहन वेद ने लिखा है" जब वे पितर स्वयं आकर भोजन करते हैं तो फिर उन को ब्राह्मणों द्वारा भोजन क्यों पहुंचाया जाता है यह आप के लेख में परस्पर विरोध है। अतः आप का अर्थ सर्वथा कल्पित है। मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

यं ब्राह्मणे निदधे यंचविक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वंतदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः सङ्गमनेपथीनाम् ॥१६॥
( अथर्व ९।५ )

भाषार्थ—जिस अज आत्मा को परमेश्वर ने ब्रह्म वेद के विद्वान् ब्रह्म ज्ञानी में रक्खा है और जिस आत्मा को उस प्रभु ने सर्व साधारण प्राणियों में रक्खा है, और उस अजन्मा आत्मा के ओदन रूप प्राणों के जो विशेष सामर्थ्य हैं। हे परमात्मन्! उस सब को पुण्य के उस परम मोक्ष लोक में और समस्त प्राण शक्तियों के एकत्र प्राप्ति से हमें प्राप्त करने की अनुमति देना, अर्थात् मोक्ष धाम में भी ये सब सामर्थ्य हमारे पास रहें। जिससे मोक्ष के परम सुख का हम स्वतन्त्रता से रस ले सकें ॥१६॥

रही मनु की बात, सो आपके समझने की भूल है। यहां आस्य के अर्थ मुख नहीं, अपितु उपदेश है क्योंकि ब्राह्मण के उपदेश से ही लोग देवयज्ञ और पितृ यज्ञ करते हैं। आपके अर्थ ग़लत हैं क्योंकि आपके मतानुसार भी पितर ब्राह्मण के मुख से भोजन नहीं करते, अपितु स्वयं आकर अपने मुख से करते हैं या दूसरी योनियों में भी अपने ही मुख से करते हैं। और हव्य तो हवन करने से देवों को पहुंचता है जैसे कि—

होमैर्देवान् यथा विधि ॥ मनु०३। ८१॥

होमों से यथाविधि देवों की पूजा करे ॥८१॥

तो क्या ब्राह्मण के मुख में हवन किया जा सकता है। अतः आपका अर्थ ग़लत और हमारा ठीक है कि ब्राह्मण के उपदेश से ही लोग होम करके देवों को और श्राद्धों से जीवित पितरों की सेवा से पितरों को प्रसन्न करते हैं और उपदेश मुख से होता है। अतः यहाँ पर उपदेश के अर्थों में ही लाक्षणिक रूप से आस्य शब्द आया है। अतः सिद्ध है कि मृतक पितरों की कल्पना तथा ब्राह्मणों द्वारा उनकी तृप्ति वेद विरुद्ध तथा मिथ्या है।

यदि ब्राह्मणों के भोजन से मृत्तकों की तृप्ति हो जाती तो राजा श्वेत को अन्नदान के लिए स्वर्ग से वापिस क्यों आना पड़ता जैसा कि—भविष्य पुराण में आता है कि—श्वेत नाम का एक राजा था। उसने बहुत से यज्ञ तथा युद्ध किये तथा दान दिये। वह मर कर स्वर्ग में गया।

सच नित्यं वितानाग्र्यादवतीर्य महीतलम्।
स्वमांसान्यत्ति कौन्तेयपूर्वं त्यकत्वा कलेवरम् ॥१६॥

वह हमेशा स्वर्ग से उतर कर पृथिवी पर अपना मांस खाता था। अपना पहिला शरीर छोड़ आता था ॥१६॥ वह कभी ब्रह्म के पास गया। और पूछा कि स्वर्ग में मुझे भूक बड़ा कष्ट देती है। जिससे मुझे अपना मांस खाना पड़ता है। ब्रह्मा ने कहा—हे श्वेत!

नाशनं भवता दत्तं यद्विद्वज्जेभ्योनराधिप ॥२१॥
अनन्नदानस्य फलं त्वयेदमुपभुज्यते ॥२२॥
महींगत्वा महाराज कुरुष्व वचनं मम ॥२३॥
विरंचे र्वचनाद्गत्वात्वरायुक्तो महीतलम्।
अगस्त्य भोजयामास भक्त्या भरत सत्तम ॥२५॥
श्वेतस्तृप्तो गतः स्वर्गं दत्त्वान्नं दक्षिणायुतम् ॥२७॥
(भविष्य० उत्तर० अ० १६९)

आप ने ब्राह्मणों को भोजन नहीं दिया ॥२१॥ यह आप अन्न दान न करने का फल भोग रहे हैं ॥२२॥ हे महाराज! पृथिवी पर जाकर मेरे वचनानुसार करो ॥२३॥ ब्रह्मा के कहने अनुसार शीघ्रता से पृथिवी पर जाकर भक्ति से अगस्त्य को भोजन करवाया ॥२५॥ दक्षिणायुक्त अन्न दान करके तृप्त होकर श्वेत स्वर्ग को गया ॥२७॥ इस कथा से साबित कि श्वेत का कर्म किया श्वेत को मिला अन्य का किया नहीं अतः कर्म का फल कर्ता को ही मिलता है। अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं मिलता।

(४२८) प्रश्न—पिता प्रेतः इत्यादि काठीय श्रौत सूत्र में तथा पिता यस्य इत्यादि मनु० ३।२२१ में भी मृत्त पितरों के श्राद्ध की ही विधि लिखी है पृ० २९३ पं० १।

उत्तर—काठीय श्रोत सूत्र तथा मनु के ये दोनों ही लेख वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण हैं। क्योंकि वेद जीवित पितरों की सेवा का ही वर्णन करते हैं मृत्तकों की सेवा का नहीं जसा कि—

आसीनासो अरुणी नामुपस्थे रयिंधत्तदाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्यवस्वः प्रयच्छतत इहोर्जं दधात॥
(यजु० १९। ६३)

भाषार्थ—हे पितरो! हवि देने वाले मनुष्य यजमान के लिये आप धन देवें। आप कैसे हैं। लाल रंग के ऊन के आसनों पर बैठे हुये। और हे पितरो! आप पुत्र और यजमानों से उस धन का धारण करो। और वे आप इस संसार में हमारे यज्ञ में रस धारन करो॥६३॥ (महीधर)

ऊन के लाल आसनों पर बैठना और यजमान को धन देना तथा उन से धन लेना और यज्ञ में रस धारन करना जीवित पितरों से ही संभव हो सकता है मृत्तकों से नहीं। अतः मृत्तक पितरों का श्राद्ध वेद विरुद्ध तथा जीवितों का श्राद्ध वेदानुकूल है।

कहिये महाराज! यह श्राद्ध तीन पुश्त तक ही क्यों दिया जाता है इस से ऊपर की पीढी के लिये क्यों नहीं दिया जाता क्या तीन पीढ़ी से ऊपर के पितरों की अवश्य ही मोक्ष हो जाती है वास्तव बात तो यह है कि पितरों का तीन पीढ़ी तक ही प्रायः जीवित रहना संभव है अधिक पीढी तक नहीं। अतः पौराणिक ग्रन्थों में पिता पितामह प्रपितामह इन तीन पीढी तक ही श्राद्ध का प्रति पादन सिद्ध करता है कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही है मृत्तकों का नहीं है।

(४२६) प्रश्न—"अधामृता इत्यादि अथर्व० १८।४।४८" में लिखा है कि मृतक पुरुष ही पितृ स्वरूप को प्राप्त होते हैं। पृ० २६३पं०१२।

उत्तर—यहां पर परमेश्वर से प्रार्थना है कि हे परमेश्वर! अधामृताः पितृषु संम्भवन्तु ॥ अथर्व० १८।४। ४८॥

(अध) और (पितृषु) हमारे पितरों में (अमृताः) अमृत अर्थात् मृत्यु को प्राप्त न होने वाले (संभवन्तु) सदा होते रह ॥ ४८ ॥ यहाँ तो स्पष्ट प्रार्थना है कि हमारे अध्यापक ज्ञानी पालक पोषण करने वाले पितरों में बड़ी आयु को प्राप्त होने वाले हों। यहाँ पर भी जीवित पितरों की दीर्घायु के लिये ही प्रार्थना है मृत्तकों का वर्णन नहीं है।

श्रीमान् जी! आपने मृतकों की पूजा सिखा सिखा कर देश तथा जाति को मृतक ही बना दिया। जो लोग मुरदों से डरें उनसे क्या आशा की जासकती है वे जीवितों से लड़कर स्वराज्य प्राप्त करेंगे देखिये लिखा भी है कि—

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम्।
मृतेभ्यःप्रमृता यान्ति दरिद्राः पाप कर्मिणः" ॥ ३ ॥
(महा० शान्ति० अ०३२२)

भाषार्थ—पाप कर्मों के करने वाले दरिद्री लोग दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष को, क्लेश से क्लेश को, भय से भय को तथा मृतकों से मुरदा अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अतः आपने ही इस देश को मृतक बनाकर बर्बाद किया है

(४३०) प्रश्न—वेद में श्राद्ध के कम से कम ७०मंत्र हैं। जिन में मृतक पितृ श्राद्ध का उल्लेख है। जिनको सब देखने हों

वे यजुर्वेद का अध्याय १९ तथा अथर्ववेद का कांड १८ देखें पृ० २९३ पं० १४।

उत्तर—चारों वेदों में न तो श्राद्ध शब्द है और न ही वेद में कोई मन्त्र ऐसा है जो यह प्रतिपादन करता हो कि मृतक पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को भोजन कराने से मृत पितरों की तृप्ति होती है हां जीवित पितरों अर्थात ज्ञानी महात्मा जनक माता पिता आदि की सेवा का उपदेश वेद करते हैं। मृतकों की पितर संज्ञा ही नहीं है। और कर्मों का फल कर्ता को मिलता है। अन्य के कर्मों का फल अन्य को नहीं मिल सकता। यही वेद का सिद्धांत है। जिसे विस्तार पूर्वक देखना हो वह वेदों का आर्य्यसमाज से प्रकाशित भाष्य पढ़े जो ब्राह्मण निरुक्त तथा व्याकरण के अनुकूल है।

(४३१) प्रश्न—"*जीवितों का श्राद्ध करना मृत्तकों का नहीं*" इस की पुष्टि में स्वामी जी ने कोई प्रमाण भी नहीं लिखा। केवल हुक्म लिख दिया और हुक्म लिख कर सात सौ वेद मन्त्रों का गला घोंट डाला है। पृ० २९४ पं० २४।

उत्तर—स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का के पितृ यज्ञ प्रकरण में "जीवितों का श्राद्ध करना चाहिये मृत्तकों का नहीं" इस की पुष्टि में "ऊर्जंवहन्ति" "आयन्तु नः" "अत्रपितरो" "आधत पितरः" "ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु" इत्यादि अनेकों मन्त्र दिये हैं। और उन मन्त्रों तथा युक्तियों के आधार पर हुक्म दिया है। और यह युक्ति युक्त वेदानुकूल हुक्म देकर सात सौ मन्त्रों को अनृतव्याघात दोष से मुक्त करके लोगों के हृदयों में वेद का सिक्का बिठा दिया है। यदि आपको यह

प्रमाण नजर न आवें तो हमारा क्या कसूर है। और मृत्तक श्राद्ध का खंडन तो आपके पुराणों में भी मौजूद है जैसे कि—

## जोते को पितर

(१) अज्ञं हिबालमित्याहुः पितेत्येव तु मंत्रदम् ॥६५॥
पितामहेति जयमित्यूचुस्ते दिवौकसः ॥६६॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४)

(२) इत्येवं क्षत्रिय पिता वैश्यस्य च पिता महाः।
प्रपिता महश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विप्रो मनीषिभिः ॥६६॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४)

## मृतक अन्न पाप

(३) मृतान्नं मधुमाँसं च यस्तु भुंजीत ब्राह्मणः।
स त्रीण्य हान्युपवसेदेकाहं चोद के वसेत् ॥५९॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ०१८४)

## पितर सन्तान से तृप्त

(४) ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञ क्रियाध्वना।
पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत् ॥२६॥
(शिव० कैलास० अ० १२)

## ऋतु का नाम पितर

(५) ऋतवः पितरस्तस्मादित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
यस्माद तुषु सर्वे हि जायंते स्थास्नुजंगमाः ॥४५॥
(शिव० वायु० खं०१ अ० १७)

## अपना श्राद्ध

(६) मातृश्राद्धे मातृ पिता मह्यौ च प्रपितामही।
आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृ पिता महौ ॥४१॥
(शिव० कैलास० अ० १२)

## जीतों को तर्पण

(७) पानियदानं परमं दानाना मुत्तमं सदा।
सर्वेषां जीव पुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम् ॥१॥
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्ती ह मानवान्।
इहलोके परं चैव पुत्रास्ते धर्मतःस्मृताः॥२१॥
(शिव० उमा० अ० १२)

## जीवित के लिए पिंड

(८) चाण्डालोच्छिष्ट पिण्डेन जठराग्निमर्तयत् ॥२१॥
(शिव० कोटि रुद्र० अ० ६)

(९) रे रे दैत्याधम सखे परपिण्डोपजीवक ॥ ३३ ॥
(शिव० रुद्र० युद्ध० अ० ५३)

## विवाह में श्राद्ध

(१०) स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रंते गमिष्यामः स्वालयम्।
श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत ॥ १६ ॥
स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः ॥ २१ ॥
(वाल्मी० बाल० स० ७२)

## अपना किया मिलता है

(११) स्वयं कृतानि कर्माणि जातो जन्तुः प्रपद्यते।
नाकृत्वालभते कश्चित् किंचिदस्ति प्रियाप्रियम ॥३१॥
(महा० शान्ति० अ० २६८)

## किये कर्मका नाश नहीं

(१२) निरंतरं च मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव।
कल्याणं यदि वा पापंनतु नाशोऽस्यविद्यते ॥ १६॥

## किसी का कर्म किसी को नहीं मिलता

नायं परस्य सुकृतंदुष्कृतं चापि सेवते ।
करोतियादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥११॥
( महा० शा० अ० २६० )

## कोई किसी के लिये नहीं करता

( १३ ) कः कस्य चोप कुरुतेकश्च कस्मै प्रयच्छति ।
प्राणी करोत्ययं कर्म सर्वमात्मार्थमात्मना ॥१॥
( महा० शा० अ० २६२ )

## कर्म फल कर्ता को

( १४ ) यथा धेनु सहस्रेषु वत्सोविंदति मातरम् ॥२२॥
एवं पूर्व कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ २३ ॥
( महा० अनु० अ० ७ )

## कोई किसी का माता पिता नहीं

( १५ ) न माता न पिता किंचित् कस्यचित् प्रतिपद्यते ।
दानपथ्यो दनो जन्तुः स्वकर्मफल मश्नुते ॥४०॥
( महा० शां० अ० २६८ )

## कलिमें श्राद्ध निषेध

( १६ ) न श्राद्धै स्तपीयिष्यन्ति देवतानीह मानवाः ॥४७॥
( महा० वन० अ० १६० )

भाषार्थ—(१) अज्ञानी का नाम बालक है और मंत्र देने वाले का नाम पिता है और उन देवताओं ने जय नाम ब्राह्मण को पितामह कहा है (२) इस प्रकार से ब्राह्मण क्षत्रिय का पित, वैश्य का पितमह तथा शूद्र का प्रपितामह, बुद्धि मानों ने

कहा है (३) मुरदे के निमित्त अन्न शराब और मांस जो ब्राह्मण खावे वे तीन दिन उपवास करे और एक दिन पानी में रहे (४) ब्रह्मचर्य से मुनि तृप्त होते हैं यज्ञ करने से देवता तथा सन्तान पैदा करने से पितर तृप्त होते हैं यह वेद का वचन है (५) मौसमों का नाम पितर है यह वेद की श्रुति है जिस कारन ऋतुओं में सारे जड़जंगम पैदा होते हैं (६) माता के श्राद्ध में माता दादी तथा प्रदादी मानी जाती हैं और अपने श्राद्ध में द्यार आत्मा पितामह प्रपितामह माने जाते हैं। (७) पानी का दान सब दानों में परम उत्तम है। क्योंकि सब जीव समूह तो तर्पण करने वाला तथा सब की ज़िन्दगी है। ये वृक्ष भी फूल फल से युक्त मनुष्यों का तर्पण करते हैं। इस लोक में और परलोक में भी इस लिये ये धर्म्म से पुत्र हैं (८) उसने चांडाल के झूटे पिंड अर्थात् भोजन से पेट की अग्नि को तर्पण अर्थात् तृप्त किया (९) हे दैत्य हे अधम के मित्र हे पराये पिंड अर्थात् अन्न से जीने वाले (१०) राम के विवाह समय जनक बोला कि आप का कल्याण हो हम विधिपूर्वक श्राद्ध कर्म करने के लिये जाते हैं। राजा ने घर पर जाकर श्राद्ध किया (११) पैदा हुआ जीव स्वयं किये कर्मों को प्राप्त होता है बिना किये कोई कुछ भी प्रिय अप्रिय को प्राप्त नहीं होता (१२) हे राजन् निरन्तर और मिश्रत कर्मों को मनुष्य प्राप्त होता है चाहे कल्याण चाहे पाप, कर्मों का नाश नहीं होता। ये जीव दूसरे के पुण्य और पाप को सेवन नहीं करता जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है (१३) कौन किस का उपकार करता है कौन किस के लिये देता है यह प्राणी सारा कर्म स्वयं अपने लिये करता है

(१४) जसे हज़ार गौवों में से बछड़ा अपनी माता को प्राप्त होता है ऐसे ही पूर्वकृत कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है। (१५) कोई किसी का न माता है न पिता है दान रूप मार्ग व्यय रखने वाला जीव अपने कर्म के फल को भोगता है (१६) कलियुग में इस संसार में मनुष्य देवता पितरों का श्राद्धों से तर्पण नहीं करेंगे।

देखिये इन प्रमाणों से साबित है कि जीवों में कोई किसी का मात पिता नहीं, किया कर्म नाश नहीं होता, कर्म का फल कर्ता को मिलता है किसी के कर्म का फल किसी को नहीं मिलता पितर ज्ञानियों तथा ऋतुओं का नाम है, पितर सन्तान से तृप्त होते हैं, पिंड शब्द अन्न अर्थ में तथा श्राद्ध शब्द जीतों के लिये और विवाह में भी आता है और तर्पण शब्द जीतों के लिये आता है। मृत्त का अन्न खाना पाप है। तथा अन्त में यह भी सिद्ध है कि कलियुग में श्राद्ध न होंगे यह पुराणों की व्यवस्था है। फिर अब बतालाइये कि स्वामी जी मृत्तक श्राद्ध का खण्डन करते हैं या आपके ग्रन्थ भी इस प्रकार के मृत्तक श्राद्ध की धज्जियां उड़ा रहे हैं।

( ४३२ ) प्रश्न—यहां पर "सोमसदः" पद का अर्थ किया कि जो पदार्थ विद्या में निपुण हैं वे सोमसद पितर हैं। स्वामी जी जानते हैं कि आज कल योरुप वाले पदार्थ विद्या में निपुण हैं। इस लिये योरुप वालों का श्राद्ध तर्पण लिख दिया। पृ० २६५ पं० १८।

उत्तर—आपने स्वामी जी के किये अर्थ को पूरा नहीं लिखा बीच में से पाठ को चुरा लिया है देखिये स्वामी जी के अर्थ इस प्रकार से हैं कि—

ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थं विद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः"
"जो परमात्मा और पदार्थ विद्या में निपुण हों वे सोमसद"

बतलाइये इसमें आपको क्या शंका है। जो ब्रह्म विद्या और पदार्थ विद्या में निपुण हों वे वास्तव हमारे पिता हैं चाहे वे योरुप के रहने वाले हों चाहे अमरीका और भारत वर्ष के रहने वाले हों जो इन दो विद्याओं द्वारा हमारी रक्षा करें वे हमारे सोमसद पितर हैं। आप में हिम्मत हो तो स्वामी जी के अर्थों का खंडन करें। और साथ में यह भी बतलावें कि मृत्तक पितरों में से किन का नाम "सोमसद" पितर है कुछ अपना पक्ष भी तो बतावें आपके यहां तो सोमसदों के मनुष्यों का पितर ही नहीं लिखा देखिये—

विराट सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥१९५॥
(मनु० ३)

"सोमसद विराट के पुत्र हैं और वे साध्यों के पितर हैं ॥१९५॥ अब बतलाइये जब वे मनुष्यों के पितर ही नहीं तो मनुष्य उन का तर्पण श्राद्ध क्यों करें। अतः स्वामी जी का लेख ठीक है कि जो लोग ब्रह्म विद्या तथा पदार्थ विद्या द्वारा हमारी रक्षा करें। वे हमारे सोमसद पितर हैं और उन की सेवा सुश्रूषा श्रद्धा पूर्वक अन्न जल प्रदान से उन का श्राद्ध तर्पण करना हमारा कर्तव्य है।

(४३३) प्रश्न—जो अग्नि विद्या में निपुण हैं वे अग्निष्वात पितर हैं इस नियम से हलवाई, लुहार, इंजन के ड्राईवर, भड़भूंजे, यह सब आर्य्य समाजियों के पितर होंगे।

पृ० २९५ पं०२३।

उत्तर—आप ने यहां भी अपनी आदत के अनुसार स्वामी जी के अर्थों को चुरा लिया है देखिये स्वामी जी लिखते हैं कि—

"यैरग्ने विद्युतो विद्या ग्रहीता ते अग्निष्वाताः" "जो अग्नि अर्थात् विद्यादादि पदार्थों के जानने वाले हों वे अग्निष्वात्त" स्वामी जी का लेख साफ है कि जो लोग अग्नि अर्थात् बिजली आदि से अग्नि अर्थात् ब्रह्मविद्या अग्नि होत्र आदि विद्याओं में निपुण होकर उन द्वारा हमारी रक्षा करें वे हमारे "अग्निष्वात्त" पितर हैं। उनकी सेवा सुश्रुषा अन्न जल फल आदि द्वारा उन का श्राद्ध तथा तर्पण करना हमारा कर्तव्य है। किंतु आप बतलावें कि आपको इस में शंका क्या है। आप के विचार में मृत्तकों में से अग्निष्वात्त किन पितरों का नाम है। और उनमें सोमसद आज्यपा आदि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है। यदि आप कहें कि अग्नि में जले हुओं का नाम अग्निष्वात्त है तो यह ठीक नहीं क्योंकि जीव तो अग्नि में जलता नहीं और शरीर आकर भोजन नहीं कर सकता फिर बताइये अग्निष्वात्त पितर कौन हुये। स्वामी जी के अर्थों का खण्डन करके अपने अर्थों को सत्य साबित कीजिये। आप के हां तो अग्निष्वात्त कौन हैं यह निश्चय ही नहीं है। देखिये मनु में तो लिखा है कि—

अग्निष्वात्ताश्चदेवानां मारीचा लोक विश्रुताः ॥१९५॥

(मनु० ३)

"अग्निष्वात्त" मरीचि के पुत्र हैं और वे देवों के पितर हैं और शिवपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा पुत्री पर आशिक

हो गया और महादेव ने इस कुकर्म पर उसे डांटा तो ब्रह्मा को पसीना आगया उस पसीने से अग्निष्वात्त पितर पैदा हुआ देखिये ब्रह्मा जी स्वयं फरमाते हैं कि—

मच्छरीरात्तु धर्माभो यत्यपात द्विजोत्तम।
अग्निष्वाताः पितृगणा जाताः पितृगणास्ततः ॥४८॥
सहस्राणि चतुः षष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः ॥५०॥

(शिव० रुद्र० सती० अ० ३)

मेरे शरीर से जो पसीने का जल गिरा उससे अग्निष्वात्त, पितर तथा और भी पितृ समूह पैदा हुवे ॥४८॥ चौंसठ हजार अग्निष्वात्त पितर पैदा हुवे ॥५०॥

मनु तो कहते है कि मनु के पुत्र मरीचि उनके पुत्र अग्निष्वात्त और शिव पुराण कहता है ब्रह्मा के पसीने से पैदा हुवे तथा आप कहते हैं कि अग्नि में जलाये हुवों का नाम अग्निष्वात्त है। तीनों में से कौन सच्चा और कौन झूटा है यह आप स्वयं फ़सला करें। किन्तु जब अग्निष्वात्त देवों के पितर हैं तो मनुष्य उनका श्राद्ध तर्पण क्यों करें। इस से साबित है कि स्वामी जी का अर्थ ठीक और आपका मत ग़लत है। रहा आपका यह कहना "कि इस नियम से हलवाई, लुहार, इंजन ड्राइवर तथा भड़भूजे आर्य्यों के पितर होंगे" सो श्रीमान् जी हम तो यह समझते हैं कि ये लोग भी देश की सेवा कर रहे हैं। यदि ये लोग भी अपनी २ विद्या द्वारा हमारी रक्षा करें तो हमें इन के पितर मानने में कोई शंका नहीं हैं। हमें यह संतुष्टि है कि ये पितर कम से कम उन पितरों से तो अवश्य श्रेष्ठ हैं कि जो पुत्री के आशिक के शरीर से पैदा शुदा हों—

(४३४) प्रश्न—बर्हिषद का अर्थ किया है जो उत्तम व्यवहार में निपुण हों। कौन हैं उनका पता नहीं बतलाया संभव है कि पौलसी बाजों को आर्य्य समाजियों के पितर बनाया हो। पृ० २६५ पं० २८।

उत्तर—यहां भी आपने स्वामी जी के पाठ को चुरा लिया है। स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि "ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्या बुद्धि युक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद इसके अर्थ स्पष्ट हैं कि जो लोग विद्या की बृद्धि के विषय में युक्त व्यवहार करनेवाले आचार्य्य, उपाध्याय, अध्यापक, उपदेशक साधु सन्यासी महात्मा हैं और वे विद्या तथा ज्ञान से हमारी रक्षा करने हेतु हमारे पितर हैं और हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी सेवा शुश्रूषा तथा अन्न जल आदि श्रद्धा पूर्वक उनका श्राद्ध और तर्पण करें। आपने यह नहीं बतलाया कि आपके मतानुसार मृत्तक पितरों में से बर्हिषद कौन पितर हैं, और उनमें सोमसद अग्निष्वात्त आदि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है। आपके यहां इनके बारे में भी मत भेद है देखिये मनु जी तो कहते हैं कि—

दैत्य दानव यक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सुपर्ण किन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः॥१९६॥
(मनु० ३)

भाषार्थ—दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर, इन सब के पितर अत्रि के पुत्र बर्हिषद हैं॥१९६॥ और शिव पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा की पुत्री

पर आशिक होने तथा महादेव के डांटने पर जो ब्रह्मा को पसीना आया उससे जहां चौंसठ हज़ार अग्निष्वात्त पैदा हुए वहां—षडशीति सहस्राणि तथा बर्हिषदो मुने ॥५०॥

( शिव० रुद्र० सती० अ० ३)

छियासी हजार बर्हिषद पैदा हुए ॥५०॥ अब कहिए महाराज ! इन दोनों लेखों में से कौनसा ठीक है । बर्हिषद पितर ब्रह्मा के पुत्र थे या अत्रि के । और फिर जब ये दैत्य आदि के पितर हैं तो दूसरे लोग इनका श्राद्ध तर्पण क्यों करें । रही बात पौलीसी बाज़ों की सो यदि वे ईमानदारी से काम करें । अनाथों तथा विधवाओं की सहायता करें । और व्यापार द्वारा देश को लाभ पहुँचायें तो उन के पितर होने में किसे संन्देह होसकता है अतः स्वामी जी के अर्थ ठीक हैं और आपका अपने पक्ष को पेश न करते हुवे केवल वितण्डावाद व्यर्थ ही है ।

(४३५) प्रश्न—सोमपा का अर्थ डाक्टर किया । भारत वर्ष में जितने भी डाक्टर हैं वे सब आर्य्य समाजियों के पितर हैं । पृ० २९५ पं० २८ ।

उत्तर—आप ने यहां भी स्वामी जी की इबारत को नहीं लिखा अपनी ही मन घड़न्त इबारत लिख डाली । देखिये स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि "ये सोममैश्वर्यमोषधिरसंवा पान्ति पिबन्ति वा तेसोमपा" जो ऐश्वर्यके रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधोंको देके रोग नाशक हों वे 'सोमपा' । कैसी साफ इबारत है कि जो लोग अपने और हमारे ऐश्वर्य

की रक्षा करने वाले राजाधिकारी तथा स्वयं महौषधि रस पान करके रोग रहित तथा औषधि सेवन करवा कर हमारी रोगों से रक्षा करने वाले देश हितैषी वैद्य डाक्टर आदि हैं, वे हमारे पितर हैं। और हमारा कर्तव्य है कि हम सेवा सुश्रूषा तथा अन्न जल फलादि द्वारा उनका श्राद्ध और तर्पण करें। किंतु आप भी तो बतलावें कि मृत्तक पितरों में से सोमपा कौन से पितर हैं और उन में सोमसद् अग्निष्वात बर्हिषदादि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है। आप के हां तो लिखा है कि—

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणांतु सुकालिनः ॥१९७॥
सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥१९८॥
(मनु० ३)

भाषार्थ—सोमपा नाम के पितर ब्राह्मणों के हैं, और क्षत्रियों के पितर हविर्भुज हैं, वैश्यों के पितर आज्यपा नाम वाले हैं तथा शूद्रों के पितर सुकाली नाम वाले हैं ॥१९७॥

सोमपा पितर कवि के पुत्र हैं और हविर्भुज पितर अंगिरा के पुत्र हैं, आज्यपा नाम के पितर पुलस्त्य के पुत्र हैं, और सुकाली नाम के पितर वसिष्ठ के पुत्र हैं ॥१९८॥

ये पितर इन ऋषियों से पैदा कैसे हुये, शिवपुराण में लिखा है कि ये चारों ऋषि अपनी बहिन संध्या पर आशिक़ हो गये तब इन का वीर्य पात हो गया जिस से उपरोक्त पितर पैदा हुये जैसा कि—

मरीचि प्रमुखाः षड्वै निगृहीतेन्द्रियक्रियाः ।
ऋते क्रतुं वसिष्ठंच पुलस्त्यां गिरसौ तथा ॥५४॥
क्रत्वादीनां चतुर्णांच बीजं भूमौ पपात च ।
तेभ्यः पितृगणा जाता अपरे मुनिसत्तम ॥५५॥
सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः ।
हविष्मन्त स्सुतास्सर्वे कव्यवाहाः प्रकीर्तिता ॥५६॥

(शिव० रुद्र० सती० अ० ३)

भाषार्थ—मरीचि आदि छः ने अपनी इन्द्रियों को क़ाबु रक्खा, क्रतु, वसिष्ठ, पुलस्त्य और अंगिरा के बिना ॥५४॥ क्रतु आदि चारों का बीज पृथिवी पर गिर पड़ा। उस से पितृगण और पैदा हुये ॥५५॥ सोमपा, आज्यपा, सुकाली और हविष्मन्त ये सब कव्य को ग्रहण करने वाले हुये ॥५६॥ ये सब पितर मनुस्मृति में तो मनु के पोते लिखे हैं और शिव पुराण में ब्रह्मा के पोते लिखे हैं। इन में से कौन सी बात ठीक है। और जब सोमपानाम पितर ब्राह्मणों के हैं तो फिर दूसरे लोग उनकी तृप्ति के लिये भोजन क्यों करावें ? अतः स्वामी जी का अर्थ ठीक है और आप की शंका निर्मूल है।

(४३६) प्रश्न—जो मादक द्रव्य और हिंसा वाले पदार्थों को छोड़ कर अन्य पदार्थ खावें वे हविर्भुज आर्य्य समाज के पितर हैं। यह मालूम नहीं वे हैं कौन, वैजीटेरियन सोसाइटी के मैम्बर हैं या गाय भैंस हिरण बकरी हैं जिन का आर्य्य समाज श्राद्ध तर्पण करे गी। ये सब मांस और मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करते। पृ० २९६ पं०१।

उत्तर—स्वामी जी के शब्द इस प्रकार से हैं कि 'ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करने हारे होंवे हविर्भु'। स्वामी जी के लेख से स्पष्ट हैं कि जो मांस और शराब आदि नशे की वस्तुओं का सेवन करते हों वे पितर कहाने के योग्य नहीं हैं। अपि तु पितर कहाने के वही योग्य हैं जो खाने के योग्य फलादि हिंसा रहित तथा नशे से वर्जित पदार्थों का भोजन करते हैं। ऐसे पुरुषों की सेवा सुश्रूषा और श्राद्ध करना हमारा धर्म्म है, चाहे वेदानुकूल किसी भी सोसाइटी के मेम्बर हों। आप को निरामिष भोजी पितरों को ज्ञान कैसे हो? क्योंकि आपके पितर तो मांस भोजन से प्रसन्न होते हैं। और उन की हवि में मांस भी शामिल है जैसे कि—

मुन्यन्नानि पयः सोमो मासं यच्चानुपस्कृतम्।
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥२५७॥
(मनु० ३)

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यंविदुर्बुधाः।
तच्चामिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥१२३॥
(मनु० ३)

भाषार्थ—मुनि अन्न, दूध, शराब, मांस विकार रहित, बिना बनाया नमक ये वस्तुएँ स्वभाव से ही हवि कही जाती है ॥२५७॥ पितरों का मासिक श्राद्ध अवश्य कर्तव्य है वह यत्न पूर्वक अच्छे मांस से करना चाहिये ॥१२३॥ आपके मत में जब अंगिरा मुनि बहिन पर आशिक़ हुवे तथा उन का बीज ज़मीन पर गिर पड़ा उससे हविर्भुज पितर पैदा हुये और वे क्षत्रियों

के ही पितर हैं ( न० ४३५ ) वाहवा ! क्या पितरों की शानदार पैदाइश है? भला जब वे क्षत्रियों के ही पितर हैं तो दूसरे इन का श्राद्ध तर्पण क्यों करें। और क्षत्रियों के भी ये पिता, पितामह, प्रपितामह पूर्वज थोड़े ही हैं। इनका श्राद्ध तर्पण करने से क्षत्रियों के पितादि की तृप्ति कैसे होगी। अतः स्वामी जी का अर्थ ठीक और आपकी शंका मिथ्या ही है। रही बात गाय, भैंस, हिरण, बकरी की सो ये पशु भी चूंकि उपकारक हैं जैसे गाय को लाक्षणिक रूप से माता कहा जाता है वैसे ही सब रक्षा करने वाले पशुओं को भी लाक्षणिक रूप से पितर कहा जा सकता है। और आप के तो ये पितरों के भी पितर हैं। क्योंकि इनके मांस से पौराणिक पितरों की तृप्ति होती है।

( मनु० ३।२६७ से २७१ )

(४३७) प्रश्न—और जो रक्षा करें और साथ ही में केवल घी पीते हों वे आर्य्य समाजियों के आज्यपा पितर हैं। हम को तो एक भी मनुष्य या जानवर ऐसा न मिला जो घी पीकर ही जीवन धारण करता हो। पृ० २९६ पं० ४।

उत्तर—आपने स्वामी जी के सारे ही पाठ को चुराकर अपना मन माना पाठ लिख कर स्वयं ही शंका कर डाली। स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि "य आज्यं ज्ञातुं प्रभुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः" "जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत दुग्ध आदि खाने और पीने हारे हों वे आज्यपा"

इस पाठ में ये कहां लिखा है कि "जो केवल घी पीते हों वे आज्यपा" अपितु स्वामी जी का लेख साफ है कि जो लोग

जानने और प्राप्त करने योग्य वस्तु की रक्षा करें और जिन का भोजन विशेषतया घी तथा दूध आदि हो और इन वस्तुओं द्वारा वे हमारी भी रक्षा करें वे हमारे आज्यपा पितर हैं उनकी सेवा सुश्रूषा अन्न जल दूध घी आदि से उनका श्राद्ध तर्पण करना हमारा कर्तव्य है। किन्तु आप बतलाएँ कि मृत्तक पितरों में आज्यपा पितर कौन हैं और उनमें सोमसद, अग्निष्वात्त, हविर्भुज, सोमपा आदि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है। आपके हाँ तो लिखा है कि आज्यपा पितर पुलस्त्य के पुत्र हैं। जब बहिन पर मोहित होकर पुलस्त्य का वीर्य गिर पड़ा उस से आज्यपा पितर पैदा हुवे और वे वैश्यों के पितर हैं (न० ४३५)

वाह जी पितरों की कैसी बढिया पैदाइश है। जब ये वैश्यों के पितर हैं तो दूसरे इनका श्राद्ध तर्पण क्यों करेंगे और वैश्यों के भी ये वंश कर्ता पितर नहीं हैं भला इनके श्राद्ध तर्पण से वैश्यों के पिता आदि की तृप्ति कैसे होगी। अतः स्वामी जी का अर्थ ठीक और आपकी शंका बनावटी ही है। मनुस्मृति से साफ साबित है कि उपरोक्त सोमसद आदि पितर लोगों के पिता, पितामह, प्रपितामह आदि का नाम नहीं है। अपितु ये पृथक ही समूह है। और इनके पृथक ही पुत्र पौत्र भी हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो इनके श्राद्ध करते हैं वे न इनके पुत्र पौत्र हैं और न ये इनके पूर्वज पितादि हैं जैसे कि—

मनो हैरण्य गर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः।
तेषामृषीणां सर्वेषाँ पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ १९४॥
य एते तु गणा मुख्याः पितृणां परिकीर्तिताः।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्र पौत्र मनन्तकम् ॥ २०० ॥

( मनु० ३ )

भाषार्थ—हिरण्य गर्भ मनु के जो मरीचि आदि पुत्र हैं। उन सारे ऋषियों के पुत्रों का नाम पितृगण कहा जाता है।१६४॥ जो ये पितरों के मुख्य गण वर्णन किये हैं उन के भी इस संसार में अनन्त पुत्र पौत्र जानने चाहिये ॥ २०० ॥ इस लेख से यह भी साबित है कि मृतकों का नाम पितर नहीं है अपितु ऋषियों की सन्तान का नाम पितर है।

( ४३८ ) प्रश्न—"य माय सोमः पवते इत्यादि अथर्व० १८।२।१" इस मन्त्र का क़तल करते हुये स्वामी जी लिखते हैं कि न्यायाधीश का नाम यम है। न्यायाधीशों का ही श्राद्ध तर्पण करो जितने भी मजस्ट्रेट संसार में हैं वे सब आर्य्य समाजियों के पितर हैं। बात तो बनाई किन्तु बना न जानी। इस मन्त्र में लिखा है कि अग्नि दूत बन कर हवि को यम के वास्ते पहुंचाता है। भला अग्नि मजस्ट्रेटों के पास। खाने के पदार्थ कैसे पहुंचा देगा। पृ० २९६ पं० १३।

उत्तर—स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि "ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः" जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करने हारे न्यायकारी हों वे "यम"। स्वामी जी का लेख स्पष्ट है कि जो श्रेष्ठों की रक्षा करके दुष्टों को दण्ड देने वाले न्याय कारी राजा वा राज्याधिकारी हैं वे हमारे पितर हैं। उनकी सेवा तथा अन्न जल फलादि से उन का श्राद्धतर्पण करना हमारा कर्तव्य है। आप बतलावें मृतक पितरों में से यम किनका नाम है, और दूसरे पितरों की अपेक्षा उन में क्या विशेषता है? आपके हां तो यम नाम वाले पितरों का वर्णन भी पितृगणों में ही हैं, जब यम किसी के पितर

ही नहीं हैं तो कोई इनका श्राद्ध तर्पण क्यों करे अतः स्वामी जी ने जो यमका अर्थ न्यायाधीश राजा किया है वह ठीक है। आपके ग्रन्थों में इस की ताईद मौजूद है जैसे कि—

( यमः ॥१२॥ )

यमो यच्छतीतिसतः ॥२॥ ९॥

"ववस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषादुवस्य"

ऋ० ८।६।२४।१। (निरुक्त अ० १० ख० १९—२०)

भाषार्थ—जो दुष्टों का नियमन (क़ाबु) करता है उसका नाम यम है। या जो प्रजाओं को नियम में रखता है उसका नाम यम है। इस पर वेद का प्रमाण देते हैं कि "जैसे सूर्य्य अपनी आकर्षण शक्ति से सब लोकों को वश में रखता है वैसे ही मनुष्यों को जो यम अर्थात संयमी राजा क़ाबु में रखता है उसका भोज्य वस्तुओं से सत्कार करो" इसके इलावा मनु में भी कहा है कि—

यथायमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजा स्तद्धि यमव्रतम् ॥३०७॥

(मनु० ९)

भाषार्थ—जैसे यम अर्थात् परमात्मा (मनु० ८।९२)

समय आने पर प्यारे और द्वेषी सबको काबु में कर लेता है वैसे ही राजा को भी प्रजा नियम में चलानी चाहिये यही उसका यम व्रत है ॥३०७॥

स्वामी जी ने यम का न्यायकारी राजा अर्थ करके इस वेद मन्त्र को अनृत असंभव दोष से मुक्त करके प्रकाशित कर दिया है इस मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्नि दूतो अरंकृतः ॥१॥
(अथर्व० १८।२।१)

भाषार्थ—यम नियम व्यवस्था के करने हारे राजा के निमित्त सोमरस छाना जाता है। यम अर्थात राजा के लिये ही हवि अर्थात् अन्न उत्पन्न किया जाता है। यज्ञ अर्थात् राष्ट्र ज्ञान वान् पुरुषों को अपना दूत बना कर और सुशोभित होकर राजा की शरण में आता है ॥१॥

यहां अग्नि के अर्थ ज्ञानवान् दूत के हैं। भौतिक अग्नि के नहीं हैं क्योंकि भौतिक अग्नि जड़ होने से दूत का काम नहीं कर सकती। आपके यहां तो राजा को पितरों का भी पिता लिखा है चुनांचि पितरों ने राजा पृथु से जाकर कहा—

पितरश्च सुखमासोनमभिगमयेदमब्रुवन् ।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः ॥११॥
(महा० द्रोण० अ० ६९)

पितर सुख से बैठे पृथु को बोले कि तू सम्राट है, क्षत्रिय है, रक्षा करने वाला राजा और हमारा पिता है ॥ अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक और आपकी शंका निर्मूल है ।

(४३९) प्रश्न—"यो ममार प्रथमो इत्यादि अथर्व १८।३।१३" अब आर्य समाजी बतलावें कि वेद में जिस यम को हवि देना लिखा है। और वे हवि अग्नि के द्वारा जिस यम को मिलती है वह मृत्त प्राणियों पर निग्रह एवं अनुग्रह करने वाला राजा यम है या आनरेरी मजिस्ट्रेट। क्या मजिस्ट्रेट प्राणियों को मारते और फिर मार कर इस लोक से अन्य किसी लोक में लेजाते

हैं। क्या सभी आनरेरी मजिस्ट्रेट विवस्वान् सूर्य्य के पुत्र हैं। यदि ये घटनायें आनरेरी मजिस्ट्रेटों में नहीं हैं तो फिर यम से तुम आनरेरी मजिस्ट्रेट कैसे लेते हो। पृ० २६६ पं० २६।

उत्तर—श्रीमान् जी ! आप के सिर पर तो पौराणिक यम का भूत सवार हो रहा है। यम शब्द के अनेक अर्थ हैं। यम राजा, राजाधिकारी, ईश्वर तथा वायु अनेक अर्थों में वेदों में आता है। इस मन्त्र में यम के अर्थ राजा नहीं अपितु ईश्वर अर्थ हैं। वैवस्वत के अर्थ हैं सूर्य्यवत् तेजस्वी सब का धारक आकर्षक। और इस मन्त्र में अग्नि दूत का वर्णन भी नहीं है। देखिये आप के यहां मनु में ईश्वर को यम और वैवस्वत लिखा है जैसे कि—

यमो वैस्वतोदेवो यस्तवैष हृदिस्थितः।
तेनचेदविवादस्ते मागङ्गां माकुरून्गमः ॥९२॥
(मनु० ८)

सर्वं संयमनाद्यमः परमात्मा, वैवस्वत इति दण्डधारित्वात् देवनाद्देवः। (कुल्लूकभट्ट)

भाषार्थ—सब को नियम में चलाने वाला होने से यम, सब दुष्टों को दण्ड देने से वैवस्वत तथा प्रकाशमान् होने से देव जिस परमात्मा का नाम है और जो तेरे हृदय में विराजमान् है यदि उसके साथ तेरा विरोध नहीं है तो तू न गङ्गा को जा न कुरुक्षेत्र को जा ॥९२॥

इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है कि—

यो ममार प्रथमो मर्त्यानांयः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानांयमं राजानं हविषा सपर्यत ॥
अथर्व० १८।३।१३॥

भाषार्थ—जो परमात्मा सब से श्रेष्ठ है और सब जगत् से पूर्व था और जो मनुष्यों को मारता है और कर्मानुसार इस लोक में भेजता है। सब का रक्षक सब मनुष्यों का आश्रय स्थान है उस सब के राजा नियम में चलाने वाले परमात्मा की स्तुति द्वारा आदर से पूजा करो ॥१३॥

अब बतलाइये श्रीमान् जी! इस मन्त्र में आप के पौराणि यमराज़ का वर्णन कहाँ है?

---

## मृत्तक श्राद्ध और स्वामी दयानन्द

(४४०) प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ने "प्रथम वृत्ति सत्यार्थ प्रकाश" में मृत्तक पितरों का ही श्राद्ध लिखा था किन्तु संवत् १९४० को शुभ तिथि नरक चतुर्दशी को स्वामी जी का शरीर पात होगया। सम्वत् ९९४१ में जो द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश आठ पण्डितों ने बनाया तब इस सत्यार्थ प्रकाश में जीवित पितरों का श्राद्ध लिख दिया। पृ०१६ पं०२६।

उत्तर—स्वामी जी ने जो प्रथम सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में छपवाया था उस समय स्वामी जी हिन्दी भाषा न जानते थे अतः सारा प्रबन्ध पंडितों के ही हाथ में था। पण्डितों ने उस में मृत्तक श्राद्ध और मांस की भी मिलावट कर दी, जब स्वामी जी को पता लगा तो जितने पुस्तक मिल सके सब जला दिये। और इस बारे में इश्तिहार दे दिया, जो इस पुस्तक के आरंभ में छाप दिया है। और सत्यार्थ प्रकाश का संशोधन करके उसे अपने सामने प्रेस में दे दिया। यह बात द्वितीय आवृत्ति सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखी

हुई मौजूद है। आपका यह लिखना ग़लत है कि "स्वामी जी के पीछे आठ पंडितों ने द्वितीय आवृति सत्यार्थ प्रकाश बनाया जिस में जीवित पितरों का श्राद्ध लिख दिया" क्योंकि आपने लिखा है कि "संम्वत् १९४० में स्वामी जी की मृत्यु हुई" फिर आप स्वयं ही अपनी पुस्तक के पृ० १४७ न० ८९ में लिखते हैं कि—

"स्वामी जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश में मृतकों का श्राद्ध अपने आप लिखा। संम्वत् १९३४ में कलकत्ते में आशु चटर्जी से कह दिया कि यह लेख मेरा नहीं। मेरे पास रहने वाले पण्डित ने लिख दिया" इस आपके ही लेख से साबित है कि स्वामी जी ने मरने से ६ वर्ष पहिले इस लेख से इनकार करदिया था। तो क्या वे इस ६ वर्ष के अरसे में पुस्तक का संशोधन न कर सकते थे। अतः आपकी उपरोक्त कल्पना सर्वथा निर्मूल है। दूसरी बात यह है कि जब आर्य्य समाज सामूहिक रूप से प्रथमा वृत्ति सत्यार्थ प्रकाश को मिथ्या तथा द्वितीया वृत्ति सत्यार्थ प्रकाश को ठीक मानता है तो किसी को क्या हक़ है कि शास्त्रार्थ में प्रथम संस्करण का प्रमाण पेश करें। फिर जब आप स्वयं श्राद्ध प्रकरण में लिखते हैं कि "स्वामी जी ने जीतों के श्राद्ध का हुक्म देकर सात सौ वेद मन्त्रों का गला घोंट डाला" अब स्वामी जी के लेख से ही मृतक श्राद्ध को सिद्ध करने का यत्न ग्रन्थ कर्ता के तात्पर्य्य के विरुद्ध कल्पना करना वाक् छल नहीं तो और क्या है। स्वर्ग वा नरक मनुष्य को अपने कर्मानुसार मिलता है किसी विशेष तिथि में मरने से नरक या स्वर्ग नहीं मिलता अतः किसी

तिथि का नाम नरक चतुर्दशी रखना पौराणिक पाखण्ड ही है। अब आप अपने घर की बात बतलायें आप के यहां ये क्या गड़ बड़ है कि—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
येन केनाप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्यही ॥ ४ ॥
( गरु० प्रेत० अ० २ )

भावार्थ—बिना पुत्र वाले की गति नहीं है। और स्वर्ग तो उसे मिल ही नहीं सकता। इस लिये जैसे कैसे भी उपाय से पुत्र का जन्म अवश्य करना चाहिये ॥४॥ फिर महा भारत में लिखा है कि जरत्कारु नाम ब्राह्मण ने विवाह न करके तप करना आरम्भ किया। वह घूमता २ एक स्थान में गया तो—

अटमानः कदाचित् स्वान् सददर्श पितामहान् ॥१४॥
लम्बमानान् महागर्ते पादैरूर्द्ध्वैरवांमुखान् ॥१५॥

कभी उसने अपने पितरों को बड़े भारी गढ़े में पाओं ऊपर और मुख नीचे लटकता देखा ॥१४—१५॥ जब उसने कारण पूछा तो पितरों ने उत्तर दिया कि—

अस्माकं सन्त तिस्त्वेको जरत्कारुरितिस्मृतः।
मन्द भाग्यो अल्पभाग्यानांतप एकं स्मास्थितः ॥१८॥
न स पुत्रान् जनयितुं दारान् मूढ श्चिकीर्षति।
तेन लम्बामहे गर्ते सन्तानस्य क्षयादिह ॥१९॥
(महा० आदि० अ० १३)

हम यायावर नाम के ऋषि हैं हमारी एक ही औलाद जरत्कारु है हमारे मन्द भाग्य के कारण वह मन्द भाग्य तप करने लगा ॥१८॥

वह मूढ औलाद पैदा करने के लिये स्त्री ग्रहण नहीं करता इस कारण हम सन्तान के क्षय होने से यहां गढ़े में लटक रहे हैं ॥१६॥

नहि धर्मफलैस्तातन तपोभिः सुसञ्चितैः ।
तां गतिं प्राप्नुवन्ति इह पत्रिणो याँव्रजंति वै ॥२४॥

(महा० आदि० अ० १३)

धर्म फल और तपों से उस गति को प्राप्त नहीं होते जिस गति को पुत्रों वाले प्राप्त होते हैं ॥२४॥

फिर महाभारत में लिखा है कि—

षडशीति सहस्राणियोजनानां नराधिप ।
यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥४४॥

(महा० वन० अ० १९९)

छियासी हजार योजन यम लोक और मनुष्य लोक में रास्ते का अन्तर है ॥४४॥ फिर मनु में लिखा है कि—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥१५९॥

(मनु० ५)

अनेक सहस्र कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मण सन्तान पैदा करने के बिना स्वर्ग को चले गये ॥१५९॥

(१) अब देखिये गरुड कहता है पुत्र के बिना स्वर्ग नहीं मिलता, महाभारत कहता है पोते के बिना ऋषियों को उलटा लटकना पड़ा, मनु कहता है हज़ारों बिना सन्तान स्वर्ग में गये, इन तीनों बातों में से कौन सी बात सत्य है ।

(२) जब मनुष्य लोक से यम लोक छियासी योजन दूर है तो जरत्कारु वहां कैसे पहुंचा जो उसने पितरों को देखा ।

(३) जब पितर नज़र नहीं आते तो उस जरत्कारु को कैसे नज़र आये ।

(४) जब यायावर ऋषि थे तो लड़के की ग़लती के कारण उन को दण्ड क्यों मिला?

(५) जब श्राद्ध आदि के धर्म्म फलोंसे वह गति नहीं मिलती जो सन्तान से मिलती है। तो फिर श्राद्ध आदि व्यर्थ है। सन्तान के पैदा करने से ही गति होगी।

(६) बिना सन्तान वालों का शुभ कर्म करना व्यर्थ है क्यों कि बिना सन्तान गति तो होगी ही नहीं।

(४४१) प्रश्न—संस्कार विधि पृ० ६४ नाम करण संस्कार में जहां तिथि और तिथि के देवता नक्षत्र और नक्षत्र के देवताओं के नाम से हवन करना लिखा है, वहां पर मघा नक्षत्र के स्वामी पितरों के नाम से भी आहुति देनी लिखी है। यहां पर ही अमावस्या तिथि और उसके स्वामी पितरों के नाम से हवन करना लिखा है। क्या मघा के स्वामी और अमावस्या के स्वामी पितर जिनके नाम का हवन होता है वे जीवित आर्य्य समाजी हैं। पृ० १८ पं० ४।

उत्तर—आपने जो देवता के अर्थ स्वामी लिखा है ये आपकी मिथ्या कल्पना है। देवता के अर्थ हैं दीपित अर्थात प्रकाशित करने वाले, यहां पर नामकरण संस्कार में जो तिथियों और नक्षत्रों के देवता लिखे हैं ये उन तिथियों और नक्षत्रों को प्रकाशित करने वाले हैं। अर्थात उन तिथियों तथा नक्षत्रों के ही विशेषतया प्रतिपादन हैं। दूसरे अर्थों में ये उन तिथियों तथा नक्षत्रों के

ही दूसरे नाम हैं। हम इस विषय को फलित ज्योतिष और देव जाति विषय में विशेषतया सिद्ध कर आये हैं। कि जैसे सिक्खों में चनों का नाम बादाम, बासी रोटी का नाम मिठ्ठा, प्रसाद का नाम लख नेत्रा इत्यादि दूसरे नाम रक्खे हुये है, वैसे ही तिथियों और नक्षत्रों के भी ये दूसरे नाम ही हैं। जिनको देवता शब्द से वर्णन किया है। इसी असूल से तिथियों में से अमावस्या का दूसरा नाम पितर और नक्षत्रों में से मघा का दूसरा नाम पितृ है। केवल पितर या पितृ शब्द देखकर ही मृतक पितरों के श्राद्ध की कल्पना करना सर्वथा ही पागलपन है।

(१) यहाँ नाम करण संस्कार का प्रकरण है पितृयज्ञ का प्रकरण नहीं है (२) यहां पर तिथि के देवता पितर और नक्षत्र के देवता पितृ की अग्नि में आहुति दी जाती है उनके नाम से ब्राह्मणों को भोजन कराने का वर्णन नहीं है। आप ब्राह्मण भोजन से पितरों की तृप्ति मानते हैं अग्निहोत्र से नहीं (३) यहां पर तिथि के देवता तथा नक्षत्र के देवता पितर वा पितृकी आहुति दी जाती है जिसका नाम रक्खा जावे उसके पितर या उसके बाप के पितरों का कोई वर्णन नहीं है (४) संस्कार विधि के लेखक स्वामी दयानन्द जी मृतक श्राद्ध का अपने ग्रन्थों में बल पूर्वक खण्डन करते हैं (५) लोगों के माता पिता आदि पितर मर कर तिथि और नक्षत्रों के देवता नहीं बन जाते (६) पितर तथा पितृ इन तिथि तथा नक्षत्रों के देवताओं की आहुतियां उनके बच्चों के नाम करण संस्कार में दी जाती हैं जिन बच्चों की पैदाइश अमावस्या तिथि या मघा नक्षत्रों में हुई हो, सब के नाम करण में नहीं। इन कारणों से साबित है कि यहां पर अमावस्या तिथि का दूसरा नाम

पितर तथा मघा नक्षत्र का दूसरा नाम पितृ है। यहाँ पर मृतक श्राद्धों का वर्णन नहीं है, आपके मत में तो श्राद्धशब्द मृतकों के लिये ही प्रयुक्त हो सकता है, जीवितों के लिये नहीं और विवाहादि शुभ संस्कारों में श्राद्ध शब्द का प्रयोग अकल्याण का सूचक है। तब राम के विवाह में श्राद्ध क्यों किया गया? और नाम करण संस्कार जैसे शुभ अवसर पर मृतक श्राद्ध का वर्णन क्यों आया। क्योंकि यह तिथि तथा नक्षत्रों के देवता की आहुति तथा श्राद्धों का वर्णन नाम करण में आपके ग्रन्थों में लिखा है। जैसे कि—

जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति
(गोभिल० खं० ८)

दश म्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान भोजयित्वा पिता नामकरोति
(पारस्कर० सप्तदशकंडिका)

नामकरण निमित्तं मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं विधाय अन्य ब्राह्मणत्रयं भोजयित्वा पिता कुमारस्य द्व्यक्षरमित्यादिनोक्त लक्षणं नामकरोति (हरिहर भाष्य)

भाषार्थ—हवन करता है प्रजापति के लिये, तिथि के लिये, नक्षत्र के लिये, उन के देवता के लिये, (गोभिल) दश दिन के पीछे ब्राह्मणों को भोजन करवाकर पिता नाम करण करता है। (पारस्कर) नाम करण के निमित्त मातृ पूजा के सहित अभ्युदय के लिये श्राद्ध करके अन्य तीन ब्राह्मणों को भोजन करवाकर पिता कुमार का नाम करण करता है (हरिहर)

बतलाईये श्रीमान् जी यह मंगल कार्य्य नाम करण संस्कार में अशुभ सूचक मृत्तक श्राद्ध कहां से कूद पड़ा। अतः मानिये-

गा कि श्राद्ध शब्द मृतकों के लिये नहीं अपि तु प्रत्येक शुभ काम में माता पिता ज्ञानी पितर लोगों की श्रद्धा पूर्व सेवा करने का नाम श्राद्ध तथा उन की तृप्ति करने का नाम तर्पण है। फिर आप के हाँ लिखा है कि—

लंघनैर्ये मृता जीवा दंष्ट्रिभिश्चाभिघातिताः ॥१०४॥
कंठग्रहे विलग्नानां क्षीणानां तुण्डघातिनाम्।
विषाग्नि वृषविप्रेभ्यो विषूच्या चात्मघातकाः ॥१०५॥
पतनोद्बन्धनजलैर्मृतानां शृणु संस्थितिम्।
सर्पव्याघ्रैः शृङ्गिभिश्च उपसर्गोपलोदकैः ॥१०६॥
ब्राह्मणैः श्वा पदैश्चैव पतनैर्वृक्ष वैद्युतैः।
नखैर्लोहैर्गिरेः पातैर्भित्तिपातै र्भृगास्तथा ॥१०७॥
खट्वायामन्तरिक्षेच चौर चाण्डालतस्तथा।
उदक्याशुनकी शूद्ररजकादिवभूषिताः ॥१०८
ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टास्तुये मृताः।
शस्त्रघातैर्मृता ये चास्यश्वस्पृष्टास्तथैव च ॥१०९
तत्तुदुर्मरणं ज्ञेयं यच्च जातं विधिं विना।
तेन पापे न नरकान् भुक्त्वा प्रेतत्वभागिनः ॥११०॥
न तेषां कारये द्दाहं सूतकं नोदक क्रियाम्।
न विधानं मृताद्यं च न कुर्य्यादौर्ध्व दैहिकम् ॥१११॥
न पिण्ड दानं कर्तव्यं प्रमादाच्चेत् करोति हि।
नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति ॥११२॥

(गरु० प्रेत० अ० ४)

भावार्थ—जो जीव उपवास से मरें, जिनको दरिन्दों ने मारा हो ॥१०४॥ जिन को गला घोंट कर मारा हो, तुन्डघाती

जानवरों ने जिन को मारा हो। ज़हर, अग्नि, बैल तथा ब्राह्मणों ने जिनको मारा हो, जो हैज़े से मरे हों, जो आत्मघाती हों ॥१०६॥ गिरने से, बांधने से और जलों से मरे हों उनकी स्थिति सुनो सांप, भेडिये, सींग वाले जानवरों ने जिन को मार दिया हो, भूंचाल; पहाड़ फटने और पानी के बहाव से जो मरे हों ॥१०६॥ ब्राह्मणों से जंगली जानवरों से या वृक्ष वा बिजली गिरने से मरे हों। नाखुनों से लोहे से पर्वत गिरने से जिनकी मृत्यु हो गई हो दिवारों के गिरने से जिनकी मौत हुई हो जो पहाड़ से गिर कर मरे हों ॥१०७॥ खाट में पड़ कर मरा हो। अंतरिक्ष में मरा हो, जो चोर और चाडाल से मरा हो। ऋतुमती चाण्डाली शूद्रा धोबन के सँबन्ध से मरा हो ॥१०८॥ जो ऊपर से उच्छिष्ट नीचे से उच्छिष्ट मरे, जो शस्त्रों के घात से मरे, जो कुत्ते के काटने से मरे हों ॥१०६॥ ये सब अशुभ मौत हैं और जिनकी मौत विधि के विना हुई हो ये सब पापों के कारण नरक को भोग कर प्रेत योनि को प्राप्त होते हैं ॥११० उन सब का दाह सँस्कार न करे; न सूतक, न पिंड तर्पण और न मृत्तक का विधान और न उन का क्रियाकर्म करे ॥१११॥ न पिंडदान करना चाहिये यदि कोई भूल कर करता है वे सब कुछ मृत्तकों को प्राप्त नहीं होता आकाश में ही नाश हो जाता हैं ॥११२॥

कहिये महाराज इस गरुड के लेखानुसार आप चलते हैं या नहीं ? और क्या यह लेख युक्ति युक्त है ? तो क्या आपके विचार से कोईटा के भूंचाल में मरने वाले सब नरक में जाकर प्रेत बनेंगे। और उन के सन्बंधियों को तो आप क्रियाकर्म, पिंडदान, गतिकरण, श्राद्ध आदि कराकर न ठगेंगे ?

(४४२) प्रश्न— सत्यार्थ प्रकाश पृ० ९८ में लिखा है कि—

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्तां बर्हिषदः। पितरस्तृप्यन्ताम् सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्योनमः यमादीं स्तर्पयामि। पित्रेस्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमः मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। प्रपिताह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमःस्वपत्नीं तर्पयामि सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्त तर्पयामि॥ सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि।

हम आर्य्यसमाजियों से पूछते हैं कि यह तर्पण क्या जीवित पितरों का है। यदि सच ही जीवितों का है तो आर्य्यसमाजी बतलावें कि कौन २ आर्य्यसमाजी सोमसद हैं। जिनका यह तर्पण है और अग्निष्वात्त पितर कौन हैं। किस २ आर्य्यसमाजी के बाप दादा बर्हिषद हैं। एवं किस २ आर्य्य समाजी के घर में सोमपा नाम के पितर निवास करते हैं। कौन २ आर्य्यसमाजी अपने पितरों को हविर्भुक् मानते है, किस २ आर्य्यसमाजी ने अपने पितरों का नाम आज्यपा रक्खा है। जब इन शब्दों के अर्थ किये जायेंगे और इन पितरों का निवास स्थान पूछा जायेगा एवं जब यह सवाल होगा कि वे पितर कौन हैं जो बिलकुल अन्न नहीं खाते केवल आज्यपा हैं। घी पीकर रहते हैं। इतना पूछते ही आर्य्य समाजियों को मूक हो जाना पड़ता है। पृ० १८ पं० १२।

उत्तर—"चे बाक अस्त दुजदे कि ब कफ चराग दारद" "कैसा चालाक चोर है कि हाथ में चराग़ रखता है" यह दृष्टान्त आप पर ही घटित होता है। सत्यार्थ प्रकाश में उपरोक्त "पितृतर्पण" का पाठ देकर स्वामी जी ने उसके नीचे ही अक्षरशः अर्थ लिखा है। आप उसे श्राद्ध के लड्डू की भांति हड़प कर गये और फिर हम से पूछने लगे कि बताओ सोमसद आदि पितर कौन हैं। आपने भी इसी अपनी पुस्तक के पृ० २९४ पर श्राद्ध प्रकरण में स्वामी जी का मत दिखाते हुये यह पाठ नक़ल किया है। और हम ने आप के इन आक्षेपों का उत्तर प्रश्न ४३२ से ४३८ तक में विस्तार पूर्वक दे दिया है। वहां से देख लें। श्रीमान् जी श्राद्ध और तर्पण जीवित पितरों का ही है मृत्तकों का नहीं। और सोमसद आदि नाम भी जीवित पितरों के ही हैं मृत्तकों के नहीं हैं। इन शब्दों के अर्थ इसी स्थान में सत्यार्थ प्रकाश में मौजूद हैं जिनका आप खण्डन करने में असमर्थ रहे हैं और वे सब पितर रक्षक ज्ञानी इसी पृथिवी पर ही निवास करते हैं। यदि आपको उनके श्राद्ध तर्पण करने की इच्छा हो तो बता सकते हैं ॥ यों आधा पाठ देकर और आधा चुरा कर जनता को धोका देना विद्वानों को शोभा नहीं देता। किंतु यह आप के बस की बात नहीं, आप लोगों ने तो अपना पेशा ही जनता को धोका देकर ठग कर खाने का बना रखा है। देखिये आप की एक दिन दिहाड़े की ठगी बतलाते हैं। गरुड पुराण में लिखा है कि—

,'यदि कोई मनुष्य प्रदेश गया हुआ हो और उसका कोई पता न लगे मृत्यु का विश्वास हो जावे तो उसकी मोक्ष के

लिये नारायण बली करे। उसकी विधि यह है कि काले मृग की खाल लेकर ज़मीन पर बिछावे। उसके ऊपर उस आदमी का पुतला बनावे, ढाक के पत्तों की ३६० डंडियाँ ले आवे उन को हड्डियों के स्थान में लगावें। माँस के स्थान में जौ का आटा, लहू के स्थान में शहद भर दे, शिर के स्थान में नारियल तथा तालु के स्थान में तूंवा लगावे, जिह्वा के स्थान में केला, आंखों के स्थान में कौड़ियां, दांतों के स्थान में अनारदाना, अण्ड कोशों के स्थान में बैंगन, तथा लिंग के स्थान में गाजर लगावे, इत्यादि। जब पुतला त्यार हो जावे तो उसे विधि पूर्वक जला देवे। तथा ब्राह्मणों को गौ, तिल, लोहा, सोना, कपास, नमक आदि दान देवें। इस प्रकार से उसकी मोक्ष हो जावेगी। और यदि—

मृत्तभ्रान्त्या प्रतिकृतेः कृते दाहे सवै यदि ॥१६८॥
आयाति ते न कर्तव्यं मज्जनं घृतकुण्ड के।
जात कर्मादि संस्काराः कर्तव्या पुनरेवतु ॥१६९॥
ऊढामेव स्वकां भार्यामुद्वहेद्विधिवत्पुमान्।
वर्षेयंचदशेपक्षिन् द्वादशे व गते सति ॥१७०॥

(गरु० प्रेत० अ० ४)

भाषार्थ—मरने की भ्रान्ति से पुतले के दाह करने के पश्चात् यदि ॥१६८॥ वह आजावे तो उसे घी के कुण्ड में डुबोवे और उस के फिर से जात कर्म आदि संस्कार करने चाहिये ॥१६९॥ और उसकी व्याहता स्त्री का पंद्रह या बारह वर्ष के पीछे विधि पूर्वक फिर से विवाह करना चाहिये ॥१७०॥

काहय महाराज इस ठगी का कहीं दुनिया में ठिकाना है। जब वह खोया गया तो उसको मोक्ष के बहाने से लूटा और जब मिल गया तो प्रायश्चित के बहाने से लूट मचाई। किंतु अब जनता की आँखें खुल गई हैं। अब आप की इन मृत्तक श्राद्ध आदि सारी ठगियों की पोल खुल चुकी है अब जनता अधिक दिनों तक भ्रम में नहीं रह सकती।

(४४३) प्रश्न—संस्कार विधि पृ० ९६ बलिदान में लिखा है कि—

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।

इस मन्त्र को पढ़ कर एक ग्रास भोग पितरों के लिये दक्षिण दिशा में रख दे। क्या यह दान जीवित पितरों के लिये रक्खा जाता है। दक्षिण की तरफ क्यों। क्या समस्त जीवित पितरों के लिये एक ग्रास पर्याप्त है। यह जीवित पितरों का श्राद्ध है या फांसी। पृ० १६ पं० ५।

उत्तर—प्रतीत होता कि मृत्तकों का अन्न खाने से आप की बुद्धि इतनी मलिन हो गई है कि आप को पितृ शब्द के देखते ही जैसे "श्रावण में अंधे हुये पुरुष को चारों तरफ हरा ही हरा नज़र आता है" वैसे ही मृत्तक श्राद्धों की ही याद आ जाती है। श्रीमान् जी ! स्वामी जी ने यह सारा प्रकरण बलि वैश्वदेव यज्ञ का मनु० अ० ३ श्लोक ८४ से ९२ से लेकर लिखा है। चुनाँचि मनु० ३।६१

पितृभ्यो बलि शेषं तु सर्वं दक्षिणतोहरेत् ॥६१॥

शेष अन्न की बलि दक्षिण की ओर पितरों के लिये देवे॥९१॥ ऐसा लिखा है—

निम्न हेतुओं से यहां मृत्तक श्राद्ध का वर्णन नहीं है—

(१) मनु ने भी और स्वामी जी ने भी यह मन्त्र बलिवैश्व देव यज्ञ में दिया है, पितृयज्ञ में नहीं दिया।

(२) श्राद्ध का विषय पितृयज्ञान्तर्गत है बलिवैश्वदेवान्तर्गत नहीं है।

(३) स्वामी जी ने इस से पूर्व पितृयज्ञ का वर्णन करते हुये लिखा है कि "अग्निहोत्र विधि पूर्ण कर के तीसरा पितृयज्ञ करे अर्थात् जीते हुये माता पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है।"

(४) बलिवैश्वदेव यज्ञ का प्रयोजन पितरों को तृप्त करना नहीं है अपि तु "जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उस का प्रत्युपकार कर देना" है। जैसा कि मनु० ३। ८१ में भी लिखा है कि 'भूतानि बलि कर्मणा" बलिकर्म में भूतों अर्थात् प्राणियों का प्रत्युपकार करना प्रयोजन है।

(५) संस्कार विधि में "भोग" शब्द नहीं है आप ने अपनी तरफ से बढ़ा दिया है।

(६) संस्कार विधि के कर्त्ता ने इस से पूर्व स्पष्ट शब्दों में जीते हुये माता पिता की सेवा का नाम पितृयज्ञ या श्राद्धतर्पण माना है। अतः बलिवैश्वदेव यज्ञ से मृत्तक श्राद्ध की कल्पना ग्रन्थकर्त्ता के विरुद्ध वाक्छल मात्र ही है।

श्रीमान् जी यहां पर पितर नाम ऋतुओं का और पाञ्च महायज्ञों का है। ( नं० ४३१। ५ ) पर हम सिद्ध कर आये हैं कि ऋतुओं का नाम पितर है। और सम्पूर्ण प्रजा का पालन रक्षण करने वाले होने से पाञ्च महायज्ञों का नाम भी पितर है।

अतः इस के यह अर्थ हुये कि "वर्ष भर की सम्पूर्ण ऋतुओं में ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ. अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ आदि कर्म करते हुये जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उस के प्रत्युपकार के लिये मैं यह अन्न की बली देता हूं" इस बलि-वैश्वदेव यज्ञ में जो पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण आदि दिशाओं में भाग रखने का विधान है यह केवल मर्यादार्थ है । अर्थात् तमाम सोसाइटी के काम करने का एक ही तरीक़ा हो भिन्न भिन्न तरीक़े न हों। इस बलिवैश्वदेव यज्ञ के अन्त में लिखा है कि—

"इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना। यदि भाग धरने के समय कोई - अतिथि आ जाय तो उसी को दे देना नहीं तो अग्नि में धर देना"।

अतः इस बलिवैश्वदेवयज्ञ से प्रकरण के विरुद्ध मृत्तक श्राद्ध को सिद्ध करने का यत्न असम्भव तथा निर्मूल कल्पना है।

आप जिन मृत्तक श्राद्धों की सिद्धि में आत्मघात पाप के भागी बन रहे हैं उन से कोई लाभ तो है नहीं देखिये—

ददाति यत् पार्थिव यम करोति यद्वातपस्तप्यति यज्जुहोति। न तस्य नाशोऽस्ति न चापकर्षो न अन्यस्तदश्नाति स एव कर्त्ता ॥२२॥

(महा० उद्योग० अ० १२२)

आत्मनैव कृतं कर्म ह्यात्मनैवोपभुज्यते ।
इह वा प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथा तथा ॥४॥

(महा० भीष्म० प्र० ७७)

भाषार्थ—हे राजन्! मनुष्य जो दान देता है। जो तप करता है और जो हवन यज्ञ करता है। उस किये हुवे का नाश नहीं होता। न वह घटता है। न उसे कोई भोग सकता है। वह कर्म करने वाला ही उन कर्मों के फल को भोगता है ॥२२॥ आत्मा से अर्थात् स्वयं किया हुआ कर्म आत्मा से ही अर्थात् स्वयं ही भोगता चाहे इस जगत में चाहे परलोक में अपना किया ही भोगता है। हे राजन् आपने जैसा किया वैसा ही प्राप्त कर लिया ॥४॥

इस से साफ साबित है कि कर्मों का फल कर्ता को ही मिलता है। अन्यके कर्म किये का फल अन्य को नहीं मिल सकता अतः मृत्तक पितरों के निमित्त श्राद्ध तर्पण आदि करना तथा मृत्तकों के निमित्त ब्राह्मणों को भोजन करवाना तथा उसके फल से मृत्तक पितरों की तृप्ति की आशा करना सर्वथैव निर्मूल तथा मिथ्या कल्पना है।

(४४४) प्रश्न—संस्कार विधि पृ० १४ समावर्तन प्रकरण में लिखा है कि "हाथ में जल ले अपसव्य और दक्षिण मुख हो के "ओं पितरःशुन्धध्वं" इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ दे" यदि श्राद्ध तर्पण जीवित पितरों का ही होता तो फिर हाथ में जल लेना कैसा। आर्य्य समाजियों के घरों में लोटा गिलास कटोरी कुछ भी नहीं रहता। अपसव्य होना जनेऊ को दक्षिण कंधे से हटा कर बायें कंधे पर धरना यह कोई आर्य्य समाज की सभ्यता है या इस में कोई गूढ फिलासफी है। वेदादि सच्छास्त्रों में तो मृत्तक पितरों के अन्न जल देने पर ही अपसव्य होना लिखा है। दक्षिण की तरफ मुंह करके यह क्यों। आर्य्य समाजियो! तुम

हमें बेवकूफ मत बनाओ यह मत कहो कि यह तर्पण जीवित पितरों का है। पृ० १६ पं २३ ।

उत्तर—आपके सिर पर मृत्तक श्राद्ध की सिद्धी का पागल पन बहुत बुरी तरह से सवार हुवा है। इस लिये पितर शब्द के देखते ही आप झट कह उठते हैं कि "यहलो मृत्तक श्राद्ध सिद्ध हो गया" श्रीमान् जी यहां समावर्तन संस्कार है । पितृ यज्ञ का विषय नहीं है। और न ही यहां पर पितरों के श्राद्ध वा तर्पण का प्रयोजन है। और यहां पर अपसव्य होने के अर्थ यज्ञोपवीत को बायें कंधे पर करने के नहीं हैं । अपितु बायें तरफ खड़े होने के हैं। जैसा कि महाभारत में आता है कि—

(१) अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत् पराभव लक्षणम् ॥१७॥
(महा० उद्योग० अ० १४२)

(२) ध्रुवः प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्तते ।
रोहिणीं पीडयन्तौतावुभौ च शशिभास्करौ ॥१७॥
(महा० भीष्म० अ० ३)

(३) अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्षण्यं दिवाकरम् ।
अवाक् शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः ॥१२॥
(महा० भीष्म० अ० ११३)

(४) गोमायवयश्च प्राक्रोशन् भयदा दारुणाः खगाः ॥३६॥
अकार्षुरपसव्यञ्च बहुशः पृतनां तव ॥३७॥
(महा० द्रोण० अ० ७)

(५) तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥२८॥
(महा० द्रोण० अ० २८)

(६) अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम् ॥५१॥
अपसव्यं कृतः संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा ॥५२॥
(महा० द्रोण० अ० १८८)

(७) अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणि स्तत्र वृकोदरम् ॥१७॥
(महा० कर्ण० अ० १५)

(८) मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव ।
अपसव्यं तदा चक्रु र्वेदयन्तो महाभयम् ॥६॥
(महा० कर्ण० अ० ३७)

(९) ततोऽर्जुस्याशु रथेन केशवश्चकार शत्रूनपस-
व्यमातुरान् ॥ ० ॥ (महा० कर्ण० अ० ७६ )

भाषार्थ—(१) हे केशव ! सारे मृग दुर्योधन के बायें तरफ थे और शरीर-रहित वाणियां सुनाई देती थीं। यह अपमान पराज्य का लक्षण है (२)निश्चय रूप से घोर प्रचण्ड अग्नि बाईं तरफ वर्तमान है। और रोहिणी को सूर्य्य और चांद दोनों पीड़ित कर रहे थे (३) सब ग्रहों ने सूर्य्य को बाईं तरफ कर दिया और चन्द्रमा नीचे को सिर किये वर्तमान हैं (४) गीदड़ों ने चीखते हुये और क्रूर भय प्रद पक्षी बहुत से तेरी सेना को बाईं तरफ कर रहे हैं (५) उस क्रोध में आये हुये काल के समान हमला करते हुये हाथी को देखकर फौरन कृष्ण ने रथ से बाईं तरफ कर दिया (६) उसके पीछे तेरे पुत्र दुर्योधन को माद्री के पुत्र सहदेव ने बाईं तरफ कर दिया । तेरे भतीजे

क्रोधी ने युद्ध में बाईं तरफ कर दिया (७) उस के पश्चात् वहाँ अश्वत्थामा ने भीम को बाईं तरफ कर दिया (८)बहुत से मृग और पक्षियों ने महाभय प्रकट करते हुये तब तेरी सेना को बाईं तरफ कर दिया (९) उसके पश्चात् शीघ्रता से कृष्ण ने अर्जुन के रथ से व्याकुल शत्रुओं को बाईं तरफ कर दिया।

कहिये महाराज ! प्रकरणों में कहीं मृत्तक पितरों का तथा उन को अन्न जल देने का नामो निशान भी हैं। और क्या यहांपर अपसव्य करने के अर्थ यज्ञोपवीत को दायें से बायें करने के अर्थ किये जा सकते हैं। हर्गिज़ भी नहीं। अतः अपसव्य होने या करने के अर्थ बाईंतरफ होने या करने के बिना और कुछ भी नहीं हो सकते। यज्ञोपवीत को दायें कन्धे से बायें कन्धे पर करना केवल पौराणिक पाखंडियों की मिथ्या कल्पना ही है।

यहां पर दक्षिण मुख होने के अर्थ दक्षिण दिशा में मुख करने के नहीं हैं अपि तु दाएँ तरफ मुख करने के हैं। यदि कोई मनुष्य किसी के बाईं तरफ खड़ा होकर प्रार्थना करना चाहता है। तो स्वाभाविक रूप से ही उसे दायें तरफ मुख करके खड़ा होना पड़ेगा। और तरफ मुख करने से पितर सामने ही नहीं रहते।

अतः समावर्तन संस्कार के समय ब्रह्मचारी हाथ में जल लेकर पितरों के बाईं तरफ अर्थात् आचार्य, उपाध्याय, अध्यापक, ज्ञानियों के बाईं तरफ खड़े होकर और दाईं तरफ मुख करके उनसे प्रार्थना करता है कि "पितरः शुन्धध्वम्" हे आचार्य्य अध्यापाक उपदेशक ज्ञानी पितर लोगो ! आप स्वयं इस जल के समान शुद्ध और शांत होने का उपदेश और

आशीर्वाद दे कर शुद्ध और शांत कीजिये"यह प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ देता है।

कहिये महाराज ! इस में से मृत्तक श्राद्ध कहां से टपक पड़े श्रीमान् जी ! जिस मृत्तक श्राद्ध की आप वकालत कर रहे हैं उसकी निश्चित परिस्थिति क्या है। इसे आप ठीक तौर से वर्णन नहीं कर सकते। गरुड़ पुराण में लिखा है कि पिंडों से मृतक पितरों का शरीर बनता है जैसा कि—

अहोरात्रैस्तु नवभिर्देहो निष्पत्तिमाप्नुयात्।
शिरस्त्वाद्येनपिंडेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥ ३३॥
द्वितीयेन तु कर्णाक्षी नासिकं तु समासतः।
गलांसभुजवक्षश्च तृतीयेन तथा क्रमात्॥ ३४॥
चतुर्थेन च पिंडेन नाभिलिङ्गं गुदं तथा।
जानु जंघं तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥ ३५॥
सर्वं मर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः।
दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च॥ ३६॥
दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्ताक्षुद्विपर्ययः॥ ३७॥

(गरु० प्रेत० अ० ५)

भावार्थ—नौ दिन रात में देह सम्पूर्ण हो जाता है। मृत्तात्मा का पहिले पिंड से सिर बनता है। दूसरे से कान आंख और नाक, तीसरे से क्रम से गर्दन, पसली, बाहु, छाती, चौथे से नाभि, लिङ्ग और गुदा, पांचवें से सदा घुटने टांगें और पांव, छठे से सब मर्म स्थान,सातवें से नाड़ियां,दांत और बाल, आठवें से, वीर्य नौवें से, दशवें पिंड से पूर्णता को प्राप्त होता है। अध्याय १५ तथा ३४ में भी वर्णन है। और तीनों लेखों में

मतभेद है । भला सोचिये तो सही क्या पितरों का शरीर तुम्हारे हो पिंडदान से बनता है वा परमात्मा के नियम से। जिनके पिंड नहीं दिये जाते क्या उन का शरीर नहीं बनता। यदि बनता है तो तुम्हारा पिंडदान व्यर्थ क्रिया नहीं तो क्या है। देखिये शास्त्रों में पिंड नाम भोजन का है जैसा कि—

(१) ततो दुःखतरं किन्नु यदहं हीन बांधवा।
पर पिंडमुदीक्षेवैत्वां सूत्वा मित्रनन्दनम् ॥३४॥
(महा० उद्योग० अ० १३१)

(२) अन्यांश्च शतशो बाणान् प्रेषयामास पार्षते।
दुर्योधन हितार्थाय भर्त्तुः पिंडमनुस्मरन् ॥६७॥
(महा० भी० अ० ७७)

(३) द्रोणस्य च महाबाहोः कृपस्य च महात्मनः ॥१५॥
अवश्यं राज पिंडस्तैर्निवेश्य इति मे मतिः ॥१६॥
( महा० वन० अ० ३६)

(४) यावतो हि अन्धसः पिंडानश्नाति सततं द्विजः ॥३२॥
तावतां गो सहस्राणां फलं प्राप्नोति फलदायकः ॥३३॥
(महा० वन० अ० १९३)

भाषार्थ—(१) कुन्ती ने कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को संदेश दिया कि "इस से बढ़ कर दुःख और क्या हो सकता है कि मैं बंधुओं से हीन हुई तुझ मित्रों के आनन्द देने वाले को पैदा कर के दूसरों के भोजन को तरफ देखती हूं। (२) द्रोणाचार्य्य ने अर्जुन के लिये सैंकड़ों बाण छोड़े। दुर्योधन के हित के लिये और स्वामी के भोजन को याद करते हुये (३) युधिष्ठिर

ने भीम से कहा कि मेरी सम्मति है कि महाभुज द्रोण और महात्मा कृपाचार्य्य अवश्य ही राजा के भोजन का ख्याल रख कर दुर्योधन का साथ देंगे। (४) जितने भी अन्न के ग्रासों को ब्राह्मण खाता है देने वाला उतने हज़ार गौ दान का फल पाता है।

इन सम्पूर्ण प्रमाणों में पिंड नाम भोजन अन्न और अन्न के ग्रास का है। पौराणिकों से कल्पित मृत्तकों के शरीर को निर्माण करने वाले पिंडों का वर्णन नहीं है। हम ने इस प्रकरण में साबित कर दिया है कि—

(१) जीवों का परस्पर माता पिता आदि का कोई सम्बन्ध नहीं।

(२) पितर शब्द जीवितों पर चरितार्थ हो सकता है मृत्तकों पर नहीं।

(३) किये हुये कर्मों का फल अवश्य मिलता है टलता नहीं।

(४) कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है अन्य को नहीं।

(५) अन्य के कर्मों का फल अन्य को नहीं मिलता।

(६) श्राद्ध, पिण्ड, तर्पण आदि सब शब्द जीवितों के लिये प्रयुक्त होते हैं।

अतः जीवित पितरों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करने का नाम श्राद्ध तथा उन को तृप्त करने का नाम तर्पण है। मृत्तक पितरों का श्राद्ध तर्पण वेद विरुद्ध पौराणिक कल्पना सर्वथा ही मिथ्या है।

# पत्यन्तर्विधान

## अर्थात्

(पुनर्विवाह, विधवा विवाह, नियोग, करेवा, चादरअंदाज़ी आदि)

(४४५) प्रश्न—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२३ में लिखा है कि—

"नियोग करने में ऐसा नियम है कि जिस स्त्री का पुरुष वा किसी पुरुष की स्त्री मर जाय अथवा उन में किसी प्रकार का रोग हो जाय वा नपुंसक बन्ध्या दोष पड़ जाय और उनकी युवावस्था हो तथा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उस अवस्था में उन का नियोग होना अवश्य चाहिये" यह भी नहीं बतलाया कि "नियोग अवश्य करना चाहिये" यह लेख कहां लिखा है। इस चालबाज़ी से लेख लिखा गया है कि लेख पढ़ने वाला मनुष्य यह समझे कि नियोग अवश्य होने का नियम वेद में है। किंतु भूतल पर इस लेख को वैदिक सिद्ध करने वाला कोई मनुष्य पैदा नहीं हुआ। पृ० ४३ पं० १९।

उत्तर—"उलटा चोर कोतवाल को डांटे" यह मिसाल आप पर ही घटित होती है। ऋषि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नियोग प्रकरण में प्रथम "कुहस्विद्दोषा" "इयंनारी" "उदीर्ष्व नारी" ये तीन मन्त्र देने के पश्चात् उपरोक्त लेख लिखा है। जिस को आपने अपने स्वभाव के अनुसार चुरा लिया है। स्वामी जी ने "नियोग अवश्य होना चाहिये" के साथ निम्न शरतें लगाई हैं।

(१) किसी पुरुष की स्त्री वा स्त्री का पुरुष मर जाय।

(२) उन में किसी प्रकार का स्थिर रोग हो जाय।

(३) नपुंसक बन्ध्या दोष पड़ जाये ।

(४) उनकी युवावस्था हो ।

(५) सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो ।

तो इस अवस्था में उन का नियोग होना अवश्य चाहिये ।

स्वामी जी ने यह उपरोक्त तीन मन्त्रों की व्याख्या की हैं । उपरोक्त मन्त्रों में स्त्री को दूसरे पति का हक़ तसलीम किया गया हैं । वह हक़ किन अवस्थाओं में इस्तेमाल करना चाहिये, यह व्याख्या स्वामी जी ने वर्णन की है । और वह वेदानुकूल है । यही वेदानुकूल लेख मनु ने भी लिखा है कि—

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्यवा ।
स्वधर्म्मेणनियुक्तायां सपुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥१६७॥

(मनु० अ० ९)

*यो मृतस्य नपुंसकस्य प्रसवविरोधि व्याध्युपेतस्यवाभार्या-*यांघृताक्तत्वादि नियोग धर्मेण गुरुनियुक्तायां जातः स क्षेत्रजः पुत्रोमन्वादिभिः स्मृतः ॥१६७॥ (कुल्लूक)

भाषार्थ—जो मरे हुये, नपुंसक, प्रसवविरोधि, बीमारी से युक्त, पुरुष की स्त्री में घृत लगाना आदि नियोग, धर्म्म से गुरु की आज्ञा से नियोग, करने वाली में पैदा हुये पुत्र का नाम क्षेत्रज है, जैसा कि महा भारत में भी इस की ताईद की है कि—

पाणिग्रहस्यतनय इति वेदेषु निश्चतम् ॥६॥

(महा० आदि० अ० १०४)

उत्तमादेवरात्पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥२४॥
अपत्यं धर्म्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः ।
आत्मशुक्रादपिपृथेमनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥२५॥

(महा० आदि० अ० १२०)

भाषार्थ—नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही होता है यह वेदों में निश्चित है ॥६॥ लोगआप त्रिकाल में उत्तम देवर से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। मनुष्य नियोग से श्रेष्ट धर्म्म के फल देने वाले पुत्र को प्राप्त होते हैं। हे कुन्ति वह पुत्र अपने वीर्य से पैदा हुए पुत्र से भी श्रेष्ट है, यह मनु जी महाराज कहते हैं ॥२५॥

अब हम यहां पर उन मन्त्रों की व्याख्या कर देते हैं जिन के आधार पर स्वामी जी ने नियोग का प्रति पादन किया है।

कुस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्राविधवेवदेवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥

(ऋ० ७।८।१८।२)

भाषार्थ—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों ने रात्री में कहां निवास किया था, तथा दिन में कहा बसे थे। तुम ने अन्न, वस्त्र, धन आदि की प्राप्ति कहां की थी। तुम्हारा निवास स्थान कहां है। रात्री में तुम कहां शयन करते हो। जैसे विधवा स्त्री देवर के साथ सन्तानोत्पत्ति करती है वैसे तुम भी करो। जैसे विवाहित मनुष्य को समान स्थान में सन्तान के लिये विवाहित स्त्री स्वीकार करती है ॥२॥

इस पर निरुक्त कार लिखते हैं कि "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" "देवर को देवर क्यों कहते हैं इस लिये कि वह विधवा का दूसरा वर है"

सायणाचार्य्य ने भी स्वामी जी के इस अर्थ की ताईद करते हुये निरुक्त के उपरोक्त पाठ को उद्धृत किया है। तथा निरुक्त के टीका कार दुर्गाचार्य ने भी "विधवेवदेवरं" तथा

"मर्यन योषा" की व्याख्या करते हुये स्वामी जी के सिद्धान्त का अनुमोदन किया है जैसे कि—

सायण भाष्य—हे अश्विना अश्विनौ कुहस्वित् क्वस्वित् दोषा रात्रो भवथः इति शेषः कुहवस्तोः क्वा दिवा भवथः कुह क्वा अभिपित्वं अभिप्राप्तिं करतः कुरुथः कुह क्वा ऊषतु ऊषथः वसथः किंच वाम् युवाम् क्वयज मानः सधस्थे सहस्थाने वेद्याख्ये आकृणुते अकुरुते परिचरणार्थं आत्मानमभिमुखी करोति तत्रदृष्टान्तौ दर्शयति शयुत्राशयने विधवेव यथामृत्त भर्तृका नारी देवरं भर्तृ भ्रातरं अभिमुखी करोति मर्यन यथा च सर्वं मनुष्यं योषा सर्वा नारी सम्भोग काले अभिमुखी करोति तद्वदित्यर्थं :। तथा च यास्कः क्वस्विद्रात्रौ भवथः क्वदिवा क्वाभि प्राप्तिं कुरुथः क्वसथः। कोवां शयने विधवेव देवरम्। देवरः कस्माद् द्वितीयोवर उच्यते। विधवाविधातृका भवति। विधवनाद्वा, विधावनाद्वेति चर्मशिरा अपिवा धव इति मनुष्य-स्तद्वियोगा द्विधवा। देवरो दीव्यति कर्मा। मर्या मनुष्यो मरण-धर्मा। योषा यौतेराकुरुते सहस्थाने इति निरुक्तः॥

दुर्गाचार्य्य—शयुत्रा शयने किं विधवा इव देवरम् यथा विधवा मृतभर्तृका काचित् स्त्री शयने रहस्यतितरां यत्नवती देवरमुपचरति, सहि परकीयत्वात् नार्या दुरा राध्यतरो भवती तियत्नेनोपचर्यते न तथा निजो भर्ता। तस्मात्तेनोपमिमीते अश्वि-नौ। तथा मर्यं मनुष्यं देवरम् सैवमृत्तभर्तृका योषा आकृणुते आभिमुख्येन कुरुते। कोवाम् एवं आभिमुख्येन सधस्थे सह स्थाने समाने सहयोगिनावात्मनाकृत्वापरिचचार॥

भाषार्थ—हे अश्विनो! तुम दोनों रात्री में कहाँ होते हो, और दिन में कहाँ होते हो, और कहाँ प्राप्ति करते हो, तुम दोनों

को कौन यजमान वेदी में सेवा करने के लिये सन्मुख होता है। यहां दो दृष्टान्त दिखाता है। जैसे सोने के स्थान में विधवा स्त्री पति के भाई को अभिमुख करती है और जैसे सब मनुष्यों को स्त्रियां सम्मुख करती हैं। उसी प्रकार से इत्यादि।

(सायण भाष्य)

चारपाई पर क्या जैसे कोई विधवा स्त्री सेज पर अत्यंत एकान्त में यत्न से देवर को प्रसन्न करती है। वह दूसरी स्त्री का पति होने से विधवा स्त्री से प्रसन्न करना बहुत कठिन होता है। इस लिये यत्न से प्रसन्न करती है वैसे अपने पति की नहीं। इस लिये उस से अश्विनी कुमारों की उपमा दी है। और मनुष्य देवर को वही विधवा स्त्री सम्मुख कहती है। आप कौन हैं, ऐसे सम्मुख करके समान स्थान में आत्मा से संयोग करके सेवा करती है। (दुर्गाचार्य्य)

और महा महोपाध्याय शिवदत्त शास्त्री, प्रधानअध्यापक, ओरियंटल कालेज, लाहौर ने भी निरुक्त पर टिप्पणी करते हुये इस मन्त्र पर लिखा है कि—

एवं च चतस्रोगतयो विधवाना प्रतिभांति तत्र पत्यौ प्रेते ब्रह्मचारिणी उत्तमा। ब्रह्मचर्य्ये स्थातु मसमर्था पतिमनुगच्छन्ती मध्यमा। ब्रह्मचर्य्य पत्यनुगमन योरसमर्था पुनर्भूत्वमङ्गी कुर्वती अधमा। पुनर्भूत्वमप्यनङ्गी कुर्वती व्यभिचारजा तगर्भादि निः सायं ती अधमाधमा॥ एवंचतुर्विधासु विधवागतिषु तिसो गती रुत्तममध्यमाधमा उपदेश शायं मन्त्रः। नत्वधमाधमगतिं चतुर्थीं मिति सर्वमनवद्यम्॥

(निरु० अ० २ खं० १५)

भाषार्थ—इस प्रकार से विधवाओं की चार गतियां प्रतीत होती हैं। उन में से पति के मरने पर जो ब्रह्मचारिणी रहे वह उत्तम, जो ब्रह्मचर्य्य में स्थिर रहने में असमर्थ हो पति के साथ सती हो जाये वह मध्यम। जो ब्रह्मचर्य्य में रहने तथा सती होने में असमर्थ हो और पुनर्विवाह कर ले वह अधम। जो पुनर्विवाह भी न करके व्यभिचार से हुये गर्भादि को निकालने वाली गर्भ पात के अधिक दोष के कारण अधमाधमा। इस प्रकार से विधवाओं की चार गतियों में से पहिली तीन उत्तम मध्यम अधम का यह मन्त्र उपदेश करता है। चौथी अधमाधम गति का नहीं यह सब निर्विवाद है।

इयं नारी पतिलोकं वृणानानिपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥
अथर्व० १८।३।१३।१॥

भाषार्थ—यह विधवा स्त्री मरे हुये पति को छोड़ कर पति सुख को स्वीकार करना चाहती हुई हे मनुष्य! तुझ को पति प्राप्त करती है। तेरे पास नियोग विधान से प्राप्त होती है। उस को तू ग्रहण कर, इस में सन्तान पैदा कर। कैसी वह स्त्री। वेद प्रतिपाद्य सनातन धर्म्म का पालन करती हुई, तुझ को नियोग से पति स्वीकार करती है। तू भी इस को स्वीकार कर। उस विधवा के लिये इस समय वा लोक में सन्तान को उत्पन्न कर और इस में वीर्य धारण कर अर्थात् इस में गर्भाधान कर।

"उदीर्ष्वनारि" इस का अर्थ आगे चल कर करेंगे।

हम ने साबित कर दिया कि स्वामी जी का उपरोक्त लेख वेद के अनुकूल है। क्या भूतल पर कोई एक भी ऐसा मनुष्य

पैदा हुआ है जो चारों वेदों में से एक वेद मन्त्र भी पेश कर के स्वामी जी के लेख को वेद विरुद्ध साबित कर सके।

( ४४६ ) प्रश्न—द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश पृ० १२० में लिखा है कि—

'गर्भवती स्त्री से एक वष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाये तो किसी से नियोग कर के उस के लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे" संसार के ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार का नियोग नहीं मिलता। इस गूढ फिलासफी का असली तत्त्व हमारी समझ में न आया। इस में लिखा है कि "गर्भ की दशा में किसी स्त्री से न रहा जाय तो वह किसी दूसरे पुरुष के साथ भोग करे। क्यों ऐसा क्यों किया जाये। अपने पति से भोग करे तो क्या ज़हर चढ जावे। और फिर एक लड़का पैदा कर के उस भोग करने वाले को दे दे। पेट में पहिले से ही एक लड़का बैठा है फिर इस दूसरे को कहां रक्खे। सन् १८६७ में "गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय" इस के स्थान में गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष सेवा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय" बदल कर ऐसा कर दिया। यह बदला हुआ पाठ भी वैदिक नहीं है। वैदिक होने का भ्रम अब भी उस में ज्यों का त्यों है। पृ० ४४ पं० ३।

उत्तर—स्वामी जी के हस्त लिखित सत्यार्थ प्रकाश में पाठ इस प्रकार से है कि—

प्रश्न—"जब एक विवाह होगा, एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष होगा, तब स्त्री गर्भवती,

स्थिर रोगिणी अथवा पुरुष दीर्घ रोगी हो और दोनों की युवावस्था हो, रहा न जाय, तो फिर क्या करें ?"

उत्तर—"इस का प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं। और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग कर के उस के लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे। परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें।"

( १ ) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश छपने में "दीर्घ रोगी पुरुष की" यह छपने में रह गया था जिस को पीछे से ठीक कर पूरा छाप दिया गया। जिस में गर्भवती स्त्री से समागम का स्पष्ट निषेध है।

( २ ) द्वितीयावृत्ति में भी "गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में" ये शब्द साफ तौर से गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम का निषेध कर रहे हैं। और अगले पाठ में से रहे हुए पाठ को सूचित कर रहे हैं।

( ३ ) प्रश्न के अनुसार उत्तर हुआ करता है। जब प्रश्न में स्पष्ट पूछा गया है कि "तब स्त्री गर्भवती, स्थिर रोगिणी अथवा पुरुष दीर्घ रोगी हो" इन शब्दों से साफ पता लगता है कि पूछने वाले का यह अभिप्राय है कि "यदि स्त्री गर्भवती या स्थिर रोगिणी हो, पुरुष से न रहा जाये, तो वह क्या करे, अथवा यदि पुरुष दीर्घ रोगी हो स्त्री से न रहा जाये तो वह क्या करे।"

अतः द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश में उत्तर प्रश्न के अनुकूल नहीं है और जो पीछे से ठीक कर के छापा गया है। उस में उत्तर प्रश्न के अनुसार हैं।

( ४ ) इन हेतुओं से स्पष्ट है कि यह छापे की ग़लती थी जिसे पीछे ठीक कर दिया गया।

( ५ ) यदि यह भी मान लिया जाय कि पीछे से आर्य्य समाज ने ठीक कर लिया तो भी किसी को ऐतराज़ का हक़ नहीं है क्यों कि आर्य्य समाज ने गर्भवती स्त्री से समागम वेद विरुद्ध समझ कर इस पाठ को वेदानुकूल बना दिया।

अतः पाठ बदलने की शङ्का तो सर्वथा निर्मूल और व्यर्थ है, अब रह गई बात वेदानुकूलता की सो—

( १ ) गर्भवती स्त्री से समागम वेद के विरुद्ध है जैसा कि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम ।
गर्भो जरायुनावृत्त उल्वं जहाति जन्मना ॥

यजु० १६ । ७६ ॥

भावार्थ—मनुष्य का लिंगेन्द्रिय स्त्री की योनि में प्रविष्ट होता हुआ मनी अर्थात् वीर्य को विशेष तौर से छोड़ता है। इस से पृथक् पेशाब को छोड़ता है। वह वीर्य जेर से लिपटा हुआ गर्भ रूप हो कर जन्म लेता है। जन्म से परदे को छोड़ता है ॥ ७६ ॥

यह वेद मन्त्र गर्भाधान की शिक्षा देता हुआ बताता है कि स्त्री पुरुष का संयोग केवल गर्भ धारणार्थ है। स्त्री पुरुष को तब समागम करना चाहिये जब गर्भ धारण की आवश्यकता हो, अन्यथा नहीं। अतः गर्भवती स्त्री से समागम करना वेद के विरुद्ध है। इस को ताईद मनु जी भी करते हैं कि—

ऋतुकालाभिगामी स्यात् ॥ मनु० ३ । ४५ ॥
प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः ॥

मनु० ९ । ९६ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥ ९ । ३३॥
पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥ मनु० ९ । ८ ॥

भाषार्थ—ऋतुकाल के अनुसार स्त्री से समागम करना चाहिये। गर्भवती के ऋतु आता ही नहीं अतः गर्भवती से समागम निषिद्ध है ॥ ४५ ॥ परमात्मा ने स्त्रियों और पुरुषों को सन्तान पैदा करने के लिये पैदा किया हैं । गर्भवती होने में सन्तान का प्रयोजन निवृत्त हो चुका, अतः गर्भवती से समागम निषिद्ध है ॥ ९६ ॥ स्त्री खेत है पुरुष बीज है । खड़ी खेती में पुनः बीज नहीं डाला जाता अतः गर्भवती से समागम निषिद्ध है ॥ ३३ ॥ पति पत्नी में प्रवेश कर के इस संसार में गर्भ हो कर पैदा होता है। गर्भ के प्रयोजनार्थ ही पति को पत्नी से समागम की आज्ञा है अतः गर्भ होने पर उस से समागम करना निषिद्ध है ॥ ८ ॥ अतः आप का यह लिखना कि—

"गर्भवती स्त्री अपने पति से भोग करे तो क्या ज़हर चढ जाये" वेद शास्त्र के विरुद्ध और पाप है। और गर्भवती से समागम में व्यभिचार दोष, कन्या समागमदोष, पुंसमागम दोष, गर्भपात का खतरा, लड़का लड़की गर्भ में जो हैं उन को व्यभिचार की तालीम, आदि अनेक दोष हैं।

( २ ) साधारण अवस्था में एक समय में एक स्त्री के एक पति तथा एक पति के एक स्त्री की वेद आज्ञा देता है जैसे कि—

इहैवस्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥
ऋ० १० । ८५ । ४६ ॥

भाषार्थ—तुम दोनों पति पत्नी यहाँ ही घर में रहो। एक दूसरे से पृथक् मत होवो। पुत्रों तथा पौत्रों के साथ क्रीडा करते हुये अपने घर में आनन्द से रहते हुये तुम दोनों पूर्ण आयु प्राप्त करो ॥ ४६ ॥

किन्तु आपत्ति काल में वेद ने स्त्री के लिये दूसरे पति तथा पुरुष के लिये दूसरी स्त्री की आज्ञा दी है। जैसा कि—

या पूर्वं पतिं विस्वाथान्यं विन्दते परम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः ॥
(अथर्व० । ६ । ५ । २७)

भाषार्थ—जो स्त्री पहिले पति को प्राप्त हो के उस के पीछे आपत्तिकाल में दूसरे दूसरी वार होने वाले पति को प्राप्त करती है। वे दोनों पति पत्नी अपरिमितयज्ञ को धारण करते हैं। और वियोग को प्राप्त नहीं होते ॥ २७ ॥

इस मन्त्र में दूसरे पति का जो "परम्" विशेषण दिया है उस का यह मतलब है कि जो स्त्री दूसरा पति धारण करना चाहती हो वह ऐसे ही पुरुष को दूसरा पति बना सकती है जो पुरुष पहिले एक स्त्री को स्वीकार कर चुका हो और दूसरे दर्जे पर इस स्त्री को स्वीकार करे।

इस मन्त्र से साबित है कि आपत्तिकाल में स्त्री और पुरुष दोनों को दूसरे पति तथा दूसरी पत्नी के स्वीकार करने की आज्ञा है।

स्मृतियों ने इस की व्याख्या करते हुये अनेक अवस्थाओं का वर्णन किया है जिन में स्त्री को दूसरे पति तथा पुरुष को दूसरी स्त्री का अधिकार स्वीकार किया है जैसा कि—

(१) प्रदेश जाने पर (२) खोये जाने पर (३) मर जाने पर (४) नपुंसक बन्ध्या होने पर (५) दीर्घ रोग होने पर (६) द्वेष होने पर (७) पागल होने पर (८) पतित होने पर (९) कोढ़ी होने पर (१०) सन्तान मरते रहने पर (११) कन्यायें ही पैदा होने पर (१२) कड़वा बोलने पर (१३) सन्यास लेने पर (१४) शराबी होने पर (१५) दुराचार होने पर (१६) प्रतिकूल होने पर (१७) मारने पीटने का स्वभाव होने पर (१८) नित्य फजूल खर्च होने पर (१९) जुवा आदि व्यसन होने पर

(मनु ९।७६ से ८१-१६७)

जहां पर दूसरे स्मृतिकारों ने उपरोक्त अवस्थाओं में स्त्री को दूसरे पति तथा पति को दूसरी स्त्री का अधिकार वर्णन किया है वहां ऋषि दयानन्द जी ने "स्त्री गर्भवती हो पुरुष से रहा न जाये" इस अवस्था को भी आपत्त धर्म्म में ही वर्णन किया है। और ऐसी अवस्था में पुरुष को दूसरी स्त्री का हक़ दिया है। यह अवस्था भी स्वामी जी की कल्पित नहीं है अपितु प्राचीन काल में इस पर आचारण भी होता रहा है जैसा कि—

गांधार्य्यां क्लिश्यमानायामुदरेण च विवर्द्धता।
धृतराष्ट्रं महाराजं वैश्या पर्य्यचरत् किल॥३९॥
तस्मिन् संवतसरे राजन् धृतराष्ट्रान्महायशाः।
जज्ञे धीमांस्ततस्तस्यांयुयुत्सुः करणोनृप ॥४०॥

(महा० आदि० अ० ११५)

भाषार्थ—पेट के बढ़ जाने से गांधारी के क्लेश पाने के समय में निश्चय से एक वश्या ने राजा धृतराष्ट्र की सेवा की

॥३९॥ उस एक वर्ष के बीतने पर धृतराष्ट्र से उस वैश्या में बुद्धिमान् महायशस्वी युयुत्सु पैदा हुआ ॥४०॥

अतः स्वामी जी का ऐसी अवस्था में गर्भवती से समागम न करने, वैश्या गमन, व्यभिचार से बचने के लिये नियोग का प्रतिपादन वेद, स्मृति, इतिहास और युक्ति के अनुकूल ही है।

रही बात गर्भवती से नियोग करने की, सो बेशक यह बात ठीक है कि वेदानुकूल शास्त्रों और इतिहासों में इस प्रकार की घटना मिलनी असंभव है। किंतु पौराणिक इतिहासों के लिये संसार में कोई बात असंभव नहीं है। और सनातन धर्म्म के मान्य ग्रन्थों में ऐसी घटना का मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है जैसा कि—

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापिवा सती।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ़ इति चोच्यते ॥१७३॥

(मनु० ९)

अथोतथ्य इति ख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा।
ममता नामतस्यासीद्भार्य्या परम सम्मता ॥८॥
उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम्।
वृहस्पतिर्वृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥९॥
उवाच ममतांतंतु देवरं वदतांवरम्।
अन्तर्वत्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठे नारम्यतामिति ॥१०॥
अयं च मे महाभाग कुक्षावेववृहस्पते।
औतथ्यो वेदमन्त्रापि षडंगं प्रत्यधीयत ॥११॥
अमोघरेता स्तवं चापिद्वयोनि स्त्यत्र संभवः।
तस्मादेवं च न त्वद्य उपरमितुमर्हसि ॥१२॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्वृहस्पतिरधी रधीः।

कामात्मानं तदात्मानंनशशाक नियच्छितुम् ॥१३॥
सब भूवततः कामी तया सार्द्धमकामया।
उत्सृजन्तन्तु तंरेतः सगर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥१४॥
भोस्तात मागमः कामं द्वयोर्न्नास्तीह संभवः।
अल्पाऽवकाशो भगवन् पूर्वंचा हमि हागतः ॥ ५॥
अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्तुमर्हसि।
अश्रुत्वैवतु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य वृहस्पतिः ॥१६॥
जगाम मैथुनायैव ममतांचारुलोचनाम्।
शुक्रोत्सर्गे ततोवुद्धवा तस्यागर्भगतो मुनिः।
पदभयामारोधयन्मार्गं शुक्रस्य च वृहस्पतेः ॥१७॥
स्थानमप्राप्तमथ तद्रेतः प्रतिहतं तदा।
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो वृहस्पतिः ॥१८॥
तद्दृष्ट्वा पतितंशुक्रं शशापस्व रुषान्वितः।
उतथ्य पुत्रं गर्भस्थं निभत्स्यं भगवानृषिः॥१९॥
यन्मां त्वमीदृशे काले सर्वं भूतेप्सिते सति।
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यति ॥ २०॥
स वै दीर्घतमानाम शापादपि रजायत।
वृहस्पते वृहत्कीर्ते वृहस्पति रिवोजसा ॥ २१ ॥
जात्यन्धो वेद वित् प्राज्ञः पत्नीं लेमे स विद्यया ॥ २२ ॥
( महा० आदि० अ० १०४ )
वृहस्पति र्मुनिवरो मोहितः शिव मायया।
भ्रातृपत्न्या वशी रे मे भरद्वाजस्ततीऽभवत् ॥ ३८ ॥
( शिव० उमा० अ० ४ )

भाषार्थ—जिस गर्भिणी स्त्री का जान कर या न जान कर भी संस्कार किया जावे वह विवाह कराने वाले का ही गर्भ

माना जावेगा। और उस पुत्र का नाम सहोढ पुत्र होगा। (मनु)

कहिये महाराज ! न जानने की अवस्था में चतुर्थी कर्म की विधि को भी पूरा किया जावेगा या नहीं।

पूर्व काल में उतथ्य नाम का प्रसिद्धमहान् ऋषि तथा ममता नाम वाली उसकी परम सुन्दरी स्त्री थी ॥ ८ ॥ उतथ्य का छोटा भाई देवताओं का पुरोहित, महान् तेजस्वी, वृहस्पति ममता पर मोहित हो गया ॥९॥ बोलने वालों में श्रेष्ट देवर वृहस्पति को ममता ने कहा। मैं तेरे बड़े भाई से गर्भवती हूं अतः तू सबर कर॥१०॥ और हे महाभाग यह मेरी कोख में उतथ्य का पुत्र यहां भी छे अंगों सहित वेद को पढ रहा है॥११॥और आपका वीर्य्य भी व्यर्थ जाने वाला नहीं है और दोनो का रहना यहां गर्भ में संभव नहीं। इसलिए आज तुझ को ऐसा नहीं करना चाहिये। टल जाना ही बेहतर है ॥१२॥

इस प्रकार से कहे जाने पर बुद्धिमान् वृहस्पति काम से मोहित अपनी आत्मा को क़ाबू में न रख सका ॥१३॥ तब वह कामी वृहस्पति उस अकामा ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त हो गया। उस वीर्य्य को छोड़ते हुये वृस्पति को गर्भ में बैठा हुवा मुनि कहने लगा ॥१४॥ हे चाचा जी ! काम में मोहित मत होवो यहां पर स्थान थोड़ा है और मैं यहां पर पहिले ही आया हुआ हूँ ॥ १५॥ आपका वीर्य व्यर्थ जाने वाला नहीं अतः आप मुझे कष्ट न दें। उस गर्भ मे बैठे हुये की बात को न सुन कर वृहस्पति ॥१६॥ उस सुन्दर नेत्रों वाली ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त होगया, उसके गर्भ में बैठे हुये मुनि ने वीर्य्य के प्रवेश का समय जान कर वृहस्पति के वीर्य्य के रास्ते को दोनों पात्रों से रोक दिया ॥१७॥ तब उसका वीर्य स्थान

को प्राप्त न होकर वापिस धकेला हुवा अचानक ज़मीन पर गिर पड़ा। तब वृहस्पति ने क्रोध में आकर ॥१८॥ गुस्से से वीर्य्य को गिरे हुये देख कर शाप दिया। और उतथ्य के पुत्र को भगवान ऋषि बृहस्पति ने गर्भ में बैठे को ही धमकाया ॥१६॥ जो तू मुझ को सब प्राणियों से वांछित इस प्रकार के समयमें इस प्रकार की बात कहता है इसलिए तू महा अन्धकार में प्रवेश करेगा ॥२०॥ वह ऋषि के शाप से दीर्घतमा नाम का ऋषि पैदा हुवा जो कि तेजस्वी बृहस्पति के समान ही था॥२१॥

और जन्म से अन्धा वेदपाठी तथा बुद्धिमान था। जिस ने विद्या के बल से पत्नी को प्राप्त किया है ॥ २२ ॥ ( महाभारत )

श्रेष्ठ मुनि वृहस्पति ने शिव की माया से मोहित हो कर अपने भाई की स्त्री से समागम किया जिस से भरद्वाज पैदा हुए। ( शिव )

अब आप अपने ख्याल के अनुसार अठारह पुराणों तथा महाभारत के कर्त्ता व्यास जी से पूछ सकते हैं कि इस में क्या गूढ फिलासफी है। जब कि ममता ने एक लडका भरद्वाज पैदा कर के भोग करने वाले वृहस्पति को दे दिया और एक लड़का दीर्घतमा पहिले से ही पेट में बैठा था। तब दूसरे को कहां रक्खा? कैसे पैदा हुआ? इत्यादि। मैं आशा करता हूं कि व्यास जी आप की पूरी पूरी तसल्ली कर देंगे।

(४४७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ११२ में लिखा है कि "एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती है" वेद में इस की कहीं पर भी चर्चा नहीं। पृ० ४५ पं० ३।

उत्तर—आप ने तो उचित अनुचित रूप से आर्य्य समाज के विरोध का ठेका लिया हुआ है। वरना स्वामी जी ने उक्त नियम भी वेद के आधार पर ही लिखा है और लेख की समाप्ति पर वेद का प्रमाण दिया है। आपने अपने स्वभावानुसार स्वामी जी का आधा पाठ देकर जनता को भ्रम में डालने का यत्न किया है। देखिये स्वामी जी का पूरा लेख इस प्रकार से है कि—

"ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो २ अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती और एक मृत स्त्री के पुरुष भी दो अपने लिये और दो दो चार अन्य विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर दश २ सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है।

इमांस्त्वमिन्द्र मीढवः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

(ऋ० १०।८५।४५)

हे वीर्य्य सींचने में समर्थ ऐश्वर्य युक्त पुरुष! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ और सौभाग्य युक्त कर विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान हे स्त्री! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पति को समझ"।

इस वेद मन्त्र से यह स्पष्ट है कि स्त्री को दश तक सन्तान तथा ग्यारह तक पति करने की आज्ञा तथा पुरुष को दश तक सन्तान और ग्यारह तक स्त्रियाँ करने की आज्ञा है। इस वेद मन्त्र के आधार पर ही उपरोक्त नियम स्वामी जी ने लिखा है कि नियोग से दश सन्तान किस प्रकार से पैदा करें।

और एक नियोग में कितनी सन्तान पैदा की जा सकती है। इस विषय में मनु जी भी लिखते हैं कि—

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तोवाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथं चन ॥६०॥
द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः।
अनिर्वृत्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्म्मतस्तयोः ॥६१॥

(मनु० ६)

भाषार्थ—विधवा में नियोग करने वाला पुरुष शरीर के घी लगा कर चुप चाप रात्री में एक पुत्र उत्पन्न करे, दूसरा कभी भी न करे ॥६०॥ स्त्रियों में सन्तान पैदा करने की इस विधि को जानने वाले कई आचार्य्य दूसरी सन्तान का पैदा करना मानते हैं। स्त्री पुरुष के धर्म्म को देखते हुये फिर नियोग की निवृत्ति कथन नहीं करते हैं ॥६१॥

अब ख़्याल करें कि स्त्री को अपनी ज़िंदगी में दश तक पुत्र पैदा करने का अधिकार है और ग्यारह तक पति करने का और प्रत्येक नियोग में कम से कम एक सन्तान और अधिक से अधिक दो सन्तान पैदा करने की आज्ञा है, ऐसी सूरत में प्रथम पक्ष में एक स्त्री एक अपने लिये तथा एक २ सन्तान अन्य नौ पुरुषों के लिये पैदा कर सकती हैं। दूसरे पक्ष में प्रत्येक स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार पुरुषों के लिये सन्तान पैदा कर सकती हैं। चूंकि स्वामी जी द्वितीय पक्ष के पोषक हैं। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेद के अनुकूल है।

आप कोई ऐसा वेद मन्त्र पेश करें जिस से यह साबित हो कि स्वामी जी की यह तहरीर वेद के बरखिलाफ़ है।

हमें यह पता नहीं लगा कि आप को स्वामी जी के लेख में किस अंश में शंका है। (१) पतियों की गिनती में शंका है (२) सन्तान की गिनती में शंका है (३) सन्तान पैदा करने के तरीके पर शंका है

(१) यदि आप को पतिओं की गिनती पर शंका है तो यह शंका निर्मूल है क्योंकि स्वामी जी के उपरोक्त लेख में तो विवाहित पति समेत छठे पति तक ही नियोग करने की नौबत आवेगी। किन्तु वेद ने स्त्री को ग्यारह पति तक नियोग की आज्ञा दी है जैसा कि—

पतिमेकादशं कृधि ॥ऋ० १०।८५।४५॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः।

ब्रह्मा चेद्वस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८॥

(अथर्व० ५।१७।८)

भाषार्थ—हे स्त्रि! तू ग्याहरवें तक पति कर सकती है॥४५॥ यदि जो स्त्री के पहिले दश पति ग़ैर ब्राह्मण हों उसके पश्चात यदि ब्राह्मण उसका हाथ पकड़ ले तो वही एक प्रकार से पति गिना जावेगा ॥८॥

वेद में तो स्त्री को केवल ग्यारह पति तक ही करने की आज्ञा है। किंतु पुराणों में तो एक एक स्त्री के इक्कीस २-पति करने का भी इतिहास मौजूद है। जैसा कि पद्मपुराण में दिव्या देवी के इक्कीस पतियों का वर्णन है कि—

एक विंशति भर्तारः काले काले मृतास्तदा।

ततो राजा महा दुःखी संजातः ख्यात विक्रमः ॥६६॥

(पद्म० भूमि० अ० ८५)

वधव्यं भुञ्जते सा तु दिव्या देवी सुपत्रक ॥४१॥
(पद्म० भूमि० अ० ८६)

भाषार्थ—इस प्रकार से उस दिव्या देवी के इक्कीस पति समय २ पर मृत्यु को प्राप्त हुए। तब दिव्या देवी का पिता प्रसिद्ध बहादुर राजा दिवो दास महा दुःखी हुवा ॥६६॥ हे पुत्र! वह दिव्य देवी तो अब विधवा पन का भोग कर रही है ॥४१॥

ये तो समय २ पर इक्कीस पतियों का वर्णन है किंतु पुराणों में तो एक स्त्री को एक ही समय में भी दश तक पतियों का वर्णन मौजूद है जैसा कि—

तथैव मुनिजा वार्क्षीतपोभिर्भावितात्मनः।
संगताभूद्दश भ्रातृनेक नाम्नः प्रचेतसः ॥ १५ ॥
( महा० आदि० अ० १६६)

भाषार्थ—तथा मुनि की पुत्री वार्क्षी भी तप से पवित्र आत्मा वाले प्रचेतस नामके दश भाइयों से एक ही समय में विवाहित थी। ॥१५॥

अतः पतियों की संख्या पर तो आप शंका कर ही नहीं सकते।

(२) अब रही बात सन्तान की संख्या की तो वेद तो प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिये सारी आयु में केवल दश सन्तान पैदा करने की आज्ञा देता है जैसा कि—

दशास्यां पुत्रानाधेहि ॥ ऋ० १० । ८५ । ४५॥

भाषार्थ— हे पुरुष तू इस स्त्री में दश तक सन्तान पैदा कर सकता है ॥ ४५ ॥ और स्वामी जी ने भी इस वेद की आज्ञा के अनुकूल दश पुत्रों के पैदा करने की ही आज्ञा

दी हैं। किन्तु पौराणिक साहित्य में तो सन्तानों की सेनायें वर्णित हैं। जसा कि—

इतिपुत्रशतं राजन् कन्या चैव शताधिकाः ॥१५॥

( महा० आदि० अ० ११७ )

षष्टिः पुत्र सहस्राणि तुम्ब भेदा द्वेनिः सृता॥१७॥

(बाल्मी० बाल० स० ३८ )

शशविन्दोश्चभार्याणां सहस्राणि दशाच्युत ।

एकैकस्यां सहस्रन्तु तनयाणामभूत्तदा ॥ ११ ॥

(महा० शान्ति० अ० २०८

भावार्थ—राजा धृतराष्ट्र के इस प्रकार से सौ पुत्र और सौ से अधिक एक कन्या थी। १५। राजा सगर के हां तूम्बे के फूटने से साठ हज़ार पुत्र पैदा हुए। १७। राजा शशविन्दु के दश हज़ार स्त्रियां थीं और एक २ स्त्री के एक २ हज़ार पुत्र थे, गोया राजा शशविन्दु के एक करोड़ पुत्र थे ॥ ११ ॥ ऐसी अवस्था में आप को पुत्रों की संख्या पर क्या आपत्ति हो सकती है।

(३) अब रह गई केवल एक बात, और वह है पुत्रों के पैदा करने का तरीका, सो यह बात स्पष्ट है कि जब एक नियोग में दो से अधिक पुत्र पैदा नहीं किये जा सकते तो दश सन्तानों के लिये कम से कम पाँच पुरुषों से नियोग करना पड़ेगा। इस प्रकार से दो पुत्र अपने लिये तथा दो दो अन्य चार पुरुषों के लिये स्वयं सिद्ध हो गये जैसा कि इतिहासों में आता भी है कि—

(१) माद्री ने दो अश्विनी कुमारों से दो पुत्र नकुल तथा सहदेव उत्पन्न किये।

(२) कुन्ती ने चार पतियों सूर्य्य, धर्म्म, वायु और इन्द्र से चार पुत्र कर्ण, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को पैदा किया।

(३) सत्यवती ने दो पतियों पराशर तथा शान्तनु से तीन पुत्र व्यास, चित्रांगद, और विचित्रवीर्य्य को पैदा किया।

(४) द्रौपदी ने पांच पतियों से पांच पुत्र पैदा किये।

(५) आपके यहां तो इस प्रकार की कथा भी मौजूद है कि—

"विश्वामित्र ने अपने शिष्य गालव से गुरु दक्षिणा में आठ सौ शामकरण घोड़े मांगे। गालव घोड़ों की प्राप्ति के लिए राजा ययाति के पास गया। ययाति के पास घोड़े न थे। उसने अपनी कन्या माधवी को दे दिया कि इस के बदले शामकरण घोड़े मिल जावेंगे। तब दो सौ घोड़ों के बदले माधवी से एक पुत्र वसुमना नाम वाला अयोध्या के राजा हर्यश्व ने पैदा किया। फिर माधवी से दो सौ घोड़ों के बदले काशी के राजा दिवोदास ने एक पुत्र प्रतर्दन नाम वाला पैदा किया, उस के पश्चात् दो सौ घोड़ों के बदले भोज नगर के राजा उशीनर ने माधवी से एक पुत्र शिवी नाम पैदा किया और कोई राजा न मिलने पर गालव ने छे सौ घोड़े लिये और साथ में माधवी को ले कर विश्वामित्र के पास आ कर कहा कि महाराज दो सौ घोड़ों के बदले इस से एक पुत्र आप पैदा कर लें। विश्वामित्र ने यह देख कर ठंडा सांस लिया और कहा कि हे गालव तू ने पहिले मुझे पता क्यों न किया वरना इस माधवी से आठ सौ घोड़ों के बदले मैं ही चार पुत्र पैदा कर लेता। तब विश्वामित्र ने माधवी से अष्टक नाम का एक पुत्र पैदा कर लिया।" ( महा० उद्योग० अ० १०५ से १२१ )

भला जब इस प्रकार की कथायें आप के पाञ्चवें वेद महाभारत में मौजूद हैं। तो फिर स्वामी जी के वेदानुकूल लेख पर आप का आपत्ति करना सर्वथा निर्मूल है। अतः—

"इमां त्वमिन्द्रमीढवः" उत यत् पतयो दश स्त्रियः"

इन वेद मन्त्रों की मौजूदगी में कौन कह सकता है कि स्वामी जी का उपरोक्त लेख वेदानुकूल नहीं है।

( ४४८ ) प्रश्न—"उदीर्ष्वनारीति" स्वामी दयानन्द जी ने इस वेद मन्त्र के अर्थ में हिन्दू जाति की दया का छुरी से गला काटा है। जिस के आगे प्राण प्यारे पति की लाश पड़ी है। उस को यह कौन कहेगा कि पहिले तू इन आये हुये मनुष्यों में से किसी को नियोगी पति बनाले और लड़कों के बांटने का फैसला कर ले, तब हम तेरे मरे हुये पति की लाश उठावेंगे।

पृ० ४५ पं० ११।

उत्तर—स्वामी दयानन्द जी ने इस मन्त्र का अर्थ करके आर्य्य जाति को विधवाओं पर पौराणिक पोप मण्डल से किये गये अत्याचार को मलियामेट कर डाला है। और उन को पुरुषों की भाँति ही पति के मरने पर दूसरे पति का हक़ प्रदान किया है। स्वामी जी के अर्थ में यह कहीं भी नहीं लिखा कि पति की लाश के मौजूद होते हुये स्त्री को ऐसा कहा जाए। और स्वामी जी इस मन्त्र को शमशान भूमि में उच्चारण करने का भी नहीं मानते। देखिये स्वामी जी का अर्थ इस प्रकार से है कि—

उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ॥

ऋ० १०। १८। ८॥

भाषार्थ—हे विधवे ! तू इस मरे हुये पति की आशा छोड़ के बाक़ी पुरुषों में से जीते हुये दूसरे पति को प्राप्त हो। और इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो तुझ विधवा के पुनः पाणि ग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो यह जना हुआ बालक उसी नियुक्त पति का होगा। और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान तेरी होगी। ऐसे निश्चय युक्त हो। और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे ॥ ८ ॥

इस वेद मन्त्र के अर्थ में "इस" शब्द से वह मृत्त पति अभिप्राय है कि जिस को मरे हुये कुछ समय व्यतीत हो चुका है। और पति के मरने के कुछ समय पश्चात् पञ्चायत उस स्त्री को आ कर कहती है कि हे स्त्रि ! तू इस मृत्तक पति के शोक को छोड़ कर अन्य पति को प्राप्त हो। "वर्तमान समीपे वर्तमानवद्वा" "वर्तमान के समीप वाले समय की भांति ही प्रयोग किया जाता है" व्याकरण के इस नियम के अनुसार भूतकाल के वाचक "इस" शब्द को वर्तमान की भांति प्रयोग किया गया है। इस को उर्दू में "माज़ी क़रीब" कहते हैं। अतः यह मन्त्र पति का लाश की मौजूदगी में बोलने का वा स्त्री को पूछने का उपदेश नहीं करता अपितु पति के मरने के कुछ समय पश्चात् ( जैसी कि पञ्चायत की रस्म हो ) विधवा स्त्री से पूछने का उपदेश करता है कि—

"तू ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है या दूसरा पति स्वीकार करना चाहती है, यदि दूसरा पति चाहती है तो उसका प्रकार यह है"—

आप ने यह नहीं बताया कि स्वामी जी ने कौन से शब्द का अर्थ ग़लत किया है या कौन सी कल्पना मन्त्र के अर्थों के विरुद्ध की है। अतः आप का स्वामी जी के अर्थ को कल्पित बतलाना और स्वामी जी के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना कर के आक्षेप करना सर्वथा निर्मूल है।

( ४४६ ) प्रश्न—अर्थ इस मन्त्र का यह है कि—

हे नारि ! मृत्तक पत्नी ! जीवित पुत्र पौत्रादि और निवास वर को देख कर इस स्थान से उठ। तेरे बिना पुत्रादिकों का पालन कौन करेगा। इस मृत्तक के समीप जो तू पड़ी है यहाँ से उठ चल, कारण यह है कि विवाह समय में हस्त ग्रहण करने वाले तथा गर्भाधान करने वाले इस पति के सम्बन्ध से प्राप्त हुये तुम्हारे इस पत्नीपन को देख कर पति के साथ मरने का जो निश्चय किया है। इस निश्चय को छोड़ कर उठ। पृ० ४७ पं० २२।

उत्तर—आप ने स्वामी जी के यथार्थ अर्थ को तो कल्पित बतला दिया और स्वयं मन्त्र का मनमाना कल्पित अर्थ कर डाला। क्या इसी का नाम ईमानदारी है। आप के अर्थ में निम्न प्रकार से मिथ्या कल्पना है।

( १ ) "पुत्र पौत्रादि और निवास घर को देख कर" यह अर्थ मन्त्र के कौन से पदों का है। निश्चित यह आप की मनमानी निर्मूल कल्पना है।

( २ ) "तेरे बिना पुत्रादिकों का पालन कौन करेगा" क्या इस अर्थ के कहने वाले कोई पद मन्त्र में मौजूद हैं। यदि नहीं तो मिथ्या कल्पना होने में क्या सन्देह है।

( ३ ) "दिधिषुः" शब्द का अर्थ मृतक विवाहित पति करना सर्वथा आत्म हत्या ( ज़मीर फरोशी ) है । क्यों कि "दिधिषुः" शब्द का अर्थ "पुनर्विवाह में प्राप्त स्त्री के दूसरे पति का है" जैसा कि—

पुनर्भूर्दिधिषू रूढा द्विस्तस्या दिधिषुः पतिः ।
स तु द्विजोऽग्रेदिधिषूः सैव यस्य कुटुम्बिनी ॥ २३ ॥

( अमरकोष १६ । २३ )

भाषार्थ—पुनर्भू, दिधिषू, ये दो नाम दो बार विवाही स्त्री के हैं । "दिधिषु" यह एक नाम दो बार विवाही स्त्री के पति का है । "अग्रेदिधिषू" यह एक नाम दो बार विवाही स्त्री के पति द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो उस का है ॥२३॥

सायणाचार्य्य ने भी तैत्तिरीयारण्यक में इस का ऐसा ही अर्थ किया है जैसा कि—

हे नारि त्वं इतासुम् गत प्राणं एतम् पतिं उपशेषे उपेत्य शयनं करोषि उदीर्ष्व अस्मात्पतिसमीपादुत्तिष्ठ जीवलोकमभि जीवन्तं प्राणि समूहमभिलक्ष्य एहि आगच्छ त्वम् हतस्तग्राभस्य पाणिग्राहवतः दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्यु एतत् जनित्वम् जायात्वं अभिसंबभूथ अभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि ।

( तैत्तिरीयारण्यक ६ । १ । १४)

भाषार्थ—हे नारि ! तू इस मृत्त पति के पास लेटी है । इस पति के समीप से उठ । जीवित पुरुषों को विचार कर आ और तू हाथ पकड़ने वाले पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले इस पति को जाया भाव ( स्त्री भाव ) से अच्छी तरह प्राप्त हो ।

कहिये महाराज ! अब यह वह दया भाव कहां गया । जब कि आप के सायणाचार्य्य पति की लाश की मौजूदगी में ही

स्त्री को पुनर्विवाह का उपदेश कर रहे हैं। क्यों न हो—"गिला औरों का करते थे क़सूर अपना निकल आया" योंहि ख्वाहमख्वाह स्वामी दयानन्द जी को बदनाम कर रहे थे। भला यह कहां की ईमानदारी है कि अपने आचार्य्यों के अर्थ को स्वामी जी पर मढ कर आर्य्य समाज पर नुक़ताचीनी करना।

व्यास जी भी इस मन्त्र को नियोग का विधायक हीं मानते हैं जब कि वह लिखते हैं कि—

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥ ६ ॥

( महा० आदि० अ० १०४ )

नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही गिना जाता है यहां व्यास जी ने "हस्तग्रभस्य" का अनुवाद ही "पाणिग्राहस्य" किया है।

अतः आप का "दिधिषु" शब्द का अर्थ 'विवाहित मृत्तपति' करना सर्वथा वेद इतिहास कोष सायण आदि के विरुद्ध है।

( ४ ) "पति के साथ मर जाने का जो निश्चय किया है इस निश्चय को छोड़ कर उठ" इस अर्थ के मन्त्र में कोई पद नज़र नहीं आते। अतः सिद्ध हुआ कि स्वामी जी का अर्थ यथार्थ तथा आप का सर्वथा निर्मूल कपोलकल्पित ही है।

( ४५० ) प्रश्न—आश्वलायन गृह्य सूत्र का भी यही लेख है तथा इस मन्त्र का "पितृमेध" देवता और अन्त्येष्टि कर्म में विनियोग है। पृ० ४८ पं० १।

उत्तर—यदि आप आश्वलायन गृह्य सूत्र की बात ढकी ढकाई रहने देते तो बेहतर था। किन्तु आप को भी सनातन धर्म्म की पोल गुप्त रखनी स्वीकार नहीं है, तो लीजिये हम

बताये देते हैं कि आश्वलायन का इस मन्त्र को अन्त्येष्टि में विनियोग (इस्तेमाल करना वेद के विरुद्ध है। क्योंकि इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय पितृयज्ञ है और पितरों की तृप्ति सन्तान से होती है। जैसा कि लिखा है कि—

पितरः प्रजया तृप्ता इतिहि श्रुतिरब्रवीत् ॥ २६ ॥

(शिव० कैलाश० अ० १२)

पितरों की तृप्ति सन्तान से होती है। ऐसा ही वेद कहते हैं ॥ २६ ॥ इस से साबित है कि सन्तान का पैदा करना ही "पितृमेध" या "पितृयज्ञ" या "पितृतर्पण" है। श्मशान कर्म का नाम पितृमेध नहीं है। अतः इस मन्त्र का विनियोग (इस्तेमाल) श्मशान में ठीक नहीं, अपितु विवाह वा नियोग पुनर्विवाह में ठीक है, आश्वलायन गृह्य सूत्र आपके अर्थ की ताईद नहीं करता अपितु सनातन धर्म की नंगी तसवीर पब्लिक के सामने पेश करता है। ज़रा ग़ौर से पढ़िए—

दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत्पित्र्यं पृषदाज्य ॥ १७१ ॥

तेन निःपुरीषमेके कृत्वापृषदाज्यस्य पूरयन्ति।

इस प्रेत कर्म में दही और घी लाते हैं। इसी का नाम पृष दाज्य है। कई आचार्य्य कहते हैं कि मृतक के पेट को गंदगी से खाली करके उस में पृषदाज्य अर्थात् दही और घी भर दिया जावे।

पीठ च क्रेण गोयुक्तेनेत्येके ॥ ३ ॥

कई आचार्य्य कहते हैं कि बैल जुते गड्ढे से मृतक को श्मशान में ले जाया जावे।

अनुस्तरणीम् ॥ ४ ॥

प्रेतमनुस्तर्य्यते या स्त्री पशुः सानुस्तरणी।

अनुस्तरणीका प्रयोग करे। मृतक के पीछे जाकर जो उसको पवित्र करती है वह स्त्री या पशु अनुस्तरणी कहाता है।

ग्राम् ॥ ५ ॥

वह अनुस्तरणी गौ की प्रयोग की जावे।

र व्ये बाहुबध्वानु संकालयन्ति ॥ ८ ॥

पशु के दायें ब हु में रस्सी बांध कर लाश के पीछे २ ले जाते हैं, वेदी बना कर मृतक को चिता में लिटा कर।

उत्तरतः पत्नीम् ॥ १६ ॥

ततः प्रेतस्योत्तरतः प्रेतस्य पत्नीं संवेशयन्ति शाययन्ती त्यर्थः।

प्रेत के उत्तर की तरफ प्रेत की पत्नी को सुलाते हैं।

धनुश्च क्षत्रियाय ॥ १७ ॥

प्रेतःक्षत्रियश्चेद्धनुरप्युत्तरतः संवेशयन्ति।

प्रेत यदि क्षत्रिय हो तो धनुष भी उसके उत्तर की तरफ लिटाते हैं।

तामुत्थापयेद्देवरः पति स्थानीयोऽन्तेवासी।

जरद्दासोवोदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकमिति ॥ १८ ॥

अनेन ज्ञायते पति कर्तृकं कर्म पुंसवनादि पत्यसंभवे देवरः कुर्य्यादिति ॥

उस स्त्री को उठावे पति का स्थानी देवर या शिष्य या बूढ़ा नौकर ("उदीर्ष्व" यह मन्त्र पढ़ कर)। इससे जाना जाता है कि पति के करने के योग्य काम पुंसवनादि पति के अभाव में देवर करे।

कर्ता वृषले जपेत् ॥ १९ ॥

यदि उठाने वाला नौकर हो तो मन्त्र का जप कार्य्य कर्त्ता करे।

अथैतानि पात्राणि योजयेत् ॥ १ ॥

उसके पश्चात् हवन पात्रों को लाश पर चुन दिया जावे।

अनुस्तरणयावपामुत्खिद्य शिरोमुखं प्रच्छाद।

येदग्ने वर्मपरिगोभिर्व्ययस्वेति ॥ १९ ॥

उस गौ की चरबी निकाल कर उस लाश का मुख और शिर उस चरबी से ढक दिया जावे "अग्नेर्वर्म" यह मंत्र पढ़ कर

वृक्का उद्धृत्य पाण्योरादध्यादतिद्रव सारमेयौ श्वानविति दक्षिणे दक्षिणं सव्ये सव्यम् ॥ २०॥

गौ के दोनों फेफड़े निकाल कर मृतक के दोनों हाथों में देवे "अतीति" यह मन्त्र पढ़ कर दायां फेफड़ा दांये हाथ में और बायां फेफड़ा बाँये हाथ में ॥

हृदये हृदयम् ॥ २१ ॥

मृतक के हृदय पर गौ का हृदय रखे।

सर्वां यथाङ्गं विनिक्षिप्य चर्मणा प्रच्छा द्यंममग्नेचमसं मावि जिह्वर इति प्रणीता प्रणयनमनु मन्त्रयते ॥ २४ ॥

गौ के संपूर्ण अंगों को इस प्रकार से लाश के संपूर्ण अंगों पर रख कर और चमड़े से सारी चिता को ढक कर "इममग्ने" इस मन्त्र से मृतक को जलावे।

स एवं विदा दह्यमानः सहैव धूमेन।

स्वर्गं लोकमेतीति ह विज्ञायते ॥ ७।

वह मृतक इस प्रकार से जलाया हुआ धूयें के साथ ही स्वर्ग लोक में पहुंच जाता है, ऐसा जाना जाता है ॥

(आश्वलायन अध्याय ४)

कहिये श्रीमान् जी आश्वलायन का यही लेख तो है जिसे आप ने आगे पीछे से छोड़ कर बीच में से अधूरा पेश कर

दिया, कहिये इस में मन्त्र का अर्थ कहां किया है, हां देवर को प्रत्येक गर्भाधानादि संस्कारों में पति का प्रतिनिधि मान कर हमारे ही अर्थ की ताईद की है। आप के अर्थों की नहीं, क्या आश्वलायन का उपरोक्त लेख कभी वेदानुकूल माना जा सकता है, कदापि नहीं। अतः आप का यह प्रमाण पेश करना तथा मानना सर्वथा वेद विरुद्ध है।

( ४५१ ) प्रश्न— प्रथम तो स्वामी जी का अर्थ सभ्यता के बाहर है; दूसरे स्वामी दयानन्द ने "शेषे" क्रिया का अर्थ बाकी किया, जो त्रिकाल में भी समाजी सिद्ध नहीं कर सकते और फिर उस शेषे एक वचन का बहुवचन कर, दिया जो किसी भाषा के भी विद्वान् मानने को तय्यार नहीं तीसरे यदि स्वामी दयानन्द जी का ही अर्थ ठीक मान लिया जावे तो फिर इन चार सूत्रों की क्या गति होगी, क्या धनुष को भी नियोग कराया जावेगा। चतुर्थ सायणादि भाष्यकार स्वामी दयानन्द के विपरीत हमारे अर्थ को लिख रहे हैं। पंचम यदि वेद के इस मन्त्र में यही अर्थ है तो क्या इस अर्थ का एक भी ऋषि को ज्ञान न हुआ, यदि उन को इस अर्थ का ज्ञान हुआ तो फिर बताओ कि इस अर्थ को किस २ ऋषि ने समझ कर किस २ स्त्री के पति की लाश पड़ी रहते कौन २ स्त्री का नियोग कराया। पृ० ४८ पं० २२।

उत्तर—(१) पति के मरने के पश्चात् नियत समय व्यतीत होने पर पञ्चायत का स्त्री से उस की इच्छा का पूछना असभ्यता नहीं अपितु सब लोगों के सामने स्त्री को चिता पर पति के साथ सुलाना और देवर का उसे उठाना और उसी समय दूसरे पति की बात कहना असभ्यता है तथा

पुरोहितों का यजमान की स्त्री को घोड़े के साथ जोड़ना तथा यजमान की स्त्री घोड़े के लिङ्ग को स्वयं खैंच कर अपनी योनी में प्रविष्ट करना असभ्यता है।

(२) "शेष" शब्द का सप्तमी के एक वचन में "शेषे" बनता है और उस का अर्थ बाकी कतई दुरुस्त है। बाकी शब्द एक और अनेक सब के लिये आ सकता है। बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिन का एक वचन समूह अर्थात् बहुवचन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। मिसाल के तौर से इसी मन्त्र में "जीवलोकम्" शब्द एक वचन है किन्तु आपने इसके अर्थ "जीवित पुत्र पौत्रादि," बहुवचन के किये हैं। रही आप की यह बात कि यह क्रिया है सो क्रिया में भी शेषे बनता है और शेष शब्द की सप्तमी के एक वचन में भी शेषे बनता है, अब यह बुद्धि का काम है कि इस मन्त्र में कौन सा प्रयोग मुनासिब है सो स्वामी जी ने ठीक समझा कि पति के साथ चिता पर सोना एक व्यर्थ सभ्यता के विरुद्ध क्रिया है। अतः उन्होंने शेष शब्द की सप्तमी के एक वचन का अर्थ लगा दिया जो युक्ति युक्त ही है। मृतक पति के साथ सोने का काम अच्छा आप को भी नहीं लगा अतः आपने "उत्तरतः पत्नीम्" का अर्थ करते हुये मृतक के उत्तर की तरफ पत्नी को बिठलाया जावे" कर दिया, हालां कि टीकाकार ने साफ तौर से सुलाना अर्थ किया हैं, और बिठलाने से आपके मत अनुसार वेद का "शेषे" 'सोती है' कहना भी व्यर्थ हो जाता है किन्तु पौराणिकों को मृतकों के साथ सुलाने और उनसे सन्तान पैदा करने का असाध्य रोग चिमटा हुआ है जिस के चक्र से राम की माता कौशल्या भी कलंकित हुए

बिना न रह सकी और पौराणिकों ने उसे मृतक घोड़े के साथ समागम करवा कर ही छोड़ा। शरम ! शरम !! हजार शरम !!! है ऐसे अर्थों पर।

(३) इन चार सूत्रों की वही गति होगी जो इन से पहले और पिछले "गौ को श्मशान में ले जाकर उसे मार कर उस की चरबी और मांस आदि को मृतक के साथ जलाने की आज्ञा देने वाले" सूत्रों की होनी चाहिये। अर्थात् इस प्रकार के संपूर्ण लेख वेद विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं हो सकते।

(४) हम तो धनुष को मृतक के साथ में रखना ही व्यर्थ समझते हैं। परन्तु आप के मतानुसार भी यज्ञपात्रों की भांति धनुष को भी जलाने की आज्ञा है। रही धनुष को नियोग कराने की बात सो पौराणिकों के हाँ तो कोई बात असंभव नहीं है जैसा कि मित्र और वरुण ने घड़े से नियोग किया तो अगस्त्य तथा वसिष्ठ पैदा हुए। और भरद्वाज मुनि ने डोने से नियोग किया तो द्रोणा चार्य्य पैदा हो गये तथा गोतम मुनि ने धनुष बाण से नियोग किया जिस से कृपाचार्य्य और कृपि पैदा हुये। जब आप के हां धनुष बाण से सन्तानोत्पत्ति संभव है तो फिर आप को अपने ही सिद्धान्त में शंका का पैदा होना आप के मिथ्या त्व का सूचक है।

(५) हम ऊपर लिख आय हैं कि यही मन्त्र तैत्तिरीयारण्य में आया है और इस पर सायणाचार्य्य का भाष्य है। जो स्वामी जी के अर्थों का अनुमोदन करता है (नं० ४४६)। सायण ने ऋग्वेद के भाष्य में जो इस मन्त्र का अर्थ किया है हमारे विचार में तो वह अर्थ भी हमारे अर्थ के अनुकूल है। किंतु यदि आप के विचार में सायण ने ऋग्वेद में इस का भाष्य आप

के अनुकूल किया है। तो जैसे आपका अर्थ कपोलकल्पित और मिथ्या है वैसे ही सायण का भाष्य भी कपोलकल्पित और मिथ्या है। तथा सायण के अपने ही किये हुये दोनों अर्थों में परस्पर विरोध है। ऐसी सूरत में तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में सायण ने जो इस मन्त्र का अर्थ स्वामी जी के अनुकूल किया है। हमें वह वेदानुकूल होने से प्रमाण है दूसरा नहीं। क्योंकि दूसरा अर्थ स्वयं वेद के ही विरुद्ध है।

(६) पति की लाश की मौजूदगी में स्त्री को दूसरे पति से नियोग करने को कहना यह अर्थ स्वामी जी ने नहीं किया अपितु यह अर्थ आश्वलायन गृह्य सूत्र का है। स्वामी जी ने तो पति के मर जाने के पीछे कुछ समय के पश्चात् पंचायत द्वारा स्त्री से पूछने की आज्ञा दी है कि तू ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है या नियोग करना चाहती है और इस अर्थ का अनेक ऋषियों को ज्ञान हुआ। उन्होंने इस ज्ञान के अनुसार दूसरों को भी नियोग की आज्ञा दी और स्वयं भी नियोग किये आप विचार पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

(१) वेद के इन अर्थों का ज्ञान ऋषि मनु को हुआ जिनहों अपने मनु धर्म्म शास्त्र में नियोग की आज्ञा दी जैसा कि—

देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रियासम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥५९॥

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्म्मोव्यवस्थितः ॥१२०॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः।
क्षेत्रिकस्यतु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्चसः ॥१४५॥

धनंयोबिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेवच ।
सोऽपत्यम् भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैवतद्धनम् ॥१४६॥
यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ।
यस्ययत्पैतृकं रिक्थं सतद्गृह्णीत नेतरः ॥१६२॥

(मनु० ६)

भाषार्थ—सन्तान के क्षय हो जाने पर, देवर से वा सपिंड से विधि पूर्वक नियोग करके सन्तान प्राप्त कर लेनी चाहिये ॥५६॥ छोटा भाई बड़े भाई की स्त्री में यदि पुत्र पैदा करे तो समान विभाग होगा धर्म्म की यही व्यवस्था है ॥१२०॥ वहां नियोग करने वाली में पैदा हुआ पुत्र और सपुत्र के समान दयाभागी है वह खेत वाले का ही बीज गिना जावेगा और वह धर्म्म की सन्तान माना जावेगा ॥१४५॥ यदि कोई मनुष्य मरे हुये भाई के धन और स्त्री को धारण करे तो भाई के लिये सन्तान पैदा करके उस भाई का धन उस सन्तान को दे दे ॥१४६॥ यदि औरस तथा क्षेत्रज पुत्र एक ही जायदाद के वारिस हो जावें तो जो जिस के पिता का धन है वही उस को ग्रहण करे दूसरा नहीं ॥१६२॥

(२) वेद के इन अर्थों का ज्ञान वायु ऋषि को हुआ जिस ने केसरी की स्त्री अंजना से नियोग करके हनुमान को पैदा किया इसी कारण से हनुमान जी को क्षेत्रज पुत्र लिखा है जैसा कि—

स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीम विक्रमः ॥२९॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः ॥३०॥

(वाल्मी० किष्कं० स० ६६)

भाषार्थ—वह तू बलवान केसरी का क्षेत्रज पुत्र है ॥२९॥ और पवन का भी औरस पुत्र है और बहादुरी में भी उस के समान है ॥३०॥

(३) वेद के इन अर्थों का ज्ञान सत्यवती भीष्म और व्यास को हुआ अतः सत्यवती और भीष्मादि की सम्मति से व्यास ने अंबिका, अंबालिका और दासी से नियोग किया जिन से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति हुई (महा० आदि० अ० १०६ )

(४) वेद के इन अर्थों का ज्ञान वेद पारग ब्राह्मणों को हुआ जिन्हों ने क्षत्राणियों से नियोग करके क्षत्रिय वंश को फिर से स्थापित किया (महा० आदि० अ० १०४ श० ४ से ७)

(५) वेद के इन अर्थों का ज्ञान सिद्ध द्विज को हुआ जिसने शारदण्डायनी से नियोग करके दुर्जयादि तीन पुत्रों को पैदा किया। (महा० आदि० अ० १२० श० ३६—३९)

(६) वेद के इन अर्थों का ज्ञान वसिष्ठ को हुआ जिस ने सौदास की स्त्री मदयन्ती से नियोग करके अश्मक नाम के पुत्र को पैदा किया (महा० आदि० अ० १२२ श० २१—२२)

(७) वेद के इन अर्थों का ज्ञान महात्मा वसु को हुआ जिस ने शान्तनु की स्त्री गंगा से नियोग करके भीष्म को पैदा किया। (महा० आदि० अ० ६३ श० ८७)

इत्यादि अनेक ऋषियों को वेद के इस अर्थ का ज्ञान हुआ और उन्हों ने वेद की आज्ञानुसार नियोग करके सन्तान पैदा की—

(४५२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत् (ऋ० १०।१०।१०)

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से संतानोत्पत्ति न हो सकेगी। यह निर्लज्जता की बात है कि स्त्री का पति तो घर में बैठा रहे और दूसरा कोई बाहरी संडा मौज उड़ावे पृ० ४६ पं० ८।

उत्तर—नियोग जैसा पवित्र सिद्धान्त मौज उड़ाने के लिए नहीं अपितु आपत्ति काल में सन्तानोत्पत्ति करने के लिये है। और न ही नियोग करने वाले को बाहरी संडा कहा जा सकता है। क्योंकि वेद की आज्ञा के अनुकूल तरफैन की रज़ामंदी से पंचायत के नियमों के अनुसार विधि पूर्वक उस स्त्री का नियुक्त पति नियत किया जाता है फिर उसे बाहरी संडा कहना कहाँ की सभ्यता है। हां यदि कोई स्त्री पुरुष वेद शास्त्र के विरुद्ध गुप्त रूप से आपस में संयोग करें तो उसे व्यभिचार और उनको संडा कहा जा सकता है। पति के नपुंसक अथवा दीर्घ रोगी होने आदि की अवस्थाओं में पति के जीते हुवे स्त्री को नियोग करके सन्तान पैदा करने की आज्ञा वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि संपूर्ण शास्त्र देते हैं। ऊपर के मन्त्रमें इसी विषय का प्रतिपादन है। इसके अतिरिक्त 'प्राता रत्नमित्यादि'॥ऋ० १।१२५। ॥ के सायण भाष्य में स्पष्ट लिखा है कि—

"यद्यप्यसौ कलिङ्गाख्यस्य राज्ञःपुत्रः तथापि तेन कलिङ्गेन स्वयं वृद्धत्वादप त्योत्पादनाय सामर्थ्यमलभमानेन तदुत्पादनाय याचितो दीर्घतमा ऋषिः उशिग्गामिकाम् अपत्योत्पादनाय प्रेषितया राजमहिष्यातिजरठेन महर्षिणा सह रन्तुं लज्ज मानया स्ववस्त्राभरणैरलंकृत्य स्वप्रतिनिधि-

स्वेन प्रेषितामुशिग्नामिकायोषितं दासी मित्य वगत्य मन्त्रपूतेन जलेनाभिषिच्य ऋषी पुत्रीं कृत्वातया सहरेमे तदुत्वन्नः कक्षीवान्नाम ऋषिः ॥ सायणभाष्य ॥

भाषार्थ—यद्यपि वह कक्षीवान् कलिंग देश के राजा बली का पुत्र था तथापि उस कलिंग राजा ने अपने वृद्ध होने के कारण सन्तान उत्पन्न करने के लिये सामर्थ्य न होने के कारण उससे पुत्र पैदा करने के लिये दीर्घतमा ऋषि के पास भेजी हुई सुदेष्णा रानी ने अति वृद्धदीर्घतमा से समागमकरने में लज्जा मानकर अपने कपड़े और गहनों से सजा कर अपने स्थान में उशिग् नाम की दासी को भेज दिया। दीर्घतमा ऋषि ने उसको दासी जान कर मन्त्रों से पवित्र किये जल से उसको स्नान कराके और उसे ऋषि पुत्री बना कर उसके साथ समागम किया, उससे कक्षीवान् नाम वाला ऋषि पैदा हुवा ( सायण भाष्य )

जब राजा को इस बात का पता लगा कि रानी स्वयं नहीं गई अपितु दासी को भेजा है। तो राजा ने फिर ऋषि को प्रसन्न करके अपनी रानी को उसके पास भेजा। ऋषि ने रानी से नियोग करके सन्तान पैदा की,इस प्रकार से राजा बली का वंश संसार में चला ( महा० आदि० १०४। ४६–५१ )

तब ऋषि ने कहा कि मेरे सारे शरीर के दही नमक और शहद लगा कर यदि सुदेष्णा चाटे तो पुत्र हो सकता है। चुनाँचि सुदेष्णा ने ऐसा ही किया, किन्तु ऋषि की गुदा नहीं चाटी। और लिंग को खूब चाटा इस कारण जो लड़का पैदा हुवा उसके गुदा न थी। किन्तु लिंग बड़ा सुन्दर और मोटा ताजा था ( मत्स्य० अ० ४८ )

मनुस्मृतिमें भी "यस्तत्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा" इस श्लोक में स्त्री को पति के नपुंसक तथा दीर्घ रोगी होने पर नियोग द्वारा सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा मौजूद है।

महाभारत में स्पष्ट लिखा हैं कि जब पाण्डु सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो गया। पाण्डु की आज्ञा से कुन्ती तथा माद्री ने धर्म, वायु, इन्द्र तथा अश्वनि कुमारों से नियोग करके युधिष्टिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को पैदा किया

( महा० आदि० १२३

व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्य्या अद्यप्रभृति पातकम्।
भ्रूण हत्या समं घोरं भविष्यत्यसुखावहम् ॥ १७ ॥
भार्य्यां तथाव्युच्चरतः कौमार ब्रह्मचारिणीम्।
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि ॥ १८ ॥
पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेवच।
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेवहि ॥ १९ ॥

( महा० आदि० अ० १२२ )

भाषार्थ—आज से पति का उलंघन करके व्यभिचार करने वाली स्त्री को गर्भपात के समान दुःखदाई पातक होगा ॥ १७ ॥ और कुमार अवस्था युक्त ब्रह्मचारिणी पतिव्रता स्त्री को उलघंन करके व्यभिचार करने वाले पुरुष को पृथ्वी पर वही पातक होगा ॥१८ पुत्रके लिये जिस स्त्री को पति नियोग करने की आज्ञा दे और वह स्त्री इस आज्ञा का पालन न करे उसको भी वही पातक होगा ॥ १९ ॥

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया।
सपिंडो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात् ॥१६॥

(गरुड़० आचार० अ० ६५)

शत हीनं कृतं राज्यं सुदासस्तनयोऽभवत् ।
तस्मादश्मकश्चैव मदयन्तया वशिष्टजः ॥४०॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० २ अ० १)

दुर्गां निर्जनमाहय तामुवाचहरः स्वयम् ।
बोधयामास विविधं हितं तथ्यम खंडितम् ॥१६३॥
निवेदनं मदीयं च निबोध शलकन्यके ।
शृंगारं देहि भद्रंते हरये परमात्मने ॥१६४॥
ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ६)

भाषार्थ—बजुर्गों की आज्ञानुसार सपिंड वा सगोत्र देवर पुत्र की कामना से पुत्र रहित स्त्री के पास ऋतुकाल में अपने शरीर के घी लगा कर जावे ॥१६॥ राजा सुदास ने सौ वर्ष के लग भग राज्य किया, उसका लड़का अशमक हुआ, जो कि सुदास की स्त्री मदयन्ती में वशिष्ठ से पैदा हुआ ॥४०॥ दुर्गा अर्थात् पार्वती को एकान्त में बुला कर शिव ने स्वयं कहा और विविध प्रकार से अखंडित हितकारी और सत्यवाक्यों का बोध करवाया ॥१६३॥ हे पर्वत की कन्या ! मेरे निवेदन को सुन और समझ । तेरा कल्याण हो, इस परम आत्मा वाले विष्णु के लिये शृंगार दान दे दे ॥१६४॥ क्या आपके विचार में ये सब निर्लज्ज थे। हर्गिज़ भी नहीं । जो बात वेदादि शास्त्रों के अनुकूल हो उसे मानने या करने में लज्जा मानना अज्ञानियों का काम है । हाँ वेद विरुद्ध पाप की बात में प्रत्येक मनुष्य को लज्जा माननी चाहिये । "यदि आप को इस बात के जानने का शौक है कि स्त्री का पति तो बाहर रहे और दूसरा कोई बाहरी संडा आकर मौज उडावे" तो हम आपको आपके पांचवें वेद महाभारत से दिखाकर आपकी तृप्ति कर देते हैं ।

देखिये "युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि गृहस्थी मृत्यु को कैसे जीत सकता है"। भीष्म ने उस के उत्तर में एक इतिहास सुनाया कि "सुदर्शन नाम का एक ब्राह्मण था उस की स्त्री का नाम औद्यवती था उस ने अपनी स्त्री से कहा कि—

अतिथेः प्रति कूलं तेन कर्तव्यं कथंचन ॥४२॥
येनयेनचतुष्येत नित्यमेव त्वया तिथिः।
अप्यात्मनः प्रदानेननते कार्य्या विचारणा ॥४३॥

तुझे अतिथि के प्रतिकूल कभी भी कोई काम नहीं करना चाहिये ॥४२॥ जिस जिस उपाय से नित्य अतिथि संतुष्ट रहे, चाहे अपना शरीर ही दान क्यों न करना पड़े, तुझे इस में विचार नहीं करना चाहिये ॥४३॥ एक दिन सुदर्शन लकड़ियाँ लेने जंगल में चला गया, पीछे से एक ब्राह्मण अतिथि बन कर घर पर आया और उस ने औद्यवती से कहा कि—

यदि प्रमाणं धर्म्मस्ते गृहस्थाश्रम सम्मतः।
प्रदानेनात्मनो राक्षि कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥५४॥

हे रानी! यदि तुझ को गृहस्थ धर्म्म प्रमाण है तो तू अपना शरीर प्रदान करके मुझे प्रसन्न कर सकती है ॥५४॥ यह सुनकर औद्यवती ने और पदार्थों से उसे प्रसन्न करना चाहा किन्तु उस ने शरीर प्रदान के बिना और वस्तु स्वीकार न की, तब—

सा तु राजसुता स्मृत्वाभर्तुर्वचनमादितः।
तथेति लज्जमाना सा तमुवाचद्विर्जषभम् ॥५६॥
ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवोपविवेशह ॥५७॥

वह राजा की पुत्री, सुदर्शन की पत्नी, प्रथम दिवस के पति के वचन को याद करके लज्जित हुई उस ब्राह्मण से कहने लगी, बहुत अच्छा ॥५६॥ तब ब्राह्मण प्रसन्न होकर और वह औद्यवती दोनों एकान्त स्थान में प्रविष्ट हो गये ॥५७॥ इतने

में सुदर्शन लकड़ियां ले कर आगया। और उसने अपनी स्त्री को आवाज़ें दीं कि तू कहां है किंतु—

तस्मै प्रतिवचः सातु भर्त्रेन प्रददौतदा।
कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृव्रतासती ॥६०॥
उच्छिष्टा स्मोति मन्वाना लज्जिता भर्तुरेवच।
तूष्णीं भूत्वाभवत् साध्वीन चोवाच अथकिंचन ॥६१॥

उस ने अपने पति की बात का उत्तर नहीं दिया क्योंकि उस विप्र ने उसको हाथों से स्पर्श कर लिया था ॥६०॥ मैं उच्छिष्ट हूं, यह समझ कर लज्जित हुई, पति के सामने चुप साध गई और कुछ न बोली ॥६१॥ तब कुटी के अंदर से वह ब्राह्मण बोला कि यह तो मेरे पास है, यह सुन कर सुदर्शन बोला कि—

सुरतंतेऽस्तु विप्राग्रय प्रीतिर्हिपरमामम।
गृहस्थस्य हि धर्म्मोऽग्रयः संप्राप्तोऽतिथि पूजनम् ॥६६॥
निः संदिग्धं यथावाक्यमेतन्मे समुदाहृतम्।
तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालमे ॥७२॥

हे ब्राह्मण! तेरा विषय भोग सफल हो, मैं बहुत प्रसन्न हूं। अतिथि की पूजा गृहस्थ का मुख्य धर्म्म है ॥६६॥ मैं ने जो यह स्पष्ट शब्द इस समय उच्चारण किये हे ब्राह्मण मैं सत्य कहता हूं कि मैं स्वयं अपने को इस से पापी समझता हूं ॥७२॥ तब आकाश में नाद हुआ कि—

विजितश्चत्वयामृत्युर्योऽयंत्वामनुगच्छति ॥८०॥

हे सुदर्शन! तूने उस मौत को जीत लिया जो तेरे पीछे २ फिरता था"॥८०॥ अतः हे युधिष्ठिर! प्रत्येक प्रकार से अतिथि की पूजा करने से ही गृहस्थी मृत्यु को जीत लेता है।" इसे कहते हैं पति का बाहर बैठे रहना तथा बाहरी संडे का मौज उड़ाना"।

(४५३) प्रश्न—वेद का कथन यह है कि "आघाता" इत्यादि—

"यह मन्त्र यम यमी सूक्त का है। यम देव कुछ बड़े थे, और यमी छोटी थी। उसको संसार के धर्मों से अनभिज्ञता थी। एक दिन एक बरात चली जा रही थी। उस बरात में घोड़े पर चढ़े हुए वर को देख कर यम से पूछा कि भय्या यह घोड़े पर चढ़ा है, कौन है, और घोड़े पर क्यों चढ़ा है। तथा ये बहुत से लोग इसके साथ क्यों जा रहे हैं. इसके ऊपर यम ने कहा कि बहिन! यह दूल्हा है और इसका विवाह है, यह विवाह करने के लिये जाता है। यह सुन कर यमी ने कहा आओ भय्या हमारा और तुम्हारा विवाह हो जाये। यम बोले कि ( आघा आगाच्छानि आगमिष्यान्त उत्तरा युगानि ) आगे को आवेंगे वे दुष्ट युग कि ( यत्र जामयः अजामि कृण्वत् ) जिसमें भाई अयोग्य कार्य बहिन से करेंगे (हे सुभगे! मत्मत्तः अन्यं पतिं इच्छस्व) हे सौभाग्यवती! तू मेरे से अन्य पति की इच्छा कर। मेरी इच्छा तो तू कभी अपने मन में नहीं करना। (वृषभाय बाहुं उपबर्हि) योग्य पति के वास्ते तू अपने हस्त को ग्रहण कर वाले।" वेद मन्त्र का असली अर्थ यह है।

पृ० ५० पं० ६।

उत्तर—बेशक यह मन्त्र ऋग्वेद के यम यमी सूक्त का है। किन्तु यहां पर यम यमी नाम किसी पौराणिक इतिहास प्रतिपादित विशेष व्यक्तियों का नहीं है 'अपितु। संयमी पुरुष का नाम यम तथा यम की पत्नी का नाम यमी है। आपका यमी को यम की बहिन वर्णन करना सर्वथा निर्मूल कल्पना है।

(१) वेदों में किसी स्त्री वा पुरुष का इतिहास नहीं है, क्योंकि जिस पुस्तक में किसी का इतिहास हो वह पुस्तक

उसके जन्म के पश्चात् बनी हुई मानी जावेगी, किन्तु वेद सृष्टि की आदि में प्रकाशित हुये। अतः दूल्हा बरात आदि की कथा वेदों में बताना प्रमाण तथा युक्ति शून्य है।

(२) व्याकरण अनुसार यम शब्द से पत्नी अर्थों में "पुंयोगादाख्यायाम्" ४।१।४८ सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर यमी शब्द सिद्ध हो सकता है। बहिन के अर्थों में व्याकरण के किसी सूत्र से यमी शब्द साबित नहीं हो सकता।

(३) पौराणिक इतिहास के अनुसार भी यम की बहिन का नाम यमी नहीं था अपितु यमुना था जैसा कि—

या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम्।
कोऽपिपुत्रः पिता भ्राता सच तस्याः पतिर्भवेत् ॥२६॥
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुर्देवः स्वमातरम्।
भगिनीं भावाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७॥
इति श्रुत्वावेदमयंवाक्यं चादिति संभवः।
विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञांगृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत् ॥२८॥
सुताः कन्यास्तयोर्जातामनुर्वैवस्वतस्तथा।
यमश्च यमुना चैव दिव्यतेजोभिरन्विताः ॥२९॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८)

भाषार्थ—जो ज्ञान वाली स्त्री हो, वह जिस भी शुभ पुरुष को वर ले, वह चाहे उसका पुत्र, पिता, वा भ्राता, भी क्यों न लगता हो, वही उसका पति बन जाता है ॥२६॥ ब्रह्मा अपनी पुत्री को, विष्णु अपनी माता को, तथा महादेव अपनी बहिन को ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त हो गया ॥२७॥ इस वेद अनुकूल वाणी को सुन कर सूर्य्य ने भी अपनी भतीजी संज्ञा को ग्रहण कर के

श्रेष्टता को प्राप्त किया ॥२८॥ सूर्य्य से उस संज्ञा में यम और यमुना आदि दिव्य तेजस्वी पुत्र तथा पुत्रियां पैदा हुईं ॥२९॥

यहां पर आपके मतानुसार भी पुराणों तथा वेदों में विरोध है। क्योंकि आप तो कहते हैं कि वेद बहिन भाई आदि सभी पक्के रिश्ते में विवाह का निषेध करता है। और पुराण कहते हैं कि वेद माता बहिन तथा बेटी भतीजी से विवाह की आज्ञा देता है। यह आप के घर की बात है इसे सुलझाने का यत्न करें। किंतु यह स्पष्ट है कि यम की बहिन का नाम यमी नहीं अपितु यमुना था। अतः वेदों में उन का वर्णन नहीं है।

(४) यदि आपको वेद मन्त्र में स्थित जामि पद से बहिन के अर्थों का भ्रम हुआ है तो वह निर्मूल है। क्योंकि जामि शब्द अनेक अर्थों का वाचक है जैसा कि—

(अ) जामि इति उदक नामसु पठितम् (निरुक्त अ० २ खं० २४)

(आ) जाम्यतिरेक नाम बालिशस्यवा असमान जातीयस्य वा (निरुक्त अ० ४ खं० २०)

(इ) न जामये भगिन्यै (निरुक्त अ० ३ खं० ६)

(ई)जामिः स्वसृकुल स्त्रियोः (अमर० २३।१४२)

(उ) शोचन्ति जामयोपत्र (मनु० ३।५७)

जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः इत्यभिधानिकाः। यस्मिन् कुलेभगिनी गृहपति संवर्धनीय सन्निहित सपिण्ड स्त्रियश्चपत्नी दुहितृ स्नुषाद्याः परितापादिना दुःखिन्योभवन्ति (कुल्लूक)

(ऊ) जामयो यानि गेहानि (मनु० ३।५८)

यानि गेहानि भगिनी पत्नी दुहितृस्नुषाद्या अपूजिताः सत्योऽभिशपन्ति (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—जामि शब्द का अथ जल, मूर्ख, पुनरुक्त, असमान

जातीय, बहिन, कुलस्त्री, गृहस्थी से पालन योग्य स्त्री, सपिण्ड स्त्री, पत्नी, पुत्री, पुत्रवधु है। इन अर्थों में से इस मन्त्र में जामि शब्द का "पत्नी अर्थ ही संगत हो सकता है अन्य नहीं, मन्त्र का सत्यार्थ यह है।

आघातागच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्न जामि।
उपबर्बृहि वृषभाय बाहु मन्यमिच्छस्वसुभगे पतिं मत्॥
ऋ० १०।१०।१०॥

आगमिष्यन्ति तान्युत्तराणियुगानियत्र जामयः करिष्यं ति अजामिकर्माणि। जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा। असमान-जातीयस्य वोपजनः। उपधेहिवृक्षभाय बाह मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मदिति व्याख्यातम्। (निरुक्त अ० ४ ख० २०)

भाषार्थ—आवेंगे वे आगे को युग जिन में करेंगी, पत्नियाँ न पत्नियों वाले काम (अर्थात् पति के सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर व्यभिचार करने में प्रवृत्त होंगी अतः यह मर्यादा नियत की जाती है कि ऐसी अवस्था में पति पत्नी को व्यभिचार गर्भपात से बचाने के लिये नियोग की आज्ञा दे) जामिनाम पुनरुक्त का है या मूर्ख का है। या पुरुष से असमान जाति अर्थात् स्त्री का है। इस जामि शब्द में मि प्रत्यय है। हे सोभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्री तू मुझ से अन्य और पति की इच्छा कर और वीर्य सेचन में असमर्थ पुरुष के लिए अपना हाथ पकड़ा दे।

निरुक्तकार को इस मन्त्र में जामि शब्द का बहिन अर्थ करना इष्ट नहीं है, अतः उसने इस मन्त्र में बहिन अर्थ नहीं किया, हां निरुक्त अ० ३ ख० ६ में "न जामये" इस मन्त्र में बहिन अर्थ इष्ट था अतः बहिन अर्थ कर दिया।

अतः स्वामी जी का अर्थ वेद, निरुक्त, स्मृति के अनुकूल तथा युक्तियुक्त है। और आपका अर्थ वेद निरुक्त तथा स्मृति के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

(४५४)प्रश्न—"सत्यार्थ प्रकाश पृ० ११८ में लिखा है कि—"प्रोषितो धर्म्म कार्य्यार्थमित्यादि मनु० ६।७६" विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ प्रदेश गया, हो तो, आठ वर्ष विद्या और कीर्ति के लिए गया हो तो छः, और धनादि कामना के लिए गया हो तो तीन वर्ष, तक बाट देखके पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले। जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे" स्वामी जी आर्य समाजियों का कल्याण चाहते हैं, इनकी इच्छा है कि हमारे शिष्यों को बिना मेहनत के लड़के मिल जावें। पृ० ५१ पं० १।

उत्तर—मनुस्मृति का यह प्रकरण आपद्धर्म का वर्णन करता है जैसा कि—

अतः परं प्रवक्ष्यामियोषितां धर्म्ममापदि ॥५६॥ से

आपद्यपत्य प्राप्तिश्चादाय भागं निबोधत॥१०३॥ तक(मनु०६)

आपत्कल्पेन योधर्म्मं कुरुतेऽनापदिद्विजः।
स्नानाप्नोतिफलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥२८॥
विश्वैश्चदेवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।
आपत्सु मरणाभ्दीतैर्विधेः प्रतिनिधि कृतः ॥२९॥ (मनु० ११)
तत्तेधर्म्मं प्रवक्ष्यामिक्षात्रं राज्ञिसनातनम् ॥२५॥
आपद्धर्मार्थं कुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ।२६॥
(महा० आदि० अ० १०३)

उत्तमादेवरात् पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥३४॥
अपत्यं धर्म्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्तिमानवाः।

आत्मशुक्रादपि पृथेमनुः स्वायंभवोऽब्रवीत् ॥३५॥

( महा० आदि० अ० १२०)

भाषार्थ—इस से आगे मैं स्त्रियों के आपद्धर्म का वर्णन करूंगा ॥५६॥ इस श्लोक से लेकर, मैं ने आपत्तिकाल में सन्तान प्राप्ति का वर्णन कर दिया, इस से आगे दायभाग का वर्णन करूंगा ॥१०३॥ यहाँ तक आपत्काल के धर्म्म का वर्णन है। विवादास्पद श्लोक इस प्रकरण के अंदर आजाता है। अतः यही आपद्धर्म का प्रतिपादक है। अपद्धर्म की विधि से जो मनुष्य बिना आपत्काल के काम लेता है वह इस लोक तथा परलोक में उस के फल को प्राप्त नहीं होता, यह निश्चित है ॥२८॥ आपत्काल किसे कहते हैं। सब देवता साध्य ब्राह्मण और महर्षियों ने आपत्तिकाल में मरने से डरते हुये विधि को प्रतिनिधि बनाया है ॥२९॥ चूंकि व्यभिचार गर्भपात भी एक प्रकार की इखलाक़ी मौत है। अतः यदि किसी स्त्री का पति प्रदेश गया हो और उसके मरने जीने का कोई पता न हो और ऐसी अवस्था में यदि स्त्री अपने आप को क़ाबू में न रख सके तो उस स्त्री को व्यभिचार तथा गर्भपात रूप मृत्यु से बचाने के लिये मनु आदि ने इस विधि का वर्णन किया है। महाभारत भी इस का अनुमोदन करता है। हे रानी मैं उस क्षत्रियों के सनातन धर्म्म का तेरे से वर्णन करता हूं ॥२५॥ तू आपद्धर्म के जानने वालों से मशवरा करके और लोक मर्यादा को देखकर इस पर आचरण कर ॥२६॥ लोग आपत्ति काल में उत्तम देवर से पुत्र की इच्छा करते हैं ॥३४॥ हे कुन्ती ! मनु जी फरमाते हैं कि अपने वीर्य से पैदा हुए पुत्र से भी अधिक श्रेष्ट फलदायक पुत्र को मनुष्य नियोग विधि से प्राप्त होते हैं ॥३५॥

इतिहास में इस प्रकार की घटना भी मौजूद है कि "जब नल खोया गया और दमयन्ती को उस के मरने भीमका कोई पता न लगा तो दमयन्ती ने दूतों के द्वारा पता लगाया कि नल अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के पास रहता है। उस को बुलाने के लिए दमयन्ती ने सुदेव के हाथ ऋतुपर्ण राजा को यह संदेश दिया कि—

आस्थास्यति पुनर्भैमी दमयन्ती स्वयंवरम्।
तत्र गच्छन्ति राजा नो राजपुत्राश्च सर्वशः ॥२४॥
यथा च गणितः कालः श्वोभूते सभविष्यति।
यदि संभावनीयं ते गच्छ शीघ्र मरिन्दम ॥ २५ ॥
सूर्य्योदये द्वितीयं सा भर्तारं वरयिष्यति।
न हि सा जायते वीरो नलो जीवति वा नवा ॥ २६ ॥
(महा० वन० अ० ७०)

भाषार्थ—भीम की पुत्री दमयन्ती फिर से स्वयंवर में बैठेगी। वहाँ पर सब राजा और राजपुत्र जारहे हैं ॥२४॥ गिनती के अनुसार वह समय कल को होने वाला है यदि संभव हो सकता है तो आप शीघ्र पहुंचे ॥ २५ ॥ वह दमयन्ती कल को सूर्य्य के उदय होते ही दूसरा पति स्वीकार करेगी। क्योंकि वह बालिका इस बात को नहीं जानती कि नल जीता है या नहीं ॥ २६ ॥ संदेश के सुनते ही राजा ऋतुपर्ण अपने सार्थी नल को साथ लेकर विदर्भ देश में गया और इस प्रकार से दमयन्ती ने नल को ढूण्ड लिया" इस में कोई सन्देह नहीं कि दमयन्ती ने यह सब उपाय नल को ढूण्डने के लिये रचा, किन्तु सवाल यह हैकि उस समयमें यदि ऐसी अवस्था में स्त्री को पुनः पति स्वीकार करने का अधिकार न होता तो न तो दमयन्ती

इस प्रकार का सन्देश दे सकती थी और न ही अयोध्या का राजा ऋतुपर्ण इस सन्देश को सुन कर विदर्भ नगर में आ सकता था। इस से साबित है कि पति के प्रदेश जाने तथा गुम होने पर स्त्री दूसरे पति का अधिकार उस समय में माना जाता था। अतः स्वामी जी ने आर्य्य जाति के कल्याण के लिये वेद मनुस्मृति तथा इतिहास में प्रतिपादित इस नियोग के विधान को सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है। अतः स्वामी जी ने लिखा है कि—

"नियोग" विवाह के पश्चात पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल में पुरुष सवर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना"।

(सत्यार्थ० मन्तव्य नं० ४७)

जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये (सत्यार्थ० चतुर्थ० नियोग०)। अतः इस प्रकार का नियोग वेद शास्त्र सम्मत है। रही बात बिना मेहनत के सन्तान प्राप्त करने की सो यह व्यभिचार सत्यार्थ प्रकाश में नहीं मिल सकता। वह देखना हो तो पौराणिक ग्रन्थों में भरा पड़ा है। देखिये और पढ़िये—

(१) त्रिपाठी नाम का एक ब्राह्मण था उसकी स्त्री का नाम कामिनी था। त्रिपाठी एक बार बाहर कथा करने गया अभी एक मास ही हुआ था कि कामिनी ने काम से व्याकुल होकर-

दृष्ट्वा निषादं सबलं काष्ठभारोपजीविनम्।
तस्मै दत्त्वा पंचमुद्रा बुभुजे काम पीडिता ॥७॥

तदा गर्भं दधौ सा च व्याधवीर्येण संचितम्।
पुत्रोऽभूद्दशमासान्ते जातकर्म पिता करोत् ॥ ८ ॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं १ अ० ३३)

लकड़ियां बेचकर निर्वाह करने वाले बलवान निषाद को देख कर उस को पाँच रुपये देकर उससे भोग कर लिया ॥७॥ तब उस कामिनी ने व्याध के वीर्य से गर्भ धारण किया, दश मास के अन्त में पुत्र पैदा हुआ, पिता ने उसका जातकर्म संस्कार किया, कहिये यह बिना मेहनत के पुत्र प्राप्ति है या नहीं, स्त्री ने एक मास की गैर हाजिरी को भी बरदाश्त नहीं किया।

(२) गौतम मुनि घर से बाहर स्नान करने गये और इन्द्र ने उसके आश्रम में प्रवेश किया और कहा कि—

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते।
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ १८ ॥
मुनि वेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघु नन्दन।
मतिंचकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात् ॥१९॥
अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना।
कृतार्थाऽस्मि सुर श्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥२०॥

(बाल्मी० बाल० स० ४८)

लोग ऋतु काल की प्रतीक्षा नहीं करते, हे सुमध्यमे! मैं तेरे साथ समागम करना चाहता हूं ॥१८॥ हे राम! अहल्या ने इन्द्र को गौतम के रूप में देख कर उस कुबुद्धि वाली ने इन्द्र को प्रसन्न करने का विचार किया ॥१९॥ और प्रसन्न चित्त होकर इन्द्र से बोली हे श्रेष्ठ देव मैं कृतार्थ हूं आप शीघ्र यहां से चले जावें ॥२०॥

यहां अहल्या ने गौतम को मेहनत से बचाने के लिये इन्द्र से समागम करके पुत्र प्राप्ति की चेष्टा की और पति के बाहर जाने पर चन्द घण्टे भी बरदाश्त न कर सकी।

(३) बृहस्पति की स्त्री तारा को चन्द्रमा ले गया, उस से समागम किया, तारा गर्भवती हो गई। ब्रह्मा के कहने से चन्द्रमा ने तारा को वापिस देना स्वीकार किया तो बृहस्पति ने कहा कि गर्भस्थ पुत्र मुझे मिलना चाहिये क्योंकि—

क्षेत्रे मदीये चोत्पन्नस्त स्मात्स मम पुत्रकः।
उक्तं च वेदशास्त्रज्ञै ऋषिभिर्द्धर्मदर्शिभिः ॥४०॥
उप्तं वाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्रिणस्तस्य तद्बीजं न बीजी फलभाग भवेत् ॥४१॥

(भवि० उत्तर० अ० ९६)

मेरे खेत में पैदा हुआ है इसलिये मेरा पुत्र है और वेद, शास्त्र के जानने वाले धर्मदर्शी ऋषियों ने कहा भी है ॥४०॥ कि बोया हुआ वा हवा से उड़ाया हुआ बीज जिसके खेत में उगता है। वह बीज खेत वाले का ही कहाता है। बीज वाला फल का भागी नहीं होता ॥४१॥

कहिये महाराज! यहां पर बृहस्पति के बिना मेहनत किये ही पुत्र प्राप्ति का यत्न किया, किन्तु कामयाब न हुये।

(४५५) प्रश्न— इस चालाकी में एक नई पकड़ पकड़ ली वह यह है। सत्यार्थ प्रकाश के प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में यह लिखा है कि हम वेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं। तब इस श्लोक को प्रमाण में क्यों लिया। जब स्वामी दयानंद जी वेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं। यह तो वेदानुकूल

है नहीं। क्योंकि वेद में कोई मन्त्र ऐसा नहीं जिस से प्रदेश जाने में नियोग सिद्ध होता हो। पृ० ५१ पं० १२।

उत्तर—श्री मान् जी आप ने पकड़ तो क्या पकड़नी थी उलटा पकड़ में आ गये। क्योंकि आपने मनु के उपरोक्त लेख का कोई वेद मन्त्र दे कर वेद से विरोध नहीं दिखाया। वेद स्त्री को दूसरे पति का और पुरुष को दूसरी स्त्री का हक़ प्रतिपादन करता है। मनुस्मृति इस बात की व्याख्या करती है कि स्त्री तथा पुरुष को वह हक़ किन २ अवस्थाओं में है।

(मनु०९।७६ से८१—१६७)

अतः मनुस्मृति का लेख वेदानुकूल हैं। जैसा कि वेद कहता है कि—

अघोर चक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥१७॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवापशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावति वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥१८॥

(अथर्व० कां० १४ अनु० २)

इन दोनों मन्त्रों में (देवृकामा) पति से सन्तान के अभाव में देवर को सन्तान निमित्त चाहने वाली" विशेषण स्त्री के लिये मौजूद है। "देवरः कस्मादिद्वतीयो वर उच्यते'; देवर नाम ही दूसरे वर का है। ये दोनों मन्त्र स्त्री को दूसरे पति का हक़ प्रतिपादन करते हैं। निरुक्त ३।१५ में "कुहस्विद्" इस ऋग्वेद के मन्त्र में आये हुये "विधवेव देवरम्" पद की व्याख्या की है। देवर शब्द की व्याख्या उपरोक्त ही है। विधवा शब्द की व्याख्या यों की है कि 'अपिवाधव इति मनुष्य नाम तद्वियोगाद्विधवा" धव नाम मनुष्य का है उसके वियोग होने

से स्त्री विधवा कहाती है। अब वियोग कई प्रकार का है। जिन में से यह भी वियोग ही है कि पति प्रदेश चला जावे, और कई वर्ष तक उसके जीने वा मरने का कोई पता न लगे, ऐसी अवस्था में निरुक्त के कथनानुसार वह एक प्रकार की विधवा ही है। और वेद तथा निरुक्त उसके दूसरे पति की आज्ञा देते हैं। अतः मनु तथा स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल होने से सत्य है। तथा आपकी शंका सर्वथा निर्मूल और असत्य है।

(४५६) प्रश्न—मनु का प्रकरण यह है कि—

विधायवृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्य्यवान्नरः।
अवृत्ति कर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि ॥७४॥
विधाय प्रोषितेवृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता।
प्रोषिते विधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥७५॥
प्रोषितो धर्म्म कार्य्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौनरः समाः।
विद्यार्थंषड् यशोऽर्थंवा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥७६॥

(मनु० ९)

जब पति प्रदेश को जाय तो स्त्री के खान पान का प्रबंध करके जाय क्योंकि जीविका के प्रबंध के बिना नेक स्त्री भी दूषित हो जाती है ॥७४॥ यदि पति खान पान का प्रबंध कर जाय तो स्त्री पति के प्रदेश रहते उबटना तेल इतर न लगावे, अधिक पुष्ट भोजन न खाय इत्यादि नियमों में स्थिर होकर अपना काल क्षेप करे और यदि पति वृत्ति का कुछ प्रबंध न कर जावे तो फिर स्त्री को चाहिये कि अनिन्दित दस्तकारी से गुज़र करे, किन्तु कोई निन्दा का काम न करे॥७५॥ यदि पति धर्म्म के लिये प्रदेश गया हो तो आठ, विद्या और यश के लिये

गया हो तो छः, किसी और काम को गया हो तो तीन वर्ष उस की प्रतीक्षा करे ॥७६॥ इस के बाद क्या करे, वसिष्ट स्मृति लिखती है कि "अतऊर्ध्वं पति सकाशं गच्छेत्" इसके बाद फिर वह अपने पति के पास वहीं चली जावे कि जहां उसका पति है। पृ० ५१ पं० २१।

उत्तर—"या बेईमानी तेरा आश्रय" प्रकरण तो वर्णन किया जा रहा है मनु का और नतीजा बतलाया जा रहा है वसिष्ट स्मृति से और वह भी मन घड़न्त फरज़ी संस्कृत बना मनु के प्रकर्ण को श्राद्ध के लड्डू की भांति गटक गये। लीजिये हम मनु का प्रकरण बतलाते हैं।

(१) हम पीछे वर्ण न कर आये हैं कि मनु० ६।५६ से १०३ तक स्त्रियों के आपद्धर्म्मका वर्णन है। अतः यह प्रकरण आपद्धर्म का है। स्त्री पति के पास उसी सूरत में जा सकती है जब कि पति का पता हो कि वह कहां है। और इस अवस्था का नाम आपद्धर्म भी नहीं है। यह तो साधारण अवस्था है। आपद्धर्म तो यह है कि पति का पता ही न हो कि वह जीता है या मर गया। कहां है, कहां नहीं। ऐसी अवस्था में स्त्री क्या करे। जैसा कि दमयन्ती को नल के विषय में पता ही नहीं था कि वह जीता है वा मर गया। खैर दमयन्ती ने तो तलाश की और नल मिल गया। किंतु यदि बावजूद काफी तलाश के भी पता न लगे और स्त्री युवती हो, रह नसके, और उसका चाल चलन खतरे में पड़ने का अन्देशा हो, तो ऐसी सूरत में वही करना पड़ेगा जो दमयन्ती ने तो नल को बुलाने के लिये किया, किन्तु ऋतुपर्ण राजा उसको सत्य समझ कर शीघ्रता पूर्वक आया। अर्थात् स्वयम्वर द्वारा दूसरे पति की

प्राप्ति और इसके बिना और कोई उपाय हो भी नहीं सकता—

(२) मनु के प्रकरण में मनु ही प्रमाण हो सकता है । मनु ने इसी प्रकरण में जहाँ स्त्री के आपद्धर्म का वर्णन किया है, वहाँ पुरुष के विषय में भी आपद्धर्म का वर्णन किया है और जो उपाय पुरुष के लिये बतलाया है वही उपाय स्त्री के लिये भी समझना चाहिए वह यह है कि—

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमेतुमृतप्रजा ।
एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥८१॥(मनु०९ )

यदि स्त्री वन्ध्या हो तो आठवें वर्ष ,सन्तान मर जानेवाली हो तो दशवें वर्ष , कन्या ही कन्या पैदा करने वाली हो तो ग्यारहवें वर्ष और यदि कटु भाषण करने वाली हो तो तत्काल ही पुरुष को दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तान पैदा कर लेनी चाहिए ॥ ८ ॥ बस स्त्री के लिये भी यही उपाय है। कि उपरोक्त अवस्था में अन्य पुरुष के साथ नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले और यही मनु की सम्मति है । जिसे स्वामी जी ने स्पष्ट लिख दिया है ।

(३) वसिष्ठ स्मृति ने भी स्वामी जी की ताईद की है जैसा कि—

"प्रोषित पत्नी पंचवर्षा प्रवसेद्यद्यकामायथा प्रेतस्य एवं च वर्तितव्यंस्यात् । एवं पंच ब्राह्मणी प्रजाता चत्वारि राजन्या प्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाता द्वे शूद्रा प्रजाता । अतऊर्ध्वं समानोदक पिण्ड जन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वोगरीयान् । न खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात्" ।

( वसिष्ठ स्मृति अध्याय १७ )

भाषार्थ—पति प्रदेश गये हुये की स्त्री यदि इच्छा को रोक सके तो पांच वर्ष तक प्रतीक्षा करके जैसे मरे पति की स्त्री बर्ताव करती है वैसा बर्ताव करे। ऐसे ही पांच वर्ष ब्राह्मणी को होजायें और चार वर्ष क्षत्राणी को हो जायें, तीन वर्ष वैश्य की स्त्री को हो जायें तथा दो वर्ष शूद्रा को हो जायें। उसके पश्चात् अपना क़रीबी खानदानी, अपना जातीय, अपना ऋषि, अपने गोत्रों में से पूर्व २ का ज़ियादा अच्छा है। यक़ीनी तौर से खानदानी की मौजूदगी में दूसरे के साथ समागम करने वाली न हो। इसका नाम है प्रकरण तथा सत्य प्रमाण। भला कभी संसार में फरजी बातों से काम चला करता है। निश्चय समझिये दुनिया में सत्य की ही विजय होती है झूठ की नहीं।

(४५७) प्रश्न—स्वामी जी स्त्री को पति के पास नहीं जाने देते हैं। यहाँ ही मौज उड़ाने की आज्ञा देते हैं पृ०५२ पं० १४।

उत्तर—नियोग करने को मौज उड़ाना नहीं कहा जा सकता क्योंकि नियोग व्यभिचार नहीं है अपितु नियोग आपद्धर्म है, वेद शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध स्त्री पुरुष के प्राईवेट संबंध का नाम व्यभिचार तथा वेद शास्त्र की आज्ञा के अनुसार पंचायत द्वारा स्त्री पुरुष के संबन्ध का नाम आपद्धर्म्म है, चूंकि नियोग की रस्म वेद शास्त्र के अनुकूल स्त्री पुरुष तथा संबन्धियों की सम्मति में पंचायत द्वारा अदा की जाती है अतःउसे व्यभिचार या मौज उड़ाना नहीं कहा जा सकता जैसे कि—

(१) नियोग धर्म है—

धर्म्मं पुराणमनुपालयन्ति (अथर्व० कां० १८। ३। १)

इति धर्म्मो व्यवस्थितः (मनु० ९। १२०)

धर्म्मतः प्रसवश्च सः ( मनु० ६। १४५ )
स्वधर्म्मेण नियुक्तायाम् ( मनु० ९। १६७ )
धर्म्मं कर्तुमर्हसि ( महा० आदि० १०३। १
असंशयं परो धर्म्मः ( महा० आदि० १०३। १३ )
धर्मश्च न पराभवेत् ( महा० आदि० १०३। २२ )
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि
क्षात्रं राज्ञि सनातनम् } ( महा० आदि० १०३। २५ )
तदिदं धर्म युक्तं च ( महा० आदि० १०५। २० )
पुत्र कामे च धर्म्मतः ( महा० आदि० १०५। ३४ )
धर्म्ममुद्दिश्य कारणम्
दृष्टं ह्येतत् सनातनम् } (महा० आदि० १०५। ३६)
धर्म्मतोऽनुनीयैनाम् ( महा० आदि० १०५। ४६ )
संयुक्ता सा हि धर्म्मेण ( महा० आदि० १२३। ५ )

( २ ) नियोग का आज्ञा से होना तथा आप्त पुरुषों की सम्मति—

मन्नियोगान्महाबाहो ( महा० आदि० १०३। १० )
सुहृदश्च प्रहृष्येरन् ॥ २२ ॥
प्राज्ञैः सह पुरोहितैः ॥२६॥ } ( महा० आदि० १०३ )
भोजयामास विप्रांश्च
देवर्षीनतिथींस्तथा } ( महा० आदि० १०५। ४६ )
मन्नियोगाद्यत क्षिप्रम् ( महा० आदि० १२०।४० )
मन्नियोगात् सुकेशांते ( महा० आदि० १२२। ३० )

हाँ मौज उड़ाने की शिक्षा पौराणिक ग्रन्थों में मौजूद है जैसा कि—

अनावृत्ताः किल पुराखिय आसन वरानने ।
कामचार विहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि ॥ ४ ॥
तासांव्युच्चरमाणानां कौमारात् सुभगेपतीन् ।
नाधर्म्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मोपुराभवत् ॥ ५ ॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्म्मः सनातनः ॥ ८ ॥
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः ।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः ।
मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव ॥ १२ ॥
क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाच ह ।
मा तात कोपंकार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः ॥ १३ ॥
ऋतावृत्तौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते ।
नातिवर्त्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः ॥ २५ ॥
शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातत्र्यं स्त्री किलार्हतिः ।
धर्म्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ॥ २६ ॥

( महा० आदि० अ० १२२ )

भाषार्थ—हे सुन्दर मुखी ! निश्चय से पहिले स्त्रियें बेपर्द थीं और हे सुन्दर हंसी वाली ! वे आवारागर्द और स्वतन्त्र थीं ॥ ४ ॥ हे सौभाग्यवती ! उन के कुमार अवस्था से ही पतियों को उल्लंघन करने से कोई अधर्म न था । हे वरारोहे ! यही धर्म्म पुराना था ॥ ५ ॥ यह धर्म्म स्त्रियों पर दया करने वाला है और यही सनातन धर्म्म है ॥ ८ ॥

निश्चय जानो पुराने ज़माने में श्वेतकेतु की माता को उस के पिता के सामने ही एक ब्राह्मण ने हाथ से पकड़ा और कहा कि आवो चलें ॥ ११ ॥ ऋषिपुत्र श्वेतकेतु यह देख कर कि

उस मेरी माता को इस प्रकार से जबरन ले जाया जा रहा है क्रोध में आ गये ॥ १२ ॥ उस के पिता ने उस को क्रोध में देख कर श्वेतकेतु को कहा कि पुत्र क्रोध मत कर यह तो सनातन धर्म्म है ॥ १३ ॥ हे राजपुत्री ! प्रत्येक ऋतु काल में अपने पति का उल्लंघन नहीं करना चाहिये ऐसा धर्म्म के जानने वाले कहते हैं ॥ २५ ॥ और बाक़ी के समयों में निश्चय रूप से स्त्री आज़ाद है सन्त लोग इस प्रकार धर्म्म को पुराणा धर्म्म कहते हैं ॥ २६ ॥

इस को कहते हैं "पति के पास न जाने देना और गैर मर्दों से मौज उड़ाने की आज्ञा देना"।

( ४५८ ) प्रश्न—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२४ में लिखा है कि—

"इमां त्वमिन्द्र" ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्रपते ! ऐश्वर्ययुक्त ! तू इस स्त्री को वीर्य दान देके सुपुत्र और सौभाग्य युक्त कर। हे वीर्य प्रद ! पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तान पर्यन्त उत्पन्न कर, अधिक नहीं। तथा हे स्त्री ! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर अर्थात् एक तो उन में विवाहित और दश पर्य्यन्त नियोग के पति कर,अधिक नहीं। यहां पर स्वामी जी ने स्त्रियों को मौज उड़ाने के लिये पतियों का भण्डार खोल दिया। पृ० ५२ पं० १८।

उत्तर—प्रथम तो आप ने स्वामी जी के अर्थ में कोई ग़लती नहीं बतलाई कि स्वामी जी ने वेद मन्त्र के कौन से पद का अर्थ ग़लत किया है। और यदि अर्थ ठीक है तो फिर स्वामी जी पर क्या आक्षेप हो सकता है जब कि वेद की तहरीर आप को भी स्वतः प्रमाण है।

दूसरे आप ने स्वामी जी के संस्कृत अर्थ के इस भाग को छोड़ दिया है जो स्वामी जी के अर्थ को स्पष्ट कर देता है वह पाठ यह है कि—

"अर्थात् कस्यांचिदापत्कालावस्थायां प्राप्तायामेकैका भावे सन्तानोपत्यर्थं दशम पुरुषपर्य्यन्तं नियोगं कुर्यात्। तथा पुरुषोऽपि विवाहित स्त्रियां मृतायां सत्यां सन्तानाभावे एकैकस्या अभावे दशम्या विधवया सह नियोगं करोत्वितीक्छानास्ति चेन्माकरुताम्। (ऋग्वेदादि० नियोग प्रकरण इमां त्वामिन्द्र मन्त्र भाष्ये)

भाषार्थ—अर्थात् किसी आपत्काल अवस्था के प्राप्त होने पर एक एक के अभाव में सन्तानोत्पत्ति के लिये दशवें पुरुष पर्य्यन्त नियोग कर ले। तथा पुरुष भी विवाहित स्त्री के मरने पर सन्तान के अभाव में एक एक के अभाव में दशवीं विधवा पर्य्यन्त के साथ नियोग करे। यदि इच्छा न हो तो न करें। तीसरे इस विषय में वेद का केवल एक ही मन्त्र नहीं है अपितु अनेक वेद के मन्त्र स्त्री को ग्यारह तक पति की आज्ञा देते हैं जैसा कि—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विवद उत्तरः।
तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ५॥
(ऋ० अ० ८ अ० ३ व० २७)

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्ते परः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ३॥
(अथर्व० कां० १४ सू० २)

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१॥ यदि द्विवृषोऽसि० ॥२॥
यदि त्रिवृषोऽसि० ॥ ३॥ यदि चतुर्वृषोऽसि० ॥ ४॥

यदि पञ्चवृषोऽसि० ॥ ५ ॥ यदि षड्वृषोऽसि० ॥ ६ ॥
यदि सप्त वृषोऽसि० ॥ ७ ॥ यद्यष्टवृषोऽसि० ॥ ८ ॥
यदि नव वृषोऽसि० ॥ ९ ॥ यदि दश वृषोऽसि० ॥ १० ॥
यद्येकादशोऽसि सोपोदकोऽसि ॥ ११ ॥
(अथर्व० कां० ५ सू० १६)

उत यत् पतयोदशस्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८ ॥
( अथर्व० कां० ५ सू० १७ )

भाषार्थ— हे स्त्री ! तेरा पहला पति सोम है, गन्धर्व नाम का दूसरा पति प्राप्त होता है। तेरा तीसरा पति अग्नि है और चौथे से लेकर अधिक जितने पति हैं उन का नाम मनुष्य है ॥५॥ हे स्त्री ! तू पहिले सोम की पत्नी बनती है, गन्धर्व तेरा दूसरा पति है, तीसरा पति अग्नि नाम वाला है, चौथे से अधिक तेरे पतियों का नाम मनुष्य है ॥३॥ हे पुरुष यदि तू स्त्री का वीर्य सिंचन करने वाला पहिला पति है। तो सन्तान पैदा कर वरना निर्बल कहलावेगा ॥१॥ यदि दूसरा पति है ॥२॥ यदि तीसरा पति है ॥३॥ यदि चौथा पति है ॥४॥ यदि पांचवां पति है ॥५॥ यदि छटा पति हैं ॥६॥ यदि सातवां पति है ॥७॥ यदि आठवां पति है ॥८॥ यदि नौवां पति है ॥९॥ यदि दशवां वीर्य सिंचन करने वाला पति है तो सन्तान पैदा कर वरना निर्बल कहलावेगा ॥१०॥ यदि ग्यारहवां पति है तो वह तू दुःखों में तड़पने से बच सकता है ॥११॥ यदि जो स्त्री के पहिले दश पति गैर ब्राह्मण हों ग्यारहवां यदि ब्राह्मण हाथ पकड़ ले तो वही एक पति गिना जायेगा ॥८॥

यहां पर वेद में आपित्तकाल में यदि सन्तान की इच्छा हो तो वेदानुकूल पंचायत द्वारा नियोग से एक एक के अभाव में ग्यारहवें तक पति की प्राप्ति वर्णन है। इस का नाम मौज उड़ाने के लिये पतियों का भंडार नहीं कहा जा सकता क्योंकि पुराणों में भी इस पर आचरण करने का वर्णन है।

(अंबिका अंबालिका के दो दो पति विचित्र वीर्य और व्यास—

अम्बिकाम्बालिके भार्य्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे।
भीष्मो विचित्र वीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥६॥

(म १० आदि० अ० १०२)

ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः ॥४॥
संबभूवत्या सार्द्धं मातुः प्रिय चिकीर्षया ॥६॥
ततस्ते नैव विधना महर्षिस्तामपद्यत।
अम्बालिका मथाभ्यगादृषिंदृष्ट्वाच सा पितम् ॥१५॥

(महा० आदि० अ० १०६)

भाषार्थ—भीष्म ने वेदानुसार कर्म द्वारा अपने छोटे भाई विचित्र वीर्य के लिये अम्बिका और अंबालिका दो पत्नियां दीं ॥६०॥

उस के पश्चात् सत्य बोलने वाले ऋषि व्यास ने पहिले अम्बिका में नियोग किया और माता को प्रसन्न करने की इच्छा से उस के साथ समागम किया ॥४।६॥ उस के पश्चात् उसी विधि से वह ऋषि व्यास जी उस अंबालिका से समागम को प्राप्त हुये और वह भी उन को देख कर ॥१५॥

(२) माद्री के तीन पति १ पाण्डू और दो अश्वनिकुमार-

ततो माद्री विचार्य्यैव जगाम मनसाश्विनौ।

तावागम्य सुतौ तस्यां जयामासतुर्यमौ ॥ १६ ॥

( महा० आदि० अ० १२४ )

भाषार्थ—उसके पश्चात् माद्री ने विचार करके मन से अश्विनीकुमारों को याद किया, उन्हों ने आकर उसमें दो पुत्र पैदा किये, जो कि नकुल, सहदेव जौड़े थे ॥ १६॥

(३) कुन्ति के चार पति १ पाण्डु २ धर्म्म ३ वायु ४ इन्द्र

संयुक्ता साहिधर्म्मेण योग मूर्ति धारेण ह ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजः सुतः ॥ ६ ॥

ततस्तथोक्ता भर्त्रा तु वायु मेवाजुहाव सा ॥ ११ ॥

तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीम पराक्रमः ॥ १४ ॥

एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी ।

अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥ ३४ ॥

( हा० आदि० अ० १२३ )

भाषार्थ—उस कुन्ती ने योग मूर्ति धारण करने वाले धर्म्म से समागम किया ॥५॥ जिस से पाण्डु का पहिला पुत्र प्रसिद्ध युधिष्ठिर पैदा हुआ ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् पति के कहने से कुन्ती ने वायु को बुलाया ॥ ११ ॥ उससे कुन्ती ने भयंकर बल वाला भीम पैदा किया ॥ १४ ॥ इसी प्रकार से पांडु के कहने पर यशस्विनी कुन्ती ने इन्द्र को बुलाया तब इन्द्र आया और उसने कुन्ती में अर्जुन को पैदा किया ॥ ३४ ॥

(४) द्रोपदी केपांच पति—

पांडवेभ्यो हि पांचाल्यां द्रौपद्यां पंच जज्ञिरे ।

कुमारा रूप संपन्नाः सर्वे शास्त्र विशारदाः ॥ ११७ ॥

प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात् सुतसोमोवृकोदरात् ।

अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तुनाकुलिः ॥११८॥

तथैवसहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान् ॥११९॥

(महा० आदि० अ० ६३ ॥

भाषार्थ—पांच पांडवों से द्रौपदी में रूपवान् सर्वशास्त्र सम्पन्न पाँच कुमार पैदा हुए ॥ ११७॥ युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य भीम मे सुत सोम अर्जुन से श्रुत कीर्ति तथा नकुल से शतानीक और ॥११८॥ सहदेव से श्रुतसेन प्रताप वाला पैदा हुआ ॥११९॥

(५) गौतम की पुत्री जटिला के सात पति थे—

श्रूयते ही पुराणेऽपिजटिला नाम गौतमी ।
ऋषीनध्यासितवती सप्तधर्म्मभृतांवरा ॥१४॥

(महा० आदि० अ० १६८)

भाषार्थ—पुराणों में सुना जाता है कि गौतम की पुत्री जटिला ने सात ऋषियों को पति रूप से ग्रहण किया ॥१४॥

(६) वृक्ष की पुत्री मुनिजा के दश पति थे—

तथैव मुनिजावार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः ।
सङ्गताभूद्दशभ्रातॄनेकनाम्नः प्रचेतसः ॥१५॥

भाषार्थ—वैसे ही वृक्ष की पुत्री मुनिजा ने भी तप से पवित्र आत्मा वाले दश भाई प्रचेताओं से समागम किया ॥१५॥

(७) दिव्यादेवी के इक्कीस पति थे—

एक विंशतिभर्तारः काले काले मृतास्तदा ।
ततो राजा महा दुःखी संजातः ख्यात विक्रमः ॥६५॥

( पद्म० भूमि० अ० ८५ )

भाषार्थ—दिव्या देवी के इक्कीस पति समय पर मर गये तब प्रसिद्ध कीर्ति वाला दिवो दास राजा महा दुःखी हो गया॥६६॥ अब क्या आप कह सकते हैं कि यह व्यास जी ने स्त्रियों के मौज उड़ाने के लिये पतियों का भण्डार खोल रक्खा है हर्गिज़

भी नही। हाँ पौराणिक ग्रन्थों में स्त्रियों को मौज उडाने के लिए सैकड़ों पतियां के भंडार मौजूद हैं देखो ( न० ४५७ )

( ४५६ ) प्रश्न—वेद का असली अभिप्राय यह है कि—
'विवाह के समय में दूल्हा देव राजइन्द्र से प्रार्थना करता है कि कल्यान कारक वृष्टि करने वाले हे इन्द्र ! स्त्री को तू सुपुत्र और सुभाग करना किस प्रकार' इस में दश पुत्र उत्पन्न हों और ग्यारहवां मैं पति बना रहूं"

उत्तर—इमाँ त्वमिन्द्र मीढव सपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पति मेकां दशं कृधि॥

( ऋ० अ० ८ अ०३ व० २८ )

( १ ) आपने इस मन्त्र में आये हुये "आधेहि" पद का अर्थ "उत्पन हों" तथा "कृधि" पद का अर्थ "मैं पति बना रहूं" किस व्याकरण के आधार पर किया है। "आधेहि" मध्यम पुरुष का प्रयोग है जिसके अर्थ हैं "इसमें दश पुत्रों को धारण कर" आपने इसके प्रथम पुरुष के अर्थ "इसमें दश पुत्र उत्पन्न हों" करदिये। तथा "कृधि" भी मध्यम पुरुष का प्रयोग है जिसके अर्थ होते हैं "ग्यारहवें तक पति कर" आपने इस के उत्तम पुरुष के अर्थ "ग्यारहवां मैं पति बना रहूं" कर मारे जोकि व्याकरण के अत्यन्त विरुद्ध हैं

( २ ) यदि आपके अर्थों को ठीक भी मान लिया जावे तो इसके यह अर्थ होंगे कि स्त्री को दूसरे पति का भी हक़ हासिल नहीं है। और यह अर्थ स्वयं वेदों के ही विरुद्ध हैं क्योंकि स्त्री को दूसरे पति का हक़ प्रतिपादन करने वाले वेदों में अनेक मन्त्र मौजूद हैं जैसा कि—

या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विन्दते परम्
समान लोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः } (अथर्व ०९।५।२७-२८।

विधवेव देवरम् (ऋ० १०।४०।२)

इयंनारी पतिं लोकं वृणाना (अथर्व० १८।३।१)

देवृकामा (ऋ० १०।८५।४४)

प्राता रन्तम् (ऋ० १।१२५।१)

उत यत् पतयो दशस्त्रियः (अथर्व० ५।१७।८)

उदीष्व नारि (ऋ० १०।१८।८)

सोमः प्रथमो विविदे (ऋ० १०।२७।५)

इत्यादि इत्यादि।

अतः स्वामी जी का अर्थ वेदानुकूल तथा युक्ति युक्त है और आपका अर्थ वेद व्याकरण तथा युक्ति के अत्यन्त विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल है।

जैसे कि लिखा भी है कि—

नारी तु पत्यभावे वैदेवरं कुरुते पतिम्।
पृथिवी ब्राह्मालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम् ॥२२॥

(मह्।० अनु० अ० ८

द्वौतु यौ विवदेयातांद्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं तत् सगृह्णीत नेतरः ॥१६१॥

(मनु० ६)

---

# पत्यन्तर्विधान और

## स्वामी दयानन्द

(४६०) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० १११ में लिखा है कि—

"किंतु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में" इत्यादि से ले कर "इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह व अनेक विवाह कभी न होना चाहिये" इत्यन्त तक पाठ देकर लिखा है कि—

यहां पर स्वामी जी द्विजों में अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष का तो पुनर्विवाह होना लिखते हैं किन्तु क्षत योनि स्त्री और क्षत वीर्य पुरुष के विवाह का निषेध करते हैं।

पृष्ट २१ पंक्ति ७

उत्तर—यदि स्वामी जी ने द्विजों में क्षत योनि स्त्री तथा क्षत वीर्य पुरुष के लिये विवाह का निषेध किया है तो नियोग का तो विधान किया है। इस में कोई सन्देह नहीं कि पुनर्विवाह और नियोग में चन्द एक शर्तों का फर्क है किन्तु स्त्री को दूसरे पति की प्राप्ति दोनों में मौजूद है। आप ने स्वामी जी की तहरीर को आगे और पीछे से चुरा कर और अधूरा लेख लिख कर जनता को धोके में डालने का यत्न किया है। देखिये स्वामी जी की पूरी तहरीर इस प्रकार से है कि—

प्रश्न—स्त्री और पुरुष का बहु बिवाह होने योग्य है वा नहीं।

उत्तर—युगपत् न, अर्थात् एक समय में नहीं। प्रश्न—क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहियें। उत्तर—हां, जैसे—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गत प्रत्यागतापिवा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ( मनु० ६ । १७६ )

जिस स्त्री व पुरुष का पाणि ग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनी स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष हो उन का अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये ।

प्रश्न—पुनर्विवाह में क्या दोष है ।

उत्तर—(पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ संबन्ध करले (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति वा स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा ले जाना और उनके कुटुम्ब वालों का उन से झगड़ा करना । (तीसरा) बहुत से भद्रकुल का नाम वा चिह्न भी न रह कर उसके पदार्थ छिन्न भिन्न हो जाना (चौथा) पति व्रत और स्त्री व्रत धर्म्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये ।

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जाय तब भी उसका कुल नष्ट हो जायेगा और स्त्री पुरुष व्यभिचार आदि कर्म करके गर्भपातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे । इस लिये पुनर्विवाह होना अच्छा है ।

उत्तर—नहीं २, क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे उस से कुल चलेगा और व्यभिचार भी नहीं होगा और

जो ब्रह्मचर्य्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पति कर लें" अब इस तहरीर से साफ साबित है कि स्वामी जी ने द्विजों में अक्षत योनि स्त्री तथा अक्षतवीर्य्य पुरुष के लिये पुनर्विवाह तथा क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष के लिये नियोग की आज्ञा दी है। पुनर्विवाह तथा नियोग दोनों में स्त्री के लिये दूसरे पति की प्राप्ति मौजूद है। अतः आप का आक्षेप सर्वथा निरर्थक है। स्त्री को दूसरे पति के अधिकार के बारे में वेदों और शास्त्रों में प्रमाण भरे पड़े हैं जैसा कि—

सोमोददद् गन्धर्वाय गन्धर्वोदददग्नये।
रयिंचपुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४॥

(अथर्व० १४।२।४)

भाषार्थ—सोम ने पहले गन्धर्व के लिये दिया। गन्धर्व ने अग्नि के लिये और अग्नि ने भी इस स्त्री धन और पुत्रों को मुझे दिया ॥४॥

पुनर्वैदेवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१०॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्जंपृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥११॥

(अथर्व० ५।१७)

भाषार्थ—विद्वान लोग स्त्री का पुनः दान कर देते हैं। विचार शील मनुष्य भी विधवा का पुनः दान करते हैं। राज्य कर्ता व्यवस्थापक लोग भी यथार्थ का निर्णय कर के ब्राह्मण की पत्नी को भी पुनः दान करने की आज्ञा देते हैं ॥१०॥

विद्वान् लोग ब्राह्मण की पत्नी को पुनः निर्दोष निष्पाप करके और उस को योग्य पति के हाथों पुनः दान करके भूमि के बल

को विभाग करके उस महान् यशस्वी परमात्मा की उपासना करते हैं ॥११॥

यहाँ जाया नाम कन्या का नहीं अपि तु पत्नी का है जैसा कि—

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायाया स्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥८॥

(मनु० ६)

भाषार्थ—पति पत्नी में प्रवेश करके गर्भ होकर इस संसार में पैदा होता है । जाया का यही जाया पन है कि इस में पति पुनः पैदा होता है ॥८॥ पुत्र पति के सदृश होता है यह इस श्लोक का अभिप्राय है ।

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयामानाम् ।
अंधेनयत् तमसा प्रावृत्तासीत् प्राक्तों अयाचीमनयं तदेनाम्

(अथर्व १८।३।३)

भाषार्थ—मृतपतियों के पास से जीवित युवती जवान स्त्री को ले जाई गई और पुनः विवाह करती हुई को मैं गृह का व्यवस्थापक देखूं । जब वह अंधेरे अंधकार शोक मोह से ढकी हुई हो तो उस को आगे के कष्ट दायक दृश्य से हटा कर दूसरी ओर ले जाऊँ ॥३॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबेच पति ते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्योविधीयत ॥३०॥

(पराशर स्मृति अ० ४)

भाषार्थ—पति के खोने मरने सन्यासी नपुंसक या पतित होने आदि पाँच आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा पति करने की विधि है ॥३०॥

पतौ पद पर आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि यह प्रयोग ग्रन्थों में आता है जैसा कि—

नोऽस्मिन् रमसे पतौ ॥३॥ (अथर्व० ३।१८)

तत्र नित्यं वसेत प्राज्ञः कृतकृत्यः पतौ सुखम् ॥८७॥

(भविष्य० उत्तर० अ० २०५)

शंकरो बहुधा देवी विहर्तुं संप्रतीक्षते ।

एवं पतौ सुकामार्तेगम्पतां गिरि नन्दिनि ॥४३॥

(शिव० रुद्र० युद्ध० अ० ५१)

नहि कोपपरी तानि हर्ष यर्यु त्सुकानिच ।

भवन्ति युधि योधानां मुखानिनिहिते पतौ ॥२४॥

(बालमी० युद्ध० स० ४८)

अतः पतौ प्रयोग आर्ष होने से कतई दुरुस्त है ।

(४६१) प्रश्न— सत्यार्थ प्रकाश पृ० ११४ में लिखा है कि "द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है । द्वितीय वार नहीं । इस लेख में पीछे लिखे अक्षतवीर्य पुरुष और अक्षतयोनि स्त्री के विवाह का भी खण्डन किया है ।पृ० २१ पं० २१ ।

उत्तर— यहां पर अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष के पुनर्विवाह का प्रकरण ही नहीं है अपितु यहाँ पर क्षतयोनि स्त्री तथा क्षत वीर्य पुरुष के नियोग का प्रकरण चल रहा है । और यहाँ पर रंडवे पुरुष को कुमारी कन्या से तथा विधवा स्त्री को कुमारे पुरुष से विवाह का निषेध किया है । आपने अपने स्वाभाव के अनुसार यहां भी आगे पीछे के पाठ को चुरा कर अधूरा पाठ पेश करके वक्ता के अभि प्राय के विरुद्ध कल्पना करके आत्मघात का पाप ही किया है। देखिये पूरा पाठ इस प्रकार से है कि—

"प्रश्न—पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है। क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा।

उत्तर—हम लिख आये हैं द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है द्वतीय वार नहीं कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमारे पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृत स्त्रीक पुरुष के साथ विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ पुरुष विवाह नहीं किया चाहता वैसे ही विवाह और स्त्री से समागम किये हुये पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का ग्रहन कोई कुमार पुरुष न करेगा तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की अवश्यकता होगी। और यही धर्म्म है कि जैसे के साथ वैसे ही का संबंध होना चाहिये"।

कहिये महाराज! यहाँ पुनर्विवाह का खंडन है या रंडवे पुरुष के साथ कुमारी कन्या के विवाह का खंडन करके रंडवे और विधवा के नियोग का मण्डन वर्णन किया गया है। परमात्मा आप को सचाई प्रकाशित करने का बल दें ताकि आप स्त्रियों को दूसरे पति के हक़ का विरोध करना छोड़ दें, क्योंकि आपके ग्रन्थोंमें उसके अनेक प्रमाण विद्यमान हैं जैसे कि—

(१) सीता के कथनानुसार राम की सहायतार्थ लक्ष्मण के न जाने पर सीता ने कहा कि—

इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥ ६ ॥
लोभा त्तू मत्कृते नूनंनानुगच्छसि राघवम् ॥ ७ ॥

नैव चित्रंसपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत् ॥ २३ ॥
मम हेतोःप्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥ २४ ॥
कथमिन्दी वर श्यामं रामं पद्म निभेक्षणम् ॥ २५ ॥
उपसंश्रित्य भर्तारं काम येयं पृथग्जनम् ॥ २६ ॥
न त्वहं राघवा दन्यं कदापिपुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥
( बाल्मी० अरण्य० स० ४५ )

भाषार्थ—हे लक्ष्मण ! तू मेरे कारण राम की मौत चाहता है ॥ ६ ॥ तू मेरे लोभ के कारण ही राम की सहायतार्थ नहीं जाता ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण ! यदि सपत्न पुरुषों में यह पाप हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है॥२३॥ तू मेरे कारण से छिपा हुवा राम के पीछे फिर रहा है या तुझे भरत ने भेजा है॥२४॥ मैं कैसे कमल नैन घनश्याम राम पति का आश्रय लेकर दूसरे पुरुष की कामना कर सकती हूं ॥ २३ ॥ मैं राम के बिना किसी पुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ३७॥ सीता का लक्ष्मण को यह उलाहना देना इस बात को साबित करता है कि उस समय में स्त्री को दूसरे पति का हक़ हासिल था।

( २ ) रावण ने सीता से कहा कि—

अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मं लोप कृते नते ॥ ३४ ॥
आर्षोऽयंदेविनिष्पन्दो यस्त्वा मभिभविष्यति ॥ ३७ ॥
( बाल्मी० अरण्य० स० )

भाषार्थ—हे सीते ! तू बस शर्म न कर और यह विचार न कर कि पाप होगा। यह विधि है। हे देवी ! यह आर्ष विवाह कहाता है जिस से मैं तुझ को ग्रहण करूंगा ॥३४-३५ रावण का यह उपदेश उस समय में स्त्री के दूसरे पति के हक़ को सिद्ध करता है। ( ३ ) जब सीता को राम के सामने लाया गया तो राम ने सीता से कहा कि—

प्राप्त चारित्र सन्देहा मम प्रति मुखे स्थिता ।
दीपोने त्रातुरस्येव प्रतिकूल. सिमेदृढा ॥ १७ ॥
तदद्य व्याहृतं भद्रे मयैतत्कृत बुद्धिना ।
लक्ष्मणे वाथ भरते कुरु बुद्धिं यथा सुखम् ॥ २२ ॥
शत्रुघ्ने वाथ सुग्रीवे राक्षसे वाविभीषणे ।
निवेशयमनः सीते यथा वा सुखमात्मनः ॥ २३ ॥
( बाल्मी० युद्ध० स० ११५ )

भाषार्थ—मुझे तेरे चरित्रमें संदेह है किन्तु तू मेरे सामने खड़ी है। निश्चित तू मेरे ऐसे ही प्रतिकूल है जैसे नेत्र रोगी के लिये दीपक ॥ १७ ॥ सो आज मैं हे कल्याणी ! अपने होशोहवास क़ाइम होते हुये तुझको कहता हूं कि तू सुख पूर्वक लक्ष्मण वा भरत में बुद्धि को स्थिर करले ॥ २२ ॥ या शत्रुघ्न या सुग्रीव में या राक्षस विभीषण में हे सीते अपने मन को लगाले या जहां तुझ को सुख प्रतीत हो वहाँ रह ॥२३॥

राम का सीता को यह कहना सिद्ध करता है कि उस समय ऐसी अवस्था में स्त्रियों को दूसरे पति का हक़ था।

(४) जब हनुमान् जी ने सीता को अशोक वाटिका में देखा तो उसकी क्या अवस्था थी बाल्मीक जी कहते हैं कि—

पुनः संस्कारमापन्नां जाता मिवच दुष्कुले ॥१०॥
(बाल्मी० सुन्दर० स० १९)

भाषार्थ— जैसे कि पुनः संस्कार को प्राप्त हुई हो। और दुःखित कुल में पैदा हुई हो ॥ १०॥ बाल्मीक का यह उपमा देना पुनर्विवाह के रिवाज को साबित करता है।

( ५ ) जाम्बवान् ने हनुमान जी से कहा कि—

स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीम विक्रमः ॥ २ ॥

मारुतस्यौरसः पुत्र स्तेजसा चापि तत्समः ॥ ३० ॥

( बाल्मी० किष्किं० स०६६ )

भाषार्थ—हे हनुमान् तू भयंकर बलवाला केसरी का क्षेत्रज पुत्र है ॥ २६ ॥ और पवन का और सपुत्र है और तेज में भी उसके समान है ॥ ३० ॥

हनुमान् को क्षेत्रज पुत्र लिखना इस बात को साबित करता है कि उस समय नियोग का रिवाज मौजूद था।

( ६ ) जब शूर्पणखां ने राम से विवाहार्थ प्रार्थना की तो वह विधवा थी।

ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्या समचिंतयत् ॥ १ ॥
ददौ तां काल केन्द्राय दानवेन्द्राय राक्षसीम्।
स्वसां शूर्पण खां नाम विद्युज्जिह्वा यराक्षसः ॥२ ॥

( बाल्मी ० उत्तर० स० १२ )

शूर्पणख्याश्च भर्तारं मसिना प्राच्छिनत्तदा।
श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलो त्कटम् ॥ १८ ॥

( बाल्मी ० उत्तर० स० २३ )

कृतास्मि विधवा राजं स्त्वयाबलवता बलात् ॥२७॥
राजन् वैधव्य शब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृतंह्याहम् ॥ ३० ॥

( बाल्मी० उत्तर० स० २४ )

अहं प्रभाव संपन्ना स्वछन्द बल गामिनी।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥ २४ ।

(बाल्मी० अरण्य० स० २४ )

कृत दारोऽ स्मि भवति भार्येयं दयितामम ।
त्व द्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥ २ ॥

( बाल्मी० अरण्य० स० ० १८ )

भाषार्थ— तब रावण अपनी बहिन के विवाह का विचार करने लगा ॥ १॥ तब रावण राक्षस ने अपनी बहिन राक्षसी शूर्पणखां का विवाह विद्युज्जिह्व कालकेन्द्र नाम राक्षस से कर दिया ॥ २ ॥ इसके पश्चात् रावण ने एक युद्ध में शूर्पणखां के पति अपने बहनोई बलवान् शूरवीर विद्युज्जिह्व को तलबार से कतल करदिया ॥ १८ ॥ तब शूर्पणखा ने रावण से कहा कि हे राजन् ! बलवान आपने अपने बल से मुझे विधवा बना दिया ॥ २७ हे राजन् ! अब तेरे कारण से मैं विधवा शब्द का भोग करूंगी ॥ ३० ॥ उसके पश्चात् रावण के कहने से शूर्पणखा अपने भाई खरदूषण के पास रहने लगी। उनही दिनों में राम उधर आये तो शूर्पणखा ने राम से कहा कि मैं प्रभाव से सम्पन्न और स्वतन्त्र गति वाली हूं आप मेरे चिर काल तक पति बनें सीता से आप क्या करेंगे ॥ २४ ॥ इस पर राम ने उत्तर दिया कि मैं शादीशुदा हूं और यह सीता मेरी प्यारी पत्नी है और आप जैसी नारी के लिये सपत्नी पन का दुख असह्य होगा ॥ २ ॥

शूर्पणखा का विधवा ब्राह्मणी होते हुये शादी की प्रार्थना करना तथा राम का यह उत्तर देना कि "मेरे पास स्त्री मौजूद है इस लिए मैं तुम्हारे साथ शादी नहीं कर सकता, जिसके दूसरे अर्थ यह हैं कि यदि मेरे पास स्त्री न होती तो मैं तुम्हारे साथ शादी कर लेता" इन दोनों बातों से साबित होता है कि उस समय में स्त्री को दूसरे पति का अधिकार था।

( ७ )बाली के मरने पर सुग्रीव ने तारा को रानी बना लिया जैसा कि लिखा है कि—

स्वांच पत्नी मभि प्रेतां तारां चापि समीप्सिताम् ।
विहरंन्तमहो रात्रं कृतार्थं विगत ज्वरम् ॥४॥
(बाल्मी० किष्कं० स० २६)

तारया सहितः कामी सक्तः कपिवृषस्तदा ॥२२॥
(बाल्मी० किष्कं० स० ३१)

तं काम वृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्त लज्जम् ।
क्षमस्वतावत् परवीर हन्त स्त्वद्भ्रातरं वानर वंश नाथम्
(वालमी० किष्कं० स० ३३) ॥५६॥

रामान्मृते बालिसंज्ञे पतौ हि सुग्रीव संगं साचकार तारा ।
अतो नागात्स्वर्गलोकं च तारा कवायायादं तरिक्षं च पापा
(गरु० उत्तर० अ० २८) ॥५५॥

प्रविश्यांतः पुरं शीघ्रं तारामुद्दिश्यसो ब्रवीत् ॥३०॥
प्रियेत्वं सह नारीणां वानराणां महात्मनाम् ॥३१॥
(बाल्मी० युद्ध० स० १२३)

अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम वानरम् ॥१॥
तारायाः पितरं राजा श्वशुरं भीम विक्रमम् ॥२॥
(बाल्मी० किष्कं० स० ४२)

लहतन प्रभु चित्त चूक किये की,
करत सुरत सौबार हिये की ।
जिहिं अघ वध्योव्याध जिमि बाली,
फिर सकंठ सोई कीन्ह कुचाली ।
सोई करतूत विभीषण केरी,
सुपनेहु सोन राम हिये हेरी ।
ते भरतहिं भेटत सनमाने,
राजसभा रघुवीर बखाने ।
(तुलसी रामा० बाल० दोहरानं० ३४)

भावार्थ— अपनी प्यारी पत्नी रुमा और मनो वांच्छित तारा के साथ दिन रात विहार करते हुये सुग्रीव को कृतार्थ और दुःख रहित देख ॥ ४ ॥ वह बलवान् कपि सुग्रीव तारा के साथ काम में मोहित था ॥ २२ ॥ तारा ने लक्षमण से कहा कि उस काम में मस्त मेरे पास काम के योग से निर्लज्ज शूरवीर अपने भाई वानर वंश के राजा सुग्रीव को क्षमा करो ॥५६॥ राम से बाली नाम के पति के मारे जाने के पश्चात् उस तारा ने सुग्रीव से समागम किया इसलिये तारा स्वर्ग लोक को नहीं गई वह पापिनी स्वर्ग को कैसे जा सकती थी ॥ ५२ ॥ जब सुग्रीव राम के साथ पुष्पक विमान पर अयोध्या को जा रहे थे तो रास्ते में किष्कंधा पुरी में विमान उतरा तब उस सुग्रीव ने महल में प्रवेश करके तारा को बुलाकर कहा हे प्यारी तू भी बानरों की तमाम स्त्रियों के साथ तय्यार होजा ॥३०॥ सुग्रीव ने तारा के बाप तथा अपने श्वसुर भयंकर बलवान मेघ सदृश गरजने वाले सुषेण नाम बानर को कहा ॥१-२॥ इन तमाम प्रमाणों से साबित है कि सुग्रीव ने तारा को पत्नी बना लिया था। इस पर तुलसी दास जी कहते हैं कि–राम भगतों की ग़लती की तरफ ध्यान नहीं देते अपितु उनके हृदयों को सौबार टटोल लेते हैं कि वह मेरी तरफ हैं। जिस पाप के कारण राम ने शिकारियों की भाँति बाली को मारा (अर्थात् सुग्रीव की स्त्री रुमा को बाली ने घर में डाल लिया था) फिर सुग्रीव ने वही कुचाली की (अर्थात् बाली के मरने पर तारा को रानी बनालिया ) वही करतूत विभीषण ने की ( अर्थात् रावण के मरने पर मन्दोदरी को रानी बना लिया) किन्तु राम ने सुपने में भी उन को दंड देने का ख्याल नहीं किया। उनकी

भरत के साथ मानपूर्वक मुलाकात करवाई और भरे दरबार में राम ने उनकी बड़ी भारी तारीफ़ की। इस चौपाई का सारांश यह है कि जिस पाप के कारण राम ने बाली को शिकारियों की भाँति मारा वही पाप सुग्रीव और विभीषण ने किया किन्तु राम ने उन को कोई सज़ा नहीं दी बल्कि उनकी हौसला अफ़ज़ाई की। हमारे विचार में यह राम की स्तुति नहीं अपितु राम पर अन्याय का दोष है, जिस को हम ठीक नहीं मानते क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी एक न्यायकारी राजा थे। वास्तव में बात यह है कि गुसाईं तुलसीदास जी ने बात को समझा नहीं। वास्तव में जो पाप बाली ने किया था वह सुग्रीव और विभीषण ने नहीं किया। बाली ने सुग्रीव के जीते हुए उस की स्त्री रुमा को बलात्कार से अपने घर में डाला। चूंकि राम यह समझते थे कि पति के जीते हुए उसकी स्त्री को ज़बरदस्ती घर में डालना पाप है अतः राम ने बाली को शिकारियों की भाँति मारा। किन्तु सुग्रीव ने बाली के मरने के पीछे उसकी स्त्री तारा को रज़ामन्दी से अपनी रानी बनाया। और विभीषण ने रावण के मरने के पीछे उसकी स्त्री मन्दोदरी को रज़ामन्दी से अपनी रानी बनाया चूंकि राम यह समझते थे कि पति के मरने के पीछे उसकी स्त्री को रज़ामन्दी से रानी बनाना कोई पाप नहीं है। अतः इतना ही नहीं कि राम ने उन को दंड नहीं दिया अपितु उनकी हौसला अफ़ज़ाई की।

इन दोनों घटनाओं से साबित है कि उस समय स्त्री को दूसरे पति का अधिकार प्राप्त था।

(४६२) प्रश्न—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० २२२ में लिखा है कि—

"कुमार्य्योः स्त्री पुरुषयोरेकवार मेव विवाहः स्यात् पुनरेवं नियोगश्च, नैवद्विजेषु द्वितीयवारं विवाहो विधीयते। पुनर्विवा-

हस्तु खलु शूद्रवर्ण एव विधीयते। तस्य विद्या व्यवहार रहि तत्वात्"

"कुमार स्त्री पुरुष का एक ही वार विवाह विधान किया है। फिर विवाह नहीं होता, नियोग होता है। द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) में द्वितीयवार विवाह का विधान नहीं पुनर्विवाह का तो शूद्रवर्ण में ही विधान है। क्योंकि उस को विद्या व्यवहार की शून्यता है।

आर्य्य समाजियों को स्वा० दयानन्द जी का यह लेख साधु जान पड़ता है वा असाधु।

उत्तर—यहाँ पर भी आप ने स्वामी जी के पाठ को चुराकर अधूरा ही पाठ पेश किया। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिक में यहां पर प्रकरण ही नियोग का है। पुनर्विवाह का प्रकरण ही नहीं है। चूंकि पुनर्विवाह द्विजों में अक्षत योनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष का ही होना सत्यार्थ प्रकाश में वर्णन कर आये हैं। अतः नियोग का प्रकरण होने के कारण यहाँ क्षत योनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष का ही वर्णन है। और क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष के पुनर्विवाह का निषेध करके नियोग का विधान सत्यार्थ प्रकाश में ही कर आये हैं अतः यहां पर उसी को वर्णन किया गया है। यहां पर भी स्वामी जी ने इसी बात को स्पष्ट करने के लिये यह पाठ दिया है कि रंडवे पुरुष की कुमारी कन्या से तथा विधवा स्त्री की कुमार पुरुष से जोड़ी न मिलाई जाये। अपि तु कुमार की कुमारी तथा रंडवे की विधवा से ही जोड़ी मिलाना मुनासिब है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का पूरा पाठ इस प्रकार से है कि—

"विधवाया द्वितीय पुरुषेण सह नियोग करणे आज्ञास्ति, तथा पुरुषस्य च विधवया सह। विधवा स्त्री मृतक स्त्रीक पुरुषेण सहैव सन्तानार्थं नियोगं कुर्यान्न कुमारेण सह' तथा कुमारस्य विधवया सह च। अर्थात् कुमारयोः स्त्री तुरुषयो रेकवारमेव विवाहः स्यात्, पुनरेवं नियोगश्च। नैव द्विजेषु द्वितीय वारं विवाहो विधीयते। पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्ण एव विधीयते, तस्य विद्याव्यवहार रहितत्वात्"

विधवा को रंडवे पुरुषके साथ नियोग करने की आज्ञा है तथा रंडवे पुरुष को विधवा के साथ। विधवा स्त्री मृतस्त्रीक पुरुष के साथ ही सन्तानार्थं नियोग करे कुमार के साथ नहां तथा कुमार का कुमारी से ही विवाह हो विधवा से नहीं। अर्थात कुमार स्त्री पुरुष का एक बार ही विवाह हो, और फिर नियोग हो द्विजों में दूसरी वार विवाह का विधान नहीं है। पुनर्विवाह का तो निश्चय से शूद्र वर्ण में ही विधान है उसके विद्या व्यवहार से रहित होने के कारण। "

प्रथम तो हमारे उपरोक्त लेख के अनुसार आप का दिया हुआ पाठ ऊपर के पाठ का अभिप्राय है। जो कि अर्थात् शब्द से ही स्पष्ट है।

दूसरे यदि आपकी बात को भी ठीक मान लिया जावे तो भी इस पाठ से पुनर्विवाह का निषेध करके नियोग का विधान किया गया है। जिससे हमारे पक्ष की कोई हानि नहीं है। क्योंकि पुनर्विवाह और नियोग दोनों में ही स्त्री को दूसरे पति का हक़ हासिल है। अतः आपका आक्षेप सर्वथा निर्मूल है हम हैरान हैं कि आप स्त्री को दूसरे पति के हक़ का निषेध कैसे कर सकते हैं जब कि सनातन धर्म्म के ग्रन्थों में स्थान २ में स्पष्ट रूप से उसका विधान मौजूद है जैसा कि—

( १ ) विवाहो जायते राजन् कन्यायास्तु विधानतः
पति मृत्युं प्रयात्यस्या नो चेत् संगं करोतिच ॥ ५९॥
महाव्याध्यविभूतश्चत्यागं कृत्वा प्रयातिवा।
प्रव्राजितो भवेद्राजन् धर्म्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥ ६० ॥
उद्वाहितार्या कन्यायामुद्राहः क्रियते बुधैः ॥
न स्या द्रजस्वला यावदन्येष्वपि विधीयते ॥
विवाहं तु विधानेन पिताकुर्या न्न संशयः ॥६१॥

( पद्म० भूमि० अ० ८५

भाषार्थ— हे राजन ! कन्या का विवाह विधि पूर्वक हो सकता है यदि उसका पति मर गया हो यदि उसने पति से समागम न किया हो ॥ ५९ ॥ पति दीर्घ रोगी हो या छोड़ कर चला गया हो अथवा सन्यासी हो गया हो तो धर्म्म शास्त्रों में देखा जाता है ॥६०॥ बुद्धिमान् लोग विवाही हुई कन्या का विवाह कर देते हैं जब तक वह रजस्वलान हो तब तक वह औरों को भी दी जा सकती है। उसका विवाह विधि पूर्वक उसका पिता ही करे इसमें संशय नहीं है ॥ ६१ ॥

( २ ) पुरासत्य युगे नारी चोत्तमा च पतिव्रता ।
त्रेतायां मध्यमा जाता निकृष्टा द्वापुरे पुनः ॥२८ ॥
अधमा हि कलौ नारी पर पुंसोप भोगिनी।
अतस्तु कलि काले वै विवाहो विधवा स्त्रियाः ॥२९॥
(भविष्य० प्रति सर्ग० खं० ३ अ० ३१)

भाषार्थ—पहिले सतयुग में स्त्री उत्तम पतिव्रता होती थी त्रेता में मध्यम होगई और द्वापुर में निकृष्ट हो गई ॥२८॥ कलि युग में स्त्री पर पुरुष के साथ भोग करने वाली अधम हो गई। इसलिये कलियुग में विधवा स्त्री का विवाह होना चाहिये ॥१९॥

( ३ ) उद्वाहिता तुया कन्या नच प्राप्ता तु मैथुनम् ।
पुनरभ्येति भर्तारं यथा कन्यातथैवसा ॥४६॥
( भविष्य० ब्राह्म० अ० १८२ )

भाषार्थ—जो कन्या विवाहि तो हो गई हो किन्तु वह समागम को प्राप्त नहीं हुई वह फिर से दूसरे पति को प्राप्त हो सकती है क्यो कि जैसी कन्या होती है वैसी वह है ॥४६॥

( ४ ) यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन नि जो विन्देत देवरः ॥६९॥
यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ।
मिथो भजेताप्रसवा त्सकृत्सकृदृता वृतौ ॥ ७० ॥
साचेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्या गतापिवा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सापुनः संस्कार महंति ॥ १७६ ॥
( मनु०९ )

भाषार्थ—जिस कन्या का वाणी से मन्त्र पढ़ने मात्र से विवाह होने पर पति मर जावे उसको इस विधान से उसका देवर प्राप्त हो ॥ ६९ ॥ उस श्वेत वस्त्र धारण की हुई शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत धारण की हुई को विधि पूर्वक प्राप्त होकर सन्तान होने तक प्रत्येक ऋतु में एक २ वार उसके साथ परस्पर समागम करे ॥ ७० ॥ यहां पर वागदान वाली कन्या का वर्णन नहीं है क्योंकि प्रथम तो वागदान कोई संस्कार ही नहीं है दूसरे वागदान वाली के साथ यह विधि नहीं बताई जा सकती अपि तु यह विधि विधवा के साथ ही की जा सकती है ॥ वह यदि अक्षत योनि हो और जाकर भी वापिस आ गई हो तो वह पुनर्विवाह की विधि के अनुसार पुनः होने वाले पति के साथ पुनः संस्कार को प्राप्त हो सकती है ॥ १७६ ॥

(४६३) प्रश्न—संस्कार विधि पृ० १६५ में लिखा है कि "एक स्त्री के लिये एक पति से एक वार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है इन लेखों से स्वामी जी द्विजों में विधवा विवाह का निषेध लिखते हैं।

उत्तर—आपको पाठ चुरा कर अधूरा पाठ पेश करने की असाध्य बीमारी है और आप विधवा विवाह के निषेध में स्वामी जी का वह पाठ पेश कर रहे हैं कि जो स्वामी जी ने स्त्री को दूसरे पति के अधिकार के पक्ष में लिखा है। संस्कार विधि में उपरोक्त पाठ स्वामी जी ने विवाह प्रकरण में "इमाँ त्वमिन्द्र" इत्यादि मन्त्र के भाष्य में दिया है कि—"अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा परमात्मा ने की है वैसे ही आज्ञा स्त्री को भी है कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करे करावे। वैसे ही एक स्त्री के लिए एक पति से एक वार विवाह और पुरुष के लिए भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है। जैसे विधवा हुये पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगत स्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे।"

अब देखिए यहां पर आप के दिये हुए पाठ से पूर्व और पश्चात् तीन वार स्त्री और पुरुष को नियोग करने की आज्ञा मौजूद है। नियोग और पुनर्विवाह दोनों में ही स्त्री को दूसरे पति का अधिकार प्राप्त है। अतः आप का यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल है।

आप के ग्रन्थों में स्त्री कोदूसरे पति के अधिकार के प्रतिपादक अनेकों प्रमाण मौजूद हैं जैसे कि—

(१) अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान् ।
स्नुषायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
ऐरावतेन सा दत्ताऽनपत्या महात्मना ।
पत्यौ हते सुपर्णेण कृपना दीनचेतना ॥ ८ ॥
भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगम् ।
एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः ॥ ९ ॥

( महा० भीष्म० अ० ९० )

भाषार्थ—इरावान् नाम वाला लड़का बड़ा बहादुर, श्रीमान् अर्जुन का पुत्र था जोकि बुद्धिमान् अर्जुन ने नाग राजा की पुत्रवधु में पैदा किया था ॥७॥गरुड़ के हाथ से पति के मारे जाने पर वह विचारी अनाथ महात्मा नागराज ऐरावत ने सन्तान हीन होने के कारन अर्जुन के सपुर्द कर दी ॥८॥ अर्जुन ने उस का मातुरा को धर्म्म पत्नी बनाने के लिये ग्रहण कर लिया । इस प्रकार से यह अर्जुन का पुत्र परक्षेत्र में उत्पन्न हुआ ॥९॥

(२ राक्षसउवाच—क्वते निवासः कल्याण किं गोत्रा ब्राह्मणी चले ॥४॥
गोतमउवाच—मध्यदेश प्रसूतोऽहंवासोमे शवरालये ।
शूद्रापुनर्भू भार्या मे सत्यमेतद् ब्रवीमिते ॥५॥

(महा० शांति० अ० १७१)

भाषार्थ—राक्षस ने पूछा हे श्रीमान् जी ! आप का निवास स्थान कहां हैऔर आपके घर में कौन गोत्र की ब्राह्मणी है ॥४॥ गौतम ने उत्तर दिया कि मैं मध्य देश में पैदा हुआ हूं और शवरालय में रहता हूं । मेरी स्त्री शूद्रा है और वह पुनर्भू है मैं यह सत्य कहता हूं ॥५॥

गौतम ब्राह्मण ने एक शूद्र विधवा से शादी की थी ।

# साहित्य की रक्षा

(४६४) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६८ में लिखा हैं कि "पुराणादिक ग्रन्थ विष संपृक्तान्नवत्" त्याज्य हैं। जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने के योग्य होता है वैसे यह ग्रन्थ हैं। पुराणों में आप झूट मिला हैं यह कहते हैं। पुराणों में क्या २ झूट है इस का सबूत नहीं देते। पृ०५८ पं० ६।

उत्तर—स्वामी जी ने यह लेख लिख कर साहित्य पर छुरा नहीं चलाया अपितु साहित्य पर छुरा चलाने वालों के हाथ से साहित्य की रक्षा की है। क्योंकि लोग व्यासादि ऋषियों के नाम से कपोल कल्पित ग्रन्थ संस्कृत में बना कर सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार, वेश्यागमनादि पाप कर्मों को उन में धर्म्म बताकर ऋषि और महर्षियों को भी उन दोषों से दूषित बता कर जनता को पाप के मार्ग पर चला रहे थे। ऋषि दयानन्द जी को आर्य्य जाती की इस अवस्था पर दया आई और उन्हों ने कहा भाई "संस्कृतं वाक्यं प्रमाणम्" धर्म्म का लक्षण नहीं है अपि तु "वेद प्रतिपादितो धर्म्मः" धर्म्म का लक्षण है। अतः जो वेद तथा वेदानुकूल शास्त्रों के विरुद्ध अनार्ष भागवतादि अष्टादश पुराण हैं वे विष युक्त अन्न के समान त्यागने योग्य हैं। उनका पूर्ण लेख इस प्रकार से है कि—

"प्रश्न— क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परन्तु उस के साथ बहुत सा असत्य भी है इस से "विषसम्पृक्त अन्नवत् त्याज्याः" जैसे—अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते ?

उत्तर—हाँ मानते हैं परन्तु सत्य को मानते हैं मिथ्या को नहीं मानते।

प्रश्न—कौन सत्य और कौन मिथ्या है ?

उत्तर—ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ॥

(आश्वलायण गृह्यसूत्र ३।३।१ से ३ तक)

यह गृह्य सूत्रादि का वचन है । जो ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं । श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं ।

प्रश्न—जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है उस को ग्रहण क्यों नहीं करते ?

उत्तर—जो २ उन में सत्य है सो २ वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उन के घर का है । वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण होजाता है । जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उस के गले लिपट जावे इस लिये "असत्यमि श्रंसत्यं दूरतस्त्या ज्यमिति" असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विष युक्त अन्न को।

प्रश्न—तुम्हारा मत क्या है ?

उत्तर—वेद, अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिस लिये वेद हम को मान्य हैं इस लिये हमारा मत वेद है । ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये । (सत्यार्थ० समु० ३)

रहा इस बात का सबूत कि भागवतादि पुराणों में क्या २ झूट है सो स्वामी जी ने वह यहां तीसरे समुल्लास में वर्णन नहीं किया। क्योंकि यहांपर पठन पाठन का विषय होने से इतना ही बतलाना प्रयोजन था कि ये भागवतादि अष्टादश पुराण विद्यार्थियों को पढ़ाने के योग्य नहीं हैं यदि आपको पुराणों में झूटों के देखने की इच्छा है तो वह स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में अष्टादश पुराण समीक्षा में संक्षेप से वर्णन की है वहां पर देखने की कृपा करें

(४६५) प्रश्न—इस विषय में महाभारत लिखता है कि—

पुराणं मानवो धर्मःसाङ्गोवेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञा सिद्धानि चित्वारि न हन्तव्यानि हे तुभिः॥

पुराण, मनु के कहे धर्म्म, अंगों सहित वेद और वैद्यक ये चारों ग्रन्थ आज्ञा सिद्ध हैं इन को दलीलों से नहीं काटना चाहिये। पृ० ५८ पं० ५।

उत्तर—वाहवा वह बात सच निकली जो हम कह रहे थे कि आप लोगों की अकल पर ताला लगा कर "संस्कृतं वाक्यं प्रमाणम्" (जो कुछ संस्कृत में लिखा जावे वही प्रमाण है) "ब्रह्मवाक्यं प्रमाणम्" (जो कुछ ब्राह्मण के मुख से निकल जावे सोई प्रमाण है) का पाठ पढ़ा कर उन को निरा बुद्धू बनाना चाहते हैं। तभी तो यह पाठ पढ़ा रहे हैं कि "धर्म्म केविषय में दलील से काम लेना नहीं चाहिये,' ताकि लोग इस असूल को मान कर बिना सोचे समझे प्रत्येक किताब की बात को मान लिया करें। इस सिद्धान्त ने आर्य्य जाति को तबाह कर दिया। आर्य्य

जाति की इस कमज़ोरी से लाभ उठाने के लिये विधर्मियों ने संस्कृत में वेद विरुद्धग्रन्थ बना कर जनता में पाप का प्रचार कर डाला यह ऋषि दयानन्द जी की ही कृपा है कि उन्होंने हमें वैदिक कसौटी बतलाकर आर्य्य जाति के साहित्य को सुरक्षित कर दिया। अतः ऋषि दयानन्द की कसौटी के अनुसार आपके प्रमाण में निम्न दोष हैं। (१) आपने इस प्रमाण को महाभारत के नाम से दिया है किन्तु यह नहीं बतलाया कि यह श्लोक महाभारत के कौनसे पर्व कौन से अध्याय का कौन सा श्लोक है आपके इस श्लोक का तो हमारा निम्न श्लोक ही युक्ति पूर्वक खंडन कर देता है कि—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां हीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥

जिसके पास स्वयं सदसद्विवेकिनी बुद्धि नहीं है उसका शास्त्र क्या उपकार कर सकता है। जैसेकि जिस पुरुष के दोनों नेत्र न हों उसका दर्पण क्या उपकार करेगा। अतः तर्क और दलील के बिना मनुष्य पशु समान ही है (२) इस श्लोक में भी "पुराण" शब्द से भागवतादि अष्टादश कपोल कल्पित ग्रन्थ मुराद नहीं है। अपितु शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम ही पुराण है। क्योंकि भागवतादि ग्रन्थ पुराण नहीं हैं जैसा कि—

रवि वोर चसण्डे च फाल्गुणे चैव फर्वरी।
षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहरणमीदृशम् ॥३८॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग ४ खं० १ अ० ५)

रविवार को संडे फाल्गुन को फर्वरी तथा साठ को सिक्सटी जानना चाहिये यह ऐसा उदाहरण है ॥३७॥ इससे साफ

साबित है कि यह पुराण तब बनाया गया जब कि अंग्रेजी भाषा भारतवर्ष में आगई थी वरना व्यास जी कोई ऐम. ए. पास थोड़ा ही थे। अतः भागवतादि ग्रन्थ नवीन हैं इनका नाम पुराण नहीं है।

(३) इस में वास्तव में मीमांसा और न्याय के हेतु वाद का विरोध नहीं अपितु इसमें हेत्वाभास,कुतर्क' अर्थात् वेद शास्त्र के विरुद्ध तर्कवाद का खण्डन है वरना—

आर्षं धर्म्मोपदेशंच वेद शास्त्रा ऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते सधर्मं वेदनेतरः ॥१०६॥

(मनु० १२)

ऋषिदृष्टत्वादार्षं धर्मो पदेशंच तन्मूल स्मृत्यादिकं यस्तदविरु द्धेन मीमांसादि न्यायेन विचारयतिसधर्मं जानातिनतु मीमांसान भिज्ञः। (कल्लुक भट्ट)

भाषार्थ—वेद और तदनुकूल स्मृति आदि ग्रन्थों को जो मनुष्य मीमांसा तथा न्याय आदि "वेद शास्त्र से अविरोधी" तर्क से विचारता है वही धर्म्म को जानता है दूसरा नहीं ॥१०६॥ अतः मनु के प्रमाण के सामने आप का प्रमाण सर्वथा असत्य है।

(४) वेद स्वयं तर्क, दलील, तथा वाद बिवाद की आज्ञा देते हैं जैसा कि—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥

(ऋ० अ० ८ व० ४९)

हे मनुष्यो !तुम धर्म्म की प्राप्ति के लिये इकट्ठे होकर संवाद करो। जिस से सचाई और धर्म्म को जान कर तुम्हारे मन विज्ञान युक्त हो जावें। जैसे तुम्हारे अध्यापक लोग धर्म्म का सेवन कर रहे थे वैसा तुम भी करो ॥२॥

अतः आपका प्रमाण सर्वथा वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध होने से त्याज्य ही है।

(४६६) प्रश्न—मनु जी लिखते हैं कि—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतु र्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥

(मनु० २)

वेद, धर्म्म शास्त्र, सदाचार, और आत्म प्रेम इन चार प्रकार से धर्म्म जाना जाता है ॥१२॥

उत्तर—धर्म शास्त्र, सदाचार, तथा आत्म प्रेम धर्म के जानने में वहां तक ही प्रमाण हैं जहां तक वे वेद के विरुद्ध न हों अन्यथा प्रमाण नहीं जैसा कि—

(१) वेद—

स्तुता मया मरदा वेद माता ( अथर्व० १९।७१।१ )
मन्त्र श्रुत्यं चरामसि (ऋ० १०।१३४।७)
वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् (अथर्व० १९।७२।२)

भाषार्थ—मैं संपूर्ण धर्म उपदेश कर वर देने वाली वेद रूप माता की स्तुति करता हूं ॥१॥ हम वेद मंत्रों के अनुसार आचरण करते हैं ॥७॥ इस लिये वेद रूप कसौटी को संभाल कर रखें

वेदोऽखिलो धर्म्ममूलम् (मनु० २। ६)
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः (मनु० २।१३

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो (मनु०२।१०)

भाषार्थ—वेद संपूर्ण धर्म्म का मूल है ॥६॥ धर्म्म की जिज्ञासा करने वालों के लिये परम प्रमाण वेद है ॥१३॥ श्रुति नाम वेद का है ॥१०॥

(२) स्मृति—

धर्म्म शास्त्रं तु वै स्मृतिः (मनु० २।१०)

स्मृति शीले च तद्विदाम् (मनु० २।६)

या वेद बाह्याः स्मृत्यो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठा हि ताः स्मृताः ॥९५॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९६॥

(मनु० १२)

भाषार्थ—धर्म्म शास्त्र नाम स्मृति का है ॥१०॥ वेद के जानने वाले की स्मृति और आचार प्रमाण है ॥६॥ जो वेद के विरुद्ध स्मृतियाँ हैं। और जो कोई वेद की दृष्टि के विरुद्ध हैं वह सब निष्फल हैं क्योंकि वे परलोक में भी अज्ञान के प्राप्त कराने वाली हैं ॥९५॥ वेद के विरुद्ध स्मृतियें पैदा होती हैं नाश हो जाती हैं और भी जो कोई वेद के विरुद्ध हैं, वे नवीन कालीन होने के कारण निष्फल और झूट हैं ॥९६॥

(३) आचार—

स्मृतिशीलेच तद्विदाम् (मनु० २।६)

आचारः परमो धर्मः श्रुति युक्तः स्मार्त एवच (मनु०१।१०८)

भाषार्थ—वेद के जानने वालों का आचार प्रमाण है ॥६॥ आचार परम धर्म्म है यदि वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार है ॥ १०८ ॥

( ४ ) आत्म प्रेम अथवा युक्ति

आर्षं धर्म्मोपदेशं च वेद शास्त्राविरोधिना ॥
यस्तर्केनानु संधते सधर्मवेद नेतरः ॥ १०६ ॥

भावार्थ—आर्षधर्म्मोपदेश जो मनुष्य वेद शास्त्र के अनुकूल तर्क से निश्चय करता है वही धर्मको जानता है दूसरा नहीं॥१०६

इन प्रमाणों से साबित है कि धर्म्म शास्त्र' सदाचार और आत्मप्रेम तभी धर्म्म के जानने में प्रमाण हो सकेगा यदि वह वेदके अनुकूल हो वेद के उपदेश के बिरुद्ध होने पर धर्म शास्त्र आचार और आत्मप्रेम भी धर्म्म में प्रमाण नहीं हो सकते ! क्योंकि वेद ही धर्म का मूल कारण है

( ४६७) प्रश्न—सदाचार के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि—

प्रश्न—तस्मिन्देशेय आचारः पारंपर्य क्रमागतः ।
वर्णानां सान्त रालानां स सदाचार उच्यते (मनु० २।१८)

जिस देश में जो आचार समस्त जातियों में परम्परा से चला आया हो यह सदाचार ही धर्म्म हो जाता है ।

उत्तर—इस श्लोक को मनु के निम्न श्लोक से मिलाकर पढ़ें कि—

श्रुति युक्तः स्मार्त एवच ( मनु० १ । १०८ )

यदि वह वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसर हो तभी वह धर्म्म में प्रमाण माना जा सकता है अन्यथा नहीं ।

(४६८) प्रश्न—सदाचार का ज्ञान पुराणों से होता है । मनु ने सदाचार को लेकर पुराणों की सत्यता सिद्ध की है ।

पृ० ५६ पं० ३ ।

उत्तर—सदाचार शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है । सत्+आचार=सदाचार,सत्के अर्थ हैं सत्य और सत्य है ईश्वरीय

ज्ञान वेद । अतः जो वेद के अनुकूल आचार हो वही सदाचार कहा जा सकता है । चूँकि भागवतादि ग्रन्थों से वेदानुकूल आचार का ज्ञान नहीं होता जैसा कि—

## कृष्ण का सुरापान

तस्मिन्नहनि देवोऽपिसहान्तः पुरिकैर्जनैः ।
अनुभूय जल-क्रीडां पानमा सेवते रहः ॥१७॥
( भविष्य० ब्राह्म० अ० ७३ )

## मांस खाने की आज्ञा

प्राणात्यये प्रोक्षितं च श्राद्धं च द्विज काम्पया ।
पितृन्देवांश्चार्चयित्वा भुंजन् मांसं न दोषभाक् ॥२६॥
( भविष्य० ब्राह्म० अ० १८६ )

## वैश्या गमन की आज्ञा

इतिश्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता ।
शृङ्गिना च महा प्राज्ञ वेश्या सङ्गः कृतःपुरा ।
न कोऽपि नरकं प्राप्तस्तस्मान्मां भज कामिनीम्॥४६॥
( भविष्य० प्रति सर्ग० अ० २८ )

## कृष्ण का कुब्जा गमन

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुने न च ॥६२॥
( ब्रह्मवैवर्त० कृष्ण० अ० ११५ )

## पर स्त्री गमन

रहस्यु पस्थितां कांतां न भजेद्यो जितेन्द्रियः ।
गात्रलोम प्रमाणाब्दं कुंभी पाके वसेद् ध्रुवम् ॥७७॥
( ब्रह्मवैवर्त० कृष्ण० अ० ३० )

इत्यादि २ अनेक ऋषि मुनियों को कलङ्कित करने वाले वेद विरुद्ध दुराचार प्रवर्तक इतिहास भागवतादि ग्रन्थों में मौजूद हैं। अतः भागवतादि ग्रन्थ न पुराण कहाने के योग्य हैं, और नहीं मनु ने इनकी सत्यता को सिद्ध किया है।

(४६६) प्रश्न--पुराण सत्य और माननीय हैं। इस के ऊपर शत पथ लिखता हैं कि--

"सयथोद्रेन्धनाग्नेरिति" यहां पर पुराणों का ईश्वर से प्रकट होना लिखा है। पृ० ४६ पं ४।

उत्तर--प्रथम तो आप का यह प्रमाण वेद का नहीं है अपि तु शतपथ ब्राह्मण का है शतपथ वेद नहीं है। दूसरे यहां पुराण भागवतादि ग्रन्थों का नाम नहीं है अपितु यहां पर पुराण शब्द विद्या शब्द का विशेषण है और अभि प्राय यह है कि इतिहास, उपनिषद्, श्लोक सूत्रादि सब प्राचीन विद्यायें वेदों के साथ ही ईश्वर से प्रकट हुई हैं। इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से है कि--

स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहत्स्य पृथग्धूमा बिनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्यमहतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्याउपनिषदः श्लोकाः सूत्राणयनुव्याख्या नानिव्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥शतपथ० १४।५।४।१०॥

भाषार्थ--वह जैसे गीले ईंधन के संयोग से अग्नि से नाना प्रकार के धूयें प्रकट होते है इस प्रकार से उस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद द्वारा ये इतिहास, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान आदि सबकी सब पुरानी विद्यायें प्रकट हुई हैं। अर्थात् संसार की संपूर्ण विद्याओं का

आदिस्रोत वह परमात्मा ही है और उसीने ये सारी विद्यायें वेदों द्वारा संसार में प्रकट की हैं (शतपथ)

इसी बात को आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० २४५ पं० १० में इस प्रकार से स्वीकार किया है कि "ब्रह्मा जी ने वह वेद विद्या जिस के सब विद्या आश्रय हैं अपने ज्येष्ट पुत्र अथर्वा ऋषि को पढ़ाई।"

वेद स्वयं भी इस बारे में साक्षी देते हैं कि—

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० १० । ८ । १ ॥

अर्थ—जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान जगत् में संपूर्ण विद्याओं का स्वामी है और जो केवल सुख स्वरूप है उस महान् ब्रह्म के लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

इस की ताईद मनु जी भी करते हैं कि—

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥ ९७ ॥

(मनु० १२)

भाषार्थ—चारों वर्ण, तीनों लोक और चारों पृथक् आश्रम तथा भूत, भविष्यत और वर्तमान सब विद्यायें वेद से ही प्रकट हुई हैं, होती है और होंगी ॥ ९७ ॥

इस से साबित है कि शतपथ में भी यहां पर सम्पूर्ण विद्याओं का ही वर्णन है आप इस प्रमाण द्वारा रामायण, महाभारत, भागवतादि, अष्टादश पुराण, १०८ उपनिषद् श्लोकों में रचे संपूर्ण तन्त्रादि ग्रन्थ, सूत्रों में रचे संपूर्ण छः दर्शन, श्रौत स्मार्त, गृह्य सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान से संपूर्ण भाष्य तथा

भाषा ग्रन्थों को भी वेदों की भाँति ईश्वर कृत मान कर उन को स्वतः प्रमाण का दर्जा देकर आर्य्य जाति के साहित्य को नष्ट भ्रष्ट करके आर्य्य जाति की गर्दन पर छुरा चलाना चाहते हैं किन्तु अब ऋषि दयानन्द का ज़माना है; अब आप ऐसी फरेबकारियों में कामयाब नहीं हो सकते।

(४७०) प्रश्न–छान्दो० प्र०७ खं० १ "स हो वाच ऋग्वेदमिति' में इतिहास पुराण को पांचवां वेद लिखा है। पृ० ५६ पं०१६।

उत्तर—यद्यपि आपका यह प्रमाण भी वेद का नहीं है क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद वेद नहीं है तथापि छांदोग्य का अर्थ भी आप खूब समझते हैं। जहां पुराण शब्द देखा झट कह गये कि यहां तो भागवतादि अष्टादश पुराणों का ही वर्णन है। श्रीमान् जी यहाँ पर भी पुराण शब्द इतिहास शब्द का विशेषण है। जिस के अर्थ हैं पुराण इतिहास अर्थात् सृष्टि की पैदायश का इतिहास मैं जानता हूं, यहां पर इतिहास को पांचवां वेद नहीं बतलाया अपितु चार वेद तथा पांचवें पुराणे इतिहास को मैं जानता हूं ऐसा वर्णन है जैसे कि—

स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायणं देव विद्यां ब्रह्म विद्यां भूत विद्यां क्षत्र विद्यां नक्षत्र विद्यां सर्प देव जन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥२॥

(छांदोग्योपनिषद् प्र० ७ खं० १)

भावार्थ—वह प्रसिद्ध नारद बोले कि हे भगवन्! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और चतुर्थ अथर्व वेद को जानता हूं। पांचवें इतिहास पुराण तथा उपनिषद् शास्त्र, कला कौशलादि की विद्या गणित विद्या, अनुमान द्वारा वृष्टि आदि का ज्ञान, कानों की

विद्या,तर्क शास्त्र, निरुक्त अध्यात्म विद्या,तत्वों की विद्या,शस्त्र विद्या,नक्षत्र विद्या,सर्पों के विषों का ज्ञान तथा उनके उपायों की विद्या, नृत्य गीत, वाद्यादि विद्या, प्राकृत जनों की विद्या, इन सब विद्याओं को हे भगवन् जानता हूं ॥ २ ॥ आप यहाँ पर इतिहास पुराण से अठारह पुराणों को भी पांचवां वेद सिद्ध करके सारी दुनिया के दुराचार खुराफात को भी ईश्वर का ज्ञान साबित करके आर्य्य जाति के साहित्य को गंदगी का पुलन्दा बनाना चाहते हैं किन्तु अब रोशनी के ज़माने में यह असंभव ही है।

( ४७१ )प्रश्न—"अरेऽस्य महतो भूतस्येति बृहद० अ० ४ कांड१ ब्राह्म० ५,,में लिखा है कि इतिहास पुराण विद्या ईश्वर का निःश्वास है।' पृ० ५६ पं० २५' ।

उत्तर—आपने यहां पर भी वेदका प्रमाण नहीं दिया क्योंकि बृहदारण्यक उपनिषद वेद नहीं है। तथापि इस प्रमाण में भी पुराण नाम भागवत आदि अठारह ग्रन्थों का नहीं है अपितु यहाँ भी पुराण शब्द विद्या शब्द का विशेषण है। और उसके अर्थ हैं पुराणी विद्या जैसा कि—

सयथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वाअरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्याना मीष्टं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्चलोकः सर्वाणि चभूतान्य स्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥११॥ (बृहदारण्यकोपनिषद अ० ४ब्राह्म५ कं०११ )

भाषार्थ— जिस प्रकार गीली लकड़ियों की अग्नि से नाना प्रकार के धूम और चिनगारे निकलते हैं इसी प्रकार हे मैत्रेयी !

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व वेद के द्वारा इतिहास उपनिषत्,श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, और व्याख्यान, यज्ञ, होम खाद्य पदार्थ, पीने के पदार्थ यह लोक परलोक और सब प्राणी सम्बन्धी सब पुराणीविद्यायें उसी परमात्मासे प्रकट हुई हैं॥११॥

आप यहां पर भी पुराण श्लोक सूत्रादि से भागवतादि अठारह पुराण तन्त्रादि ग्रन्थों को ईश्वरोक्त सिद्ध करके उनको वेदों के समान स्वतः प्रमाण मानकर आर्य्य जाति के साहित्य तथा सिद्धान्तों पर कुल्हाड़ा चलाना चाहते हैं। किन्तु अब ऋषि दयानन्द से स्थापित वैदिक आर्य्य समाज की मौजूदगी में आप ऐसा करने में समर्थ नहीं हो सकते।

( ४७२ ) प्रश्न—"स वृहती दिशमिति अथर्व० १५।६।१।१२" इस मन्त्र में लिखा है कि वेद के साथही इतिहास पुराण दिशाओं में फैले। पृ० ६० पं०८।

उत्तर—इस मन्त्र में 'पुराण' इतिहास शब्द का विशेषण है जिसके अर्थ हैं "पुराण इतिहास" अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का इतिहास जैसे कि—

सूर्याचन्द्र मसौधाता यथा पूर्वम कल्पयत्।
दिवंच पृथिवीं चांतरिक्षमथो स्वः॥ ऋ०१०। १९०।३।

परमेश्वर ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत, पृथिवी, अंतरिक्ष आदि को बनाया था वैसे ही अब बनाया॥३॥ इत्यादि का नाम ही इतिहास पुराण अर्थात् पुराण इतिहास है। इस मन्त्र के वास्तव अर्थ इस प्रकार से हैं कि—

स वृहतीं दिशमनु व्यचलत्॥१०॥ तमितिहासश्च पुराणं च गाथांश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्॥११॥ इतिहासस्य

च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसी नांच प्रियंधाम भवति य एवं वेद ॥ १२॥ ( अथर्व० १५ । १ )

भाषार्थ—वह वेद वृहती दिशा को चला अर्थात् सृष्टि के आरंभ में परमात्मा से प्रकट हुआ ॥१०॥ उस-के पीछे २ पुराण इतिहास गाथा और नाराशंसी ये भी चलीं अर्थात् वेद के प्रकाश से ये सब विद्यायें भी प्रकाशित हुईं ॥११॥ जो मनुष्य इस प्रकार से जानता है वह निश्चित ही इतिहास पुराण अर्थात् सृष्टि विषयक पुरातन ऐतिह्य गाथा और नाराशंसी का भी प्रिय आश्रय हो जाता है ॥१२॥ आप इस मंत्र से अठारहे पुराण तथा तत् संबंधी कथाओं को भी ईश्वर कृत साबित करके आर्य सभ्यता का गला घोंटना चाहते हैं किंतु आप को ऐसा करने की इस समय इजाज़त न दी जावेगी क्योंकि अब ऋषि दयानन्द जी का वैदिक युग है। वेदों शास्त्रों में जहां कहीं पुराण शब्द आता है वहां पर अष्टादश पुराणों के अर्थों में नहीं आता क्योंकि आप के मतानुसार भी भागवतादि अष्टादश पुराणों का कर्ता व्यास है। इस से सिद्ध हुआ कि ये ग्रन्थ नवीन हैं प्राचीन या पुराण नहीं हैं।

(१)प्रत्नम् । प्रदिव : । प्रवयाः । सनेमि । पूर्व्यम् । अह्नायेति षट् पुराण नामानि ॥२७॥ पुराण नामान्युत्तराणिषट् ॥२३॥ पुराणं कस्मात् पुरानवं भवति ॥२४॥

(निघंटु ३। २७) (निरुक्त अ०३ खं० २०)

भाषार्थ—ये ऊपर के छः नाम पुराण अर्थात् प्राचीन के हैं ॥२७॥ पुराण के नाम ऊपर वाले छः हैं ॥२३॥ पुराण किस लिये कहा जाता है कि वे पहिले नया था अब नहीं ॥२४॥

इस प्रमाण से साबित है कि पुराण शब्द प्राचीन अर्थ का वाची है।

(२) द्वापरान्ते च भगवान् व्यासः सत्यवती सुतः ।
तान्येव जनयामास लोक मंगल हेतवे ॥२२२॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० २५)

भावार्थ—द्वापर युग के अन्त में सत्यवती के पुत्र व्यास ने उन अठारह पुराणों को संसार के कल्याणार्थ बनाया ॥२२२॥ जब पुराण इस द्वापर के अन्त में व्यास ने बनाये । तो फिर वेदों में उन का वर्णन साबित करना पागल पन नहीं तो और क्या है । भागवतादि पुराणों को कहीं पर अठारह लिखा है तो कहीं पर २६ लिखा है जैसे कि—

(३) अष्टादश पुराणानि निर्मि तानि शिवात्मना ॥२२१॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० २५॥

षड् विंशति पुराणानां मध्येऽप्येकंशृणोतियः ।
पठेद्वाभक्ति युक्तस्तु समुक्तोनात्र संशय : ॥४१॥
(शिव० उमा० अ० १३)

(४)अठारह में भी कहीं श्रीमद्भागवत को माना है कहीं देवी भागवत को जैसा कि—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम् ॥१२०॥
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लिंगं वाराहमेव च
वामनाख्यं ततः कौर्मं मात्स्यं गारुडमेव च ॥१२१॥
स्कांदं तथैव ब्रह्माण्डाख्यं पुराणं च कीर्तितम् ॥१२२॥
भगवत्याश्चं दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते ।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं बनुदेवी पुराणकम् ॥१२६॥
(शिव० उमा० अ० ४४)

यहां पर देवी भागवत को अठारह पुराणों में गिना गया है। श्रीमद्भागवत को नहीं। भविष्य पुराण ने श्रीमद्भागवत को अठारह पुराणों में गिना है देवी भागवत को नहीं।

(५) ये अष्टादश पुराण वास्तव नहीं जैसा कि—

सर्वाण्येव पुराणा।न संज्ञेयानि नरर्षभ।
द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः ॥१०३॥
पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप ॥१०४॥

(भविष्य० ब्राह्म० अ० १)

सारे पुराण केवल १२००० श्लोक के थे पीछे से इन में वृद्धि हो गई। इत्यादि अनेक परस्पर विरुद्ध बातें भगवतादि ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं अतः ये ग्रन्थ पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं।

(४७३) प्रश्न—"ऋचः सामानि छन्दांसि"(अथर्व०११।७।१।२४) में लिखा है कि परमात्मा से पुराण उत्पन्न हुये।पृ० ६०पं० १४।

उत्तर—यहां भी पुराण नाम भागवतादि ग्रन्थों का नहीं है अपितु सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय आदि के वर्णन करने वाले मन्त्रों को पुराना इतिहास वर्णन करने वाले होने के कारण पुराण कहा है जैसे कि—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥ २४ ॥

(अथर्व० १०।७)

भाषार्थ—ऋग्वेद के मन्त्र सामवेद और उसके सहस्रों सामगान के भेद गायत्री आदि छन्द अथवा अथर्व के मन्त्र यजुर्वेद कर्म प्रवर्तक मन्त्रों के साथ २ सृष्टि उत्पत्ति प्रलय आदि के वर्णन करने हारे मन्त्र और आकाशस्थ सूर्य्य आदि समस्त दिव्य लोक उस सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

कहिये महाराज इस में भागवतादि ! ग्रन्थों का वर्णन कहाँ है। आप जिन पुराणों को प्राचीन साबित करने की धुन में हैं वे तो आपका साथ नहीं देते। वे कहते हैं ये ग्रन्थ शूद्रों के लिये हैं जैसा कि—

विशेषतश्च शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः।
अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च ॥ ५५ ॥

( भविष्य० ब्राह्म० अ० १ )

मुनि लोगों ने अठारह पुराण तथा रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र शेष करके शूद्र लोगों के पवित्र करने के लिये बनाये हैं ॥५५॥

कहीं पर यही लिख मारा कि पुराण वेदों से पूर्व हुए हैं जैसा कि—

प्रथमं सर्व शास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥ ३१ ॥
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥ ३२ ॥

( शिव० वायु० खं० १ अ० १ )

कहिये महाराज आपका कहना सत्य है वा आप के शिव पुराण का कहना सत्य है।

(४७४) प्रश्न—शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ कभी पुराण हो ही नहीं सकते जिस को हम आगे लिखेंगे। दयानन्द के मत में वेद पहले बने और ब्राह्मण ग्रन्थ बाद में, फिर बाद में बने हुए ब्राह्मणों का वेद में कैसे ज़िकर आया। गोपथ ब्राह्मण ब्राह्मण ग्रन्थों को पृथक् लिखता है और पुराणों को ब्राह्मणों से भिन्न मानता है। इस को देखिये एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिता इत्यादि (गोपथ० पू० भा० प्र० २) पृ० ६० पं० २५।

उत्तर—शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थोंका नाम ही पुराण गाथा नाराशंसी आदि है यह हम पूर्व सप्रमाण सिद्ध कर आये हैं।

आगे भी आप जो कुछ लिखेंगे उस की पड़ताल की जावेगी। वेदों में ब्राह्मणादि ग्रन्थों का ज़िकर नहीं है, अपितु पुराण, इतिहास, ब्राह्मण, कल्प, सूत्र, श्लोक आदि विद्याओं का वर्णन है। क्योंकि वेद संपूर्ण विद्याओं का आदि मूल है। आपने यह प्रमाण वेद का नहीं दिया अपितु गोपथ ब्राह्मण का प्रमाण दिया है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु वेदों का ऋषि कृत भाष्य है। तथापि इस प्रमाण में भी ब्राह्मण से शतपथादि का तथा पुराण से भागवतादि का वर्णन नहीं है, अपितु यहां भी यही वर्णन है कि परमात्मा ने वेदों द्वारा अनेक प्रकार की विद्याओं को प्रकट किया है। जैसे यहां पर इतिहास तथा पुराण को एक होते हुए भी विशेष विज्ञानार्थ दो स्थानों में वर्णन कर दिया वैसे ही ब्राह्मण कल्प पुराण इन को एक होते हुये भी विशेष विज्ञानार्थ अनेक बार वर्णन कर दिये। जैसे भिन्न २ वर्णन करने पर भी कल्प ब्राह्मण तथा पुराण एक ही हैं। यहां पर ग्रन्थों का वर्णन नहीं अपितु विद्याओं का वर्णन है, इस पाठ का अर्थ इस प्रकार से है कि—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते ॥ (गोपथ पू० भा० प्र० २)

भाषार्थ—इस प्रकार कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषत्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन, वाक्योवाक्य, इन विद्याओं के सहित चार वेदों को ईश्वर ने प्रकट किया। उन के यज्ञ में प्रयुक्त होने के

कारण पृथक् २ नाम रक्खे गये वरना ये चार वेद ही पूजनीय कहे जाते हैं ॥२॥

देखा कैसा साफ वर्णन है कि प्रकट हुये चार वेद । उन वेदों से इ. सारी विद्याओं का प्रकाश हुआ और उन का भिन्न २ प्रयोग होने से भिन्न २ नाम हो गया, इन सब का मूल पूजनीय वेद है । आप इन नाम वाले ग्रन्थों को भी ईश्वरकृत साबित करके धर्म्म के निर्णय में घपला मचाकर स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं । किंतु अब यह न हो सकेगा । क्योंकि जनता अब अन्धी नहीं है, ऋषि दयानन्द ने जगादी है । अब वेद को कसौटी मान कर उसी ग्रन्थ को प्रमाण माना जावेगा जो वेदानुकूल हो, ऐरा गैरा नत्थू खैरा भागवतादि वेद विरुद्ध ग्रन्थ को केवल "संस्कृतं वाक्यं प्रमाणम्" "ब्रह्मवाक्यं प्रमाणम्" कह कर अब धर्म्म में प्रमाण नहीं माना जा सकता । ऋषि दयानन्द तेरा भला हो तू ने आर्य्य जाति के साहित्य को वेद की कसौटी बता कर लोगों की गपड़ चौथ से बचा दिया ।

( ४७५ ) प्रश्न—" पुराणं न्याय मीमांसा" इत्यादि याज्ञवल्क्य स्मृति में भी पुराण को विद्या का स्थान लिखा है ।

पृ० ६१ पं० २१ ।

उत्तर—आपने वेदका प्रमाण नहीं दिया अपितु याज्ञवल्क्य स्मृति का प्रमाण दिया है और उसका भी पता नहीं बतलाया कि किस अध्याय का कौनसा श्लोक है । तथापि इस श्लोक में भी यह कहीं नहीं लिखा कि पुराण नाम भागवतादि कपोल कल्पित नवीन ग्रन्थों का है क्योंकि भागवतादि ने विद्या का स्थान तो क्या खाक होना था ये ग्रन्थ तो विद्या के शत्रु हैं । अतः यहां भी पुराण से शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों का ही ग्रहण होता है । इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार से है कि—

पुराणं न्याय मीमांसा धर्म्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्मस्य च चतुर्दश॥
(याज्ञवल्क्य स्मृति)

पुराण अर्थात शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ, गौतम, कणाद, न्याय, पूर्वमीमान्सा, और वेदान्त समस्त धर्म्म शास्त्र छःअंग सहित वेद इन चौदह विद्याओं से ही धर्म्म का निर्णय होता है। सब चौदह विद्यायें धर्म्म के निर्णय में वहां तक ही प्रमाण मानी जावेंगी जहां तक वे वेद के विरुद्ध न हों क्योंकि वेद ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण हैं तथा शेष सब ग्रन्थ मनुष्य कृत होने से परतः प्रमाण हैं। अतः धर्म्म के विषय में विशेषता से वेद का ही प्रमाण माना जावेगा जैसाकि स्वयं वेद कहता है कि--

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णु गोंपा अदाभ्यः।
अतो धर्म्माणि धारयन्॥ ऋ० १। २२। १८॥

भाषार्थ—जिस लिये किसी से भी तिरस्कृत न किये जाने वाले वेद वाणी के रक्षक व्यापक परमात्मा ने तीन प्रकार के पदार्थों को विशेष तौर से रचा है। इसलिये वह धर्म्मों का धारण करने वाला है॥१८॥इससे साबित है कि धर्म्म में मुख्य प्रमाण ईश्वरीय ज्ञान वेद का ही हो सकता है।

(४७६) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदों के अंग, मीमांसा, छः शास्त्र, वेदों के उपांग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं। इनमें भी जो २ वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्त स्वतः

माण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इन का प्रमाण वेदाधीन है" इस लेख में उपवेद ब्राह्मण और वेदों के अंग इन सब के प्रमण का सफाया हो गया। पृ० ६२ प० ३।

उत्तर—स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है यदि कोई कसौटी न मान कर संपूर्ण ग्रन्थों को प्रमाण मान लिया जावे तो स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये ऋषि मुनियों के नाम से संस्कृत में अनेक ऐसे ग्रन्थ बना डालेंगे जिन में वेद के विरुद्ध पाप कर्मों को भी धर्म्म प्रतिपादन किया गया हो जैसे कि इस समय भी ऐसे ग्रन्थ मौजूद हैं। भागवतादि अष्टादश पुराण, तन्त्र ग्रन्थ, उप पुराण, उपनिषदों का दश से बढ़ कर १०८ बन जाना, स्मृतियों का मनुस्मृति के अतिरिक्त २८ तक पहुंच जाना, अल्लोपनिषत् का बनना, भविष्य में इस्लाम के पैग़बरों की स्तुति का होना, साबित करता है कि किसी कसौटी का होना आवश्यक है जिससे असली और नक़ली चीज़ का पता लग सके और वह वेद ही हो सकता है जैसा कि—

ईश्वर निर्भ्रान्त है—कविर्मनीषी परिभू, स्वयम्भूः
(यजु० ४०।८)

परमात्मा सर्वज्ञ होने से निर्भ्रान्त, सब के मन की बात को जानने वाला, सर्वव्यापक और अनादि है॥ ८॥

वेद ईश्वर का ज्ञान है—प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्
(यजु० ३४।५७)

वेद रक्षक जगदीश्वर ही प्रशंसनीय मन्त्र संहिता वेद का उत्तम रीति से उपदेश करता है॥ ५७॥

## मनुष्य से गलती संभव है

देवकृतस्यै नसोऽवयजनमसि मनुष्य कृतस्यैनसोऽवयजन मसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसो वयजनमस्ये-नस एनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चा-विद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ यजु० ८।१३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र का स्पष्ट अभिप्राय है कि योगी, मनुष्य, ज्ञानी, प्रत्येक जीव आत्मा, विद्वान्, अविद्वान्, सब से पाप का होना संभव है। क्योंकि सब जीव अल्पज्ञ हैं अतः उनसे भूल का होना संभव है। और उन की बनाई पुस्तकों में भी भूल का होना संभव है ॥१३॥

## वेदानुकूल कर्म करो

यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत्स्वाहा।
(यजु० ८।२१)

एषते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्तवाकः सर्ववीरस्तञ्जुषस्वस्वाहा
(यजु० ८।२२)

भाषार्थ—इन दोनों मन्त्रों का यही अभि ाय है कि मनुष्य को वेदानुकूल आचरण करने चाहिये।

अतः स्वामी जी का लेख वेदानुकूल और युक्ति युक्त है।

(४७७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "स्मृतियों में मनु स्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति अमान्य हैं।" ॥पृ० ६२ पं० २०॥ किसी ग्रन्थ में लिखा है कि पुराणों को मत मानो, स्मृतियों को मत मानो, वेद के अंग और दर्शनों को तभी प्रमाण मानो जब इनकी लिखी बात वेद में लिखी मिल जाये।

उत्तर—स्वामी जी के लेख का साफ अभिप्राय यह है कि सब स्मृतियों में से प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ कर केवल मनुस्मृति ही वेद के अनुकूल है, शेष सब स्मृतियां वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं हैं और इसे स्वयं मनु जी ही कहते हैं कि "यावेदबाह्या स्मृतयः इत्यादि मनु० १२। ९५-९६ देखो (न० ४६६) स्वामी जी ने यह नहीं लिखा है कि पुराण, स्मृति, वेदाङ्ग तथा दर्शनों को मत मानो अपितु यह लिखा है कि ये सब ग्रन्थ वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं। यदि इन में कोई बात वेद के विरुद्ध हो तो वहाँ वेद का लेखही प्रमाण होगा। इन ग्रन्थों का नहीं क्योंकि वेद ईश्वर कृत और ये ग्रन्थ ऋषि कृत हैं ईश्वर निर्भ्रान्त है तथा ऋषियों से ग़लती का होना संभव है देखो (नं० ४७६)

(४७ )प्रश्न—जब महर्षि याज्ञवल्क्य यह फैसला दे चुके कि अठारह पुराण, महाभारत, वैशेषक, तथा गौतम सूत्र, पूर्व-मीमांसा एवं वेदान्त समस्त धर्म्मशास्त्र और छः अंगों सहित वेद ये प्रमाण हैं तब इसके विरुद्ध दयानन्द के फ़र्ज़ी फैसले को वही मानेगा कि जिसने अपनी अक़ल का कचूमर निकाला हो।

पृ० ६३ पं० ३।

उत्तर—धर्म्म के विषय में न याज्ञवल्क्य जी का फैसला प्रमाण है न स्वामी दयानंद का अपितु धर्म्म के विषय में वेद का ही फैसला प्रमाण है जैसे कि—

सक्तुमिव तित उनापुनन्तु यत्र धीरा मनसावाचमक्रत
अत्रा सखायः सख्यानि जानतेभद्रैषां लक्ष्मी र्नि हिताधिवाचि।
(१०। ७१। २)

भाषार्थ—जहांपर धीर पुरुष मनसे वेद द्वारा अपनी वाणी को ऐसे छान लेते हैं जैसे छलनी से सत्तु छान लिए जाते हैं। वहाँ मित्र लोग मित्र कर्म्मों को जानते हैं उन महात्माओं का वेद में ही कल्याण और शोभास्थित है ॥ २ ॥

तमि द्वोचेमा विदथेषु शम्भुतं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रति हर्यथा नरो विश्वेद्वामावो अश्नवत् ॥६॥
(ऋ० १।४०।६)

भाषार्थ—हे भद्र पुरुषो ! यज्ञादिक सकल शुभकर्मोंमें वेद विहित माननीय मन्त्र को कहें कहावै सुनेंसुनावें। हे मनुष्यो! इस ईश्वरीय कल्याणी वाणी की यदि आप सदैव कामना करेंगे तो सब ही वननीय माननीय वाणी आप लोगों को प्राप्त होगी ॥ ६ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥अथर्व० १०।८।३२।

मनुष्य पास रहने वाले परमात्मा को नहीं देखता। और पास रहने वाले ईश्वर को छोड़ता भी नहीं उस ईश्वर का यह काव्य देख जो न मरता है न ज़ीर्ण होता है ॥ ३२ ॥

वेद के इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि धर्म्म के विषय में केवल मन्त्र संहिता मूल वेद ही प्रमाण है। शेष सम्पूर्ण ऋषि कृत ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण तथा वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण हैं। जब स्वामी दयानन्द जी का फैसला वेदानुकूल है तो फिर आप और आप के याज्ञवल्क्य की तहरीर को मान कर ऐरेगैरे नत्थू खैरे ग्रन्थों को धर्म्म में वही प्रमाण मानेगा कि जिस की अक्ल का दिवाला निकल चुका होगा।

प्रश्न—वेद दो भागों में विभक्त है एक मन्त्र भाग है [illegible] स्वामी जी ने इन दोनों के गले पर

पृ० ६३ पं० २२।

उत्तर—वेद दो भगों में विभक्त नहीं है अपितु वेद विषय दो विभागों में विभक्त है। एक तो मूल मन्त्र संहिता भाग कि जिस का नाम वेद हैं। दूसरा भाग वेदों का ऋषि कृत भाष्य है जिस का नाम ब्राह्मण है, स्वामी जी से पूर्व आर्य्य जाति को इस भ्रम में स्वार्थी लोगों ने डाल रक्खी थी कि मन्त्र संहिता और उन का भाष्य अर्थात् ब्राह्मण इन दोनों का ही नाम वेद है और इस आड़ में ब्राह्मणों के नाम से कई वेद विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ बना डाले और शतपथादि ब्राह्मण में भी वेद विरुद्ध बातों का प्रक्षेप कर दिया और इस प्रकार से वास्तव वेदों को घपले में डाल कर वैदिक धर्म्म का सर्व-नाश कर मन माने वेद विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रचार करके आर्य्य जाति के धर्म्म, साहित्य तथा सभ्यता और देश को तेज छुरे से क़तल कर आर्य जाति को तबह कर रहे थे। ऋषि दयानन्द जी ने जाति की इस शोचनीय अवस्था को देख कर उसे भूत भुलय्यां के चक्र से निकाल कर सीधा सड़क पर लाकर खड़ा कर दिया और बतलाया कि मूल वेद मन्त्र संहिता जोकि ईश्वर कृत है वही वेद है। वाणी ब्राह्मणादि ग्रन्थ सब उस मूल मन्त्र संहिता का ऋषि कृत भाष्य हैं वे वहां तक ही प्रमाण हैं जहां तक वे मूल मंत्र संहिता वेद के सिद्धान्तों के अनुकूल हों, जहाँ पर उन में भी कोई बात वेद के विरुद्ध हो वह मानने के योग्य नहीं है। अर्थात् वेद स्वतः प्रमाण तथा ब्राह्मण ग्रन्थ परतः प्रमाण है, जो आर्य्य जाति ऋषि दयानन्द जी से पहिले अपने धर्म्म ग्रन्थ का कोई निश्चय ही न कर पाती थी और अपने धर्म्म को वे बुनियाद जानकर लड़खड़ा धर्म्मों में प्रवेश कर रही थी आज

कृपा से वेदों की मज़बूत चट्टान पर अपने धर्म की बुनियाद को काइम करके दूसरे मतमतान्तरों को धर्म युद्धार्थ ललकार रही है। और अपने भागे हुये सिपाहियों को वापस लाकर फिर से अपनी सेना में भरती कर रही है। और इस की इस बहादुरी को देख कर विरोधी दलों के नेता भी वैदिक धर्म की सेना में भरती हो रहे हैं। और वह दिन बहुत नज़दीक है जब कि दुनिया के अन्दर वैदिक धर्म का झंडा लहराता हुआ नज़र आवेगा। यह सब देश उद्धार वेद प्रचारक ऋषि दयानन्द जी की ही कृपा का परिणाम है।

(४८०) प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेद संज्ञा विचार में लिखते हैं कि—"(१) ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं। वे ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उन के नाम इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी हैं (२) ब्राह्मण ग्रन्थ ईश्वरोक्त नहीं हैं किंतु महर्षि लोगों ने बनाए हैं। (३) वेद नहीं हैं क्योंकि वेदों का व्याख्यान हैं। (४) एक काप्यायन ऋषि को छोड़ कर अन्य किसी ऋषि ने इन के वेद होने की साक्षी नहीं दी। (५) ब्राह्मणों में इतिहास है इस कारण भी वेद नहीं हो सकते अतएव पुराण हैं" इस लेख पर गूढ़ विचार करना और विचार द्वारा फल निकालना यह प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य का कर्तव्य है। पृ० ६४ पं० १।

उत्तर—आपने स्वामी जी का पूरा पाठ नहीं दिया ऋषि ने यों लिखा है कि "अथ कोऽयं वेदो नाम। मन्त्र भाग संहिते-त्याह। किंच मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयमिति काल्यायनोक्ते-र्ब्राह्मण भागस्यापि वेद संज्ञा भवितुमर्हति कुतो न स्वीक्रियत इति। मैवं वाच्यम्। नब्राह्मणानां वेद संज्ञा भवितुमर्हति। कुतः पुराणेतिहास संज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वा

त्कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वी कृतत्वान्मनुष्य बुद्धि-रचित्वाच्चेति" ( ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेद संज्ञा विचार ) भाषार्थ—"(प्रश्न) वेद किन का नाम है (उत्तर) वेद संहिताओं का (प्रश्न) जो कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है फिर ब्राह्मण भाग को भी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते (उत्तर) ऐसा मत कहो। ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती। क्यों, उनकी पुराण इतिहास संज्ञा होने से। वेदों के व्याख्यान होने से। ऋषि कृत होने से। अनीश्वरोक्त होने से, कात्यायन के बिना दूसरे ऋषियों ने इन को वेद संज्ञा में न स्वीकार करने से, मनुष्यों की बुद्धि से रचे हुए होने से"। यह स्वामी जी का पूरा लेख है अब आप इस पर विचार करने की कृपा करें।

(४८१) प्रश्न—प्रथम पुष्टि में यह दिखलाया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण ( इतिहास )कल्प गाथा नाराशंसी संज्ञा हैं। इस कारण इन की वेद संज्ञा नहीं हो सकती। इस पुष्टि में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया केवल लेख लिख कर आज्ञा मात्र दी हैं। पृ० ६४ पं० १२।

उत्तर—आप अपनी चालाकी से जनता को धोका देना चाहते हैं किन्तु हम आप को ऐसा करने न देंगे। स्वामी जी ने प्रथम हेतु में केवल "पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्" "ब्राह्मणों की पुराण इतिहास संज्ञा होने से" ऐसा लिखा है। आपने अपनी चालाकी से इस प्रश्न में इतिहास शब्द को उड़ा ही दिया। जिस को हम ने कोष्ट में दे दिया है। और यही ब्राह्मणों के वेद न होने में सब से बड़ा हेतु है। आप कहते हैं कि स्वामी जी ने इस में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया। सो श्रीमान्

जी !प्रमाण तो उसे नज़र आवे जिसके आंखें हों। जिस के आँखें ही नहीं उसे नज़र क्या ख़ाक आना था। स्वामी जी ने इस प्रतिज्ञा के आगे ही वेद में इतिहास का खंडन करते हुए "त्र्यायुषंजम दग्नेःकश्यपस्येत्यादि यजु० ३।६२" में आये हुये "जमदग्नि" तथा "कश्यप" शब्दों का "चक्षु" तथा "प्राण" अर्थ साबित करके बतलाया है कि वेदों में ये नाम किसी ऋषि वा मनुष्यों के नहीं हैं। अपितु अन्य पदार्थों के वाचक हैं। जैसा कि स्वामी जी ने लिखा है कि—

"यथा ब्राह्मण ग्रन्थेषु मनुष्याणां नाम लेख पूर्वका लौकिका इतिहासाः सन्ति न चैवं मन्त्र भागे। अतोऽर्थाभिधायकैर्जमदग्न्यादिभिः शब्दैरर्थ मात्रं वेदेषु प्रकाश्यते। अतो नात्र मन्त्र भागे ही इतिहास लेशो प्यस्तीत्यवगन्तव्यम्। अतो यच्च सायणाचार्यादि भि र्वेद प्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद् भ्रमूलम स्तीति मन्तव्यम्। तथा ब्राह्मण ग्रन्थाना मेव पुराणेतिहासादि नामास्ति न ब्रह्मवैव र्त श्रीमद्भगवतादिनां चेति निश्चीयते"

(ऋग्वेदादि० वेद संज्ञा०त्र्यायुषं के पहिले पीछे)

भावार्थ—"जैसे ब्राह्मण ग्रन्थों में मनुष्यों के नाम लिखते हुए लौकिक इतिहास हैं। वैसे मन्त्र भाग में नहीं हैं। इस लिये अर्थ का प्रतिपादन करने वाले "जमदग्नि" आदि शब्दों से अर्थ मात्र ही वेदों में प्रकाश किया जाता है। इस लिये यहां मन्त्र भाग में इतिहास का लेश भी नहीं है ऐसा जानना चाहिये, इस लिये जो सायणाचार्य्य आदि ने वेद प्रकाश आदि में जहां कहीं इतिहास वर्णन किया है। वह भ्रम मूलक ही है,

ऐसा मानना चाहिये। तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का ही पुराण इतिहास आदि नाम है ब्रह्म वैवर्त तथा श्रीमद्भागवतादि का नहीं, ऐसा निश्चित ही है"।

अब बतलाइये स्वामी जी ने अपनी प्रथम पुष्टि में कितना प्रबल प्रमाण दिया है। क्या किसी पौराणिक ने माता का दूध पिया है जो वेदों में लौकिक मनुष्यों का इतिहास रावित कर सके। जिन पुस्तकों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास होते हैं मानना पड़ता है कि वे पुस्तकें उन मनुष्यों के जन्म के पश्चात् बनाई गई हैं। चूंकि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान है अतः उस में लौकिक मनुष्यों के इतिहास नहीं हैं। और ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास हैं। अतः मानना पड़ेगा कि ब्राह्मण ग्रन्थ अनादि ईश्वर रचित नहीं हैं। अपितु मनुष्यकृत हैं। अतः वे वेद नहीं कहे जा सकते। अपितु ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम ही इतिहास पुराण है। भागवतादि कपोल कल्पित नवीन ग्रन्थों का नाम इतिहास पुराण नहीं है।

(४८२ प्रश्न—जब ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण संज्ञा होते हुये कल्प संज्ञा हो जाती है, और पुराण और कल्प संज्ञा होते हुये भी गाथा संज्ञा हो जाती है, और पुराण कल्प गाथा इन तीन संज्ञाओं के रहते हुये भी चतुर्थ नाराशंसी संज्ञा हो जाती है, तो फिर हम किस प्रकार मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी इन चार संज्ञाओंके रहते हुये वेदसंज्ञा नहीं होसकती अतएव सुतरां सिद्ध हैं कि जैसे हरि शब्द की शब्द संज्ञा होते हुये भी प्रातिपदिक भ तथा घो संज्ञा हो जाती है और जैसे रघुनन्दन शुक्ल की शुक्ल संज्ञा होते हुये भी शास्त्री, बी. ए. तथा जज्ज संज्ञा हो जाती है वैसे ही ब्राह्मण की पुराण

गाथा कल्प नाराशंसी संज्ञा रहते हुए भी वेद संज्ञा अवश्य है। पृ० ६५ पं० ४।

उत्तर--एक पदार्थ की बहुत सी संज्ञायें होने में किसी को भी शंका नहीं है। यदि वे संज्ञायें एक दूसरी संज्ञाकी अविरोधी हों किंतु एक ही पदार्थ की दो विरोधी संज्ञायें नहीं हो सकतीं। जैसे कि एक परमेश्वर की निराकार, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्व व्यापक, अजर, अमर, अभय, इत्यादि एक दूसरे की अविरोधी सहस्रों संज्ञायें हैं किन्तु उसी ईश्वर की साकार, अन्याई, दयाहीन, जन्मधारी, इत्यादि संज्ञायें नहीं हो सकतीं क्योंकि ये संज्ञायें पहिली संज्ञाओं की विरोधी हैं। और जैसे कि हरि की शब्द, प्रातिपदिक भ तथा घी आदि संज्ञायें एक दूसरे की अविरोधी होने से हो सकती हैं परन्तु उसी हरि शब्द को नदी, गुण, वृद्धि आदि संज्ञायें नहीं हो सकतीं क्योंकि ये संज्ञायें पहिली, संज्ञाओं की विरोधी हैं। और जैसे रघुनन्दन शुक्ल की शास्त्री बी० ए० जज्ज, आदि अनेक संज्ञायें परस्पर अविरोधी होने से हो सकती हैं किन्तु उसी रघुनन्दन की कृष्ण, निरक्षर, मूर्ख और लण्ठ संज्ञायें नहीं हो सकतीं, क्योंकि ये संज्ञायें पहिली संज्ञाओं की विरोधी हैं। इसी प्रकार से ही ब्राह्मण ग्रन्थों की इतिहास, पुराण, गाथा, कल्प, नाराशंसी संज्ञायें परस्पर अविरोधी होने से हो सकती हैं किन्तु उन ही ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती क्योंकि यह संज्ञा पहली संज्ञाओं की विरोधी है। कैसे विरोधी है? इस लिये कि वेद शब्द "विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् विचारणे" तथा "विदॢ लाभे" से सिद्ध होता है। जिस के अर्थ यह हुए कि वेद उस ज्ञान का

नाम है कि जिस के विचार से लाभ हो तथा वह तीनों काल में क़ायम रहने वाला अनादि अनन्त नित्य ज्ञान हो। चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थों का ज्ञान अनादि तथा नित्य नहीं है क्योंकि उस में लौकिक मनुष्यों का इतिहास मौजूद है और जिस किताब में जिस मनुष्य का इतिहास हो मानना पड़ेगा कि वह किताब उस मनुष्य के जन्म के पीछे बनी है। अतः साबित हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ उन मनुष्यों के जन्म के पीछे बनाये गये जिन मनुष्यों का इतिहास उन में मौजूद है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों का ज्ञान अनादि तीनों कालों में कायम रहने वाला नित्य नहीं है और न ही ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कहलाने के योग्य हैं। चारों मूल वेद मन्त्र संहिता ईश्वर का ज्ञान होने से तीनों काल में सत्य नित्य ज्ञान है और उनमें लौकिक मनुष्यों के इतिहास भी नहीं है अतः वही वेद कहाने के योग्य हैं। आप भी इस बात को अनुभव करते हैं कि इतिहास संज्ञा वेदसंज्ञा की विरोधी है इसी कारण से आपने इस प्रश्न में भी इतिहास संज्ञा को श्राद्ध के लड्डूकी भांति हड़प कर लिया है। किन्तु आपकी यह चाल बाज़ी हमारी नज़रों से कैसे छिप सकती थी।

(४८३) प्रश्न—यस्या[1] वै[2]मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम्। वैन्यो[3] धोक तां कृषिं च सस्यं चाधोक्। सोदाक्रमत् सा [4]सुरानाध्यगच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त एहीति[5]तस्या विरोचनः प्राह्लादि[6] र्वत्स[7] आ[8]सीत्पृथिवी[9] पात्रम।

(अ० का० ८ अ० ५ सू० १३)

उस गो रूप पृथिवी का वैवस्वत मनु वत्स बछडा हुआ। पृथिवी का पात्र बनाया, वेन के पुत्र महाराजा पृथु ने उस गो से कृषि और सस्य (तृण) को दुहा, फिर वह गो रूप पृथिवी असुरों के पास पहुंची, असुरों ने उसका आह्वान किया।

आह्वान के पश्चात् जब वह गो असुरों के पास ठहर गई तब प्रह्लाद के पौत्र विरोचन को वत्स बना कर पृथिवी पात्र में अपने भोजन को दुहा।

इस मन्त्र की पुराण, इतिहास संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा सिद्ध है। अतएव इस के वेद होने में कोई भी पुरुष मस्तक नहीं हिलाता। इसी उदाहरण को सम्मुख रखलें तो फिर वह कौन न्याय है जिस का आश्रय लेकर हम यह कहने को उद्यत हों कि ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं होती।पृ० ६६ पं १।

उत्तर—आपने इस प्रमाण में सनातन धर्म्म की सचाई, ईमानदारी तथा सभ्यता का दिवाला निकला कर छल कपट धोके तथा ग़लत बयानी का मुजाहरा किया है। यदि ऐसे प्रमाणों के आधार पर ही सनातन धर्म्म का जीवन निर्भर है तो आज नहीं तो कल अवश्य ही इस की "राम राम सत् है" होने में कोई सन्देह ही नहीं है। भला यह तो बतलाइये कि इस प्रमाण को लिखते समय क्या आपने अथर्व वेद का पुस्तक उठा कर देख भी लिया था या वैसे ही किसी की पुस्तक में से पाठ नक़ल कर दिया था। आप को ऐसे ग़लत मलत प्रमाण देने को शरम में पानी में नाक डबो कर मर जाना चाहिए किन्तु शरम क्या कुत्ती है जो मरदों के पास भी फटक जावे। लीजिये आपका प्रमाण निम्न लिखित हेतुओं से अशुद्धता छल कपट तथा धोके का नमूना है।

१)यहां अथर्व वेद में "यस्या" पाठ नहीं है अपितु "तस्या" है

(२) यस्या से आगे तथा मनु से पूर्व "वै" पाठ पुस्तक में नहीं है।

(३) "वैन्यो" पाठ से पूर्व "तां पृथी" पाठ है जो आपने लुप्त कर दिया है।

(४) "असुरान्" तथा "अगच्छत्" के बीच में "आधि" पाठ आपकी ही करतूत है यह पद वेद में नहीं है।

(५) "एहि" पद से पूर्व "माय" पद वेद में है जो आपने चुरा लिया है।

(६) वेद में "प्रहादि" पाठ है जिस का अर्थ है प्रभूत शब्द करने वाली बिजली" किन्तु आपने इतिहास साबित करने की धुन में वेद के पाठ को बदल कर "प्रह्लादि" बना दिया है।

(७) यहां मन्त्र में 'पृथिवी पात्रम्" पाठ नहीं है अपितु अयस्पात्रं पात्रम्"पाठ है जिसे आपने गलत तौर से तबदील कर दिया है।

(८) अथर्व वेद के आठवें कांड में केवल १० सूक्त हैं आपने बिना देखे ही सुक्त १३ पते में लिख मारा।

(९)ये मन्त्र अध्याय ५ के नहीं हैं अपितु अध्याय ४ के हैं।

(१०) आपने प्रकरण को घपले में डालने के लिये अध्याय चार के "तस्या १०" "तां पृथी ११" इन दो मन्त्रों को प्रथम दर्ज करके "ते कृषि १२" इस मन्त्र को छोड़ कर प्रकरण विच्छेद कर दिया और इन दो मन्त्रों के पीछे "सोदक्राम् सासुरान्१" तथा "तस्या विरोचनः२" इन दो मन्त्रों को दर्ज करके तथा 'तां द्विमूर्धा ३" तथा 'तां मायाम् ४" इन दो मन्त्रों को छोड़ कर प्रकरण का विच्छेद कर दिया। सारांश यह कि आपने दो प्रकरणों के कुछ मन्त्र छोड़ कर तथा कुछ को ग़लत मलत करके'आधा तीतर आधा बटेर' बना डाला और 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा' के कथनानुसार सनातन धर्म्म के "लाल भुजक्कड' उपदेशक बन बैठे और लगे वेदों में इतिहास साबित करने। श्रीमान् जी यदि आप वेदों में

से सृष्टि उत्पत्ति के इतिहास को ढूंडना चाहें तो वह तो मिल जावेगा जैसे "ऋतं च सत्यं१""समुद्रादर्णवाद्२"सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता ३" (ऋ० मं० १० सू १९०)" नासदासीत इत्यादि१—७" (ऋ० १०।१२९) "हिरण्य गर्भ यजु १३।४" "सहस्र शीर्षा इत्यादि पुरुष सूक्त यजु० ३१" इत्यादि अनेक वेदमन्त्र आपको सृष्ट उत्पत्ति के पुराण इतिहास को वर्णन करने वाले मिल जावेंगे किन्तु यदि आप वेदों में से लौकिक मनुष्यों के चारित्रक इतिहास ढूंडना चाहें तो वे न मिलेंगे क्योंकि वेद अनादि नित्य ईश्वर का ज्ञान है। ऐसे इतिहास ब्राह्मण ग्रन्थों के अंदर ही मिल सकते हैं। क्योंकि वे ईश्वर कृत नहीं अपितु मनुष्य कृत हैं। ये अथर्व वेद के मन्त्र जो आपने पेश किये हैं इन में भी लौकिक मनुष्यों के चरित्र का इतिहास मौजूद नहीं है अपितु इस अध्याय के सब मन्त्रों में "विराट गौ से माया स्वधा कृषि, सस्य ब्रह्म और तप के दोहन" का वर्णन हैं अर्थात् समस्त सृष्टि से लाभ उठाने का वर्णन है। अब हम इन मंत्रों का प्रकरणानुसार ठीक २ अर्थ कर देते हैं।

सोदक्रामत् सासुराना गच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त् माय एहीति ॥१॥ तस्या विरोचनः प्रह्रादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं गात्रम् ॥२॥ तां द्विमूर्धा त्र्यौंधोक् तां मायामेवाधोक् ॥३॥ तां मायामसुरा उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥

(अथर्व० ८।१०।४)

भाषार्थ—वह माया अर्थात् प्रकृति ऊपर उठी अर्थात् कारण रूप से कार्य्य रूप में आई। वह शल्पिओं को प्राप्त हुई उसको शिल्पियों ने ग्रहण किया मानो बुलाते हैं हे माया! आ ॥१॥ उस प्रकृति की प्रभूत शब्द करने वाली बिजुली पुत्र के समान थी। और धातुमय पदार्थ पात्र था ॥२॥ उस

माया को दो मूल धारण करने वाले बुद्धिमान् इंजीनियर ने दुहा अर्थात् उ- से लाभ उठाया ॥३॥ उस प्रकृति के आश्रय शिल्पी जन अपना जीवन निर्वाह करते हैं जो इस प्रकार के तत्त्व को जानता है वह औरों के आजीविका निर्वाह कराने में समर्थ होता है ॥४॥

इन मन्त्रों में असुर के शिल्पी माया के प्रकृति, प्राहादि के प्रभूत शब्द करने वाली, विरोचन के बिजली, अयः के धातुमय द्विमूर्धा के बुद्धिमान्, अत्वर्य्य के इंजनियर, अर्थ हैं। इन मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि शिल्पी जन प्रकृति से लाभ उठा कर अपना और दूसरों का निर्वाह करें। इन मन्त्रों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास का लेश मात्र भी नहीं है। अतः इन की पुराण संज्ञा नहीं है।

सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरा वत्येहीति ॥९॥ तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥१०॥ तांपृथिवीं वैन्यो धोक् तां कृषिं च सस्यं चा धोक् ॥११॥ ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति कृष्ट राधिरूप जीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥ (अथर्व० ८।१०।४)

भाषार्थ—वह पृथिवी प्रकट हुई। उस को मनुष्यों ने प्राप्त किया। उस को मनुष्यों ने ग्रहण किया बुलाने की भांति हे पृथिवी आ ॥ ९ ॥ उस पृथिवी का विविध प्रकार से प्रजाओं का बसाने वाला बुद्धिमान् मनुष्य पुत्र की भांति था। पृथिवी पात्र थी ॥१०॥ उस पृथिवी रूप गौ को महान् राजा ने दूहा अर्थात् उस से लाभ उठाया। उस से खेती तथा अनाज प्राप्त किया ॥११॥ वे मनुष्य कृषि और अनाज पर ही प्राण धारण करते हैं। जो इस रहस्य को

जानता है वह कृषि द्वारा ही बहुत धन धान्य सम्पन्न और मनुष्यों को जीविका देने में समर्थ होता है ॥१२॥

इन मन्त्रों में इरावती के पृथिवी, वैवस्वतो मनु के विविध प्रकार से प्रजाओं को बसाने द्वारा मनीषी पुरुष, वैन्यः पृथि के नाना काम्य पदार्थों का स्वामी राजा, अर्थ हैं। इन मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य लोग पृथिवी से लाभ उठाकर अपना और दूसरों का निर्वाह करें। इन मन्त्रों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास चरित्र का लेश मात्र भी नहीं है। अतः इनकी पुराण संज्ञा नहीं है। चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबंधी इतिहास मौजूद हैं। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती। अपितु पुराण संज्ञा है और ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण संज्ञा होते हुये वेद संज्ञा नहीं हो सकती।

(४८४) प्रश्न—"चत्वारि शृंगा" इस वेद मन्त्र में कल्प की वेद संज्ञा वेद ने ही मानी है। और इस के ऊपर यास्क मुनि ने निरुक्त भी किया है। जब कि कल्प की वेद संज्ञा स्वतः प्रमाण भगवान् वेद ही कह रहा है। और उस के साक्षी वेद ज्ञाता मुनि यास्क हैं। फिर हम किसी के कहने से किस प्रकार मान लें कि कल्प संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती।

पृ० ६६ पं० १५।

उत्तर—आप ने वेद मन्त्र और उसके निरुक्त को भी खूब समझा है। और फिर यह नहीं बतलाया कि वेद मन्त्र के अथवा निरुक्त के वे कौन कौन से पद हैं जो वेद की कल्प संज्ञा करते हैं आप यही नहीं जानते कि कल्प कहते किस को हैं। सुनिये कल्प का लक्षण यह है कि—

कल्पा मन्त्रार्थं सामर्थ्यं प्रकाशकाः । तद्यथा । इषे त्वोर्जे वृष्ट्यै तदाह । यदाहेषे त्वोर्जे त्वेति यो वृष्टादूर्ग्सो जायते तस्मै तदाह । सविता वै देवानां प्रसविता सवितृ प्रसूताः ।

शतपथ० १।७।१।२ । (ऋग्वेदा०वेदसंज्ञा)

कल्प उस को कहते हैं जहां पर मन्त्र के अर्थ की सामर्थ्य प्रकाशित की जावे । जैसे कि उपरोक्त प्रमाण में शतपथ ने यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र १ की इषे त्वोर्जे इत्यादि प्रतीक देकर मन्त्र के अर्थ की सामर्थ्य को प्रकाशित किया है कि यदि वृष्टि के लिये यज्ञ करना हो तो उस यज्ञ में इस वेद मन्त्र को प्रयुक्त किया जावे ।

अब आप बतलावें कि "चत्वारि शृंगा" इस वेद मन्त्र में कौन से मन्त्र की प्रतीक देकर उसके अर्थ के सामर्थ्य को प्रकाशित किया है । यदि नहीं तो आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा मिथ्या है कि इस मन्त्र की कल्प संज्ञा है । हाँ आपके इस प्रमाण से यह सिद्ध अवश्य हो गया कि कल्प और ब्राह्मण वेद नहीं हैं । जैसे कि—

चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥

( यजु० १७ । ९१ )

चत्वारि शृंगेति वेदा वा एत उक्ताः । त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि । द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये । सप्तहस्ता सः सप्तच्छन्दांसि । त्रिधा बद्धस्त्रिधाबद्धो मन्त्र ब्राह्मण कल्पैः वृषभो रोरवीति रोरवणमस्य सवन क्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति महोदेव इत्येष हि महान् देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय ॥ १ ॥ ( निरुक्ते परिशिष्टम् १३ । ७ । १ )

भाषार्थ—हे मनुष्यो तुम जिस इसके प्रातः सवन मध्यान्दिन सवन और सायं सवन ये तीन पाद चार वेद सींग दो अस्त काल और उदय काल शिखा जिस इसके गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो मन्त्र ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से बंधा हुआ बड़ा प्राप्त करने योग्य सुखों को सब ओर से वर्षाने वाला यज्ञ प्रातः मध्य और सायं सवन क्रम से शब्द करता हुवा मनुष्यों को अच्छे प्रकार प्रवेश करता है उस का अनुष्ठान करके सुखी होवेा ॥६१॥

इस मन्त्र के निरुक्त में साफ लिखा है कि यह यज्ञ, मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प, इन तीन प्रकारों से बंधा हुआ है। आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० ७५ पर इस के यही अर्थ स्वीकार किये हैं। यदि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद होते तो यहां पर ब्राह्मण कल्प को मन्त्र से भिन्न क्यों प्रतिपादन किया जाता इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। अपितु ब्राह्मण ग्रन्थों की कल्प संज्ञा है और ब्राह्मण ग्रन्थों की कल्प संज्ञा होते हुए वेद संज्ञा नहीं हो सकती।

४८५) प्रश्न—"इदं जना इत्यादि अथर्व० कां० २०" का अर्थ है कि 'हे मनुष्यो! इस बात को सुनो मनुष्य स्तुत किये जाते हैं। साठ सहस्र और नब्बे कौरव्य राजा ने दान दिये हैं" इस मन्त्र की नाराशंसी संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती फिर हम किस आधार का अवलम्बन कर कह सकते हैं कि नाराशंसी संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती। पृ० ६६ पं० २५।

उत्तर—निरुक्त ने नाराशंसी का अर्थ यों लिखा है कि—

नराशंसः ॥ ४ ॥

नराशंसो यज्ञ इति काथक्यः। नरा अस्मिन्नासीनाः शंसंति ॥१॥
अग्निरिति शाक पूणिः नरै प्रशस्यो भवति ॥ २ ॥

( निरुक्त अध्याय ८ खं० ७ )

नृणां यत्र प्रशंसा नृभिर्यत्रप्रशस्यते ता ब्राह्मण निरुक्ताद्यन्तर्गताः कथा नाराशंस्यो ग्राह्या, नातोऽन्या इति।

( ऋग्वेदादि० वेद संज्ञा० )

भाषार्थ—जिन में नर अर्थात् मनुष्य लोगों ने ईश्वर धर्म्म-आदि पदार्थ विद्याओं और मनुष्यों की प्रशंसा की है उन को नाराशंसी कहते हैं। सो ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रन्थों में जो २ जैसी जैसी कथा लिखी है उन्हीं का इतिहासादि से ग्रहण करना चाहिये अन्य का नहीं। चूंकि वेदों में लौकिक मनुष्यों की प्रशंसा-युक्त गाथायें नहीं मिलतीं अतः वेदों का नाम नाराशंसी नहीं कहा जा सकता। इस मन्त्र में किसी लौकिक मनुष्य के चरित्र की प्रशंसा नहीं है अतः इस मन्त्र का नाम नाराशंसी कहना सर्वथा मिथ्या है इस मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

इदं जना उपश्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥१॥

(अथर्व० २०।१२७)

भाषार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग इस बात को कान लगा कर श्रवण करो कि प्रजाओं के नेता पुरुषों के गुणों का यहां वर्णन किया जाता हैं। पृथिवी पर युद्ध या रमण क्रीड़ा करने हारे! राजन्! सेनापते! हम लोग साठ हज़ार नब्बे पुरुषों को शत्रुओं के नाश कारी सेना के दलों में नियुक्त करें ॥१॥ इस मन्त्र में किन्हीं लौकिक पुरुषों के प्रशंसा युक्त चरित्रों का वर्णन

नहीं है। अतः इस मंत्र की नाराशंसी संज्ञा नहीं है इस प्रकार के प्रशंसा युक्त चरित्रों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में ही मिलता है। अतः ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं अपितु नाराशंसी हैं और ब्राह्मण ग्रन्थों की नाराशंसी संज्ञा होते हुये वेद संज्ञा नहीं हो सकती।

आपने किसी वेद मंत्र की गाथा और इतिहास संज्ञा सिद्ध करके वेद संज्ञा साबित करने का यत्न नहीं किया। और ऊपर के मन्त्रों की पुराण कल्प नाराशंसी संज्ञा होते हुये आप वेद संज्ञा सिद्ध नहीं कर सकते अतः साबित हुआ कि वेदों की इतिहास पुराण कल्प गाथा नाराशंसी संज्ञा नहीं है अपितु ये संज्ञायें ब्राह्मण ग्रन्थों की हैं और ब्राह्मणग्रन्थ ये संज्ञायें रखते हुये वेद संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकते। अतः स्वामी जी का प्रथम हेतु सर्वथा सत्य है॥

(४ ६) प्रश्न—द्वितीय हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं किंतु महर्षि लोगों के बनाये हैं। स्वामी के मत में वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक जैसा है इन का मन्तव्य है कि "अग्नि वायु रवि अंगिरा इन चार ऋषियों द्वारा वेद संसार में आया। अर्थात ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक ज्ञान इन के अन्तः करण में प्रकाशित किया उसी को इन्हों ने संसार में फैलाया इसी ज्ञान का नाम वेद ज्ञान है। "ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव होने में इन का मत है कि "अनेक ऋषि समाधिस्त हुये और उसी में परमात्मा ने उनके अन्तः करण में वेदार्थ ज्ञान प्रकाशित किया उस ज्ञान का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ है" यदि वास्तव में दोनों में ही ज्ञान

ईश्वर का है तब दोनों ही ईश्वर के ज्ञानहैं। ईश्वर ज्ञान रहने पर भी एक ईश्वर प्रणीत और द्वितीय ऋषि प्रणीत लिखना प्रमाद है। न कोई अग्नि, न कोई वायु, और न कोई रवि ऋषि था। अंगिरा ऋषि अवश्य थे। किंतु उन के द्वारा वेद का प्रादुर्भाव होना यह वैदिक साहित्य में कहीं पर भी सिद्ध नहीं हैं। अत एव ये समस्त मानसिक कल्पनायें हैं। मानसिक कल्पना रहने पर भी ये सत्य मानी जाती हैं। जब इस के मत में मंत्र और ब्राह्मण दोनों ईश्वरीय ज्ञान हैं फिर ब्राह्मण भाग ऋषि प्रणीत किस प्रकार हुआ इस पर पाठक वर्ग विचार करें "स यथार्द्रेन्धन इत्यादि शत० १४।प्र० ब्र० ४ कं० १०" में भी मन्त्र ब्राह्मण पुराणादि समस्त ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव. एक जैसा तुल्य है फिर हम एक को ईश्वर प्रणीत और द्वितीय को ऋषि प्रणीत किस न्याय को आगे रख कहने का साहस कर सकते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ ऋषि प्रणीत नहीं किंतु ईश्वर प्रणीत हैं। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद ही हैं।

(पृ० ६७ पं० ६)

उत्तर–प्रथम आप ने जो लिखा है कि अंगिरा ऋषि तो था किंतु उस के द्वारा वेद प्रादुर्भाव नहीं हुआ सो श्रीमान् जी अथर्व वेद के तो साथ अंगिरा ऋषि का नाम आता है जैसे कि—

अथर्वांगिरसो मुखम्। अथर्व० १०। प्र० २३ अनु०४ सू०७ मं०२०। अतिरथर्वांगिरसीः॥ मनु० ११। ३३॥

अब रही बात अग्नि, वायु, तथा रवि ऋषि की सो इसमें प्रमाण–

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदःसूर्य्यात्सामवेदः॥ शत० ११।४।२।३

जीव विशेषैरग्निवायवादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् "ऋग्वेदः एवाग्नेरजायत यजुर्वेदोवायोः सामवेदः आदित्याद्"

( ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२ ) [सायण भाष्य भूमिका ]

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।

दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थं मृग्यजुः साम लक्षणम् ॥ २३ ॥

सो चार ऋषियों से चार वेदों ( मनु० १ ) का प्रकाशित होना तो सिद्ध है। दूसरे आपने यह साबित करने के लिये कि मन्त्र तथा ब्राह्मण का प्रादुर्भाव एक जैसा तुल्य ही ईश्वर से हुआ है, अतः ब्राह्मण भी ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद है "स यथा-र्द्रेन्धन" इत्यादि प्रमाण दिया है। सो श्रीमान् जी आपने यही प्रमाण ( नं० ४६६ ) में यह साबित करने के लिये दिया है कि "पुराण ईश्वर से प्रकट हुए हैं" जिसका उत्तर हमने वहां पर ही यथायोग्य दे दिया है। इस प्रमाण में ब्राह्मण शब्द मौजूद नहीं है। आप ब्राह्मणों को पुराण मानते नहीं। फिर आपका इस प्रमाण में स्थित पुराण शब्द से ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव सिद्ध करना "वदतो व्याघात दोष" है। अर्थात् अपने मन्तव्य का स्वयं खण्डन करना है। इस प्रमाण में किन्हीं विशेष ग्रन्थों का वर्णन नहीं है अपितु वेदों से सम्पूर्ण विद्याओं के प्रादुर्भाव का वर्णन है। अतः ईश्वर से ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव में आप का यह प्रमाण देना सर्वथा निर्मूल है।

तीसरे, आपका यह लिखना कि स्वामी जी ने वेद तथा ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक ही जैसा लिखा है आपकी बड़ी भारी भूल है। क्योंकि स्वामी जी ने दोनों का प्रकार भिन्न तथा समय भिन्न २ लिखा है जैसा कि—

"प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक २ वेद का प्रकाश किया" (सत्यार्थ० सप्तमसमु० अग्नेर्ऋग्वेदो के अर्थ में)

स्वामी जी के उपरोक्त लेख से आपका यह लिखना झूट साबित हो गया कि "ये चार ऋषि समाधी में बैठे और उस समाधि समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक ज्ञान इन के अन्तः करण में प्रकाशित किया" उन चार ऋषियों को समाधि में बैठने की ज़रूरत न थी क्योंकि वे आदि सृष्टि में होने के कारण समाधि विद्या को भी न जानते थे। अतः परमात्मा ने उन चार ऋषियों के आत्मा में शब्द अर्थ संबंध के ज्ञान सहित चारों वेदों का प्रकाश किया और उन्हों ने अन्य लोगों को पढ़ाया यदि वे चार ऋषि आदि से ही वेद के शब्द अर्थ सम्बंध को न जानते तो वे दूसरों को क्या और कैसे पढ़ाते जैसे कि–

"इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद विद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते" (सत्यार्थ० समु० ७)

इस से सिद्ध है कि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चारों के आत्मा में तो परमात्मा ने आदि सृष्टि में ही शब्द अर्थ संबंध सहित चारों वेदों का ज्ञान प्रकाशित किया, उन्हों ने दूसरों को पढ़ाया उस के पश्चात् ऋषियों को जब २ जिन २ मन्त्र के विषय में विशेष अर्थों के जानने की ज़रूरत पड़ी तब २ समाधिस्थ हो कर उन उन मन्त्रों के अर्थों पर विचार किया और परमात्मा ने उन को अर्थ जनाया, उन्हों ने भी उन अर्थों का प्रचार किया और लोगों को पढ़ाया, तब उन मन्त्रों के साथ उन ऋषियों का नाम लिखा गया जैसा कि "जिस २ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिस के पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया

था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इस लिये अद्यावधि उस २ मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है ।

(सत्यार्थ० समु० ७)

इन ऋषि महात्माओं से वेदार्थ को पढ़ कर कई ऋषियों ने ग्रन्थ रचना की जिन ग्रन्थों में वह वेदार्थ भी लिखा तथा ऋषि मुनियों के इतिहास भी लिखे । उन ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ रखा गया जैसा कि—

प्रश्न—वेद संस्कृत भाषा में प्रकाशित हुये और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृत भाषा को नहीं जानते थे फिर वेदों का अर्थ उन्हों ने कैसे जाना ?

उत्तर—ईश्वर ने जनाया और धर्म्मात्मा योगी महर्षि लोग जब जब जिस जिस के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुये तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये जब बहुतों की आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये । उन का नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ" (सत्यार्थ० समु० ७)

अब इन ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रथम तो ऋषि मुनियों आदि का इतिहास है । दूसरे एक दूसरे से अर्थों के पढ़ने के कारण उन अर्थों में भी कुछ मनुष्य की बुद्धि की रचना का सम्मिलित होना संभव है । अतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेद तथा स्वतः प्रमाण नहीं माने जा सकते । जैसा कि—

क्योंकि जो (ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद) मानें तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें । क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि

महर्षि और राजा आदि के इतिहास लिखे हैं। इतिहास जिस का हो उस के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उस के जन्म के पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं किंतु जिस २ शब्द से विद्या का बोध होवे उस उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं"। (सत्यार्थ० समु० ७)

इन प्रमाणों से आपको स्पष्ट होगया होगा कि वेदों तथा ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव का प्रकार एक नहीं है। अतः वेद ईश्वर कृत तथा ब्राह्मण ग्रन्थ ऋषि कृत माने जाते हैं। इसी कारण से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद तथा स्वतः प्रमाण नहीं माने जा सकते।

(४८७) प्रश्न—तृतीय हेतु यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं क्योंकि वे वेद का व्याख्यान हैं, अतएव पुराण हैं। जो पुस्तक जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उस विषय का तो न रहे किन्तु अन्य विषय का हो जावे। यह लेख हमारी बुद्धि में समावेश नहीं करता। महर्षि पाणिनी ने व्याकरण के नियम रूप सूत्रों को निर्माण करके अष्टाध्यायी रची उस अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पातंजलि ने विस्तृत व्याख्यान किया उस विस्तृत व्याख्यान का नाम "महाभाष्य" है। आज तक भरत के गौरव रखने वाले "महाभाष्य" को सभी विद्वान् व्याकरण का सर्वोपरि आदरणीय पुस्तक मानते हैं। जब व्याख्यान रूप महाभाष्य व्याकरण है तो फिर वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार बन जावेंगे। महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन के ऊपर महर्षि वात्सायन ने भाष्य किया। आज तक सभी विद्वान् वात्सायन भाष्य को न्याय का

ग्रन्थ बतलाते हैं तथा अन्य दर्शन के व्याख्यान रूप 'राम रुद्री' 'दिन करी' आदि बड़े २ पुस्तक न्याय के ग्रन्थ कहलाते हैं। जब न्याय के व्याख्यान रूप वात्सायण भाष्य तथा 'राम रुद्री' 'दिनकरी' न्याय के ग्रन्थ हैं तो फिर वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार हो जावेंगे। पृ० ६८ पं० १६।

उत्तर—आप पौराणिक पक्षपात से ऐसे अंधे हो रहे हैं कि आप को मूल और व्याख्यान के भेद का भी ज्ञान नहीं रहा। श्रीमान् जी जिस विषय की मूल पुस्तक का व्याख्यान किया जावे वह व्याख्यान उस विषय का तो कहावेगा किंतु वह उस विषय का मूल न बन जावेगा अपितु व्याख्यान ही रहेगा। और जहां भी वह मूल से विरोध करेगा वहां वह उस विषय में प्रमाण न माना जावेगा अपितु वहां मूल ही प्रमाण माना जावेगा और यदि उस में विरोधी अंश अधिक शामिल हो जावेगा तो वह व्याख्यान कहाने का भी हकदार न रहेगा अपितु उसका नाम भी तबदील हो जावेगा। यह नियम आपको बुद्धि में समावेश क्यों करने लगा क्योंकि आपके दिमाग में तो वेद विरुद्ध शिक्षा देने वाले ऐरागैरा नत्थूखैरा भागवतादि ग्रन्थों को भी वेद ही सिद्ध करने का पागलपन समावेश कर रहा है। अष्टाध्यायी का व्याख्यान महाभाष्य व्याकरण विषयक ग्रन्थ तो कहावेगा किंतु वह अष्टाध्यायी न कहला सकेगा और जहां भी वह अष्टाध्यायी से विरोध करेगा वहां पर वह प्रमाण न होगा अपितु अष्टाध्यायी प्रमाण होगी। न्याय दर्शन के व्याख्यान, वात्सायण, राम रुद्री, दिनकरी आदि न्याय विषय ग्रन्थ तो कहावेंगे किंतु वे न्याय दर्शन न कहा सकेंगे और जहां

वे न्याय दर्शन से विरोध करेंगे वहाँ वे प्रमाण न होंगे अपितु न्याय दर्शन ही प्रमाण होगा। इसी प्रकार से ही वेदों के व्याख्यान ब्राह्मण आदि ग्रन्थ वेद विषय के ग्रन्थ तो कहा सकेंगे किंतु वेद न कहा सकेंगे और जहां उनका वेदों से विरोध होगा वहां वे प्रमाण न होंगे। अपितु वहां वेद ही प्रमाण होंगे, और चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास शामिल हो गये हैं। इस लिये वेद के व्याख्यान तथा ब्राह्मण ग्रन्थ नाम होते हुए भी उन का नाम पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा, नाराशंसी हो गया और यदि उन में वेद के विरुद्ध सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार, द्यूत, वेश्यागमन, चोरी, असत्य भाषण आदि कुकर्मों की आज्ञा देने वाले पाठ शामिल कर दिये जावें और ऐसे काम करने वाले पुरुषों का ही उन में चरित्र भर दिया जावे तो वे भागवतादि ग्रन्थों के समान वेदों के व्याख्यान अथवा वेद विषयक ग्रन्थ भी कहाने के क़ाबिल न रहेंगे। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों के वेद न होने में स्वामी जी का तृतीय हेतु सोलह आने सत्य है। ज़रा और भी सुनने की कृपा करें,, चूंकि वेद सम्पूर्ण विद्याओं का भंडार हैं और वेद में सम्पूर्ण विद्याओं का मूल मौजूद है। अतः संसार की सम्पूर्ण विद्याओं के ग्रन्थ वेद में वर्तमान मूल विद्या के ही व्याख्यान हैं किंतु उन का नाम वेद नहीं है। उदाहरणार्थ चार उपवेद हैं वे वेदों में वर्तमान मूल विद्याओं के ही व्याख्यान हैं किंतु उन का नाम वेद नहीं है, अपितु उन का नाम अर्थ वेद, धनुर्वेद, गांधर्व वेद, आयुर्वेद, है और वेदों के छः अंग भी वेद में वर्तमान मूल विद्याओं के ही व्याख्यान हैं किंतु उन का नाम वेद नहीं है अपितु उन का नाम शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष है। तथा

वेदों के छः उपांग भी वेदों में वर्तमन मूल विद्याओं के ही व्याख्यान हैं किंतु उन का नाम वेद नहीं हैं अपितु उन का नाम न्याय, वैशेषिक; सांख्य, योग, वेदांत और मीमांसा हैं। दश उपनिषद् भी वेद में वर्तमान मूल विद्या, ब्रह्म विद्या के ही व्याख्यान हैं किंतु उन का नाम वेद नहीं है अपितु उन का नाम ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्यक है। इसी प्रकार से ही ब्राह्मण ग्रंथ भी वेद में वर्तमान मूल विद्याओं के ही व्याख्यान हैं किंतु उन का नाम वेद नहीं है अपितु उनका नाम शतपथ, ऐतरेय, सामविधान और गोपथ है और सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि आदि ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ भी वेदों में वर्तमान धर्म्म के मूल सिद्धांतों के ही व्याख्यान हैं किंतु इन का नाम वेद नहीं है और ये सम्पूर्ण वेदों के व्याख्यान रूप ग्रन्थ वहां तक ही प्रमाण है जहां तक वे वेद के अनुकूल हों। किंतु जहां पर भी ये वेद से विरोध करेंगे वहां ये प्रमाण न होंगे, अपितु वेद ही प्रमाण माने जावेंगे। क्योंकि वेद ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण तथा ये सम्पूर्ण ग्रन्थ ऋषि, मुनि, मनुष्य कृत होने से परतः प्रमाण हैं आशा है कि स्वामी जी का तृतीय हेतु कि "ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं क्योंकि वे वेदों के व्याख्यान हैं" अब आपके पूरे तौर से समझ में आजावेगा।

(४८८)प्रश्न— चतुर्थ हेतु में यह दिखलाया गया है कि "ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि एक कात्यायण ऋषि को छोड़ कर अन्य किसी ऋषि ने भी उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी। अतएव वे पुराण हैं" ब्राह्मण ग्रंथ वेद हैं इस को एक नहीं समस्त ऋषियों ने माना है। पृ० ६६ पं० २६।

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है और स्वामी जी की प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है कि "कात्यायन ऋषि के बिना किसी ने भी ब्राह्मण ग्रंथों को वेद नहीं माना"

आपके प्रमाणों की भी आगे परीक्षा हुई जाती है, निश्चित रहें।

(४८६) प्रश्न— महर्षि जैमिनि जी ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं जैसा कि—

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या (मीमांसा० अ० २ सू० ३२)

शेषे ब्राह्मण शब्दः (मीमांसा० अ० २ सू० ३३ )

ऊपर के सूत्र का अर्थ है कि प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मन्त्र है। मन्त्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है।

कहिये जैमिनी ने दो सूत्र में मन्त्र और ब्राह्मणदोनों को ही वेद माना या नहीं पहिले सूत्र में मन्त्र भाग को वेद बतलाया और दूसरे में शेष वेद को ब्राह्मण शब्द से याद किया।

(पृ० ७० पं० १ )

उत्तर— आपने सूत्रों का अर्थ ठीक नहीं किया। जैमिनि जी तो इन सूत्रों में वेद तथा ब्राह्मणों को भिन्न २ मानते हैं। सूत्रों के वास्तव अर्थ इस प्रकार से हैं कि—

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ॥ मीमांसा अ० २ पा० १ सू० ३२ ॥

अर्थ— (तच्चोदकेषु) अग्नि होत्रादि कर्म के विधायक तथा सिद्धार्थ के अभिधायक वेद वाक्यों की (मंत्राख्या) मंत्र संज्ञा जाननी चाहिये। शेषे ब्राह्मण शब्दः। (मीमांसा अ०२पा०१सू०३३)

अर्थ—(शेषे) उक्त मंत्रों के व्याख्यान भूत शतपथादि ग्रन्थों की (ब्राह्मण शब्दः) ब्राह्मण संज्ञा है।

इस से स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। और स्वामी जी की यह प्रतिज्ञा कि कात्यायन के बिना किसी ऋषि ने ब्राह्मण

ग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं मानी, क़तई दुरुस्त और सत्य है।

(४६०) प्रश्न—महर्षि गौतम जी ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं जैसे कि—

तदप्रामण्यमनृतव्याघात पुनरुक्तदोषेभ्यः ॥

(न्याय द० अ० २ आ० १ सू० ५७)

इस सूत्र में तत् पद से वेद ही का ग्रहण है।

उस वेद का प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि उस के वाक्यों में असत्य पूर्वापर विरोध दोवार कहना इत्यादि दोष हैं।

असत्य में उदाहरण ॥ "पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत्" "अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः" यहाँ वेद में असत्य दोष को दिखाने के लिये दोनों प्रमाण मन्त्र भागके नहीं दिये अपितु ब्राह्मण भाग के दिये हैं। इस से साबित है कि गौतम मुनि ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं। (पृ० ७० पं० ११)

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा ग़लत है कि इस सूत्र में तत् शब्द से वेद का ग्रहण है। यहाँ पर तत् शब्द से वेद का नहीं अपितु शब्द का ग्रहण है। और वह शब्द पद "शब्दार्थ व्यवस्थानाद प्रतिषेधः। न्याय० अ० २ आ० १ सू ५४" में इस सूत्र से पूर्व मौजूद हैं। जिस की ओर तत् शब्द इशारा कर रहा है। इसी बात को वात्स्यायन मुनि ने स्पष्ट कर दिया है जैसा कि—

"तस्येति शब्द विशेषमेवाधि कुरुते भगवानृषिः। शब्दस्य प्रमाणत्वं न संभवति" (वात्स्यायन भाष्य)

भाषार्थ—तत् शब्द से शब्द विशेष का वर्णन भगवान् ऋषि गौतम करते हैं। शब्द का प्रमाणत्व न होगा।

अतः सूत्र का अर्थ यह हुआ कि उस शब्द का प्रमाण न

हो सकेगा कि जिस में अनृत, व्याघात, और पुनरुक्त दोष होंगे। यहां शब्द में दोष दिखाते हुये उपरोक्त ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्य दिये हैं। वेद में दोष दिखाते हुये नहीं। इस से साबित है कि गौतम मुनि ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं मानते अपितु लौकिक शब्द प्रमाण मानते हैं।

(४९१) प्रश्न—महर्षि कणाद जी ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं जैसा कि—

द्रष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय।

(वैशे० द० अ० १ आ० २ सू० ८)

वेद में देखे हुये, जिन का प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है उनका तथा जब दृष्ट ऐहिक फल न मिले तब भी अनुष्ठान करना पार लौकिक फल के लिये माननीय है। दृष्ट और अदृष्ट फल दोनों का ही विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में है और इस सूत्र में दृष्टादृष्ट फल वेद में बतलाया गया है। अब मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। पृ० ७१ पं० ३।

उत्तर—आप ने सूत्र का अर्थ बिल्कुल अशुद्ध किया है सूत्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

(दृष्ट प्रयोजनानाम्) इस जन्म तथा पर जन्म दोनों में फल के जनक (दृष्टानाम्) वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से (दृष्टाभावे) इस जन्म में फल प्राप्त न होने पर विश्वास रखना चाहिये कि (प्रयोगः) उक्तकर्मों का अनुष्ठान (अभ्युदयाय) अगले जन्म में अवश्य फल देगा।

दृष्ट तथा अदृष्ट, इस जन्म तथा पर जन्म में फल देने वाले कर्मों का विधान मूल मंत्र संहिता वेद में मौजूद है जैसा कि—

असुर्य्यानाम ते लोका अंधेन तमसावृत्ताः।
तांस्ते प्रेत्यपि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः॥ (यजु० ४०।३)

यहां पर आत्मघात करने वाले को इस जन्म तथा पर जन्म में दुःख का भागी बताया है। अतः महर्षि कणाद मुनि मूल मंत्र संहिता को ही वेद मानते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं मानते।

(४६२) प्रश्न—महर्षि वात्स्यायण जी ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं जैसा कि—

वात्स्यायण भाष्यम्—पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति नेष्टौ सांस्थितायां पुत्रजन्म दृश्यते। दृष्टार्थस्य वाक्यस्य अनृतत्वाद दृष्टार्थ मपि वाक्यं अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्याद्यनृतमिति ज्ञायते। अर्थात वेद में लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होते अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्ष फल में मिथ्यात्व है तो अदृष्ट फल जैसा कि "अग्नि होत्र करने से स्वर्ग होता है" यह भी मिथ्या है।

यहां वेद का मिथ्यात्व दिखाने के लिये चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थ के प्रमाण दिये हैं। अतः वात्स्यायन मुनि ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। पृ० ७१ पं० १२।

उत्तर—हम प्रश्न (नं० ४६०) के उत्तर में साबित कर आये हैं कि वात्स्यायन मुनि तत् पद से लौकिक शब्द प्रमाण का ग्रहण करके उपरोक्त ब्राह्मण ग्रन्थों के उदाहरण देते हैं। इस से सिद्ध है कि वात्स्यायन मुनि ब्राह्मण ग्रन्थों को लौकिक शब्द प्रमाण में मानते हैं, वेद नहीं मानते। आप ने जो वात्स्यायन भाष्य चुरा लिया है वह इस प्रकार से है कि—

"तस्येति शब्द विशेष मेवाधिकुरुते भगवान् ऋषिः। शब्दस्य प्रमाणत्वं न संभवति कस्माद् अनृत दोषात् पुत्रकामेष्टौ। पुत्रकामः पुत्रेष्टया इत्यादि"।

इतना पाठ चुरा कर वात्स्यायन भाष्य पेश करना सत्य वादियों का काम नहीं है।

अतः स्वामी जी की प्रतिज्ञा सत्य है कि कात्यायन के बिना कोई ऋषि ब्राह्मण ग्रंथों को वेद नहीं मानता।

(४६३) प्रश्न—महर्षि व्यास जी ब्राह्मण ग्रंथों को वेद मानते हैं जैसा कि—

श्रुतेस्तु शब्द मूलत्वात्। (वेदान्त० द० अ० २ पा० १ सू० २७)

ब्रह्म प्रत्यक्ष वा अनुमान का विषय नहीं है। केवल शब्द मूल है अर्थात् शब्द ही प्रमाणक है। मूल शब्द यहां प्रमाण वाचक है। शब्द ही प्रमाण में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना वा कारण होना सिद्ध है। भगवान् व्यास जी ने उपनिषदों को वेद मान कर ही इस सूत्र को रचा है। और उपनिषदें ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग हैं। इस से सिद्ध है कि व्यास जी ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं। पृ० ७१ पं० २३)

उत्तर—सूत्र का शब्दार्थ इस प्रकार से है कि—

(श्रुतेः) श्रुति से (तु) किंतु (शब्द मूल त्वात्) शब्द प्रमाणक होने से॥ अर्थात् श्रुति से वह ब्रह्म निराकार निरवयव पाया जाता है फिर उसका परिणाम कैसे।

आप का कहना यह सर्वथा मिथ्या है कि व्यास जी उपनिषदों को वेद मानते थे। क्योंकि मंत्र संहिता मूल वेद में ईश्वर को निराकार वर्णन करने वाले अनेक मंत्र पाये जाते हैं जैसे कि—"एतावानस्य महिमा। यजु० ३१।३"

"सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्, यजु०४०।८" अतः व्यास जी ने श्रुति शब्द से मंत्र संहिता मूल वेद का ही प्रमाण दिया है। इस से साबित है कि व्यास जी ब्राह्मण ग्रंथों को वेद न मानते थे।

(४६४) प्रश्न—महर्षि बौधायण ब्राह्मण ग्रंथों को वेद मानते हैं जैसा कि—

मन्त्र ब्राह्मणमित्याहुः। ( बौधायन० सूत्र )

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं। पृ० ७२ पं० १५।

उत्तर—हमारे सामने इस समय बौधायन धर्म्म सूत्र मौजूद है। इसके पीछे समस्त सूत्रों की पद सूची दी हुई है। इसमें "मन्त्र ब्राह्मण" कोई पद ही मौजूद नहीं है। सारांश यह कि इस पुस्तक में सूत्र का अत्यन्त अभाव है। आपने जनता को धोका देने के लिये कपोलकल्पित सूत्र गढ़ कर बौधायन सूत्र का नाम लिख दिया। इस प्रकार के घृणित काम करते हुये आपको शर्म आनी चाहिये।

इससे साबित है कि बौधायण ऋषि ब्राह्मण ग्रंथों को वेद नहीं मानते।

(४६५) प्रश्न—महर्षि आपस्तम्ब ब्राह्मण ग्रंथों को वेद मानते हैं जैसा कि—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्।

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही नाम वेद है। पृ० ७२ पं० २०

उत्तर—यहां पर भी आपने सफेद झूठ बोला है। हमारे सामने आपस्तम्ब गृह्यसूत्र मौजूद है। इसके पीछे भी समस्त सूत्रों की पद सूची दी हुई है। इस सूची में मन्त्र ब्राह्मण कोई पद मौजूद नहीं है। सारांश यह कि इस पुस्तक में यह सूत्र क़तई नहीं है। अब आप सोचें कि आपको इस आत्मघात के लिये कौनसा नरक मिलना चाहिये।

इससे साफ़ साबित है कि आपस्तम्ब ऋषि ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं मानते। अतः स्वामी जी की यह प्रतिज्ञा

सर्वथा सत्य है कि—"कात्यायन के बिना किसी भी ऋषि ने ब्राह्मण ग्रंथों को वेद नहीं माना"।

(४६६) प्रश्न—महर्षि मनु जी ब्राह्मण ग्रंथों को वेद मानते हैं जैसा कि—

उदिते अनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकीश्रुतिः॥

मनु जी का कथन है वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदय और अनुदय काल में तथा सूर्य और नक्षत्रों के अदृश्य काल में भी हवन करना चाहिए।

"उदिते जुहोति" "अनुदिते जुहोति"।

ये सब श्रुतियां ब्राह्मण भाग की हैं और मनु जी ने इनको वैदिकी श्रुति कहा है। अब पाठक ही बतलावें कि मनु ने ब्राह्मणों को वेद माना या नहीं। पृ० ७२ पं० २६।

उत्तर—मनु जी महाराज ने इस श्लोक में ब्राह्मण ग्रंथों को श्रुति नहीं लिखा और न ही आपके दिए हुए ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्य इस श्लोक का आधार हैं। अपितु मनु ने इस श्लोक के द्वारा वेद के दो मंत्रों में आये हुए होम के समय की व्याख्या की है। वे वेद मन्त्र ये हैं कि—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता॥३॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता॥४॥
(अथर्व० कां० १६ सू० ५५)

जो सायं २ हवन किया जाता है वह प्रातः काल तक सुख का देने वाला होता है॥३॥ जो प्रातः २ हवन किया जाता है वह सायं काल तक सुख का देने वाला होता है॥४॥ यहां पर इन मन्त्रों में यह शङ्का पैदा होती थी कि इन मंत्रों

में प्रातः और सायं शब्द दो दो बार क्यों आया है। इस पर मनु जी समाधान करते हैं कि इन मंत्रों में प्रातः तथा सायं शब्दों का दो दो बार आना व्यर्थ नहीं है। अपितु इनका प्रयोजन यह है कि वेद बतलाता है कि होम करने का समय (प्रातः) सूर्य उदय होने पर (प्रातः) प्रातः से प्रातः अर्थात् सूर्य उदय से पूर्व भी हैं। (सायं) शाम को सूर्य के रहते हुए (सायं) सायं से सायं अर्थात् सूर्य्य के अस्त होने पर भी हवन का समय है। सारांश यह कि हवन यज्ञ हर समय किया जा सकता है। इसी बात को मनुजी महाराज ने अपने श्लोक में वर्णन किया है कि—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥ मनु० २। १५॥

(उदिते) प्रातः और सायं सूर्य के मौजूद होने पर (अनुदिते) सूर्य के निकलने से पहिले (समयाध्युषिते) और सूर्य के अस्त होने के पश्चात् तारों की छाया में। हवन यज्ञ सर्वथा हर समय किया जा सकता है। यही वेद की श्रुति का अभिप्राय है।१५॥

इससे साबित होता है कि मनुजी महाराज ब्राह्मण ग्रंथों को श्रुति या वेद नहीं मानते। अपितु चार मूल संहिताओं को ही वेद वा श्रुति मानते हैं। अतः स्वामी जी की यह प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है। कि "कात्यायन मुनि के बिना किसी भी ऋषि ने ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं माना"।

(४६७) प्रश्न—ब्राह्मण वेद नहीं हैं इस में पांचवां कारण यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों में इतिहास है। इस कारण वे वेद नहीं। इस के ऊपर हमारा कथन है कि मंत्र भाग में भी इतिहास हैं जैसे कि "संमात पत्न्यभितेः इत्यादि ऋ० १।

१०५'' यह सारा सूक्त ही कूएँ में गिरे हुये त्रित को प्रकाशित हुआ इस सूक्त में जो वाक्य हैं। वे इतिहास मिश्रित हैं इस मन्त्र की व्याख्या करते हुये निरुक्त ने भी इस में इतिहास माना है। हम ने यहां पर एक इतिहास दिखला दिया किंतु मन्त्र भाग में सैंकड़ों इतिहास हैं। यदि इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो मन्त्र भाग भी वेद नहीं। पृ० ७३ पं० १०

उत्तर—इस मन्त्र में लेश मात्र भी लौकिक इतिहास नहीं है और न ही सारे सूक्त में कोई लौकिक इतिहास है। अतः इस सूक्त में किसी लौकिक मनुष्य त्रित का इतिहास बतलाना पौराणिक कल्पना ही है। चाहे आप ध्यान करें चाहे आपका निरुक्त, देखिये इस मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि—

संमा तपत्न्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्यरोदसी ॥ ऋ० १।१०५।८॥

भाषार्थ—हे असंख्य उत्तम विचार युक्त वा अनेकों उत्तम २ कर्म करने वाले न्यायाधीश! आप की प्रजा वा सेना में रहने और धर्म्म के गाने वाला मैं हूं। उस मुझ को औरों को मारने और पास में रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी जैसे एक पति को बहुत स्त्रियां दुःखी करती हैं ऐसे दुःख देते हैं। जो दूसरे के मन में व्यथा उत्पन्न करने हारे मूषे जैसे अशुद्ध सूतों को काट काट कर खाते हैं। वैसे मुझ को सन्ताप देते हैं। उन अन्याय करने वाले जनों को आप यथावत् शिक्षा करें। और मुझ पदार्थ विद्या के जानने वाले के पास से इस द्यौलोक और पृथिवी की भांति राजा और प्रजा जन समूह को अपना धन समझो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे न्याय करने के अध्यक्ष आदि मनुष्यो ! तुम, जैसे सौतेली स्त्री अपने पति को कष्ट देती है। वा जैसे अपने प्रयोजन मात्र का बनाव बिगाड़ देखने वाले मूषे पराये पदार्थों को अच्छी प्रकार नाश करते हैं और जैसे व्यभिचारिणी वेश्या आदि कामिनी स्त्री दमकती हुई कामीजन के लिंग आदि रोग रूपि कुकर्म के द्वारा उसके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के करने की रुकावट से उस कामी जन को पीड़ा देती हैं। वैसे ही जो डाकू, चोर, चवाई, अताई, लड़ाई भिड़ाई करने वाले झूठ की प्रतीति और झूठे कामों की बातों में हम लोगों को क्लेश देते हैं उन को अच्छी प्रकार दण्ड देकर हम लोगों को तथा उन को भी निरन्तर पालो ऐसे करने के बिना राज्य का ऐश्वर्य नहीं बढ़ सकता ॥ ८ ॥

इसी ही प्रकार का अर्थ समस्त सूक्त का है । चूंकि वेदों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास परक चरित्रों का वर्णन नहीं है और ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबंधि इतिहास का वर्णन है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं अपितु पुराण हैं। इस विषय में निम्न लिखित प्रमाणों को भी पढ़ने की कृपा करें।

यत्र क्वापि परम प्रमाणाधौरे भूतेषु प्रथम वेद शब्दोल्लेखस्त-तश्चपुराणस्य। यथा तैत्तिरीय आरण्यके 'सहवै' इतिप्रपाठके 'यद् ब्राह्मणा नीतिहासान्पुराणानिकल्पान्। तै० आ० १. ६. १

ऋग्वेद—इतहास पुराण विद्या वृ० ४० १—२ ।.....

कथ्यते। तत्रखलु वेदांतः पात्येव कश्चिदागमः पुराण पदवाच्यः

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्ना न्यत्किंचनमिषत् इत्यादीनि सृष्ट्यादि प्रतिपादकानि पुराणानि। इति विद्यारण्यकस्यपुराण पदस्यापि 'असद्वा इदमग्र एवासीदित्यादि' एवं प्रकारकयैव-रीत्या श्रीभगवत्पूज्यपादाअपि वृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये लिलिखुः। एवमन्यभाषि।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण भाग २ भूमिका पृष्ठ २-३
आनन्दाश्रम पूना में छपा शालिवाहन शकाब्दः १८५८ ई० सन् १९३५।

(४९८) प्रश्न—ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते पुराण तो ब्रह्मपुराणादि अठारह ही पुस्तक रहेंगे। पृ० ७४ पं०१३

उत्तर—ये भागवतादि अष्टादश ग्रन्थ पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं। क्योंकि ये ग्रन्थ कपोल कल्पित और अत्यन्त नवीन हैं। इन का नाम किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं आता। रामायण तथा महाभारत में भी इन भागवतादि अठारह पुराणों का नाम नहीं है? और इन के अंदर असंभव तथा वेद विरुद्ध गाथायें और शिक्षायें भरी पड़ी हैं। अतः शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ ही पुराण कहाने के योग्य हैं। भागवतादि अठारह ग्रन्थ पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं।

(४९९) प्रश्न—प्रथम—किसी भी ब्राह्मण के आरंभ या अन्त में पुराण शब्द नहीं है और न किसी काण्ड की समाप्ति पर ही पुराण शब्द है। जब उन में पुराण का प्रयोग ही नहीं फिर उनको पुराण कैसे माना जावे? इस के विरुद्ध अठारह पुराणों के प्रति स्कंध पर "इति श्री महा पुराणे" लिखा है। आरंभ में पुराण अन्त में पुराण प्रत्येक अध्याय में पुराण। पृ० ७४ पं० १६॥

उत्तर—किसी ग्रन्थ का विषय जानने के लिये यह कोई कसौटी नहीं है कि उस के आदि अन्त और प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर वह विषय लिखा हुआ हो। अपितु देखना यह होगा कि उस ग्रन्थ में विषय क्या प्रतिपादन किया गया है। उदाहरणार्थ रामायण तथा महाभारत के आदि और अन्त में इतिहास शब्द लिखा हुआ नहीं है। और इन के प्रत्येक कांड पर्व तथा अध्याय की समाप्ति पर भी इतिहास शब्द लिखा हुआ नहीं है। तो क्या रामायण और महाभारत इतिहास ग्रन्थ नहीं हैं। तथा आश्वलायण गृह्य सूत्र, पारस्कर गृह्य सूत्र और गोभिल गृह्य सूत्र इन तीनों ग्रन्थों के आदि अन्त तथा मध्य में कल्प शब्द लिखा हुआ नहीं है तो आपके विचार में क्या ये तीनों ग्रन्थ कल्प सूत्र नहीं हैं। और हमारे सामने एक ग्रन्थ है जिस का नाम है। "श्री विष्णु अग्रसेन वंश पुराण" इस के आदि अन्त और प्रत्येक पृष्ट पर पुराण शब्द मौजूद है तो क्या आप इसे उन्नीसवां पुराण मानने को तय्यार हैं। हर्गिज़ भी नहीं। अतः साबित हुआ कि किसी ग्रन्थ का विषय जानने के लिये उस के अन्दर क्या लिखा है यह जानना ज़रूरी है, केवल आदि अन्त और मध्य में नाम का होना या न होना ज़रूरी नहीं है। इस नियम के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों के आदि अंत और मध्य में पुराण शब्द के न होते हुये भी ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं। और भागवतादि ग्रन्थों के आदि अंत और मध्य में पराण शब्द होते हुये भी वे पुराण कहाने के काबिल नहीं है। और आपके नियम के अनुसार भी चारों वेदों के आदि अन्त और मध्य में वेद शब्द मौजूद हैं और शतपथादि ब्राह्मण

ग्रन्थों के आदि अन्त और मध्य में वेद शब्द मौजूद नहीं है । इस से साबित है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु पुराण हैं।

(५००)प्रश्न—द्वितीय—ब्राह्मणों में प्रायः याज्ञिक कर्मों का वर्णन है और याज्ञिक कर्म वेद का प्रधान अंग वेदों में वर्णित हैं। इस कारण ब्राह्मण ग्रंथ वेद हैं। "चत्वारि शृंगा इत्यादि यजु० १७।९१" इस मन्त्र तथा इस पर निरुक्त से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में यज्ञ कर्म का वर्णन है । अतएव वे पुराण नहीं किंतु वेद हैं। क्योंकि यज्ञ की विधि वेदों में ही है। पृ० ७४ पं० २१।

उत्तर—हम ने प्रश्न (नं० ४८४) के उत्तर में इस मन्त्र तथा इसके निरुक्त को देकर पूरे तौर से साबित कर दिया है कि इस निरुक्त से तो "त्रिधाबद्धस्त्रेधाबद्धो मन्त्र ब्राह्मण कल्पैः" यह साबित होता है कि यज्ञ मन्त्र ब्राह्मण तथा कल्प से बंधा हुआ है इस से मन्त्र तथा ब्राह्मण कल्प भिन्न वस्तु है। अतः साबित है कि मन्त्र भाग का नाम वेद तथा व्याख्यान भाग का नाम ब्राह्मण और कल्प है वरना यज्ञ को वेद से बंधा हुआ कहना ही काफी था। वेद कहने से ही ब्राह्मण तथा कल्प का ग्रहण हो जाता किंतु मन्त्र ब्राह्मण और कल्प तीनों से बंधा कहने से साबित है कि तीनों भिन्न २ वस्तु हैं। अतः ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं ।

ब्राह्मणों में जो याज्ञिक कर्मों का वर्णन है, वेद का अनुवाद मात्र ही है जैसा कि इस विषय में निरुक्त भी कहता है कि—

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूप समृद्धं यत् कर्म क्रियमाणमृग्यजु वाभिवदतीति च ब्राह्मणम् ॥२॥

यथो एतद्ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना विधीयन्त इत्युदितानुवादाः स भवति ॥५॥ ( निरु० अ० १ ख० १६)

भाषार्थ—यही यज्ञ की कर्म सम्पत्ति है, जो मन्त्रों से विधान किया जाता है। जो किये जाने वाले कर्म को स्वयं ऋग्वेद और यजुर्वेद कहता है, और ब्राह्मण भी उसी अर्थ को कहता है ॥२॥ जो यह कहा जाता है कि मन्त्र ब्राह्मण से रूप सम्पन्न किये जाते हैं। सो वह तो अनुवाद ही किया हुआ है ।५॥ ब्राह्मण ग्रंथों से भी यही विदित होता है कि वे वेद के प्रमाण प्रतीकें दे देकर यज्ञ का विधान करते हैं जैसे कि—

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्या च दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवीद्यावापृथिवीति॥६॥ (शतपथ० १४। १। २)

इत्यादि २ इस सारे चौदहवें कांड में यजुर्वेद के अध्याय ३७ की प्रतीकें देकर यज्ञ का विधान किया हुआ है, ऊपर के पाठ में भी "देवीद्यावा पृथिवि" यजु० ३७।३ की प्रतीक दी हुई है। अतः ब्राह्मणों में याज्ञिक कर्म वेद का अनुवाद मात्र है। कोई नई वस्तु नहीं है।

फिर आपने यह युक्ति दी कि चूंकि वेद में याज्ञिक कर्मों का वर्णन है और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी याज्ञिक कर्मों का वर्णन है। अतः याज्ञिक कर्म वर्णन की समानता से ब्राह्मण ग्रंथ वेद हैं।

श्रीमान् जी केवल साधर्म्य से दो वस्तु एक नहीं हो जाया करती वैधर्म्य दोनों में भेद कारक होता है। जैसे कोई यदि कहने लगे कि गधे के भी कान हैं और आपके भी दो कान हैं अतः आप भी गधे हैं तो हम फौरन रोक देंगे कि नहीं केवल दो कानों के साधर्म्य से शास्त्री जी को गधा नहीं कहा जा

सकता क्योंकि गधे के पूंछ है शास्त्री जी के पूंछ नहीं है इत्यादि। इसी प्रकार से ही केवल यज्ञ वर्णन के साधर्म्य से वेद तथा ब्राह्मण एक नहीं हो सकते क्योंकि उन में वैधर्म्य भेद कारक है' अर्थात् वेदों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास नहीं है किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबंधी इतिहास मौजूद हैं जैसा कि—

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतु :। मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्री प्रज्ञैव कात्यायनी इत्यादि। (शतपथ० १४। ७। ३। १ से)

भाषार्थ—याज्ञवल्क्य के दो पत्नियें थीं एक का नाम मैत्रेयी तथा दूसरी का नाम कात्यायनी था उन दोनों में से मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी साधारण स्त्रियों की सी बुद्धि रखती थी इत्यादि।

इस से साबित हो गया कि ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं है अपितु पुराण हैं।

(५०१) प्रश्न—तृतीय—वैदिक लोगों के हां श्रौत और स्मार्त दो प्रकार के कर्म होते हैं जिस में वेद के मन्त्र बोले जावें और वेद ही में जिस की विधि मिले उस कर्म का नाम श्रौत कर्म हैं। मन्त्र 'मन्त्र संहिता' से लिये जाते हैं, और विधि ब्राह्मण तथा श्रौत सूत्रों से ली जाती है। ऐसे कर्म का नाम श्रौत कर्म है। श्रौत का अर्थ है श्रुति नाम वेद का बतलाया कर्म, जब इन का बतलाया हुआ कर्म वैदिक कर्म कहलाता है। तब ये पुराण नहीं किन्तु वेद हैं। पृ०७५ पं० १२।

उत्तर—आप स्मार्त कर्म किन को कहते हैं। यदि वे कर्म वेदानुकूल होते हैं तो उन को स्मार्त कहने की ज़रूरत ही नहीं

वे वेदानुकूल होने से वैदिक या श्रौत ही हैं और यदि वे स्मार्त कर्म वेद के विरुद्ध हैं तो वे पाप होने से कर्तव्य ही नहीं हैं। वे वैदिक लोगों के घरों में हो ही नहीं सकते। वैदिक कर्मों का अर्थ है वेदानुकूल कर्म। उन के करने की आज्ञा वेद में होती है और उन के करने की विस्तृत विधि को वेदानुकूल ग्रंथ वर्णन करते हैं। यदि वह विधि वेद के विरुद्ध हो तो प्रमाण न होगी। अतः यदि किन्हीं वेदानुकूल कर्मों की विस्तृत विधि को ब्राह्मण ग्रंथ वर्णन करते हैं तो वे वहां तक हीं प्रमाण हैं जहां तक वेदानुकूल हैं। जहां वे ब्राह्मण ग्रंथ वेद के विरुद्ध होंगे वहां वे प्रमाण न होंगे अपितु वेद प्रमाण होंगे। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु वेद के मंत्रों की अर्थ शक्ति को कथन करने वाले कल्प ग्रन्थ हैं। यदि इन में लौकिक मनुष्यों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास न होते तो इन का नाम ब्राह्मण और कल्प ही होता। किन्तु इन ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबन्धी इतिहास मौजूद हैं अतः इन का नाम ब्राह्मण और कल्प के साथ २ पुराण, गाथा और नाराशंसी भी हो गया।

ब्राह्मण ग्रंथ में इतिहास जैसे—

जनकोह वैदेह आसांचक्रे। अथ ह याज्ञवल्क्य आवव्राज स होवाच जनको वैदेहो याज्ञवल्क्य किमर्थं मचारीः इत्यादि॥

(शत० १४।५।८।१)

जनक वैदेह नाम का राजा था, वहां उसके पास याज्ञवल्क्य ऋषि आये, वह वैदेह जनक बोला हे याज्ञवल्क्य! आप कैसे आये हैं इत्यादि इतिहास मौजूद है।

इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०२) प्रश्न—चतुर्थ—जितने ब्राह्मण हैं वे सब किसी न किसी वेद की शाखा के ब्राह्मण हैं। जैसे यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा का ब्राह्मण शतपथ है। जब ये शाखाओं के ब्राह्मण हैं, तो फिर पुराण कैसे हो जावेंगे तब तो वेद ही रहेंगे।

पृ ७५ पं १८।

उत्तर—श्रीमान् जी! शाखायें तो स्वयं वेद का व्याख्यान होने से परतः प्रमाण हैं। और आपके कथनानुसार ब्राह्मण शाखाओं के व्याख्यान हैं तो फिर ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान नहीं अपितु अनु व्याख्यान हुए। तो ऐसी सूरत में जब शाखा ही वेद नहीं हैं तो ब्राह्मणों को तो किसी सूरत में वेद माना ही नहीं जा सकता। ४० अध्याय से युक्त यजुर्वेद मन्त्र संहिता शाखा नहीं है। अपितु मूल वेद हैं। और शतपथ ब्राह्मण उसका व्याख्यान है। जो परतः प्रमाण है। यदि शतपथ में कोई बात वेद के विरुद्ध होगी तो वहां शतपथ प्रमाण न होगा अपितु यजुर्वेद प्रमाण होगा। यदि ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक पुरुषों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास न होते तो इनकी पुराण संज्ञा न हो सकती चूँकि ब्राह्मण ग्रन्थों में लौकिक पुरुषों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास मौजूद हैं। अतः इनकी ब्राह्मण संज्ञा के साथ साथ पुराण संज्ञा भी हो गई।

ब्राह्मण ग्रंथों में इतिहास है जैसे कि—

श्वेत केतुर्हवा आरुणेयः। पांचालानां परिषद माजगाम स आजगाम जैवलं प्रवाहणं परिचारयमाणं तमुदी क्ष्याभ्युवाद कुमारा इति इत्यादि। (शतपथ० १४।७।२।१)

अरुणी का पुत्र श्वेत केतु पांचालों की सभा में आया उस जैवल, प्रवाहण तथा परिचारयमाण को देख कर कुमारों ने अभिवादन किया इत्यादि इतिहास मौजूद है। इस से साबित है कि ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं अपितु पुराण हैं।

(५०३) प्रश्न—पंचम-ब्राह्मण ग्रंथ ब्राह्मण भाग कहातेहैं। भाग नाम एक हिस्से का है। जहां पर हिस्सा अर्थात् जुज़ होता है वहाँ पर हिस्से वाला भी होता है। तो वह ग्रन्थ कौन है कि ब्राह्मण ग्रन्थ जिस के भाग हैं। ब्राह्मण समुदाय पुराण का भाग नहीं किंतु वेद का भाग है अतएव ये पुराण नहीं हैं वेद हैं।

पृ० ७५ पं० २१।

उत्तर—श्रीमान् जी! ये किसी ग्रन्थ के भाग नहीं हैं। अपितु वेद विषय के दो भाग हैं। एक है मन्त्र भाग मूल संहिता भाग जिसका नाम है वेद और दूसरा है व्याख्या भाग जिसका नाम है ब्राह्मण।

ब्राह्मण भाग व्याख्या भाग है वेद नहीं है जैसे कि—

इषेत्वोजेत्वेति॥ शतपथ० कां० १ अ० ७। इत्यादि सारे शतपथ में यजुर्वेद के मन्त्रों की प्रतीकें देकर व्याख्या की हैं। अतः शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद की व्याख्या है वेद नहीं है, ब्राह्मण और वेद भिन्न हैं।

(१) द्वितीया ब्राह्मणे॥ अष्टाध्यायी अ० २ पा० ३ सू० ६०॥

(२) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि॥अष्टा० अ० २ पा०३सू०६२॥

यदि ब्राह्मण और छन्द दोनों की वेद संज्ञा होती तो दूसरे सूत्र में छन्दसि पद देना व्यर्थ हो जाता क्योंकि पहिले सूत्र से ब्राह्मणपद की अनुवृत्ति से वही काम चल जाता। इससे साबित हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु व्याख्या भाग हैं और

लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबंधि इतिहास के ब्राह्मण ग्रन्थों में शामिल होने के कारण इन का नाम पुराण भी हो गया। इतिहास जैसे कि—

एतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः। जन्मेजयं पारिक्षितं याजयांचकार तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्यां सर्वां ब्रह्म हत्यामपजघान सर्वां ह वै पाप कृत्याँ सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति योऽश्वमेधेन यजेत ॥ १ ॥ इत्यादि ( शतपथ १३। ३। ६। १ )

इस से इन्द्र दैवाप शौनक ने परीक्षित के पुत्र जनमेजय का यज्ञ करवाया। इस यज्ञ से सारे पापकृत तथा ब्रह्महत्या का नाश कर दिया। जो आदमी अश्वमेध यज्ञ करता है वह सारे पापकृत तथा ब्रह्महत्या को नष्ट कर देता है ॥ १॥ इत्यादि इतिहास मौजूद है।

इस से सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु पुराण हैं।

(५०४ )प्रश्न—षष्ठ —जहां २ पर पुराण का पाठ उद्धृत किया गया है वहाँ पर अमुक पुराण में है ऐसा लिखा है और जिस ग्रन्थ में ब्राह्मणों का पाठ उतधृत किया वहां श्रुति के नाम से याद किया गया है। यदि ये पुराण होते तो लिखा जाता कि यह शतपथ पुराण का वचन है। किंतु ऐसा कहीं नहीं मिलता अतएव ये पुराण नहीं। पृ० ७५ पं० २५।

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा मिथ्या है कि जहां पुराण का प्रमाण दिया जाता है वहां पर किसी भागवतादि पुराण का नाम लिखा जाता है जैसा कि—

श्रूयते ही पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी।
ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्म्म भृताँवरा ॥१४॥

तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभि र्भावितात्मनः ।
संगताभूद्दश भ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः ॥१५॥
(महा० आदि० अ० १६८)

श्रूयते चाप्ययं श्लोकः पुराणे प्रथितः क्षितौ ॥२७॥
ब्रह्मचर्य्येऽपि वर्तन्त्याः साध्व्याह्यपि च श्रूयते ।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः संक्लिद्यते स्त्रियः ॥२८॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ७३)

फरमाइये यह श्लोक जो महाभारत तथा भविष्य में पुराण के नाम से दिये हैं। इन में भागवतादि अष्टादश पुराणों का नाम कहाँ मौजूद है। यदि उस समय ये भागवतादि पुराण होते तो उन में से किसी का नाम होता। पता लगता है कि महाभारत के समय तो यह भागवतादि मौजूद न थे तथा भविष्य वाला इन को पुराण मानता नहीं। अतः संभव है दोनों का इशारा ब्राह्मण ग्रन्थों की तरफ ही हो, और आप की दूसरी प्रतिज्ञा भी मिथ्या है कि जहाँ जहां भी ब्राह्मण ग्रंथों का प्रमाण दिया है वहां वहां श्रुति कह कर दिया है। जैसा कि—

अथापि ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना विधीयन्ते—
"उरू प्रथस्वेति प्रथयति" "प्रोहाणीति प्रोहति" ॥५॥
(निरु० अ० १ खं० १५)

यहां पर ब्राह्मण ग्रन्थों के दो पाठ श्रुति के नाम से नहीं अपितु ब्राह्मण के नाम से ही दिये हैं। और पुराण इन का नाम इस कारण से पड़ा कि इन में लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबंधि इतिहास मौजूद हैं जैसा कि—

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ। याज्ञवल्क्येति होवाच भद्रेष्ववसाम पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयाना स्त-

स्यासीद्भार्या गन्धर्व गृहीता तमपृच्छाम कोसीति सोऽब्रवीत्कबंध आथर्वण इति ॥१॥ इत्यादि २॥( शतपथ१४।५।५।१ )

उसको अरुणि के पुत्र उद्दालक ने पूछा कि हे याज्ञवल्क्य! हम लोग भद्र देश में काप्यपतंजल के घरों में यज्ञ विद्या पढ़ते हुए निवास करते थे, उसकी स्त्री को गंधर्व ने ग्रहण कर रक्खा था हमने उससे पूछा कि तू कौन है उसने कहा कि मैं अथर्व का पुत्र कबन्ध हूं ॥१॥ इत्यादि इतिहास मौजूद है। अतः ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०५) प्रश्न—सप्तम—किसी भी ऋषि ने इनके विषय में पुराण होने की सम्मति नहीं दी। अतएव ये पुराण नहीं।

पृ० ७६ पं० १।

उत्तर—ब्राह्मण ग्रंथों को वेदों से भिन्न तथा पुराणादि संज्ञा से युक्त आश्वलायन ऋषि ने माना है जैसा कि—

अथस्वाध्यायमधीयीत ऋचोयजूंषिसामान्यथर्वांगिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति ॥१॥

(आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१)

स्वाध्याय करे ऋग्वेद का यजुर्वेद का सामवेद और अथर्ववेद का तथा कल्प गाथा नाराशंसी पुराण नाम वाले ब्राह्मण ग्रंथों का ॥१॥ यहां पर स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों को चारों वेदों से भिन्न तथा पुराणादि नाम वाला वर्णन किया है।

पाणिनि ऋषि ने ब्राह्मणों को पुरा संज्ञा मानी है जैसा कि—

पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु ॥ अष्टा० अ०४ पा०३ सू१०५

यहां पर स्पष्ट रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण और कल्प संज्ञा बतलाई है।

इन प्रमाणों से साबित है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु पुराण हैं।

(५०६) प्रश्न—अष्टम—वेद के प्रादुर्भाव के साथ इन का प्रादुर्भाव हुआ है और प्रादुर्भाव विधायक प्रमाणों में ब्राह्मण पृथक् और पुराण पृथक् हैं। अतः व ये पुराण नहीं। ब्राह्मण और पुराणों की पृथकता में हम गोपथ ब्राह्मण की श्रुति ऊपर दे आये हैं। पृ० ७६ पं० ३।

उत्तर—हम प्रश्न (नं०४७४) में इस बात का उत्तर दे आये हैं कि गोपथ ब्राह्मण में ग्रन्थों के प्रादुर्भाव का वर्णन नहीं है अपितु वेदों द्वारा कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद, इतिहास, पुराणादि विद्याओं के प्रकट होने का वर्णन है यदि यह मान लिया जावे कि शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के साथ ही प्रादुर्भाव हुए तो ब्राह्मण ग्रन्थों में जो वेद के मन्त्रों का इषेत्वर्जे इत्यादि प्रतीकें देकर अनुवाद कया है तो क्या अनुवाद भी किया कराया वेदों के साथ ही प्रादुर्भूत हो गया। कैसी मज़ाक की बात है अतः वेदों के साथ समस्त विद्याओं का प्रकाश हुआ विद्याओं के प्रतिपादक वर्तमान ग्रन्थों का नहीं चूंकि वर्तमान शतपथादि में ब्राह्मण तथा पुराण दोनों विद्यायें मौजूद हैं अतः शतपथादि का नाम ब्राह्मण होते हुये भी पुराण हो गया। सृष्टि के आरंभ में वेदों द्वारा कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषत्, इतिहास, अन्वाख्यान पुराण स्वर संस्कार, निरुक्त इत्यादि बीज रूप से सब विद्याओं के असूल सिद्धांत नियम प्रकट हुये। पीछे से जिस २ विद्या का जिस २ ग्रन्थ में ऋषियों ने विस्तार पूर्वक व्याख्यान कर दिया उस उस ग्रन्थ का वही २ नाम हो गया चूंकि शतपथादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, पुराण, गाथा, इतिहास, नाराशंसी इन सम-

स्त विद्याओं का व्याख्यान मिलता है इस लिये शतपथादि का नाम ब्राह्मण पुराणादि नाम हो गया। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु पुराण, इतिहास, गाथा तथा नाराशंसी नाम से युक्त हैं।

कहिये महाराज! यदि ब्राह्मण ग्रंथ वेद ही हैं तो "वेदों के साथ प्रादूर्भूत हुये" यह क्यों लिखा। इस से तो सिद्ध होता है कि वेद और वस्तु है ब्राह्मण और वस्तु है। यदि एक होते तो इतना लिखना काफ़ी था कि "वेद प्रकट हुये" इस से भी साबित है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं।

(५०७) प्रश्न—ब्राह्मण ग्रंथ और पुराण इन दोनों के विषयों में बड़ा अंतर है, महर्षि वात्स्यायन ने "समारोपणादात्मन्य प्रतिषेधः" न्याय दर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुए लिखा हैं कि-"यज्ञोमन्त्र ब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहास पुराणस्य" अर्थात् मन्त्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है, और पुराण इतिहास का विषय लोकवृत्त है। जो बात महर्षि वात्स्यायन ने लिखी है। वास्तव में पुराणों में लोकवृत्त अधिक होता है। जो ब्राह्मणों में बिलकुल नहीं है। पुराणों का लक्षण लिखते हुये महर्षि व्यास जी ने वायु पुराण में एक श्लोक लिखा है वह यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानु चरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥

सर्ग (तत्वों की रचना) विसर्ग (प्राणियों की रचना) वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों की कथा, वंशों के चरित्र (कैरक्टर), ये पांच बातें जिसमें हों उसको पुराण कहते हैं। वंश और

मन्वंतर तथा वंशानुचरित जो पुराणों का वर्णनीय विषय है ब्राह्मण ग्रंथों में उनका सर्वथा अभाव है। फिर हम उनको पुराण कैसे मानलें। पृ० ७६ पं० ७।

उत्तर—इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि ब्राह्मण शब्द के यौगिक अर्थ लिये जावें तो ब्राह्मण तथा पुराण इन दोनों के विषय में बड़ा अंतर है। क्यों कि "ब्राह्मण" के अर्थ हैं ब्रह्म अर्थात् वेद के व्याख्यान, और पुराण के अर्थ हैं लौकिक मनुष्यों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास। वेद तथा वेद के व्याख्यान में लौकिक मनुष्यों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास होते नहीं।

इस लिये वेद तथा वेद के व्याख्यान को पुराण इतिहास कहा नहीं जा सकता। किंतु यह असूल शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के लिये नहीं घट सकता क्योंकि उन में वेद के व्याख्यान के साथ लौकिक मनुष्यों के चरित्र संबंधि इतिहास भी मौजूद हैं जैसा कि हम दिखा चुके हैं। अतः शतपथादि ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण होते हुये पुराण,इतिहास,गाथा और नाराशंसी भी हैं। हमारी इसी बात की ताईद वात्स्यायन ऋषि करते हैं कि "मन्त्र तथा मन्त्रों का व्याख्यान मात्र ब्राह्मणों में यज्ञ का विषय होता है। और लौकिक इतिहास पुराणों का विषय होता है" अब यदि शतपथादि ग्रन्थों में केवल वेद का ही व्याख्यान होता और लौकिक इतिहास न होता तो उन को हम ब्राह्मण ही कहते पुराण न कहते किंतु अब जब कि शतपथादि ग्रन्थों में वेद के व्याख्यान के साथ लौकिक इतिहास भी मौजूद है तो हमें उन को ब्राह्मण के साथ २ पुराण इतिहास भी कहना

ही पड़ेगा। थोड़े बहुत का कोई सवाल नहीं जिस ग्रन्थ में भी लौकिक इतिहास मौजूद हो उसे पुराण कहा जासकता है। चूंकि शतपथादि ग्रन्थों में लौकिक इतिहास मौजूद है अतः उन को पुराण अवश्य ही कहा जा सकता है। आप की यह प्रतिज्ञा झूट है कि शतपथादि में लौकिक इतिहास बिल्कुल नहीं है आपने जो किसी पुस्तक की पुराण संज्ञा होने में पांच हेतु दिये हैं। यद्यपि यह जरूरी नहीं हैं कि किसी पुस्तक में ये पांचों लक्षण इकट्ठे मौजूद हों वही पुराण कहा सकता है क्योंकि इन पांचों में से एक वा दो वा तीन चार लक्षण अपने में रखने वाला पुस्तक भी पुराण कहा जासकता है। अन्यथा अठारह पुराणों में से भी कई ऐसे निकल पड़ेंगे जिन में पूरे पाँचों लक्षण न होने के कारण वे पुराण कहाने के हक़दार न रहेंगे। तथापि यदि यह भी मान लिया जावे कि पुराण कहाने का वही पुस्तक हक़दार है कि जिस में ये पांचों लक्षण इकट्ठे ही मौजूद हों तो भी शतपथादि ग्रन्थ ब्राह्मण कहाते हुए भी पुराण कहाने के योग्य हैं। क्योंकि इन में ये पांचों लक्षण मौजूद हैं जैसे कि—

(१) सर्ग तत्त्वों की रचना—

प्रजापतिर्वा इदमग्रे आसीत्। एक एव सोऽकामयतस्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्ता त्तेपनात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यंत रिक्षंद्यौः॥१॥सइमाँल्लोकान भितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीष्युष्य जायन्ताऽग्नियोंऽयंपवतेसूर्यः ॥ २॥ स इमानित्रीणिज्योतीष्युष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ॥३॥ इत्यादि (शतपथ ११।५।८।२)

भाषार्थ—इसका अर्थ वेदोत्पत्ति विषय में देखने की कृपा करें। शतपथ में इस प्रकार से अनेक स्थानों में तत्त्वों की रचना का वर्णन है।

(२) प्रति सर्ग—प्राणियों की रचना—

सवैनैवरेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीय मैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ ॥ ४ ॥

स इममेवात्मानद्वैधापातयत। ततः पतिश्चचाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्य स्त स्मदयमाकाश स्त्रिया पूर्यत एव ताꣳसमभवत्ततोमनुष्या अजायन्त॥५॥ सो हेयमीक्षां चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा सम्भवति हन्त तिरोऽसानीति ॥ ६ ॥ सा गौरभवत्। वृषभ इतरस्तां समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त ॥७॥ बडवेतराभवत्। अश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्तां समेवाभवत्तत एक शफमजायत ॥८॥ अजेतराभवत्। वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्तां समेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किं च मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत ॥९॥ इत्यादि ( शतपथ १४। ४। २ )

भाषार्थ—इस का भाषार्थ देखो सृष्टि उत्पत्ति विषय में। शतपथ में इस स्थान में मनुष्य से कीडी पर्यंत संपूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(३) वंशों का वर्णन—

अथहैतेऽरुणे। औपवेशौ समाजग्मुः सत्ययज्ञः पौलुषिर्मैहाशालो जाबालो बुडिल आश्वतराश्विरिन्द्र द्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यस्ते ह वैश्वानरे समासत तेषाꣳ ह वैश्वानरो न समियाय ॥१॥ ते होचुः। अश्वपतिर्वा अयं कैकेयः सम्प्रति वैश्वानरं वेद तं गच्छामेति ते हाश्वपतिं कैकेयमाग्मु-

स्तेभ्यो ह पृथगावसथान् पृथग पानितीः पृथक् साहस्नान् न्त्सोमान् प्रोवाच ते ह प्रातरसंविदाना एव समित्पाणयः प्रतिचक्रमिर उपत्वायामेति ॥२॥ सा होवाचन्नु भगवन्तोऽनूचाना अनूचान पुत्राः किमिदमिति ते होचुर्वैश्वानरꣳ ह भगवान्त्सम्प्रतिवेद तं नो ब्रूहीति स होवाच सम्प्रति खलुन्वाऽहं वैश्वानरंवेदाभ्याधत्त समिध उपेता स्थेति ॥३॥ इत्यादि

( शतपथ १० । ५ । ६ )

शतपथ में इस स्थान में राजा अश्वपति तथा सत्य यज्ञ इत्यादि बहुतों के वंशों का वर्णन मौजूद है।

(४) मन्वन्तरों की कथा—

मनवे ह प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं । पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनि जानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ॥१॥ स हास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामित्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्योघ इमाः सर्वाः प्रजानिर्वोढ़ा ततस्त्वा पारयितऽस्मीति कथं ते भृतिरिति ॥२॥ इत्यादि ( शत० १।७।५) इस प्रकार से शतपथ में अनेक मन्वन्तरों का वर्णन मौजूद है।

(५) वंशों के चरित्र—

जकनꣳ ह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम। समेनेन बर्दिष्य इत्यथ ह यज्ञनकश्च इत्यादि। (शत०१४ । ७ । १ )

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा इत्यादि ( शत०१४ । ६ । ६ । १ )

ऐतेन हैन्द्रोतो दैवापः शौनक । जन्मेजयं पारिक्षितं याजयां चकार इत्यादि ( तश० १ । ३ । ६ । १ )

उर्वशी हाप्सराः । पुरुरवसमैडं चकमे इत्यादि

( शत० १४ । ४ । ५ । १ )

उद्दालकोहारुणिः। उदीच्यान् वृतो धांक्ष्यांचकार तस्य तस्य निष्क उपाहित ( शत० ११ । ३ । २ । १ )

इत्यादि अनेक वंशों के चारित्र शतपथ में लिखे हुए मौजूद हैं इससे साबित है कि शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु आप के लक्षणों के अनुसार भी पुराण ही हैं ।

(५०८) प्रश्न—स्वामी जी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखते हैं कि वेदों की ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान होने से परतः प्रमाण हैं" चारों वेदों की ११३१ पुस्तकें है इन ११३१ ग्रन्थों को शाखा कहते है। इस पर महाभाष्य लिखता है कि—

"बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्यु शाखाः सहस्रवर्त्मा
सामवेदः एकविंशतिधा वह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदः"

वेद बहुत भागों में विभक्त हैं । यजुर्वेद की १०१ और सामवेद की १००० एवं ऋग्वेद की २१ और अथर्व वेद की ९ शाखें हैं। ११३१ शाखाओं में से स्वामी जी ने चार शाखाओं को तो असली वेद माना और ११२७ को शाखा ।पृ०७७पं०२०॥

उत्तर—स्वामी दयानन्द जी का मानना ही ठीक है । क्योंकि शाखा आखिर किसी मूल रूप वृक्ष की ही होती हैं । यदि मूल न हो तो शाखा किसकी। अतः स्वामी जी ने यह बतलाकर आर्य्य जाति पर बड़ा भारी उपकार किया कि ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद,अथर्ववेद मूल मन्त्र संहिता ये तो चारों मूल वेद हैं। और बाक़ी इन चारों वेदों की ११२७ शाखा हैं । अर्थात् वे वेदों के व्याख्यान हैं और वे ११२७ व्याख्यान वहां तक ही प्रमाण हैं जहां तक वे मूल वेद के अनुकूल हों, जहां पर उन में कोई बात मूल वेद के विरुद्ध होगी वहां पर उनकी बात न मानी जावेगी अपितु मूल वेदों की बात प्रमाण मानी जावेगी।

यदि मूल वेद का निश्चय न किया जाये तो आप के पास धर्म्म का मूल आधार कोई है ही नहीं क्योंकि इस समय न तो ब्राह्मण ग्रन्थ सारे मिलते हैं और न ही शाखा सारी मिलती हैं। यदि ब्राह्मण ग्रन्थ तथा शाखा आप सब को ही वेद मानते हैं तो इस का अर्थ यह है कि आप के पास आपके वेद भी पूरे नहीं हैं वे भी अधूरे हैं। जब आपके धर्म्म ग्रंथ ही अधूरे हैं तो आपका धर्म्म पूरा कैसे माना जा सकता है। यह ऋषि दयानन्द जी की ही कृपा है कि उन्हों ने आप को अधूरे पन से निकाल कर पूरा बना दिया। क्योंकि बिना मूल वेद के निश्चय किये आपके धर्म्म में पूरा ही न होना था और शाखा आपके मत में अनन्त हैं। महाभाष्य ने तो ११३१ बतलाई हैं किंतु आपके पांचवें वेद महाभारत ने २२१०६ वेदों की शाखा वर्णन की हैं जैसा कि—

हिरण्य गर्भो द्युतिमान्य एष छन्दसि स्तुतः।
योगै सं पूज्यते नित्यं स एवाहं भुविस्मृतः ॥६३॥
एकविंशतिसाहस्रं ऋग्वेदं मां प्रचक्षते।
सहस्रशाखंयत् साम ये वै वेद विदोजनाः ॥
गायन्त्यारण्य के विप्रा मद्भक्तास्ते हि दुर्ल्लभाः॥६४॥
षट्पंचाशतमष्टौ च सप्तत्रिंशतमित्युत।
यस्मिञ्छाखा यजुर्वेदे सोऽहमाध्वर्य्यवे स्मृतः ॥६५॥
पंचकल्पमथर्वाणां कृत्याभिः परिबृंहितम्।
कल्पयन्ति हि मां विप्रा अथर्वाणविदस्तथा ॥६६॥
शाखा भेदश्च ये के चिद्याश्च शाखा सुगीतयः।
स्वरवर्ण समुच्चाराः सर्वांस्तान् विद्धिमत् कृतान् ॥६७॥

(महा० शांति० अ० ३४२)

भावार्थ—प्रकाशमय पदार्थों को धारण करने वाला प्रकाश स्वरूप जो यह वेदों में स्तुति किया गया है। और नित्य योग द्वारा जिसकी पूजा की जाती है। वह मैं ही पृथिवी में स्मरण किया जाता हूं ॥९३॥ इक्कीस हज़ार ऋग्वेद मुझ को ही वर्णन करता है और एक हजार शाखा वाले साम वेद को जो निश्चय से वेद के जानने वाले मेरे भक्त ब्राह्मण जंगल में गाते हैं वे भी दुर्लभ हैं ॥९४॥ छप्पन और और आठ तथा सैंतीस भी यजुर्वेद में शाखा हैं वह मैं ने अध्वर्यु के लिये नियत की हैं ॥९५॥ पांच कल्प अथर्व वेद जो क्रियाओं से परिपूर्ण है अथर्व वेद के जानने वाले ब्राह्मण मुझ को ही कल्पना करते हैं॥९६॥ जो कोई भी शाखाओं के भेद हैं और जो शाखाओं में गायण हैं और जो उन में स्वर तथा वर्ण का उच्चारण है उन सब को मेरे ही बनाये हुए समझना चाहिये ॥९७॥

यदि आप को यह गिनती बहुत प्रतीत होती हो और आप "एक विंशति साहस्रम्" में 'सहस्र' शब्द को केवल "एक विंशति" के साथ स्वार्थ में ही प्रयोग समझ लें तो ऋग्वेद की इक्कीस ही शाखा मानी जा सकती है। जो महाभाष्य के कथन के अनुकूल हैं और यह भी संभव है कि महाभारत ने महाभाष्य के "एकविंशतिधाबह्वृच्यं" का ही अनुवाद "एक विंशति साहस्रं" का प्रयोग कर दिया हो। और 'बहु' के स्थान में 'सहस्र' का प्रयोग कर दिया हो। और संस्कृत साहित्य में 'सहस्र' शब्द का प्रयोग केवल स्वार्थ में आता है जैसे कि—

विश्वामित्र से दशरथ ने कहा कि—

षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥१०॥

(बा.रामी० बाल० स० २०)

हे विश्वामित्र ! मुझे पैदा हुए साठ हज़ार वर्ष हो गये । १० ।

यहां पर षष्टि के साथ सहस्र शब्द केवल स्वार्थ में ही प्रतीत होता है क्योंकि दशरथ की आयु ६० वर्ष संभव तथा ६०००० वर्ष असंभव प्रतीत होती है ।

राम के राज्य में जिस ब्राह्मण का बालक मर गया था वह ब्राह्मण कहता है कि—

अप्राप्त यौवनं बालं पंचवर्ष सहस्रकम् ।
अकाले कालमापन्नंमम दुःखाय पुत्रक ॥५॥

( बाल्मी० उत्तर० स० ७३ )

भाषार्थ—जवानी को प्राप्त न हुआ पांच हज़ार वर्ष का बालक अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया । हे पुत्र ! यह मेरे दुःख के लिये है ॥५॥

यहां पर साफ साबित है कि "पंच" शब्द के साथ 'सहस्र' शब्द केवल स्वार्थ में ही है । क्योंकि पांच वर्ष वाले को बालक कहा जा सकता है किंतु ५००० वर्ष आयु वाले को बालक नहीं कहा जा सकता ।

इन दोनों प्रमाणों से साबित है कि "एकविंशति साहस्रं" में भी "साहस्र" शब्द केवल स्वार्थ में ही है और यह महाभाष्य के पाठ "एक विंशतिधा बहवृचं" का ही महाभारत ने अनुवाद कर दिया है । क्योंकि बहु और सहस्र शब्द संस्कृत में पर्य्याय वाची हैं जैसा कि—

सर्वं वै सहस्रम् (शतपथ कांड ७ अ० ५।२।१३)

सहस्र शब्दो बहुत्ववाची (महीधर यजु० ३१।१)

अतः महाभारत भी ऋग्वेद की २१ ही शाखा माना है । इस हिसाब से महाभारत के लेखानुसार चारों वेदों की ११२७

शाखा बनती हैं। क्योंकि अथर्वेद की महाभारत ने पांच शाखा मानी हैं।

अतः ऋषि दयानन्द जी का चार को मूल वेद मान कर ११२७ को शाखा मानना व्यास के मतानुसारभी ठीक ही है।

(५०६) प्रश्न—ये समस्त शाखाएँ ईश्वर के अवतार ब्रह्मा के द्वारा संसार में प्रकट हुई हैं। इन में से स्वामी दयानन्द जी चार को तो ईश्वर कृत और ११२७ को ब्रह्मादि ऋषियों की बनाई लिखते हैं। स्वामी जी की दोनों बातें सर्वथा असत्य हैं। निराकार ईश्वर ने साकार ब्रह्मावतार बना कर कहें हैं फिर चार शाखा निराकार ने वेद का एक अक्षर भी नहीं बनाया। सभी वेद निराकार ने बनाई। इस वेद नाशक चालबाज़ी को कोई कैसे सच्ची साबित करेगा। पृ० ७८ पं० ५।

उत्तर—परमेश्वर कभी अवतार धारण नहीं करता क्योंकि वेद ने ( "अकायम्" यजु० ४०। ८ ) कह कर ईश्वर के अवतार का खण्डन किया है और युक्ति से भी अवतार सिद्ध नहीं होता क्योंकि सर्वज्ञ सर्वव्यापक ईश्वर का शरीर धारण करके एक देशी अल्पज्ञ बनना असम्भव ही है। अतः ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान ब्रह्मादि ऋषिमुनियों के बनाये हुये हैं। इसी कारण से प्रत्येक शाखा किसी ऋषिमुनि के नाम से प्रसिद्ध है। किंतु चारों वेद किसी ऋषि मुनि के नाम से प्रसिद्ध नहीं अपितु ईश्वर के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। अतः ऋषि दयानन्द जी ने ईश्वर कृत चारों वेदों को स्वतः प्रमाण मान कर ऋषि मुनि कृत ११२७ शाखाओं को परतः प्रमाण माना है। निराकार सर्वव्यापक परमात्मा को किसी काम करने के लिये साकार होने की या

अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है। व्यापक परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों के आत्मा में अपने ज्ञान वेद का प्रकाश कर दिया। उन्होंने लोगों में उनका प्रचारादि किया। स्वामी जी का यह आर्य्य जाति पर बड़ा भारी उपकार है। कि स्वामी जी ने शाखाओं ब्राह्मणों और पुराण आदि में गुम हुए वेदों को आर्य्य जाति के सामने निकाल कर सूर्य की भांति प्रकाशित कर दिया। अब आपकी यह चालबाज़ी न चल सकेगी कि ऐराग़ैरानत्थू खेरा ने जो भी संस्कृत में वेद विरुद्ध स्वार्थ परक पुस्तक बना दिया उसी को स्वतः प्रमाण मानकर जनता को अन्धकार में धकेल दिया। क्योंकि अब वेदों की कसौटी मौजूद है। अब जनता प्रत्येक ग्रन्थ को वेद की कसौटी पर परख कर वेदानुकूल का ग्रहण तथा वेद प्रतिकूल का परित्याग करने लगी हैं। इस दयानन्द युग में आपकी "ब्रह्म वाक्यं प्रमाणम् संस्कृत वाक्यं प्रमाणम्" वाली वेद नाशक चालबाज़ी का चलना असम्भव हैं।

(५१०) प्रश्न—ब्रह्मा ऋषि आज तक कोई हुआ ही नहीं जब ब्रह्मा ऋषि ही नहीं हुआ फिर उसके द्वारा शाखाओं का निर्माण मान लेना चालबाज़ी बनाकर आर्य्य समाजियों की आंखों में धूल झोंकना है। पृ० ७८ प० १०।

उत्तर—धन्य हो सिद्धान्त विवेचन इसी का नाम है। श्रीमान् जी आप तो कहते हैं कि ब्रह्मा कोई ऋषि ही नहीं हुआ। भला मनुस्मृति में जो लिखा है कि—

अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्
दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थमृग्यजु साम लक्षणम् ॥ मनु० १।२३॥

यहाँ पर अग्नि आदि से वेदों का पढ़ने वाला ब्रह्मा क्या ऋषि न था तथा—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ श्वेताश्वे० अ० ३।१८॥

यहां जिसको परमात्मा ने पैदा किया और जिसके लिये अग्नि आदि के द्वारा वेद भेजे क्या वह ब्रह्मा ऋषि न था।

और श्रीमान् जी ब्रह्मा तो सैंकड़ों ऋषि हो चुके हैं, होते हैं और होंगे ब्रह्मा तो एक पदवी है जो चारों वेदों का जानने वाला हो उसी को ब्रह्मा कहते हैं और यज्ञ में उसको ब्रह्मा बनाकर बिठाया जाता है जैसा कि "ब्रह्मा त्वोवदति जात विद्याम् ॥ ऋ० १०।७१।११॥ का मन्त्र देकर यास्काचार्य्य ने लिखा है कि"

ब्रह्मा सर्व विद्यः सर्वं वेदितुमर्हति। ब्रह्मा
परिवृढ्ळः श्रुततो ब्रह्म परिवृढ्ळं सर्वतः ॥
(निरुक्त अ० १ खं० १)

ब्रह्मा उसको कहते हैं जो सर्व विद्याओं का जानने वाला हो जो सब कुछ जानने के योग्य हो। ब्रह्मा उसको कहते हैं जो तीनों विद्याओं को जानता हो और जो वेद को सब दिशाओं में फैलाने वाला हो। कहिये श्रीमान् जी! ये तो एक के स्थान में अनेकों ऋषि ब्रह्मा निकल आये इसी नियम के अनुसार युधिष्ठिर के यज्ञ में व्यास जी स्वयं ब्रह्मा बने क्योंकि वे चारों वेदों के ज्ञाता थे जैसा कि—

ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपानयत्।
वेदानिव महाभागान् साक्षान्मूर्तिमतो द्विजान् ॥ ३३ ॥
स्वयं ब्रह्मत्वंमकरोत्तस्य सत्यवती सुतः।

धनंजयानामृषभः सुसामा सामगो ऽभवत् ॥ ३४ ॥
याज्ञवल्क्यो बभूवाथ ब्रह्मिष्ठो ऽध्वर्यु सत्तमः ।
पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितो ऽभवत् ॥ ३५ ॥
( महा० सभा० अ० ३३ )

भावार्थ—हे राजन् ! तब व्यास जी ने ऋत्विज नियत किये। वे ऐसे ब्रह्माण थे गोया साक्षात् वेद ही मूर्तिमान मौजूद हैं ॥ ३३ ॥ उस यज्ञ के ब्रह्मा स्वयं सत्यवती के पुत्र व्यास बने ॥ ३४ ॥ धनंजयों में श्रेष्ठ सुसाम को उद्गाता बनाया ॥ ३४ ॥ और ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य को अध्वर्यु बनाया। और वसु के पुत्र पैलो को धौम्य के सहित होता बनाया ॥ ३५ ॥

इससे यह साबित है कि प्रत्येक चारों वेदों का जानने वाला ब्रह्मा कहा सकता है। और स्वामी जी ने लिखा है कि ११२७ शाखा ब्रह्मा आदि ऋषियों की बनाई हैं। स्वामी जी का यह लेख सर्वथा सत्य है कि वेद के ज्ञानी ऋषिओं ने ये वेद के व्याख्यान किये हैं जिनको शाखा कहा जाता है। अतः ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद स्वतः प्रमाण तथा ऋषिकृत होने से शाखा परतः प्रमाण हैं ।

(५११) प्रश्न—शाखाओं में वेद का व्याख्यान बतलाना सिद्ध करता है कि दयानन्द ने कभी शाखा आंख से नहीं देखी। कोई आर्य्य समाजी किसी शाखा में वेद का व्याख्यान सिद्ध नहीं कर सकता। पृ० ७८ पं० १३।

उत्तर—वाहवा कैसा पते की कही । स्वामी दयानन्द जी ने तो शाखा आंख से नहीं देखी किन्तु आपने शाखाओं को आंख से ज़रूर देखा है। क्योंकि आपकी आंखों की दृष्टि स्वामी

जी की दृष्टि से बहुत ज़ियादा तेज़ जो ठहरी। शायद किसी ने "आँखों से अंधे नाम नैन सुख" यह मिसाल कहीं आप जैसों के लिये ही तो नहीं घड़ी। अच्छा भला यह तो बतलाइए कि यदि ये ११२७ शाखा मूल मन्त्र संहिता वेद के व्याख्यान नहीं हैं तो यह हैं क्या वस्तु! तो क्या ये ११२७ भी स्वयं वेद ही हैं औरआपके मत में कुल ११२१ वेद हैं और उनमें से चंद एक तो मिलते हैं और बाकी बहुत से गुम हैं। तो इस के अर्थ यह हैं कि आपका अनुमान ९० फीसदी वेद गुम है आप के पास अनुमान से केवल १० फीसदी वेद मौजूद है। जिस कौम की धर्म्म पुस्तक ९० फीसदी गुम तथा १० फीसदी वेद मौजूद हो उस कौम के धर्म का अल्लाह ही बली है। यदि वह आज है तो निश्चित कल न होगी। अच्छा एक और बात बताने की कृपा करें कि जिन चार को स्वामी जी ने स्वतः प्रमाण मूल वेद माना है बाकी की ११२७ शाखायें उन चार से विरुद्ध हैं तो परस्पर विरोध के कारण ११३१ ही प्रमाण मानने के क़ाबिल नहीं हैं। फिर तो आप के सारे ही धर्म्म पुस्तक का क़तई सफाया है। और यदि यह कहो कि बाकी की ११२७ शाखा उन चार के अनुकूल हैं तो उन ११२७ में क्या उन्हीं सिद्धान्तों का बार बार वर्णन किया है। जो चार में मौजूद हैं या उन चार से अधिक विशेष सिद्धान्तों का वर्णन उन ११२७ में मौजूद है। यदि कहो कि उन ११२७में इन से बहुत अधिक विशेष सिद्धान्तों का वर्णन है। तो उन सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक सूची प्रकाशित करने की कृपा करें जिन का मूल इन चार में तो क़तई विद्यमान नहीं है परन्तु उन ११२७ में है और यदि कहो कि उन ११२७ में भी उन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन है जो इन चार में

है तो प्रश्न यह होगा कि जिन सिद्धान्तों का वर्णन इन चारों में मौजूद है उन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन उन ११२७ में मूल रूप से वर्णन किया गया है या विस्तार रूप से। यदि कहो कि उन ११२७ में उन्हीं सिद्धान्तों का मूल रूप से वर्णन किया गया है कि जिन सिद्धातों का वर्णन मूल रूप से इन चार में भी मौजूद है तो फिर बतलाइये कि जिन सिद्धान्तों का वर्णन मूल रूप से इन चार में ही मौजूद था उन्हीं सिद्धान्तों को मूल रूप से उन ११२७ में वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी। ऐसा होने पर तो ११२७ पर पुनरुक्ति दोष लग जावेगा और वे ११-२७ अप्रमाण हो जावेंगी और यदि यह कहो कि जिन सिद्धान्तों का इन चार में मूल रूप से वर्णन है उन्हीं सिद्धान्तों का उन ११२७ में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। तो स्वामी जी का कहना सर्वथा सत्य है कि ये ११२७ शाखा मूल मन्त्र संहिता चार वेदों के व्याख्यन है और वे वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं। अन्यथा नहीं। शाखाओं के व्याख्यान होने के बारे में स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा है कि—

"सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धरके व्याख्या करते हैं जैसे तैत्तरीय शाखा में "इषेत्वोर्जेत्वेति" इत्यादि प्रतीकें धरके व्याख्यान किया है ( सत्यार्थ० समु० ७ )

इस प्रमाण को आप श्रद्धा के लड्डू की भांति हड़प कर गये और फिर हम से ही शाखाओं के व्याख्यान होने का प्रमाण मांगने लगे। चोरी और चालबाज़ी इसी का नाम है।

(५१२) प्रश्न—जिन चार ग्रन्थों को दयानन्द असली वेद मानते हैं। वे असली वेद नहीं हैं। वरना वे भी क्रम से शाखायें

हैं। जिसको स्वामी दयानन्द जी यजुर्वेद कहते हैं वह यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा है। और जिसको ऋग्वेद मानते हैं। वह ऋग्वेद की शाकल शाखा तथा जिस को साम वेद लिखते हैं वह साम वेद की कौथुमी शाखा इसी प्रकार जिसको अथर्व वेद समझा दिया जाता है वह अथर्व वेद की शौनकी शाखा है। जिस प्रकार ये चारों शाखायें शाखा रहने पर भी संहितायें हैं। फिर क्या कारण है कि ११२७ शाखाओं को दयानन्द जी प्रमाण नहीं मानते और चार को मानते हैं। पृ० ७८ पं १६।

उत्तर—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व वेद, ये चारों वेदों की मूल मन्त्र संहिता हैं। ये शाखा नहीं हैं। अपितु ये ईश्वरोक्त मूल वेद हैं। और इन के ये शाखा रूप से नाम भी पोप पाखण्ड की कल्पना ही हैं। शेष सब शाखायें इन चारों के व्याख्यान हैं। अतः वे सब संहिता कहलाने के योग्य नहीं हैं। और चारों मूल वेद ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण तथा ११२७ शाखा ऋषि कृत होने से परतः प्रमाण हैं।

कहिये महाराज! यदि ये चारों असली वेद नहीं हैं। तो वे असली वेद कौन से हैं। जरा उन असली वेदों का नाम तो लिख दिया होता। या वे चारों ही लुप्त हैं। और वेद दुनिया में हैं ही नहीं आखिर कोई बात तो बताइये। और फिर यदि ये चारों भी शाखा ही हैं और असली वेद नहीं हैं तो आप ने अपनी सारी पुस्तक में इन चारों के प्रमाण वेद के नाम से क्यों दर्ज किये हैं। आप को इनके प्रमाण उपरोक्त शाखाओं के नाम से ही दर्ज करने चाहियें थे, आपका अपनी किताब में इन चारों के प्रमाण शाखा परक नाम से न देना तथा वेद के नाम से देना इस बात को साबित करता है कि आप भी इनको ही असली

चार वेद मानते हैं। किंतु पौराणिकों की आंखों में धूल झोंकने के लिये इधर उधर की वे असूली बातें बना रहे हैं।

(५१३) प्रश्न—दयानन्द और आर्य्यसमाजी इन चार शाखाओं को भी प्रमाण नहीं मानते। इनके मन्त्र आगे रखकर अर्थ मनमाने करते हैं। न देवता का ख्याल करें न प्रकरण को देखें। पृ० ७६ पं० ३०।

(उत्तर) आपने उन आर्य्य समाजियों के नाम नहीं लिखे। जो चारों वेदों को प्रमाण न मानते हों योंही मन्त्र आगे रखकर देवता तथा प्रकरण का विचार किये विना अंड बंड अर्थ कर देते हो। और न ही आप ने अपनी प्रतिज्ञा की सिद्धि में कोई प्रमाण दिया है। अतः विना प्रमाण के आपकी प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल तथा मिथ्या है। हां हम यह कह सकते हैं कि आपने अपनी किताब में "उदीर्ष्व नार्यभि जीव लोकम्" तथा "आघाता गच्छानुत्तरायुगानि" "तदेवाग्निः" "यस्या वै मनुवैवस्ता" इत्यादि २ सैंकड़ों वेद मन्त्रों को योंहीं आगे रखकर देवता और प्रकरण का विचार किये बिनाही अंड बंड मनमाने अर्थ करडाले हैं। जिनका हमने स्थान २ पर खंड न करके देवता तथा प्रकरणानुसार सत्य अर्थ लिख दिये हैं। इस प्रकार की धोके बाज़ी करना आर्य्यसमाजियों का काम नहीं है। अपितुयह काम आप जैसे पौराणिल पाखंडी पोपों का है।

(५१४) प्रश्न—"यजनाद्यजुः" यजुर्वेद में यजन यज्ञों का वर्णन है। इसी से इसका नाम यजुर्वेद रक्खा गया है। शतपथ और कात्यायनि श्रौत सूत्र में यजुर्वेद के चालीस अध्याय का वर्णनीय विषय है। स्वामी जी ने अपने भाष्य में वेद के इन दर्श, पौर्ण मास, इष्टि, रुद्रवर्णन; शतरुद्रि,

सौत्रामणि वाजपेय, राजसूय, पुरुषमेध, सर्वमेध, अश्वमेध प्रभृति समस्त यज्ञों को यजुर्वेद से निकाल डाला। पृ० ८०पं ८।

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा झूठ है कि स्वामी जी ने यजुर्वेद के भाष्य से यज्ञों को निकाल दिया है। हां यह बात दूसरी है। कि आप यज्ञ के कुछ अर्थ समझते हैं और स्वामी जी कुछ और आप तो यज्ञों में अश्व, गौ, बकरा, पुरुष, आदि पशुओं को मारकर उनकी चरबी तथा मांस से हवन करने को अश्वमेध, तथा नर मेधादि यज्ञ मानते हैं। किन्तु स्वामी जी यज्ञ का अर्थ २८—" यज्ञ " उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथा योग्य शिल्प अर्थात् रसायण जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान अग्नि होत्रादि जिनसे वायु वृष्टि जल औषधि को पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाता है। उसको उत्तम समझता हूं॥ ( सत्यार्थ० मन्तव्य न० २८ ) यह समझते हैं। और आपके अर्थ वेद के विरुद्ध हैं क्योंकि "ऋचांत्वः पोषम्" ऋ० १०।७१।११ " पर निरुक्त लिखते हैं कि "अध्वरइति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः" ( निरु० अ० १ खं ८ )

अध्वर यज्ञ का नाम है। ध्वरति धातु हिंसा अर्थों में है। जिस कर्म में हिंसा का प्रतिषेध हो उस कर्म का नाम अध्वर या यज्ञ है। और स्वामी जी का अर्थ ठीक है जैसा कि—

"यज्ञ-देव पूजा सगतिकरण- दानेषु" (व्याकरण)

यज्ञ धातु के अर्थ देव पूजा संगतिकरण और दान हैं और फिर स्वामी जी लिखते हैं कि—

४७—यज्ञ—जो अग्नि होत्र से लेके अश्वमेधपर्य्यन्त वा जो शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान जो कि जगत् के उपकार के

लिये किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं (आर्य्योद्देश्य० रत्न० ४७) इत्यादि २ यज्ञ के अर्थों को सामने रख कर सारे यजुर्वेद का किया है। हाँ ऐसे पौराणिक कोल्पनिक यज्ञों को कि जिनमें कि—

(१) गणानां त्वा यजु० २३।१९" महिषी अश्व समीपे शेते। हे अश्व गर्भधम्। गर्भदधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहं आ अजनि आकृष्य क्षिपामि। तं च गर्भधं रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसी (महीधर)

(२)"ता उभौ चतुरः यजु० २३।२०" अश्व शिश्नमुपस्थे कुरुते वृषावाजीति महिषी स्वयमवाश्वःशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति (महीधर)

इस प्रकार के पौराणिक भाव विद्यमान हैं। उनका स्वामी जी ने सर्वथा खंडन किया है। क्या आप इसी प्रकार के अर्थों को वास्तविक अर्थ मानते हैं।

(५१५) प्रश्न—स्वामी जी के भाष्य में तो बिजली से मशीनें तय्यार करनी, तार और रेल, फौज तथा सेनापति अध्यापक, अध्यापिका, उपदेशक उपदेशिका स्त्रियों की फौज उल्लुओं का पालना ये विषय है। पृ० ८१ पं० १७।

उत्तर—आप के महीधर आदि यजुर्वेद भाष्य में यजमान पत्नी को घोड़े के साथ जोड़कर न जाने किस प्रकार की बिजली पैदा करने का यत्न किया गया है। स्वामी जी ने इस प्रकार के वेद विरुद्ध पौराणिक कारखानों का खण्डन करके यजुर्वेद का यथार्थ अर्थ कर दिया है। देखिये वेद स्वयं यज्ञ शब्द के क्या अर्थ करता है। जैसा कि—

अयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पा॰ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पता-मात्मायज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्प-ता॰ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्प ताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजायते प्रजा अभूम वेट् स्वाहा॥ (यजु० १८। १६॥

इस मन्त्र में किये गये यज्ञ शब्द के अर्थों को देख कर बतला देवें कि ऋषि दयानन्द का अर्थ क्या इन अर्थों से बाहर है। हरगिज़ भी नहीं अतः स्वामी दयानन्द जी का किया हुआ यजुर्वेद का अर्थ वेदानुकूल तथा पौराणिक भाष्यकार महीधर आदि का अर्थ स्वयं वेद के विरुद्ध और युक्ति के विरुद्ध है।

## भू-भ्रमण

(५१६) प्रश्न—वेद पृथिवी को अचला मानता हुआ सूर्य्यादि ग्रह पंजरों का पृथिवी के चारों तरफ भ्रमण मानता है। पृ०२७० पं० १०।

उत्तर—आपकी प्रतिज्ञा क़तई ग़लत है। क्योंकि वेद का सिद्धान्त है कि पृथिवी भी घूमती है और सूर्य्य आदि समस्त तारागण भी घूमते हैं। इन में से कुछ तो ऐसे हैं जोकि गाड़ी के पहिये की भांति स्वयं भी अपने गिर्द घूमते हैं। और दूसरों के चारों तरफ भी घूमते हैं। और कुछ ऐसे हैं कि वे अपनी परिधि पर स्वयं ही घूमते हैं किसी के गिर्द चारों तरफ नहीं घूमते। किन्तु घूमते सब हैं क्योंकि बिना घूमने

और फिरने के कोई वस्तु आकाश में बहुत समय तक नहीं ठहर सकती। जैसे थाली के घुमाने वाले थाली को चक्र देकर आकाश में फैंक देते हैं तो थाली काफ़ी देर तक घूमती हुई आकाश में ठहरी रहती है। यदि थाली को बिना घुमाये छोड़ा जावे तो वह तत्क्षण पृथिवी पर गिर पड़ती है। अतः पृथिवी पहिये की भाँति अपने गिर्द भी घूमती है जिससे दिन रात पैदा होते हैं और सूर्य्य के गिर्द भी घूमती है। जिससे ऋतु परिवर्त्तन होता रहता है। यही वेदादि शास्त्रों का सिद्धान्त है।

(५१७) प्रश्न—"येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा यजु० ३२।६" यहां वेद ने पृथिवी को "दृढ़ा" शब्द से निश्चल वर्णन किया है। पृ० २७० पं० १२।

उत्तर—इस मन्त्र में "दृढ़ा" शब्द के अर्थ निश्चल नहीं है। अपितु यहां पर "दृढ़ा" शब्द के अर्थ "कठोर" हैं। और "दृढ़ा" शब्द के अर्थ निश्चल होते भी नहीं, देखिये अमर कोश ने साफ तौर से दृढ़ का अर्थ कठोर किया है जैसा कि—"कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढ़म्" ॥७६॥ (अमर० २१।७६)

मन्त्र का वास्तव अर्थ इस प्रकार से है कि :—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥
(यजु०३२)

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर ने तीव्र तेज वाले प्रकाशयुक्त सूर्य्य आदि पदार्थ और भूमि को कठिन अर्थात् कठोर बनाया है। जिसने सुख को धारण किया, जिसने सब

दुखों से रहित मोक्ष धारण किया। जो मध्यवर्ती आकाश में वर्तमान लोक समूह का विविध मान करने वाला है। उस सुख स्वरूप स्वयं प्रकाशमान सकल सुखदाता ईश्वर के लिये हम लोग प्रेम भक्ति से प्राप्त होवें ॥६॥

और देखिये आपके टीका कार महीधर भी दृढ़ा का अर्थ निश्चल नहीं मानते जैसा कि—

सर्व प्राणिधारणं वृष्टिग्रहणं अन्ननिष्यादनं चेति
भूमेर्दार्ढ्यम् (यजु० ३२।६ महीधर)

सब प्राणियों का धारण करना, वर्षा का ग्रहण करना, अन्न निष्पादन ही पृथिवी का दृढ़ पन है।

अतः आपका इस मन्त्र से पृथिवी को अचला सिद्ध करना सर्वथा निर्मूल है। कहिये महाराज! यदि यह पृथिवी अचला है तो विना घूमने के यह आकाश में कैसे ठहरी हुई है। हाँ आपके हां तो यह पृथिवी हाथी के शिर पर ठहरी हुई लिखी है जसे कि—

सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन।
धारयामास शिरसा विरुपाक्षो महागजः ॥१४॥
यदा पर्वणि काकुत्स्थ विश्रामार्थं महागजः।
खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पास्तदा भवेत् ॥१५॥
(बाल्मी० बाल० स० ४०)

हे राम! इस वन पर्वत के सहित सम्पूर्ण पृथिवी को विरूपाक्ष हाथी ने सिर से धारण कर रक्खा है ॥१४॥ हे राम! जब पर्व के दिन आराम लेने के लिये तकलीफ से वह हाथी सिर को हिलाता है तब भूंचाल आता है ॥१५॥

तो फिर कहिये महाराज ! वह हाथी किस चीज़ पर है। और पृथिवी के एक देश में भूंचाल क्यों आता है। सारी पृथिवी पर पर्व के दिन एक दम आना चाहिये। यह है सनातन धर्म की भूगोल विद्या जिस को मानते हुये आप फूले नहीं समाते।

( ५१८ ) प्रश्न—"आकृष्णे न रजसा इत्यादि यजु० ३३।४३" इस मन्त्र में सूर्य्य को पृथिवी के गिर्द घूमने का वर्णन है। पृ० २७० पं० १६।

उत्तर—इस मन्त्र में सूर्य्य के पृथिवी के गिर्द घूमने का नाम तक भी नहीं है और न ही सूर्य्य पृथिवी के गिर्द घूम सकता है। जैसा कि स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है किन्तु आप ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया—"जो लोग कहते हैं कि सूर्य्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती है वे सब अज्ञ हैं क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। अर्थात् सूर्य्य का नाम ( ब्रघ्न ) पृथिवी से लाख गुणा बड़ा और क्रोड़ों कोस दूर है। जैसे-राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती है। और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता। वैसे पृथिवी के घूमने से यथा योग्य दिन रात होता है, सूर्य्य के घूमने से नहीं" और सूर्य्य का पृथिवी के गिर्द घूमना वेद के भी विरुद्ध है जैसा कि:—

या गौर्वर्तनिं पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनी ख.रतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते॥
( ऋ० १०।६५।६ )

भावार्थ—जो पृथिवी अपनी कक्षा में सूर्य्य के चारों ओर घूमती है। वह पृथिवी अनेक प्रकार के रस,फल, फूल, तृण,और

अन्न आदि पदार्थों से सब प्राणियों को निरन्तर पूर्ण करती है। जो विद्या आदि गुणों को देने वाला परमेश्वर है। उसी के जानने के लिये सब जगत दृष्टान्त है। और जो विद्वान लोग हैं उन को उत्तम पदार्थों के दान से अनेक सुखों को भूमि देती है। और पृथिवी सूर्य्य वायु और चन्द्र आदि गौ नाम वाले पदार्थ ही सब प्राणियों की वाणी का निमित्त भी हैं ॥२॥

इस मन्त्र में साफ तौर से पृथिवी का सूर्य्य के गिर्द घूमना वर्णन किया है अतः सूर्य्य का पृथिवी के गिर्द घूमना वेद तथा युक्ति विरुद्ध होने से मिथ्या ही हैं।

आपके मन्त्र के वेदानुकूल यथार्थ अर्थ इस प्रकार से हैं कि—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्य मयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यत् ॥

( यजु० ३३।४३ )

भाषार्थ—प्रकाश स्वरूप सूर्य्य आकर्षण गुण के साथ वर्तमान लोक लोकान्तरों को अपनी अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ और सब प्राणि अप्राणियों में अमृत रूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करता हुआ और प्रकाशमय और रमणीय स्वरूप से पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करता हुआ अपनी धुरी पर घूमता है ॥४३॥

रामायण तथा महाभारत में भी पृथिवी का ही घूमना लिखा है।

या चेयं जगतो माता सर्वलोक नमस्कृता।
अस्याश्च चलनं भूमें र्दृश्यते कोशलेश्वर ॥६॥

(बाल्मी० अरण्य० स० ६६ )

एत देवं विधं दृष्ट माश्चर्य्यं तत्र मे द्विज ॥५॥
सूर्य्येण सहितो ब्रह्मन् पृथिवी परिवर्तते ॥६॥
( महा० शान्ति० अ० ३६३ )

भावार्थ—सब लोकों से नमस्कार करने योग्य जो यह जगत् की माता है। हे कोशलेश्वर! इस भूमि का भी चलना नज़र आता है ॥६॥ हे ब्राह्मण! वहाँ पर यह इस प्रकार से मैंने आश्चर्य्य देखा कि सूर्य्य के समेत पृथिवी घूमती है ॥५—६॥

इससे साबित है कि पृथिवी सूर्य्य के गिर्द घूमती है, सूर्य्य पृथिवी के गिर्द नहीं घूमता, अपितु सूर्य्य अपनी परिधि पर घूमता है।

( ५१६ ) प्रश्न—निघण्टु ने पृथिवी को "निर्ऋति" लिखा है। "निर्ऋति" का अर्थ है गमन रहित ( चाल शून्य ) यदि पृथिवी चलती होती तो निघण्टु इस को "निर्ऋति" कैसे लिखता। पृ० १७१ पं० ३।

उत्तर—या बेईमानी तेरा आश्रय। जो कुछ मन में आया घर से ही लिख मारा। कहिये महाराज! "निर्ऋति" के अर्थ गमन रहित, चाल शून्य कहाँ लिखे हैं। क्या इस प्रकार की चाल बाज़ियों से कभी वैदिक सिद्धान्त मिथ्या हो सकता है। श्रीमान् जी निघण्टु ने जहां पृथिवी का नाम "निर्ऋति" लिखा है वहां पर "गौ" भी पृथिवी का नाम लिखा है। और निरुक्त ने इन दोनों शब्दों के अर्थ भी लिखे हैं। जो कि आप ने अपने स्वभावानुसार चुरा लिये हैं। हम वे अर्थ नीचे लिख देते हैं। जैसाकि :—

गौः। निर्ऋतिः ॥१॥ ( निरु० अ० २ खं० ५ )

गौरिति पृथिव्या नाम धेयम्। यद् दूरङ्गता भवति।

यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति ॥२॥ ( निरु० अ० २।५।२ )

तत्र निर्ऋतिं निरमणादृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरित्रा ॥३॥

( निरु० अ० २ खं० ७ )

भाषार्थ—गौ यह पृथिवी का नाम है। जो यह घूमने के कारण दूर २ चली जाती है, इस लिये उसका नाम गौ है। और चूंकि प्राणि इस में चलते फिरते हैं इसलिये पृथिवी का नाम गौ है ॥२॥

निरमणात् निर्विष्टानि रमन्तेऽस्यां भूतानीति निर्ऋतिः पृथिवी इतरा कृच्छ्रापत्तिः दुःख संज्ञिका, निर्ऋतिः पाप्मा। एका निर्विष्टानां भूतानां रमयित्री, एका पुनः कृच्छ्रमाया दयित्री ( दुर्गाचार्य्य )।

चूंकि इस में प्राणि आनन्द पाते हैं इस लिये पृथिवी का नाम निर्ऋति है। दूसरे दुःख संज्ञावाली पापिनी होने से पृथिवी रहने वाले प्राणियों को आनन्द देती है। और एक पृथिवी दुःखों के सम्पादन करने वाली है। इसलिये पृथिवी का नाम निर्ऋति है। और अमर कोश ने भी निरुक्त के दूसरे अर्थ की ताईद की है कि—

अलक्ष्मीस्तु निर्ऋतिः( अमरकोष ६।२ )

नरक की अशोभा का नाम निर्ऋति है ॥२॥ कहिये महाराज! इस गलत बयानी पर शरम तो नहीं आती।

( ५२० ) प्रश्न—यथोष्णतार्कानल योश्च शितता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि। मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा वत वस्तु शक्तयः॥ ( सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय )

जैसे सूर्य्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतता, जल में गति। पाषाण में स्वभाव से कठिनता है। ऐसे ही स्वभाव से

पृथिवी अचल है। वस्तुओं की शक्ति विचित्र है॥ इस प्रमाण में पृथिवी को स्वभाव से अचला माना है। पृ० २७१ पं० ६।

उत्तर—आपने ऊपर वेद का नाम लिख कर नीचे सिद्धान्त शिरोमणि का प्रमाण दे दिया। क्या सिद्धान्त शिरोमणि वेद है। यदि नहीं तो वेद कहकर इसका प्रमाण देना प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान है या नहीं। और फिर सिद्धान्त शिरोमणि का भी अचला कहने से यह अभिप्राय नहीं है कि पृथिवी गति शून्य है। अपितु सिद्धान्त शिरोमणि का यह अभिप्राय है कि पृथिवी अपने नियम में अचला है अर्थात् वह नियमानुसार घूमती है नियम को नहीं तोड़ती। जैसे कि—"ध्रुवा स्त्री पतिकुले इव" इत्यादि मन्त्रों में ध्रुवा का अर्थ "नियमानुकूल चलने वाली" है न कि गति शून्य। क्योंकि सिद्धान्त शिरोमणि में इस शंका का समाधान करते हुए कि "यदि पृथिवी घूमती है तो हमको प्रतीत क्यों नहीं होती" निम्न श्लोक दिया है कि—

कुलाल चक्रभ्रमिवाम गत्या यान्तो न कीटा इव भांति यान्तः॥

( सिद्धान्त शिरोमणि )

जैसे कुम्हार के घूमते हुए चाक पर बैठे हुए कीड़े उसकी गति को नहीं जान सकते। ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई ज्ञात नहीं होती॥ फिर सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है कि—

भपञ्जरः खेचर चक्रयुक्तो भ्रमत्यजस्रं प्रवहानि लेन।
यान्तो भचक्रे लघुपूर्वगत्या खेटास्तु तस्या पर शीघ्रगत्या॥

( सिद्धान्त शिरोमणि )

प्रवह शक्ति के कारण सब तारा गण सहित ग्रहों के सदा घूमते रहते हैं। ये सब लघु गति से पूर्व की ओर को घूमते हैं। परन्तु शीघ्र गति से पश्चिम को जाते हुए दिखलाई देते हैं॥ इस विलोम गति अर्थात् ग्रहों के पश्चिम की ओर जाते हुए दीखने का कारण भूमि का अपनी धुरी पर घूमना है जैसे रेल गाड़ी में बैठा हुआ मनुष्य सड़क के किनारे को उलटी ओर को दौड़ते हुए देखता है।

इन प्रमाणों से साफ साबित है कि सिद्धान्त शिरोमणि पृथिवी का घूमना मानता है। और पृथिवी को अचला कहने से उसका अभिप्राय यह है। कि पृथिवी अपने नियम से चलाय मान नहीं होती अपितु अपनी परिधि पर नियम बद्ध घूमती है। इस पर भी यदि आप यही कहें कि नहीं सिद्धान्त शिरोमणि तो अचला कहने से पृथिवी को गति शून्य मानता है। तो हमारी दृष्टि में परस्पर विरोध तथा वेद विरुद्ध होने से उस का प्रमाण मानने के क़ाबिल नहीं है। क्योंकि वेद ने पृथिवी को "गौ" शब्द से गति शील माना है।

(५२१) प्रश्न—ब्रह्माण्ड मध्ये परिधि र्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा ॥३०॥
मन्दामरेज्य भूपुत्र सूर्य्य शुक्रेन्दु जेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्या धराघनाः ॥३१॥
मध्येसमन्तादण्डस्य भूगोलो व्यभ्रि तिष्ठति।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥
(सूर्य्य सिद्धान्त अ० १२)

भाषार्थ—ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि है उसे आकाश कक्षा कहते हैं। उस के मध्य में नक्षत्र मण्डल का भ्रमण होता

है। उस के नीचे यथाक्रम शनि, जीव, मंगल, सूर्य्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, एक से नीचे एक भ्रमण ( अपनी २ मध्यकक्षा में ) करते हैं उसके नीचे सिद्ध विद्याधर मेघ हैं। और चारों ओर से बीचों बीच ब्रह्माण्ड के मध्य ( केन्द्र में ) परब्रह्म परमेश्वर की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये आकाश में भूगोल सर्वतो भाव से स्थित है।

इस तिष्ठति पद से साबित है कि पृथिवी घूमती नहीं अपितु पृथिवी गतिशून्य है और शनि आदि इसके चारों तरफ घूमते हैं। पृ० २७१ पं० १२।

उत्तर—कहिये श्रीमान् जी! क्या सूर्य्य सिद्धान्त भी वेद है जो इसे वेद के नाम से पेश किया जा रहा है। और फिर इस प्रमाण में भी न तो यह लिखा है कि पृथिवी गति शून्य है और न हीं यह लिखा है कि सूर्य्य पृथिवी के चारों तरफ घूमता है। अपितु इस प्रमाण में यह दिखलाया है कि आकाश में सब लोक लोकान्तर अपनी अपनी परिधि पर घूम रहे हैं। किसी का स्थान पृथिवी की अपेक्षा ऊपर को है और किसी का स्थान पृथिवी की अपेक्षा नीचे को है और पृथिवी सब के मध्य में है। हां यदि आप "भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति" से यह सिद्ध करना चाहें कि पृथिवी स्थिर तथा गति शून्य है। तो फिर आपको "अधोऽधस्थाः" इस पद से भी यह मानना पड़ेगा कि सूर्य्य आदि लोक भी स्थिर और गति शून्य हैं। क्योंकि "तिष्ठति" और "स्थाः" ये दोनों एक ही धातु के प्रयोग हैं। रही "परिभ्रमन्ति" क्रिया। सो यह सब लोक लोकान्तरों के लिये प्रयुक्त हुई है कि जिसमें भूमि भी शामिल है। सारांश यह कि यहां पर सूर्य्य सिद्धान्त ने स्थान भेद का

प्रतिपादन किया है क्रिया भेद का नहीं। अतः साबित है कि सूर्य्य सिद्धान्त भी पृथिवी को सूर्य्यादि की भांति घूमने वाली ही मानता है, गति शून्य नहीं मानता। यदि आप अब भी यह कहें कि सूर्य्य सिद्धान्त पृथिवी को गति शून्य मानता है तो हमें कहना पड़ेगा कि सूर्य्य सिद्धान्त भी वेद के विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि वेद भूमि को गति शील और घूमने वाली मानता है

( ५२२ ) प्रश्न—स्वामी जी एक वेद मन्त्र का गला घोट, देवता मिटा, मन्त्र के दो टुकड़े कर, लिखते हैं कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥यजु० ३।६।

अर्थात् यह भूगोल जाल के सहित सूर्य्य के चारों ओर घूमता जाता है। इस लिये भूमि घूमा करती है।

स्वामी जी वेद का कचूमर निकाल कर ईसाई सिद्धान्तों को वैदिक सिद्धान्त बनाते हैं। पृ० ९३ पं० ११।

उत्तर—मन्त्रों के टुकड़े करके प्रकरण के विरुद्ध अर्थ करना स्वामी जी का काम नहीं है अपितु यह काम आप लोगों का है। स्वामी जी ने इस मन्त्र के तीन स्थानों पर अर्थ किये हैं। एक यजुर्वेद के भाष्य में, दूसरे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के "पृथिवी आदि लोक भ्रमण विषय" प्रकारण में, तीसरे सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में। तीनों ही स्थानों में स्वामी जी ने एक ही अर्थ किया है। सत्यार्थप्रकाश वाला अर्थ आपने ऊपर दे रक्खा है। यजुर्वेद से हम नीचे दर्ज कर देते हैं जैसा कि—
( अयं ) यह प्रत्यक्ष ( गौः ) गोल रूपी पृथिवी ( पितरम् ) पालन करने वाले ( स्वः ) सूर्य्य लोक के ( पुरः ) आगे २ वा

( मातरम् ) अपनी योनि रूप जलों के साथ सहवर्तमान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई ( पृश्निः ) अंतरिक्ष अर्थात् आकाश में ( आक्रमीत् ) चारों तरफ़ घूमती है ॥ यजु० ३।६॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिससे यह भूगो पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अंतरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनि रूप जल के सहित आकर्षण रूपी गुणों से सब की रक्षा करने वाले सूर्य्य के चारों तरफ क्षण २ घूमती है। इसी से दिन रात्री शुक्ल वा कृष्ण पक्ष ऋतु और अयन आदि काल विभाग क्रम से सम्भव होते हैं ॥६॥

स्वामी जी ने यह सिद्धान्त ईसाइयों से नहीं लिया अपितु वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। क्योंकि ईसाई लोग पृथिवी को गति शून्य ही मानते हैं। जैसाकि आपने भी इस बात को स्वीकार किया है कि—

"तेरहवीं शताब्दी तक भूतल के समस्त देश धरा का
अचलत्व मानते रहे हैं ( पृ० २७३ पं० २० )"

फिर स्वामी जी पर ईसाइयों की नक़ल का दोष लगा नवदतो व्याघात नहीं तो और क्या है।

(५२३) प्रश्न—क्या मज़े की बात है मुसलमानों का सिद्धांत वेद में से निकल पड़ा। पृ० २७२ पं० १०।

उत्तर— पढ़े न लिखे नाम 'मुहम्मद फाज़िल' यह मिसाल किसी ने आप जैसों के लिये ही घड़ी है। वरना आप मुसलमानों की किसी किताब का प्रमाण दें जिससे यह साबित हो कि मुसलमान पृथिवी का सूर्य्य के गिर्द घूमना मानते हैं। यदि नहीं तो फिर आपका यह कहना कि मुसलमानों का सिद्धांत वेद

से निकल आया" निरर्गल वागवाद नहीं तो और क्या है। श्री मान् जी सिद्धान्तों के बारे में तो मुसलमान लोग पौराणिकों के भी बड़े भाई हैं देखिये कुरान शरीफ में क्या लिखा है कि—

"और किए हमने बीच ज़मीन के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे साथ उन के" (शाह रफ़ी उद्दीन देहलवी)

"और हमने ज़मीन में इस लिए पहाड़ बनाए कि ज़मीन उन लोगों को लेकर हिलने न लगे" मौलाना अशफ़ अली थानवी

(कुरान शरीफ़ मञ्जिल ४ सूरत २१ आयत ३०)

इस से साफ साबित है कि इस्लाम ज़मीन को घूमने वाली नहीं मानता। अपितु गति शून्य मानता है। जो कि युक्ति तथा दलील विरुद्ध है।

ज़मीन का अपने और सूर्य के गिर्द घूमना वेद ही मानते हैं और यही सिद्धान्त सृष्टि नियम प्रमाण तथा युक्ति के अनुकूल है।

(५२४) प्रश्न—इस मन्त्र का सर्पराज्ञी कद्रू ऋषि गायत्री छन्द अग्नि देवता है वेदों का नियम है कि जो जिस मन्त्र का देवता होता हैं उस मन्त्र में उसी विषय का वर्णन होता है। जब इस का अग्नि देवता है तो पृथिवी परक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा। पृ० २७२। पं० १६।

उत्तर—पृथिवी का घूमना सूर्य्य के निमित्त से होता है और उसी अग्नि का पुंज है। अतः इस मंत्र में पृथिवी के द्वारा अग्नि का ही वर्णन है। और स्वामी जी ने भी इस मन्त्र के आरम्भ में यही लिखा है कि—

"अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है।

इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है"

(दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य ३।६)

अतःस्वामीजी का अर्थ देवता के अनुसार ही है। कहिये महाराज आप तो कहते थे कि स्त्रियों को वेद का अधिकार ही नहीं है। यहां सांपों की रानी कद्रू वेद मन्त्र की ऋषिका कैसे बन गई। और आप तो देव जाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते थे। यहां पर मन्त्र के मज़मून को ही देवता मान बैठे। ठीक हैं कि सचाई सौ पर्दे फाड़ कर भी ज़ाहिर हुए बिना नहीं रहती।

(५२५) प्रश्न—इस मन्त्र के अर्थ में "मातरम्" "पितरम्" "पुनः" आदि कई एक शब्द बिलकुल ही छोड़ दिये उन का अर्थ ही नहीं किया। पृ० २७२ पं० २५।

उत्तर—यदि आप को नज़र न आवे तो हम क्या करें। वरना इस मंत्र के अर्थों में 'मातरम्' का अर्थ जल तथा 'पितरम्' का अर्थ सूर्य्य तथा 'पुरः' का अर्थ आगे किया हुआ मौजूद है। इस अर्थ में विशेष हेतु ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में देखने की कृपा करें।

(५२६) प्रश्न—यदि हम इस मंत्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रखदें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मंत्र का यही अर्थ है जो इस के भाषा टीका में लिखा है। पृ० २७३ पं० २।

उत्तर—यदि कोई वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाला मुनि वा वेद के अर्थ का द्रष्टा ऋषि अथवा पदार्थ विद्या का जानने वाला विद्वान् होगा तो अवश्य ही यह कहेगा कि स्वामी जी का इस मंत्र का अर्थ वास्तव में आर्षभाष्य है और प्रमाण के योग्य है। हां यदि कोई "पण्डितं मन्यः" "चारपायः बरो

किता वे चंद" "स्थानुरयं भार हारः" हों तो वह बेशक अर्थों में संदेह कर सके।

(५२७) प्रश्न— वेद मंत्र का ठीक अर्थ देखिये—

"( आयं ) इस (गौ) यज्ञ सिद्धि के अर्थ यजमान के घर में आने जाने वाले ( प्रश्नि ) श्वेत रक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने ( आ ) सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में ( अक्रमीत् ) अतिक्रमण किया ( पुरः ) पूर्व दिशा में (मातरम् ) पृथिवी को ( असदत् ) प्राप्त किया ( च )और ( स्वः ) सूर्य्य रूप होकर ( प्रयन् ) स्वर्ग में चलते अग्नि ने ( पितरम् ) स्वर्ग लोक को ( असदत् ) प्राप्त किया"।

उत्तर—आपका यह अर्थ निम्न हेतुओं से सर्वथा निर्मूल और कपोल कल्पित है।

१. आप का ( आयं ) लिखना ग़लत है यह शब्द ( आ अयं ) है अतः ( अयं ) लिखना चाहिये था। आप को सन्धि विच्छेद का भी ज्ञान नहीं है।

२. गौ शब्द के अर्थ आपने अग्नि किये हैं किंतु यह प्रमाण नहीं दिया कि गौ के अर्थ अग्नि कैसे हो सकते हैं। स्वामी जी ने जो गौ शब्द के पृथिवी अर्थ किये हैं उस में प्रमाण यह हैं कि

"गौरिति पृथिव्या नाम धेयं, यद्दुरं गता भवति यच्चास्यं भूतानि गच्छन्ति ( निरु०अ० २ खं० ५ )।

अतः स्वामी जी का अर्थ ठीक तथा आप का कल्पित है।

(३) आपने "प्रश्नि" शब्द के अर्थ "अग्नि" किये हैं। कृपया इन अर्थों में प्रमाण पेश कीजियेगा। स्वामी जी ने अपने अंतरिक्ष अर्थ में प्रमाण दिया है कि—

स्वः, प्रश्निः, नाक इति षट्सु साधारण नाम सु ॥

प्रश्निरिति; अंतरिक्षस्य नामोक्तम् ( नि० अ० २ खं० १३ )

अतः स्वामी जी का अंतरिक्ष अर्थ ठीक और आपका अग्नि अर्थ निर्मूल है ।

(४) आपने 'मातरम्" का अर्थ पृथिवी किया है। भला बतलाईये कि अग्नि की माता पृथिवी कैसे है। 'वायोरग्निः" अग्नि की माता वायु तो हो सकती है पृथिवी नहीं। स्वामी जी ने लिखा है कि—

अद्भ्यः पृथिवीति तैत्तिरीयोपनिषदि। यस्माद्य ज्जायते सोऽर्थस्तस्य माता पितृवद् भवति।

स्वामी जी ने पृथिवी की माता जल अर्थ किया है अतः स्वामी जी का अर्थ ठीक और आपका सर्वथा अशुद्ध है।

(५) आपने "पितरं" का अर्थ स्वर्ग लोक किया है। बतलाइये यह किस प्रमाण से किया है। स्वामी जी ने अर्थ किया है कि—

"स्वः शब्देनादित्यस्य ग्रहणात् पितुर्विशेषणत्वाद्वा दित्योऽस्याः पितृवदिति निश्चीयते"।

आदित्य को पृथिवी का पिता वत् बताया है—

अतः स्वामी जी का अर्थ सत्य तथा आपका असत्य है। यद्यपि आपका संपूर्ण अर्थ युक्ति और प्रमाणों के विरुद्ध है तथापि यदि आपके अर्थ को ठीक भी मान लिया जावे। तो भी इससे स्वामी जी के अर्थ का निषेध नहीं होता। क्योंकि एक मन्त्र के अनेक अविरोधी अर्थ हो सकते हैं। आपका अर्थ स्वामी जी के अर्थ का विरोधी नहीं है। और आपने स्वामी जी के अर्थ का युक्ति और प्रमाण से कोई खंडन नहीं किया। अतः स्वामी जी का अर्थ हर प्रकार से ठीक है।

(५२८) प्रश्न—तेरहवीं शताब्दी तक भूतल के समस्त देश धरा का अचलत्व मानते रहे हैं। इस के पश्चात् सब से प्रथम ईरान के दार्शनिक पैथागोरास ने यह आवाज़ उठाई कि पृथिवी घूमती है। इस के पश्चात् केप्लर और सर न्यूटन ने संसार में इस सिद्धान्त का प्रचार किया। भारत वर्ष में एक आर्य्य भट्ट नामक विद्वान हुये उन्हों ने एक सौ बीस श्लोक का "आर्य्य भट्टि" नामक ग्रन्थ लिखा और इस में भू भ्रमण के सिद्धांत को सिद्ध किया। शिक्षा में आ जाने के कारण इस मिथ्या सिद्धांत को संसार सत्य मानने लगा। जब सब संसार इस को मान बैठा तब स्वामी दयानन्द जी ने वेद से सिद्ध कर दिया। पृ० २७३ पं० २०।

उत्तर—वेदों में भू भ्रमण का यथार्थ ज्ञान अनादि काल से मौजूद है। महाभारत के समय तक आर्य लोग इस को जानते और मानते थे। महाभारत के पश्चात् वैदिक शिक्षा का लोप हो जाने से लोग इस सिद्धांत को भी भूल गये। समय २ पर इस वैदिक सचाई का अनुभवी लोगों ने अनुभव किया और उसका जनता में प्रचार भी किया यद्यपि लोगों ने इन का विरोध किया किंतु आखिर यह लोग अपनी बात विद्वानों को मनाने में कामयाब हो गये और दुनिया भूमि के अचलत्व मिथ्या सिद्धांत को छोड़कर भू भ्रमण के सत्य वैदिक सिद्धान्त को मानने लगी। जब स्वामी दयानन्द जी का प्रादुर्भाव हुआ तो उन्हों ने वैदिक प्रमाणों की उस पर मुहर लगादी, स्वामी जी ने भू भ्रमण के बारे में वेद के तीन प्रमाण—दो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में "आयंगौः यजु० ३।६" "या गौर्वर्तिनीं ऋ० १०। ६५।६" "तथा तीसरा सत्यार्थ में "आकृष्णेन

रजसा यजु० ३३।४३" दिये हैं। और निरुक्त के प्रमाणों से अपने अर्थ की पुष्टि करके भू भ्रमण को सिद्ध किया है। आपने उन में से केवल एक "आयंगौः" पर आपत्ति उठाई। बाकी दो को छुआ तक भी नहीं। और इस एक के अर्थों को भी आप युक्ति तथा प्रमाणों से खण्डित नहीं कर सके। स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल तथा वैदिक सचाई पर मुहर लगाने के मुतरादिफ है और भी देखिये—

भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रति दैविसकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति ग्रह नक्षत्राणाम्॥ (आर्य भट्ट)

सूर्य्य आदि सब नक्षत्र स्थिर हैं (अर्थात् अपनी परिधि पर घूमते हैं किसी के गिर्द नहीं घूमते) पृथिवी ही बार बार अपनी धुरी पर घूम कर प्रति दिवस इन के उदय और अस्त का संपादन करती है।

अनुलोमगति नौंस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानिभानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्॥ (आर्य भट्ट)

जैसे नौका में बैठे हुये मनुष्य को पर्वतादि किनारे की अचल वस्तुयें उलटी ओर को चलती हुई दिखाई देती हैं ऐसे ही पूर्व की ओर को चलती हुई पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को अचल तारे भ. पश्चिम को जाते हुये दिखाई देते हैं।

(५२६) प्रश्न—जैसे रस्सी में सर्प ज्ञान मिथ्या और भ्रमजन्य ज्ञान है। इसी प्रकार नौका में स्थरता और नदी के तट के वृक्षों में चलने का ज्ञान भी भ्रम जन्य और मिथ्या ज्ञान है। भ्रम जन्य मिथ्या ज्ञान का चर्चा न्याय वेदान्त प्रभृति समस्त ही हिन्दू दर्शनों में आता है। दर्शनों ने स्पष्ट कह दिया है कि भ्रम जन्य मिथ्या ज्ञान असत्य होता है। अतएव त्याज्य

है। फिर हम किस आधार पर नौका की स्थिरता और किनारे के वृक्षों का चलना इस भ्रम जन्य ज्ञान को सत्य मानें।

पृ० २७४ पं १८।

उत्तर—आपका फरमाना बिलकुल सत्य है। हम भी यही कहते हैं कि जैसे रस्सी में सर्प ज्ञान तथा नौका में बैठने से नौका की स्थिरता तथा नदी के किनारे के वृक्षों के चलने का ज्ञान भ्रम जन्य होने से मिथ्या है और त्यागने योग्य है। वैसे ही घूमने वाली पृथिवी पर रहने वाले हम लोगों का यह ज्ञान कि "पृथिवी स्थिर है और सूर्य्य आदि ग्रह इसके चारों तरफ घूम रहे हैं" भ्रम जन्य होने से मिथ्या और त्यागने योग्य है। वास्तव ज्ञान यही है कि पृथिवी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है और अपने गिर्द भी घूमती है।

(५३०) प्रश्न—नौका में स्थिरता बुद्धि और वृक्षों में संचलन बुद्धि असावधानी से होती है। यदि तुम नौका पर बैठ अपने मन को रोक सावधानता से देखोगे तो यह विप्रीत ज्ञान हो ही नहीं सकता, जो बात असावधानी से मनुष्य के अन्तःकरण में बैठी है। उसको सत्य मानना मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं है। पृ० २७४ पं० २७।

उत्तर—आपके उपरोक्त लेख के अनुसार ही पृथिवी में स्थिरता बुद्धि तथा सूर्य्यादि में संचलन बुद्धि असावधानी ग्रह विद्या के अज्ञान वेद के सिद्धान्त के न जान ने से होती है। यदि आप एकान्त में बैठकर मन को एकाग्र कर पृथिवी के घूमने के हेतुओं पर विचार करके सावधानता से ग़ौर करेंगे तो यह विप्रीत ज्ञान आप के अन्तःकरण से निकल जावेगा।

और आपको निश्चय हो जावेगा कि आकाश में कोई वस्तु घूमे बिना नहीं ठहर सकती अतः सूर्य्यादि अपनी परिधि पर घूमते हैं किसी के गिर्द नहीं घूमते और पृथिवी अपने गिर्द भी घूमती है जिससे दिन रात पैदा होते हैं और सूर्य्य के गिर्द भी घूमती है। जिससे ऋतु परिवर्त्तन होता रहता है।

( ५३१ ) प्रश्न—जो पृथिवी को अचला और ग्रहगणों का भ्रमण मानते हैं। उनका यह कथन है कि जैसे कुछ मनुष्य वृत्ताकार चबूतरे पर खड़े हों और उस चबूतरे की बाहिर भूमि पर घोड़े दौड़ रहे हों। इसी प्रकार हम वृत्ताकार गोल पृथिवी पर ठहरे हैं और घोड़ों की भांति भपंजर पृथिवी की परिक्रमा दे रहा है। पृ० २७५ पं० ८।

उत्तर—निम्न प्रमाणों तथा हेतुओं से आपका उपरोक्त लेख सर्वथा असत्य है।

(१) जमीन गोल है।

मध्ये समन्ताद्गडस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।

बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥

( सूर्य्य सिद्धान्त अध्याय १२ )

यहाँ पर पृथिवी का नाम भूगोल आने से साबित है कि पृथिवी गोल है।

(२) जमीन वृत्ताकार चबूतरे की भांति गोल नहीं अपितु गेंद की भांति गोल है

समता यदि विद्यते भुवस्त रवस्ताल निभा बहूच्छ्राया:।

कथमेव न दृष्टि गोचरं नु रहो यान्ति सुदूर संस्थिताः॥

(लल्ल सिद्धन्ते)

यदि पृथिवी ( चबूतरे की भाँन्ति ) चपटी है। तो बहुत दूर स्थित ताड़ के समान ऊंचे २ वृक्ष पूरे दृष्टि गोचर क्यों नहीं होते। अर्थात् दूरस्थित वृक्षों के केवल ऊर्द्ध भाग दृष्टि पड़ने का कारण यही है कि उनका नीचे का भाग पृथिवी की गोलाई की ओट में आजाता है। इससे साबित है कि ज़मीन गेंद की तरह गोल है।

(३) ज़मीन चबूतरे की भांति गोल क्यों नज़र आती है।

अल्प काय तया स्वस्थानात्सर्वतो मुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम्॥

( सूर्य्य सिद्धान्ते भूगोलाध्याये )

मनुष्य ( पृथिवी की अपेक्षा ) बहुत छोटे शरीर होने के कारण अपने स्थान से चारों ओर मुख करते हुए (गेंद के समान) वृत्ताकार पृथिवी को भी चक्र के सदृश चपटी देखते हैं। इस से सिद्ध है कि ज़मीन वास्तव में गेंद के समान गोल है।

(४) आपने स्वयं ब्रह्माण्ड को गोल लिखा है जिस में पृथिवी भी शामिल है।

"दक्षिण दिशा से उत्तर तक और पूर्व से पश्चिम तक,
नीचे से ऊपर तक, सब तरफ पचास कोटि योजन
प्रमाण रखने वाला मटर या गेंद की शकल का ब्रह्मांड है"

( आप की पुस्तक पृ० १५५ पं०१३ )

(५) यदि पृथिवी गोल चबूतरे की भांति निश्चल है तो वह किस के सहारे ठहरी हुई है। क्योंकि आकाश में निश्चल पदार्थ सहारे के बिना नहीं ठहर सकता। अतः आप का सिद्धान्त ग़लत है जैसा कि—

मूर्त्तोधर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यै वमत्रा-नवस्था। अन्त्ये कल्प्याचेत् स्वशक्तिकिमाद्ये किनो भूमेः साष्ट-मूर्तेश्चमूर्त्तिः ( सिद्धान्त शिरोमणि )

यदि पृथिवी का कोई मूर्तिमान धर्ता माना जाय तो उस धर्ता का कोई और धर्ता मानना पड़ेगा और उस का कोई अन्य। इसी तरह से कहीं अंत न पावेगा अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा। अंतमें यही मानना पड़ेगा कि पृथिवी अपनी ही शक्ति से स्थित है। अर्थात् उस को किसी मूर्तिमान धर्ता की आव-श्यकता नहीं है। अतः—

भपंजरस्य भ्रमणावलोका—

दाधार शून्या कुरिति प्रतीतिः। ( सिद्धांत शिरोमणि )

सब तारागण ( नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह ) बिना किसी आधार के आकाश में घूमते हैं और क्योंकि पृथिवी भी एक ग्रह है। इस लिये यह भी आधार रहित ही प्रतीत होती है। अर्थात् घूमती है।

(६) यदि यह मान लिया जावे कि पृथिवी चबूतरे की भांति है और सूर्य आदि ग्रह इस के चारों तरफ घोड़ों की भांति दौड़ रहे हैं तो दिन और रात का सिलसिला नहीं बन सकेगा। क्योंकि सूर्य्य फिर अस्त कैसे होगा। अतः आपका सिद्धान्त ग़लत है जैसा कि—

घट इव निज मूर्तिच्छाययै वातपस्थः॥

( सिद्धांत शिरोमणि गोलाध्याय )

जैसे धूप में रक्खा हुआ घड़ा आधा प्रकाशित और आधा अपनी ही मूर्त्ति की छाया में रहता है। इस से साबित

है कि पृथिवी के गोल होने से ही दिन रात पैदा हो सकते हैं। और भी—

भूग्रहभाना गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्धानि यथा सारं सूर्य्याभि मुखानि दीप्यन्ते॥

(आर्य्य भट्टीये)

गोल हो ने के कारण भूमि आदि उपग्रहों के आधे भाग अपनी छाया से अन्धकार में रहते हैं और सूर्य्य के सामने के आधे भाग प्रकाशित होते हैं। उन्हीं का नाम दिन रात है। अतः सिद्ध है कि पृथिवी को चबूतरे के समान चपटी मानने से दिन रात की व्यवस्था नहीं बन सकती अपितु गेंद के समान गोल मानने से ही दिन रात की व्यवस्था बन सकती है।

(७) पृथिवी को वृत्ताकार चबूतरे की भाँति चपटी तथा ग्रहों को घोड़ों की भांति उसके चारों तरफ दौड़ता हुआ मानने से सूर्य्य और चन्द्रमा के ग्रहण नहीं हो सकते। क्योंकि ऐसी सूरत में किसी की छाया किसी पर न पड़ सकेगी। अतः आपका सिद्धान्त ग़लत है। जैसा कि—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थोघनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ् मुखश्चन्द्रो विशत्यस्यभवेदसौ॥

(सूर्य्य सिद्धान्त)

सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा बादल के सदृश सूर्य को ढक लेता है। और चन्द्र ग्रहण में चन्द्रमा पूर्व की ओर जाता हुआ पृथिवी की छाया में आजाता है। अतः ज़मीन के गेंद की भांति गोल मानने से सूर्य तथा चांद के ग्रहण का होना सम्भव है। अन्यथा नहीं।

इत्यादि अनेक हेतुओं से आपका सिद्धांत क़तई निर्मूल और युक्ति विरुद्ध है।

(५३२) प्रश्न—सूर्य्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों के नाम स्पष्ट लिख दिये जो पृथिवी के चारों ओर घूमते हैं। आकाशस्थ सब ही तारे चौबीस घंटे में पृथिवी के चारों और नहीं घूमते।

पृ० २७५ पं २४।

उत्तर—हम पीछे साबित कर आये हैं कि सूर्य सिद्धांत सूर्य्य को भूमिके गिर्द घूमना नहीं मानता। तथापि यदि आपकी बात मान ली जावे 'कि सूर्य्य तथा चन्द्रमा दोनों ही चौबीस घंटे में पृथिवी के गिर्द चक्र लगा जाते हैं और पृथिवी घूमती नहीं अपितु वृत्ताकार चबूतरे की भांति है। और हम उसके ऊपर बैठे हैं और सूर्य्य चांद आदि घोड़ों की भांति उसके चारों तरफ २४ घन्टे में चक्र लगाते हैं।' तो ऋतु परिवर्तन, शुक्लपक्ष और कृष्ण पक्ष, दिनों का बढ़ना घटना, सूर्य्य चांद का ग्रहण इत्यादि सब असम्भव हो जावेंगे। अतः आप के ये सम्पूर्ण सिद्धान्त कपोल कल्पित और मिथ्या ही हैं।

(५३३) प्रश्न—"भ्रमति भ्रमस्थितेव ६" "अन्यच्च भवेद ७" इत्यादि वराहमिहर तथा "यदि च भ्रमति ४२" "पूर्वाभिमुखे ४३" शि० वृ० गो०। इन श्लोकों में भूभ्रमण वादियों के सिद्धान्त में पांच दोष दिखलाये हैं। (१) वायु का ज़ोर दार चलना। (२) बड़े ज़ोर के साथ ध्वजा पताकाओंका पश्चिम को उड़ना। (३) बादल का पश्चिम को जाना। (४) बाण का पश्चिम को गिरना। (५) पक्षियों को घोंसले का न मिलना।

पृ० २७६ पं० ८।

उत्तर—इन आपके दिये श्लोकों में पिछले चार दोष तो वर्णन किये गये हैं किन्तु प्रथम दोष आपने अपने घर से ही मिला दिया है। वास्तव में दूसरे और तीसरे दोष में आपका मिलाया हुआ प्रथम दोष स्वयं ही शामिल है। लेकिन आपको कुछ न कुछ हेर फेर किये बिना चैन कहां "चोर यदि चोरी छोड़ दे तो हेरा फेरी तो नहीं छोड़ता" खैर अब आप अपनी युक्तियों का उत्तर सुनिये (१) आपका प्रथम आक्षेप यह है कि जैसे "रेल और मोटर के ज़ोर से चलने से वायु आगे से पीछे को बड़े ज़ोर से चलती है। ऐसे ही यदि पृथिवी पश्चिम से पूर्व को घूमती है तो वायु बड़े ज़ोर के साथ हर समय पूर्व से पश्चिम को चलनी चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता इससे साबित है कि पृथिवी घूमती नहीं" सो सुनियेगा। पृथिवी की अपेक्षा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे, पृथिवी के चारों तरफ, आकाश में सैंकड़ों सहस्रों लोक लोकान्तर मौजूद हैं। जो सब के सब आपस की आकर्षण शक्ति से आकाश में ठहरे हुए हैं। पृथिवी भी उन्हीं की आकर्षण शक्ति से आकाश में ठहरी हुई है। इनमें से कोई पृथिवी के समीप हैं। और कोई दूर हैं। और पृथिवी सहित ये सभी अपनी २ परिधि पर घूमते हैं। और पृथिवी की अपेक्षा ये सब लोक लोकान्तर कोई पूर्व से पश्चिम को घूमता है और कोई पश्चिम से पूर्व को। कोई उत्तर से दक्षिण को घूमता है और कोई दक्षिण से उत्तर को। कोई ऊपर से नीचे को घूमता है और कोई नीचे से ऊपर को। कोई किसी के चारों तरफ घूमता है तो कोई अपने गिर्द स्वयं ही घूमता है। सूर्य्य अपनी परिधि पर स्वयं घूमता है। और

पृथिवी अपने गिर्द स्वयं भी घूमती है और सूर्य्य के चारों तरफ भी घूमती है। और चांद पृथिवी के गिर्द घूमता है। ऐसी सूरत में आकाश के अन्दर वर्तमान वायु भी परस्पर की आकर्षण शक्ति से आकर्षित हुई किसी तरफ को वेग से नहीं चल सकती अपितु स्वभाविक रूप से चारों तरफ को ही चलती रहती है। और सूर्य्य की गरमी के निमित्त से तेज और मन्द होती रहती है इससे आपके (२) दूसरे तथा (३) तीसरे आक्षेप के उत्तर भी स्वयं ही आगये। क्यों कि जब पृथिवी के चलने से पूर्व से पश्चिम को हर समय वायु का वेग ही असम्भव है तो फिर पताका तथा बादल हर समय पश्चिम को उड कर जायेंगे कैसे। अब रही बात (४) चौथे और (५) पांचवें आक्षेप की सो ये दोनों सर्वथा ही निर्मूल हैं क्योंकि पृथिवी के सम्पूर्ण पदार्थ पृथिवी की आकर्षण शक्ति से इसके बंधे हुए हैं और पृथिवी इन सब के सहित ही घूमती हैं। पक्षी अपने स्थान से उतना ही दूर हो सकेगा जितना वह अपने यत्न से उड़ेगा। और बाण भी उतना ही ऊंचा जा सकेगा जितनी शक्ति से कोई उसे ऊपर को फेंकेगा। किन्तु पृथिवी की आकर्षण शक्ति से वे मुक्त नहीं हो सकते। अतः न पक्षी घोंसलों से च्युत हो सकते हैं और न बाण स्वयं पश्चिम को गिर सकता है। जैसे कि रेल में बैठकर गेंद के उछालने से पीछे को नहीं गिरती वहीं गिरती है और रेल की लालटैनों पर उड़ने वाले पतंगे पीछे को नहीं जाते वहीं उड़ते रहते हैं। क्योंकि रेल इन सब वस्तुओं को अपने साथ ही लेकर चलती है। इसी प्रकार से पृथिवी भी अपनी आकर्षण शक्ति से सब

पदार्थों को अपने साथ ही लेकर चलती है। अकेली नहीं चलती अतः ये आक्षेप निर्मूल हैं।

( ५३४ ) प्रश्न—अमरीका वालोंने ताराओं के देखने की एक दूरबीन बनाई उस दूरबीन से लोगों को तो तारे दीखे किंतु हमने तारों को न देखकर दूरबीन में यह देखा कि पृथिवी अचला है वह कभी एक इंच भी अपने स्थान से नहीं हटती। काशी के मान मंदिर में एक ध्रुव के देखने का यन्त्र बना हुआ है। यन्त्र के आरंभ और अन्त में अर्थात् दक्षिण और उत्तर में दो लोहे के कड़े लगे हुए हैं। जब मनुष्य नीचे के कड़े से दृष्टि की लाइन ऊपर के कड़े के बीचोंबीच लाता है तो उस सीध में ध्रुव दीख पड़ता है। एक दिन मैंने साढे दसबजे कुरसी डाल और उसपर बैठ दूरबीन लगाई। डेढबजे रात के बन्द करदी साढे दस से डेढ बजे तक ध्रुव तारा दूरबीन से उन लोहे के वृत्तों में दीखा करा। जहां साढे दसबजे था। वहां ही डेढबजे रहा। एक बाल जितना भी फर्क उस में न पड़ा, बस हम को ज्ञान होगया कि ध्रुव तारे को शास्त्रों ने स्थिर माना है और इधर पृथिवी को अचला कहा है। वास्तव में यह दोनों ही नहीं चलते। यदि दोनों में से कोई एक चलता होता तो किसी न किसी समय इस लाइन से ध्रुव तारा पूर्व पश्चिम अवश्य हो जाता। पृ० २८४ पं० ४।

उत्तर—धन्य हो महाराज! आपने तो न्यूटन की भी कबर पर लात मारदी। जो बात न वेद को सूझी और न शास्त्र को सूझी और न ही सैंकड़ों बरसों में पदार्थ विद्या के विद्वानों

और दूरबीन बनाने वालों को सूझी जो आप को महज़ तीन घंटों में सूझ गई और वह भी रात के डेढ बजे सूझी। क्यों न हो गुरु के प्यारे विद्यार्थी जो ठहरे। किसी फारसी के कवि ने शायद यह आप जैसों के लिये ही कहा है कि "बबीं अकलो दानश बबायद ग्रीस्त"

श्रीमान् जी ! आपने तो केवल तीनही घंटे का तजरुबा किया ध्रुव तो उस दिन से ही उस यन्त्र में से नज़र आता है जिस दिन से वह यन्त्र बना है। कारण यह है कि ध्रुव पृथिवी की कीली पर है और ज़मीन गोल है। ज़मीन की गोलाई पर खड़े होकर जहांभी ध्रुव को आप एक बार देखें 'उस स्थान से आपको ध्रुव उसी स्थान में हमेशा नज़र आता रहेगा। ध्रुव अचल नहीं है। अपितु वह एकही स्थान में अपनी ही कीली पर घूमता है और चूंकि वह ज़मीन की कीली पर है अतः ज़मीन के घूमने के बावजूद भी प्रत्येक मनुष्य ज़मीन की गोलाई पर खड़ा हुवा ध्रुवको हमेशा उसी स्थान में देखता है। जैसे गाड़ी के पहिये की गोलाई पर बैठा हुवा कीडा पहिये के घूमने के बावजूद भी पहिये के ध्रुव को उसी स्थान में देखता रहेगा। अतः आपकी यह नक़ली दलील पृथिवी की गति शून्य सिद्ध नहीं कर सकती। अपितु आप के दिमाग़ की ख़राबी को सूचित करती है

(५३५) प्रश्न—पृथिवी की कीली पर ध्रुव है यह कोरी गप्प है। दुर्जन तोष न्याय से हम मान लें कि ध्रुव पृथिवी की कीली पर है। तो भी ध्रुव के नीचे के देश भले ही उस स्थान में रहें किंतु काशी आदि जो ध्रुव से दक्षिण में हैं। पृथिवी के भ्रमण से किसी समय उत्तर में अवश्य आवेंगे। ऐसा नहीं

होता। अतएव भूभ्रमण मिथ्या और स्वामी दयानन्द जी का लेख भी मिथ्या है। पृ० २८५ पं० ६।

उत्तर—यह सोलह आने सत्य है कि ध्रुव पृथिवी की कीली पर है। इसी कारण से इसका नाम ध्रुव पड़ गया है। पृथिवी के घूमनेसे काशी आदि स्थान तब उत्तर में आ सकते हैं यदि पृथिवी को कुम्हार के चाक की भाँति चपटी और गोल माना जावे किंतु पृथिवी कुम्हार के चाक की भांति चपटी गोल नहीं है अपितु पृथिवी गेंद की भांति गोल है। अतः आपका बताया हुआ दोष नहीं आ सकता। इस से सिद्ध हुआ कि पृथिवी गति शून्य नहीं अपितु घूमती है।

हम हैरान हैं कि ये पौराणिक लोग भी पृथिवी को गति शून्य कैसे कह सकते हैं। जिन के पुराणों में पृथिवी का आना, जाना, रोना, बोलना, देखना, आदि संपूर्ण क्रिया कलाप वर्णन हैं जैसे कि—

पुरा वाराह कल्पे सा भाराक्रान्ता वसुन्धरा।
भृशं बभूव शोकार्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ॥ २॥
सुरैश्चासुरसंतप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः।
सार्द्धंतैस्तां दुर्गमां च जगाम वेधसः सभाम्॥ ३॥
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्म तेजसा॥ ४॥
भक्त्या सा त्रिदशैः सार्द्धं प्रणम्य चतुराननम्।
सर्वं निवेदनं चक्रे दैत्य भारादिकं मुने।
साश्रूपूर्णा स पुलका तुष्टाव च रुरोद च॥ ७॥

(ब्रह्म वैवर्त० खं० ४ अ० ४)

भावार्थ—पहिले वाराह कल्प में पृथिवी बहुत भारसे दुःखी हुई बहुत शोक ग्रस्त होकर ब्रह्मा की शरण में गई ॥ २ ॥

असुरों से दुखी हुए और व्याकुल मन वाले देवताओं के साथ वह पृथिवी ब्रह्मा की दुर्गम सभा में गई ॥३॥ वहां पृथिवी ने ब्रह्म तेज से प्रज्वलित ब्रह्मा को देखा ॥४॥ उस पृथिवी ने देवताओं सहित भक्ति से ब्रह्मा को प्रणाम करके दैत्य आदिकों का भार संपूर्ण तौर से ब्रह्मा से व्यान कर दिया और आंखों में आंसु भरकर रोमांच होकर स्तुति करने और रोने लगी ॥७॥

कहिये महाराज यहां पर "ययौ, जगाम, ददर्श, प्रणम्य, चक्रे, तुष्टाव तथा रुरोद' क्रियायें पृथिवी को क्रियाशून्य तथा गति शून्य सिद्ध करती हैं या क्रिया शील और गति शील साबित करती हैं इस प्रकार के उदाहरण पुराणों से अनेक दिखाये जा सकते हैं किन्तु पुस्तक विस्तार भय से केवल एक ही दिया गया है।

---

## वेदानुकूलता

( ५३६ ) प्रश्न—आज तक आर्य्य समाजियों को यह पता न चलाकि वेदानुकूल किस चिड़िया का नाम है। पृ१२४ पं२१।

उत्तर—आर्य समाजियों को तो पता है किंतु आप की बुद्धि पर ही पक्षपात का पर्दा पड़ा हुआ है जिससे आपके लिये मानना कठिन हो रहा है लीजिये हम आप के सामने वेदानुकूलता के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से वर्णन कर देते हैं ।

(१) वेद–निःसंदेह वेद ईश्वर का ज्ञान है और ईश्वर निर्भ्रान्त है। अतः उसका ज्ञान वेद भी निर्भ्रान्त होने से स्वतः प्रमाण है। ईश्वर के सर्वज्ञ होने के कारण उसका ज्ञान वेद सब विद्याओं का भंडार है। किन्तु वेद में प्रत्येक विद्या का मूल बीज मिलता है विस्तार पूर्वक व्याख्या नहीं मिलती। जिस प्रकार से बड़ का बीज बहुत छोटा होता है कि उस को कीड़ी भी उठा कर चल देती है। किंतु वृक्ष इतना बड़ा होता है कि उस को हाथी भी नहीं उखाड़ सकता, यह ठीक है कि वह वृक्ष इस बीज के अन्दर मूल रूप से पहिले से ही मौजूद होता है। किन्तु वह इतना सूक्ष्म होता है कि उस को प्रत्येक मनुष्य देख और जान नहीं सकता। इसी प्रकार से ही वेद में प्रत्येक विद्या का बीज मौजूद हैं। उसकी व्याख्या नहीं। हालां कि उसका विस्तार भी उस बीज के अंदर ही मौजूद है। किन्तु उसको प्रत्येक मनुष्य नहीं जान सकता। ऋषि लोग ही समाधि द्वारा जान सकते हैं। वेद में वे मौलिक सिद्धान्त वर्णन किये गये हैं। जो तीनों कालों में एक रस कायम रखते हैं और उनमें कभी भी परिवर्तन नहीं होता। वेदों में जिस कामके करने की आज्ञा दी गई है वह धर्म्म है और जिसे कर्म के करने का निषेध किया गया है वह पाप है। धर्म्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह प्रथम कसौटी है।

स्मृति—वेदों के जानने वाले विद्वान् ऋषि और मुनियों की बनाई हुई किताबों का नाम स्मृति है। चूंकि जीव अल्पज्ञ होते हैं। उन में भ्रान्ति का होना संभव है। अतः जीव कृत होने के कारण स्मृति ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। अर्थात् वे वहीं तक प्रमाण हैं जहां तक वेदानुकूल हों। जहां पर वे वेद के

विरुद्ध होंगे। वहाँ पर वेद के मुकाबले में उनका प्रमाण न माना जावेगा। स्मृतियों में वेद के मूल सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक व्याख्या की हुई होती है। और जिन बातों के विषय में वेद की स्पष्ट आज्ञा न मिलती हो। उनके विषय में देश तथा काल के अनुसार नियम बनाये जाते हैं। शरत यह है कि वे नियम वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। यदि कोई भी नियम स्मृतियों में वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा। वह नियम वेद विरुद्ध होने से माना न जावेगा। हां जिन नियमों के विषय में वेद की चाहे कोई स्पष्ट आज्ञा न हो। किन्तु उनके विरुद्ध भी कोई वेद का प्रमाण न हो। वह वेदानुकूल ही प्रमाणित किये जावेंगे। इस प्रकार के नियम देश तथा काल की आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। जिन कामों के विषय में वेद में तो कोई स्पष्ट आज्ञा न मिले। किन्तु वेद के जानने वाले ऋषियों की बनाई हुई स्मृतियों में आज्ञा मौजूद हो। तो ऐसी सूरत में वे स्मृतियां जिस काम के करने की आज्ञा दें वह धर्म और जिसका निषेध करें वह अधर्म है। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता को यह दूसरी कसौटी है। स्वामी दयानन्द जी महाराज चूंकि वेदों के विद्वान और ऋषि थे अतः उनकी बनाई हुई किताबें भी स्मृति का दर्जा रखती हैं। उनकी पुस्तकें भी वहीं तक प्रमाण हैं। जहां तक वे वेद के अनुकूल हों। जहां पर वे वेद के विरुद्ध होंगी। वहां वेद के मुकाबले में उनका प्रमाण न माना जावेगा। स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों में वेद के मौलिक सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक व्याख्या है। हां स्वामी जी के ग्रन्थों में भी कई एक ऐसी

बातों के विषय में कि जिन बातों की वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती। देश और काल की आवश्यकता के अनुसार नियम बनाये गये हैं। इन नियमों को भी वेदानुकूल ही माना जावेगा। जब तक कि इनके विरुद्ध वेद का प्रमाण देकर यह साबित न किया जावे कि स्वामी जी का लिखा हुआ अमुक नियम अमुक वेद मन्त्र के विरुद्ध है।

(३) सदाचार—सदाचार के अर्थ वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जानने वाले ऋषियों का चाल चलन है। ऋषि और मुनियों का चाल चलन भी वहीं तक प्रमाण हो सकता है कि जहां तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हो। किन्तु; जहां पर वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध होगा। वहां वह वेद के मुकाबले में प्रमाण न माना जावेगा। हाँ जिन कामों के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न हो। और वेद के जानने वाले ऋषियों ने भी अपनी स्मृतियों में उनके विषय में कोई नियम न बनाया हो। ऐसी सूरत में यह देखना चाहिये। कि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जानने वाले ऋषियों का इस विषय में क्या आचरण है वह आचरण भी वेद के अनुकूल ही माना जावेगा। ऐसी सूरत में जो काम ऋषि मुनियों के आचरण के अनुकूल हो वह धर्म और जो विरुद्ध हो वह अधर्म माना जावेगा। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह तीसरी कसौटी है। स्वामी दयानन्द जी महाराज चूंकि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जानने वाले महर्षि थे। अतः उनका आचरण भी वहां तक ही प्रमाण होगा। कि जहां तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार होगा यदि स्वामी दयानन्द जी के

आचरण में भी कोई ऐसी घटना हो कि जो वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध हो तो वह प्रमाण न मानी जावेगी। हां जिस काम के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न हो और वेदानुकूल स्मृतियों ने भी उसके विषय में कोई नियम न बनाया हो। ऐसे काम के बारे में हमें यह देखना होगा कि ऋषि दयानन्द जी का इस विषय में क्या आचरण है। वह आचरण भी वेद के अनुकूल ही माना जावेगा। जब तक उस आचरण के विषय में वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों से प्रमाण देकर यह सिद्ध न कर दिया जावे कि ऋषि दयानन्द जी का अमुक आचरण अमुक वेद मन्त्र वा वेदाकूल स्मृति की अमुक आज्ञा के विरुद्ध है

(४) आत्मा की प्रियता—आत्मा की प्रियता-युक्ति तर्क दलील और ज़मीर की अनुकूलता का नाम है। यह भी वहां तक ही प्रमाण मानी जावेगी जहां तक वह वेद वेदानुकूल स्मृतियों तथा वेदानुकूल स्मृतियोंके जानने वाले ऋषिओं के आचरण के विरुद्ध न हो। यदि कहीं युक्ति, तर्क, दलील, और ज़मीर की अनुकूलता वेद वेदानुकूल स्मृतियों तथा वेद वेदानुकूल स्मृतियों के जानने वाले ऋषियों के आचरण के विरुद्ध होगी तो वह वहां पर प्रमाण न मानी जावेगी। हां जिन कामों के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न मिले। और वेदानुकूल स्मृतियों ने भी उन के बारे में कोई नियम न बनाया हो। और वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के जानने वाले ऋषियों के आचरण से भी उन के बारे में कोई पता न चले। तो ऐसी सूरत में इन कामों के विषय में युक्ति-तर्क, दलील और आत्मा या ज़मीर की अनुकूलता से ही फैसला करना चाहिये। वह फैसला भी वेद के अनुकूल ही माना जावेगा। ऐसी सूरत में जो काम युक्ति, तर्क,

दलील और आत्मा या ज़मीर के अनुकूल हो वह धर्म और जो विरुद्ध हो वह अधर्म माना जावेगा। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह चौथी कसौटी है। इनमें प्रमाण भाग देखो प्रश्न ( न० ४६६ )

यह है वह वेदानुकूलता की चिड़िया। जो कि आपके ज्ञानांध होने के कारण नज़र नहीं आती। जैसा कि लिखा भी है कि—

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते।
एकेन विकलः काणो द्वाभ्यांमधः प्रकीर्तितः ॥५७॥

( भविष्य० मध्यम० भाग १ अ० ५ )

श्रुति और स्मृति ब्राह्मण के दो नेत्र निर्माण किये गये हैं। एक से हीन काना तथा दोनों से हीन अंधा कहा जाता है।

(५३७) प्रश्न—जो विधि या निषेध वेद में आया हो वही अन्य ग्रन्थ में आजावे क्या इस का नाम वेदानुकूलता है। यदि ऐसा है तब तो वेदानुकूलता की आवश्यकता ही नहीं। कल्पना करो कि वेद में ईश्वर को निराकार लिखा है और मनु ने भी ईश्वर को निराकार ही लिखा है तो फिर मनु के मानने की आवश्यकता ही क्या रही। ईश्वर निराकार है इस बात को तो वेद ही सिद्ध कर गया। ऐसी दशा में मनु का मानना अनावश्यक और वेदानुकूलता का डिमडिम पीटना निष्फल है। पृ० १२४ पं० २५।

उत्तर—वेदानुकूलता की निम्न कारणों से आवश्यकता है।

(१) वेद के मौलिक सिद्धान्तों की जो व्याख्या अन्य ग्रन्थों ने की है। उस व्याख्या का अभिप्राय वेदानुकूल ग्रहण करना वेद के प्रतिकूल ग्रहण न करना। जैसा कि वेद ने "सपर्य्यगाच्छु

क्रमकायम् यजु० ४०।८" इस मन्त्र से परमात्मा को निराकार व्यापक, शुद्ध स्वरूप, शरीर रहित और नाडी-नस के बंधन से रहित वर्णन किया है और मनुस्मृति में "तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ऋ० ८।७।१७।३" इत्यादि मन्त्रों से प्रतिपादित सृष्ट्युत्पत्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि—

ततः स्वयंभूर्भगवान व्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाःप्रादुरासीत्तमोनुदः॥ १।६॥

अब कुल्लूक भट्ट ने इस श्लोक के "स्वयंभूः"शब्द को लेकर इससे परमात्मा का शरीर धारण करना साबित किया है। जैसा कि "स्वयंभूः परमात्मा स्वयं भवति स्वेच्छया शरीर परिग्रहणं करोति" तथा आपने भी अवतार प्रकरण पृ० १७१ पं० २५ में लिखा है कि—

"जब स्वयंभू शब्द का अर्थ अपने आप शरीर धारण करना होता है। जब ईश्वर स्वयंभू है फिर उस को निराकार बतलाना संसार पर अपनी बेवकूफी सिद्ध कर देने को छोड़ कर अन्य कुछ भी मतलब नहीं निकलता"

अब कुल्लूक भट्ट का तथा आपका इस श्लोक से परमात्मा का शरीर धारी तथा अवतार और साकार सिद्ध करना वेद के विरुद्ध है। क्योंकि यहाँ पर स्वयंभूः का अर्थ—

"नोत्पद्यत्वादपूर्वत्वात् स्वयंभूरिति विश्रुतः॥१५॥

(भविष्य० ब्राह्म० अ० ७७)

चूंकि परमात्मा कभी उत्पन्न नहीं होता तथा अनादि है इस लिये परमात्मा को स्वयंभू कहते हैं" यही वेदानुकूल हो सकता है। इससे साबित है कि वेद के मौलिक सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक व्याख्या करने के लिये मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रन्थों की

आवश्यकता है तथा आप जैसे स्वार्थी मतवादी उस व्याख्या से वेद विरुद्ध अर्थ की कल्पना न कर सकें अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है।

(२) वेद ने जिस काम के करने की आज्ञा दी हैं। और ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में उस की विस्तार पूर्वक व्याख्या की है। उस व्याख्या में स्वार्थी मतवादी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये निषेध परक श्लोक न मिला दें। अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है। जैसे कि वेद ने "यापूर्वं पतिं वित्त्वा" "समान लोको भवति" "कुहस्वदोषा" इत्यादि अनेक वेद मन्त्रों द्वारा स्त्री को दूसरे पति की आज्ञा दी है। और मनुस्मृति ने "साचेदक्षत योनिः स्यात्" देवराद्वा सपिंडा द्वा" " यस्तल्पजः" इत्यादि अनेक श्लोकों में उस की विस्तार पूर्वक व्याख्या की है। उसी मनुस्मृति में किसी स्वार्थी मतवादी ने "नान्यस्मिन् विधवा नारी" इत्यादि श्लोक मिला दिये जो कि स्त्री को दूसरे पति का निषेध करते हैं। ये श्लोक वेद की आज्ञा के विरुद्ध हैं। अतः वेद के मौलिक सिद्धांतों की विस्तार पूर्वक सरल व्याख्या के लिये मनु स्मृति आदि आर्ष ग्रन्थों के मानने की आवश्यकता है। तथा स्वार्थी मतवादी लोग वेद के विरुद्ध उन आर्ष ग्रन्थों में प्रक्षेप न कर दें अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है।

(३) वेद जिस काम के करने का निषेध करता हो। और ऋषियों ने अपने ग्रंथों में उसकी विस्तार पूर्वक व्याख्या की हो उस व्याख्या में स्वार्थी मतवादी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये उस काम के आज्ञा परक श्लोक न मिला दें अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है जैसे कि वेद ने "व्रीहिमत्तम्'

"पुष्टिपशूनां" "शेरभक शेरभक" इत्यादि अनेक मन्त्रों द्वारा पशुओं के मारने तथा उन के मांस खाने का निषेध किया है। और मनुस्मृति में "योऽहिंसकानि" "समुत्पत्तिचमांसस्य" "अनुमन्ता विशासिता" "मांस भक्षयिताऽमुत्र" इत्यादि अनेक श्लोकों द्वारा इस की व्याख्या करके मांस खाना पाप तथा इस में आठ कसाई बतलाए गये हैं। किंतु इसी मनुस्मृति में स्वार्थी पापी मतवादी मांसाहारी लोगों ने "यज्ञार्थं ब्राह्मणै वध्याः" "नियुक्तस्तु तथा न्यायं 'न मांस भक्षणे दोषो" इत्यादि अनेक श्लोक मिला दिये। जिन से यज्ञ में पशुओं का मारना, मांस से हवन करना,मांस का खाना, धर्म्म बतलाया गया है और न खाने वाले को पापी वर्णन किया गया है। ये सब श्लोक वेद के विरुद्ध हैं। अतः वेद के मौलिक सिद्धांतों की सरल व्याख्या के लिये मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रन्थों का मानना आवश्यक है। और कोई स्वार्थी मतवादी लोग वेद के विरुद्ध उन आर्ष ग्रंथों में प्रक्षेप न कर दें अतः वेदानुकूलता की अवश्यकता है।

(४) जिन कामों के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न मिलती हों। और ऋषि और मुनि लोगों ने देश तथा काल के अनुसार उसकी आज्ञा दी हो वह आज्ञा वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हो। उस आज्ञा को वेदानुकूल मानते हुए उसका पालन करने के लिये वेदानुकूलता की आवश्यकता है। जैसे कि मनुस्मृति में " न लंघयेद्व त्स तन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति " " न नग्नः स्नानमाचरेत् " " नोच्छिष्टं कस्याचिद्दद्यात् " " अभिवादयेद्वृद्धांश्च " " भद्रं भद्रमिति ब्रूयात् " " ब्राह्मणेमुहूर्ते बुध्येत् " " नमृल्लोष्ठं च मृद्गीयात्"

" उपानहौ च वासंश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् " " अन्दारेण च नातीयाद् " बछड़े की रस्सी के ऊपर से न गुजरे, वर्षा होते हुये भागे नहीं' वृद्धों को अभिवादन करे, भद्र भद्र ऐसा प्रत्येक से बोले 'ब्राह्ममहूर्त्त में सोता उठे' मिट्टी के ढेले न फोड़ता रहे, जूता और कपड़े दूसरे के पहिने हुए न पहिने, बिना द्वार के मकान में न जावे, इत्यादि इत्यादि अनेक ऐसे कामों की आज्ञा है कि जिनके बारे में वेदों में कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती किन्तु मनु ने देश तथा कालानुसार ये नियम बना दिये हैं। और चूंकि वेदों में इनका निषेध भी नहीं मिलता। तो ये आज्ञायें भी वेदानुकूल ही मानी जवेंगी अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है ।

(५३८) प्रश्न—यदि हम मान लें कि जिस कार्य्य का वेद ने निषेध नहीं किया और अन्य ग्रन्थ ने उस कार्य के करने की आज्ञा दी है। इस का नाम वेदानुकूलता है। ऐसा मानने पर अतिव्याप्ति दोष आ जावेगा। वेद में जिन का निषेध नहीं और दूसरे ग्रंथों में विधान है। वे सब कार्य्य वेदानुकूल कहलावेंगे। इस लक्षण से आर्य्य समाजियों को रोज़े रख कर निवाज़ पढ़नी होगी। मसीह को ईश्वर का पुत्र मान कर गिरजे में जाना होगा। जैनियों के तीर्थांकरों की मूर्तियां पूजनी होंगी और पुराणों को सत्य मानना तथा ज़िन्दावस्था से अग्नि का पूजन करना होगा। क्योंकि इन सब कार्यों का निषेध वेद में नहीं है फिर वेदानुकूलता कहते किस को हैं। पृ०१२५ पं०३।

उत्तर—बेशक जिन कामों के करने का वेद ने निषेध नहीं किया और आर्ष ग्रंथों ने उनके करने की आज्ञा दी है वे काम भी वेदानकूल ही गिने जावेंगे। इसके मानने से अतिव्याप्ति

दोष नहीं आ सकता। क्योंकि ऐसी आज्ञायें आर्ष अर्थात् ऋषि कृत ग्रंथों की ही मानी जावेंगी। अनार्ष अर्थात् अनृषि कृत ग्रन्थों की नहीं मानी जावेंगी जैसा कि—

वेदोऽखिलोधर्म्ममूलं स्मृति शीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥(मनु० २। ६)

वेद संपूर्ण धर्म्म का मूल है और वेद के जानने वाले ऋषियों की स्मृतियें तथा स्वभाव भी धर्म्म का मूल है और साधु अर्थात् ऋषि लोगों का आचरण और आत्मा की सन्तुष्टि भी धर्म्म का मूल है। अर्थात् ऋषि कृत ग्रन्थ तथा ऋषि आचार तथा ऋषियों की आत्मानुकूलता तभी प्रमाण है यदि उनका वेद के साथ विरोध न आता हो॥६॥अब कृपया यह बतलाइये कि(१)रोज़े रखने (२)निमाज़ पढ़ने(३) मसीह को ईश्वर मानने(४) गिरजा में जाने (५) तीर्थंकरों की मूर्त्तियां पूजना (६) भागवतादि पुराणों का मानना (७) अग्नि का पूजना ईश्वर के स्थान में (८) ज़िन्दा वस्था का मानना ये संपूर्ण आज्ञायें किन ऋषिकृत ग्रन्थों में हैं। और कि कुरान; अंजील, जैन ग्रन्थ, भागवतादि पुराण, तथा ज़िन्दावस्था को किस ने ऋषि कृत ग्रन्थ माना है। और हज़रत मुहम्मद साहिब हज़रत ईसा, पारस नाथ, भागवतादि के कर्त्ता और जिन्दावस्था के कर्ता को ऋषि किसने माना है। और क्या ये सब ग्रन्थों के कर्त्ता तथा मतों के प्रवर्तक वेदों के विद्वान् ऋषि थे | यदि नहीं तो इनका कथन वेदानुकूलता से प्रमाण कैसे माना जा सकता है । अतः आर्य्य समाजियों के लिये उपरोक्त कार्य्य कर्तव्य नहीं माने जा सकते। क्योंकि आर्य्य समाज उपरोक्त कार्य्यों की आज्ञा देने वाले

ग्रन्थों को आर्ष नहीं मानता। और न ही इन ग्रन्थों के कर्त्ताओं को वेद का ज्ञाता तथा ऋषि मानता है। हां यदि सनातन धर्म्म ऐसा मानता हो तो उपरोक्त कामों को शौक से करें।

और उपरोक्त आठों काम तो हैं भी वेद के विरुद्ध क्योंकि "अंधमतमः प्रविशन्ति यजु० ४०।९" ईश्वर के स्थान में प्रकृति वा प्रकृति जन्य पदार्थों की पूजा को पाप बतलाता है। अतः ईश्वर के स्थान में अग्नि वा गिरजा की पूजा करना वेद के विरुद्ध होने से पाप है। ऐसे ही तीरथंकरों की मूर्त्तियों का पूजना भी वेद विरुद्ध होने से पाप है। "सपर्य्यगात् यजु० ४०।८" ईश्वर को शरीर से रहित वर्णन करता है और ईसा मसीह शरीर धारी थे। अतः ईसा मसीह का ईश्वर मानना वेद के विरुद्ध होने से मिथ्या है। "तस्माद्यज्ञात् यजु० ३१।७" चारों वेदों को ईश्वर का ज्ञान बतलाता है। अतः कुरान, बाइबल, जिन्दावस्था, भागवतादि पुराण इन पुस्तकों का ईश्वर कृत मानना वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण है।

"नाम नाम्ना जोहवीतिःअथर्व० १०।७।३१" ईश्वर की दोनों समय उपासना स्थिर मन से करने की आज्ञा देता है। अतः पांच समय निमाज का बैठते हुए पढ़ना वेद के विरुद्ध कल्पना मात्र ही है।

"व्रीहिमत्तं यवमत्तम् अथर्व० ६।१४०।२" नित्य प्रति मुनासिब भोजन करने की आज्ञा देता है। अतः कतई उपवास का रोजों की सूरत में करना वेद विरुद्ध होने से मानने के योग्य नहीं है।

(५३६) प्रश्न—वेदने "ब्राह्मणोऽस्यमु खमासीत्" इस मन्त्र से यह बतलाया कि ब्राह्मण.क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र,क्रम से विराट के मुख बादु ऊरु पाद से उत्पन्न हुए इस वेद मन्त्र का तो स्वामी जी ने मज़ाक कर डाला कि यह बात ग़लत है इस मन्त्र के पूरे अभिप्राय को स्पष्ट करने वाला लोकानांतु विवृद्धयर्थं जो मनु का श्लोक था उसको स्वामी जी ने वेद विरुद्ध बतलाया और "शूद्रो ब्राह्मणतामेति"इस मनु के श्लोक को वेदानुकूल बता कर वर्ण व्यवस्था को गुण कर्म स्वभाव से सिद्ध किया और जन्म से वर्णव्यवस्था का खण्डन कर दिया। गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था किसी भी वेद, धर्म शास्त्र, दर्शन, में नहीं लिखी यह भी बतलाना होगा कि "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह श्लोक वेद के किस मन्त्र के अनुकूल है। पृ० १२७ पं० ५

उत्तर—स्वामी जी ने मन्त्र का मजाक नहीं उड़ाया अपितु आपके वेद विरुद्ध और असम्भव अर्थ का मजाक उड़ाया है और बतलाया है कि चूं कि"सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम" वेद मन्त्र में परमात्मा को शरीर रहित वर्णन किया गया हैं। इस लिए परमात्मा का शरीर मान कर उसके मुख बाहु ऊरुपाद से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र का पैदा करना स्वयं वेद से विरुद्ध है अतः इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है अपितु यह अर्थ है कि "जो पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह ब्राह्मण, बल वीर्य का नाम बाहु है वह जिस में अधिक हो सो क्षत्रिय, कटि के आधो भाग और जानु के उपरि भाग का ऊरू नाम है। जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे,आवे,प्रवेश,करे वह वैश्य

और जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है " इस मन्त्र में ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य,शूद्र, को मुख बाहु ऊरू पाद की उपमा देकर बतलाया है कि उस परमात्मा की सृष्टि में जो मनुष्य जिस वर्ण के योग्य हो वह उसी वर्ण में गिना जावे। इस मन्त्र से परमात्मा ने जन्म से वर्ण व्यवस्था का खंडन करके गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था का प्रति पादन किया है। इसलिये मनुका " लोकानां तु विवृद्ध यर्थ" श्लोक इस मन्त्र के विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" श्लोक इस वेद मन्त्र के अनुकूल होने से प्रमाण है। "ब्राह्माणो ऽस्य" तथा " शूद्रो ब्राह्मणता मेति " की विशेष व्याख्या तथा आक्षेपों का उत्तर देखो वर्ण व्यवस्था विषय में। आपका सिद्धान्त कि जन्म से वर्णव्यवस्था है " ब्राह्माणोऽस्यः वेद के इस मन्त्र के कतई विरुद्ध है। क्या पृथिवी पर किसी सनातन धर्मी माता ने कोई वीर पुत्र पैदा किया है। जो ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप्यं निसर्गाद् ब्राह्मणः शुभे। क्षत्रियो वैश्य शूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥६॥ ( महा० अनुशा० अ० १४३ )

इस जन्म से वर्ण व्यवस्था बताने वाले श्लोक को वेदानुकूल सिद्ध कर सके ॥

(५४०) प्रश्न—" गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेत हारैः समंतत्र दश रात्रेण शुध्यति ॥६५॥ (मनु०५)

जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक शरीर को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है "

मनुस्मृति के इसी अध्याय में लिखा है कि—

शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्य पंच दशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥८३॥

ब्राह्मण दश दिन और क्षत्रिय बारह दिन एवं वैश्य पंद्रह दिन तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है।

स्वामी जी ने यहां पर "गुरोः प्रेतस्य" इसको अपनी जबरदस्ती से वेदानुकूल और "शुद्धयेद्विप्रो" इस श्लोक को वेद विरुद्ध माना। वेद में पितृ मेध का तो विधान है। किन्तु मरे हुए को दाग देने वाला और उसके साथ जाने वाले दश दिनों में शुद्ध होते हैं। यह कहीं भी नहीं लिखा। क्योंकि शुद्धि का विषय ही वेद में नहीं है। आर्य्य समाज में ऐसा कोई मनुष्य न पैदा हुआ है न आगे को हो सकता है। जो "गुरोः प्रेतस्य" इस श्लोक की वेदानुकूलता और "शुद्धयेद्विप्रो" इसका वेद विरोध सिद्ध करदे। पृ० १३२ पं ६ |

उत्तर—यहां पर दूसरे समुल्लास में स्वामी जी ने "गुरोः प्रेतस्य" यह श्लोक महज़ यह बात बतलाने के लिये दिया है कि "प्रेत" नाम मृतक शरीर का है। प्रेत किसी और वस्तु का नाम नहीं है। स्वामी जी ने यह श्लोक यह बतलाने के लिये नहीं दिया कि मृतक को जलाने वालों की शुद्धि कितने दिन में होती है। क्योंकि न तो यहां मृत्तक संस्कार का प्रकरण है। और न हि स्वामी जी को मृत्तक संस्कार के पश्चात् इस प्रकार की शुद्धि इष्ट है। यहां पर प्रेत शब्द का अर्थ बतलाने के लिये सारे श्लोक का अर्थ कर दिया गया है। देखिये स्वामी जी संस्कार विधि के अंत्येष्टि प्रकरण में क्या लिखते हैं कि मृतक को जलाने के पश्चात् "जब शरीर भस्म हो जावे पुनः सब जने वस्त्र प्रक्षालन स्नान करके जिसके घरमेंमृत्यु हुआ हो उसके

घर की मार्जन, लेपन, प्रक्षालनादि से शुद्धि करके पृ० ८—१३ में लिखे प्रमाणे स्वस्ति वाचन शान्ति प्रकरण का पाठ और पृ० ४—८ में लिखे ईश्वरोपासना करके इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्ति प्रकरण के मन्त्रों से जहां अंक अर्थात् मंत्र पूरा हो वहां 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके सुगन्ध आदि मिले हुऐ घृत की आहुति घर में देवें। कि जिससे मृत्तक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे। और सब का चित्त प्रसन्न रहे। यदि उस दिन रात्री हो जाय तो थोड़ी सी आहुति देकर, दूसरे दिन प्रातः काल उसी प्रकार स्वस्ति वाचन और शांति प्रकरण के मन्त्रों से आहुति देवें। तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो। तब मृत्तक का कोई सम्बन्धि श्मशान में जाकर, चिता से अस्थि उठा के, उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक रख देवें। बस इसके आगे मृत्तक के लिये कुछ भी कर्म कर्तव्य नहीं है। क्योंकि पूर्व ( भस्मान्त ꣳ शरीरम् ) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाह कर्म और अस्थिसंचय से पृथक मृत्तक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्तव्य नहीं है ( संस्कार विधि अंत्येष्टि प्रकरण ) इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी तीसरे दिन के पश्चात् मृत्तक के निमित्त से कोई सूतक पातक नहीं मानते। अतः "गुरोः प्रेतस्य" श्लोक का दश दिन में शुद्धि का प्रकरण भी स्वामी जी को इष्ट नहीं है। और इस श्लोक का उतना अंश ही स्वामी जी को प्रमाण है कि जिससे 'प्रेत' शब्द का 'मृत्तक शरीर' अर्थ सिद्ध होता है। चूंकि

" प्रेतो यन्तु व्याध्यः। अथर्व० ७।११४।२" में 'प्रेत' नाम मृत्तक शरीर का है। अतः "गुरोः प्रेतस्य" श्लोक का वह भाग

जो कि मृत्तक शरीर का नाम प्रेत वर्णन करता है वेद के अनुकूल है। और—

"भस्मान्तꣳशरीरम्। यजु०४०।१५" में लिखा है कि शरीर की भस्म सम्बन्धि क्रिया के पश्चात् मृत्तक के निमित्त कोई कर्तव्य नहीं है। अतः "गुरोः प्रेतस्य" श्लोक का वह भाग जो मृत्तक को जलाने के पश्चात् दश दिन में शुद्धि बतलाता है। तथा शुद्धि येद्विप्रो" संपूर्णश्लोक वेद के विरुद्ध है। आप स्वयं मानते हैं कि मृत्तकके जलाने के पश्चात शुद्धि का विषय वेद में नहीं है। और वेद में भस्म क्रिया के पश्चात् किसी भी कर्तव्य का निषेध हमने दिखा दिया। फिर "शुद्धये द्विप्रो" के वेद विरुद्ध होने में संदेह ही क्या है। क्या कोई माई का लाल सनातन धर्म में पैदा हुआ है जो "भस्मान्त ꣳ शरीरम्" की मौजूदगी में गरुड पुराण में प्रतिपादित एकादशाहे प्रेतस्य यस्योत्सृज्येत् नो वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्यदत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥४०॥

(गरु० प्रैत० अ० ५) वृषोत्सर्ग गङ्गा में अस्थि प्रवाह आचार्य्य का निबेड़ना 'बरनी करना' गया पिंड श्राद्ध आदि प्रेत कर्म जो मृत्तक के निमित्त किये जाते हैं उन को वेद से सिद्ध कर सके।

(५४१) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३० में लिखा है कि—

"दृष्टि पूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत्

सत्य पूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्। ॥४६॥ (मनु० ६)

नीचे दृष्टि कर ऊंचे नीचे स्थान को देख के चले। वस्त्र से छान के जल पीवे। सत्य से पवित्र करके वचन बोले। मन से विचार के आचरण करे।"

अब इस की वेदानुकूलता सिद्ध करिये। वेद में न तो कहीं यह लिखा है कि तुम देख कर चलो और न यही लिखा है कि जल को कपड़े से छान कर पीओ। मन्त्र भाग में यह भी विधि नहीं आई कि सच बोलो। वेद में कहीं यह भी नहीं लिखा कि मन से पवित्र करके आचरण करो। यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। पृ० १३३ पं० २३।

उत्तर—आप के विचार में यदि यह श्लोक वेद के अनुकूल नहीं है तो क्या वेद के विरुद्ध है तो आप वेद के ऐसे मन्त्र पेश करें जिन में यह लिखा हो कि "आंखें बंद करके चलो। गन्दा मन्दो मैला कुचैला बिना साफ किया पानी पीओ, झूठ बोलो, बिना, सोचे विचारे काम करो। यदि आप ऐसे मन्त्र नहीं पेश कर सकते कि जो इस श्लोक को वेद विरुद्ध साबित कर सकें तो निःसन्देह यह श्लोक ऋषि ग्रंथ में कथित होने से वेदानुकूल है। जैसा कि मनु की इस में साक्षी है कि—

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्व ज्ञान मयो हि सः ॥७॥(मनु० २)

जो कोई जिस का धर्म मनु ने वर्णन किया है वह सब वेद में कहा हुआ है क्योंकि वह वेद संपूर्ण ज्ञान का भंडार है ॥७॥

यदि आपके कहने के अनुसार यह भी मान लिया जावे कि उक्त श्लोक में कथित चार बातों की वेद में स्पष्ट आज्ञा नहीं है तो भी ये चारों बातें वेद के विरुद्ध न होने तथः आर्ष होने से वेदाकूल ही हैं। किन्तु इन चारों के विषय में तो वेद की आज्ञा भी मौजूद है जैसा कि—

(१) "चक्षुरक्षणोः" अथर्व० १६। ६०। १ ॥
मेरी आंखों में दृष्टि हो

"पादयोः प्रतिष्ठा" अथर्व० १६ । ६० । २॥
मेरे पावों में प्रतिष्ठा अर्थात् शोभा युक्त गति हो ।
वेद के इन वचनों की ही मनु ने सरल व्याख्या की है कि—
"दृष्टि पूतं न्यसेत् पादम्"
(२) शुद्धा नआपस्तन्वे क्षरन्तु । अथर्व० १२।१। ३० ॥
हमारे शरीर के लिये शुद्ध निर्मल जल बहता रहे ।
हमारे शरीर के लिये हितकारी पवित्र तथा निर्मल जल
ं हो सकता है। इस की ही सरल व्याख्या मनु ने की है कि–
"वस्त्र पूतं जलं पिवेत्"
(३) "इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥" यजु० १ । ५ ॥
यह मैं झूट से हट कर सत्य को प्राप्त करता हूं ॥
इसी वेद वाक्य की सरल व्याख्या मनु ने की है कि—
"सत्य पूतां वदेद्वाचम्"
(४) यस्मान्न ऋते किंचिन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव
ंल्पमस्तु ॥ यजु० अ० ३४ मं० ३ ॥
जिस के बिना कोई भी काम नहीं किया जाता वह मेरा
शुभ संकल्प वाला हो ।
"परोऽपेहि मनस्पाप" अथर्व० ६ । ४५ । १५ ॥
हे मन के पाप ! दूर हट जा ।
इन ही वेद वचनों की मनु ने सरल व्याख्या की है कि—
मनः पूतं समाचरेत्"
इन वेद वाक्यों से साबित है कि म नुका उक्त श्लोक सर्वथा
के अनुकूल है । अब यदि सनातन धर्म्म सभा में कोई
ा जागता ऊपदेशक हो तो वह यह साबित करे कि—

"कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ते तथैव च।

ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च अनृते नास्ति पातकम् ॥४६॥

स्त्रियों में, विवाह में, गौओं के भोजन में, और ब्राह्मणों की आपत्ति में यदि झूठ बोला जावे तो उसमें पातक नहीं है"

(महा० द्रोण०अ०१९१) यह श्लोक कौनसे वेद के अनुकूल है।

(५४२) प्रश्न—राजा के विषय में मनु जी ने कुछ श्लोक लिखे हैं वे वेदानुकूल समझ स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत किये हैं। श्लोक ये हैं —

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।

चन्द्रवित्तेश योश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥१॥

तपत्यादित्य वच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।

न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम ॥२॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्म राट।

स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥३॥(मनु०७।४-६-७)

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्य कर्ता, वायु के समान सब के प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने हारा, यम पक्षपात, रहित, न्यायाधीश के समान वर्तने वाला। सूर्य के समान न्याय धर्म, विद्या का प्रकाशक अंधकार अर्थात् अविद्या, अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने हारा वरुण अर्थात् बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्द दाता, धनाध्यक्ष के समान कोषों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे ॥१॥ जो सूर्यवत् प्रतापी सब के बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपाने हारा जिस को पृथिवी

में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न होवे ॥२॥ और जो अपने प्रभाव से अग्नि , वायु, सूर्य, सोम, धर्म्म, प्रकाशक धन वर्धक दुष्टों का बंधन कर्ता बड़े ऐश्वर्य वाला होवे वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे ॥३॥ क्या ये श्लोक वेदानुकूल हैं, मनुस्मृति के ३९० श्लोक स्वामी दयानन्द जी ने उद्धृत किये हैं। इन ३९० श्लोकों में से एक भी श्लोक ऐसा नहीं है कि जिस की वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिये कोई माई का लाल आर्य्य समाजी मैदान में आवे। (पृ० १३४ पं० १०)

उत्तर—धन्य हो महाराज! आपने तो आर्य्य समाज के खंडन की धुन में सनातन धर्म्म का भी सफाया कर दिया। हां आप हठ के पक्के हैं कि "पडौसी की भैंस मर जावे चाहे अपनी दीवार ही गिर पड़े" किन्तु हमारे लिये आपका नाम तजवीज करना कठिन हो रहा है हम सभी भर्तृ हरि के शब्दों में यही कह सकते हैं कि "ते के न जानीमहे" श्रीमान् जी! आप प्रश्न नं० ४६९ में तो मनुस्मृति आदि समस्त श्लोक बद्ध ग्रन्थों का 'गीली लकड़ी में से धूयें की भांति' ईश्वर से ही प्रकट हुए सिद्ध कर रहे थे। अब आपने उसी मनुस्मृति को वेदानुकूल रहने के क़ाबिल भी नहीं समझा। इस को कहते हैं अंधा पक्षपात, यदि स्वामी जी के पेश किये हुए ३२० श्लोक वेद के अनुकूल नहीं हैं। तो क्या वेद के विरुद्ध हैं। यदि वेद के विरुद्ध हैं तो क्या वे श्लोक सनातन धर्म को क़तई मान्य नहीं हैं और वे कौन से वेद मन्त्र हैं जिन के वे विरुद्ध है या वेद विरुद्ध होने की यही कसौटी सनातन धर्म में है कि "जो श्लोक स्वामी दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में उधृदृत कर दिए वे वेद विरुद्ध और जो छोड़ दिए वे वेदानुकूल" कसौटी तो बढ़िया है।

किन्तु महंगी पड़ेगी। कहिये महाराज! आप तो मनु के ३९० श्लोकों को वेद के विरुद्ध बता रहे हैं और मनु जी अपने सारे पुस्तक को वेदानुकूल बतला रहे। जैसा कि—

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्व ज्ञान मयो हि सः ॥७॥ (मनु० २)

जो जिस का जो कोई धर्म मनु ने वर्णन किया है। वह सब वेद में वर्णन है क्योंकि वह वेद सर्व ज्ञानमय है ॥७॥

कहिये अब आपकी बात सच्ची मानें या मनु की, केवल ज़बानी कहने में तो मनु की ही मानी जावेगी। हां यदि आप अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिये वेद मन्त्र देकर मनु का उन से विरोध साबित करदें तो आपकी माननी पड़ेगी। किन्तु यह आपकी आदत नहीं क्योंकि आप तो केवल प्रतिज्ञा करना ही जानते हैं उस को साबित करना आपकी शक्ति से बाहिर है। अच्छा तो आप "प्रतिज्ञा हानि" निग्रह स्थान में आकर पराजय को प्राप्त हो चुके क्योंकि आपकी निसबत मनु जी ज़ियादा क़ाबिल एतबार आदमी हैं। अब रही बात उपरोक्त श्लोकों की सो श्रमान् जी! ये श्लोक सोलह आने वेदानुकूल हैं। मनुस्मृति ने वेद की ही सरल व्याख्या करके राजा के गुण बतलाये हैं। इस से भी अधिक व्याख्या मनु ने अ० ९ श्लोक ३०३ से ३०९ तक की है जो स्वामी जी की व्याख्या के सर्वथा अनुकूल हैं। वेद के मन्त्र निम्न प्रकार से हैं—

(१) सवित्रा प्रसपित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसा ऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवत या प्रसूतः प्रसर्पामि
(यजुर्वेद १०। ३०)

(२) वात त्विषो मरुतोवर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेषसः। पिशंगाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ऋ० ५ । ५७ । ४ ॥

(३) अयमस्तु धन पतिर्धनानामयं विशां विशपति रस्तु राजा। अस्मिन्निन्द्र महिवर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥ ( अथर्व० ४ ।२२। ३ )

( ४ ) अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पति राज्यस्य वेतु स्वाहा। स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ यजु० १० । २९ ॥

भाषार्थ—हे प्रजा और राज पुरुषो ! जैसे मैं संपूर्ण चेष्टा करने वाले वायु के समान प्रशंसित वेदवाणी के समान छेदक और प्रताप युक्त सूर्य के समान सुख रूप पृथिवी आदि पशु के समान और बिजुली के समान हूं। चार वेदों के विद्वान के समान, बल से वरुण के समान; तेज़ ज्योति वाले अग्नि के प्रकाश के समान, चन्द्रमा के समान, दश प्रकाशमान पदार्थों के समान व्यापक ईश्वर के समान प्रेरणा किया हुआ मैं अच्छे प्रकार चलता हूं वैसे तुम लोग भी चलो ॥१॥ वायु के समान यम के सदृश सुन्दर रूप वाला भूरे और लाल रंग के घोड़ों पर चढ़ने वाला निष्पाप विशेष शक्तिमान स्वदेशी कपड़े पहनने वाला, मरने के लिये तय्यार वीर है इस लिये वह महिमा से द्यु लोक के समान विशाल है ॥२॥ यह धनों का धन पति होवे यह प्रजाओं का योग्य पालन करने के कारण राजा होवे। हे प्रभो ! इस में बड़े तेज धारण कर इसके शत्रु को निस्तेज कर ॥३॥ हे राजन् ! जैसे महा पुरुषार्थ युक्त धर्म का रक्षक सेवक अग्नि के समान उत्पन्न हुए पदार्थों

के साथ वर्त्तमान पदार्थोंके मध्य में स्थित हो के सत्य क्रिया से घृतादि होम के पदार्थोंको प्राप्त करता हुआ सूर्य की किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख देता है वैसे धर्म के स्वामी बड़ी सेवा करने वाला तेजस्वी आप राज्य को प्राप्त हूजिये। वैसी ही हे सत्य काम करने वाले सभासद पुरुषो तुम यत्न किया करो ॥४॥

जिस प्रकार से ये श्लोक वेदानुकूल हैं। उसी प्रकार से ही स्वामी जी के समस्त पेश किये हुए ३९० श्लोक भी वेद के मन्त्रों की सरल व्याख्या ही है और वे वेद के अनुकूल हैं। हां आपकी क्रमाश के लोगों के कुछ वेद विरुद्ध श्लोक मनु में अवश्य मिला दिये हैं। जिनका स्पष्ट रूप से वेद से विरोध है। जैसे कि—

(१) न जातु ब्राह्मणं हन्या त्सर्व पापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्य्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥३८॥
(मनु० ८।३८०)

(२) न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्यवधं राजा मनसापिनचिन्तयेत् ॥ (मनु० ८।३८१)

(३) श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ३१८ ॥

(४) एवं यद्यप्य निष्टेषु वर्तन्ते सर्व कर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥

(५) अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्नि दैवतंमहत् ॥३१७॥
(मनु० ९)

भाषार्थ—सब पापों में यदि ब्राह्मण स्थित भी हो तब भी ब्राह्मण को कभी भी नहीं मारना चाहिये। इस को सारा धन देकर बिना मार पीट कर ज़ख़मी किये अपने राज्य से बाहर करदे ॥१॥ पृथिवी पर ब्राह्मण के वध से बढ़ कर और कोई पाप नहीं है इस लिये इस के वध के बारे में राजा को कभी मन से भी विचार नहीं करना चाहिये ॥२॥ तेजस्वी अग्नि श्मशान में भी दूषित नहीं होती और यज्ञों में हवन करने से अधिक से अधिक बढ़ती है ॥३॥ इस प्रकार से ब्राह्मण यद्यपि संपूर्ण पाप कर्मों में वर्तमान हों तो भी सर्वथा पूजा करने के क़ाबिल हैं। क्योंकि वे परम देवता हैं ॥४॥ चाहे विद्वान् हो चाहे अविद्वान् होब्राह्मण महान् देवता है। जैसा कि चाहे यज्ञ में वर्तमान हो चाहे न हो तो भी अग्नि महान् देवता है॥५॥ अब ये ५ श्लोक प्रथम तो मनु के स्वयं विरुद्ध हैं क्योंकि मनु कहता है कि—

(१) पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥३३५॥
(२) गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥३५०॥ (मनु०९)
(३) पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडाल व्रतिकाञ्छठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्चवाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥ मनु० २

भाषार्थ—पिता, आचार्य, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र, पुरोहित जो अपने धर्म में क़ायम न रहे राजा के लिये उन में से कोई भी अदण्ड्य ( क़ाबिल मुआफी ) नहीं है ॥ १ ॥ गुरु, बाल, बूढ़ा, ब्राह्मण विद्वान्, चाहे कोई भी क्यों न हो यदि वह पापी है तो राजा का धर्म्म है कि उसे बिना विचारे मारदे ॥२॥ जो ब्राह्मण पाखंडी, कुकर्म करने वाले, विडाल व्रति अर्थात

छली, कपटी शठ कुतर्कवादी, बगुला भक्त, तथा धूर्त हों उन की वाणी मात्र से भी पूजा नहीं करनी चाहिये ॥३॥ दूसरे ये पांच श्लोक ऊपर दिये वेद मन्त्रों के क़तई विरुद्ध हैं । क्योंकि ऊपर के मन्त्रों में राज्ञा को यम तथा वरुण भी कहा है । और यम तथा वरुण के अर्थ हैं कि—

(१) यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ।
तथा राजा नियन्तव्याः प्रजा स्तद्धियम व्रतम् ॥३०७॥

(२) वरुणेन यथा पाशै र्बद्ध एवाभि दृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम ॥३०८॥ (मनु० ९)

जैसे यम प्यारे तथा शत्रु को समय प्राप्त होने पर क़ाबू में कर लेता है वैसे ही राजा को भी प्रजा का नियन्त्रण करना चाहिये यही राजा का यम व्रत है ॥१॥ जैसे वरुण से पाशों द्वारा बंधा हुआ ही दीखता है । वैसे ही राजा को पापियों का निग्रह करना चाहिये राजा का यही वारुण व्रत है ॥२॥

अब है कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित मन्यः जो इन के स्वयं मनु के विरुद्ध पांच श्लोकों को वेद के अनुकूल साबित कर सके ।

(५४३) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० १२३ में शतपथ का प्रमाण देकर लिखा है कि "ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वावनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत् (शत० कां० १४)" मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और होके सन्यासी होके अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है"

शतपथ के जितने भी प्रमाण सत्यार्थ प्रकाश में लिखे गये हैं । कोई भी मनुष्य उनकी वेदानुकूलता सिद्ध नहीं कर सकता

उत्तर—आप तो शतपथ ब्राह्मण को वेद सिद्ध करने में एडी चोटी का ज़ोर लगा रहे थे। अब उसके प्रमाण भी वेदानुकूल नहीं रहे। क्यों न हो स्वामी दयानन्द जी ने जो अपने ग्रन्थों में दे दिये। बस उतने ही प्रमाण वेदानुकूल नहीं हैं जो स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में लिख दिये। बाकी सारा शतपथ वेदानुकूल ही नहीं अपितु स्वयं ही वेद है। यह है सनातन धर्म के पण्डितों का अंध विश्वास, पक्षपात और मिथ्या दुराग्रह, जिस से कि इन को सचाई नज़र ही नहीं आती।

कहिये महाराज! यदि स्वामी जी के दिये हुए शतपथ के प्रमाण वेदानुकूल नहीं हैं। तो क्या वेद विरुद्ध हैं और यदि वेद विरुद्ध हैं तो वे वेद मन्त्र पेश करो जिन के ये प्रमाण विरुद्ध हैं और यदि आप इनके विरोध में कोई वेद मन्त्र पेश नहीं कर सकते तो आर्ष होने से सारे ही प्रमाण वेदानुकूल हैं। रही बात उपरोक्त प्रमाण की। सो यदि यह वेदानुकूल नहीं है तो आप ऐसा मन्त्र पेश करें जिस के यह प्रमाण विरुद्ध हो अर्थात् जिस वेद मन्त्र से यह साबित हो सके कि ये चारों आश्रम वेद के विरुद्ध हैं या इन का क्रम वेद के विरुद्ध है। यदि आप इस प्रमाण के विरोध में कोई वेद मन्त्र पेश नहीं कर सकते तो आप प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आकर पराजित हो चुके और हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि शतपथ का उपरोक्त प्रमाण वेदानुकूल है और यह प्रमाण वेद के मन्त्रों की सरल व्याख्या है जैसे कि—

(१) ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्य्येण देवेभ्यः स्वराभरत॥१६॥ अथर्व० ११।५
(२) इहैवस्तं मा व्यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥४६॥ (ऋ० १०।८५)

(३) अरण्यान्यरण्यान्यसौ पा प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि नत्वाभीरिव विन्दती ॥१॥ (ऋ०१०।१४६)
(४) अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रत पते त्वयि ।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽहम् ॥२४॥ (यजु० २०)

भाषार्थ—ब्रह्मचर्य्य रूप तप से विद्वान् मृत्यु को नाश करते हैं। जीवात्मा ब्रह्मचर्य्य से ही इन्द्रियों के लिये सुख, तेज, ज्योति धारण कर सकता है ॥१॥ तुम दोनों पति पत्नी यहां ही घर में रहो। एक दूसरे से पृथक मत होवो। पुत्रों तथा पौत्रों के साथ क्रीडा करते हुए अपने घर में आनन्द से रहते हुए तुम दोनों पूर्ण आयु प्राप्त करो॥२॥ यह जंगलों जंगलों घूमनेवाला वानप्रस्थी गाँवों से दूर प्राप्त होता है। अर्थात् गावों में नहीं रहता। परंतु उन से दूर रहता है। वह तू नगरों तथा गावों में जाने की बात या दशा को क्यों नहीं पूछता। तुझ को इस निर्जन वन में घूमते हुए क्या भय नहीं लगता है ॥३॥ हे व्रतों की रक्षा करने वाले . आगे ले जाने वाले प्रभो, मैं समिधा को तुझ में सर्वथा धारण करता हूं। मैं व्रत और श्रद्धा को प्राप्त होता हूं। मैं दीक्षा प्राप्त सन्यासी तुझ को अपने हृदय में प्रदीप्त करता हूं।

इन चारों मंत्रों में क्रमशः चारों आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास की आज्ञा है। इन्हीं के आधार पर शतपथ ने उपरोक्त लेख दिया है। अतः स्वामी जी का दिया हुआ शतपथ का प्रमाण सर्वथा वेद के अनुकूल है। हां आप जैसे स्वार्थी लोगों ने शतपथ में भी वेद विरुद्ध लेख शामिल कर दिये हैं जैसा कि

अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिं गमः ।
शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान् वेदा ननु ।
ब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा
सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्षेण वार्षभेण वा
(शत० कां० १४)

भाषार्थ—और जो चाहे कि मेरा पुत्र पण्डित, वागीश, सभाजीत, शुभ वाणी का वक्ता पैदा हो, चारों वेदों का वक्ता हो और पूर्ण आयु को प्राप्त हो। वे माता पिता दोनों मांस और चावल पका कर घी डाल कर खावें। वे समर्थ होंगे और पुत्र पैदा करेंगे। वह मांस गौ या बैल का हो।

अब यह बैल वा गौ के मांस खाने की आज्ञा वेद के फ़तई विरुद्ध है क्योंकि वेद में लिखा है कि—

(१) यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।

तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

(अथर्व० १।१६)

यदि हमारी गौ की हिंसा करेगा और यदि हमारे अश्व और हमारे मनुष्य की हिंसा करेगा तो तुझ को सीसे से हम वेधते हैं। जिससे हमारे में वीरों का नाश करने वाला कोई न हो।

शेरभक शेरभक पुनर्वो यंतु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः यस्यस्थतमत्तयोवः प्राहैत्तमत्त स्व मांसान्यत्त ॥ अथर्व० २।२४।१।

हे नीच हिंसक! हे वध करने वाले! सर्व भोजियो! तुम्हारे अनुयायी लौट जायें। तुम्हारा हथियार लौट जाये, तुम जिस के संबंधि हो उस को खाओ। जिसने तुम्हें भेजा उस को खाओ अपने मांस को खाओ।

ये दोनों वेद मंत्र गौ बैल आदि पशुओं के मारने तथा मांस खाने का निषेध करते हैं। अतः शतपथ का उपरोक्त प्रमाण सर्वथा वेद के विरुद्ध है क्या शतपथ के इस पाठ की वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिये कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित मैदान में निकलेगा।

(५४४) प्रश्न—शतपथ में लिखा है कि—

प्रजापति र्ह वै स्वांदुहितरमभिदध्यौ । दिवं द्योषसंवा मिथुन्येन यास्यामितिता ꣳ संबभूव ॥१॥ तद्वै देवाना माग आस । य इत्थ ꣳ स्वां दहितरमस्माकं स्वसारं करो तीति ॥२॥ तेह देवा ऊचुः । योऽयं देवः पशूनामीष्टे ऽति संधं वा ऽयंचरतिय इत्थ ꣳ स्वां दुहित रम स्माकं स्वसारं करोति विध्येममिति त ꣳ रुद्रो ऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामिरेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं त दास ॥३॥

प्रजा पति ने अपनी दुहिता की इच्छा की । दिवरूप प्रजा पति ने उषा रूप दुहिता से संगम किया ॥१॥ यह देवताओं की दृष्टि में पाप हुआ । देवता कहने लगे कि यह ब्रह्मा दिव रूप प्रजापति बनकर हमारी बहिन और अपनी पुत्री उषा से जो समागम करता है । यह भारी पाप करता है । देवताओं ने इस समाचार को महादेव से कहा महादेव ने यह सुनकर ब्रह्मा को बाण से बीधा । इसी बीच में ब्रह्मा के वीर्य्य का पतन हो गया ॥

जब आर्य्य समाजी ब्रह्मा सरस्वती की कथा को हमारे आगे रखते हैं । तब हम कह देते है कि जैसा श्रीमद्भागवत में लिखा है । वैसा ही शतपथ में भी है । तब आर्य्य समाजी कहते हैं कि यह शत पथ वेद विरुद्ध है । इस बात के सुनते ही हम कहते हैं कि शतपथ का ये पाठ वेदानुकूल है देखो ।

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् ॥

( ऋ० अ० ८० अ० १ वर्ग २७ सू० ६१ मं ७ )

पिता अपनी लड़की के पीछे भागा

इसको सुनकर आर्य्य समाजियों के विस्तर बंधने लगते हैं । कहो शतपथ के जो प्रमाण मन्त्र भाग से नहीं मिलते

उनको तो दयानन्द वेदानुकूल मानते हैं। और शतपथ की जो श्रुतियां वेद से मिलती हैं। उनको वेद विरुद्ध कह देना क्या घोर पाप नहीं है। पृ० १३६ पं १५।

उत्तर—धन्य हो महाराज! स्वामी दयानन्द जी ने शतपथ के प्रमाण अपने ग्रन्थों में दिये हैं। उनकी वेदानुकूलता तो आपको नज़र न आई। किन्तु इस प्रमाण की वेदानुकूलता आपको नज़र आगई। और वह भी पौराणिक चतुर्मुख ब्रह्मा का अपनी पुत्री पर आशिक होकर उसके पीछे भागने वा उसको पकड़ कर उससे मैथुन की प्रार्थना करने आदि निन्दनीय घृणित तथा पाप मय कर्मों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिये। क्यों न हो ऐसे कर्मों की वकालत सनातन धर्म के सिवाय और कर भी कौन सकता है। हम आपको सनातन धर्म का नमक हलाल करने पर तो बधाई देते हैं। किंतु यह बतलाय देते हैं कि ब्रह्मा के काम को वेदानुकूल साबित करने के लिये जो आप प्रमाण पेश कर रहे हैं। आपका अनुमोदन नहीं करते। क्योंकि उन प्रमाणों में चतुर्मुख पौराणिक ब्रह्मा का नाम तक भी नहीं है। अपितु उन प्रमाणों में अलंकार द्वारा "सूर्य्य तथा उषा" और "मेघ और पृथिवी" का वर्णन है। देखिये शतपथ ने तो स्वयं बता दिया कि "दिवं वोषसं वा इत्यादि" जिसका अर्थ आपने स्वयं किया है कि "दिवरूप प्रजापति ने उषा रूप दुहिता से समागम किया" इससे साफ साबित है कि यहां पर प्रजापति से चतुर्मुख ब्रह्मा तथा दुहिता से ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती मुराद नहीं है। अब दिवरूप प्रजापति कौन है और उषा कौन सो शतपथ में लिखा है कि—

प्रजापति वैं सुपर्णो गुरुत्मानेष सविता ॥ ( शत० कां० १० अ० २ ब्रा० २ कं० ४ ) प्रजापति नामा सूर्य्य का है।

तीन चार घड़ी रात्री शेष रहने पर जो पूर्व दिशा में रक्तता दीख पड़ती है। उसका नाम उषा है। वह सूर्य्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण उसकी कन्या के समान है। इन दोनों के समागम से दिन पैदा होते हैं। उन्हीं का नाम देवता है। क्योंकि बारह आदित्यों में ये आजाते हैं। महादेव नाम ब्रह्म का है। क्योंकि वह सब देवों से बड़ा है। और वीर्य नाम बल का है। अब इन सब को दिमाग़ में रखकर शतपथ के पाठ के अर्थ लगावें तो यह अर्थ होंगे कि—

" सूर्य्य ने उषा से समागम किया। दिन रूप देवताओं ने ब्रह्म रूप महादेव से शिकायत की। ब्रह्म रूप महादेव ने सूर्य्य रूप प्रजापति को बींध दिया अर्थात् सायं काल रूपी तीर मारा जिससे सूर्य्य का वीर्य अर्थात् बल क्षीण होगया अर्थात् रात्री पड़ गई "

कहिए महाराज ! क्या आपके भागवतादि पुराणों में भी कहीं " ब्रह्मा का पुत्री के पीछे भागना " लिखकर यह बतलाया हुआ है कि " यहां ब्रह्मा नाम सूर्य्य का तथा सरस्वती नाम उषा का है " यदि नहीं लिखा तो पुराणों की कथा को शत पथ के अनुकूल साबित करने का प्रयत्न 'बालु रेत में से तेल निकालने के समान' व्यर्थ और निष्फल है। बस इस शतपथ के अनुकूल ही ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ है कि—

" सूर्य्य उषा के पीछे भागा " अथवा

तत्र पिता दुहितु गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः ।
( निरुक्त अ० ४ खं० २१ )

इस निरुक्त के अनुसार यह अर्थ हो सकता है कि—

" बादल ने पृथिवी से समागम किया "

अतः ये दोनों ही प्रमाण पौराणिक कथा की ताईद नहीं करते और ताईद करें भी कैसे जबकि वेद नज़दीकी रिश्ते की स्वयं तरदीद करते हैं। जैसे कि—

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि।
परीष्यः पुरुप्रियोऽग्नेत्वं तरा मृधः ॥७२॥ ( यजु० १२ )

हे तेजस्वि पुरुष ! अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों वाले आप इस श्रेष्ट रूपगुण शीलवती के लिये दूर देश तथा सम्बन्ध से यहां आये हैं। आप पालना करने वाले और सर्व प्रिय है ॥७२॥ तथा निरुक्त ने भी वेद में आये दुहिता शब्द का अर्थ करते हुये लिखा है कि—

" दुहिता दुर्हिता दूरे हिता" (निरु० अ० ३ खं ४)

दुहिता पुत्री को इस लिये कहते हैं कि यह दूर दी हुई हितकारक होती है। यहां दूर से दूर देश तथा दूर सम्बन्ध दोनों ही इष्ट हैं।

इससे साफ साबित है कि वेद नज़दीकी रिश्ते का बल पूर्वक खंडन करता है। फिर पुराणों में प्रतिपादित नज़दीकी रिश्तों को वेदानुकूल सिद्ध करना मूर्खता नहीं तो क्या है।

हां पुराणों में नज़दीकी रिश्ते की इजाज़त मौजूद है जैसा कि—

एतस्मिन्नन्तरे वक्त्रा त्समुद् भूता च शारदा।
दिव्यां सुन्दरं तस्याः दृष्ट्वा ब्रह्मा समरातुरः ॥२॥
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मर पीड़ितः।
रतिं देहि महाघूर्णे रक्षमां काम विह्वलम् ॥३॥

इति श्रुत्वा तु सामाता रुषाप्राह पितामहम् ।
पंचवक्त्रोऽयमशुभं न योग्यस्तवकंधरे ॥४॥ ( भविष्य० प्रति सर्ग पर्व खं० ४ अ० १३ )

ततस्ते मुनयः सर्वे मोहितश्चत्यहं मुने ।
संहितो मनसा किंचिद्विकारं प्रापुरादितः ॥२०॥
इत्थं पाप गतिं वीक्ष्य भ्रातृणां चपितुस्तथा ।
धर्म्मः सस्मार शंभुं वै तदाधर्मावनं प्रभुम् ॥३०॥
( शिव० रुद्र० सती० अ० ३ )

दक्षश्च मोहितः शंभो र्मायया ब्राह्मणः सुतः ।
भ्रातृभिः स भगिन्यां वै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा ॥२६॥
ब्रह्मा च बहुवारंहि मोहितः शिव मायया ।
अभवद्भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च ॥२७॥
( शिव० उमा० अ० ४ )

या तु ज्ञान मयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम् ।
कोऽपिपुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत ॥२६॥
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णु देवः स्वमातरम् ।
भगिनीं भगवाञ्छंभु र्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७॥
इति श्रुत्वा वेद मयं वाक्यं चादिति संभवः ।
विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञा गृहीत्वा श्रेष्ठवान भुत् ॥२८॥
(भविष्य० प्रति० ख० ४ अ० १८ )

वृष भानोश्च वैश्यस्य साचकन्या बभूवह ॥३६॥
सार्द्धंरायाण वैश्येन तत्संबंधं चकार सः ॥३८॥
कृष्ण माता यशोदा या रायाणस्तत्सहोदरः ।
गोलोके गोपकृष्णांशः संबंधात्कृष्ण मातुलः ॥४१॥
(ब्रह्मवैवर्तु० प्रकृति० अ० ४६ )

पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥८८॥
कन्यकां मातुलानां चदाक्षिणात्यः परिग्रहः ॥११५॥

(ब्रह्मवैवर्तु खं० ४ अ० ११५)

क्या संसार भर की सनातन धर्म्म प्रतिनिधियों में यह दम है कि वे उपरोक्त पुराणों में प्रतिपादित बेटी' बहिन' माता' भतीजी' मामी तथा मामा की पुत्री से विवाहों को वेदानुकूल सिद्ध कर सकें।

(५४५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३९ में लिखा है कि—

पुरुषोवावयज्ञस्यतस्य यानिचतुर्विꣳ शति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं, चतुर्विꣳ शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणावाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति

(छान्दो० ३। १६)

इस श्रुति को वेदानुकूल समझ कर सत्यार्थ प्रकाश में लिखा गया है। किन्तु आर्य समाजियों से जब इस की वेदानुकूलता पूछी जाती है। तब वे घोड़ दौड़ मचा देते हैं। सिवाय भाग जाने के और उन को कुछ नहीं सूझता और जब हम छान्दोग्य की—

"यथा पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यन्ते ॥ ३ ॥

(छान्दोग्य खं १४)

यह श्रुति पेश करके सिद्ध करते हैं कि ज्ञानी पुरुष को कर्म बंधन नहीं होता। तब आर्य्य समाजी कह उठते हैं कि यह श्रुति वेद विरुद्ध है। कौन कहता है कि यह श्रुति वेद विरुद्ध है इस श्रुति के भाव को कहने वाले वेद मन्त्र को भी देखलें।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्व यि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

(यजु० ४०)

इस लोक में कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जिओ, इस प्रकार वेद प्रतिपादक कर्म करने से मनुष्य को कर्म नहीं चिपटते, इस प्रकार से वेदानुकूल को वेद विरुद्ध और वेद विरुद्ध को वेदानुकूल कह कर अपनी नीचता का परिचय देते हैं। इसी प्रकार माण्डूक्य, कठ, कैवल्य, तैत्तिरीय, श्वेताश्वेतर, मुण्डकादि उपनिषदों के अनेक प्रमाण सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत किये हैं। क्योंकि वे दयानन्द की दृष्टि में वेदानुकूल हैं। किन्तु हम इस बात की घोषणा करते हैं कि कोई भी आर्य्य वीर रमणी ने ऐसा वीर पुत्र पैदा नहीं किया कि जो स्वार्थ वश लिखे हुए दयानन्द के इस सफेद झूठ को सत्य सिद्ध करे। पृ० १३७ पं० २१।

उत्तर—सनातन धर्म की हालत भी आज कल बड़ी क़ाबिल रहम है। इन विचारों को छिपने के लिये कोई स्थान और भागने के लिये कोई भी रास्ता नहीं मिलता। स्वामी जी ने वेदानुकूलता का सत्य सिद्धान्त रूप सूर्य्य क्या प्रकाशित किया कि इन विचारों की उल्लुओं की भांति आंखें चुन्धयाने लगीं और लगे भांति २ की बोलियां बोलने। उदाहरणार्थ आपने ही प्रश्न नम्बर ४६६ में उपनिषदों को वेदों की भांति ईश्वर से प्रकट होना माना है। फिर प्रश्न नं० ४६३ में आप ने उपनिषदों को वेद माना है। अब यहां पर उपनिषदों की वेदानुकूलता से ही आप इनकार कर रहे हैं। कहिये श्रीमान् जी स्वामी जी ने उपनिषदों के जो प्रमाण अपने ग्रन्थों में दिये हैं। यदि वे वेद के अनुकूल नहीं हैं तो क्या वेद के विरुद्ध हैं। यदि विरुद्ध है तो वे वेद मन्त्र पेश कीजिये जिनके साथ इन प्रमाणों का विरोध है। यदि कोई वेद मन्त्र आप विरोध सावित करने के लिये पेश नहीं कर सकते तो आर्ष प्रमाण होने से स्वयं ही वेदानुकूल सिद्ध हो गये

अब रही बात "पुरुषो वाव इत्यादि" छांदोग्य उपनिषद के प्रमाण की। सो आपने इस प्रमाण को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कोई वेद मन्त्र देकर वेद के विरुद्ध साबित नहीं किया। अतः आप प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आकर पराजित हो चुके। हम इस बात की बल पूर्वक घोषणा करते हैं कि छान्दोग्य के ये प्रमाण सर्वथा वेदानुकूल हैं। जैसे वेदों में लिखा है कि—

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासिरुद्रासि चन्द्रासि।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ॥२१॥ (यजु० ४।

हे विद्वान मनुष्य! जैसे जो अग्नि आदि विद्या संबंधी जिसकी सेवा २४वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई है। जो प्रकाश कारक है जो प्राण वायु सम्बन्ध वाली और जिसको ४४ वर्ष ब्रह्म चर्य्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी है। जो सूर्य्यवत् सब विद्याओं की प्रकाश करने वाली जिसका ग्रहण ४८ वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी है। जो आह्लाद करने वाली है। जिसको सर्वोत्तम दुष्टों को रुलाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् सुख में रमणयुक्त कर्त्ता और जिस पूर्ण विद्या युक्त मनुष्यों के साथ वर्तमान हुई वाणी वा बिजुली को निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूं। वैसे तू भी उसको रमण युक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा करो बस वेद के मन्त्र की ही छान्दोग्य ने सरल व्याख्या की है। इससे साबित है कि छान्दोग्य का "पुरुषो वावयज्ञः" सर्वथा वेदानुकूल है। इसी प्रकार से ही उपनिषदों के संपूर्ण प्रमाण वेदानुकूल हैं। आपने जो "यथा पुष्कर पलाश" को "कुर्वन्नेवेह" मन्त्र के अनुकूल साबित किया है सो हमें इस पर को इंशंका नहीं है। क्योंकि इन दोनों का यह अभिप्राय है कि

"जो मनुष्य वेद प्रतिपादित कर्म करता है। उसको बुरे कर्म नहीं चिपटते" यदि इस से आपका यह अभिप्राय हो कि "ज्ञानी आदमी को कर्मों का फल नहीं मिलता" तो यह आप की कल्पना निर्मूल है और न ही छान्दोग्य तथा वेद का यह अभिप्राय है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को कर्मों का फल अवश्य मिलता है जैसा कि वेद में लिखा है कि—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषम तदशकं तन्मेऽराधि।
इदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ॥यजु० २।२८॥

भाषार्थ—हे न्याय युक्त नियतकर्म के पालन करने हारे सत्य स्वरुप परमेश्वर! आपने जो कृपा करके मेरे लिये सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध नियमों में से युक्त सत्या चरण करने योग्य सत्य नियम को जिस प्रकार मैं करने में समर्थ होऊं। अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार मैं कर सकूं। वैसा मुझको कीजिये। जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है। उसी को भोगता हूं। अब भी जो मैं जैसा कर्म करने वाला हूं। वैसे कर्म के फल भोगने वाला होता हूं ॥२८॥ यह मन्त्र शिक्षा देता है कि प्रत्येक मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूं वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूं और भागूंगा। हम इस बात की बल पूर्वक घोषणा करते हैं कि कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित मैदान में निकल कर ऐसा वेद मन्त्र पेश नहीं कर सकता कि जिससे यह साबित हो सके कि ज्ञानियों को कर्मों का फल नहीं मिलता।

(५४६)—इसी प्रकार वेदान्त, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, सांख्य, श्रौत गृह्यादि ग्रन्थों के सत्यार्थ प्रकाश में प्रमाण उद्धृत किये हैं। और उनको ज़बरदस्ती से संसार को अंधा बताने के लिये वेदानुकूल माना है। (पृ० १३६ पं ५)

उत्तर—शाबाश सनातन धर्म के सपूतो शाबाश ! अब सब शास्त्रों पर पानी फेर कर ही दम लेना। हाँ महाराज ! यदि ये ग्रन्थ वेदानुकूल नहीं हैं तो क्या वेद विरुद्ध हैं। यदि वेद विरुद्ध हैं तो वे वेद मन्त्र पेश कीजिये जिन के उपरोक्त ग्रन्थ विरुद्ध हैं। और यदि आप विरोध में कोई वेद मन्त्र पेश नहीं कर सकते तो ये सारे ग्रन्थ आर्ष होने से वेदानुकूल ही हैं। श्रीमान् जी ! वेदान्त आदि छः शास्त्र वेदों के उपांग हैं। और गृह्य सूत्र कल्प हैं वेदों का अंग है। तो क्या वेदों के अंग तथा उपांग भी वेदों के विरुद्ध ही होते हैं। आपको यह लिखते हुए कुछ शर्म तो नहीं आई। हाँ यह सत्य है कि इन गृह्य सूत्रों में भी आप जैसे स्वार्थी लोगों ने कुछ ऐसी बातें अवश्य मिला दी हैं। जो वेद के विरुद्ध हैं। जैसे कि—

आचान्तोदकाय शासमादायगौरितिं त्रिःप्राह॥२६॥ प्रत्याह।
मातारुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ट ।
मम चामुष्य च पाप्मानं हिनोमीति यद्यालभेत ॥२७॥
अथयदि' उत्सिसृक्षे न्मम चामुष्य च पाप्पमाहतः ओमुत्सृ-
जत तृणान्यत्त्विति ब्रूयात् ॥२८॥
नत्वमांसोऽर्घः स्यात् ॥२९॥
अधियज्ञमधिविवाहं कुरुते त्येव ब्रूयात् ॥३०॥
(पारस्कर० कांड १ कंडिका ३ मधुपर्क सूत्रम्)
भारद्वाज्या मांसेन वाक् प्रसारकामस्य ॥७॥
कपिं जलमां सेनाङ्गाध कामस्य ॥८॥
मत्स्यैर्जवनकामस्य ॥९॥ कृकषाया आयुष्कामस्य ॥१०॥
आप्याब्रह्मवर्चस कामस्य ॥११॥ सर्वैः सर्वकामस्य ॥१२॥
(पारस्कर० कांड १ कंडिका १६ अन्न प्राशन)

भाषार्थ—आचमन करके तलवार लेकर तीन वार गौ शब्द का उच्चारण करके "मारो" ऐसा कहे। यदि गौ को मारने की इच्छा हो तो "मातारुद्राणामिति" मन्त्र पढ़े। और यदि गौ को छोड़ना चाहे तो "मम चामुष्य च" इस मन्त्र का उच्चारण करे। किन्तु अर्घ तो बिना मांस के होता नहीं। इस लिये यज्ञ में और विवाह में अवश्य ही गौ को मारना चाहिये॥३०॥

यदि कोई चाहे कि मेरा बालक वागीश हो तो उसे भारद्वाजी का मांस खिलावे। यदि कोई चाहे कि मेरा बालक अन्नादिका स्वामी हो तो वह बालक को कम्पिजलका मांस खिलावे। यदि कोई बालक को तेज़ चाहे तो मछली का मांस यदि बालक की बड़ी आयु चाहे तो कृकपा का मांस,यदि कोई बालक तेजस्वी चाहे तो आद्य पक्षी का मांस तथा यदि कोई अपने बालक को सर्वगुण सम्पन्न चाहे तो बालक को इन सब का मांस खिलावे॥१२॥

यजुर्वेद में १।१ अघ्न्या शब्द से गौ को न मारने योग्य तथा अथर्व वेद ६।१४०।२ में ब्रीहिमत्तमित्यादि से मांस के खाने का निषेध किया है। अतः गौ का मारना तथा मांस का खाना वेद विरुद्ध होने से पाप है। इस से साबित हुआ कि गृह्य सूत्रों का ऊपर वाला प्रमाण वेद के विरुद्ध है। क्या किसी पौराणिक माता ने कोई ऐसा पौराणिक वीर पण्डित पैदा किया है जो गृह्यसूत्रों के इस प्रमाण को वेदानुकूल सिद्ध करके गौ का मारना तथा मांस का खाना धर्म्म साबित कर सके।

(५४७) प्रश्न—माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये वको यथा॥

(चाणिक्य नीति अध्याय २ श्लोक ११)

विद्वत्वं च नृपत्व च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

( चाणिक्य नीति )

नष्टे मूले [illegible] न पुष्पम् । वृद्ध चाणिक्य अ० १०।१३ )

स्वामी दयानन्द को इनकी भी वेदानुकूलता वेद में मिली होगी । पृ० १३६ पं० १३ ।

उत्तर—कहिये महाराज ! यदि यह श्लोक वेदानुकूल नहीं हैं । तो क्या ये श्लोक विरुद्ध हैं । यदि ये श्लोक वेद विरुद्ध हैं तो आप वेद में से ऐसे मंत्र पेश करके अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करें कि जिन से यह साबित हो सके कि विद्या का न पढ़ाने वाला माता पिता मित्र हैं । अथवा विद्वत्ता और नृपता समान हैं । अथवा मूल के नष्ट होने पर भी वृक्ष के फल फूल लग जाते हैं । यदि आप ऐसे वेद मंत्र पेश करके उपरोक्त श्लोकों को वेद विरुद्ध साबित नहीं कर सकते तो ये श्लोक यद्यपि आर्ष होने से स्वयं ही वेदानुकूल हैं । तथापि प्रथम के दो श्लोकों में विद्या की प्रशंसा तथा अविद्या की निन्दा है जो वेद के निम्न मन्त्रों के अनुकूल हैं ।

अंधमतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपा सते ॥यजु० ४०।१२॥
विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥यजु० ४०।१४॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १।२२।२०॥

तीसरे श्लोक में यह बतलाया गया है कि कारण के अभाव से कार्य्य का भी अभाव हो जाता है । अर्थात् कारण के होने से ही कार्य्य का होना सम्भव है । सो यह सिद्धान्त निम्न मंत्रों के अनुसार होने से वेदानुकूल है ।

अवि वै नाम देवतर्त्तेनास्ते परीवृत्ता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरित स्रजः ॥
( अथर्व० १०।८।३१ )

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योऽभिचाकशीति ॥
ऋ० १।१६४।२०॥

(५४८) प्रश्न–अपने २ विषय में सभी ग्रन्थ प्रमाण होते हैं। शब्द सिद्धि में व्याकरण, रोग निर्णय में वैद्यक, संस्कारादि अनुष्ठान में धर्म शास्त्र, काल ज्ञान तथा गणित ज्ञान में ज्योतिष, ब्रह्मज्ञान में उपनिषत्, स्वतः प्रमाण हैं। स्वामी दयानन्द जी ने जो इन में वेदानुकूलता का झगड़ा लगाया है। यह घुसने निकलने की कुंजी है। पृ०१३६पं०१९।

उत्तर—व्याकरण, वैद्यक, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, तथा उपनिषत् ये समस्त ग्रन्थ स्वतः प्रमाण नहीं हो सकते क्योंकि ये ईश्वरकृत नहीं अपितु मनुष्य कृत हैं। ये समस्त ग्रन्थ तभी प्रमाण हैं। जहां तक इन का वेद से विरोध न हो। किन्तु जहां ये ग्रन्थ वेद से विरोध करेंगे वहां इन के मुकाबले में वेद का ही प्रमाण होगा इन का नहीं। उपरोक्त ग्रन्थ यद्यपि मुख्यतया अपने २ विषयों का ही प्रतिपादन करते हैं। तथापि गौण रूप से इनमें दूसरे विषयों का भी वर्णन आ जाता है। जैसे कि आपने ही अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ३१३ पर वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए व्याकरण के ग्रन्थ महा भाष्य का प्रमाण "तपः श्रुतं चया निश्चइत्यादि" दिया है। जो कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमीसीत् यजु० ३१।११" के अनुसार

वेद के विरुद्ध हैं। यदि व्याकरण शब्द विषय में ही प्रमाण है तो आपने यह महाभाष्य प्रमाण वर्ण व्यवस्था विषय में क्यों दिया। इसी प्रकार से सब ग्रन्थों के बारे में समझ लेना चाहिये। अतः उपरोक्त संपूर्ण ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं स्वतः प्रमाण नहीं।

( ५४६ ) प्रश्न—वेदानुकूलता से एक लाभ अवश्य हुआ। कि अब आर्य्य समाज में सोलह संस्कार न होंगे। क्योंकि गर्भाधानादि सोलह संस्कार मन्वादि स्मृतियों और पारस्करादि गृह्यसूत्रों में लिखे हैं। वेदों में इनकी विधि नहीं अत एव अब ये वेदानुकूल न रहें। पृ० १४० पं० ४।

उत्तर—यदि वेदों में सोलह संस्कारों की विधि नहीं है तो क्या वेदों में सोलह संस्कारों का निषेध है। यदि निषेध है तो आप क्यों करते हैं। और वे कौन से वेद मन्त्र हैं। जो सोलह संस्कारों का निषेध करते हैं। यदि निषेध करने वाले मंत्र नहीं हैं तो भी सोलह संस्कार आर्ष ग्रन्थों में प्रतिपादित होने से वेदानुकूल ही हैं तथा आपकी यह प्रतिज्ञा भी ग़लत है कि वेदों में सोलह संस्कारों की विधि नहीं है। हमारी यह प्रतिज्ञा है कि सोलह संस्कारों की विधि वेद में मौजूद है। उस विधि की ही मनुस्मृति तथा गृह्य सूत्रों ने विस्तार पूर्वक व्याख्या की है। सोलह संस्कारों के विधि मन्त्र देखो (विवाह प्रकरण) हां पुराणों में सोलह संस्कारों का खंडन अवश्य है। जैसा कि—

विद्वत्सदसि योप्याह संस्काराद्ब्राह्मणो भवन्।
न्यायज्ञैः सनिराकार्य्यो वाक्यै र्न्यायानुसारिभिः ॥७॥

( भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२ )

जो कोई विद्वानों की सभा में कहे कि संस्कारों से ब्राह्मणहोता है। न्याय के जानने वालों को यायनुसार वाक्यों से उसका खण्डन करना चाहिये ॥७॥

क्या किसी सनातन धर्म्मी माता ने कोई ऐसा पौराणिक पण्डित पैदा किया है जो उपरोक्त श्लोक में किये गये सोलह संस्कारों के खण्डन को वेदानुकूल सिद्ध कर सके।

(५५०) प्रश्न—एक और सुख होगया चोटी रखने और जनेऊ पहनने का भी झंझट उड़ गया। वेदों में शिखा रखना यज्ञोपवीत धारण करना कहीं नहीं लिखा, केवल गृह्य सूत्र और धर्म्म शास्त्रों में लिखा है। ये दोनों वेदानुकूल नहीं हैं। वरना "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्" इसको वेदानुकूल साबित किया जावे। पृ० १४० पं० १०।

उत्तर—यदि चोटी और यज्ञोपवीत की वेद में आज्ञा नहीं है। तो क्या वेद में चोटी और यज्ञोपवीत का निषेध है। यदि निषेध है तो सनातन धर्म्मी क्यों धारण करते हैं। और वे कौन से वेद मन्त्र हैं जो चोटी और यज्ञोपवीत का निषेध करते हैं। यदि ऐसे वेद मन्त्र नहीं हैं तो गृह्यसूत्र तथा धर्म्म शास्त्र प्रतिपाद्य आर्ष होने यज्ञोपवीत और चोटी वेदानुकूल ही हैं। आपकी यह प्रतिज्ञा भी ग़लत है कि वेदों में चोटी और यज्ञोपवीत की आज्ञा नहीं है। हम डंके की चोट इस बात की घोषणा करते हैं कि वेदों में चोटी और यज्ञोपवीत का विधान मौजूद है। जैसा कि—

शिखिभ्यः स्वाहा (अथर्व० १९।२२।१५)

चोटी रखने वालों से मीठा बोलो। उपवीतिने पुष्टानां पतये नमः (यजु० १६।१७) यज्ञोपवीत धारण करने वाले बलवानों

के पति का सत्कार करो " यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम् " यह प्रमाण उपरोक्त मंत्र के अनुकूल है किन्तु, शिखा का रखना वेद में विकल्प से है जैसा कि—

यत्र बाणः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ॥यजु० १७।४८॥

जिस संग्राम में बिना चोटी के वा बहुत चोटियों वाले बालकों के समान बाण आदि अस्त्रों के समूह अच्छे प्रकार गिरते हैं।

हां पुराणों में चोटी कटाने की आज्ञा मौजूद है। जैसाकि—

पुत्राद्या वृद्धपूर्वास्ते एक वस्त्रा शिखां विना ॥७२॥

प्राचीनावीतिनः सर्वे विशेयु मौंनिनो जलम् ॥७३॥

पुत्रादि वृद्धों समेत एक वस्त्र पहिने हुए शिखा से शून्य प्राचीना वीति हुए सब जल में प्रवेश करें ( गरुड० प्रेत० अ० ४)

क्या सनातन धर्म के नेता गरुड पुराण की इस आज्ञा पर चलते हैं।

(५५१) प्रश्न—वेद में संध्या तथा पंच यज्ञ विधि की आज्ञा नहीं है। पृ० ख पं० ११

उत्तर—यदि वेद में पांच यज्ञों की आज्ञा नहीं है। तो क्या इनका निषेध है। यदि निषेध है तो सनातन धर्म्म वेद विरुद्ध पाँच यज्ञों को क्यों मानता है। और वे कौन से मंत्र हैं जो पांच यज्ञों का निषेध करते हैं। यदि निषेध नहीं है। तो पांच यज्ञ आर्ष ग्रन्थ प्रतिपाद्य होने से स्वयं ही वेदानुकूल हैं। और फिर पांच महायज्ञों की तो आज्ञा भी वेदों में मौजूद है जैसाकि—

(१) ब्रह्मयज्ञ—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्य्यात् पुरोषसः।

यदजः प्रथमं संबभूव सह तत्स्वराज्यमि

पाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ ( अथव० १०।७।३१ )

भाषार्थ—जो प्रगति शील आत्मा उषा की समाप्ति से पहिले अर्थात् तारे निकलने से पूर्व सायं काल तथा सूर्य्य के निकलने से पहिले प्रातः काल नमस्कार करने योग्य प्रभु को ओंकार आदि नामों से स्मरण करता है। वह महात्मा उस स्वराज्य को प्राप्त करता है। जिससे श्रेष्ठ कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। और जो स्वराज्य पहिले भी था अथवा जो सब से मुख्य है ॥३१॥

इस मन्त्र में प्रातः तथा सायं दोनों समय संध्या करने की आज्ञा है। आपके ग्रन्थों में जो त्रिकाल संध्या का विधान है जैसा कि—

इति त्रिकाल संध्या प्रयोगः समाप्तः ॥ ( पंच महा यज्ञ विधि निर्णय सागर प्रेस )

कृपया बतलावें कि यह तीन काल की संध्या किस वेद के अनुकूल है। यदि नहीं तो सनातन धर्म को चाहिये कि इस मिथ्या हठ का परित्याग कर दें।

(२) देवयज्ञ—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता ॥३॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता ॥४॥
(अथर्व० १९। ५५)

भाषार्थ—घर आदि की रक्षा करने वाला यह अग्नि प्रत्येक सायं और हर प्रातः हमें सुख शांति के देने वाला हो"३-४"

इन मन्त्रों में सायं प्रातः दोनो समय अग्नि होत्र करने की आज्ञा है। पुराणों में यज्ञ की सामग्री में मांस भी डाला जाता है जैसा कि—

पूगमानं च मांसस्य सगुडं तत्र दृश्यते ॥९॥

(भविष्य० मध्यम० भाग १ अ० १८)

मांस का कीमा भी गुड सहित सामग्री में होना चाहिये ९॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ।

पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्र सवेषु च ॥२३॥ ( मनु० ५ )

ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के यज्ञों में पुराने ज़माने में खाने के योग्य पशु पक्षियों के पुरोडाश होते थे ॥२३॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ।

अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ २५७ ॥

( मनु० ३ )

मुनी, अन्न, दुग्ध, सोमरस, विकार रहित मांस, सैंधानमक ये सब चीजें स्वभाव से हवन की सामग्री कही जाती हैं॥२५७॥

को वोऽध्वरंतु विजाता अरं ॥ऋ० १०।६३।६॥

इस वेद मंत्र में यज्ञ को अध्वर लिखा है । और अध्वर का अर्थ है अध्वर इति यज्ञ नाम । ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः ॥१॥ (निरु० अ० १ खं० ८)

अध्वर नाम यज्ञ का है । अध्वर उस को कहते हैं जिस में हिंसा न हो, वेद यज्ञ में हिंसा का निषेध करता है । अतः उपरोक्त यज्ञ में मांस विधान करने वाले सब श्लोक वेद के विरुद्ध हैं । क्या कोई जीता जागता सनातन धर्म्म का विद्वान् है जो इन श्लोकों को वेदानुकूल साबित कर सके ।

(३) पितृ यज्ञ—

ऊर्जंवहन्तीरमृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।

स्वधास्थ तर्पयत मेपितॄन् ॥यजु० २।३४॥

पराक्रम, अन्न, रस आदि को प्राप्त कराने वाला जल जीवन प्रद उत्तम अन्न; घी, दूध, उत्तम मधु और स्वयं पक कर गिरे हुये फलादि पदार्थ मेरे पितरों-पिता माता पितामह गुरु आदि को तृप्त करें। और उन को स्वशक्ति संपन्न करें ॥३४॥ इस मन्त्र में पितृ यज्ञ की आज्ञा मौजूद है। और जीते हुये माता पिता आदि की सेवा करने का नाम पितृ यज्ञ बतलाया है। परन्तु पौराणिक लोग मुर्दों का श्राद्ध करने तथा मुरदे का हाथ निकाल कर पिंड ग्रहण करना मानते हैं जैसा कि—

ततस्तं दर्भ विन्यासं भित्त्वा सुरुचिराङ्गदः।
प्रलम्बाभरणो बाहुरुदितिष्ठ विशाम्पते ॥ १५॥
समुत्थितमहं दृष्ट्वा परं विस्मयमागमं।
प्रति ग्रहीता साक्षान्मे पितेति भरतर्षभ ॥१६॥
(महा० अनु० अ०८४)

जलं त्रिदिवमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥१३॥
अत्रस्नाहि पिबात्रेति मन्त्रेणानेन काश्यप ॥१४॥
(गरुड० प्रेत० अ० ५)

भाषार्थ—उस के पश्चात् उस दर्भसमूह का भेद न करके सुन्दर कड़े पहिने हुये अलंकृत हाथ पिंड लेने के लिये बाहर निकला ॥१५॥ उस बाहर निकले हुये हाथ को देख कर मैं बड़ा हैरान हुआ क्योंकि वह ग्रहण करने के लिये आया हुआ साक्षात् मेरा पिता ही था ॥१६॥ मृतक को जलाने से तीन दिन तक जल आकाश में रखना चाहिये और दूध मिट्टी के बरतन में रखना चाहिये ॥१३॥ यहां स्नान करो यहां पियो इस मन्त्र से धरना चाहिये ॥१४॥

क्या कोई अपने पेट को लैटर वक्स बनाने वाला पौराणिक पोप मृतकों के श्राद्ध, हाथ का निकलना तथा प्रेत का स्नान करना और दूध पीना वेदानुकूल साबित कर सकता है ।

(४) बलि वैश्वदेव यज्ञ—

अहरहर्बलिमित्तेहरन्तो अश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशारिषाम ॥
अथर्व० १६।५५।७)

ज्ञान स्वरूप परमात्मन् ! हम तेरे आदेश से जिस प्रकार उपकारी अश्व आदि पशुओं का चाहे वे ठहरे हों या काम पर हों घास देते हैं । उस भांति प्रति दिन ही सब प्राणियों के प्रति बलि अर्थात् भोज्य पदार्थ देते हुये धन वृद्धि के द्वारा चक्रवर्ती राज्य लक्ष्मी से शुद्ध इच्छा और सम्यग् ज्ञान से आनन्दित होते हुये हे सन्मार्ग प्रदर्शक प्रभो ! तेरे शासन में रहते हुये पड़ौसी जन एक दूसरे को क्लेश न दें ॥७॥

इस मन्त्र में बलि वैश्व देव यज्ञ की स्पष्ट आज्ञा मौजूद है परन्तु पुराणों में वेद विरुद्ध बलि का वर्णन है जैसा कि—

गवां लक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम् ।
चतुर्लक्षं शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु ॥६१॥
दश लक्षं छागलानां मेटानां तच्चतुर्गुणम् ।
पर्वणि ग्रामदेव्यै च बलिं देहि च भक्तितः ॥६२॥
एतेषां पञ्चमांसं च भोजनार्थं च कारय ।
परिपूर्णं वयंजनानां सामग्रीं कुरु भूमिप ॥६३॥

( ब्रह्मवैवर्त० खं ४ अ० १०६ )

भाषार्थ—हे राजन्! रुकमणी के विवाहार्थ एक लाख गौवों को काटो,दो लाख हरिण काटो,चार लाख ख़रगोश तथा चार लाख ही कछवे काटो ॥६१॥ दश लाख बकरे तथा चालीस लाख दुंबे काटो पर्व में ग्राम की देवी को भक्ति पूर्वक बलि देकर ॥६२॥ इन सबके मांस को भोजन के लिये तय्यार करो। इस प्रकार से व्यंजनों से परिपूर्ण विवाह की सामग्री को तय्यार करो ॥६३॥

चूंकि " मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः यजु० १२।३२ " में प्राणियों की हिंसा करने तथा " शेरभक शेरभक अथर्व० २।२४।१ " में म स के खाने का निषेध किया है। अतः उक्त पौराणिक बलि-दान वेद के विरुद्ध होने से पाप है। क्या कोई मांसा हारी गौधा तक पौराणिक इस प्रकार के बलिदान को वेदानुकूल साबित करने को समर्थ है।

(५) अतिथि यज्ञ—

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथि गृंहानागच्छेत् ॥१॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सी र्व्रात्यो
दकं व्रात्य तर्पयन्तु, व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु
व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते नि
कामस्तथास्तु ॥२॥ (अथर्व० १५।११)

भाषार्थ—तो जिसके घर में इस प्रकार का विद्वान् सत्य भाषण पर हित कामनादि व्रतों से भूषित सदैव भ्रमण करके जनता को सत्य ज्ञान प्राप्त कराने वाला अतिथि महात्मा आजाये ॥१॥

तो गृहपति आप उठ कर स्वागत करता हुआ कहे। हे उत्तम व्रत धारिन् महात्मन! आप पहिले कहां रहे। परोपकार आदि

व्रतों से भूषित भगवन् ! लीजिये यह जल है । हे लोगों को व्रतोपदेश करने वाले धर्म्मात्मन् ! मेरे समस्त पदार्थ आपको तृप्त करें। हे सब प्राणियों पर प्रेम करने वाले गुरो ! जो आप को अच्छा लगे वैसा हो । हे कमनीय स्वभाव वाले कृपालो जैसे आप की आज्ञा हो वैसे ही होगा। सत्कामना सम्पन्न विद्वन् । जैसे आ की इच्छा हो वैसे ही किया जाय ॥२॥

इन मन्त्रों में स्पष्ट रूप से अतिथि यज्ञ की आज्ञा है किंतु पौराणिक लोग वेद विरुद्ध अतिथि सेवा करने को भी धर्म्म मानते हैं जैसा कि—

युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि—

केन मृत्यु गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ।
इत्येतत् सर्वं माचक्ष्व तत्त्वेनापि च पार्थिव ॥३॥

गृहस्थी धर्म का आश्रय ले कर मृत्यु को कैसे जीत सकता है । हे राजन् ये मुझ से संपूर्ण तत्व कहियेगा। भीष्म ने कहा कि ईस बारे में मैं एक इतिहास सुनाता हूं । जैसे गृहस्थ मृत्यु को जीत सकता है । सुदर्शन नाम का एक ब्राह्मण था। उस की स्त्री का नाम औद्यवती था। सुदर्शन ने अपनी स्त्री से कहा कि—

अतिथेः प्रतिकूलंते न कर्तव्यं कथंचन ॥४२॥
येन येन च तुष्येत नित्यमेवत्वयाऽतिथिः ।
अप्यात्मनः प्रदानेन नते कार्य्या विचारणा ॥४३॥

तुझे अतिथि के प्रतिकूल कभी कुछ भी नहीं करना चाहिये नित्य प्रति जिस २ उपाय से अतिथि संतुष्ट हो सके चाहे वह शरीर के दान देने से ही हो तुझे इस में विचार नहीं करना चाहिये यह कह कर वह ब्राह्मण लकड़ियां लेने जंगल में चला गया । उसके चले जाने के पीछे एक ब्राह्मण उसके घर में आया और उस ने सुदर्शन की स्त्री औद्यवती से कहा कि—

यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसम्मतः ।
प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥५४॥
सतया छन्द्यमानोऽन्यै रीप्सितै नृपकन्यया ।
नान्यमात्मप्रदानात् स तस्या वव्रेवरंद्विजः ॥५५॥
सातु राज सुता स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः ।
तथेतिलज्जमाना सा तमुवाचद्विजर्षभम् ॥५६॥
ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवोपयि वेश ह ॥५७॥

यदि गृह आश्रम का धर्म तुझ को प्रमाण है । तो अपने शरीर के दान से मुझे प्रसन्न कर। उस ओघवती ने और बहुत से मनोवांछित वर देने चाहे किंतु उसने शरीर दान के सिवाय और कोई वर स्वीकार नहीं किया। तब उस राज पुत्री ने पति के पहिले वचन को याद करके उस ब्राह्मण से कहा कि बहुत अच्छा। तब ब्राह्मण हंस कर और प्रसन्न होकर तथा ओघवती दोनों घर में प्रविष्ट हो गए। इतने में सुदर्शन लकड़ियां ले कर वापिस आया तो उस ने अपनी पत्नी ओघवती को न देखा। और सुदर्शन ने उस को आवाज दी तो—

तस्मै प्रतिवचः भर्त्रे न प्रददौ तदा ।
कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृ व्रतासती ॥६०॥
उच्छिष्टास्मीति मन्वानां लज्जिताभर्तुरेवच ।
तूष्णीं भूत्वा भवत् साध्वी न चोवा चाथ किंचन॥६१॥

उसने अपने पति को कोई भी जवाब नहीं दिया क्योंकि उस पति व्रता को ब्राह्मण ने हाथों से स्पर्श कर लिया था। इस लिये वह यह समझ कर कि मैं उच्छिष्ट हूं पति से शर्मिन्दा हुई चुप हो गई और कुछ भी न बोली। तब सुदर्शन बार २ बुलाने लगा तो—

ङट जस्थस्तु तं विप्रः प्रत्युवाच सुदर्शनम् ।
अतिथिं विद्धि सम्प्राप्तं ब्राह्मणं पाव के च माम् ॥६४॥
अन्या छन्द्यमानोऽ हं भार्य्यया तव सत्तम ।
तैस्तैरतिथि सत्कारै र्ब्रह्मन्नेषा वृत्ता मया ॥६५॥
अनेन विधिना सेयं माभर्त्सति शुभानना ।
अनुरूपं यदत्रान्यत्तभद्वान् कर्तुमर्हसि ॥६६॥

वह कुटि में गया हुआ ब्राह्मण सुदर्शन से बोला कि हे पावके ! मुझे ब्राह्मण अतिथि तुम्हारे घर आया हुआ जान। इस तेरी पत्नी ने मुझ को प्रसन्न करके कई प्रकार के अतिथि सत्कारों से प्रसन्न किया है। और मैंने इसको स्वीकार किया है। सो यह सुन्दर मुखी मुझे इस विधि से प्रसन्न कर रही है। अब जो कुछ आप मुनासिब समझें सो करें। यह सुनकर सुदर्शन बोला कि—

सुरतं तेऽस्तु विप्राग्रय प्रीति हिं परमा मम।
गृहस्थस्य हि धर्म्मोऽग्रयः संप्राप्तोऽतिथि पूजनम् । ॥६६॥
प्राणा हि मम दाराश्च यच्चान्यद्विद्यते वसु ।
अतिथिभ्यो मया देयमिति मे व्रतमाहितम् ॥७१॥
निः सन्दिग्धं यथा वाक्यमे तन्मे समुदाहृतम् ।
तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे ॥७२॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तेरा विषय सफल हो मैं बड़ा प्रसन्न हूं। गृहस्थ का सब से उत्तम धर्म्म अतिथि की पूजा है। मेरे प्राण मेरी पत्नी और भी जो कुछ मेरे पास धन है। यह सब अतिथि को देने योग्य है यह मेरा व्रत है। यह जो मैंने स्पष्ट वाक्य बोले हैं। हे ब्राह्मण सत्य जान मैं इनके कारण अपनी आत्मा को दूषित समझता हूं। यह कथा सुनाकर भीष्म बोले कि—

तस्माद् गृहाश्रमस्थस्य नान्य दैवतमस्ति वै।
ऋतेऽतिथिं नरव्याघ्र मनसैतद्विचारय ॥६१॥
एतत्ते कथितं पुत्र मयाख्यानमुत्तम्।
यथा हि विजितो मृत्यु गृहस्थेन पुराभवत् ॥६४॥
धन्यं यश स्यमायुष्यमिदमाख्या नमुत्तमम्।
बुभूषताभिमन्तव्यं सर्व दुश्चरितापहम् ॥६५॥
(महा० अनु० अ० २)

हे नर व्याघ्र! इस कारण से गृहस्थी के लिये अतिथि के बिना और कोई देवता नहीं है यह विचार कर ले। हे पुत्र! यह मैंने उत्तम इतिहास तेरे लिये कह सुनाया जैसे कि पूर्व काल में गृहस्थ ने मृत्यु को जीत लिया। यह इतिहास धन्य है यश तथा आयु का देने वाला है और उत्तम है। इस इतिहास को भूषित करने वाला तथा संपूर्ण दुश्चरित्र को दूर करने वाला मानना चाहिये॥

यह है सनातन धर्म्म का अतिथि यज्ञ चूंकि वेद में आता है कि—

"उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समंजि चारया
वृषन्। य स्त्रीणां जीव भोजनः ॥यजु० २३।२१॥

हे शक्तिमान् राजन्! जो स्त्रियों के बीच प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्तमान हो उस पुरुष और उस स्त्री को बांध कर ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य उत्तम सुख को धारण करो। और अपने प्रकट न्याय को भली भांति चलाओ ॥२१॥" व्यभिचार करना पाप है। अतः उपरोक्त पौराणिक अतिथि सत्कार वेद

विरुद्ध होने से पाप है। क्या संसार में कोई ऐसा व्यभिचार प्रिय जीता जागता पौराणिक पोप मौजूद है जो इस व्यभिचारमय पौराणिक अतिथि यज्ञ को वेदानुकूल सिद्ध कर सके ।

(५५२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ६५ पं० ६ में लिखा है कि "बच्चे को छः दिन तक माता और इस के बाद दाई दूध पिलावे" वेद में इसका कहीं पता नहीं । यहां पर वेद का बहाना ले कर वैदिक लोगों को ईसाई बनाने का उद्योग किया है। पृ० ६३ पं० ६ ।

उत्तर—स्वामी जी ने धायी का दूध पिलाना लाज़मी क़रार नहीं दिया और न ही छः दिन के बाद माता का दूध छोड़ना ज़रूरी बतलाया है। हां जो समर्थ हों तथा स्त्री का निर्बल होना न चाहते हों वे इस विधि पर यदि चाहें तो आचरण करें। देखिये स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि—

"जब जन्म हो तब अच्छे सुगंधि युक्त जल से बालक को स्नान नाड़ी छेदन करके सुगंधि युक्त घृतादि से होम और स्त्री के भी स्नान, भोजन का यथा योग्य प्रबंध करे। कि जिस से बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय । ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धाई खावे। कि जिस से दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे। परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता पिता करावें । जो कोई दरिद्र हों धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम औषधी जो कि बुधि, पराक्रम अरोग्य करने हारी हों । उन को शुद्ध जल में भिगो औटा छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावें। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी

माता को दूसरे स्थान में जहां का वायु शुद्ध हो वहां रक्खें। सुगंध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें। और उस देश में भ्रमण करना उचित है कि जहां का वायु शुद्ध हो। और जहां धाया, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें। क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है। इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है। इस लिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिस से दूध स्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है। तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह रक्खे। इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उन के उत्तम सन्तान, दीर्घायु बल पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिस से सब सन्तान उत्तम, बल, पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों। स्त्री योनि संकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे। (सत्यार्थ समु० २)

(१) स्वामी जी ने यह विधि ईसाइयों से नहीं ली, अपितु ईसाइयों ने यह विधि वेद तथा शास्त्रों से सीखी है। इस विषय में वेद की आज्ञा है कि—

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकं समीची। द्यावा क्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्नि न्धारयन्द्रविणोदाः ॥२॥(यजु० १७)

हे मनुष्यो! जिस बिजुली को बल दाता दिव्य प्राण धारण करे, जो रुचिकारक होके अन्तः करण में प्रकाशित होता है। जो एक विचार से विदित अंधकार और प्रकाश से विरुद्ध युक्त सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली प्रकाश और भूमि तथा

रात्री और दिन जैसे एक बालक को दो माता दूध पिलाती हैं वैसे ही उस को तुम लोग जानो ॥२॥

भावार्थ—सेजै जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती हैं। वैसे ही दिन और रात्री की रक्षा करती हैं। और बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है। इस बात का तुम सब निश्चय करो ॥२॥

(२) इस वेद मन्त्र में स्पष्ट रूप से धायी को आज्ञा मौजूद हैं। इसी की व्याख्या करते हुए सुश्रुत ने लिखा है कि—

धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनंतरं चतूरात्रा त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ॥२३॥ तस्मात् प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्तामिश्रं मंत्रपूतं त्रिकालं पाययेत्। द्वितीये लक्ष्मणा सिद्धं सर्पि स्तृतीये च। ततः प्राङ् निवरित स्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणि तल सम्मितं द्विकालं पाययेत् ॥२४॥ ततो दशमेऽहनि माता पितरौ कृत मंगल कौतुकौ स्वस्तिवाचनं। कृत्वा नाम कुर्यातां यदभि प्रेतं नक्षत्र नाम वा ॥३७॥ ततो यथा वर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यम प्रमाणां मध्यम वयसमरोगां शीलवतीम चपला मलोलुपा मकृशा मस्थूलां प्रसन्नक्षीरा मलंबौष्ठी मलंबोर्द्ध्व स्तनी मव्यंगा मव्य सनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्स ला मक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्टैश्च गुणैरन्वितां श्यामा मरोग्य बल वृद्धये बालस्य॥३८॥ तत्रोर्द्ध्व स्तनी करालं कुर्यात्। लंबस्तनी नासिका मुखं छादयित्ता मरणमायादयेत् ॥३६॥ ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरः स्नाता महतवासस मुदङ् मुखं शिशुमु पवेश्य धात्रीं प्राङ् मुखी मुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतम भिमंत्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत् ॥४०॥

(सुश्रुत संहिता शारीरिक स्थान अध्याय १०)

भाषार्थ—प्रसूता स्त्री के हृदय की नाड़ियों के मुख खुल जाते हैं। इससे चार रात्री या तीन रात्रि के पश्चात् स्त्री के स्तनों में दूध उतरता है ॥२३॥ इस कारण से पहिले दिन शहद घी में अनन्त मूल मिला कर मन्त्रों को पढ़ कर तीन बार बालक को पिलावे। दूसरे दिन लक्ष्मणा से सिद्ध किया हुआ घी शहद मिला कर पिलावे, तीसरे दिन भी यही करे। चौथे दिन स्तनों में से कुछ दूध निकाल डाले और दो समय थोड़ा २ दूध प्रसूता के स्तनों से पिलावे। तथा शहद और घी हाथ की हथेली जितना दोनों समय चटावे ॥२४॥ इसके पीछे दसवें दिन माता पिता मंगलाचार पूर्वक स्वस्ति वाचन करके जैसा चाहें मनोहर सुंदर या नक्षत्र के नाम के अनुसार नाम रक्खें ॥३७॥ इसके पश्चात् अपने वर्ण के अनुसार धायी नियत करनी चाहिए। वह धायी मध्यम आयु वाली, रोग रहित, शील स्वभाव युक्त, चपलता रहित, लोभ रहित, निर्बलता रहित, स्थूलपन से रहित, शुद्ध दूध वाली, लम्बे होटों से रहित लम्बे तथा ऊँचे स्तनों से रहित, अङ्ग हीनता से रहित पैयसन शून्य, जीवित बच्चे वाली, दूध देने वाली, प्रेम करने वाली, नीच कर्म से शून्य, अच्छे कुल में पैदा हुई, इससे भी अधिक गुणों से युक्त, शाम सुंदरी, होनी चाहिए, ताकि बालक की अरोगता तथा बल को बढ़ाने वाली हो ॥३८॥ जो धायी ऊँचे स्तनों वाली हो वह बालक को कराल कर देती है। और जो लम्बे स्तनों वाली हो तो बालक के नाक और मुख को ढक कर मार देती है। ॥३९॥ फिर अच्छे दिन में धायी को शिर समेत स्नान करवा कर अच्छे कपड़े पहिना कर पूर्वाभिमुख बिठा कर उसकी गोद में उत्तराभिमुख बालक को स्थापन

करके धायी दक्षिण स्तन को जो कि धोया हुआ हो और उसमें से थोड़ा दूध निकाल डाला हो उसे मंत्र से मन्त्रित करके पिलावे ॥३०॥

स्वामी जी ने इसी वेदानुकूल प्रमाण के आधार पर अपना लेख लिखा है इसी बात को सनातन धर्म के अनेक ग्रन्थ प्रतिपादन करते हैं जैसा कि—

(३) विदारी कन्द स्वरसं मूलं कापीस जं तथा।
धात्री स्तन्य विशुद्धयर्थं मुद्गयूपरसाशिनी ॥१३॥
कुष्ठा वचा भया ब्राह्मी मधुरा क्षौद्रसर्पिषा।
वर्णायुः कान्ति जननं लेह्यं बालस्य दापयेत् ॥१४॥
स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वातद्गुणं पिबेत् ॥१५॥
(गरुड० आचार० अ०१७२)

धायी के दूध को शुद्ध करने के लिये विदारी कन्द तथा कपास की जड़ के रस को पिलाया जावे तथा मूँगी आदि के रस को पिलाया जावे ॥१३॥ कुष्ट, बच, हर्ड, ब्राह्मी, आदि की चटनी के साथ शहद और घी को मिला कर चटाने से बालक के रंग आयु और तेज को बढ़ाती है ॥१४॥ धायी के दूध के अभाव में बकरी या गौ का दूध वैसे गुणों से युक्त बना कर पिलावे ॥१५॥

(४) इस पद्धति का उल्लेख मनुस्मृति में भी मौजूद है। जैसा कि—

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीति संयुक्तं सज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः ॥१६८॥
सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुण दोष विचक्षणम्।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं सविज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥१६९॥

माता पितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा।
यं पुत्रं परि गृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥१७१॥
क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं माता पित्रो र्यमन्ति कात्।
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽपिवा ॥१७४॥ (मनु० ६)

जो पैदा कर के किसी निः सन्तान पुरुष को दे देते हैं। वह लेने वाले का दत्तक पुत्र माना है ॥ १६८ ॥ जिस गुण दोष में सदृश पुत्र के गुणों से युक्त को जो पुरुष पुत्र बना लेता है वह उस पुरुष का कृत्रिम पुत्र कहाता है ॥१६९॥ जिस पुत्र को मां बाप दोनों ने वा एक ही ने त्याग दिया हो। उसे लेकर जो पालता है वह उसका अपविद्ध पुत्र होता है॥१७१॥ जिस पुत्र को मां बाप सन्तानार्थ किसी से मोल लें वह सदृश हो वा असदृश वह उनका क्रीतक पुत्र कहलाता है ॥१७४॥

ये चारों दत्तक, कृत्रिम, अपविद्ध और क्रीतक पुत्र अपनी जननी माता के दूध से परवरिश नहीं पाते। अपितु पुत्र बनाने वाली माता के प्रबन्ध से परवरिश पाते हैं। इनके पालने वालों को धायी अथवा गौ वा बकरी के दूध का ही प्रबन्ध करना पड़ता है। अतः मनुस्मृति भी स्वामी जी के लेख का अनुमोदन करती हैं।

(५) राम के पालन पोषण के लिये भी धायी का प्रबन्ध किया गया था जैसा कि रामायण में लिखा है कि—

साहर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुर क्षौमवासिनीम्।
अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा ॥७॥
विदीर्यमाना हर्षेणधात्री तु परया मुदा।
आचचक्षेऽथकुब्जायै भूयसीं राघवेश्रियम् ॥१०॥

(वाल्मी० अयोध्या० स० ७)

मन्थरा ने पास में खड़ी हुई हर्ष से फूले नयनों वाली श्वेत रेशमी वस्त्र पहनने वाली धायी को देख कर पूछा ॥७॥ हर्ष से विदीर्यमान धायी ने बड़ी प्रसन्नता से कुब्जा को राम का राज्याभिषेक बतलाया ॥१०॥ और भी सुनिये——

(६) सगरोनाम धर्मात्मा प्रजाकामः सचाप्रजाः ॥२॥
अथ काले गते तस्य ज्येष्ठापुत्रं व्यजायत ।
असमंज इति ख्यातं केशिनी सगरात्मजम् ॥१६॥
सुमतिस्तुनरव्याघ्र गर्भतुम्बंव्यजायत ।
षष्टिः पुत्र सहस्राणि तुम्बभेदाद्विनिः सृता ॥१७॥
घृतपूर्णेषुकुम्भेषु धात्र्यस्तान्समवर्धयन् ।
कालेन महता सर्वे यौवनं प्रतिपेदिरे ॥१८॥
(बाल्मी० बाल० स० ३८)

धात्रीश्चैकैकशः प्रादात् पुत्र रक्षण तत्परः ॥३॥
(महा० वन० अ० १०७)

सगर नाम का धर्मात्मा राजा था। उसके सन्तान न थी। उसे सन्तान की इच्छा थी ॥२॥ कुछ समय बीतने पर उसकी बड़ी रानी ने एक पुत्र पैदा किया। रानी का नाम केशिनी तथा पुत्र का नाम असमंजस था ॥ १६ ॥ सुमति नाम की दूसरी स्त्री ने अपने गर्भ से तूंम्बा पैदा किया। उस तूंबे के फोड़ने से ६० हज़ार पुत्र निकले ॥ १७ ॥ घी के भरे हुए घड़ों में धायियों ने उन का पालन पोषण किया, कुछ समय के पश्चात् वे सब जवान होगए ॥१८॥ एक २ के लिये राजा ने एक २ धायी पुत्र रक्षा के लिये नियत की ॥३॥

(७) आप के ख्याल के अनुसार जब सीता खेत में से मिली तो उसका पालन पोषण भी धायी अथवा गौ वा बकरी के

दूध मे ही किया होगा। जैसा कि—

क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।
भूतलादुत्थिता सातु व्यवर्धतममात्मजा॥

(बाल्मी० बाल० स० ६६।१४)

जनक ने कहा कि खेत का शोधन करते हुये सीता के नाम से प्रसिद्ध मुझ को प्राप्त हुई वह तो पृथिवी से निकली हुई मेरी पुत्री वृद्धि को प्राप्त हुई ॥१४॥

(८) महाभारत में भी इसकी ताईद मौजूद है जैसा कि—

शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेव पिताभवत्।
तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणासदृशी भुवि॥१२७॥
पितुः स्वस्रीय पुत्राय सोऽनपत्याय वीर्यवान्।
अग्रयमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यस्यवैतदा॥१२८॥
अग्रजाते ति तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकांक्षया।
अददत् कुन्तिभोजाय स तां दुहितरं तदा॥१२९॥

(महा० आदि० अ० ६७)

वसुदेवका पिता शूर नाम वाला यादवों में श्रेष्ठ था। उस की कन्या का नाम पृथा था। जो अति ही सुन्दरी थी॥१२७॥ उस बलवान् शूर ने निःसन्तान अपनी बुआ के पुत्र कुन्ती भोज के लिये अपनी पहली सन्तान देने की प्रतिज्ञा करके॥१२८॥ प्रथम पैदा हुई उस कन्या को कृपा पूर्वक शूर ने कुन्ति भोज को दे दिया॥ १२९॥ कुन्ति भोज ने उसका पालन पोषण धायी अथवा गौ वा बकरी के दूध से ही किया होगा।

(९) प्रकाश कर्ता भगवां स्तस्या गर्भं दधौ तदा।
अजीजनत् सुतं चास्यां सर्व शस्त्रभृतांवरम्॥१३५॥
निगूहमाना जातं वै बंधुपक्षभयात्तदा।

उत्ससर्ज जले कुन्ती तं कुमारं यशस्विनम् ॥१३७॥
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधा भर्ता महायशाः ।
राधायाः कल्प या मास पुत्रं सोऽधिरथस्तदा ॥१३८॥
(महा० आदि० अ० ६७)

उस कुन्ती में प्रकाश करने वाले भगवान् सूर्य्य ने गर्भ धारण किया उस में सर्व शस्त्र धारियों में उत्तम पुत्र पैदा हुआ ॥१३५॥ बंधु पक्ष के भय से कुन्ती ने उस पैदा हुये बालक को छिपा कर तब जल में छोड़ दिया ॥१३७॥ उस जल में छोड़े हुये गर्भ को राधा के पति अधिरथ ने राधा के लिये पुत्र कल्पित कर दिया ॥१३८॥

कहिये महाराज राधा ने कर्ण का पालन पोषण कैसे किया

(१०) ततोमामाह स मुनि गर्भमुत्सृज मामकम् ।
द्वीपेऽस्य एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥११॥
पाराशर्य्यो महायोगी सबभूव महानृषिः ।
कन्या पुत्रो ममपुरा द्वैपायन इति श्रुतः ॥ १२ ॥
( महा० आदि० अ० १०५ )

सत्यवती ने कहा कि तब वह मुनि पराशर मेरे से बोले कि यह मेरा गर्भ इस नदी के द्वीप में ही छोड़ दे तू कन्या ही हो जावेगी ॥११॥ वह पराशर का पुत्र महान् ऋषि तथा महा योगी बना वह मुझ कन्या का पुत्र था और द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१२॥ कहिए श्रीमान जी ! पराशर ने व्यास का पालन पोषण किस ढङ्ग से किया था ।

( ११ ) ऋष्य शृङ्ग मृगी से, कौशिक कुशा से, जाम्बुक गीदड़ से, वाल्मीक बांबी से, गौतम खरगोश की पीठ से, अगस्त्य घड़े से पैदा हुए ( वज्र सूची उपनिषत्) कणादि उलूकी

से, मांडव्य मण्डूकी से, शुक शुकी से पैदा हुये।(भवि०१।४२) सत्यवती तथा मत्स्यराज मछली से, द्रोणाचार्य कलश से, शरस्तम्ब से कृपा कृपी, कृष्णा तथा धृष्टद्युम्न यज्ञ की वेदी से पैदा हुये। (महा० आदि० अ० ६३) सनातन धर्म के विचार से इन समस्त बालकों का पालन पोषण कैसे किया गया था। निश्चित धायी अथवा गौ बकरी आदि के दूध से ही किया गया मानना पड़ेगा।

(१२) कृष्ण ने एक भी दिन देवकी का दूध नहीं पीया। अपितु कृष्ण ने यशोधा के दूध से ही परवरिश पायी थी। हालांकि देवकी क्षत्रिया तथा यशोधा वैश्या थी।

(१३) विश्वामित्र ने मेनका से व्यभिचार किया। मेनका के गर्भ से शकुन्तला पैदा हुई, मेनका तथा विश्वामित्र दोनों उसे जंगल में छोड़ कर चले गये। तब कण्वमुनि ने उसका पालन पोषण किया। बतलाइये उसका पालन पोषण बिना धायी वा दूध के कैसे हुवा (महा० आदि० अ० ७२)

(१४) चन्द्रमा ने गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा से व्यभिचार किया। तारा ने बुधनाम पुत्र पैदा किया। और पैदा करते ही छोड़कर चली गई। तो बतलाइये चन्द्रमाने बुध का पालन पोषण बिना धायी वा दूध के कैसे किया।

(भविष्य० उत्तर० अ० ९९)

(१५) माधवी ने चार वर्ष में चार पतियों के लिये चार पुत्र पैदा किये। और पुत्र उन को देकर वन में चली गई, उन चारोंका पालन पोषण बिना धायी अथवा गौ बकरी के दूध के कैसे हुवा (महा० उद्योग० अ० १०५ से १२१)

(१६) राजा संजय ने अपने पुत्र के पालनार्थ धायी रक्खी थी जैसा कि—

ततो भागीरथी तीरेकदा चिन्निर्जनेवने।
धात्री द्वितीयोबालः सक्रीडार्थंपर्य्यधावत ॥३१॥
(महा० शांति०अ० ३१)

तब कभी निर्जन वन में भागीरथी के तीर पर वह बालक धायी को साथ में लेकर खेलने के लिये दौड़ने लगा॥३१॥

(१७) पंचशिख का पालन पोषण गुरुकी स्त्री कपिलाने किया जिस से उसका नाम कापिलेय हुवा जैसे कि—

आसुरिर्मण्डले तस्मिन् प्रतिबोदेतदव्ययम् ॥१३॥
तस्यपंचशिखः शिष्योमानुष्याप यपाभूतः।
ब्राह्मणी कपिलानामकाचिदासीत् कुटुम्बिनी ॥१४॥
तस्याःपुत्रत्वमागम्य स्त्रियाः सपिबतिस्तनौ।
ततः सकापिलेयत्वंलेभेबुद्धिं चनैष्ठिकीम् ॥१५॥
(महा० शान्ति० अ०२१८)

उस मंडल में आसुरिजी आये ॥१३॥ उसका शिष्य पंचशिख था जो स्त्री के दूध से पाला था। कपिला नाम की कोई ब्राह्मणी उसकी पत्नी थी ॥१४॥ उस स्त्री का पुत्र बनकर उस स्त्री के दोनों स्तनों का दूध पीता था। उस से वह कपिल के पुत्रत्व तथा नैष्ठिकी बुद्धि को प्राप्त हुवा ॥१६॥ इत्यादि इत्यादि अनेक लेख सनातनधर्म के ग्रन्थों में मौजूद हैं। जिन से माता के अभाव में तथा माताकी मौजूदगी में भी बच्चे को धाई के दूध तथा गौ वा बकरी आदि के दूध से पालना साबित होता है। इतने प्रमाणों की मौजूदगी में सनातनधर्म का स्वामीजी के लेख पर आपत्ति करना यदि ढीटपन नहीं तो और क्या है। आपको

केवल धायी से ही घबरा रहे हैं। सनातनधर्म में तो बड़ी बड़ी आश्चर्य जनक तथा वेदविरुद्ध घटनायें मौजूद हैं जैसे कि—

(१८) ततोवर्षशतेपूर्णे तस्यराज्ञोमहात्मनः ॥२६॥
वामपार्श्व विनिर्भिद्यसुतः सूर्य्यइवस्थितः।
निश्चक्राम महातेजा न च तं मृत्युराविशत्॥२७॥
युवनाश्वं नरपतिं तदद्भुतमिवाभवत्॥२८॥
प्रदेशिनीं ततो ऽस्यास्ये शक्रः समभिसंदधे ॥२६॥
मामयं धास्यतीत्येवं भाषिते चैववज्रिना।
मान्धातेतिचनामास्य चक्रुःसेन्द्रादिवौकसः ॥३०॥
प्रदेशिनीं शक्रदत्तामा स्वाद्यस शिशुस्तदा।
अवर्द्धत महातेजाः विष्कून्त्राजंस्त्रयोदशः ॥३१॥

(महा० वन० अ० १२६)

तब सौ वर्ष पूरे होनेपर उस महात्मा राजा युवनाश्वकी ॥२६॥बाईं कूख को फोड़कर सूर्य्य के समान पुत्र पैदा हुवा। वह महा तेजस्वी पुत्र निकल आया। परन्तु उस युवनाश्व राजा को मृत्युप्राप्त नहीं हुई यह आश्चर्य्य ही हुवा॥ २७।२८ ॥ तब उस बालक के मुख में इन्द्रने अपनी अंगुली देदी ॥ २६ ॥ यह मुझ को चूसेगा इन्द्र के ऐसा कहने पर देवताओं ने उस बालक का नाम मान्धाता रख दिया ॥३०॥ इन्द्र से दी हुई उस अंगुली को चूसते हुये वह बालक महातेजस्वी दश बालिश्त बढ़ गया ॥ ३१ ॥

यह पुरुष के गर्भ होना उसके पेट से बालक का पैदा होना तथा इन्द्र की अंगुली को चूस कर बालक का बढ़ना सर्वथा ही वेद के विरुद्ध है। क्योंकि वेद कहता है कि—

पुंसि वैरे तो भवति तत् स्त्रिया मनुषिच्यते।

तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिर वीत् ॥२॥

(अथर्व१ कां० ६ सू० ११)

पहिले वीर्य मनुष्य में ही होता है। वह पीछे से स्त्री में सींच दिया जाता है। वह ही सन्तान की प्राप्ति कराने वाला होता है। ऐसा प्रजापति परमात्मा ने कहा है ॥२॥

क्या कोई पुंमैथुन प्रिय सनातन धर्म्मी ऐसा भूतल पर मौजूद है जो उपरोक्त वेद विरुद्ध घटना को वेदानुकूल साबित करने के लिये मैदान में आये।

(१२) तस्मिन्नवसरे तत्र कृत्तिकाख्याश्च षट् स्त्रियः।
स्नातुं समागताबालं ददृशुस्तं महा प्रभुम् ॥२६॥
ग्रहीतुं तं मनश्चक्रुः सर्वास्ताः कृतिकाः स्त्रियः।
वादो बभूवतासांतद् ग्रहणेच्छापरो मुने ॥३०॥
तद्वादशमनार्थं स षण्मुखानि चकारह।
पपौ दुग्धं च सर्वासां तुष्टास्ता अभवन्मुने ॥३१॥

(शिव० रुद्र० कुमार० अ० ३)

षट् शिरा द्विगुण श्रोत्रो द्वादशाक्षिभुजक्रमः।
एकग्रीवै कजठरः कुमारः समपद्यत ॥१७॥

(महा० वन० अ० २२४)

उस समय वहां पर कृत्तिका नाम की छः स्त्रियें स्नान करने को आईं। और उस महातेज स्वी बालक को देखा ॥२६॥ उन कृत्तिका नाम की सब स्त्रियों ने उसके ग्रहण करने की मन में इच्छा की उस के ग्रहण करने की इच्छा के बारे में उन का विवाद होगया ॥३०॥ उन का विवाद शान्त करने के लिये उस बालक ने अपने छः मुख बना लिये। और सब का दूध पीने लगा वे सब प्रसन्न हो गईं ॥३१॥ छः सिर वाला, बारह कानों

वाला, बारह नेत्रों वाला बारह भुजा वाला, एक गर्दन और एक पेट वाला, कुमार पैदा हुआ ॥१७॥

यह इस प्रकार के बालक की पैदाइश वेद के विरुद्ध है। क्योंकि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यादि" मन्त्र से स्पष्ट है कि पुरुष के एक मुख, दो हाथ, दो नेत्र, दो कान, ही सृष्टि क्रम के अनुकूल हैं। क्या कोई पौराणिक ज्ञानी इस बालक की बनावट को वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ है।

(२०) यथासमयमाज्ञाय तदास नृपसत्तमः।
द्वाभ्यामेकंफलं प्रादात् पत्नीभ्यांभरतर्षभ ॥३३॥
तेतदाम्रं द्विधाकृत्वा भक्षयामासतुःशुभे।
भाविच्वादपिचार्थस्य सत्यवाक्यतयामुनेः ॥३४॥
तयोसमभवद्गर्भःफलप्राशनसंभवः।
तेचदृष्ट्वासनृपतिः परांमुदमवापह ॥३५॥
अथक लेमहाप्राज्ञ यथासमय मागते।
प्रजायेतामुभे राजन्शरीरशकलेतदा ॥३६॥
एकाक्षिबाहुचरणे अर्द्धोदरमुखस्फिचे।
दृष्ट्वाशरीरशकले प्रवेपतुरुभेभृशम् ॥३७॥
उद्विग्नेसहसन्मन्त्र्यतेभगिन्यौतदाबले।
सजीवे प्राणिशकलेतत्यजातेसुदुःखिते ॥३८॥
तयोर्धात्र्यौ सुसम्वीतेतेकृत्वागर्भसंप्लवे।
निर्गम्यान्तःपुरद्वारात्समुत्सृज्याभिजग्मतुः ॥३९॥
तेचतुष्पथनिक्षिप्तेजरानामाथ राक्षसी।
जग्राह मनुजव्याघ्र मांसशोणित भोजना ॥४०॥
कर्त्तुं कामा सुखवहे शकलेसातु राक्षसी।
संयोजयामास तदाविधान बलचोदिता ॥४१॥

तेसमानीतमात्रेतु राकलेपुरुषर्षभ ।
एकमूर्तिधरोवीरः कुमारःसमपद्यत ॥४२॥
( महा०सभा० अ० १७ )

तस्यनामा करोच्चैव पितामहसमःपिता ।
जरया संधितोयस्माज्जरासंधोभवत्ययम् ॥११॥
(महा० सभा० अ० १८)

तब राजा वृहद्रथने समयकी अनुकूलता जानकर अपनी दोनो पत्नियों को एक फलदे दिया ॥ ३३ ॥ उन दोनों सुन्दरियों ने उस आम के दो भाग करके आधा २ खालिया । क्योंकि भावि ऐसी थी और मुनि का वाक् सत्य होना था ॥ ३४ ॥ फल के खाने के कारण उन दोनों के गर्भ हो गया । उन दोनों को गर्भ-वती देख कर राजा अति प्रसन्न हुआ ॥ ३५॥ उसके बाद समय के प्राप्त होने पर उन दोनोंने शरीर के दो टुकड़े पैदा किये ॥ ३६ ॥ एक आंख एक हाथ एक पैर आधा पेट आधा मुख आधे गुरदे । शरीर के इस प्रकार दो टुकड़े देख कर दोनों रानियां कांपने लगीं ॥३७॥ वे दोनों दुःखित हुईं । आपस में मशवरा करके दोनों अबला बहिनों ने प्राण रखने वाले उन दोनों शरीर के टुकड़ों को त्याग दिया ॥३८॥ उन दोनों की धायियां उन दोनों टुकड़ों को ढक कर महल से बाहर फैंक कर चली गईं ॥३९॥ उनके चुरस्ते पर फैंके जाने पर जरा नाम की मांस खून भोजन करने वाली राक्षसी ने उनको ग्रहण कर लिया ॥४०॥ उन सुखी करने वाले दोनों टुकड़ों को राक्षसी ने चीरने की कामना करते हुए विधि के बल से प्रेरित हो कर आपस में जोड़ दिया ॥४१॥ वे दोनों टुकड़े समीप लाने मात्र से ही एक मूर्ति धारण करने वाला कुमार बन गया ॥४२॥

ब्रह्मा के समान उसके पिता ने उस का नाम करण किया। चूंकि जरा ने इसकी संधि की है इस लिये इस का नाम जरासंध हो गया ॥११॥

यह संपूर्ण कथा सृष्टि क्रम तथा वेद के विरुद्ध है क्योंकि वेद कहता है कि—

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥
(ऋ० ५।७८।६)

हे परमातमन्! दश महीने तक माताके उदर में सोने वाला सुकुमार जीव प्राण धारण करता हुआ जीती हुई अपनी माता से बिना किसी ज़ख़्म के बाहर निकले ॥६॥

यह मन्त्र एक माता से ही एक पुत्र की उत्पत्ति वर्णन करता है। अतः दो मातओं से एक पुत्र का पैदा होना सर्वथा वेद के विरुद्ध है। क्या कोई पौराणिक डाक्टरी से माहर जीता जागता पौराणिक पण्डित भूगोल पर मौजूद है जो दो माताओं के पेट से एक बालक का पैदा होना साबित कर सके।

(५५३) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ४ में लिखा है कि—

"प्रश्न—जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो। वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जावे। तो उसके मां बाप की सेवा कौन करेगा। और वंशच्छेदन भी हो जावेगा। इस की क्या व्यवस्था होनी चाहिये"।

उत्तर—न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा। क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से मिलेगें।

लड़कों का यह तबादला बिलकुल वेद विरुद्ध है। इस बारे में जो आर्य्य समाज के पण्डितों की तरफ से यह पेश किया जाता है कि "अहं राष्ट्री संगमनी अथर्व० ४।६।३०" के मन्त्र में राज सभा खुद कहती है कि मैं जिस को चाहती हूं वैसा बना देती हूं। यहां आर्य्य समाज के पंडित धोका देते हैं। इस सारे सूक्त का देवता 'वागाम्भरणी शक्ति दुर्गा' है। फिर यहाँ राज सभा कहां से कूद बैठी। इन मंत्रों में तबादले की आज्ञा नहीं है।

पृ० ८३ पं० २२।

उत्तर—स्वामी जी का उपरोक्त लेख कतई तौर से वेद के अनुकूल है क्योंकि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस मंत्र द्वारा परमात्मा ने इनसानों की सोसाइटी को मनुष्य के शरीर के साथ उपमा देकर हमको यह शिक्षा दी है कि हे मनुष्यो! तुम कर्मों के अनुसार चार वर्णों में विभक्त होते हुये भी आपस में ऐसे प्रीति प्रेम के साथ संगठित रहो जैसे शरीर के चारों हिस्से आपस में प्रीति प्रेम के साथ रहते हैं जैसे सारा शरीर विविध प्रकार की वस्तुओं को बनाने में लगा रहता है। और बनने पर जो वस्तु जिस अंग के लिये जरूरी होती है उसी को दे देता है और सारा ही शरीर सम्मिलित रूप से अपनी सम्पत्ति का अपने को समझता है। वैसे ही हे इनसानो! देश की सारी सम्पत्ति को चारों वर्ण सम्मलित रूप से अपनी समझो। और देश की सारी सन्तान को कौमी सम्पत्ति समझ कर उसको काबिल बनाने का यत्न करो। और नौजवान होने पर जो सन्तान जिसकी सेवा कर ने काबिल हो वह उसके हवाले कर दो। जब इस मंत्र के अनुसार सारे देश की सन्तान हो सारी कौम की सम्पत्ति है। तो फिर तबादले में किसी प्रकार की

आपत्ति ही नहीं है। रहा प्रबंध का सवाल सो वह राज्य सभा तथा विद्वत् सभा करेगी जैसा कि वेद में आता है। कि—

(२) अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
ता मा देवाव्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥२॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानाममुत मानुषाणाम्।
यं कामयेतन्तमुग्रंकृणोमि तंब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३॥
(अथर्व० ४।३०)

राज सभा, विद्या सभा तथा धर्म्म सभा कहती है कि मैं राष्ट्र के प्रबंध को चलाने वाली हूं। मैं वसु रुद्र तथा आदित्य ब्रह्मचारियों की गृहस्थ में जाने से पूर्व व्यवस्था करने वाली हूं। सब के सब विद्वान लोग मिल कर मुझको दृढता पूर्वक प्रथम ही फ्राइम करें ॥१॥

मैं स्वयं इस बात को कहती हूं कि मैं देवों तथा मनुष्यों को सेवन करती हूं। मैं जिस २ को चाहती हूं उस २ को तेजो मय क्षत्रिय बनाती हूं। और जिस २ को चाहती हूं उस उस को ब्राह्मण, ऋषि और सुमेधा बनाती हूं ॥३॥

इस सारे सूक्त में यही वर्णन है कि विद्या सभा, राज सभा और धर्म्म सभा सब मनुष्यों को कर्मानुसार वर्णव्यवस्था करती हैं। इस सूक्त का देवता अर्थात् प्रतिपाद्यविषय "वागाम्भृणी" है जिस के अर्थ हैं वेद वाणी को धारण करने वाली सभा। चुनांचि मन्त्र में पड़ा हुआ "राष्ट्री संगमनी" पद हमारे अर्थ की पुष्टि करता है। यहां शक्ति और दुर्गा का नामो निशान भी नहीं है। क्योंकि पौराणिक दुर्गा का स्वरूप निम्न प्रकार से है कि—

कंस विद्रावण करी, असुराणां क्षयंकरी, शिला तट विनि क्षिप्ता, आकाशं प्रतिगामिनी ॥३॥ वासुदेवस्य भगिनी, खड्ग-खेटकधारिणी ॥४॥ वरदा, कृष्णा, कुमारी, ब्रह्मचारिणी ॥ ७ ॥ चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्रा, पीन श्रोणि पयोधरा ॥ ८ ॥

( महा० विराट० अ० ६ )

इत्यादि २ दुर्गा के अनेक विलक्षण गुण वर्णन किये गये हैं। जिन में से इस सूक्त में एक भी दिखाई नहीं देता इस से साबित हुआ कि इस सूक्त में पौराणिक दुर्गा का वर्णन नहीं है। अपितु राष्ट्र की प्रबंध कर्त्री राज सभा, धर्म्म सभा, तथा विद्या सभा का ही वर्णन है। और वर्णाश्रम की व्यवस्था उस का कर्तव्य है जैसा कि—

(३) त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथ सदांसि ॥ ऋ० मं० ३ सू० ३८ मं० ६ ॥

त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तोधर्म्म पाठकः।
त्र्यश्चाश्रमिणः पूर्वेपरिषत्स्याद्दशावरा ॥१११॥
ऋग्वेद्विद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्रयवरा परिषज्ज्ञेया धर्म संशयनिर्णये ॥११२॥(मनु०१२)
आचार्य्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा॥१४८(मनु०२)
अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ चकेवलौ।
वर्ण क्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणिकार्यिणाम॥२४॥(मनु०८)
स्वे स्वे धर्म्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षति ॥३५॥( मनु०७ )
परस्पर विरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।
कन्यानां सं प्रदानंच कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५२॥(मनु०७)

ये न पूर्वामुपासंते द्विजाः संध्यां न पश्चिमाम् ॥१६॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्र कर्माणि कारयेत् ॥२०॥
(महा० अनु० अ० १०४)

सम्यग्वेदान् प्राप्य शास्त्राण्यधीत्य सम्यग्राज्यंपालयित्वा च राजा। चातुर्वर्ण्यं स्थापयित्वा स्वधर्मे पूतात्मा वै मोदते देव लोके ॥३५॥
(महा० शांति अ० २५)

प्राप्य राज्यं महाराज कुन्ती पुत्रो युधिष्ठिरः।
चातुर्वर्ण्यं यथा योग्यं स्वे स्वे स्थाने न्यवेशयत् ॥४॥
(महा० शांति० अ० ४५)

चातुर्वर्ण्यस्य धर्म्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता।
धर्म्म संकर रक्षा च राज्ञाधर्मः सनातनः ॥१५॥
(महा० शांति० अ० ५७)

विकर्मस्थाश्च नोपेक्ष्या विप्रा राज्ञा कथंचन।
नियम्याः सम्विभज्याश्च धर्मानुग्रहकारणात् ॥११॥
(महा० शान्ति० अ० ७६)

पूजयेद्धार्मिकान् राजानिगृह्णीयादधार्मिकान्।
नियुंज्याच्च प्रयत्नेन सर्ववर्णान् स्वकर्मसु ॥१८॥
(महा० शांति० अ० ८६)

अविरूपैः कुले जातैदक्षैर्मैत्रैर्बहुश्रुतैः।
सर्वाबुद्धोः परीक्षेयास्तापसाश्रमिणामपि ॥५०॥
(महा० शान्ति० अ० ९१)

इत्यादि २ अनेक प्रमाण मिलते हैं। जिस से साबित है कि राजा ही विद्या सभा धर्म सभा तथा राज सभा द्वारा कर्मानुसार वर्णों तथा आश्रमों की व्यवस्था करने वाला है।

(४) सन्तान के तबादले की आज्ञा वेदों में अनेक प्रकार से मौजूद हैं। विवाह में लड़कियां पिता के घर से पति के घर में तबदील होती हैं जैसे कि—

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अवदीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ अथर्व० १४।२।५२ ॥

ये कामना करती हुई शोभावती कन्यायें पितृकुल से पति कुल को जाती हुई सुन्दर वाणी से नियम व्रत को धारण करें ॥५२॥

इसकी विस्तार पूर्वक व्याख्या मनुजी करते हैं कि—

असपिण्डाचया मातुरसगोत्राचयापितुः ।
साप्रशस्ताद्विजातीन दार कर्मणिमैथुने ॥५॥
शूद्रैव भार्याशूद्रस्य साचस्वाचविशःस्मृते ।
ते च स्वाचैव राज्ञश्च ताश्चस्वाचाग्रजन्मनः ॥१३॥(मनु ३)
यादृग्गुणेनभर्त्रा स्त्री संयुज्येतयथाविधि ।
तादृग्गुणासाभवति समुद्रेणेवनिम्नगा ॥२२॥ मनु० ९ )

माताकी सपिंड न हो तथा पिताकी सपिंड और सगोत्र न हो ऐसी कन्या द्विजातियों के लिये पत्नी बनाने को योग्य है ॥५॥ शूद्रकी पत्नी शूद्राही होती है,वश्यकी शूद्रा तथा वैश्याभी पत्नी होसकती हैं। क्षत्रियकी शूद्रा वैश्या तथा क्षत्रिया पत्नी बन सकती हैं और ब्राह्मणकी शूद्रा वैश्या क्षत्रिया तथा ब्राह्मणी पत्नी बनसकती हैं ॥१३॥ जिस प्रकार के गुणोंवाले पति से स्त्री विधि पूर्वक मिलजाती है उसी प्रकारकी गुणोंवाली वह होजाती है जैसे समुद्र में मिलकर नदियां समुद्ररूप होजाती हैं ॥२२॥

(५) और कभी कभी पति की पत्नी के घर में तबदीली होती है जैसेकि जब लड़की के बापके यहां पुत्र नहो तो वह पुत्री को ही पुत्रिका बना लेता है। और उसका पति कन्याके बाप के

घर तबदील हो जाता है। उस कन्या से जो लड़का होता है वह कन्या के बापका पौत्र ही मानाजाता है जैसेकि—

शासद्विहिद्रुर्हितुर्नप्त्यंगाद्विद्वाँ ऋतस्यदीधितिं
सपर्य्यन् | पितायत्रदुहितुः सेक मृञ्जन्त्सं शग्म्येन
मनसादधन्वे ॥ ऋ० मं० ३ सू० ३१ मं० १ ॥

धारण करने वाला पुत्री को सन्तानकर्म में पुत्र प्रसिद्ध करता है। और दोहते को पोता स्वीकार करता है। सन्तान पैदा करने के विधान की पूजा करता हुआ प्रजनन यज्ञ को जानता है। ( निरु० अ० ३ खं० ४ ) पिता जिस समय कन्या के दान से पहिले जंवाई के साथ प्रतिज्ञा बांधता है कि इस में जो पुत्र होगा वह मेरा होगा। इस प्रकार मन के संताप को दूर करता है। ( निरु० अ० ३ खं० ५ ) इसकी व्याख्या मनुने इस प्रकार की है कि—

अपुत्रो ऽनेनविधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्।
यदपत्यंभवेदस्यां तन्ममस्यात्स्वधाकरम् ॥१२७॥
अनेनतु विधानेन पुराचक्रे ऽथपुत्रिकाः।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्यस्वयंदक्षः प्रजापतिः॥१२८॥
यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहितासमा।
तस्यामात्मनितिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥१३०॥
पौत्र दौहित्रयोर्लोके न विशेषो ऽस्तिधर्मतः।
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥१३३॥( मनु० ६ )

पुत्रहीन मनुष्य इस विधि से अपनी पुत्री को पुत्रिका बना लेवें। कि जो इसमें पुत्र पैदा हो वह मुझे अन्न जल प्रदान करने वाला हो ॥१२७॥ इस विधान से पूर्व समय में स्वयंदक्ष प्रजापतिने अपने वंशकी वृद्धिके लिये पुत्रिका बनाई थी ॥१२८॥

जैसे आत्मा वैसा पुत्र और पुत्र के समान पुत्री। उस आत्मा की मौजूदगी में अन्य कैसे धन लेजा सकता है ॥ १३० ॥ संसार में पोते और दोहते में कोई धर्म से फर्क नहीं है। क्योंकि उन दोनों के पिता और माता उसकी देहसे ही पैदा हुवे हैं॥ १३१ ॥

( ६ ) इस के अतिरिक्त अन्य के पुत्रों को भी अपनी अनुकूलता से पुत्र बनाया जाता है। और उनका भी उत्पन्न कर्ता के घर से ग्रहण कर्ता के घर में तबादला होजाता है जैसा कि वेद में लिखा है कि—

न हि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योर्दो मनसा मन्त वाउ।
अधाचिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्य भीषाळेतु नव्यः
॥ ऋ० ७।४।८ ॥

भाषार्थ— हे मनुष्य जो (अरणः) प्रसन्न न करता हुआ (सुशेवः) सुन्दर सुख से युक्त (अन्योदर्यः दूसरे के उदर से पैदा हुआ हो (सः) वह ( मनसा ) अन्तः करण से ( ग्रभाय ) ग्रहण के लिये ( नहि ) नहीं (मन्तवै ) मानने योग्य है (चित्) उ पुनः इत् ) और भी फिर ही वह ( ओकः ) घर को ( नहि ) नहीं ( एति ) प्राप्त होता ( अध ) इसके पीछे जो ( नव्यः ) नया ( अभीषाड ) अच्छा सहन शील ( वाजी ) विज्ञान वाला (नः)हम को ( आ, एत) प्राप्त हो। अभिप्राय—जो दूसरे के पेट से पैदा हुआ बालक स्वयं चाहे सुखी हो किंतु यदि वह हमको प्रसन्न करने वाला नहीं है अर्थात् उस के गुण कर्म स्वभाव हमारे से नहीं मिलते। तो ऐसे बालक को मन से भी ग्रहण करने के योग्य नहीं मानना चाहिये । क्योंकि वह घर का मालिक नहीं बन सकता। बालक जो नया नौजवान अच्छा सहन शील अर्थात् हमारे गुण कर्म स्वभाव के अनुसार विज्ञान

वाला हो वह हमको प्राप्त करने चाहिये। सारांश यह कि जो गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल हो वह पुत्र बनाना चाहिये जो हमारे गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध हो उसको पुत्र नहीं बनाना चाहिये। इसी मंत्र की व्याख्या मनु जी करते हैं कि—

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बांधवाश्च षट् ॥१५॥
कानीनश्च स होढश्च क्रीतः पौनर्भवस्था।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदाया दबांधवाः ॥१६॥
माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि
सदृशं प्रीति संयुक्तं स ज्ञेयोदत्त्रिमः सुतः ॥१६८॥
सदृशंतु प्रकुर्याद्यं गुणदोष विचक्षणम्।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञे यश्च कृत्रिमः ॥१६६॥
माता पिताभ्यामु त्सृष्टं तयोरन्यतरेणवा।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥१७१॥
क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं माता पित्रोर्मन्तिकात्।
स क्रीतकः सुतस्तस्य स दृशोऽसदृशोऽपिवा ॥१७४॥
माता पितृ विहीनो यस्यक्तो वास्यादकारणात।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयं दत्तस्तु स स्मृतः॥१७७॥
क्षेत्रजादीन् सुतानेतानेकादश यथोदितान्।
पुत्र प्रतिनिधीनाहुः क्रिया लोपान्मनीषिणः॥१८०॥(मनु० ६)

यहां पर एक औरस पुत्र को छोड़ कर शेष ग्यारह में ही सन्तान परिवर्तन का सिद्धांत मौजूद है।

स्वपत्नी प्रभवान् पंच लब्धान्क्रीतान् विवर्धितान्।
कृतानन्यासु चोत्पन्नान् पुत्रान् वै मनुरब्रवीत् ॥९८॥
(महा० आदि० अ० ७४)

लब्धक, क्रीतक विवर्धित, कृतक तथा अन्य स्त्री में पैदा किये हुये पुत्र अपनी पत्नी में पैदा हुये ही माने जाते हैं।

महाभारत में भी तथा रामायण में भी सन्तान परिवर्तन का वर्णन मौजूद है। जैसा कि—

(७) स्थपयित्वा प्रजापालं पुत्रं राज्ये च पाण्डव।
अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ ॥१६॥
(महा० शान्ति०अ० ६३)

हे पाण्डव! प्रजा के पालन करने वाले पुत्र को राज्य में काईम करके अथवा हे श्रेष्ट क्षत्रिय! किसी अन्य गोत्र में पैदा हुये श्रेष्ट क्षत्रिय को राज्य में काईम कर के वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे ॥१६॥

(८) विश्वा भित्रस्य पुत्रत्वमृचीक तनयोऽगमत्।
ऋग्भिः स्तुत्वा महाबाहो देवान् वैयज्ञ भागिनः ॥१३॥
(महा० शांति० अ० ३६२)

निः साध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपिविगर्हितम्।
अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोम हर्षणम् ॥१६॥
श्वमांसभोजिनः सर्वे वासिष्ठा इव जातिषु।
पूर्णवर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनु वत्स्यथ ॥१७॥
(बाल्मी० बाल० स० ६२)

ऋचीक का पुत्र शुनः शेप विश्वा मित्र का पुत्र बन गया। यज्ञ के अधिकारी देवताओं की ऋचाओं से स्तुति करके ॥१३॥ विश्वामित्र ने कहा कि मधु छन्दादि पुत्रो तुम सब ने मेरे वचन का अनादर करके धर्म से निन्दित कठोर रोमांच करने वाला पाप मय वचन कहा है ॥१६॥ इस लिये तुम सब सहस्र

वर्ष तक कुत्ते के मांस का भोजन करते हुये जाति में वासिष्ठों को भाँति पृथिवी पर निवास करोगे ॥१७॥

यहां पर विश्वामित्र ने ऋचीक के पुत्र शुनः शेप को तो धर्मात्मा समझ कर अपना पुत्र बना लिया और मधु छन्दादि अपने पुत्रों को पापाचारी होने के कारण घर से निकाल दिया।

(९)सूर्य्य का पुत्र करण अधिरथ सूत का पुत्र बनकर रहा।

( १० ) शूर की पुत्री कुन्ती राजकुन्ती भोज की पुत्री बनी।

( ११ ) वसुदेव का पुत्र कृष्ण वृन्दावन में नन्द का पुत्र बन कर रहा।

( १२ ) नन्द की पुत्री एकानंशा मथुरा में वसुदेव की पुत्री बन कर रही।

( १३ ) आप के मतानुसार राजा उपरिचर की पुत्री सत्यवती मल्लाह की पुत्री बन कर रही।

( १४ ) विश्वा मित्र की पुत्री शकुंतला कण्व मुनि की पुत्री बन कर रही।

( १५ ) वृहस्पति पुत्र भारद्वाज राजा भरत का पुत्र बन कर राज वंश का चलाने वाला बना ( भाग० स्क० ९ अ० २० )

( १६ ) धनपाल वैश्य का पुत्र कबीर अली नाम जुलाहे का पुत्र बन कर रहा (भविष्य० प्रति० खं०४ अ० १७श्ल० ३७ )

( १७ ) अर्जुन के पुत्र बब्रुवाहन को उसके नाना ने पुत्र बना कर रक्खा ( भाग० स्कं० ९ अ० १८ )

इत्यादि २ अनेक उदाहरण मौजूद हैं जो सन्तान परिवर्तन को सिद्ध करते हैं। अतः स्वामी दयानन्द जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। हां पौराणिक ग्रंथों में इस प्रकार के तबादले भरे पड़े हैं कि जो वेद तथा सृष्टि क्रम के विरुद्ध हैं जैसा कि—

( १८ ) उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन् ॥८॥
(बाल्मी० बाल० स० ४६)

( १९ ) राक्षसाः कलिमाश्रत्यजायन्ते ब्रह्मयोनिषु ॥१४॥
( रामायण महात्म्य अ० १ )

( २० ) प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ति चाप्येक दन्तकः ॥४६॥
तच्छिरश्च तदा नीत्वा तत्रतेऽयोजयन् ध्रुवम् ॥५०॥
( शिव० रुद्र० कुमार० अ० १७ )

( २१ ) अथ प्रजापतेस्तस्य सवनीय यशो : शिरः ।
बस्तस्य संदधुश्शं भो : कायेनारं सुशासनात् ॥२६॥
( शिव० रुद्र०सती० अ० ४२)

( २२ )अहं हि किन्दमो नाम तपसा भावितो मुनि ।
व्यपत्रन्मनुष्याणां मृत्यां मैथुन माचरम् ॥२८॥
मृगो भूत्वा मृगैः सार्द्धं चरामिगहनेवने ॥२९॥
( महा० आदि० अ० ११८ )

( २३ ) एवमुक्त्वा ययातिस्तु स्मृत्वा काव्यं महातपाः ।
संक्रामयामास जरां तदा पूरौ महात्मनि ॥३४॥
( महा० आदि० अ० ८४ )

( २४ ) मासं स स्त्री तदा भूत्वा रमयत्यनिशं सदा ।
मासं पुरुषभावेन धर्म बुद्धिं चकार सः ॥२२॥
( बाल्मी० उत्तर० अ० ८६ )

( २५ ) भर्त्राय एष दत्तस्ते च रुर्मन्त्र पुरस्कृतः ।
एतं प्रयच्छ मह्यं त्वं मदीयं त्वं गृहाणच ॥३१॥
तथा च कृतवत्यौ ते माता सत्यवती चसा ॥३५॥
( महा० अनु० अ०४)

( २६ ) गवां शत सहस्रेण शुनः शेपं नरेश्वरः।
गृहीत्वा परमप्रातो जगामरघु नन्दन ॥२३॥
( वाल्मी० बाल० स० ६१ )

( २७ ) देवक्या सप्तमेगर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया।
रोहिणी जठरे माया तमाकृष्य ररक्षच ॥३७॥
( ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ७ )

( १८ इन्द्र के अंडकोशों के स्थान में मेंढे के अंडकोशों का परिवर्तन ( १६ ) राक्षसों का ब्राह्मण के रूप में परिवर्तन ( २० ) गणेश के सिर का हाथी के सिर से परिवर्तन ( २१ ) अज के सिर का बकरेके सिर से परिवर्तन । ( २२ ) किंदम का मृग के शरीर से परिवर्तन (२३) ययाति के बुढ़ापे का पूरू के यौवन से परिवर्तन ( २४ ) एक मास स्त्री का एक मास पुरुष के शरीर से परिवर्तन ( २५ ) सत्यवती तथा उसकी माता का चरू परिवर्तन ( २६ ) गौवों के बदले शुनः शेप का परिवर्तन ( २७ ) देवकी के गर्भ का रोहिणी में परिवर्तन । इत्यादि २ अनेक परिवर्तन सनातन धर्म में मौजूद हैं जोकि बुद्धि के विरुद्ध होने से वेद के विरुद्ध हैं। क्योंकि वेद ने "भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि" गायत्री मंत्र द्वारा बुद्धि को ही श्रेष्ठ बतलाया है। क्या कोई जन्माभिमानी पौराणिक पोप संसार में मौजूद है जो उपरोक्त तबादलों को वेदानुकूल सिद्ध कर सके।

(५५४) प्रश्न— सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ६० पं० ३ में लिखा है कि "जब एक वर्षा या छे महीने ब्राह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहे। तब उन कन्याओं और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात जिसको फोटो ग्राफ कहते हैं। अथवा प्रतिकृति

उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों को"। कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रकृति भेज देवें। जिस २ का रूप मिल जाय उस उस के इतिहास अर्थात् जो जन्म से ले के उस दिन पर्य्यंत जन्म चरित्र का पुस्तक हो उन को अध्यापक लोग मंगवा के देखें। जब दोनों के गुण कर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य समझें उस २ पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें"

चारों वेद में से एक भी मंत्र ऐसा नहीं कि जिस में फ़ोटू और जीवन चरित्र से विवाह होना लिखा हो ॥पृ० ८७ पं ३॥

उत्तर—आप अपनी सारी किताब में समस्त प्रश्नों में प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान का शिकार होकर बुरी तरह परास्त हुवे हैं। क्योंकि आपने एक स्थान में भी वेद मन्त्र देकर स्वामी दयानन्द जी के लेख का वेद से विरोध साबित नहीं किया। जब आप स्वामी जी के लेख के विरोध में कोई वेद मन्त्र पेश नहीं कर सकते तो स्वामी जी का लेख आर्ष होने से स्वयं ही वेदानुकूल है। इस प्रश्न में भी आपने स्वामी जी के लेख को वेद विरुद्ध साबित करने के लिये कोई वेद मन्त्र पेश नहीं किया हम आपको बतलाना चाहते हैं कि स्वामी जी का उपरोक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है। देखिये वेद में लिखा है कि—

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौहसामुदौमहसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥४३॥

(अथर्व० १४।२)

भाषार्थ—हे स्त्री और पुरुष! जैसे सूर्य्य सुन्दर प्रकाश युक्त प्रभात वेला को प्राप्त होता है। वैसे सुख से घर के मध्यमें

एक दूसरे को अच्छे प्रकार से परीक्षा पूर्वक जानने हारे हास्य और आनन्द युक्त बड़े प्रेम से अत्यन्त प्रसन्न हुए उत्तम चाल चलन से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलने हारे उत्तम पुत्र वाले श्रेष्ठ गृहादि सामग्री युक्त उत्तम प्रकार जीवन को धारण करते हुए गृहाश्रम के व्यवहारों के पार होवो ॥४३॥

इस वेद मन्त्र में गृह प्रवेश करने वालों के लिये परस्पर एक दूसरे की आयु रूप तन्दरुस्ती, सदाचार, सम्पत्ति, तथा विद्या की परीक्षा करके गृहाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा है। इसी वेद मन्त्र की व्याख्या मनुजी महाराज ने इस प्रकार से की है कि—

उत्कृष्टायाभिरूपायवराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥८८॥
काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८९॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यर्तुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्मा द्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०॥(मनु०९)

भावार्थ—उत्तम गुण युक्त, रूपवान्, सदृश वर के लिये यदि कन्या माता सातवें पुरत से कुछ नज़दीक भी हो तोभी विधि पूर्वक दे देनी चाहिये ॥८८॥ कन्या ऋतुमती होने पर भी चाहे घर में ही मरण पर्य्यन्त बैठी रहे। किन्तु उसे कभी भी गुण हीन पुरुष के लिये न देवे ॥८९॥ कुमारी कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक इन्तजार करे। इस समय के पश्चात् अपने सदृश पति को प्राप्त हो ॥९०॥

यहाँ पर मनु जी महाराज ने कन्या और वर की आयु गुण रूप आदि का परस्पर सदृश होना विवाह के लिये

अत्यावश्यक करार दिया है।

अब प्रश्न यह है कि वह सादृश्यता का किस प्रकार से निश्चय किया जावे। यह देश कालानुसार जैसे साधन सादृश्यता को जानने के लिये मुनासिब हों वैसे इस्तेमाल करने चाहियें। रामायण और महाभारत के पढ़ने से पता लगता है कि उस समय में स्वयंवर को सादृश्यता जानने का साधन बनाया जाता था और कन्या और वर स्वयं अपने सामने एक दूसरे को आंखों से देख कर और गणों की परीक्षा करके परस्पर विवाह का निश्चय करते थे। चुनांचि इस बारे में राम सीता, अर्जुन, द्रौपदी, नल दमयन्ती, सत्यवान् सावित्री, आदि के स्वयं वर विवाह चमकते हुये दृष्टान्त मौजूद हैं। महाभारत के पीछे पौराणिक काल आया जिस में आज्ञा हुई कि—

मुहूर्ते तिथि सम्पन्ने नक्षत्रे चाभि पूजिते।
द्विजैस्तु सह वागम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित् ॥४॥
हस्तौ पादौ परीक्षेत अंगुलीर्नखमेवच।
पाणिमेवच जंघे च कटि नासोरु एव च ॥५॥
जघनोदर पृष्ठं च स्तनौ कर्णौभुजौ तथा।
जिह्वां चौष्ठौ च दन्ताश्च कपोलं गलकं तथा ॥६॥
चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्तथैवच।
रोम राजिं स्वरं वर्ण मावर्तानि तुवा पुनः ॥७॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० २८)

भावार्थ—उत्तम मुहूर्त युक्त तिथि तथा श्रेष्ठ नक्षत्र में ब्राह्मणों को साथ में ले कर शास्त्रज्ञ कन्या को भली प्रकार देखे ॥४॥ हाथ पांव अंगुली और नाखुन जंघा कटि और नासिका की परीक्षा करे ॥५॥ जघन, पेट, पीठ, और स्तन, कान तथा

भुजा, जिह्वा, होंठ, दांत, कपोल तथा गाल की परीक्षा करे॥६॥ आंख ललाट शिर तथा केशों को देखे शरीर के रोम कंठ का स्वर तथा शरीर का रंग और पेट के बलों को बार २ देखे ॥७॥ वे अंग कैसे होने चाहिये लिखा है कि—

प्रतिष्ठिततलौ सम्यग्रक्ताम्भोज समप्रभौ।
ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषितां भोगवर्धनौ ॥१२॥
अंगुल्यः संहिता वृत्ताः स्निग्धाः सूक्ष्मनखास्तथा।
कुर्वन्त्यत्यंतमैश्वर्यं राज भावं च योषितः ॥१४॥
सुभगत्वं नखैः स्निग्धैराताम्रैश्चाधनाढ्यता।
पुत्राः स्युरुन्नतैरेभिः सुसूक्ष्मैश्चापि राजता॥१८॥
गुल्फाः स्निग्धाश्चवृत्ताश्च समारूढ शिरास्तथा।
यदिस्युर्नूपुरान् दध्यु र्वांधवाढ्यै समाप्नुयुः ॥२०॥
अशिराः शरकांडाभाः सुवृत्ताल्पतनूरुहाः।
जंघा कुर्वन्ति सौभाग्यं यानंच गजवाजिभिः ॥२१॥
हस्ति हस्तनिभै वृत्तै रंभाभैः करभोपमैः।
प्राप्नुवन्त्युरुभिः शश्वत्स्त्रिय सुखमंगजम् ॥२७॥
संध्यावर्णसमंचारु सूक्ष्मरोमान्वितंपृथु।
जघनं शस्यते स्त्रीणांरतिसौख्यकरं द्विज ॥२९॥
अरोम को भगोयस्याः रुमः सुश्लिष्टसंस्थितः।
अपिनीच कुलोत्पन्नाराजपत्नी भवत्यसौ ॥ ०॥
अश्वत्थ पत्र सदृशः कूर्मपृष्ठोन्नतस्तथा।
शशिबिम्ब निभश्चापि तथैव कलशाकृतिः॥
भगः प्रस्ततमः स्त्रीणां रति सौभाग्य वर्धनः ॥३१॥
तिलपुष्प निभोयश्चयद्यग्रे खुर सन्निभः।
द्रावप्येतौपरप्रेष्यं कुर्वातेचदरिद्रताम् ॥३२॥

उलूखलनिभै : शोकं मरणं विवृत्तान नैः ।
विरूपैः पूति निर्मां सैर्गजस निभरोमभिः ।
दौः शील्यं दुर्भगत्वं च दारिद्र्य मधिगच्छति ॥३३॥
कपित्थफलसंकाशः पीनो बलिवर्जितः ।
स्फीतः प्रशस्यते स्त्रीणां निंदितश्चान्यथा द्विजाः ॥ ३४ ॥

सुवृत्तमुन्नतं पीनमदूरोन्नतमायतम् ।
स्तनयुगमभिदं शस्तमतोऽन्यदसुखावहम् ॥ ४२ ॥
उन्नतः प्रथमेगर्भे द्वयोरेकस्य भूयसी ।
वामे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुतः ॥ ४३ ॥
दीर्घे तु चूचके यस्याः सा स्त्री धूर्ता रति प्रिया ।
सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वे ष्टि सा पुरुषं सदा ॥ ४८ ॥
स्तनैः सर्पफणाकारैः श्वजिह्वाकृतिभिस्तथा ।
दारिद्र्यमधिगच्छन्ति स्त्रियः पुरुषचेष्टिताः ॥ ४५ ॥
इदृग्लक्षण सम्पन्नां सुकन्यामुद्वहेत्तुयः ।
ऋद्धिर्बृद्धिस्तथा कीर्तिस्तत्र तिष्ठति नित्यशः ॥ १११ ॥

( भविष्य० ब्राह्म० अ० ५ )

जो पुरुष इस प्रकार के लक्षणों से युक्त कन्या से विवाह करता है। उस के यहां ऋद्धि वृद्धि तथा कीर्ति नित्य ठहरती है।

पुराणों में केवल स्त्री की ही परीक्षा नहीं लिखी अपितु पुरुष की भी लिखी है जैसा कि—

शिवेऽहनि सुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ।
पूर्वाह्णे मंगलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणैः ॥ १० ॥

( भविष्य० ब्राह्म० अ० २४ )

कल्याणकारी दिन शुभ नक्षत्र सौम्य ग्रह तथा सूर्य के शुभ होने पर दिन के पूर्व भाग अर्थात् प्रातःकाल बुद्धिमान् को पुरुष

की परीक्षा करनी चाहिये ॥ १० ॥ पुरुष के अंग किस प्रकार के होने चाहिये आगे इस का वर्णन हैं जैसा कि—

दक्षिणावर्तलिंगश्च नरो वै पुत्रमान् भवेत् ।
वामावर्त्ते तथा लिंगे नरः कन्या प्रसूयते ॥ १ ॥
स्थूलैः शिरालैर्विषमै लिंगै दारिद्र्यमादिशेत ।
ऋजुभि र्वर्तुलाकारैः पुरुषाः पुत्रभागिनः ॥२॥
निम्नादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनः ।
दुःखितं तं विजानीयात् पुरुषं नात्र संशयः ॥३॥
भूमौ पादौपविष्टस्य गुल्फौ स्पृशति मेहनः ।
ईश्वरं तं विजानीयात् प्रमदानां च वल्लभम् ॥४॥
सिंह व्याघ्र समोयस्य ह्रस्वो भवति मेहनः ।
भोगवान् स तु विज्ञेयोऽशेषभोगसमन्वितः ॥ ५ ॥
रेखाकृतिर्मनिर्यस्य मेहने हि विराजते ।
पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्र वचनं यथा ॥ ६ ॥
विस्तीर्णा मांसला स्निग्धा वस्तिः पुंसां प्रशस्यते ।
निर्मांसा विकटा रूक्षा वस्तिर्येषां न ते शुभाः ॥ १९ ॥
गोमायुसदृशी यस्य श्वानोष्ट्र महिषस्य च ।
स भवेद् दुःखितो नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥ २० ।
यश्चैक वृषणस्तात जले प्राणान् विमुंचति ।
स्त्री चंचलस्तु विषमैः समै राज्यं प्रचक्षते ॥ २१ ॥

( भविष्य० ब्राह्म० अ० २५ )

जिन पौराणिकों के हां इस प्रकार की परीक्षा करके विवाह करना लिखा हो वह स्वामी जी के उपरोक्त लेखपर आपत्ति करें तो आश्चर्य नहीं तो क्या है। स्वामी जी ने लड़का लड़की की रूप, आवरण, गुणों में सादृश्यता मिलाने के लिये तसवीर

तथा जीवन चरित्र का तबादला तथा सब के सामने एक दूसरे को देखना ज़बानी तथा लिख कर भी प्रश्नोत्तर करना साधन बतलाया है जो कि युक्ति युक्त तथा वेदानुकूल है। हां पौराणिक रिवाज नाई ब्राह्मण के द्वारा लड़के लड़कियों का रिश्ता करना तथा मुंह सिर लपेट पारसल बना फेरों के समय वेदी पर बिठाना और बैठ कर लड़की का फेरे लेना घूंघट निकलना आदि संपूर्ण ही वेद के विरुद्ध हैं क्या कोई सनातन धर्म्म का पंडित जीता जागता मौजूद है जो पौराणिकों के हां होने वाली अनमेल शादियों को वेदानुकूल साबित कर सके।

हां ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि अनिरुद्ध तथा उषा ने एक दूसरे की तसवीर को स्वप्न में देखा और दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। अन्त में दोनों ने विवाह कर लिया—

स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते ॥ ३ ॥
वायु प्रेरण वस्त्रेण व्यक्त गुप्त स्थलोज्वलाम् ॥ ९ ॥
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथित मानसः ॥ १० ॥
स्वप्नं च दर्शयामास वाण पुत्री च कामुकीम् ॥ ४२ ॥
नवीन नीरदश्याममतीव नवयौवनम् ॥ ४३ ॥
कामात्मजप्रिया कांता कामबाण प्रपीडिता ॥ ४८॥
पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा सा रेमे विरह ज्वरा
गांधर्वेण विवाहेन तामुवाहस्मरात्मजः। ८३ ॥

(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ११४)

भावार्थ—अनिरुद्ध ने पार्वती की माया के कारण स्वप्न में फूली हुई फुलवाड़ी में एक युवती जो उषा को देखा ॥३॥ वायु की प्रेरणा से जिसका उज्ज्वल गुप्त स्थान नंगा हो रहा था ॥९॥ उस को देख कर काम का पुत्र अनिरुद्ध कामातुर हो उठा ॥१०॥

उस कामातुरा वाण की पुत्री को कृष्ण ने स्वप्न दिखलाया॥४२॥ जिस में उसने नये श्याम कमल के समान यौवन वाले पुरुष को देखा ॥ ४४ ॥ उस काम के पुत्र अनिरुद्ध को देख कर वाण की पुत्री उषा कामातुर हो उठी ॥ ४८ ॥ अंत में यत्न पूर्वक मिलने पर उस पतिव्रता उषा ने पति अनिरुद्ध को देख कर उस से आनन्द पूर्वक रमण किया और अनिरुद्ध ने उससे गांधर्व विवाह की विधि से विवाह कर लिया ॥ ८३ ।

कहिए महाराज ! यह तो घर में से ही सब कुछ निकल आया। अब स्वामी जी के लेख पर किस मुख से आक्षेप करने का साहस कर सकेंगे ।

(५५५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु०१०॥०२६३पं०६में लिखा है कि–"इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य डाढ़ी मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये। अर्थात् पुनः कभी न रखना। शीत प्रधान देश हो तो कामाचार है। चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये। क्योंकि सिर में बाल रखने से उष्णता अधिक होती हैं। और उससे बुद्धि कम हो जाती है" यवन साम्राज्य में सहस्रों हिन्दुओं ने जान देदी किंतु चुटिया न दी। जब शास्त्रार्थ में शिखा कटवाने का वेद मंत्र मांगा जाता है। तो आर्य समाजियों की नानी मरजाती है।

पृ० ८७ पं० २३।

उत्तर—स्वामी जी के लेख में चोटी कटाने की नित्य विधि नहीं है। अपितु स्वामी जी ने नैमित्तिक रूप से चोटी का कटाना लिखा है। क्योंकि उपरोक्त लेख में ही "इसके पश्चात्

केवल शिखा को रख के अन्य डाढ़ी मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये" ये शब्द स्वामी जी के अभिप्राय को स्पष्ट बता रहे हैं। तथा पंचमहा यज्ञ विधि में भी स्वामी जी ने सन्ध्या के आरम्भ में लिखा है कि "इसके पश्चात् गायत्री मंत्र से शिखा अर्थात चोटी को बांध कर रक्षा करे" इससे साफ साबित है कि स्वामी जी साधारणावस्था में चोटी का नित्य रखना तसलीम करते हैं। नैमित्तिक रूप से खास हालतों में चोटी का कटाना भी मनुष्य की इच्छा पर निर्भर मानते हैं जैसा कि "जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये" ये शब्द स्पष्ट बता रहे हैं। और यह लेख भी स्वामी जी का अपना नहीं है। अपितु स्वामी जी ने मनुस्मृति के श्लोक की व्याख्या तथा उस पर होने वाली शंकाओं का समाधान किया है। जैसा कि मनुस्मृति में लिखा है कि—

(१) केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबंधो द्वार्विंशे वैश्यस्य द्व्यधि के ततः ॥६५॥
मुण्डो वा जटिलोवा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः।
मैनंग्रामेऽभिनिम्लोचे त्सूर्योनाभ्युदिया त्क्वचित् ॥२१६॥
(मनु० २)

भावार्थ—ब्राह्मण का केशांत संस्कार सोलहवें वर्ष होता है क्षत्रिय का बाईसवें वर्ष तथा वैश्य का चौबीसवें वर्ष होता है ॥६५॥ चाहे तो सारे बाल मुंडवा कर रक्खे चाहे जटाजूट रहे चाहे चोटी रख कर बाकी सब मुंडवा दे। इस ब्रह्मचारी को कभी ग्राम में सोये हुये को सूर्य्य उदय और अस्त न हो॥२१९॥

और मनु ने भी यह चोटी कटवाने का विकल्प अपनी तरफ से नहीं लिखा अपितु वेद में इस की आज्ञा है जैसा कि—

(२) व्युप्त के शाय च नमः ॥यजु०१६।२६॥

व्युप्ता मुण्डिताः केशा यस्य स व्युप्तकेशस्तस्मैनमः (महीधर)

(३) यत्रबाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव । तत्र इन्द्रो बृहस्पति रदितिः शर्मयच्छतु विश्व हा शर्म यच्छतु ॥ यजु० १७।४८॥

यथा कुमारा अदृष्ट परिकारिणः विगत शिखाः सर्वमुण्डाः तंतमर्थं संनिपतेयुरेवं संपतन्ति तत्रेत्यर्थः (उव्वट) कुमारा विशिखा इव विगता शिखा ये षां तेवि शिखाः शिखा रहिता मुण्डितमुण्डा विकीर्ण कवचा वा अतिबालाश्चपलाः सन्तो यथा इतस्त तो गच्छन्ति तद्वत् (महीधर)

भाषार्थ—समस्त केश मुंडवाने वाले का सत्कार करो (२) जिस संग्राम में बिना चोटी केश बहुत चोटियों वाले बालकों के समान बाण आदि शस्त्र अस्त्रों के समूह अच्छे प्रकार गिरते हैं। वहां बडीसभा वा सेना पालने वाला सेनापति आश्रय वा सुख को देवे और नित्य सभासदों से शोभायमान सभा सब दिन हम लोगों के लिये सुख सिद्ध करने वाले घर को देवे (दयानन्द)

यहां पर उव्वट और महीधर चोटियों को सर्वथा मुंडवाने तथा स्वामी दयानन्द जी चोटी कटवाने में विकल्प मानकर चोटी के रखने का भी विधान करते हैं। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। पौराणिक ग्रन्थों में चोटी कटवाने के अनेक प्रमाण मौजूद हैं जैसे कि—

(४) यथा मंगलं केश शेष करणम् ॥पारस्कर० २।१।२१॥ केशानां शेष करणं शिखा स्थापनं केश शेष करणं यथा मंगलं मंगलं कुलाचार व्यवस्थामनतिक्रम्य भवति। कुलाचाराश्च बहुधा। तद्यथा लौगाक्षिः। तृतीयस्यवत्सस्य भूयिष्टे गते चूडां कारयेत् दक्षिणतः कंबुजा वसिष्ठानामुभयतो ऽत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः पंचचूडाआंगिरसः वाजिमे के मंगलार्थं शिखिनो ऽन्ये ( हरिहर ) यस्यकुले यथा प्रसिद्धं तस्य तथैव शिखा स्थापनं कार्यम्। अत्र कारिकायाम् ॥

केशशेषं तथा कुर्याद्यस्मिन् गोत्र यथोचितम्।
वसिष्ठाः दक्षिणे भागे उभयत्रापि काश्यपाः ॥
शिखां कुर्वन्त्यं गिरसः शिखाभिः पंचभिर्मताः।
परितः केश पंक्तयावा मुण्डाश्च भृगवोमतः ॥
कुर्वन्त्यन्ये शिखामत्र मंगलार्थमिह क्वचित् ॥ (गदाधार)

भावार्थ—कुलाचार के अनुसार केश कटवाने चाहिये। और कुलाचार बहुत हैं। जैसे वसिष्ट तथा कंबोज दायें तरफ चोटी रखते हैं। अत्रि तथा कश्यपों के दोनों तरफ चोटी रक्खी जाती है आंगिरस पांच चोटियां रखते हैं। भृगू लोग सर्वथा मुंडे हुए चोटी से रहित रहते हैं। और दुसरे सब लोग मंगलार्थ चोटी रखते हैं ॥

(५) यथा गोत्रकुलकल्पम् ॥गोभिल० २।८।२५॥

गोत्रकुलानु रूपं सशेखं शिखा शून्यं वा, पंच चूडंवा ( तथा च " वासिष्टाः पंच चूडा स्युस्त्रिचूडाः कुण्डपायिनः" किंच " सशि खं वपनं कार्यमाम्नायाद् ब्रह्मचारिणाम्। आशरीर विमोक्षा य ब्रह्मचर्य्यं न चेद्भवेत् " इति। एवं च वसिष्ट गोत्राणां पं च चूडं मुण्डनम। कुण्डपायिनां त्रिचूडं

मुण्डनम्, कौ थुमानामा समावर्तनात् सशिखं वपनं चेति ) बहुवचनं साधारण विधपेक्षम् ( सत्यव्रत सामाश्रमी )

भावार्थ—गोत्र और कुलानुसार पांच या तीन शिखा या शिखा रहित या शिखा सहित मुण्डन करवावे।

( ठाकुर उदय नारायण सिंह )

(६) धनान्यपत्यं दारांश्च रत्ना निविविधानिच।
पन्यानं पावकं हित्वा जनको मौण्डयमास्थितः ॥४॥

( महा० शान्ति० अ० १८ )

धन, सन्तान, स्त्री, तथा विविध प्रकार के रत्न, मार्ग, और अग्नि का त्याग करके जनक मौण्डय भाव को प्राप्त हुआ।

(७) मुण्डानेतान् हनिष्यामिदानवानिववासवः।
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि काम्बोजानेव माँवह ॥२६॥

(महा० द्रोण० अ० ११६ )

सात्यकी सारथी से कहा कि मैं आज इन मुण्डित मुंडों को ऐसे मारूंगा जैसे इन्द्र दानवों को मारता है। मैं आज अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूंगा। मुझको इन काम्बोजों के सामने ले चल ॥

(८) पुत्राद्या वृद्धपूर्वास्ते एक वस्त्राः शिखां विना ॥७२॥
प्राचीना वीतिनः सर्वे विशेयु मौंनिनो जलम् ॥७३॥

( गरु० अ० ४ प्रेतखंड )

पुत्रादि वृद्धों सहित एक वस्त्रधारी चोटी मुंडवा कर सब प्राचीन वीति होकर जल में प्रवेश करें ॥

इन प्रमाणों से साफ साबित है कि पौराणिक साहित्य भी नैमित्तिक रूप से चोटी का काटना स्पष्ट रूप से तसलीम करता है। यवन साम्राज्य में हिन्दुओं ने चोटी के लिये जान

नहीं दी अपितु हिन्दु धर्म्म के लिये जान दी। इसका कारण यह है कि चोटी हिन्दु धर्म्म की बुनियाद नहीं है यदि चोटी को हिन्दु धर्म्म की बुनियाद मान लिया जाये और यह माना जाये कि जो चोटी रक्खे वही हिन्दु है। तो ऐसी सूरत में हिन्दुओं की गिनती बहुत कम रह जावेगी। हिन्दुओं में लाखों की गिनती में साधु लोग हैं। जो चोटी नहीं रखते। क्या उन को हिन्दु धर्म्म से ख़ारिज समझा जायेगा। ज़िला हिसार रोहतक, करनाल, फीरोज़पुर, बिजनौर तथा रियास्त जयपुर जोधपुर बीकानेर आदि में एक क़ौम आबाद है जिस का नाम विष्णोई है। वे कट्टर हिन्दु हैं। किन्तु वे चोटी नहीं रखते। क्या उन को भी हिन्दुओं से बाहिर माना जायेगा। पंजाब में तीस लाख सिक्ख हैं उन के सिर पर चोटी नहीं है। चौबीस करोड़ हिन्दुओं में से बारह करोड़ स्त्रियां हैं जिन के सिर पर चोटी नहीं है तो क्या सिक्खों और स्त्रियों को भी चोटी के बिना गैर हिन्दु माना जायेगा। यदि कोई यह कहे कि पूरे केशों को भी चोटी ही माना जाता है और प्रत्येक पूरे केश रखने वाले को भी चोटी रखने में शुमार किया जाकर हिन्दु ही माना जायेगा तो फिर भी सनातन धर्म्म की लुटिया तो डूब ही जायेगी। क्योंकि इस से ईसाई तथा मुसलमान औरतों को भी हिन्दु तसलीम करना पड़ेगा क्योंकि उन के सिर पर पूरे केश हैं। अतः यह साबित है कि चोटी का रखना हिन्दु धर्म्म का लक्षण नहीं है। अपि तु जो गौ का भक्त है वही हिन्दु कहलाने का हक़दार है दूसरा नहीं। और हिन्दु धर्म्म को क़ाईम रखने वाली गौ माता के शिर पर पौराणिक धर्म्म ने छुरी चला कर हिन्दु धर्म्म का खातमा ही कर दिया है। जैसे पुराणों में लिखा है कि—

ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः ॥४८॥
पंचलक्षगवांमांसैः सुपक्वै घृतसंस्कृतः ॥४९॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ५४)

जीवन मुक्तादि मनु तीन करोड़ ब्राह्मणों को घी में अच्छे प्रकार पके हुये पांच लाख गौवों के मांस से नित्य प्रति भोजन कराया करते थे और भी लिखा है कि—

पंच कोटि गवां मांसं सापूपं स्वन्नमेवच ॥६८॥
एतेषां नदी राशी भुंक्ते ब्राह्मणा मुने ॥६९॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ६१)

धार्मिक और बली राजा चैत्र के यज्ञ में ब्राह्मण लोग पांच करोड़ गौवों के मांस का पूड़े और पापड़ों समेत भोजन कर जाते थे ॥ पूछने पर पोप मण्डल उत्तर देता है कि—

अश्वमेधं गवालंभं सन्यासं पलपैतृकम् ॥११२॥
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौपंचविवर्जयेत् ॥११३॥
(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ११५)

घोड़े का यज्ञ में मारना, गौ का यज्ञ में मारना, सन्यास लेना, श्राद्ध में मांस का पिंड देना तथा देवर से नियोग करके सन्तान का पैदा करना ये पांच कामों की कलियुग में मनाही है। क्यों साहिब ! ये पांचों काम धर्म्म हैं या पाप, यदि धर्म हैं तो कलयुग में इन की मनाही क्यों ? और यदि पाप हैं तो सतयुग, द्वापर, त्रेता तीन युगों में इन की इजाज़त क्यों ? इसका सनातन धर्म के पास क्या जवाब है। सत्यं तो यह है कि सनातन धर्म की यह तहरीरें हिन्दु धर्म को नेस्तो ना बूद करने वाली हैं। चूंकि "यदि नोगां हिंसि अथर्व १।१६।४" में गौ का मारना पाप लिखा है। और "यथा मांसं यथा सुरा अथर्व० ६।७०।१"

में मांस का खाना पाप बतलाया है। अतः ब्रह्मवैवर्त पुराण का उपरोक्त लेख सर्वथा वेद के विरुद्ध है और हिन्दु धर्म का नाशक है। क्या कोई पौराणिक पोप मंडल में ऐसा गोमांस प्रिय पापी राक्षस मौजूद है जो ब्रह्मवैवर्त के उपरोक्त लेख को वेदानुकूल साबित करने के लिये मैदान में आये।

(५५६) प्रश्न—सत्यार्थप्र काश समु० ४ पृ० ७७ पं१० में लिखा है कि—

"सोलहव वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अडतालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है" आर्य समाजी इतने मिथ्या वादी और दुराग्रही हैं कि वे अब भी बड़ी उम्र के विवाह को वेदाज्ञा ही कहते जाते हैं। वास्तव में जो मनुष्य धर्म को एक दम तिलांजलि दे देता है। फिर वह कुकर्म अकर्म सभी कर सकता है। पृ० ८८ पं० ११

उत्तर—स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल हैं। वेद ने कन्या का युवावस्था में विवाह लिखा है जैसा कि—

तमस्मेरापुवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः ॥
(ऋ० २। ३५। ४)

नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवा नाम सुरत्वमेकम ॥
(ऋ० ३। ५५। १६)

युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्र कामे ॥
(ऋ० १०। १८३। २)

भाषार्थ—जो उत्तम ब्रह्मचर्य्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध युवती कन्यायें जैसे जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे हम को प्राप्त होने वाली ज्वान पति को प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥ नवीन २ शिक्षा और अवस्था से पूर्ण वर्तमान युवती स्त्रियां विद्वानों के अद्वितीय बड़े प्रज्ञा शास्त्र शिक्षा युक्त

प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुण पतियों को प्राप्त हों॥ १६॥ हे सन्तान चाहने वाली वधू ! अत्यन्त तरुणावस्था सम्पन्न तू मुझे प्राप्त हो ॥२॥

इत्यादि २ अनेक प्रमाण हैं जो कन्याओं को युवावस्था में विवाह करने की आज्ञा देते हैं।

किन्तु पौराणिक लोग ऐसे हठी दुराग्रही और असत्यवादी हैं कि इतने प्रमाणों की मौजूदगी में अभी तक भी बचपन के विवाह बुढापे के विवाह तथा अनमेल विवाह की वकालत ही करते चले जा रहे हैं। जैसा कि पौराणिक ग्रन्थों में लिखा है कि

बाल विवाह—

तस्माद्विवाहयेत्कन्यांयावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहो हि अष्ट वर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥

(संवतस्मृति ६८)

पंचमेवाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते ॥ ४९ ॥
सप्त वर्षाऽष्ट वर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा ॥५० ॥

(महा० वन० अ० १९०)

भावार्थ—इस लिये कन्या को तब तक विवाह देना चाहिए जब तक कि वह ऋतुमती हो। कन्या का विवाह आठ वर्ष की आयु में प्रशंसनीय है (संवर्त) पांच वा छः वर्ष की आयु में कन्या प्रसूता होगी और सात वा आठ वर्ष की आयु में पुरुष सन्तान पैदा करेंगे। (महाभारत)

वृद्ध विवाह—

मुनिर्ययाचे कन्यां स तां देहीति नृपेश्वर ॥ १९ ॥
रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम् ॥ २० ॥
राजा सर्वान् परित्यज्य दत्त्वा वृद्धाय चात्मजाम्।

ग्लानिंचित्ते समाधाय जगाम तपसे वनम् ॥ ३३ ॥

( शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ३४ )

राजा अनरण्य से पिप्पलाद मुनि ने कन्या दान मांगा। राजा ब्राह्मण मुनि को बूढा देख कर रोपड़ा। राजा बूढे को कन्या देकर और सब को छोड़ कर चित्त में ग्लानि धारण करके तप करने के लिये बन में चला गया।

अनमेल विवाह—

आत्मानंमन्यमानापिकृतकृत्यं श्रमान्विता।
वार्द्धक्येन च राजेन्द्र तपसा चैवकर्षिता ॥८॥
सानाश कद्यश गन्तुं पदात् पदमपि स्वयम् ॥९॥
यथादृष्टेन विधिना हुत्वाचाग्निं विधानतः।
चक्रे च पाणिग्रहणं तस्यो द्वाहं च गालविः ॥१५॥

(.महा० शल्य० अ० ५२ )

निश्चक्रमुर्गृहात्तस्मात् सावृद्धाथव्यतिष्ठत ॥७४॥
अथ सावेयमानांगी निमित्तं शीत जंतदा।
व्यपदिश्य महर्षे वैंशयनंव्यरोहत ॥७७॥
स्वागतेनागतां तां तु भगवानभ्यभाषत।
सोपगूह दूभुजाभ्यांतु ऋषिं प्रीत्यानरर्षभ ॥७८॥

( महा० अनु० अ० १९ )

वह बूढ़ी अपने आप को कृतकृत्य मानती हुई भी थकावट से युक्त बूढ़ो होने के कारण और तप से दुबली हुई वह एक कदम से दूसरे कदम तक न चल सकती थी। तब गालब के पुत्र ने विधि विधान के अनुसार अग्नि में हवन करके उस के साथ पाणि ग्रहण पूर्वक विवाह कर लिया ( शल्य ) उस घर से सब के निकल जाने पर वह बूढ़ी वहां बैठी रही। रात को वह

शीत से काँपती हुई महर्षि की चारपाई पर चढ़ गई। महर्षि ने उस का स्वागत किया। उस ने ऋषि को छाती से लगा कर भींच लिया। इस आर्य्य जाति की नसल को तबाह करने वाला कोई पौराणिक पोप क्या उपरोक्त विवाहों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिये मैदान में आने की जुरअत करेगा।

अब युवास्था के विषय में सुश्रुत का लेख है कि—

आषोडशाद्वृद्धिः। आपंचविंशते र्यौवनम्।

(सुश्रुत सूत्रस्थान अ० ३५)

मनुष्य के शरीर की सोलह वर्ष तक वृद्धि और सोलह से पच्चीसवें वर्ष तक यौवनावस्था होती है। इस से साबित हो गया कि कन्याओं को सोलह वर्ष से आरंभ करके पच्चीसवें वर्ष तक विवाह करने की आज्ञा है।

रही बात पुरुषों की विवाह समय अवस्था की बात सो वेद कहता है कि—

आत्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु॥ (यजु० २।५)

वसु, रुद्र, तथा आदित्य किस को कहते हैं। इस पर छान्दोग्य उपनिषत् व्याख्या करता है कि—

यानि चतुर्विंश तिवर्षाणितत्प्रातः सवनम् ॥१॥
यानि च तुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यं दिनं सवनम् ॥३॥
यान्यष्टाचत्वारिंश द्वर्षाणि तत्तृतीय सवनम् ॥५॥

(छांदोग्य० प्रपा० ३ खं० १६)

इस व्याख्या में स्पष्ट बतलाया है कि १४ वर्ष के ब्रह्मचारी का नाम वसु, ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी का नाम रुद्र तथा ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी का नाम आदित्य है।

इस से साबित हुआ कि वेद विवाह के समय कन्याओं की

आयु १६ से २५ के आरंभ तक तथा पुरुषों की २४ से ४८ वर्ष तक मानता है।

(५५७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४ पृ० ९७ पं० ७ में लिखा है कि:—

"पितृयज्ञ के दो भेद हैं। एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद अर्थात् श्रत नाम सत्य का है। श्रुत सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा-श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जावे उसको श्रद्धा और जो कर्म श्रद्धा से किया जावे उसका नाम श्रद्धा और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पण' जिस २ कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पिता आदि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम तर्पण है। परन्तु यह जीवितों के लिये है। मृत्तकों के लिये नहीं"यदि वेद टटोला जावे तो उसमें कहीं पर भी जीवित माता पिता का श्राद्ध करना नहीं लिखा। पृ० ८८ पं० २७।

उत्तर—समस्त चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो मृत्तक पितरों के श्राद्ध का नाम मात्र भी वर्णन करता हो। सच तो यह है कि चारों वेदों में 'मृत्तक श्राद्ध' शब्द भी मौजूद नहीं है। और पितर संज्ञा भी जीवितों की हो सकती है। मृत्तकों की नहीं। और कर्म का फल कर्त्ता को मिलता है अकर्ता को नहीं मिलता अतः मृत्तक श्राद्ध सर्वथा वेद विरुद्ध है। वेदों में जीवित पितरों के श्राद्ध की स्पष्ट आज्ञा है जैसे कि—

ये समानाः समनसो जीवाः जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतं समाः ॥४६॥ (यजु० १९)

जीवन्तीति जीवास्तेषु जीवेषु प्राणिषु मध्ये ये समानाः समनसः समनस्काः मामका मदीयाजीवः प्राणिनः। सपिण्डाः ये मे ते मामकाः ( महीधर )

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्मांस्ते नु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ अथर्व० १८।४।८७॥

भावार्थ—जो इस लोक में जीवते हुओं में समान गुण कर्म स्वभाव वाले समान धर्म्म में मन रखने हारे मेरे जीते हुए पितादि हैं। उन की लक्ष्मी मेरे समीप सौ वर्ष पर्यन्त समर्थ होवे ॥४६॥ जो हमारे इस लोक में जीवित पितर हैं। वे हमारे से और हम उन से सदा श्रेष्ठ व्यवहार के करने वाले हों ॥ ४७ ॥

इन मन्त्रों से साबित है कि स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। हां पुराणों में प्रेत संबन्धि वर्णन वेद विरुद्ध अवश्य हैं जैसे कि—

एवमाज्याहुति दत्त्वा तिल मिश्रां समन्त्रकम् ॥ ६७ ॥
रोदितव्यं ततो गाढमेवं तस्य सुखं भवेत् ॥६८ ॥
अश्रुपातं न कुर्वीत दत्त्वा दाह जलांजलिम्।
श्लेश्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ॥ ८० ॥
ऊनद्विवर्षं निखनेत्, नकुर्य्यादुकदम् ततः ॥ ८६ ॥

( गरु० प्रेत० अ० ४ )

इस प्रकार से मन्त्र पूर्वक तिल सहित आज्याहुति देकर (६७) खूब अच्छी प्रकार से रोवे इससे मृतक को सुख होता है ॥ ६८ दाह जलांजलि देकर अश्रुपात न करे क्यों कि बंधु लोगों से आंसू, बलगम आदि छोड़े हुए मृतक को मजबूरन खाने पड़ते हैं ॥ ८० ॥ दो वर्ष से कम बच्चे को भूमि में गाड़ दे और उसके पश्चात् उसका क्रिया कर्म न करे ॥ ८६ ॥

क्या कोई मृतकों का माल उड़ाने वाला पितरों का बनावटी लैटर बक्स पौराणिक पोप गरुड पुराण के ऊपर लिखे हुए श्लोकों को वेदानुकूल साबित करने के लिये शास्त्रार्थ के मैदान में क़दम रखने का साहस करेगा।

(५५८) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ८० पं ४ में लिखा है कि—

"लड़का लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है"

'विवाह कन्या वर के आधीन ही वेद ने कहा है' हमारी समझ में ये मूर्ख महाशय प्रलय के बाद इस बात को दिखला सकेंगे प्रलय तक तो दिखा ही नहीं सकते। पृ० ८९ पं० २०।

उत्तर—स्वामी जी ने इस से स्पष्ट कर दिया है कि यदि विवाह लड़का लड़की के ही आधीन हो तो 'उत्तम' और यदि उस में माता पितादि की भी सहमति हो तो 'अत्युत्तम' तथा यदि केवल मातापिता की सम्मति से हो 'निकृष्ट' है। जैसा कि-

प्रश्न—विवाह करना माता पिता के अधीन होना चाहिये वा लड़का लड़की के आधीन रहे। उत्तर—लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना होना चाहिये। क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर कन्या का है। माता पिता का नहीं। क्यों कि जो उन में परस्पर प्रसन्न रहें तो उन्हीं को सुख और विरोध में इन्हीं को दुःख होता" (सत्यार्थ० समु० ४)

मनुस्मृति भी इसकी ताईद करती है कि—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०॥मनु० ९॥

कुमारी कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक इन्तज़ार करे इस समय के पश्चात् अपने सदृश पति को प्राप्त करे॥ ९०।

यहां भी कन्या को स्वयं ही पति प्राप्त करने की आज्ञा है। रामायण और महाभारत में सीता, द्रौपदी, दमयन्ती और सावित्री आदि ने स्वयं ही अपनी इच्छा से सदृश वरों को प्राप्त किया था। स्वयं वर के अर्थ ही यह है कि जिस में कन्या स्वतन्त्रता से अपने वर को स्वीकार करे उस का नाम स्वयंवर उत्सव है जैसा कि राजा मद्र देश के राजा अश्वपति ने अपनी पुत्री सावित्री को आज्ञा दी कि—

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोतिमाम्।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः॥ ३१॥

(महा० वन० अ० २९२)

तब उसने अपनी इच्छा से सत्यवान् को वर लिया।

कृपया आप बतलावें कि रुक्मणी हरण, सुभद्रा हरण, अम्बा-अम्बिका-अम्बालिका हरण, धृतराष्ट्र गांधारी की शादी इत्यादि शादियां कौन २ से वेद के अनुकूल हैं।

(५५९) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ८ पृ० २२५ पं २९ में लिखा है कि—

'मनुष्यों की प्रथम सृष्टि तिब्बत में हुई" वह कौन आर्य्य समाजी है जिसने अपनी जननी का दूध पिया हो और वह यह सिद्ध करके दिखलावे कि त्रिविष्टप का अर्थ तिब्बत है और स्वर्ग नहीं है और इस सिद्धान्त को वैदिक सिद्ध करे। पृ० ९१पं०२९।

उत्तर—यदि तिब्बत का नाम त्रिपिष्टप तथा स्वर्ग भी हो तो हमारी इसमें क्या हानि है। हम आप को यह बताना चाहते हैं कि त्रिविष्टप तथा स्वर्ग के संपूर्ण लक्षण तिब्बत में ही मिलते हैं। अतः त्रिविष्टप वा स्वर्ग तिब्बत का ही नाम है और उसी में प्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई। हमारी इस प्रतिज्ञा में निम्न लिखित प्रमाण मौजूद हैं।

[१] साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वोनाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति॥
[ अथर्व० ११।१।७ ]

[२] इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोहय।
शिरस्त तस्योर्व रामादिदं म उपोदरे॥ ऋ० ८।६१।५॥

[३] उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥ यजु० २६।१५॥

[४] सूर्य्यां चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ० १०।१९०।३॥

[५] तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्न रसमयः। तैत्तिरीयोपनिषत् ब्रह्मानन्द वल्ली २।१

[६] वाक् शौचं कर्म शौचं च यच्च शौचं जलात्मकम्।
त्रिभिः शौचैरुपेतोयः स स्वर्गो नात्र संशयः॥ ८०॥
[महा० वन० अ० १९९]

[७] ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पाप प्रनाशिनी॥ ८३॥
[ महा० वन० अ० ८३

[८] ततो हिमवतः शृंगं यत्परं भरतर्षभ ॥ ४७ ।

तत्राकर्षत्ततो नावं समत्स्यः कुरुनन्दन ।
अथाब्रवीत्तदा मत्स्यस्तानृषीन् प्रहसन् शनैः ॥ ४९ ॥
अस्मिन् हिमवतः शृंगे नावं बध्नीतमाविरम् ॥ ५० ॥

[ महा० वन० अ० १८७]

गृहीतास्तु कौन्तेयो भ्रातॄन् सस्मार पांडवः ।
पुरन्दर नियोगाच्च पञ्चाब्दानवसत् सुखी ॥५॥

[ महा० वन० अ० ४४ ]

[ १० ] निक्षिप्यमानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ ।
अनेनत्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः ॥ ६ ॥

[ महा० महाप्रस्थान० अ० ३ ]

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जिस को विष्टप और स्वर्ग लोक भी कहते हैं उस पर तू चढ़जा । वह सब पृथिवी से ऊंचा सुख का देने वाला स्थान है । वह पृथिवी पानियों से सब से पहले बाहर आई और जिसमें एक साथ में पैदा हुए, समान मनुष्य प्रकट हुए । महान् वीर्य प्राप्ति के लिये उस को प्राप्त कर । १ ॥ हे राजन् ! तू उस त्रिविष्टप स्थान को प्राप्त कर जो सारी पृथिवी से ऊंचा है और मनुष्यों के लिये सुखकारी है । और माता के उदर के समान मनुष्यों को पैदा करने का स्थान है ॥ २ ॥ इन दोनों वेद मन्त्रों के द्वारा परमात्मा ने असली तौर से बतलाया कि जो स्थान प्राणियों से सारी पथिवी से पहिले बाहर प्रकट हुआ और जिसमें इन्सानों की पहिले पहल पैदाइश हुई उसी का नाम त्रिविष्टप वा स्वर्ग है । वह स्थान मनुष्यों के लिये सुख कारक है । उस को तुम भी प्राप्त होवो ॥

पहाड़ों की गुफाओं में तथा नदियों के संगम पर ध्यान करने से विप्र पन की प्राप्ति होती है (३) इस सारे संसार को धारण करने वाले परमात्मा ने सूर्य, चांद, द्यू लोक, पृथिवी, सितारों तथा सुख दायक स्थान अर्थात् स्वर्ग को पैदा किया। जैसे पूर्व कल्प में पैदा किया था वैसे ही (४) इन दोनो मंत्रों से भी साबित है कि जिस देश में पहाड़ों की गुफाएँ तथा नदियों के संगम हों वे देश ही ध्यान के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के सुख का हेतु होने से स्वर्ग है तथा उसे ही परमात्मा ने यथा पूर्व पैदा किया। इन दोनों मन्त्रों में कथित लक्षणों के अनुसार भी तिब्बत का ही नाम स्वर्ग वा त्रिविष्टप सिद्ध होता है।

उस इस आत्मा के निमित्त से आकाश प्रकट हुआ। आकाश के पश्चात् वायु। वायु के पश्चात् अग्नि। अग्नि के पश्चात् पानी। पानी के पश्चात् पृथिवी। पृथिवी से औषिधियें। औषधियों से अन्न। अन्न से पुरुष। सो यह पुरुष अन्न रस मय है (५) इस से सिद्ध है कि जब सर्वत्र जल ही जल थे तो उस समय जलों के सूकने पर पृथिवी का जो भाग सब से पहिले नज़र आया। उसी पर ही पहिले पहिल औषधि, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की प्रथम सृष्टि हुई। इस पृथिवी पर मनुष्यों के रहने के योग्य सब से ऊँची पृथिवी का भाग तिब्बत ही है। अतः साबित हुआ कि पृथिवी का यही भाग जलों से पहिले पहिल बाहर आया और इसी पर प्रथम सृष्टि हुई॥

वाणी की शुद्धता, कर्मों की शुद्धता, और जल मय शुद्धता ये तीन प्रकार की शुद्धता जिस देश में हो उसी का नाम स्वर्ग है (६) इस से साबित है कि स्वर्ग पृथिवी से भिन्न किसी स्थान का नाम नहीं है। अपितु शुद्धता द्वारा विशेष सुख के

साधन स्थान का नाम ही स्वर्ग है। इसके पश्चात् मनुष्य को चाहिये कि वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध त्रिविष्टप देश में जावे वहां पापों के नाश करने वाली पवित्र नदी वैतरणी बहती है। (७) इससे साबित है कि त्रिविष्टप वा स्वर्ग इसी पृथ्वी पर मौजूद है। जहां यात्रा करने की पौराणिकों को यह हिदायत दी गई है।

उस के पश्चात् हिमालय की चोटी से परे जो देश है। हे राजन्! यहां पर मत्स्य ने नावों को खैंचा। तब मत्स्य ने उस ऋषियों को आहिस्ता से कहा कि इस हिमालय की चोटी से नावों को बांध दो देर मत करो। (८) इससे साबित है कि बाढ़ के समय भी ऋषियों की रक्षार्थ इसी स्थान को पौराणिकों के अवतार ने चुना। अतः यही तिब्बत स्थान ही पृथ्वी में मनुष्यों के रहने के योग्य ऊँचाई पर है। अतः प्रथम सृष्टि का स्थान यह तिब्बत ही सिद्ध होता है।

अस्त्रों को ग्रहण करने के पश्चात् अर्जुन ने अपने भाइयों को याद किया और इन्द्र की आज्ञा से अर्जुन पांच वर्ष सुख-पूर्वक स्वर्ग में निवास करता रहा। (९) इससे सिद्ध है कि स्वर्ग इसी पृथ्वी पर है। क्योंकि अन्य लोक में रह कर शस्त्रास्त्र का सीखना सर्वथा असंभव है। उसी स्वर्ग का नाम ही त्रिविष्टप या तिब्बत है।

हे राजन्! वे सब शरीर को छोड़ कर स्वर्ग को गये। और आप इसी शरीर से स्वर्ग में जायेंगे इस में संदेह नहीं है (१०) राजा युधिष्ठिर का स्वर्ग में जाने के लिये पाँचों भाई-यों द्रौपदी तथा कुत्ते सहित यात्रा करते हुये हिमालयकी तरफ जाना और उसी शरीर के साथ कुत्ते समेत स्वर्ग में पहुंच

जाना इस बात को साबित करता है कि पौराणिक स्वर्ग इसी पृथिवी पर विद्यमान है क्योंकि इस पृथिवी के निवासी का शरीर समेत किसी दूसरे लोक लोकान्तर में जाना अत्यन्त असंभव है। इस से साबित है कि तिब्बत का ही नाम त्रिविष्टप वा स्वर्ग है।

(५६०) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ९३ पं० १५ में लिखा है कि—

"दिन रात में जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों। तब तब प्रीति पूर्वक नमस्ते एक दूसरे से करें" क्या कोई आर्य्य समाजी संसार में ऐसा पैदा हुआ है। जो वेद से परस्पर में नमस्ते करना सिद्ध करदे। पृ० ६० पं २३।

उत्तर—स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल हैं। 'नमस्ते' शब्द 'नमः' और 'ते' इन दो पदों से मिल कर बना हुआ है। नमस् अव्यय है और ते युष्मद् शब्द के चतुर्थी के एक वचन तुभ्यम् के स्थान में ते आदेश हो जाता है। संस्कृत में मध्यम पुरुष (मुखातिब) के लिये केवल युष्मद् शब्द ही नियत है और नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति ही प्रयुक्त होती है। इस नियम से नमः+ते=नमस्ते पद सिद्ध होता है। संस्कृत साहित्य में नमः पद प्रत्येक के लिये प्रयुक्त हुआ है जैसे कि—

नमस्ते रुद्र मन्य वे ॥ १ ॥ इषवे नमः। बाहुभ्यां नमः ॥१॥ नमस्त आयुधाय ॥१४॥ नमो वृक्षेभ्यः ॥ १७ ॥ नमोपवीतिने ॥१७॥स्तेनानांपतये नमः॥२०॥नमो वं चते परिवंचते! तस्करणां पतए नमः। मष्णतां पतये नमःनमोऽसिमद्भ्यः ॥२१॥ व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्चवो नमः ॥२५॥ नमो महद्भयः अर्भकेभ्यश्चवो नमः ॥ २६ ॥ नमस्तक्षभ्यः। रथकारेभ्यश्चवो नमः। नमः कुला

लेभ्यः । कर्मकारेभ्यश्चवो नमः। नमो निषादेभ्यः । पुंजिष्ठे भ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥ नमः श्वभ्यः । श्वपतिभ्यश्चवो नमः ॥ २८ ॥ नमोज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चा पर जाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥३२॥ [ यजु १६ ]

इत्यादि इत्यादि प्रत्येक अवस्था वाले प्रत्येक कर्म करने वाले प्रत्येक प्राणी तथा अप्राणी के लिये भी नमः शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में मौजूद है ।

इसी प्रकार से ही ते शब्द भी प्रत्येक के लिये प्रयुक्त हुआ है जैसे कि—

अर्जुनने द्रोण के लिये—

गुरुर्भवान्नमे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि 'ते' ॥ ३४ ॥

[ महा० द्रोण० अ० ९१ ]

भीष्म ने सत्यवती के लिये—

तत्ते धर्म्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥ २५ ॥

[ महा० आदि० अ० १०३ ]

व्यास ने सत्यवती के लिये—

ईप्सितं 'ते' करिष्यामि दृष्टं ह्येतत् सनातनम् ॥ ३६ ॥

[ महा० आदि० अ० १०५ ]

विश्वामित्र ने राम के लिये—

न श्रमो न ज्वरो वा 'ते' न रूपस्य विपर्य्ययः ॥ १३ ॥

[ वाल्मी० बाल० स० २१]

राम ने विश्वामित्र के लिये—

श्रोतुमिच्छामि भद्रं 'ते' विस्तरेण कथामिमाम् ॥ २ ॥

[ वाल्म० बाल० स० ३९]

राम ने परशु राम के लिये—

तस्माच्छक्तो न 'ते' राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥ ६ ॥

[ बाल्मी० बाल० स० ७६]

राम ने कौशल्या से—

नाहं धर्ममपूर्वं 'ते' प्रतिकूलं प्रवर्तये ॥ ३६ ॥

[ बाल्मी० अयोध्या० स० २१]

सीता ने राम के लिये—

न 'ते' दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सह ॥१६॥

(बाल्मी० अयोध्या० स० २७)

राम ने दशरथ के लिये—

अपगच्छतु 'ते' दुःखं मा भूर्वाष्पपरिप्लुतः ॥४६॥

प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च 'ते' शपे ॥४८॥

(बाल्मी० अयो० स० ३४)

इत्यादि इत्यादि अनेकों स्थलों में प्रत्येक के लिये 'ते' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

जब नमः भी सब के लिये प्रयुक्त हो सकता है और ते भी तो नमस्ते के परस्पर प्रत्येक के लिये प्रयुक्त होने में क्या संदेह है।

अर्थों के अनुसार भी नमस्ते परस्पर प्रत्येक के लिये प्रयुक्त हो सकता है। नमः शब्द के अर्थ निम्न प्रकार से है।

नमः। आयुः। ब्रह्म। वर्चः। यशः। अन्नं। ये सब पर्य्याय वाची शब्द हैं ( निरुक्त अ० ३ खं० ९ )

नमः। वधः। सायकः। परशुः। वज्रः। ये सब भी पर्य्याय वाची शब्द हैं (निरु० अ० ३ खं० ११ )

नमस्यति धातु परिचरण अर्थ में है (निरु० अ० ३ खं० १३)

परिचरण के अर्थ सेवा तथा पूजा भी होते हैं। इस प्रकार से नमः तथा पूजा शब्द पर्य्यायवाची हैं। अर्थात् दोनों के एक ही अर्थ हैं। पूजा शब्द के संस्कृत साहित्य में चार अर्थ आते हैं। किसी चीज़ की मुनासिब इज़्ज़त। किसी चीज़ का मुनासिब इस्तेमाल। किसी चीज़ की मुनासिब रक्षा और किसी चीज़ की मुनासिब सजा। जैसे कि—

(१) मुनासिब इज़्ज़त—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥५६॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ ५९ ॥
( मनु० ३ )

[२] मुनासिब इस्तेमाल—

पूजयेदशनं नित्यमद्या चैतदकुत्सयन् ॥५४॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ॥५५॥ [मनु० २]

[३] मुनासिब हिफाज़त—

इयं नः प्रिया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा ॥१३॥
[ महा० विराट० अ० ३ ]

[४] मुनासिब सज़ा—

वस्स यो ऽयं विधिः साक्षाज्जगतामाद्यदैवतम् ।
नूनमर्चय खड्गेन तिग्मेन जवसा परम् ॥३॥
[ शिव० विद्येश्वर० अ० ८ ]

अथ शक्ति सुतो वीरो वीर गत्या स्वयष्टितः ।
प्रथमं पूजयामास विष्णु सर्वसुखावहम् ॥११॥
[ शिव० रुद्र० कुमार० अ० १६ ]

यह पूजा शब्द आशीर्वाद अर्थों में भी आता है। जो अर्थ कि सत्कार के अन्तर्गत ही आ जाते हैं जैसे कि—

जयाशीर्भिस्तु तं विप्रो धर्म्म राजानमर्चयत् ॥१२॥
( महा० सभा० अ० ५ )
तेसमाश्वासयामासु राशीर्भिश्चाप्यपूजयन् ॥ १६ ॥
( महा० वन० अ० १४४ )
सम्मानितश्च धौम्येन द्रौपद्याचार्चितोऽग्रभिः ॥४६ ॥
( महा० वन० अ० २२ )
ततोहते दशग्रीवे देवा सर्षि पुरोगमाः ।
आशीर्भिर्जय युक्ताभिरानर्च्चुस्तं महाभुजन् ॥२ ॥
( महा० वन० अ० २६० )

यह पूजा शब्द प्रत्येक के लिये प्रयुक्त होता है जैसे कि—
शुक्राचार्य गुरु से शिष्य कच की—
कच स्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः ।
अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः ॥२१॥
महा० आदि० अ० ७६ )
माता सत्यवती ने पुत्र व्यास की—
तस्मै पूजां ततः कृत्वा सुताय विधि पूर्वकम् ॥ २३ ॥
( महा० आदि० १०५ )
दादा सगर ने पोते अंशुमान् की—

तच्छ्रुत्वा सगरो राजा पुत्रजं दुःखमत्यजत् ।
अंशुमन्तं च संपूज्य समापयत तं क्रतुम् ॥ ६२ ॥
( महा०वन० अ० १०७ )

द्रोण से अर्जुन की —
अवध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्ये ष्वपि यथा विधि ॥ ३४ ॥
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणा मनसैवाभ्यपूजयत् ॥ ३५ ॥
( महा० द्रोण० अ० १८६ )

राम से विभीषण की—

राघवः सत्य चेष्टाभिः सम्यक् सुचरितेङ्गितैः ।
यदा तत्वेन तुष्टोऽभूत् तत एनमपूजयत ॥४८॥

( महा० वन० अ० २८२ )

ब्राह्मणों से शूद्र की—

तत्र कश्चित् समुत्साहं कृत्वा शूद्रोदयान्वितः ।
आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्चतपस्विभिः ॥११॥

(महा० अनुशासन अ० १०)

अपिशूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृतमपि पूजयेत ॥४८॥

(महा० अनु० अ० ४८)

इत्यादि २ अनेक प्रमाणों से साबित है कि नमः और पूजा शब्द प्रत्येक के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। और अर्थों के अनुसार भी प्रत्येक के लिये पूजा और नमः शब्द के प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं है।

रहे 'ते' शब्द के अर्थ। सो 'ते' शब्द युष्मद् शब्द का प्रयोग है। और मध्यम पुरुष के लिये युष्मद् शब्द ही प्रयुक्त हो सकता है। आप मध्यम पुरुष को भाषा में जिन शब्दों से भी संबोधित करना चाहें। वही अर्थ युष्मद् वा ते शब्द का हो सकता है। आप तू, तुम, श्रीमान्, जनाब, इत्यादि २ आप जिन शब्दों से भी मध्यम पुरुष को संबोधित करना चाहें वही अर्थ ते शब्द का होगा। और नमः शब्द के साथ लगने से वैसे भी ते शब्द निन्दनीय नहीं रहता जैसे कि—

युधिष्ठिर ने अर्जुन के धनुष को धिक्कार कहा तो अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा अनुसार युधिष्ठिर का सिर उतारने को तैयार हो गया। तब कृष्ण के कहने से अर्जुन ने युधिष्ठिर को मारने

के बदले उस का अपमान करते हुये "त्वम्" शब्द का प्रयोग किया। इस पर अर्जुन प्रायश्चितार्थ आत्म हत्या करने को तैयार हो गया। तब कृष्ण ने "त्वम्"कह कर अपमान करने का प्रायश्चित अर्जुन को यह बतलाया कि तुम अपनी प्रशंसा करो जब यह सब कलह शान्त होगया तो अर्जुन ने युद्ध को जाते हुये फिर युधिष्ठिर को नमस्ते कहा—

प्रसीद राजन् क्षमयन् मयोक्तं।
काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते ॥ ३६ ॥
[ महा० कर्ण० अ० ७८ ]

अब यदि नमस्ते में प्रयुक्त 'ते' शब्द भी "त्वम्" की भांति अपमान जनक समझा जाता तो अर्जुन फिर इस शब्द का प्रयोग क्यों करता। जब कि पूर्व ही 'त्वम' कहने के पाप का प्रायश्चित कर चुका था। इस से साबित है कि नमस्ते में प्रयुक्त ते त्वम की भांति अपमान जनक नहीं है अतः अर्थों के अनुसार ते शब्द भी प्रत्येक के लिये प्रयुक्त हो सकता है।

अतः साबित हुआ कि नमस्ते शब्द हर प्रकार से परस्पर प्रत्येक के लिये प्रयुक्त किया जासकता है। जैसा कि वेद की आज्ञा हैं कि—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः इत्यादि [यजु०१६।३२]

(५६१) प्रश्न—नमस्ते करना केवल ईश्वर के लिये है। और ईश्वर भी नमस्ते के उत्तर में नमस्ते नहीं करता। ईश्वर को छोड़ परस्पर में नमस्ते करना किसी वेद मन्त्र में नहीं लिखा जहां कहीं नमस्ते किया है, करने वाले को ईश्वर समझ किया गया हैं। [पृ०६१]

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा कतई निर्मूल है कि नमस्ते करना केवल ईश्वर के लिये ही है। क्योंकि यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में वृक्ष, डाकू, ठग, चोर, बालक, तरखान, रथकार, कुम्हार, लुहार, और कुत्तों तक के लिये भी वेद में नमस्ते करने की आज्ञा मौजूद है। ईश्वर नमस्ते के उत्तर में तो नमस्ते नहीं करता किंतु जय राम जी, जयगोपाल जी और जय राधा कृष्ण, जय सीता राम के बदले में तो अवश्य ही ईश्वर उन्हीं शब्दों में उत्तर देता होगा। यह शंका लिखते हुए शर्म तो नहीं आई। आप की यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सर्वथा असत्य है कि जहां कहीं किसी को नमस्ते की है वहां उसे ईश्वर समझ कर की है। देखिये संस्कृत साहित्य में किस प्रकार से नमस्ते का परस्पर में प्रयोग मिलता है जैसे कि—

[१] यमाचार्य्य ने निचकेता को—

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु ( कठ० १ । १ । ६ )

[२] गार्गी ने याज्ञवल्क्य को—

सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य ( बृहद० ३ । ८ । ५ ॥

[३] जनक का याज्ञवल्क्य को—

जनकोह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच।
नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानुशाधीति ॥ (बृहद० ४ । । २ । १)

[४] विश्वामित्र ने वसिष्ठ को—

नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ॥ १७ ॥
[ वाल्मी० बाल० स० ५२]

[५] सीता ने वृक्ष को—

नमस्तेऽस्तु महा वृक्ष पारयेन्मे पतिव्रतम् ॥ २४ ॥
[ वाल्मी० अयो० स०५५ ]

[६] सीता ने राक्षस को—
मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥ ३ ॥
[ बाल्मी० अरण्य० स० ४ ]

[७] देवयानी ने शुक्राचार्य्य को—
नमस्ते देहिमामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे ॥ ३० ॥
[ महा० आदि० अ० ८१ ]

[८] विदुर ने दुर्योधन को—
यथा तथा तेऽस्तु नमश्च तेऽस्तु [महा० सभा० अ० ६३]

[९] शकुनि ने युधिष्ठिर को—
ज्येष्ठो राजन् वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ ॥ १९ ॥
[ महा० सभा० अ० ६४ ]

[१०] दमयन्ती ने पर्वत को—
शरण्य बहुकल्याण नमस्तेऽस्तु महीधर ॥ ४२ ॥
[ महा० वन० अ० ६४ ]

[११] नल ने दासी को—
वयं चदेशातिथयो गच्छ भद्रे नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
[ महा० वन० अ० ७५ ]

[१२] व्यास ने देव दूत को—
देव दूत नमस्तेऽस्तु गच्छ तात यथा सुखम् ॥ ३८ ॥
[ महा० वन० अ० २६० ]

[१३] दूतों ने दुर्योधन को—
सर्वथा विप्र नष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ ॥ १७ ॥
[ महा० विराट० अ० २५ ]

[१४] द्वारपाल ने धृतराष्ट्र को—
संजयोऽयं भूपते नमस्ते [ महा० उद्योग० अ० ३१ ]

[१५] संजय का धृतराष्ट्र को—
शास्त्र चक्षुरवेक्षस्व नमस्तेभरतर्षभ ॥ ६ ॥
[ महा० भीष्म० अ० ४ ]

[१६] अर्जुन ने कृष्ण को—
नमो नमस्ते ऽस्तु सहस्र कृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३६ ॥
[ महा० भीष्म० अ०३५ ]

[१७] युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य्य को—
आचार्य्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥
[ महा० भीष्म० अ० ४३ ]

[१८]भीष्म ने कृष्ण को—
नमोऽस्तु ते शार्ङ्ग गदासिपाणे [ महा० भीष्म० ५६ । ६६ ]

[१] कृष्ण ने धृतराष्ट्र को—
शिवेन पाण्डवान् ध्याहि नमस्ते भरतषभ ॥ ५१ ॥
[महा० शल्य० अ० ६३]

[२०] कीट ने व्यास को—
नमस्तेऽस्तु महा प्राज्ञ किं करोमि प्रशाधि माम् ॥ १९ ॥
[ महा० अनु० अ० ११८ ]

[२१] युधिष्ठिर ने भीष्म को—
युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जाह्नवी सुत ॥ १९ ॥
[ महा० अनु० अ० १६७ ]

[२२] ब्राह्मण ने युधिष्ठिर को—
कुरुकार्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ ॥ ५० ॥
[ महा० आश्रमवासी० अ० १० ]

[२३] महादेव ने पार्वती को—
तथा प्रणय भंगेन भीतो भूतपतिः स्वयम् ।

पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत ॥ ४० ॥

[ शिव० वायु० खं० १ अ० २४]

[२३]ब्रह्मा ने पुत्र को—

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्कारामित तेजसे ॥ ४१ ॥

भगवन् भूत भव्येश मम पुत्र महेश्वर ॥ ४५ ॥

[ शिव० वायु० खं० १ अ० १२ ]

(५६२) प्रश्न—आर्य पण्डित "नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च" पर दौड़ लगाते हैं कि इस मंत्र में परस्पर नमस्ते करना लिखा है [१] इस मन्त्र में समष्टि व्यष्टि रूप परमात्मा को नमस्कार किया है [२] स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ किया है कि बड़ों को अन्न दो और उन का सत्कार करो और छोटों को अन्न दो और उन का सत्कार करो फ़िर नमस्ते करना कहां से आ गया [३] इस मन्त्र में तो केवल नमः है नमस्ते नहीं है। पृ० ९१ ॥

उत्तर—स्वामी जी ने इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है कि—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्याय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च।

॥ यजु० १६।३२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम लोग अत्यन्त वृद्धों और अति बालकों का सत्कार और अन्न तथा ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण और छोटे भाई वा नीच का भी सत्कार दो अन्न बंधु क्षत्रिय वा वैश्य और ढीठ पन छोड़े हुए सरल स्वभाव वाले इन सब का सत्कार आदि और नीच कर्म कर्ता वा मलेच्छ तथा अंत रिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्तमान दाता पुरुष का अन्नादि से सत्कार करो ॥३२॥

भावार्थ—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब नमस्ते इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़े छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रिय आदि ब्राह्मणों और ब्राह्मणादि क्षत्रियों का निरन्तर सत्कार करें। सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग कर के परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें ॥३२॥

[१] आप के विचार अनुसार जब संसार के सारे रूप ब्रह्म के ही रूप हैं तो सब छोटे बड़े मनुष्य भी समष्टिव्यष्टि रूप परमात्मा के ही रूप हुए फिर परस्पर नमस्ते से सत्कार करने में क्या आपत्ति है।

[२] स्वामी जी ने अन्न के साथ जो सत्कार अर्थ किया है उस का अभिप्राय भावार्थ में बतला दिया है कि परस्पर नमस्ते वाक्य से सत्कार करें।

[३] जिस के लिए नमः का प्रयोग हो सकता है। उसके लिये नमस्ते के प्रयोग में शंका ही क्या है। आप इस प्रकार का धोका देकर मूर्ख सनातन धर्मियों की आंखों में धूल झोंक सकते हैं। बुद्धिमान् लोग आप के झांसे में नहीं आसकते।

(५६३) प्रश्न—जिस को नमस्ते किया गया है उसने लौट कर नमस्ते नहीं कहा फिर परस्पर में नमस्ते करना क्या वेदों का गला घोंटना नहीं है। पृ० ६१।

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा भी निर्मूल है कि नमस्ते के उत्तर में किसी ने नमस्ते नहीं कहा। प्रथम तो वेद की आज्ञा है कि सब को आपस में नमस्ते करनी चाहिये। और साहित्य में इस प्रकार के उदाहरण भी मौजूद हैं जैसे कि—

सावित्री ने ब्रह्मा से नमस्ते की—
यद्येष ते स्थिरो भाव स्तिष्ठदेव नमोऽस्तुते ॥१४६॥
इस के उत्तर में ब्रह्मा ने सावित्री को नमस्ते की
पादयोः पतितस्तेऽहं क्षम देवि नमोऽस्तुते ॥१५०॥
[ पद्म० सृ० अ० १७ ]

यहां पर स्पष्ट रूप से वर्णन है कि पति पत्नि, ब्रह्मा तथा सावित्री, ने परस्पर नमस्ते की। अतः परस्पर नमस्ते का प्रयोग वेदानुकूल तथा जय राम जी की, जय कृष्ण जी की, जय राधा कृष्ण, जय सीता राम, जय गौ माता, इत्यादि शब्दों का परस्पर मिलने में प्रयोग करना वेद विरुद्ध है। क्या कोई माई का लाल पौराणिक पंडित पृथिवी पर मौजूद है कि जो परस्पर मिलने में उपरोक्त शब्दों का प्रयोग करना वेदानुकूल साबित कर सके।

(५६४) प्रश्न— सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ९१ पं० ६ में लिखा है कि—

"भोग के अन्त में सोंठ, केशर, असगंध, छोटी इलायची, और सालम मिश्री दूध में डाल कर और गरम जल से स्नान करके जो प्रथम ही रक्खा हुआ ठंडा दूध है। उस को यथा रुचि पी कर दोनों अलग अपनी २ शय्या में शयन करें"

अब पूछना यह है कि यह नुसख़ा कौ न वेद में लिखा है क्या यह नुसख़ा स्वामी जी का स्वकीयानुभूत तो नहीं है। पृ० ६८ पं० २।

उत्तर—आपके विचार में क्या यह नुसख़ा वेद विरुद्ध या हानिकारक है। यदि ऐसी बा : है तो आप को कोई वेद मंत्र देकर स्वामी जी के लेख का वेद से विरोध या नुसख़े में कोई

त्रुटि बतलाकर उससे हानि बतलानी चाहिए थी। किंतु आपने ऐसा नहीं किया। अतः आपका प्रश्न प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आकर आपकी पराजय का कारण है। रही बात वेदानुकूलता की। सो इसके बारे में हम बल पूर्वक घोषणा करते हैं कि स्वामी जी का उपरोक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है वेद में बीज रूप से वैद्यक शास्त्र का मूल मौजूद है जैसे कि—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ यजु० ६।२२॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर! आपकी कृपा से जो प्राण और जल आदि पदार्थ तथा सोमलता आदि सब औषधि हमारे लिये सुख कारक हों तथा जो दुष्ट प्रमादी हमारे द्वेषी लोग हैं और हम जिन दुष्टों से द्वेष करते हैं उनके लिये विरोधिनी हों। क्योंकि जो धर्मात्मा और पथ्य के करने वाले मनुष्य हैं। उन को ईश्वर के रचे सब पदार्थ सुख वाले होते हैं और जो कुपथ्य करने वाले तथा पापी हैं। उनके लिये सदा दुख देने वाले होते हैं। इत्यादि मन्त्र वैद्यक विद्या के मूल के प्रकाश करने वाले हैं और सारा वैद्यक शास्त्र इन्ही वेद मंत्रों की सरल व्याख्या है। अतः स्वामी जी का लेख इस मन्त्र के अनुकूल होने से वेदानुकूल है। देखिये आपके पुराण भी इसकी ताईद करते हैं जैसे कि—

अश्वगंधा घृतं दुग्धं क्वथितं पुत्रकारकम् ॥२८॥

[ गरुड० आचार० अ० १७६ ]

यवास्तिलाश्वगंधा च मुशली सरला गुडम्।

एभिश्च रचितां जग्ध्वा तरुणो बलवान् भवेत् ॥ ५ ॥

[ गरुड० आचार० अ० १८२ ]

असगंध, घी और दूध उबाले हुए पुत्र के देने वाले होते हैं। हां पुराणों में वेद के विरुद्ध अनेक लेख मौजूद हैं जैसे कि-

गुडस्य तु पुराणस्य पलमेकं तु भक्षयेत्।
स्त्री सहस्रं च संगच्छेत् पुमान् बलयुतो हर ॥ २ ॥

[ गरुड० आचार० अ० १८२ ]

निज शुक्रं गृहीत्वा तु वाम हस्तेन यः पुमान्।
कामिनी चरणं वामं लिंपेत्स स्यात् स्त्रियः प्रियः ॥ १५ ॥

[ गरुड० आचार० अ० १८५ ]

क्या कोई पौराणिक वाम मार्गी संसार में जीता जागता मौजूद है जो इस अश्लील लेख को वेदानुकूल सिद्ध कर सके और क्या ये नुसखे व्यास जी के स्वयं अनुभूत थे।

(१६५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ में लिखा है कि—

"जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामनेनेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यंत प्रसन्नचित्त रहें डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्त समय अपान वायु को ऊपर खींचे। योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।

क्या कोई जीता जागता आर्य्य समाजी इस को वैदिक सिद्ध कर सकता है। क्या यह स्वामी जी का अपना अनुभव है। पृ० ९८ पं० २१।

उत्तर—गर्भाधान मनुष्य के पैदा करने का प्रथम पवित्र साधन है। यदि वेद ही इसकी शिक्षा न देगा तो कौन देगा।

अतः स्वामी जी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है । वेद प्रमाण जैसे कि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत्तउल्वं जहाति जन्मना ॥७६॥

मुखꣳ सदस्य शिर इत सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन्त्सरस्वती ॥ यजु० १९।७६-८८ ॥

उपनिषत् प्रमाण जैसे कि—

सह प्रजापतिरीक्षां चक्रे हन्तास्मै प्रतिष्ठां कल्पयानीति स स्त्रियं स सृजेतां सृष्ट्वाऽध उपास्त तस्मात् स्त्रिय मध उपासीत इत्यादि ॥ २ ॥

तस्या वेदि रुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधि षवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ इत्यादि ॥ ३ ॥ अथास्य ऊरू विहापयति विजिहीथां द्यावा पृथिवी इति तस्यामर्थं निष्ठायमुखेन मुखं संधाय त्रिरेनामनु लोमा मनु मार्ष्टि ।

विष्णु र्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणिपिंशतु ।
आसिचतु प्रजापति र्धातागर्भं दधातुते ॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तांपुष्करस्रजौ ॥२१॥
(वृहदारण्यक अ० ६ ब्राह्मण ४)

स्नानात् प्रभृति युग्मेष्वहः सुसंवसेतां पुत्रकामौ । अयुग्मेषु दुहितृकामौ । न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत । न्यब्जाया वातो बलवान् स योनिं पीडयति । पार्श्वं गताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा संच्युतोऽपिदधाति गर्भं शयम् । वामेपित्तं पार्श्वे तस्याः पीडितं विदहति रक्त शुक्रम् । तस्मादुत्तानाबीजं गृहीयात् ॥ ६ ॥ ( चरक० शारीरक० अ० ८ )

वायुः समुत्कर्षति गर्भं योनि मृतौरेतः पुष्परसानुपृक्तम् ।
सतत्रतन्मात्र कृताधिकारः क्रमेण संबर्द्धय तीह गर्भम् ॥१४॥
( महा० आदि० अ० ६० )

इन प्रमाणों से साबित है कि स्वामी जी का गर्भाधान विषयक लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

अब पौराणिकों का वेद विरुद्ध गर्भाधान देखिये।

आकर्षण—

महिषी अश्वसमीपे शेते। अश्वदेवत्यम्। हे अश्व गर्भधं गर्भं दधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहम् आ अजनि आकृष्य क्षिपामि। तं च गर्भध रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसि ॥ महीधर य० २३।१९ ॥

अश्वाधान—

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्था पयति ॥ महीधर य० २३।२० ॥

अर्जुनाधान—

आराधयन्त्या तांबूलमर्पयन्त्या शुचिस्मितम्।
समालोक्यार्जुनीयाऽसौमदनावेशविह्वला ॥ १८८ ॥
ततस्तां च तथा ज्ञात्वा हृषी केशोऽपि सर्ववित्।
तस्याः पाणिं गृहीत्वैव सर्वं क्रीडा वनान्तरे ॥१८६॥
यथा काम रुहोरे मे महा योगेश्वरो विभुः ॥१६०॥
( पद्म० पाताल० अ० ७४ )

रामाधान—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छत्सु विग्रहम् ॥१६६॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूतास्तु गोकुले।
हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात् ॥१६७॥
( पद्म० उत्तर० अ० २७२)

ब्रह्माधान—

पाहिमां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ।
ता इमा यभितुं पापा उपक्रामंति मां प्रभो ॥२६॥

( भागवत० स्क० ३ अ० २० )

कर्णाधान—

तै गौतमसुतायांत द्वीर्यं शंभो र्महर्षिभिः ।
कर्ण द्वारा तथा जन्यां रामकार्यार्थमाहितम् ॥६॥

(शिव० शत रुद्र० अ० २०)

मुखाधान—

अश्व रूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत् ॥५५॥

नासिकाधान—

सातं विवस्वतं शुक्रं नासाभ्यां समधारयत् ॥५६॥

( भविष्य० ब्राह्म० अ० ७६ )

अश्वाधान—

पतत्त्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा ।
अवसद्राजनी मेकां कौशल्या धर्म काम्यया ॥३४॥
होताध्वर्यु स्तथो द्गाता हयेन समयोजयन् ॥३५॥

( बाल्मी० बाल० स० १४ )

क्या कोई इस प्रकार का पौराणिक पंडित किसी वीर रमणी ने भूतल पर पैदा किया है जो अश्वाधान, मनुष्या धान, कर्णाधान, मुखाधान, नासिका धान, इत्यादि गर्भाधानों को वेदानुकूल साबित कर सके। रही स्वामी जी के अनुभव की बात, सो सारी बातें अपने ही अनुभव से नहीं लिखी जाती। दूसरों के अनुभव से भी लाभ उठाया जाता है। जैसेकि भीष्म से युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि—

स्त्री पुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधि को भवेत्।
एतस्मिन् संशये राजन् यथा वद्वक्तुमर्हसि ॥१॥

स्त्री और पुरुष के संयोग में स्पर्श सुख किस को अधिक होता है। हे राजन् इस संशय के बारे में आप यथा योग्य उत्तर देने की कृपा करें ॥१॥ इस प्रश्न पर भीष्म ने उत्तर दिया कि—

एवं स्त्रिया महाराज अधिका प्रीतिरुच्यते ॥५३॥

इस प्रकार से हे महाराज! स्त्री को पुरुष संयोग में आनन्द अधिक होता है ॥५३॥

क्या आप के विचार में यह भी भीष्म का अनुभव था।

(५६६) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ३ पृ० ४० पं० १७ में लिखा है कि—

उत्तम ब्रह्मचर्य्य का सेवन पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्य्यन्त आयु को बढ़ावें" ज़रा हमको वह वेद मन्त्र तो दिखलाया जावे जिसमें मनुष्य की चारसौ वर्ष की आयु बनाने का हुक्म हो। सभी आर्य्य समाजी कहते हैं कि दयानन्द जी मरण पर्य्यन्त आबाल ब्रह्मचारी रहे फिर वह चारसौ वर्ष की अवस्था होकर क्यों न मरे बीच में ही क्यों मर गये। ॥ पृ० ६६ पं० ५ ॥

उत्तर—स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। क्योंकि वेदों में अधिक से अधिक मनुष्य की आयु चारसौ वर्ष ही लिखी है जैसा कि—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः

शतम दीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ यजु० ३६।२४॥

इस वेद मन्त्र में सौ और सौवर्ष से अधिक भी मनुष्य की आयु होने का प्रमाण मौजूद है। अतः प्रतीत हुआ कि यह मनुष्य की साधारण आयु का वर्णन है मनुष्य की विशेष आयु का वर्णन वेद ने किया है जैसे कि—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम् ॥६॥ (यजु० ३)

इस वेद मन्त्र में मनुष्य की साधारण आयु से विशेष आयु लिगनी होसकती है यह वर्णन मौजूद है।

अब यदि सौ और सौ से अधिक का लिगना किया जावे तो चार सौ होने में क्या संदेह हो सकता है। इन ही वेद मंत्रों की सरल व्याख्या करते हुए मनु जी, महाराज लिखते हैं कि—

अरोगाः सर्व सिद्धार्था श्चतुर्वर्ष शतायुषः।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायु र्ह्रसति पादशः ॥८३॥ (मनु० १)

रोग रहित सर्व सिद्धियों के देने वाली मनुष्य की आयु सतयुग में चार सौ वर्ष की होती है। और इन की आयु त्रेतादि में एक २ पाद घट जाती है ॥८३॥ यहां पर कृत त्रेता आदि समय वाचक नहीं है। अपितु राजा का नाम है। क्योंकि राजा के धर्मात्मा वा पापी होने से प्रजा धर्मात्मा वा पापी होती है और नेक वा बद आचार के अनुसार आयु बढती घटती रहती है। जैसे कि—

कृतं त्रेता युगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥३०१॥

कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रद् द्वापरं युगम् ।
कर्म स्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतंयुगम् ॥ ३०२ ॥
( मनु० ९ )

आचारा लभते ह्यायुः ॥ मनु० ४।१५६ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि आयु संबंधी स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। रहा स्वामी जी का पहिले मरना सो उन की वह मौत स्वभाविक नहीं अपितु नैमित्तिक अर्थात् अकाल मृत्यु थी यदि धर्म द्वेषी गोत्र हत्यारे देश द्रोही पापी लोग उन को ज़हर न देते तो स्वामी जी की आयु अवश्य ही चार सौ वर्ष की होती।

हां सनातन धर्म के ग्रन्थों में प्रतिपादित मनुष्य की आयु वेद विरुद्ध अवश्य है जैसे कि—

दशरथ की आयु साठ हज़ार वर्ष—
षष्टि वर्ष सहस्राणि जातस्य मम कौशक ॥१०॥
(वाल्मी० बाल० स० २०)

पांच हज़ार वर्ष का बालक—
अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्ष सहस्रकम् ॥५॥
(वाल्मी० उत्तर० स० ७३)

इत्यादि २ अनेक लेख मौजूद हैं। क्या संसार में कोई ऐसा जीता जागता पौराणिक पण्डितं मन्यः मौजूद है जो इस प्रकार की आयु को वेदानुकूल साबित करने के लिये मैदान में आने का साहस कर सके।

(५६७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ७ पृ० ९१४ पं ४ में लिखा है कि—

"ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है"—

क्या कोई आर्य समाजी इस चंडुखाने की गप्प को सत्य सिद्ध करने के लिये लेखनी उठा कर हम को यह बतलावेगा कि अमुक वेद के अमुक मंत्र में लिखा है कि ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं है। पृ० ६९ पं० २५ ।

उत्तर—स्वामी जी का लेख कृतई वेदानुकूल है । क्योंकि ईश्वर अनादि अनन्त अर्थात् नित्य पदार्थ है और नित्य पदार्थों से काल का कोई संबन्ध ही नहीं है। जब ईश्वर के साथ काल का संबन्ध ही नहीं है तो फिर ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता नहीं तो क्या है। यदि जीवों की अपेक्षा से कहो तो भी एक अंश में ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं है ईश्वर भूत तथा वर्तमान को जानता है तथा अपने कर्मों के भविष्य तथा जीवों के कर्मानुसार भविष्य फल को भी ईश्वर जानता है। किंतु जीव से स्वतंत्रता पूर्वक किये जाने वाले भविष्य कर्मों को ईश्वर नहीं जानता। क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। इस में वेद प्रमाण इस प्रकार से हैं कि—

परमात्मा अजन्मा है—

अजोनक्षांदाधार पृथिवीम् ॥ ऋ० १ । ६७ । ३ ॥
शन्नो अज एकपादेवो अस्तु॥ ऋ८ ७ । ३५ । १३ ॥

परमात्मा अमर है—

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्यवे तस्थे कदाचन ॥
[ ऋ० १० । ४८ । ५ ]
यो मर्त्येषु अमृत ऋतावादेवः ॥ ऋ० ४ । २ । १ ॥

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँसमाः । [यजु० ४०।२]

काल का लक्षण—

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥

[ वैशे० अ० २ आ० २ सू० ६ ]

अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

किंतु पुराणों में जीव कठपुतली की भांति कर्म करने में परतन्त्र माना है जसा कि—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

त्वया महादेव हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥४॥ [ शिव० रुद्र०सृष्टि० अ० १३ ]

क्या कोई ऐसा वीर पुत्र पौराणिक माता ने पैदा किया है जो इस प्रकार जीव की परतन्त्रता को वेदानुकूल सिद्ध कर सके।

(५६८) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ७ पृ० १८७ पं० ११ में लिखा है कि "मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय कंठ नेत्र शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर करे" वेद ने जो मूर्ति के द्वारा मन अवरोध करना बतलाया था उसका तो स्वामी जी ने खंडन कर दिया। और तुम्हारे जीवन को बरबाद करने के लिये नाभि कंठ नासिका प्रभृति स्थानों में मन स्थिर करना लिखा यदि स्वामी दयानन्द जी का यह लेख वैदिक है तो फिर इसमें वैदिक प्रमाण दिखाओ। पृ० १०० पं १४।

उत्तर—स्वामी जी का उपरोक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है वैसा कि—

युञ्जानः प्रथमं मन स्तत्त्वाय सविता धियः।

अग्नेर्ज्योति र्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥१॥ (यजु० ११)

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादू ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥
(अथर्व० १०।२)

इन दोनों मन्त्रों में मन को स्थिर करके योगाभ्यास करने की आज्ञा मौजूद है। इस की सरल व्याख्या जैसा कि—

उपस्थाप्योदरे तौ च नासिकाग्रमधो भ्रुवोः।
भ्रुकुट्यां चैव मनसा शनैर्धारयतस्तदा ॥१८॥
(महा० शांति अ० २००)

नाभ्यां कन्ठे च शीर्षे च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः।
दर्शने श्रवणे चापि घ्राणे चामितविक्रमः ॥३६॥
स्थानेष्वे तेषु योयोगी महा व्रतसमाहितः।
आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युंक्ते सम्यग्विशाम्यते ॥४०॥
स शीघ्रमचल प्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभा शुभम्।
उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥४१॥
॥ महा० शांति० अ० ३०० ॥

आत्मा के द्वारा परमात्मा का अनुभव होता है। पाषाण में परमात्मा तो है परन्तु आत्मा नहीं है। और मनुष्य के शरीर में आत्मा और परमात्मा दोनों मौजूद हैं। अतः पाषाण मूर्ति में ध्यान निरर्थक तथा मनुष्य शरीर में सार्थक है। पाषाण मूर्तियों के ध्यान से उन के निर्माता मनुष्य का विश्वास तथा मनुष्य के अंगों की कारीगरी के चिन्तन से मनुष्य शरीर के निर्माता परमात्मा की हस्ती का विश्वास होता है। अत स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

हां पुराणों में जो देवताओं के लिंग स्तन जांघ तथा योनि का ध्यान लिखा हैं वह सर्वथा वेद विरुद्ध है जैसा कि—

लक्ष्मी के स्तनों का ध्यान —

स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायैभुजद्वयम् ॥४४॥

[ भविष्य० उत्तर० अ० ३७ ]

भवानी की जंघा का ध्यान—

जंघे शोक विनाशिन्यायानन्दायनमः प्रभो ॥५॥

[ भविष्य० उत्तर० अ० २७ ]

शिव के लिंग का ध्यान—

मेढ्रं चैवानु राधा सु अनंगांग हराय च ॥ ८ ॥

[ भविष्य० उत्तर० अ० १०९ ]

क्या कोई पौराणिक पण्डित इस प्रकार के ध्यान को वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है।

(५६९) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० २ पृ० २२ पं० १० में लिखा है कि "धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे" कितनी असंभव बात है कि जिस दिन गर्भाधान हो उसी दिन से गर्भ में पड़े हुये वीर को सुशीलता सिखादी जावे वेद का सिद्धान्त है कि सप्तम मास में चेतना पाकर जीव गर्भ के दुःखों से घबरा जाता है। पृ० १०१ पं० ११।

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है कि जीव का सातवें मास गर्भ स्थित शरीर से संबंध होता है। तथा आपने इस बारे में कोई वेद का प्रमाण भी नहीं दिया। हमारी प्रतिज्ञा है कि जीव कर्मानुसार पिता वा माता के शुक्र द्वारा ही गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है। अन्यथा गर्भ गन्दा होकर नष्ट हो जावे जसे की बिना जीव के अण्डा गन्दा होकर नष्ट होजाता है। अंडे खाने और गर्भ पात में कोई दोष न रहे। और गर्भाधान

पुंसवनादि गार्भिक संस्कारों का करना व्यर्थ हो जावे। अतः हमारी प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है। इसी कारण से वेद ने गर्भाधान से पूर्व माता पिता को पूर्व तैयारी करने की आज्ञा दी है क्यों कि माता पिता के प्रत्येक आचार व्यवहार का गर्भ पर प्रभाव पड़ता है जैसे कि--

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपथिस्तस्मिन् मत्वस्व।
अदस्मै नरो वच से दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्व धा विश्वाहारय एधते गृहे।
॥ यजु० ८५ ॥

भाषार्थ--हे विविध प्रकार के स्थानों में बसने वाले अविनाशी स्वरूप विद्वान् गृहस्थ! यह जो आपका जिस में सोम लतादि औषधियों के रस पीने में आयें ऐसा गृहाश्रम है। उस में आप सब दिन आनन्दित रहो। हे गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो आप लोग इस गृहाश्रम के वाग्व्यवहार के लिये सत्य ही का धारण करो। जिस गृहाश्रम में स्त्री पुरुष कामना देने वाला निष्पाप धर्मात्मा पुरुषार्थी वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र उत्पन्न होता है। और वह उत्तम धन को प्राप्त होता है। इस के अनन्तर वह विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है ॥५॥ इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि जो स्त्री पुरुष सदाचारी रहेंगे उन्हीं के धर्मात्मा सन्तान पैदा होगी। वेद के इस भाव की व्याख्या आप के ग्रन्थों में अनेक प्रकार से मौजूद है जैसे कि--

गर्भ से पूर्व भोजन का प्रभाव—

स य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेद मनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामी श्वरौ जनयित वै ।{४॥ इत्यादि [ वृह० अ० ६ ब्राह्मण ४ ]

विवाह का प्रभाव भावि सन्तान पर—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्ट संमताः ॥३६॥ [मनु०३]

माता के आचार का प्रभाव—

यादृशं भजते स्त्री सुतं सूते तथा विधम् ।
तस्मात्प्रजा विशुद्धचर्थं स्त्रियं रक्षेतप्रयत्नतः ॥ ९ ॥
[ मनु० ९ ]

ऋतु अवस्था का सन्तान पर प्रभाव—

स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् ।
पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ॥११४॥
[ वाल्मी० युद्ध० स० १२८ ]

कथा सुनने का गर्भ पर प्रभाव—

जयो नामेति हासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता ।४६ ।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैवयोषिता ॥४७॥
[ महा० स्वर्गारो० अ० ५ ]

जीव का वीर्य के साथ गर्भ में प्रवेश—

जीवः कर्म समायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमा गतः ।
स्त्रीणां पुष्पं समा साद्य सूते कालेन भारत ॥३४॥
[ महा० अनु० अ० १११ ]

अहोष्मान्तर्गतश्चापि गर्भत्वं समुपेयिवान् ।
दशमासान् वसन् कुक्षौ नैषोऽन्नमिव जीर्यते ॥११॥
[ महा० शान्ति० अ० २५२ ]

गर्भ समय माता की आंखें बंद करने का प्रभाव—

महा भागो महा वीर्यो महा बुद्धिर्भविष्यति ॥९॥
किंतु मातु सवै गुण्या दन्ध एव भविष्यति ॥ १० ॥
[ महा० आदि० अ० १०६ ]

गर्भ समय माता के भय का प्रभाव—

यस्मात् पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह ॥ १७ ॥
तस्मादेष सुतस्ते वै पांडुरेव भविष्यति ॥ १८ ॥

[ महा० आदि० अ० १०६ ]

गर्भ समय माता की प्रसन्नता का प्रभाव—

अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः ।
धर्मात्मा भविता लोके सर्व बुद्धिमतांवरः ॥ २७ ॥

[ महा० आदि० अ० १०६ ]

इत्यादि २ अनेक प्रमाण मौजूद हैं जो साबित करते हैं कि गर्भाधान से ही माता अपने बच्चे को अपने आचार विचार द्वारा शिक्षा देती है।

हाँ पुराणों में असंभव बातें अवश्य हैं जैसे कि—

गर्भ में वेद पढ़ना बोलना पैर अड़ाना—

अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते ।
औतथ्यो वेदम त्रापि षडंगं प्रत्यधीयत ॥ ११ ॥
उत्सृजन्तं तु तं रेतः सगर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥
शक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्या गर्भ गतो मुनिः ।
पद्भ्यामरोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः ॥ १७ ॥

[ महा० आदि० अ० १०४ ]

गर्भ में से वेद पढ़ने की आवाज—

पुत्रि कस्यैष सांगस्य वेदस्याध्ययन स्वनः ।
पुरा सांगस्य वेदस्य शक्तेरिव मया श्रुतः ॥ १४ ॥
अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते ।
समाद्वादश तस्येह वेदानभ्यस्यतो मुने ॥ १५ ॥

[ महा० आदि० अ० १७९ ]

क्या कोई पौराणिक पंडित इन असंभव घटनाओं को वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ है।

(५७०) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ३ पृ० ३५ पं० १६ में लिखा है कि—"आचमन से कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति थोड़ी सी होती है" आर्य समाजी कान खोल कर सुनलें जल से कफ की निवृत्ति नहीं होती वृद्धि होती है। जल से कफ की निवृत्ति का होना स्वामी दयानन्द जी का यह मिथ्या गपोड़ा तुमने माना कैसे। क्या वेद में आचमन करने की आज्ञा लिखी है और आचमन से कफ की निवृत्ति होना वैदिक धर्म है। यदि है तो श्रुति पेश की जाय। पृ० १०३ पं० १५।

उत्तर—यहां पर स्वामी जी का कफ से अभिप्राय उस खंगार से है जो कण्ठ को रोक लेता है। आचमन करने से वाकई गला खुल जाता है यह प्रत्यक्ष ही है। यहाँ पर रोगी की चिकित्सा नहीं हो रही अपितु संध्या का प्रकरण है। अतः यहां कफ से अभिप्राय त्रिदोष वाले कफ का नहीं है। इस लिये स्वामी जी ने भ्रम दूर करने के लिये लिखा कि 'कंठस्थ कफ की निवृत्ति" होती है और वह भी थोड़ी सी और फिर पंच महायज्ञ विधि में यह भी लिख दिया है कि यदि आवश्यकता न हो तो न करें। फिर यहाँ पर कफ के साथ पित्त शब्द भी लिखा है कि जिस को आपने हज़म कर लिया। पुस्तक का असल पाठ यह है कि—

"आचमन"उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कंठ के नीचे हृदय तक पहुंचे। न उससे अधिक न न्यून। उस से कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है।"

पुस्तक के मूल पाठ को पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यहां पर कफ से मतलब कंठस्थ खंकार से है। रही चिकित्सा की बात सो महाराज उसके विविध प्रकार हैं। आज कल 'होमो पैथिक' वाले कफ की निवृत्ति भी जल ही से करते हैं। परन्तु यहाँ तो चिकित्सा का प्रकरण ही नहीं है। रही वेदानुकूलता की बात सो आचमन करना सर्वथा वेदानुकूल है जैसा कि—

शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः॥ यजु० ३६। १२॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जैसे इष्ट सुख की सिद्धि के लिये पीने के अर्थ उत्तम जल हम को सुखकारी होवें हमारे लिये सुख की वृष्टि सब ओर से करें वैसी कृपा करें।

इस मंत्र में सुख सिद्धि के लिये जल पीने की आज्ञा स्पष्ट है। जिस में आचमन भी शामिल हैं इसी की व्याख्या मनु जी करते हैं कि "त्रिराचमेदपः पूर्वं। मनु० २। ६०" और स्वामी जी ने इस का समाधान किया है कि आचमन करने का क्या प्रयोजन है? यदि स्वामी जी ने प्रयोजन ग़लत बतलाया है तो कृपया आचमन का प्रयोजन आप ही बतलाने की कृपा करें।

हां पुराणों के आचमन बड़े विचित्र हैं जरा इनका समाधान करते जावें जैसे कि—

अगस्त्य मुनि ने समुद्र का ही आचमन कर लिया—

एतावदुक्त्वा वचनं मैत्रावरुणिरच्युतः।
समुद्रमपिबत् क्रुद्धः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ३॥
(महा० वन० अ० १०५)

क्या कोई पौराणिक पण्डित किसी सनातन धर्म प्रतिनिधि वा महामण्डल में जीता जागता मौजूद है। जो इस प्रकार के आचमन को वेदानुकूल साबित कर सके।

( ५७१ ) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३५ पं० २० में लिखा है कि "मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के। उस से आलस्य दूर होता है" वेद के किसी मन्त्र में मार्जन करना और उस से आलस्य दूर होना नहीं लिखा। अभी तो वह स्नान करके आया है स्नान से भी जिस का आलस्य न गया तो फिर ज़रा से जल के छींटों से कैसे चला जावेगा। सनातन धर्मियों के गृह्यादि ग्रन्थों में तो मार्जन करना लिखा है किंतु वेद में न मार्जन है और न मार्जन से आलस्य का दूर होना। पृ० १०६ पं० २३।

उत्तर—अंगों पर जल छिड़कने से आलस्य दूर होता है यह बात तो प्रत्यक्ष है। कभी किसी ने रात भर जागना हो तो वे यही उपाय करते हैं। यह स्वामी जी ने मार्जन का प्रयोजन लिखा है। यदि यह ठीक नहीं है तो आप बतलावें मार्जन क्यों किया जाता है। यदि स्नान किया हो तो मार्जन की ज़रूरत नहीं। यह बात स्वामी जी ने यहां पर ही लिखी है, परन्तु आपने अपने स्वभाव से विवश होकर उसे चुरा लिया है। स्वामी जी उपरोक्त लेख के पश्चात् लिखते हैं कि—"जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे" आप स्वयं मानते हैं कि सनातन धर्मियों के ग्रन्थों में मार्जन लिखा है। तो क्या वह वेद के विरुद्ध है। यदि विरुद्ध है तो आप क्यों करते हैं। यदि अनुकूल है तो फिर हमारे से क्यों पूछते हैं। क्या इस से आप स्वमतानुज्ञानिग्रह स्थान में तो नहीं आ जाते। इस प्रकार के प्रश्न करते हुवे कुछ शर्म तो नहीं आती। रही वेदानुकूलता की बात सो मार्जन सर्वथा वेदानुकूल है जैसे कि—

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रम्प्रवहन्ति देवीः। उदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि। दीक्षातपसोस्त नूरसि तां त्वा शिवां शग्माम्परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ यजु० ४। २ ॥

इस मन्त्र में 'शुन्धयन्तु, पुनन्तु, शुचि, आपूतः' से मार्जन करने की आज्ञा तथा 'दीक्षातपसोस्तनूः, भद्रं, वर्णं, शिवां' से आलस्य दूर होकर पुरुषार्थी बनने का वर्णन मौजूद है।

किन्तु सनातन धर्म्म में विचित्र २ मार्जन हैं जैसा कि—

दुर्वासा का मार्जन तथा रुक्मणी मार्जन—

कृष्ण पायसमिच्छामि भोक्तुमित्यवे सत्वरः ॥ २२ ॥
ततोऽहं ज्वलमानं वै पायसं प्रत्यवेदयम् ॥ २४ ॥
क्षिप्रमंगानिलिम्पस्व पायसेनेति सस्माह ॥ २५ ॥
तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवाभ्यमृक्षयम् ॥ २६ ॥
सददर्श तदाभ्यासे मातरं ते शुभाननाम्।
तामपि स्मयमानः सपायसेनाभ्यलेपयत् ॥ २७ ॥

[ महा० अनु० अ० १५६ ]

हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि कोई पौराणिक पंडित मैदान में आकर इस विचित्र मार्जन को वेदानुकूल साबित करे।

(५७२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० १३ में लिखा है कि—

"अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गंध की निवृत्ति करता है"

वेद में कोई भी मन्त्र ऐसा नहीं है कि जिस में हवन की वायु से दुर्गंध का नाश होना लिखा हो। पृ० १०८ पं २०।

उत्तर—आपने स्वामी जी का पूरा लेख उद्धृत नहीं किया वरना आप को शंका ही न होती। पूरा लेख इस प्रकार है कि ('प्रश्न)— चन्दनादि घिस के किसी के लगावे या धृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं। (उत्तर)-जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गंध का भी' इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गंध की निवृत्ति करता है।"

अब बतलाईये इस में आप को क्या शंका है। क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष है कि धूप जलाने की भांति हवन से भी दुर्गन्ध दूर होती है और यह वेदानुकूल है जैसा कि—

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्र तूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्र तूर्ये प्रोक्षितः स्थ। अग्नये त्वाजुष्टम्प्रोक्षामि, अग्नि षोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुं धामि ॥ यजु० १।१३ ॥

यह मंत्र स्पष्ट रूप से वर्णन करता है कि हवन करने से वायु तथा जल शुद्ध होते हैं और दूर देश की दुर्गंध भी हवन से दूर होती है। यह बात मन्त्र में पड़े शुन्धध्वम्, शुद्धाः, पराजघ्नुः, तथा शुधामि पद स्पष्ट सिद्ध कर रहे हैं।

हाँ सनातन धर्म के हवन की विचित्र ही गन्ध है जैसा कि घोड़े की चर्बी की गन्ध-

पतत्त्रिणस्तस्य वयां उद्धृत्य नियतेन्द्रियः ।
ऋत्विक् परम संपन्नः श्रपयामास शास्त्रतः ॥ ३६ ॥
धूमगन्धं वयायास्तु जिघ्रति स्मनराधिपः ।
यथा कालं यथान्यायं निर्णुदन् पापिमात्मनः ॥ ३७ ॥
हयस्यानि चांगानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः ।
अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत्समस्ताः षोडशर्त्विजः ॥३८॥

[ बाल्मी० बाल० स० १४]

बालक की चर्बी की गन्ध—

सव्ये पाणौ गृहीत्वा तु याजकोऽपि स्म कर्षति ।
कुररीणामिवार्त्तानां समाकृष्य तु तं सुतम् ॥ ४ ॥
विशस्य चैनं विधिवद्वपामस्य जुहाव सः ।
वपायांहूयमानायां गन्धमाघ्रय मातरः ॥ ५ ॥
आर्त्ता निपेतुः सहसा पृथिव्यां कुरुनन्दन ।
सर्वाश्च गर्भानलभंस्ततस्ताः परममांगनाः ॥ ६ ॥

[ महा० वन०अ०१२८ ]

क्या कोई पौराणिक इस प्रकार के हवन तथा गन्ध सूंघने को वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है ।

(५७३) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३६ पं० ६ में लिखा है कि "किसी धातु वा मिट्टी के ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहरी और नीचे तीन वा चार अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे" वेद में ऐसी वेदी बनाने की कहीं पर भी आज्ञा नहीं । पृ० १०९ पं० २७

उत्तर—स्वामी जी ने वेदी के बनाने की सरल व्याख्या करके उस का ढङ्ग बतला दिया है, वरना यह आवश्यक नहीं है कि वेदी चौकोन ही हो । अपितु गोल त्रिकोण आदि शकल

पर भी बनाई जा सकती है। इस विषय में स्वामी जी महाराज लिखते हैं कि—

तथा वेदी दृष्टान्तेन त्रिकोण चतुष्कोण गोलश्येनाद्याकार वत्करणाद्रेखा गणितमपि साध्यते (ऋग्वे० भाष्य भूमि० वेद)

रही बात वेदानुकूलता की सो वेद में वेदी बनाने की अवज्ञा मौजूद है जैसे कि—

वेदिरसि बर्हिषेत्वा जुष्टां प्रोक्षामि ॥ यजु० २। १ ॥
इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्याः ॥ यजु० २३। ६२ ॥

इन दोनों मन्त्रों में वेदी बनाने का वर्णन विद्यमान है। हां पौराणिक वेदि सर्वथा वेद विरुद्ध हैं जैसा कि—

नियुक्तास्तत्रपशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम्।
उरगाः पक्षिणश्चैव यथा शास्त्रं प्रचोदिताः ॥ ३० ॥
शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्चये।
ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा ॥ ३१ ॥
पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा ॥ ३२ ॥

(बाल्मी० बाल० स० १४)

छिन्नस्थूणं वृषं दृष्ट्वा विलापंच गवां भृशम्।
गो ग्रहे यज्ञवाटस्य प्रेक्षमानः स पार्थिवः ॥ २ ॥

(महा० शान्ति० अ० २६४)

चयनं कर्तुमिच्छन् फाल्गुण कृष्ण प्रतिपदे पौर्णमासेष्टिं कृत्वा पुरुषार्थ योऽयजाना लभ्याजेन यागं कृत्वा पंचानां शिरांसि धृता तानि प्रथम चितावु पधानार्थं क्वचित्संस्थाप्य तेषां कबंधान् यज्ञ शेषं च मृद्युक्तेत डागादि जले प्रास्येत्।

महीधर य० ११। १)

क्या कोई माई का लाल पौराणिक पंडित इस ज़िबहख़ाने के रूप को धारण करने वाली यज्ञ वेदि को वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है।

(५७४) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३२ पं० २१ में लिखा है कि "मंत्रों में वह व्याख्यान है कि जिस से होम करने के लाभ विदित हो जायें। और मंत्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें" (१) यह आप का गपोड़ा है कि "जिन मंत्रों से हवन किया जाता है उन में हवन के गुण लिखे हैं' प्रथम तो आप के हाँ हवन के कुछ गुण ही नहीं। केवल एक गुण है। कि हवन के वायु से दुर्गन्धि का नाश होता है। फिर क्या हवन के समस्त मंत्रों में यही लिखा है कि हवन के वायु से दुर्गन्ध नष्ट हो जाती हैं। यदि ऐसा है तो वेद में पुनरुक्त दोष आजावेगा (२) आप ने गायत्री मंत्र से भी हवन करना लिखा है अब आप बतलावें कि गायत्री मंत्र में हवनके कितने गुण हैं। आपने जो गायत्री मंत्र का भाषा टीका लिखा उस में तो हवन का एक भी गुण नहीं लिखा (३) "ओं अग्नये स्वाहा" से लेकर "स्विष्ट कृते स्वाहा" तक जो १० मंत्रों से हवन करना लिखा है। क्या आर्य प्रतिनिध सभाओं में इतना दम है कि हवन के मंत्रों में से हवन के गुण निकाल दें (४) स्वामी जी का यह लेख सर्वथा असत्य तथा वेद विरुद्ध है।

(पृ० १११ पं० १)

उत्तर—आप को चोरी करने का स्वभाव तंग करता है। इस से प्रायः हर प्रश्न में स्वामी जी के पाठ को चुरा लेते हैं। यहां पर भी आपने स्वामी जी का पूरा लेख दर्ज नहीं किया। देखिये पूरा पाठ इस प्रकार से है कि—

(प्रश्न)—तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है।

(उत्तर)—मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिस से होम करने के लाभ विदित हो जायँ। और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें [वेद पुस्तकोंका पठन पाठन और रक्षा भी होवे]

आपने इस अन्तिम वाक्य को चुरा लिया है जिसकी हमने कोष्टक में देदिया है पूरे पाठ से ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने मंत्रपढ़ने के तीन प्रयोजन बतलाये हैं(१) मन्त्रों में होम करने के लाभ की व्याख्या (२) आवृत्ति से कण्ठस्थ होना (३) वेद की रक्षा। अब ज़रा ध्यान दीजियेगा स्वामी जी ने जितने भी वेद मन्त्र हवन करने में लिखे हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि प्रत्येक मन्त्र के अन्दर तीनों ही प्रयोजन हों। किन ही मन्त्रों में हवन के लाभ की व्याख्या है, कोई मन्त्र कण्ठस्थ रखने के प्रयोजन से ही जोड़े गये हैं और किनही मन्त्रों को वेद की रक्षार्थ ही जोड़ा गया है। आपने स्वामी जी के ग्रन्थों को पूरे तौर से नहीं पढ़ा। इस लिये आप कह रहे है कि स्वामी जी हवन से केवल एक ही लाभ दुर्गन्ध दूर करना मानते हैं। लीजिये हम आपको स्वामी जी के हवन के लाभ लिखे हुवे बतलाते हैं।

[१] वायु शुद्धि [२] जल शुद्धि [३] रोग निवृत्ति [४] सुख प्राप्ति। सत्यार्थ० समु० ३ [५] वृष्टि आधिक्य[६] संसार का उपकार [७] दुर्गन्ध नाश। [ भूमिका वेद विषय विचार ] [८] अन्न शुद्धि यजु० १।२० [९] सूर्य्य की किरणों का शुद्धि १।२४।१०] औषधि शुद्धि [११] बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि १।२५ [१२] मन्त्रोच्चारण द्वारा तथा विद्वानों से शिक्षा ४।२४ [१३] हवन से त्रिलोकी के पदार्थ पुष्ट होते

हैं ५। १३ [१४] हवन से ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्यों की शुद्धि २। ६ [१५] ईश्वर की आज्ञा का पालन २। २३ इत्यादि इत्यादि हवन करने के अनेक लाभ स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में वर्णन किये हैं।

अब आप अपने आक्षेपों का उत्तर सुनने की कृपा करें।

(१) चूँकि हवन करने से अनेकों लाभ हैं। अतः वेद मंत्रों में हवन के अनेक लाभों का व्याख्यान होने से वेद में पुनरुक्त दोष नहीं आ सकता।

(२) गायत्री मंत्र से हवन करने का यह प्रयोजन है कि मैं गायत्री मंत्र में प्रतिपादित ईश्वर की आज्ञा का पालन करता हूं। क्योंकि उस की आज्ञा का पालन करना ही उसके तेज स्वरूप को धारण करना है। वह परमात्मा मेरी बुद्धि को सद्धर्म में प्रेरित करे। वेद द्वारा ईश्वर की आज्ञा है कि "गाय त्रेण त्वा छन्दसा मन्यामि यजु ५।२" "हे मनुष्यो मैं तुम को गायत्री मंत्र से उस अग्नि होत्र करने की आज्ञा देता हूं" बस गायत्री से हवन करना ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है जो कि लाभ नं० १५ में हम वर्णन कर चुके हैं।

(३) "अग्नये स्वाहा" से लेकर "यदस्य कर्मणः" तक नौ मन्त्रों में निम्न प्रकार से हवन के लाभ वर्णन हैं।

(१) मैं ईश्वर की आज्ञा से अग्नि की शुद्धि के लिये होम करता हूं। (२) मैं ईश्वर की आज्ञा से जल की शुद्धि के लिये हवन करता हूं। (३) मैं ईश्वर की आज्ञा से प्रजा का पालन करने वायु की शुद्धि के लिये हवन करता हूं। (४) मैं ईश्वर की आज्ञानुसार सूर्य की किरणों को शुद्ध कर ने के लिये होम करता हूं। (५) मैं ईश्वर की आज्ञा से भूमि पर वर्तमान अग्नि को शुद्ध करने के

लिये हवन करता हूं। (६)मैं ईश्वर की आज्ञा से अंतरिक्ष वर्तमान वायु की शुद्धि के लिये हवन करता हूं। (७) मैं ईश्वर की आज्ञा से द्यौलोक में वर्तमान सूर्य में स्थित पदार्थों को शुद्ध करने के लिये हवन करता हूं। (८) मैं ईश्वर की आज्ञा से पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्यौलोक में वर्तमान अग्नि वायु आदित्य आदि समस्त लोक लोकान्तरों की शुद्धि के लिये हवन करता हूं। (९) मैं ईश्वर की आज्ञा से संपूर्ण लाभदायक पदार्थों को शुद्ध करने के लिये हवन करता हूं।

(४) हवन में वेद मन्त्रों का उच्चारण वेदानुकूल है जैसे कि—
अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौस्थ उर्वश्यायुरसि पुरुरवाऽसि गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ यजु० ५।२ ॥

इस मंत्र में मंत्रों द्वारा अग्नि होत्र करने की आज्ञा है अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल तथा युक्ति युक्त होने से सर्वथा सत्य है। हां पौराणिक हवन वेद के विरुद्ध तथा उनके लाभ भी युक्त शून्य हैं जैसे कि—

त्वचा लोम्नाथ शृंगैर्वा बालैः क्षीरेणमेदसा।
यज्ञंवहति संभूय किमस्तयभ्यधिकं ततः ॥ १४ ॥
[ महा० अनु० अ० ८० ]

यहां पर गौ के त्वचा, बाल, सींग, दूध, चरबी आदि से हवन करने का वर्णन है।

यदृच्छया मृतान् दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः।
एतान् पशून्नय क्षिप्रं ब्रह्मबंधोयदीच्छसि ॥ ८ ॥
संतूत्कृत्य मृतानां वै मांसानिमु[illegible]चनः।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रे नरपतेः पुरा ॥ ११ ॥

यहां पर मृत्तक गौवों के मांस से हवन करने का वर्णन है क्या कोई जीता जागता पौराणिक पंडित संसार में मौजूद है जो गौ मांस से हवन करना वेदानुकूल साबित कर सके ।

(५७५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३२ पं० १७ में लिखा हैकि"इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियां को घरमें न रखसके" क्या आर्य समाजी यह बतावेंगे कि पांच वर्ष से आठ वर्ष तक सब लड़कों को पाठ शाला में भेजना किस वेद मंत्र में लिखा है। साथ ही साथ यह भी बतलाना पड़ेगा कि वह कान वेद मंत्र है जिस में इस विषय के लिये राज नियम का होना लिखा है। पृ० ११३ पं० १।

उत्तर—स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है जैसा कि—

माता मन्यतामनु पितानु भ्रातासगभ्र्योऽनुसखा सयूत्थ्यः।
अग्निषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि। (यजु० ६।६)

इस मन्त्र में वर्णन है कि इस संसार में माता पिता बंधुवर्ग और मित्र वर्गों को चाहिये कि अपने सन्तानादि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य्य करावें जिस वे गुणवान् हों फिर वेद कहता है कि—

ब्रह्मचर्य्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्य्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
(अथर्व० ११।५)

राजा विद्याध्ययन और वीर्य रक्षा द्वारा राष्ट्र की रक्षा करता है तथा अध्यापक ब्रह्मचर्य्य के साथ रहने वाले विद्यार्थी की इच्छा करता है ॥ १७ ॥

यहां पर स्पष्ट है कि राजा अपने राष्ट्र में रहने वाले मनुष्यों की विद्या पढ़ाकर और ब्रह्मचर्य्य धारण करवा कर रक्षा करे।

इस की सरल व्याख्या मनु जी कहते हैं कि राजा कुमार कुमारियों की रक्षा करें।

परस्पर विरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।
कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥१५२॥ [मनु०७]

यज्ञोपवीत देकर पढ़ाई आरम्भ—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥१४०॥ [मनु० २]

यज्ञोपवीत का समय—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तुद्वादशे विशः॥३६॥
ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥३७॥ [मनु २]

इन संपूर्ण प्रमाणों से राजा को शिक्षा का अधिकार तथा पांचवां आठ वर्ष से शिक्षा का आरंभ सबित होता है। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

हां सनातन धर्म्म में इसी आयु में सन्तानोत्पत्ति वेद के विरुद्ध है जैसे कि—

पंचमेवाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते॥ ४६॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा॥ ५०॥

[महा० वन० अ० १९०]

क्या सनातन धर्मी यह बतलाने की कृपा करेंगे कि यह पांच से आठ वर्ष तक की आयु में सन्तान पैदा करना किस वेद के अनुकूल है।

(५७६) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ३ पृ० ३७ पं० १ में लिखा है कि "ओं भूः और प्राणादि ये सब नाम परमेश्वर के हैं" क्या भारत जननी ने किसी ऐसे आर्य्य समाजी को पैदा

किया है जो भूः और प्राण को ईश्वर के नाम सिद्ध करदे।

पृ० ११४ पं० २।

उत्तर—स्वामी जी ने इसी स्थान में प्रमाण दे रक्खा है कि "भूरिति व प्राणः" यह "तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक ७ अनुवाक ५" का वचन है। जिससे साबित है कि 'भूः' के अर्थ प्राण हैं और प्राण नाम ईश्वर का है। अतः भूः भी ईश्वर का ही नाम हुआ। 'भूः' का अर्थ प्राण है यह प्रमाण तो स्वयं स्वामी जी ने देही रक्खा है। प्राण नाम ईश्वर का है। इसमें प्रमाण—

प्राणायनमो यस्य सर्वमिदंवशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिंत्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥

[ अथर्व० ११। २। ४ ]

इसी का अनुवाद मनु ने किया है कि—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥१२३॥ [ मनु० १२ ]

भूर्भुवः स्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञां गो यज्ञ वाहनः ॥११७॥
ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठा श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥२१॥

[ महा० अनु० अ० १४९ ]

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि भूः और प्राण ये दोनों नाम ईश्वर के हैं।

हां राम और कृष्ण ये दोनों नाम ईश्वर के नहीं हैं—

कृष्ण वर्ण रात्रीः।कृष्णं कृष्यते निकृष्टो वर्णः॥

[ निरु० अ० २ खं० २० ]

अहश्च कृष्णं रात्रिः शुक्लं चाहरर्जुनम्॥

[ निरु० अ० २ खं० २१ ]

अधो रामः सावित्र इति पशु समाम्नाये। विज्ञायते कस्कात् सामान्यादित्य धस्तात्तद्वेलायां तमो भवत्येत स्मात् सामान्यादधस्ताद्रामोऽधस्तात्॥ [ निरु० अ० १२ खं० १३ ]

कृष्ण और राम ये दोनों नाम काले और अंधेरे के हैं। क्या भूतल पर कोई ऐसा पौराणिक किसी माता ने पैदा किया है जो राम और कृष्ण ये दोनों नाम ईश्वर के साबित कर सके।

(५७७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३८ पं० ४ में लिखा है कि—"प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए" क्या कोई आर्य समाजी ऐसा पैदा हुआ है कि जो दयानन्द की आहुतिओं के परिमाण और संख्या को वैदिक सिद्ध करदे। पृ० ११५ पं० २२।

उत्तर—वेदों में दोनों समय अग्नि होत्र करने की आज्ञा है जैसे कि—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।३।
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता।४।
[ अथर्व० कां ० १९ सू० ५५ ]

इन दोनों मंत्रों में प्रत्येक मनुष्य के लिये दोनों समय अग्नि होत्र की आज्ञा है। इन वेद मंत्रों की सरल व्याख्या करते हुए ही स्वामी जी ने प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और प्रत्येक आहुति का परिमाण छः २ माशे बतलाया है। स्वामी जी का यह देशकालानुसार आर्ष और स्मार्त विधान है जो कि उपरोक्त वेद मंत्रों के सर्वथा अनुकूल है। हां सनातन धर्म में वेद विरुद्ध यज्ञ कल्पनायें अवश्य हैं जैसे—

ततोयूपोच्छ्रये प्राप्ते षड् वैल्वान् भरतर्षभ ।
खादिरान् विल्व सम्मितां स्तावतः सर्व वर्णिनः ॥२७॥
देवदारुमयौ द्वौतु यूपौ कुरुपतेर्मखे ।
श्ले श्मात.कमयं चैकं याजकाः समकल्पयन् ॥२८॥
यूपेषु नियताचासीत् पशूनां त्रिशती तथा ।
अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौन्तेयस्य महात्मनः ॥३५॥

( महा० अश्वमेध० अ० ८८ )

श्रपयित्वा पशून् रम्यान् विधिवद्द्विजसत्तमाः ।
तंतुरंगं यथा शास्त्रमालभन्त द्विजातयः ॥१॥
शिष्टान्यंगानि यान्या संस्तस्याश्वस्यनराधिप
तान्यग्नौ जुहुवुर्द्वीराः समस्ताः शोडशत्विजाः ॥५॥

( महा० अश्वमेध० अ० ८९ )

क्या कोई ऐसा सनातन धर्म्मी संसार में पैदा हुआ है जो महाभारत में व्यास जी लिखित इन १५ यूपों के बनाने, उन के साथ ३०१ पशु बांधने, उन सब पशुओं के ब्राह्मणों के हाथ से मारे जाने, और घोड़े के समस्त अंगों को १६ ऋत्विजों द्वारा अग्नि में हवन करने, की याज्ञिक विधियों और संख्यायों को वैदिक सिद्ध करने में समर्थ हो सके।

(५७८) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० २ में लिखा है कि—

"स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले" क्या किसी आर्य समाजी में साहस है कि स्वाहा शब्द के इस अर्थ को सत्य सिद्ध करके दिखला दे। पृ० ११४ पं० २५।

उत्तर—स्वामी जी ने जो स्वाहा का अर्थ किया है वह

सर्वथा वेदानुकूल तथा सत्य है जैसे कि—

अग्नि ज्योंति ज्योंति रग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योंति ज्ज्योंतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। सूर्यो वर्च्चो ज्योति र्व र्च्चः स्वाहा। ज्योति सूर्यः सूर्यो ज्ज्योतिः स्वाहा। यजु० ३।६॥

इस मन्त्र में स्वाहा शब्द के क्या अर्थ हैं इस पर निरुक्त है कि—

स्वाहा इति वाङ् नाम सु पठितम्।

(निरु० अ० २ खं० २३)

वाणी के नामों में स्वाहा शब्द का पाठ आया है। वह वाणी कैसी हो इस पर निरुक्त कहता है कि—

स्वाहे त्येतत् सु आहेति वा स्वा वागाहेति वा

(निरु० अ० ८ खं० २१)

स्वाहा इस का अर्थ है सत्य श्रेष्ठ बोलना या अपनी आत्मा के अनुकूल वाणी। उपरोक्त मन्त्र में स्वाहा का अर्थ निरुक्त कार की रीति से ग्रहण किया जाता है। अतः स्वामी जी का अर्थ सर्वथा सत्य है। हां पुराणों में इस प्रकार के मन्त्र अवश्य मौजूद हैं कि जिन के कोई अर्थ ही नहीं जैसे कि—

ओं हूं हूं प्रस्फुर लल लल कुल्व कुल्व चुल्व चुल्व खल्ल खल्ल मुल्व मुल्व गुल्व गुल्व तुल्व तुल्व फुल्ल फुल्ल धुल्व धुल्व इत्यादि महा कौशिक मन्त्र ॥ [ गरुड० आचार०अ०१३४ ]

क्या किसी पौराणिक माता ने कोई ऐसा पौराणिक पंडित पैदा किया है जो उपरोक्त पौराणिक मन्त्र के अर्थ करने में साहस कर सके।

(५७९) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ६ पृ० ३८ पं० ११ में लिखा है कि—

"अग्नि होत्र से ले के अश्वमेधपर्य्यन्त यज्ञ"

(१) अग्नि होत्र की कथा तो यह है कि जिस प्रकार का अग्नि होत्र गृह्य और स्मृतियों में लिखा था उस को तो स्वामी दयानन्द जी ने उड़ा दिया। और मन घड़न्त वेद विरुद्ध एक नया अग्नि होत्र तय्यार किया।

(२) यहां तो स्वामी जी यज्ञों को मानते हैं किंतु यजुर्वेद भाष्य में यज्ञों का सफाया करदेते हैं। यजुर्वेद अध्याय १ दर्श पूर्ण मासेष्टि अ० ४ अग्निष्टोम अ० ६ वाजपेय तथा राज सूर्य यज्ञ अ० १० सौत्रामणि अ० १६ शतरुद्रयाग अ० २२-२३ अश्वमेध अ० ३० पुरुषमेध अ० ३२ में सर्वमेध यज्ञों का वर्णन है। किंतु स्वामी दयानन्द जी वेद के असली अर्थ को सुनकर घबरा जाया करते थे। पृ० ११८ पं० ४।

उत्तर—स्वामी जी यज्ञ को महत्व पूर्ण कर्म मानते हैं। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के अंत में अपना मन्तव्य बतलाते हुये लिखा है कि—

२८ "यज्ञ" उस को कहते हैं कि जिस में विद्वानों का सत्कार यथा योग्य शिल्प अर्थात् रसायन जोकि पदार्थ विद्या उस से उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्नि होत्र आदि जिन से वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाता है, उस को उत्तम समझता हूं (सत्यार्थ) ४७-यज्ञ-जो अग्नि होत्र से ले के अश्वमेध पर्य्यन्त वा जो शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान जो कि जगत के उपकार के लिये किया जाता है। उस को यज्ञ कहते हैं (रत्नमाला) वेद में भी यज्ञ के बड़े विस्तृत अर्थ किये हैं जैसा कि-

आयु र्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेनकल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतांमा

त्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मायज्ञेन कल्पतां ज्योति र्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मा मृता अभूम प्रजापते प्रजा अभूम वेट स्वाहा ॥१३॥

(यजु० १८।२९)

कोवः स्तोमं राधति यं जुजोषथविश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्ष दत्यंहः स्वस्तये ॥ ऋ० मं० १० सू० ६२ मं० ६ ॥

अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरति हिंसा कर्मातत् प्रतिषेधः ॥ १ ॥ (निरु० अ० १ खं० ८)

यज् देव पूजा संगतिकरण दानेषु (व्याकरण)

स्वामी जी उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार हिंसा से रहित यज्ञ मानते हैं। किंतु पौराणिक लोग यज्ञों में अश्व, गौ, बकरा, मेढा, पुरुष आदि प्राणियों को मार कर उन के मांस से हवन करना तथा शेष मांस का खाना भी मानते हैं जैसा कि—

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवत कर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥४१॥

एतेष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेद तत्त्वा र्थविद् द्विजः।
आत्मानं च पशुं चैव गमययुत्तमांगतिम् ॥४२॥

नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांसं नात्तिमानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवाने कविंशतिम् ॥३५॥ (मनु० ५)

इत्यादि अनेकों प्रमाण इस की पुष्टि में दिये जा सकते हैं

अतः स्वामी जी का यज्ञ सम्बन्धी सिद्धान्त वेदानुकूल और पौराणिकों का सिद्धान्त वेद के सर्वथा विरुद्ध है। अब आप अपने आक्षेपों का उत्तर सुनने की कृपा करें।

(१) आप की स्मृतियों तथा गृह्य सूत्रों में जिस प्रकार से अग्निहोत्र लिखा हुआ हैं वह त्यागने योग्य ही है। क्योंकि उसमें मांस का हवन तथा शेष मांस का खाना भी लिखा है। जो कि वेद विरुद्ध होने से त्याज्य ही है। जैसा कि—

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥२५॥
सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः।
पशुनात्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥२६॥
नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः।
नवान्नद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥२७॥ [ मनु० ४ ]

रौद्रंपशुमालभेत ॥३॥ साण्डम् ॥४॥ गौर्वा शब्दात् ॥५॥ वपांश्रपयित्वा स्थालीपाक मिश्राण्यवदानानि च रुद्राय वपामन्तरिक्षाय वसां स्थाली पाकमिश्राण्य वदानानि जुहोति ॥६॥

पारस्कर०कां० ३ कंडिका ८ ॥

पश्चाच्छामित्र स्य प्राक् शिरसं प्रत्यक् शिरसं वोदक् पानं संज्ञप्य पुरा नाभेस्तृषिणमन्तर्धाय वपामुत्खिद्य वपामादाय वपाश्रपाणीभ्यां परिगृह्यादिभरभिषिच्य शामित्रे प्रताप्याग्रणैनमग्निहृत्वा दक्षिणत आसीनः श्रपयित्वा परीत्य जुहुयात् ॥१०॥

[ आश्वलायन०१।११।१० ]

अतः स्वामी जी ने इस वेद विरुद्ध अग्निहोत्र का परित्याग कर के वेदानुकूल अग्निहोत्र करने की पद्धति हमें बतलाई। हम इस बात की बल पूर्वक घोषणा करते हैं कि जो पौराणिक पण्डित स्वामी जी के बताये अग्निहोत्र में से एक अक्षर भी वेद विरुद्ध साबित करने का साहस रखता हो वह शास्त्रार्थ के मैदान में आकर अपनी प्रतिज्ञा को सत्य साबित करके

दिखावे। वरना मिथ्या प्रतिज्ञा करने का प्रायश्चित करके अपनी आत्मा को पवित्र करें।

(२) यजुर्वेद के भाष्य में स्वामी जी ने कहीं पर भी यज्ञों का खण्डन नहीं किया अपितु स्थान स्थान पर यज्ञों के करने की आज्ञा बतलाकर उनका श्रेष्ठ फल बतलाया है। हम नमूने के तौर से कुछ स्थल नीचे उद्धृत करते हैं।

यजुर्वेद भाष्य—

(१) दयानन्द—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी सकल आयु अन्नादि पदार्थ रोगनाशक और सब सुखों का विस्तार हो उस को कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उस के बिना वायु और वृष्टि जल तथा औषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता इस लिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ॥१।२२॥

(२) मनुष्यों ने जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सब को सुखी करता है ॥४।६॥

(३) न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राज पुरुषों का यज्ञ कराना है ॥६।१॥

(४) मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे ब्रह्म परमात्मा ही की उपासना करें। क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्मअर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥१०।२४॥

(५) शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्म युक्त नीति की शिक्षा दे और पापों से पृथक करके कल्याण रूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त कर ॥ १६।२ ॥

(६) यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य २ सुगन्धित पदार्थ को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैला के सब प्राणियों को सुखी करता है ॥ २२।१५ ॥

(७) हवन और सूर्य्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्य्य रूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिये रात्री होती है ॥ २३।१२ ॥

(८) राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि दुष्टों के संग को छोड़ श्रेष्ठों का संग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें। ३०।१३।

(९) जो मनुष्य सर्व शक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ३२।१३ ॥

पौराणिक यज्ञ—

(१) महीधर—चयनं कर्तु मिच्छन् फाल्गुण कृष्ण प्रति पदि पौर्ण मासेष्टिं कृत्वा पुरुषाश्वगोऽव्यजानालभ्याजेन यागं कृत्वा पंचानां शिरांसि धृताक्तानि प्रथमचिता वुप धानार्थं किंचित्सं-स्थाप्य तेषां कबन्धान् यज्ञशेषं च मृद्युक्ते तडागादिजले प्रास्येत ॥ ११।१ ॥

(२) महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्था पयति ॥ २३।२० ॥

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्वामी जी प्रतिपादित यज्ञ वेदानुकूल तथा पौराणिक यज्ञ सर्वथा वेद विरुद्ध हैं।

क्या कोई ऐसा पौराणिक पण्डित संसार में जीता जागता

मौजूद है जो दयानन्द प्रतिपादित यज्ञों को वेद विरुद्ध तथा महीधर प्रतिपादित यज्ञों को वेदानुकूल विरुद्ध करने में समर्थ हो।

(५८०) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३ पृ० ७१ पं० २४ में लिखा है कि—

"जहां कहीं निषेध किया है उसका अभिप्राय यह है कि जिस को पढ़ने पढ़ाने से कुछ न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है" यह पता दो कि जिस को पढ़ने से विद्या न आवे वह शूद्र होता है। यह किस वेद के किस मन्त्र का सिद्धांत है। पृ० ११८ पं० ४।

उत्तर—स्वामी जी का सिद्धान्त सर्वथा वेदानुकूल है और सत्य है ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दो२ प्रकार के होते हैं। एक संभावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अर्थात् जिनके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बनने की संभावना है वे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के बालक हैं। जो माता पिता के आधीन होते हैं। कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं होते। अतः उनके सब संस्कार माता पिता के वर्णानुसार ही होते हैं। उन सब को वेद पढ़ने का अधिकार देते हुये वेद कहता कि—

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्या-
भ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥यजु० २६।२ ॥

इस वेद मन्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र अति शूद्र स्त्री पुरुष आदि समस्त मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार बतलाया गया है। अर्थात् समस्त बालक बालिकाओं को वेद का अधिकार है चाहे उन का जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो।

दूसरे व्यवस्थित ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र हैं। अर्थात् गुरुकुल में प्रविष्ट होने के पश्चात् आचार्य ने शिक्षा देकर उनके

गुण कर्म स्वभाव अनुसार व्यवस्था देकर जिस को जिस वर्ण की व्यवस्था दी हो। वह उसका व्यवस्थित वर्ण है। उसके पश्चात् राजा का कर्तव्य है कि आचार्य ने जिस को जिस वर्ण की व्यवस्था दी है उस को उसी वर्ण में रखते हुए उससे तदनुसार काम ले। ऐसे व्यवस्थित शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। क्योंकि वह वेद पढ़ने के नाक़ाबिल साबित हो चुका है। ऐसे गुण कर्म स्वभावानुसार व्यवस्थित वर्ण वालों के लिये वेद आज्ञा देते हैं कि—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बहूराजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत ॥

[ यजु० ३१। ११ ]

इस मन्त्र में व्यवस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को अपने २ वर्णानुसार कर्म करने की आज्ञा है। अतः जहां भी शूद्र को वेद पढ़ने का निषेध हो वहां पर शूद्र बालकों के लिये निषेध नहीं है अपितु ऐसे मनुष्यों के लिये निषेध है जो प्रयत्न करने पर भी वेद नहीं पढ़ सके और उन को आचार्य ने शूद्र वर्ण की व्यवस्था दे दी हो।

अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

हां सनातन धर्म के ग्रन्थों में इस विषय में वेद विरुद्ध बातें मौजूद हैं जैसे कि—

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः।
अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥१३६॥
ज्यायां समनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता।
मन्त्र सम्पूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥१३७॥[ मनु०३ ]

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया।

ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं केतिचेद्भवेत् ॥६६॥
जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥६७॥
अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्य कर्मिणम् ।
सम्प्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ ना समाविति ॥७३॥[मनु०१०]

क्या कोई सनातन धर्म्मी पंडित किसी पौराणिक माता ने पैदा किया है जो इन वेद विरुद्ध अन्याय युक्त श्लोकों को वेदानुकूल साबित करने के लिये मैदान में आवे।

(५८१) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ८४ पं० २६ में लिखा हैं कि—

"सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जो जावे आवे प्रवेश करे वह वैश्य" पैर से चलने वाले समस्त आर्य्य समाजी वैश्य और आर्य समाजी ही क्या वरन भेड़, बकरी, घोड़ा गधा, ऊंट, हाथी, भैंसे, गाय, हिरण, रोज जितने भी प्राणी पैर के बल से चलते हैं। वे सब दयानन्द जी और आर्य्य समाजियों की दृष्टि में वैश्य हैं। फिर ये चौपायों के साथ विवाह आदिक संबंध क्यों नहीं करते और वेद में इस का मूल कहां है। (पृ० ११६ पं० १२)

उत्तर—श्रीमान जी यह प्रकरण वर्णव्यवस्था का है। और वर्णव्यवस्था मनुष्यों में ही होती है पशुओं में नहीं क्योंकि—वेद का ज्ञान परमात्मा ने मनुष्यों के लिये प्रकाशित किया हैं पशुओं के लिये नहीं। जैसा कि "यथेमां" मन्त्र में "जनेभ्यः' शब्द से स्पष्ट है। और पशु सब पदार्थों में प्रवेश भी नहीं कर सकते। क्योंकि प्रवेश करने के अर्थ हैं पदार्थों के गुणों का जानना और स्वामी जी ने आगे जो इस की व्याख्या की है

वह आप ने सर्वथा छोड़ दी। देखिये इस का मूल तो है वेदवाक्य—

"ऊरू तदस्य यद्वैश्यः ॥यजु० ३१।११"

इस की सरल व्याख्या मनु ने की है जिसे स्वामी जी ने इसी प्रकरण में दिया है कि—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच।
वणिक पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेवच ॥९०॥(मनु०१)

गाय आदि पशुओं का पालन वर्धन करना विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना अग्नि होत्र आदि यज्ञों का करना वेदादि शास्त्रों का पढ़ना सब प्रकार के व्यापार करना एक सैंकड़े में चार छः, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों से अधिक व्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपया से अधिक न लेना और देना खेती करना ये वैश्य के गुण कर्म हैं।

आगे स्वामी जी इसी प्रकरण में लिखते हैं कि—

"वैश्यों के कर्म ब्रह्मचर्य्य आदि से वेदादि विद्या पढ़ विवाह करके देशों की भाषा, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उन के भाव जानना, बेचना, खरीदना द्वीप द्वीपान्तर में जाना आना। लाभार्थ काम का अरंभ करना, पशु पालन और खेती को उन्नति चतुराई से करनी करानी, धन का बढ़ाना, विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना, सत्यवादी, निष्कपटी होकर सत्यता से सब व्यवहार करना, सब वस्तुओं की रक्षा ऐसी करनी जिस से कोई नष्ट न होने पावे (सत्यार्थ०समु०४)"

स्वामी जी ने अपने लेख के अभिप्राय को कतई तौर से स्पष्ट कर दिया है। अतः जो कोई भी वैश्य के गुण कर्म स्वभाव

के अनुसार आचारण करेगा वही वैश्य बन जायेगा । अब रही बात पशुओं के साथ विवाहादि संबंध करने की सो आर्य समाज तो इस को "रेतो मूत्रं विजहाति योनिं" यजु० १९।७६ इस मन्त्र के अनुसार वेद विरुद्ध समझता है । हाँ सनातनधर्म में ये संबंध सदा होते आये हैं जैसे कि—

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नेमाकृष्य स्वयोनौ ।
स्थापयति ॥ महीधर यजु० २३।२० ॥
पतत्त्रिणा तदा सार्द्धं सुस्थितेन च चेतसा ।
अवसद्रजनी मेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥३४॥
होताध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् ॥ ३५ ॥
( बाल्मी० बाल० स० १४ )

ततः संज्ञाप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा ।
उपसंवेश्य व्राजं स्ततस्तां द्रुपदात्मजाम् ।
कृत्वाभिस्ति सुभी राजन् यथाविधि मनस्विनीम् ॥२॥
( महा० अश्वमेध० अ० ८९ )

विवस्वान् भयभीतश्चत्यक्त्वा युद्धं पराभवत् ॥३६॥
गत्वा ददर्श भगवान् संज्ञा संबोध कारिणीम् ।
कामातुरो हयो भूत्वा तत्र रेमे तया सह ॥३८॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८)

अहं हि किन्दमो नाम तपसा भावितो मुनिः ।
व्यपत्रयन्मनुष्याणां मृग्यां मैथुनमाचरम् ॥२८॥
( महा० आदि० अ० ११८ )

क्या कोई जीता जागता पौराणिक पंडित पृथिवी पर मौजूद है जो इस प्रकार के पशुओं से पौराणिक संबंध को वेदानुकूल सिद्ध कर सके ।

(५८२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ४ पृ० ९० पं० २५ में लिखा है कि—

' पाणि ग्रहण पूर्वक विवाह की विधि क पूरा करके एकांत सेवन करें। पुरुष वीर्य स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें" सब रिश्तेदारों की मौजूदगी में यह काम लज्जा जनक है । क्या किसी आर्य समाजी में ईश्वर ने यह शक्ति दी है। कि स्वामी दयानन्द के ऊपर लिखे गपोड़े को वैदिक सिद्ध करे। पृ० १२० पं० ८ ।

उत्तर—विवाह की विधि से पहिले स्त्री पुरुष का पति पत्नी सम्बन्ध नहीं होता अतः विवाह से पूर्व गर्भाधान करना व्यभिचार कहाता है। किन्तु विवाह की विधि हो जाने के पश्चात् पति पत्नी का गर्भाधान करना कोई पाप का काम नहीं है। रिश्तेदारों की मौजूदगी की बात भी खूब कही। क्या गर्भाधान कोई ऐसा काम है जो सभा के मध्य में बैठ कर किया जाता है। जब स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा है कि "एकान्त सेवन करें" तो फिर रिश्तेदारों की मौजूदगी कहां रही। और जब पत्नी पति के कुल में आ जाती है तो क्या उस समय पति के माता पिता भाई बहिन आदि रिश्तेदार घर में नहीं होते। तो क्या गर्भाधान तब करना चाहिये जब रिश्तेदार संसार से कूच कर जावें। आखिर आप को यह शंका क्या सूझी। और यह भी बतलाने की कृपा करें की गर्भाधान के बिना विवाह का प्रयोजन भी क्या है। देखिये वेद भगवान् क्या कहते हैं कि—

इहैवस्तं मा वियौष्टं विश्वमायुव्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२२॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।

मयापत्या प्रजावतिसंजीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥

[ अथर्व० १४।१ ]

देवाग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनुभिः । सूर्येव चारि विश्व रूपा महित्वा प्रजावती पत्या सम्भवेह ॥३२॥
तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति । यान ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेमशेपः॥३८॥ [अथ०१४।२]

इन समस्त विवाह विधायक मन्त्रों में विवाह का प्रयोजन गर्भाधान और सन्तानोत्पत्ति ही वर्णन किया गया है और विवाह के पश्चात् ही गर्भाधान की आज्ञा और विधि भी वर्णन की गई है। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

और आपके ग्रन्थों में इसकी अनेक मिसालें मौजूद हैं। जैसे कि—

गर्भाधान से विवाह—

इच्छयाऽन्योऽन्य संयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गांधर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः काम सम्भवः ॥३२॥[मनु०३]

विवाह से पूर्व गर्भाधान—

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाता ज्ञातापि वा ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१७३॥ [मनु०९]

शकुन्तला का पिता के घर गर्भाधान—

जग्राह विधिवत् पाणावुवास च तया सह ।
विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः ॥२०॥

[ महा० आदि० अ० ७३ ]

द्रौपदी का विवाह पश्चात् पिता के घर में गर्भाधान—

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजावरक्षियस्तेजगृहुस्तदा करम् ।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणे महारथाःकौरववंश वर्धनाः॥१३॥

इदं च तत्राद्भुत रूपमुत्तमम् जगाद देवर्षिरतीव मानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमाबभूव कन्यैव गते गतेऽहनि॥१४॥
[ महा० आदि० अ० १९४ ]

द्रौपदी का पांच दिन में पांचों पांण्डवों से विवाह हुआ और द्रौपदी हमेशा कन्या ही बन जाती थी । यदि प्रत्येक दिन में गर्भाधान द्वारा उसका कन्यात्व नष्ट होता था। तभी तो पुनः कन्या होना लिखा है।

पार्वती का विवात् पश्चातू पिता के घर गर्भाधान—
मैनाज्ञयास्त्रियः साध्व्य शिशवंस प्रार्थ्य भक्तितः ।
गेहे निवासयामासु वांसाख्ये परमोत्सवे ॥१४॥
तत्रातिरमणीये च रत्न पर्यंक उत्तमे ।
अशयिष्टमुदा युक्तो लीलया परमेश्वरः ॥१५॥
[ शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ५२ ]

चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थी कर्म शुद्धितः ।
बभूवविधिवद्येन विना खंडित एव सः ॥२१॥
[ शिव० रु० पार्वती० अ०५३ ]

इन प्रमाणों से साबित है कि विवाह के पश्चात् कभी कहीं पर भी गर्भाधान पाप जनक नहीं है। और पहिले ऐसा होता आया है। हां विवाह के बिना ही गर्भाधान अवश्य व्यभिचार है जैसे कि—

विना विवाह सत्यवती का गर्भाधान—
ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभाव गुण भूषिता ।
जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुतकर्मणा ॥ ७७ ॥
एवं द्वैपायणो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ॥ ८२ ॥
( महा० आदि० अ० ६३)

विना विवाह कुन्ती का गर्भाधान—

प्रकाश कर्ता तपनः संबभूव तया सह ।
तप्र धीरः समभवत् सर्व शस्त्रभृतां वरः ॥ १८ ॥
अजायत सुतः कर्णः सर्व लोकेषुविश्रुतः ॥ १६ ॥

(महा० आदि० अ० १११)

अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल तथा विना विवाह के पौराणिक कन्याधान सर्वथा वेद विरुद्ध हैं । क्या संसार में कोई लिंग पन्थी पौराणिक पोप मौजूद है जो मैदान में आकर इस कन्याधान को वेदानुकूल सिद्ध करने का साहस कर सके ।

(५८३) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६७ में लिखा है कि—

"जो सांगोपांग चार वेदों के जानने वाले हों उन का नाम ब्रह्मा" क्या इस प्रकार की तहरीर किसी ग्रन्थ में लिखी है । किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा । पृ० १२१ पं० १ ।

उत्तर—लिखा तो है किंतु यदि किसी के देखने की आंखें ही न हों तो इस का क्या उपाय किया जाये । देखिये—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शकरीषु ।
ब्रह्मा त्वोवदति जात विद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः ॥

( ऋ० १०।७१। ११ )

ब्रह्मै को जाते जाते विद्यां वदति । ब्रह्मा सर्व विद्यः सर्व वेदि तु महँति । ब्रह्मा पारवृहळः श्रुततो ब्रह्म परिवृहळं सर्वतः॥

(निरुक्त अ० १ खं ८ ॥)

यज्ञ में ऋत्विज् नियत करने में ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, उद्गाता इन का लक्षण करते हुये निरुक्त ने साफ बता दिया कि ब्रह्मा उसको कहते हैं जो संपूर्ण विद्या का जानने वाला हो

यही अभिप्राय उपरोक्त मंत्र का है अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। जैसा कि—

ब्रह्मा विष्णु की लड़ाई—

अहमेववरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः परस्परं हन्तु कामौ च
क्रतुः समरोद्यमम् ॥६॥ ( शिव० विद्येश्वर० अ० ६ )
अथाह देवः कितवं विधं विगतकंधरम्।
ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकांक्षी शठेशत्वं समास्थितः ॥९॥
( शिव० विद्येश्वर० अ० ८ )
अहो ब्रह्मंस्तव कथं काम भावः समुद्गतः
दृष्ट्वा च तनयां नैव योग्यं वेदानुसारिणाम् ॥३९॥
( शिव० रुद्र० सती० अ० ३ )

साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत्।
अभवत्यत्करेतास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥४५॥
( शिव० रुद्र० सती० अ० १९ )
रेतसा क्षरता तेन लज्जितोऽहं पितामहः।
मुने व्यमर्दं तच्छिश्नं चरणाभ्यांहि गोपयन् ॥८॥
( शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ४९ )

समायां तंचमां दृष्ट्वा स गणेशो महाबलो।
क्रोधं कृत्वा समभ्येत्यश्मश्रूण्यवाकिरत् ॥३१॥
क्षम्यतां क्षम्यतां देव न युद्धार्थं समागतः।
ब्राह्मणोऽहमनुग्राह्यः शांति कर्तानुपद्रवः ॥३२॥
गृहीतयरिघं दृष्ट्वा तं गणेशं महाबलम्।
पलायनपरो यात स्त्वहं द्रुततरं तदा ॥३४॥

( शिव० रुद्र० कुमार० अ० १५ )

कहिये महाराज ! आपके यही ब्रह्मा हैं जिनकी लड़ाका, कितव, शठ, पुत्रो गामी, कामीं, पापी, भीरु आदि शब्दों से स्तुति की गई है । क्या किसी पौराणिक रमणी ने कोई ऐसा पौराणिक वीर पंडित पैदा किया है जा उक्त गुण सम्पन्न पुरुष का ब्रह्मा होना वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ हो ।

(५८४) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६१६ स्वमन्तव्या मन्तव्य संख्या २ में ब्रह्मा को ऋषि लिखा हैं । क्या सच ही ब्रह्मा ऋषि था । यदि ऋषि था तो ब्रह्मा के बाप का क्या नाम था । और ब्रह्मा के कितने भाई थे एवं इस ब्रह्मा के कितने लड़के हुये किंतु आर्य समाज में आज कल कोई पवित्र माता ऐसी पैदा नहीं हुई कि जिस की कोख से निकला हुआ लड़का दयानन्द के स्वार्थ से लिखे हुये लेखों को वेदानुकूल सिद्ध कर देता । पृ०१२१ पं० ११ ॥

उत्तर—हम इस से पूर्व के प्रश्न में सिद्ध कर चुके हैं कि प्रत्येक यज्ञ में एक ऋत्विज को ब्रह्मा बनाया जाता है । जैसा कि राजा युधिष्ठिर के राज सूय यज्ञ में व्यास जी को ब्रह्मा नियत किया गया था । इस पद्धति से तो ब्रह्मा एक पदवी है । जिस को कि प्रत्येक मनुष्य चारों वेदों को पढ़कर योग्यतानुसार प्राप्त करके ब्रह्मा बन सकता है । किंतु ब्रह्मा नाम का एक ऋषि भी हुआ है । जोकि सृष्टि के आरंभ में था जिस ने कि अग्नि, वायु, आदित्य अंगीरा चार ऋषियों से वेदों का अध्ययन किया जैसा कि मनुस्मृति में लिखा है कि—

अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थं मृग्यजुः साम लक्षणम् ॥२३॥(मनु०१)

श्वेता श्वेतर में भी लिखा है कि परमात्मा ने अग्नि आदि के द्वारा ब्रह्मा को वेद प्राप्त कराये जैसा कि—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं । योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै॥१८॥
( श्वेताश्वेतर अ० ६ )

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा के ऋषि होने का एक बड़ा सबूत यह है कि—

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का ऋषि "प्रमेष्ठी प्रजापति" है । यज० अ० ११ में १—११ मंत्रों का ऋषि "प्रजापति" है। यज० अ० १५ में १—५६ मन्त्रों का ऋषि "प्रमेष्ठी" है। ऋग्वेद मंडल ३ सूक्त ३८ का ऋषि "प्रजापति" है। ऋ० मं० सू० १२६ का ऋषि "प्रजापति प्रमेष्ठी" है। इत्यादि २ अनेक मन्त्रों का ऋषि "प्रजापति" और "प्रमेष्ठी" लिखा हुआ है और दोनों ही नाम ब्रह्मा के हैं जैसा कि—

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः ॥१६॥
स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः ॥१७॥
[ अमर कोष १]

इससे साफ साबित है कि जहाँ पर ब्रह्मा एक उपाधि है जिसे प्रत्येक मनुष्य प्राप्त करके ब्रह्मा बन सकता है वहां ब्रह्म नाम के एक ऋषि भी सृष्टि के आरम्भ में अवश्य हुए हैं । जो कि अमैथुनी सृष्टि में हुए हैं और उनका नसली तौर से कोई माता पिता न था और वे बाल ब्रह्मचारी रहे अतः उनकी नसली तौर से कोई सन्तान न थी।

अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है।

हां पौराणिक ब्रह्मा अवश्य ही ऋषि कहलाने के क़ाबिल न थे जैसा कि—

ब्रह्मा का झूट—

स्तंभाग्रमेतत्समुदीक्षितं हरे तत्रैव साक्षी ननु कतकं त्विदम् ।
ततोऽवदत्तत्र हि केतकं मृषा तथेति तद्धातृवचस्तदंतिके ।२८।
[ शिव० विद्येश्वर० अ० ७ ]

ब्रह्मा की स्तुति—

महामूढमतिश्चाद्य संजातोऽसि कथं विधे ॥३०॥
जडतां त्यज मन्दात्मन् कुरुत्वं नेदृशीं मतिम् ॥३१॥
रुद्रं जानासि दुर्बुद्धे स्वसुतं परमेश्वरम् ॥३२॥
ईदृशं त्यज कुज्ञानं शरणं व्रज तस्य वै ॥४१॥
[ शिव० विद्येश्वर० अ० १०]

मदनाविष्ट चेताश्च भूत्वांगानि व्यलोकयम् ॥१८॥
[ शिव० रुद्र० सती० अ० १६ ]

मदनेन समाविष्टोऽतीव क्षुभितमानसः ॥६॥
[ शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ४६ ]

दिव्यांगं सुन्दरं तस्या दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः ॥२॥
[ भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १३ ]

ब्रह्मा काम ब्रह्मलोपः स्थितस्तस्या वंशगतः ॥७१॥
[ भवि० प्रति० खं० ४ अ० १७]

क्या कोई संसार में जीता जागता ऐसा पौराणिक पंडित है जो उपरोक्तगुण युक्त पुरुष को ब्रह्मा वा ऋषि कहाने के योग्य सिद्ध कर सके।

(५८५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३३५ में लिखा है कि—

"जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अध्यपाद्य अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राण हरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं"। आर्य समाजी यह भी पता लगावें कि यह गुरु भक्ति कौन वेद मन्त्र का अनुवाद है। पृ० १२१ पं० २२।

उत्तर—स्वामी जी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है। देखिए वेद ने राजा को यम नाम से वर्णन किया है जैसे कि—

यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ ऋ० मं० १० सू०१४।१॥

यम शब्द के अर्थ निरुक्त ने इस प्रकार से किये हैं कि—

यमः ॥१२॥

यमोयच्छति इति सतः ॥२॥१६॥ (निरु० अ० १०)

इसकी व्याख्या मनु ने इस प्रकार की है कि—

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्॥३०७॥मनु॥

अतः राजा के लिये आज्ञा है कि—

पिताचार्यःसुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्तियः स्वधर्मेनतिष्ठति॥३३५॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिन मायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥३५०॥ (मनु०८)

रामायण में भी लिखा है कि—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥१३॥
(वाल्मी० अयो० स० २१)

इसी सिद्धांतानुसार परशुराम ने अपनी माता रेणुका को मारा तथा पांडवों ने द्रोणाचार्य भीष्म आदि को युद्ध में मारा। हां पौराणिकों की गुरुभक्ति वेद विरुद्ध है जैसे कि—

गुरुतल्पं हिगुर्वर्थं न दूषयति मानवम्।
उद्दालकः श्वेतकेतुं जनयामास शिष्यतः ॥२२॥
(महा० शांति० अ० ३४)

चन्द्रश्चमोहितः शंभोर्मायया कामसंकुलः।

गुरुपत्नीं जहाराथयुतस्तेनैव चोद्धृतः ॥२२॥

( शिव० उमा० अ० ४ )

योगेनाथ प्रवेशोहि गुरुपत्न्याः कलेवरे ।
असक्तः पद्मपत्रस्थो जलविंदुर्यथाचलः ॥४६॥

( महा० अनु० अ० ४० )

लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदने न च ।
विधाय न मयाचोक्तं सत्यमेतद्गुरोस्तथा ॥३१॥

( महा० अनु० अ० ४२ )

क्या किसी ऐसे पौराणिक पण्डित ने भूमण्डल पर जन्म लिया है जो इस प्रकार की गुरुभक्ति को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिये मैदान में आवे ।

(५८६) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० २७२ में मनुष्य मांस मनुष्य खाले तो संसार की कोई हानि नहीं। यह लेख किस वेद के किस मंत्र के आधार पर लिखा गया है। पृ० ११२ पं० २५

उत्तर—यहाँ पर न मनुष्य मांस के बारे में प्रश्न किया गया है। और न ही उत्तर देने में मुख्यतया मनुष्य मांस का प्रयोजन है। अपितु मृत्तक प्राणियों के मांस विषय का प्रश्न है। जिस के उत्तर में स्वामी जी ने तीन उत्तर तो विधि परक दिये हैं "(१)चाहे फैंकदें (२)चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें (३) वा जला देवें" चौथा उत्तर निषेध परक है कि "अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किंतु उस मनुष्य का स्वाभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी, विश्वास घात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्म्म आदि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना

भक्ष्य है" इस सारे लेख को संपूर्णतया पढ़ने से पता लगता है कि स्वामी जी मृत्तक प्राणियों के मांस खाने को भी अभक्ष्य बतलाकर निषेध करते हैं। आपने अपनी किताब में "वा जला देवें" पाठ को तथा हिंसादि से प्राप्त पदार्थ को अभक्ष्य बताने वाले पाठ को चुरा कर अपनी आदत को पूरा किया है। स्वामी जी के लेख का सारांश यह है कि मांस खाना अभक्ष्य है। और स्वामी जी का यह सिद्धान्त वेदानुकूल है जैसा कि—

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघन्ये मनोधि वत्से नि हन्यताम् ॥ १ ॥
(अथर्व ६।७०)

इस मंत्र में मांस शराब तथा व्यभिचार को पाप वर्णन किया गया है। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा वेद के अनुकूल है। हाँ पौराणिक ग्रन्थों में अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण का विधान मौजूद है जैसे कि—

अंड कोष भक्ष्य—

आस्वादितं न चान्यैस्तु भक्ष्यार्थे च ददाम्यहम्।
अधोभागे च मेनाभेर्वृषणौ फल संनिभौ ॥ १२३ ॥
भक्ष्यध्वंहि सहिता लम्बौ मे वृषणावुभौ।
अनेनचापि भोज्येन परा तृप्तिर्भविष्यति ॥ १२४ ॥
(पद्म० सृष्टि० अ० २६)

गो मांस—

राज्ञो महान से पूर्वं रन्ति देवस्य वै द्विज।
द्वे सहस्रे तुबध्ये ते पशूनामन्वहं तदा ॥ ८ ॥
अहन्यहनि बध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा।
समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः ॥ ९ ॥
(महा० व०अ० २०७)

मनुष्य मांस

सौदासेन तदा राज्ञा मानुषा भक्षिता द्विज ॥ १६ ॥
( महा० वन० अ० २०७ )

सांकृते रन्ति देवस्य यां रात्रिमवसन् गृहे ।
आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि चविंशतिः ॥ १२७ ॥
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः।
सूपंभूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्यमांसंयथा पुरा ॥ १२८ ॥
( महा० शान्ति० अ० २६ )

दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विगभ्यौ दत्तः पुत्रः पुराकिल ॥२६ ॥
अस्मिन् काले तु सोऽल्पायु र्दिष्टान्तमगमत् प्रभुः ।
ते तं क्षुधाभिः संतप्ताः परिवाय्योंपतस्थिरे ॥ २७ ॥
याज्यात्मजमथो दृष्ट्वागतासुमृषिसत्तमाः ।
अपचन्त तदा स्थाल्यां क्षुधार्ताः किल भारत ॥ २८ ॥
कुत्ते का मांस— ( महा० अनु० अ० ६३ )

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजा घनीम् ।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥१० ॥ मनु०१० )

क्या किसी पौराणिक माता ने कोई वीर पौराणिक पुत्र भूमंडल में पैदा किया है जो मनुष्य के अंडकोष मनुष्य मांस और गौ मांस तथा कुत्ते के मांस को खाना वेदानुकूल सिद्ध करने के लिये मैदान में आये ।

(५८७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास में स्वामी दयानन्द जो जल पृथिवी राहु केतु शनिश्चर चन्द्रमा प्रभृति ईश्वर के फरज़ी नाम लिखे हैं । निघण्टु निरुक्त समस्त कोश एवं समस्त संस्कृत के साहित्य में ईसे बे बुनियाद ईश्वर के नाम कहीं नहीं आते । स्वामीजीने फर्ज़ी नाम लिख कर आर्य्य

समाजियों को धोका दिया हैं। यह स्वामी जी ने पाप कमाया है। पृ० १२३ पं० ६।

उत्तर—स्वामी जी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है क्यों कि ईश्वर का निज नाम तो ओम् है जैसा कि—

ओ३म् खं ब्रह्म ॥ यजु० ४०।१७॥

ओ३म् क्रतोस्मर ॥यजु० ४०।१५॥

और गौण रूप से परमात्मा के अनेक नाम हैं। जैसे कि

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद्विप्राबहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

[ ऋ० १।१६४।४६ ]

इस सिद्धान्त की ताईद मनु जी महाराज भी करते हैं।

आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥१०॥ [मनु० १]
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्य पापापेक्षिता मुनिः ॥६१॥
यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदिस्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मागंगा माकुरून् गमः ॥६२॥ ( मनु०८ )
एतमेदे वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमे के परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १२३ ॥
( मनु० १२ )

महाभारत भी इस सिद्धांत का अनुमोदन करता है—

ऋग्वेदे यजुर्वेदे तथैवाथर्व सामसु।
पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्योतिषेऽर्जुन ॥८॥
सांख्ये च योग शास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानिमहर्षि भिः ॥६॥

गौणानितत्र नामानि कर्म जानि च कानिचित् ।
निरुक्तं कर्म जानां त्वं शृणुष्व प्रयतोऽनघ ॥१०॥
(महा० शांति० अ० ३४१)

इस सिद्धांतानुसार परमेश्वर के अनेक नाम हैं—

पृथिवी—त्वमन्नस्त्वं यमस्त्रवं पृथिवीत्वं ।
विश्वं खमथाच्युतः ॥ मैत्र्युपनिषद् ५।१ ॥

केतु—केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ (ऋ०३।५२।२ )

चन्द्रमा—तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायु स्तदुचंद्रमाः॥य ०३२।१॥

शनैश्चर—इन्द्रोविवस्वान् दीक्षाशुः शुचिः सौरि शनैश्चरः ॥३॥
( मूर्य्य शत नाम )

आपः—स आपः स प्रजापतिः ( यजु० ३२।१)

जल—सर्वं खल्विदं ब्रह्मतज्जलानिति शान्त उपासीत ॥
( छांदोग्य० ३।१४।१ )

राहु—राहुं सोमं विद्धि च शक्रमेनम् (महा० अनु० १५८।१३)

इन प्रमाणों से सावित होता है कि ये संपूर्ण नाम उपासना प्रकरण में ईश्वर के ही माने जावेंगे ।

जब गोपाल सहस्र नाम तथा विष्णु सहस्रनाम में गोपाल और विष्णु के सहस्रों नाम हो सकते हैं । तो परमात्मा के क्यों नहीं हो सकते ।

हां आप बतलावें कि निम्न नाम ईश्वर के कैसे हो सकते हैं जैसे कि—

कामदेवः कामपालः कामीकांतः कृतागमः ।
अनिर्दिश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः॥८३॥
( महा० अनु० अ० १४९)

क्या कोई जीता जागता पौराणिक पंडित पृथिवी पर मौजूद

है जो कामदेव, कामपाल, कामी नामों को वेदानुकूल ईश्वर के नाम सिद्ध कर सके।

(५८८) प्रश्न—जैसी व्युत्पत्यां स्वामी जी ने लिखी हैं ऐसी व्युत्पत्यों से गृहम्, तो कायस्थः दयानंदः, सत्यार्थप्रकाशः, आर्यसमाजः, इत्यादि सब नाम ईश्वर के सिद्ध हो सकते हैं। इससे साबित हुआ कि संसार में न कोई दयानंद हुआ है और न सत्यार्थप्रकाश नाम की कोई पुस्तक है और न ही आर्यसमाज नाम की कोई सोसाइटी है। अपितु ये सब नाम ईश्वर के ही हैं। पृ० १२३ पं० १३।

उत्तर—किनहीं शब्दों से परमेश्वर अर्थ ग्रहण करने में प्रकरण नियामक है। वैसे ही प्रत्येक शब्द से ईश्वर अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता। जैसे कि स्वामी दयानंद जी महाराज ने लिखा है कि—

जहां २ स्तुति प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध सनातन और सृष्टि कर्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है। और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततोविराड जायत विराजोऽधि पुरुषः ॥५॥
श्रोत्रा द्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
तेन देवा अयजन्त ॥९॥ पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

( यजु० ३१)

तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधभ्योऽन्नम्। अन्न द्रेतः। रेतसः पुरुषः। सवा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ तै० उ० ब्रह्मावल्ली अ० १॥

ऐसे प्रमाणों में विराट, पुरुष, देव, आकाश, अग्नि जल भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां२परमेश्वर ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों करसे पृथक है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्वयहार हैं। इसी से यहां विराट आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न हो के संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है, किंतु जहां २ इच्छा, द्वेष प्रयत्न, सुख, दुख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहां वहां जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता। इस से विराट आदि नाम और जन्मादि विशेषणां से जगत् के जड और जीव आदि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है" [ सत्या० समु० १ ]

अब आप बतलावें कि गृह, कायस्थ, दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाज इत्यादि नाम किन २ वेद तथा शास्त्रों में कहां २ पर आते हैं और प्रकरण अनुसार इनका ईश्वर अर्थ किस प्रकार से होता है। यदि आप कोई वेद मन्त्र वा प्रकरण तथा ईश्वर अर्थ लेने में कोई हेतु नहीं बतला सकते तो आपकी कल्पना मिथ्या है। क्योंकि किसी शब्द के केवल व्युत्पत्ति मे ईश्वर अथ नहीं लिये जा सकते जब तक कि उसमें प्रमाण और प्रकरण अनुकूलता से सहायक न हों।

हाँ आपके मतानुसार गृह, कायस्थ, दयानद, सत्यार्थ प्रकाश और आर्य्य समाज नाम ही नहीं अपितु पदार्थ भी ईश्वर माने जा सकते हैं क्योंकि आपके मत में संसार के समस्त रूप ब्रह्म के ही रूप हैं और ईश्वर इन सब का अभिन्न निमित्तो पादान कारण है।

(५८६) प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ने दशम समुल्लास में नीच जातियों के भोजन का विकट निषेध किया है। पृ० च पं० २४।

उत्तर—आर्य्य समाज "सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः" ऋ० १०। ५।६ वेद मन्त्र के अनुसार किसी को जन्म से नीच नहीं मानता अपितु जो मनुष्य वेद की सप्त मर्यादाओं को तोड़ कर मद्य पान तथा मांसाहार आदि नीच कर्म करता है वह नीच है और उसी के भोजन का विकट निषेध किया है जैसा कि "ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाँडाल आदि नीच भंगी चमार आदि का न खाना" ( सत्यार्थ समु० १० ) इसका अभिप्राय यह है कि चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के हाथ का तो खाना चाहिये किंतु जो चारों वर्णों से भ्रष्ट भंगी और चमारों में से नीच कर्म के करने वाले चाँडाल अर्थात् मद्यमाँसादि के सेवन करने वाले हैं उन के हाथ का न खाना चाहिये। वैदिक सिद्धाँतानुसार चमार वैश्य तथा भंगी शूद्र हैं यदि वह मद्यमाँस के आहार को न करते हों तथा शुद्धता से भोजन बनायें तो उनके हाथ का खाने में कोई दोष नहीं है। स्वामी जी के इस सारे लेख का प्रयोजन यही है कि मद्यमांसाहारी नीच चंडाल के हाथ का न खाना चाहिये। सदाचार युक्त चारों वर्णों के हाथ का खा लेना चाहिये जैसा कि लिखा भी है कि—

विप्राणां क्षत्रियाणां च वैश्यानां च सुयोधन।
आधारः प्रथमोधर्मोह्यनाचार स्त्वधर्मतः ॥२८॥
अन्येचैवतु ये शूद्राः सत्य शौचपरायणाः।
तेषांगृहेषु भोक्तव्यं बिदुरोऽपिबहुश्रुतः ॥ २९ ॥
( भारत सार अ० ५५ )

भीलनी का जल पीना—

पाद्यमाचमनीयंच सर्वं प्रादाद्यथा विधि ।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्म्म संस्थिताम् ॥७॥
( वाल्मी० अरण्य० स० ७४)

भीलनी के झूटे बेर राम ने खाये—

तिंदुकानि च मूलानि फलान्यन्यानितु ।
रामार्थं रक्षितान्यासन् दन्तै श्छित्वापरीक्ष्य च ॥५६॥
(भक्तमाल संस्कृत सर्ग ५)

ब्राह्मण ने व्याध का जल पीना—

प्रविश्य च गृहं रम्यमासनेनाभिपूजितः ।
पाद्यमाचमनीयं च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ॥१८॥
( महा० वन० अ० २०६ )

यह सिद्धांत वेदानुकूल हैं जैसा कि—

व्रीहीमत्तं यवम त्तमथो माषमथो तिलम् ।
एषवां भागो निहितो रत्नधेपाय ।
दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ अथर्व० ६।१४०।२ ॥

अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। हां पुराणों में वेद विरुद्ध भोजन लिखे मौजूद हैं जैसा कि—

चाँडाल के घर से कुत्ते का मांस—

स ददर्श श्वमांसस्य कुतंत्रीं विततां मुनिः ।
चांडालस्य गृहे राजन् सद्यः शस्त्रहतस्ये वै ॥३७॥
संचिन्त यामासतदा स्तैन्यं कार्य्यमितो मया ॥३८॥
विश्वामित्रो जहारैव कृत बुद्धिःश्वजाघनीम् ॥६० ॥
(महा० शान्ति० अ० १४१)

क्या कोई पौराणिक पण्डित चांडाल के घर से कुत्ते का मांस चुरा कर खाना वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है ।

(५६०) प्रश्न—स्वामीजी भारत के इतिहास पुराण को भी वैसे ही मानते हैं। जैसे कि सनातन धर्म्मी प्रमाण में लेते हैं। पृ० २५।

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा मिथ्या है क्योंकि स्वामी जी इतिहास पुराण को वहां तक ही प्रमाण मानते हैं जहाँ तक कि वह वेदानुकूल हो। वेद विरुद्ध इतिहास पुराण को स्वामी जी प्रमाण नहीं मानते।

(५६१) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि—

"जैसा कि पांडु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने किया और जैसा व्यास जी ने चित्रांगद और विचित्र वीर्य के मर जाने पश्चात उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अंबिका में धृतराष्ट्र और अंबालिका में पांडु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण हैं" इस से सिद्ध है कि स्वामी जी इतिहास को प्रमाण मानते हैं। पृ० २६।

उत्तर—इस लेख में महाभारत ने नियोग द्वारा स्त्री को दूसरे पति का अधिकार स्वीकार किया है इसी प्रकार से इस सिद्धान्त को भी माना है जैसा कि—

पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम्।
आनन्तर्यात्तथा क्षत्रं पृथिवी कुरुते पतिम् ॥१२॥

(महा० शांति० अ० ७२)

इत्यादि महाभारत के लेख वेद के अनुकूल है क्यों कि वेद कहता है कि—

इयं नारी पति लोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्यथ प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयंति तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥

॥ अथर्व० १८।३।१ ॥

चूंकि महाभारत का यह लेख वेदानुकूल है अतः स्वामी जी को प्रमाण है। किन्तु महाभारत के जो लेख वेद के विरुद्ध हैं जैसे कि—

ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते ।
नातिवर्त्तेय इत्येवं धर्मंधर्मविदोविदुः ॥२५॥
शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातंत्र्यं स्त्री किलार्हति ।
धर्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ॥२६॥

( महा० आदि० अ० १२२ )

यह स्वामी जी के प्रमाण नहीं हैं अतःस्वामी जी वेदानुकूल इतिहास का प्रमाण तथा वेद विरुद्ध इतिहास का अप्रमाण करते हैं ।

(५६२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ८२ में लिखा है कि—

महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे" इस से साबित है कि स्वामी जी ने इतिहास को प्रमाण माना है। समाजी किस मुँह से कह सकते हैं कि इतिहास पुराण हम को प्रमाण नहीं। पृ० २३।

उत्तर—वर्ण व्यवस्था का कर्मानुसार होना इस लेख में वर्णन किया गया है यह और इसी प्रकार के अन्य लेख जैसे कि

सुरमत्स्यो मधु मांसमासवं कृशरौदनम् ।
धूर्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतत् नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥६॥

[ महाभारत शांति० अ० २६४]

इत्यादि प्रकरण वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं जैसे—

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् इत्यादि [ यजु० ३१.११ ]
कोवोऽध्वरं तु विजातरम् इत्यादि [ ऋ० सू० ६३ मं ६ ]

जो प्रकरण महाभारत में वेद विरुद्ध हैं जैसे कि—

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप्यं निसर्गाद् ब्राह्मणः शुभे ।

क्षत्रियो वैश्य शूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥६॥

[ महा० अनु० अ० १४३ ]

स्वयं यूपानुपादाय यजन्ते स्वाप्तदक्षिणैः ॥३२॥

यस्तथा भावितात्मा स्यात् सगामालब्धुमर्हति ॥३३॥

[ महा० शांति० अ० २६२ ]

ये प्रकरण स्वामी जीको प्रमाण नहीं हैं।

इससे साबित है कि स्वामी जी वेदानुकूल इतिहास को प्रमाण तथा वेद विरुद्ध इतिहास को अप्रमाण मानते हैं।

---

## कडवी सचाई

( ५९३ ) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकश पृ० ७० में स्वामी जी लिखते हैं कि—

"तुम कूआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है" ऐसे मीठे शब्द दयानन्द को छोड़ कर संसार में कौन लिख सकता है। पृ० २८ पं०२५।

उत्तर—बेशक आपका फरमाना ठीक है क्योंकि संसार में हितकारी कड़वे सत्य के कहने वाले कोई कोई महात्मा ही होते हैं वरना चापलूसी की बातें करने तथा झूटी खुशामद करने वाले टोडा संसार में भरे पड़े हैं। जैसा कि महाभारत में लिखा भी है कि—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥१५॥

[ महा० उद्योग०अ० ३६ ]

स्वामीजी का यह कहना ठीक है कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाता-मिति श्रुतेः" यह वाक्य कपोलकल्पित हैं किसी वेद की श्रुति नहीं है। आपमें हिम्मत हो तो किसी वेद में से निकाल कर

दिखावें। जो लोग यों पेट कूटते हैं कि "हाय यदि स्त्री और शूद्र पढ़ गये तो हम क्या करेंगे" ऐसे शिक्षा विरोधियों का संसार से नाश होना ही संसार के लिये हितकारी है। इसी अभिप्राय को दिल में रख कर स्वामी जी ने कहा है कि 'तुम कूआ में पड़ो" अर्थात् तुम नाश हो जाओ ताकि कोई तुम्हारी शिक्षा मान कर स्त्रियों का निरादर करके स्वयं नाश न हो जाये जैसा कि मनु ने भी लिखा है कि—

जामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रति पूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समंततः ॥५८॥[ मनु० ३]

इस तहरीर का नाम गाली नहीं है। यदि आपने गालियां देखनी हों तो पुराण में देखें जैसे कि—

स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७॥
( भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० १८ )

मैं आशा करता हूं कि आप को गारी और हितकारी में तमीज करना आसान हो जावेगा।

(५६४) प्रश्न—वैष्णवों का खण्डन करते समय सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३१२ पं० ७ में लिखा है कि "प्रथम इनका मूल पुरुष शठ कोप हुआ कि जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्त माल ग्रन्थ जो नाभा डोम ने बनाया है ; उनमें लिखा हैं "विक्रीय शूर्पं विचचार योगी" इत्यादि वचन चक्रांकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं। शठ कोप योगी सूप को बना बेचकर विचरता था। अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था" किसी भी वैष्णव ग्रन्थ तथा भक्त माल में "विक्रीय सूर्पं" यह नहीं लिखा। क्या कोई आर्य्य समाजी शठ कोप को कंजर सिद्ध करने की शक्ति रखता है। पृ० २८ पं० २६।

उत्तर—प्रथम तो "शठ कोप" अर्थात् "धूर्तों के सरदार" यह नाम ही इस बात को प्रकट कर रहा है कि उनका जन्म अतिशूद्र वर्ण में हुआ। जिस में कंजर भी शामिल हैं। दूसरे स्वामी जी ने यह पाठ चक्रांकितों के हस्त लिखित ग्रंथों और नाभा डोम की भक्तमाल से उद्धृत किया है। जो कि इस समय दोनों ही दुर्लभ हैं।

तीसरे यह बात किसी सिद्धांत की पोषक नहीं है अपितु ऐतिहासिक खोज की बात है। यदि स्वामी जी की यह खोज आपके विचार में ठीक नहीं है तो आपको किसी ग्रन्थ का प्रमाण देकर साबित करना चाहिये था कि उन का जन्म किस "ब्राह्मण खानदान में हुआ था। किंतु आप ने ऐसा नहीं किया। अतः स्वामी जी का लेख ही ठीक मालूम होता है।

चौथे स्वामी जी ने यह बात यह सिद्ध करने के लिये लिखी है कि ब्राह्मणों ने उसका तिरस्कार किया तब यह मत उस ने चलाया"। इस का अभिप्राय यह है कि जन्म के कारण किसी का तिरस्कार करने से इस प्रकार की हानि होती है। चोंकि स्वामी जी कर्मों से वर्णव्यवस्था मानते हैं। अतः स्वामी जी ने यह लेख गाली देने की नियत से नहीं अपितु वास्तविक अवस्था बतलाने के लिये लिखा है। जैसे कि भविष्य पुराण में लिखा है कि —

गणिका गर्भ संभूतो वशिष्ठश्च महा मुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥२९॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

आपके विचार से क्या पुराण कर्ता ने वशिष्ट मुनि को गाली देने के लिये "कंजरी पुत्र" लिखा है। हर्गिज भी नहीं बस जैसे पुराण कर्ता ने वास्तव बात को प्रकट करने के लिये लिखा है वैसे ही स्वामी जी का लेख भी है। इसका नाम गाली देना नहीं है। गाली देने का प्रकार और होता है जैसा कि—

दक्षश्रमोहितः शंभो मायया ब्रह्मणः सुतः ।
भ्रातृभिः सभगिन्यां वै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा ॥ ६॥

(शिव० उमा० अ० ४)

इसका नाम है गाली देना। स्वमी जी का लेख गाली देना नहीं है। क्या कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित संसार में मौजूद है जो शठ कोप तथा वसिष्ट जी को ब्राह्मणी माताके गर्भ से पैदा हुआ साबित कर सके।

(५६५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश स० ११ पृ० ३१२ पं० १५ में लिखा है कि "उस (शठकोप) का चेला मुनिवाहन जोकि चंडाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था" हमने आज तक चार ही वर्ण सुने थे किंतु आज एक पांचवां चाण्डाल वर्ण और मिला। क्या कोई आर्य समाजी मुनिवाहन को चाँडाल सिद्ध कर सकता है। पृ० २६ पं० १४।

उत्तर—क्या आपका सुनना भी कोई प्रमाणों में प्रमाण है। क्या जो बात आप ने नहीं सुनी वह संसार में है ही नहीं। श्रीमान जी आप के कान परिमित हैं और आप का ज्ञान भी परिमित है। वह किसी पदार्थ के होने या न होने में प्रमाण नहीं माना जा सकता। यदि आप ने चार ही वर्ण आज तक सुने हैं तो आपने अपनी पुस्तक के पृ० १३० पं० ४ तथा ७ में "पारशव वर्ण कहां से लिख मारा। सुनिये महाराज वर्ण शब्द के अर्थ निरुक्त के अनुसार 'वर्णो वृणोतेः। निरु० अ० २ खं० ३" जो

स्वीकार किया जाये उसका नाम वर्ण है। इसी लिये निरुक्त ने "चत्वारो वर्णा निषादः पंचमः" निरुक्त अ०३ खं० ८" निषाद को भी पांचवां वर्ण माना है। इसके अतिरिक्त मनु में तो सूत' वैदेह, चांडाल, मागध, क्षत्ता, अयोगव, इनछेः को वर्ण मानकर अपने सदृश वर्ण पैदा करने वाला माना है।

सूतो वैदेहकश्चैव चांडालश्चनराधमः।
मागधः क्षत्तृ जातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥२६॥
एतेषट् सदृशान्वर्णान जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरा सुच योनिषु ॥२७॥(मनु०१०)

कहिये महाराज ! आप तो पाँचवें को ही रो रहे थे यहां पर तो वर्णों का ढेर ही लग गया। अब क्या आप अपने कान कटवाने की कृपा करेंगे। जिनहों ने आप को इतना डबल धोका देने का पाजीपन किया है। रही बात मुनि वाहन को चांडाल लिखने की सो यदि स्वामी जी की यह खोज ठीक नहीं है तो आप ही प्रमाण बतलाने की कृपा करें कि मुनिवाहन किस ब्राह्मण कुल में पैदा हुये थे यदि नहीं बता सकते तो स्वामी जी का लेख ठीक है। स्वामी जी ने यह लेख गाली देने के लिये नहीं लिखा अपितु वास्तविक अवस्था बताने के लिये ही लिखा हैं जैसा कि पुराणों के कर्ता ने भी लिखा है कि—

श्वपाकी गर्भ संभूतःपिता व्यासस्य पार्थिव।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥२७॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

तो क्या पुराण कर्ता ने पराशर को "चांडाली पुत्र" लिख कर गाली दी है। हर्गिज़ नहीं। बस जैसे पुराण कर्ता ने वास्तविक अवस्था बताने के लिये लिखा है ऐसे ही स्वामी जी का लेख है। गालियां देने का तो प्रकार ही और होता है जैसे कि—

ब्रह्मा च बहुवारं हिमोहितः शिव मायया।
अभवद्भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च ॥२७॥
( शिव० उमा० अ० ४ )

इसका नाम है गालियां जो पुराणों में ऋषि और मुनियों को निकालो गई हैं। वास्तविक अवस्था के बताने का नाम गालियां देना नहीं है।

क्या किसी पौराणिक माता ने कोई ऐसा पौराणिक पुत्र पैदा किया है जो मुनिवाहन और पराशर को ब्राह्मण दम्पति से पैदा हुआ साबित कर सके।

( ५९६ ) प्रश्न—सत्यार्थ काश समु० ११ पृ० ३१२ पं० १५ में लिखा है कि—"उस ( मुनिवाहन ) का चेला यावनाचार्य्य यवन कुलोत्पन्न था" यदि सच ही यावनाचार्य्य जाति के मुसलमान थे तो फिर कोई आर्य्य समाजी क़लम क्यों नहीं उठाता। पृ० २९ पं० २९।

( उत्तर ) क्या स्वामी जी का लिखना क़लम उठाना नहीं है और क्या "यावनाचार्य्य" नाम ही यह बात साबित नहीं कर रहा कि वह जन्म से मुसलमान थे। और क्या सनातन धर्म में मुसलमानों से ब्राह्मण नहीं बनते आये जैसा कि —

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेन्नैव शासिताः।
संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥ ७२ ॥
( भविष्य०प्रति०खं० ४ अ०२० )

फिर यावनाचार्य्य का जन्म से मुसलमान होते हुए आचार्य्य बनना बताना गाली देना कैसे है। यदि वह जन्म से मुसलमान न थे तो आप सप्रमाण साबित करें कि वह ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे। वास्तविक अवस्था बताना गाली देना नहीं होता गा जो देने का प्रकार और है जैसा कि—

शिवमाया प्रभावेणभूद्धरिः काम मोहितः ।
परस्त्री धर्षणं चक्रे बहुवारं मुनीश्वर ॥१७॥
( शिव० उमा० अ० ४ )

इस का नाम है गाली देना । वास्तविक अवस्था के बताने का नाम गाली देना नहीं है । क्या कोई पौराणिक पंडित भू-मंडल में मौजूद हैं जो यावनाचार्य्य को ब्राह्मण कुलोत्पन्न साबित करने के लिये अपनी लेखनी उठावे ।

(५६७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३१२ पं० ८ में लिखा है कि—"भक्त माल ग्रंथ जो नाभा डूमने बनाया" कौन कहता है कि नाभा जी डूम थे । जो आर्य्य समाजी कहताहोवह लेखनी उठा कर नाभा जी को डूम सिद्ध करे । (पृ० ३०पं ८१३)

उत्तर—स्वामी जी की खोज बतलाती है कि नाभा जी डूम थे और उन्हों ने लेखनी उठा कर लिख दिया । यदि स्वामी जी की यह खोज ग़लत है तो आप साबित करें कि नाभा जी किस ब्राह्मण वंश में पैदा हुये थे । क्या किसी मनुष्य का डूम आदि अंत्यज वंश में पैदा होकर अपनी योग्यता से ग्रंथ कर्त्ता बन जाना कोई असंभव बात है । क्या व्यास आदि अंत्यज कन्या के पेट से पैदा होकर ग्रंथ करता नहीं बने जैसा कि लिखा है कि—

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः ।
शुक्याः शुकः कणादो ख्यस्त थोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥२२॥
( भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२ )

क्या इनकी वास्तविक अवस्था का वर्णन करना गाली देना है । हर्गिज नहीं । गाली देने का ढंग ही और होता है जैसे कि—

चन्द्रश्च मोहिता शंभोर्मायया काम संकुलः ।
गुरु पत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः ॥ २२ ॥

( शिव० उमा० अ० ४ )

इस का नाम है गालियां देना । वास्तव अवस्था के बतलाने का नाम गालियां नहीं है ।

हम समस्त पौराणिक मंडल को चैलैंज करते हैं कि वह नाभा जी और व्यास जी को ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुआ साबित करने के लिये मैदान में आवें । किन्तु यह निश्चित है कि प्रलय तक भी पौराणिकों में कोई ऐसा पंडित पैदा नहीं हो सकता जो व्यास और नाभा जी की माता को जन्म से ब्राह्मणी सिद्ध कर सके । और स्वामी जी का लेख तो है भी ठीक जैसा कि—

गो स्वामी नाभा जी कृत श्री भक्त माल श्री प्रिय दास जी प्रणीत टीका कवित्त श्री अयोध्या निवासी श्री सीता रामशरण भगवान प्रसाद रूपकलाविरचित भक्ति सुधास्वाद तिलक सहित-लखनऊ सुपरिंटेंडेंट केसरी दास सेठद्वारा नवल किशोर प्रेस से मुद्रित होकर प्रकाशित । दूसरी आवृत्ति १९२६–१९८३ पृ० ४७ पं० १४ ।

और कोई कोई तो स्वामी श्री नाभा जी का जन्म डोम वंश में भी कहते हैं परन्तु पश्मिच देश में 'डोम' किस को कहते हैं यह न जानने वाले लोग इस देश में डोम भंगी का नामान्तर समझ के भंगी भी कह बैठते हैं । सो भंगी कहना महानुचित अविचार वो पाप है क्योंकि पश्चिम मारवाड़ आदिक देशों में डोम कलावंत ढाढी भाट कथक इन गान विद्या के उपजीवियों की तुल्य जाति (ज्ञाति) और प्रतिष्ठा है । इसका प्रमाण (१११ वें छप्पय ) में श्री मूल कार ने "लाखा" भक्त को वानर अर्थात्

वानर वंशी लिखा और ( ४२६ वें कवित्त में ) भक्त माल के टीका कार ने "लाखा नाम भक्त ताको वानरी बखान कियो कहें जग डोम जासो मेरो शिरमोर है" ऐसा लिखके आगे इनके गृह में सन्तो का जाना और रोटी प्रसाद का पाना भी लिखा है सो देखलीजिये। लाखा भक्तके हाँ संतों का प्रसाद रोटी पानी अन्यथा असंभव था। अस्तु यहां तो दोनों प्रकार से उत्तमता है। श्री नाभा स्वामी तो श्री सीता राम जी के अनन्य विशुद्ध जगत् पूज्य दास हैं। न ब्राह्मण हैं न डोम इन अच्युत गोत्र की देह तो जात्याभिमान से रहित है इत्यलम। संस्कृत भक्त माल में भी लिखा है कि—

पथितिष्ठंतमंधं च शिशुमेकम पश्यताम्।
दुर्भिक्ष समये त्यक्तं जनन्या निर्जने वने ॥७॥

भक्तमाल संस्कृत स० २।

(५६८) प्रश्न—स्वामीदयानन्द जी कापड़ी जाति में उत्पन्न हुये थे और लड़कपन में इन का पेशा गाना तथा नाचना था यह बात सोलह आने सच है। और दयानन्द छलकपट दर्पण आदि बीसियों ग्रन्थों में लिखी है ( पृ० ३० पं० २२ ) संवत १९४० की शुभ तिथि नरक चतुर्दशी को स्वामी जी का शरीर पात हो गया। पृ० १६ पं० २६।

उत्तर—स्वामी दयानन्द जी के पिता का नाम कर्सन जी लाल जी त्रिवेदी था। इनका पेशा जमादारी, शराफ, और ज़िमींदारी था। जन्म स्थान टंकारा था। ये औदीच्य ब्राह्मण थे ( दयानन्द जन्म स्थान निर्णय ) "दयानन्द छल कपट दर्पण" यह किताब आर्य समाज के विरोधी जिया लाल जैनी की लिखी हुई है। अतः उस का लेख आर्य समाज के लिये कोई प्रमाण नहीं है और वह लेख निर्मूल और सर्वथा गलत

है किंतु यदि सत्य भी हो तो आर्यसमाज के सिद्धांत की इस में कोई हानि नहीं है। क्योंकि आर्य समाज गुण कर्म स्वभाव से वर्ण आश्रम की व्यवस्था को मानता है जन्म से नहीं। और मनुष्य मरने के पश्चात् अपने कर्मानुसार नरक या स्वर्ग को प्राप्त होता है। मरने की तिथि, नरक या स्वर्ग प्राप्ति का साधन नहीं हो सकती। जैसे दिवाली को स्वामी जी का देहांत हुआ था वैसे ही दिवाली के दिन ही स्वामी राम तीर्थ जी की तथा जैन धर्म प्रवर्तक महावीर स्वामी की मृत्यु हुई थी तो क्या यह माना जा सकता है कि स्वामी राम तीर्थ जी तथा महावीर स्वामी भी इस तिथि में मरने के कारण नरक में गये। हर्गिज भी नहीं। अतः किसी तिथि का नाम नरक चतुर्दशी रखना ही पौराणिक मिथ्या कल्पना है।

हाँ पौराणिक वसिष्ट अवश्य कंजरी के पेट से पैदा हुये थे जिस का पेशा व्यभिचार और नाचना भी था किंतु इस से वसिष्ठ पर कोई दोष नहीं आ सकता क्योंकि वह कर्मानुसार ब्राह्मण और महर्षि बन गये।

( ५६६ ) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३७२ पं० २४ में राम स्नेही को रांड स्नेही लिखा है। क्या मधुर भाषण है। मानो स्वामी जी की वाणी से फूल टपकते हैं। पृ० ३१ पं० ४।

उत्तर—आपने स्वामी जी का पूरा पाठ नहीं दिया स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि—

"नाम तो धरा रामस्नेही और काम करते हैं राण्ड स्नेही का, जहां देखो वहां राण्ड सन्तों को घेर रही हैं" यदि ऐसे २ पाखंड न चलते तो आर्यावर्त देश की दुर्दशा क्यों होती। ये

लोग अपने चेलों को झूंठ खिलाते हैं, और स्त्रियां भी लंबी पड़ के दण्डवत् प्रणाम करती हैं' एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है" जो अवस्था स्वामी जी ने अपने लेख में बयान की है। यदि यह ठीक है तो स्वामी जी का उन का राण्ड स्नेही लिखना सोलह आने ठीक और उनकी अवस्था का प्रकाशक है। इसे गाली नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में प्रत्येक आदमी को यह व्यवस्था देनी ही पडती है जैसे कि राधा ने कृष्ण को पर स्त्री गामी देख कर कहा कि—

हे कृष्ण वृजाकान्त गच्छ मत् पुरतो हरे।
कथं दुनोषि मां लोल रति चौराति लंपट ॥५६॥
हे सुशीले शशी कले हे पद्मावति माधवि।
निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम् ॥६३॥

(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ३)

यहां राधा का कृष्ण को लोल, रतिचौर, अति लंपट और धूर्त कहना गालियां नहीं अपितु कृष्ण की अवस्था का सत्य प्रतिपादन है। गालियां तो और प्रकार की होती हैं जैसे कि—

विश्वामित्रो बभूवाथ मोहितः शिवमायया।
रेमे मेन कया व्यास वने कामवशं गतः ॥ ३५ ॥

(शिव० उमा० अ० ४)

इस का नाम गाली है। आशा है कि अब आप फूल और त्रिशूल में तमीज़ करने के काबिल हो जावेंगे।

(६००)प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३३३ में "वृन्दा वन जब था तब था अब तो वेश्यावन है" यह लिखा है। आर्यसमाजियों ने वृन्दावन में गुरुकुल खोल स्वामी जी के इस लेख कोअसत्य सिद्ध कर दिया। पृ० ३१ पं० ७।

उत्तर—आपने अपनी चोरी की आदत के अनुसार स्वामी जी के पाठ को चुरा लिया है। स्वामी जी का लेख ऐसे है कि "वृन्दावन जब था तब था अब तो वेश्यावन वत् लल्ला लल्ली और गुरु चेली आदि की लीला फैल रही है"

क्या स्वामी जी की यह तहरीर ग़लत है ? क्या अब भी वृन्दावन में राम लीलाओं द्वारा व्यभिचार की भरमार नहीं है। स्वामी जी ने इन शब्दों में वृन्दावन के खुले व्यभिचार का नकशा खैंच कर जनता के सामने रख दिया है। आर्य समाज का गुरुकुल वृन्दावन शहर से बाहर जंगल में है। और वह इस लिये खोला गया है कि इस के द्वारा वृन्दावन को फिर से योगीराज, गौरक्षक सदाचारी कृष्ण की नगरी बनाया जा सके। यह वृन्दावन की बदकिस्मती है कि उस ने अभी तक गुरुकुल के सदाचार से शिक्षा ग्रहण करके अपने आप को योगियों की नगरी नहीं बनाया। अतः स्वामी जी का लेख गालियां नहीं अपितु वृन्दावन की वर्तमान अवस्था का प्रदर्शक है। यदि आप ने गालियां देखनी हों तो देखिये—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नभोजनः ।
जातेश्चनिर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा ॥२०॥
किन्नु राजेन्द्र पुत्रश्च किन्नुवा मुनिपुत्रकः ।
वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं वैश्य मन्दिरे ॥२१॥
शिशुकालेच स्त्री हत्या कृतानेन दुरात्मना ।
कुब्जामृताच संभोगा द्वाससा रजकोमृतः ॥२२॥

( ब्रह्मवैवर्त० ख० ४ अ० १०६ )

इस का नाम गालियां है जो पुराणों में श्री कृष्ण जी को दी गई हैं।

(६०१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु०११पृ०३२०में लिखा है कि "मूर्ति पूजा सीढी नहीं है किंतु एक बड़ी खाई है जिस में गिर कर चकना चूर हो जाता है"। बलिहारी है स्वामी जी के इस मधुर लेख और विज्ञान पर। पृ० ३८ पं० १५।

उत्तर—स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है क्योंकि वेद कहता है कि—

अंधंतमः प्रविशन्तियेऽसंभूतिमुपास्ते।
ततोभूय इव ते तमोय उ संभूत्याꣳरताः ॥९॥(यजु० ३१)

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि परमेश्वर के स्थान में प्रकृति अथवा प्रकृति से बने पदार्थ पत्थर, वृक्ष, जलादि को पूजने वाला घोर नरक में जाता है। इसी का नाम वह खाई है कि जिस में गिर कर चूर २ हो जाता है। स्वामी जी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल और सत्य है। गालियां नहीं हैं। गालियां तो ये हैं कि—

यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके।
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः॥
यस्तीर्थ बुद्धिःसलिलेन कर्हिचित्।
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गो खरः ॥१३॥

[श्रीमद्भागवत स्कं० १० अ० ८४]

ये हैं गालियां जहां मूर्ति पूजक को बैल और गधा तहरीर किया है।

(६०२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३१६ में लिखा है "सुनो अंधो! पूर्ण परमात्मा न आता है और न जाता है" स्वामी जी का सुनो अंधो यह लेख आर्य समाजियों को सुनहरी अक्षरों में लिख कर अपने कमरों में लटकाना चाहिए। पृ० ३१ पं० २४।

उत्तर—परमात्मा को "ईशावस्यम् यजु० ४०।१" तथा सपर्य्यगात् यजु०४०।८" इत्यादि मंत्रों में सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक वर्णन किया गया है। उस को आने जाने वाला एक देशी मानकर उस को बुलाना अविद्या है। ऐसी अविद्या युक्त मनुष्यों के लिये वेद कहता है कि—

अंधमतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ॥ [ यजु० ४०।१२ ]

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि जो लोग अविद्या का आश्रय लेते है वे अत्यन्त अंधकार में प्रवेश होते हैं अर्थात् नेत्र रहित जन्मों को अथवा अज्ञानमय जन्मों को प्राप्त होते हैं। स्वामी जी का उपरोक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है और आर्य्य समाजियों को यह मन्त्र बेशक सुनहरी अक्षरों में लिख कर अपने कमरों में लटकाना चाहिए। इस का नाम गालियां नहीं है। गालियां इस प्रकार होती हैं कि—

जटाभाराजिनैर्युक्ता दांभिका वेष धारिणः ॥६३॥
कर्म ब्रह्मोभय भ्रष्टं तं त्यजेद्दन्त्यजं यथा ॥६४॥
षड्दर्शन महाकूपे पतिता पशवः खग ॥७१॥
चिंतया दुखिता मूढ़ास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियः ॥७५॥

[ गरुड० प्रेत० अ० ४९ ]

क्या अब भी आप गारी और हितकारी में तमीज़ न कर सकेंगे।

(६०३) प्रश्न—स्वामी जी ने आर्य्याभिविनय के 'तमीशानम्' इस मंत्र के भाष्य में ईश्वर को बुलाया है। जब ईश्वर कहीं आते ही जाते नहीं तो फिर इस मंत्र में स्वामी जी ने ईश्वर का आह्वान क्यों किया। पृ० ३२ पं० १।

उत्तर—आर्य्य अभि विनय में जो इस मन्त्र का अर्थ करते हुए स्वामी जी ने "आह्वान करते हैं" लिखा है इस के भाव को यजुर्वेद भाष्य में इसी मन्त्र का भाष्य करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि '(हूमहे) स्तुति करते हैं' (यजु० २५।१८) अतः सिद्ध हुआ कि स्वामी जी की परिभाषा में आह्वान करने के अर्थ स्तुति करने के हैं। ईश्वर को आने जाने वाला एक देशी समझ कर उस के बुलाने के अर्थ नहीं हैं।

( ६०४ ) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० २ पृ० २५ में लिखा है कि—जो कोई बुद्धिमान् उन की भेंट पांच जूता डंडा वा चपेटा लातें मारे तो उस के हनुमान् देवी और भैरव झट प्रसन्न हो कर भाग जाते हैं" आर्य्य समाजियो तुम! बतलाओ कि स्वामी जी के ये शब्द कटु हैं या मधुर सच्चे हैं या झूटे। क्या तुम इस बात पर तैयार हो कि जूते लगा कर हनुमान देवी और भैरव को भगा दो। पृ० ३२ पं० ६।

उत्तर—जब आर्य्य समाजी किसी मनुष्य के अन्दर हनुमान् भैरव तथा देवी का प्रवेश करना मानते ही नहीं तो फिर उन को जूते मार कर भगाने का सवाल ही मिथ्या है। क्यों कि स्वामी जी ने उपरोक्त पाठ के आगे ही लिखा है कि—"क्यों कि वह उन का केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है" स्वामी जी के ये शब्द जनता के लिए हितकारी हैं और सर्वथा सच्चे हैं। ऐसे लोगों को अवश्य ही दण्ड देना चाहिये कि जो लोगों को धोका देकर ठगते हैं। इस के लिए वेद की आज्ञा है कि—

असुर्य्या नाम ते लोका अंधेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

यजु० ४०।३

इस मंत्र में स्पष्ट है कि जो लोग आत्महत्या करते हैं अर्थात् अपनी आत्मा के विरुद्ध चलकर लोगों को धोका देते हैं। झूट बोलते हैं।ठग्गी और मक्कारी करते हैं। वे इस जन्म में भी दुःख पाते हैं। और मरने के पश्चात् भी ऐसे जन्म को प्राप्त होते हैं जो अंधकार अज्ञान से ढके हुये हैं। ऐसे ठगों को मरने पर तो परमात्मा दण्ड देगा किंतु जीते हुओं को अवश्य ही जनता की ओर से दण्ड मिलना चाहिये। तभी वह इस जन्म में दुःख पा सकते हैं। गोया इस प्रकार के आत्म हत्यारे, झूटे, ठग मक्कारों को दण्ड देना ईश्वर की आज्ञा पालन करना ही है अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा ईश्वर की आज्ञा के पालन करने का उपदेश करने वाला है।

(६०५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ०३५६ में लिखा है कि "जब उन से दण्ड न पाया तो इन के कर्मों ने पुजारियों को बहुत से मूर्ति विरोधियों से प्रसादी दिला दी। और अब भी मिलती है। और जब तक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी"। यहाँ पर स्वामी जी मूर्ति पूजा को कुकर्म और विदेशियों के द्वारा भारत के पददलित होने को प्रसादी लिखते हैं।

(पृ० ३२ पं० १३)

उत्तर—जिस कर्म के करने की वेद आज्ञा देता है वह सुकर्म वा धर्म्म है और जिस कर्म के करने का वेद निषेध करता है वह कुकर्म वा अधर्म है चूंकि वेद 'अंधतम इत्यादि यजु० ४०। ६" मंत्र के द्वारा मूर्ति पूजा को नरक में जाने के क़ाबिल गुनाह बतला रहा है। अतः स्वामी जी का मूर्ति पूजा को कुकर्म लिखना सोलह आने सत्य है। चूंकि कुकर्म का फल नरक अर्थात् दुःख ही होता है। अतः भारत वासियों का पददलित

होना मूर्ति पूजा का ही फल मिला है और जब तक मूर्ति पूजा को न छोड़ेगें यह दुःख मिलता ही रहेगा। यहां प्रसादी शब्द लाक्षणिक रूप से दण्ड अर्थों में वर्तमान है। यदि आप यह चाहते हैं कि यह फल आपको न मिले तो आप वेद विरुद्ध मूर्ति पूजा रूप कुकर्म का परित्याग करदें।

(६०६) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३३१ में लिखा है कि "आप पराधीन भटियारे के टट्टू और कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विधि दुःख पाते हैं" आर्य्य समाजियो देखो स्वामी जी के क्या मधुर शब्द हैं। पृ० ३२ पं० २५।

उत्तर—भला आप ही बतलावें जो कि लोग मूर्तियों की सहायता के आश्रय हाथ पर हाथ रख बैठ रहे। और अब गुलामी में मुबतला होकर दुःख पा रहे हैं। उनके लिये उपरोक्त उपमा से नर्म और क्या उपमा दी जा सकती है। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है।

(६०७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३०५ में लिखा है कि— उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामर पन का काम हम क्यों करते हैं" ईश्वर पूजक शंकर की स्थापना करने वालों के लिये स्वामी दयानन्द जी के यह मधुर वचन हैं। पृ० ३३ पं० ३।

उत्तर—स्वामी जी के यह शब्द ईश्वर पूजकों के लिये नहीं अपितु महादेव के लिंग को पार्वती की योनि में स्थापन करके उसकी पूजा कराने वालों के लिये हैं। इस प्रकार मूत्रेन्द्रिय की पूजा कराने वालों को संसार में कौन भला मानस और शरीफ कह सकता है। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है।

(६०८) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३११ में लिखा है कि "अपने २ शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें। क्या मधुर शब्द हैं। पृ० ३३ पं० १६।

उत्तर—जो लोग अपने शरीर पर दाग लगाकर मोक्ष होना मानते हैं। यहाँ पर स्वामी जी ने उन का खंडन किया है आपने पाठ को चुरा लिया है। पूरा पाठ इस प्रकार से है कि—"तप्ततनूः" इस प्रमाण करके अग्नि हो से तप्ताना चक्रांकित लोग स्वीकार करें तो अपने २ शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है। क्योंकि इस मन्त्र में सत्य भाषण आदि पवित्र कर्म करना तप लिया है" अब समस्त पाठ पढ़ कर बतलाने की कृपा करें कि शंका क्या है।

(६०९) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश स०११ पृ० ३४० में लिखा है कि—वाह रे वाह भागवत के बनाने वाले लाल भुजक्कड़! क्या कहना तुझ को ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शर्म न आई। निपट अंधा ही बन गया। भला इन महा झूट बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं या अन्य कोई, इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये। वा जन्मते समय मर क्यों न गये। क्यों कि इन पापों से बचते तो आर्य वर्त देश दुःखों से बच जाता"। व्यास के लिए यह गालियों का जंक्शन लिखा गया है। पृ० ३३ पं० २१।

उत्तर—प्रथम तो स्वामी जी व्यास जी को पुराणों का कर्ता ही नहीं मानते देखिए स्वामी जी क्या लिखते हैं कि—

"जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जो होते तो उन में इतने गपोडे न होते क्यों कि शारीरिक सूत्र, योग शास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान, सत्य वादी' धार्मिक' योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इस से यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोल कल्पि ग्रन्थ बनाऐ हैं। उन में व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेद शास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं। किंतु यह काम विरोधी' स्वार्थी' अविद्वान् पामरों का है"

अतः सिद्ध हुआ कि स्वामी जी का यह लेख व्यास जी के लिऐ नहीं है

दूसरे आपने स्वामी जी के लेख के मध्य में से बहुत सा लेख चुरा लिया है, जिस से आपका लेख स्वामी जी के अभिप्राय को प्रकट नहीं कर सकता। वह मध्य का लेख इस प्रकार से है कि—

[ निपट अंधा ही बन गया ] भला स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं किंतु परमेश्वर की सृष्टि क्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी; ऊंट, सिंह. कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश भी कहां हो सकता है। और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मां बाप को क्यों न खा गऐ। और मनुष्य शरीर से पशु पक्षी आदि वृक्षादि का उत्पन्न होना क्यों कर संभव हो सकता है। धिक्कार है पोप और पोप रचित इस महा असम्भव लीला को जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है [ भला इन महा झूट बातों को ]

इतना पाठ आपने चुरा लिया है जो इन कोष्ठ में दिये हुये दोनों वाक्यों के मध्य में है। स्वामी जी के पूरे लेख को पढ़ कर समालोचना के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता।

तीसरे इस प्रकार के वाक्य आर्ष ग्रन्थों में प्रयुक्त होते आये हैं। जैसे कि धर्म्म पुत्र युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि—

मासेऽपतिष्यःपंचमेत्वं सुकृच्छ्रे नवा गर्भोऽप्यभविष्यःपृथायाः।
तत्ते श्रेयो राज पुत्राभविष्यन्न चेत् संग्रामादपयानं दुरात्मन् ॥२१॥ धिक् गाँडीवं धिक् ते बाहूवीर्यं मसंख्ये-यान् वाणगणांश्चधिकते। धिक् ते केतुं केशरिणः सुतस्य कृशानु दत्तं च रथं च धिक्ते ॥२२॥(महा०. कर्ण अ० ६८)

कहिये महाराज क्या स्वामी जी के शब्द धर्म्म पुत्र युधिष्ठिर से भी अधिक कठोर हैं। जिसके लेखक कि स्वयं व्यास जी हैं।

इस से साबित है कि स्वामी जी का समस्त लेख गालियाँ नहीं अपितु यथार्थ अवस्था का प्रकाशक है।

(६१०) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३५६ में लिखा है कि—"उस निर्दयी क़साई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्ल पक्ष की एका दशी का नाम निर्जला रख देता" इनके रचयिता विष्णु के सत्रहवें अवतार भगवान वेद व्यास हैं। उन्ही के लिये क़साई पदवी दी गई है। यह दयानन्द की सभ्यता है। पृ० ३५ पं० १।

उत्तर—स्वामी जी के लेख में उपरोक्त लेख से पूर्व निम्न लेख है कि—

"ज्येष्ट महीने के शुक्ल पक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है। व्रत करने वालों को महादुःख प्राप्त होता है। विशेष कर बंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है"; अब इस लेख को पहिले पढ़ कर फिर अपने दिये हुये लेख को पढ़ने की कृपा करें तो आप को अनुभव होगा कि स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है।

स्वामी का यह लेख व्यास जी के लिये नहीं है क्योंकि स्वामी जी पुराणों का लेखक व्यास जी को नहीं मानते।

---

## आचार्य्यों की भाव प्रधानता—

(६११)प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० १३४ में लिखा है कि-

"विविधानि च रत्नानि विविक्ते षूपपादयेत्।

नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त)अर्थात् सन्यासियों को देवे" स्वामी दयानन्द जी विरक्त थे। जब इनको धन लोलुप्ता ने घेरा तब स्वार्थ सिद्धि के लिये मनु के श्लोक को कांट छांट कर ऊपर लिखे मुताबिक बना दिया। वह श्लोक मनु में इस प्रकार है।

धनानितु यथा शक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।

वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥६॥(मनु० ११)

स्वामी जी ने श्लोक ही लौट दिया। पाठ भी बदला और श्लोक का भाव भी बदला। ब्राह्मणों की बजाय सन्यासी को रत्न देने लिख दिये। पृ० ३६ पं० २।

उत्तर—श्रीमान् जी आचार्य लोग भाव प्रधान होते हैं। अर्थात् वह अपना पुस्तक लिखते हुये दूसरे आचार्यों की सम्मति को अपने शब्दों में बयान कर देते हैं। इस से उन की नियत पर शक नहीं किया जा सकता क्योंकि जो कुछ वे किसी आचार्य के नाम से लिखते हैं। उस आचार्य के ग्रन्थ में उस भाव का पाठ मौजूद होता है। फर्क केवल शब्दों में होता है। भाव में फर्क नहीं होता। जैसे कि व्यास जी ने मनु के नाम से निम्न श्लोक महाभारत में दिये हैं—

(१) स्वपत्नी प्रभवान् पंच लब्धान् क्रीतान् विवर्धितान्
कृतानन्यासु चोत्पन्नान् पुत्रान् वै मनुरब्रवीत् ॥२८॥
(महा० आदि० अ० ७४)

(२)उत्तमाद्देवरात् पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥३४॥
अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः।
आत्म शुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥३५॥
( महा० आदि० अ० १२० )

(३) चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि विहितानि स्वयंभुवा।
धनैरपि न गन्तव्यं यच्चकुर्वन्न दुष्यते ॥४॥
अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत् च।
क्षत्रियो धनुराश्रित्ययजेच्चैव न याजयेत् ॥५॥
वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत्।
शूद्रः शुश्रूषणं कुर्यात्त्रिषु वर्णेषु नित्यशः।
वंचनायोग विधिभि र्वैतसीं वृत्तिमाश्रताः ॥६॥
( महा० विराट० अ० ५० )

(४) अजोक्षा चन्दनवीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
धिष्मौदम्बरं शंखः स्वर्णनाभोऽथरोचना ॥१०॥

गृहेस्था पथितव्यानि धन्यानि मनुर ब्रवीत् ॥११॥

(महा० उद्योग० अ० ३९)

( ५ ) योददाति स्थितः । थत्यां तादृशाय प्रतिग्रहम् ।
उभयोरक्षयं धर्म्मं तां मनुः प्राह धर्मवित् ॥३२॥

( महा० अनु० अ० ६८ )

( ६ ) हविर्यत् संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितंशुचिः ।
वेदोक्तेन मानेन पितृणां प्रक्रियासु च ॥५२॥
अतोऽन्यथा वृथा मांसमक्षं मनुरब्रवीत् ॥५३

[ महा० अनु० अ० ११५]

( ७ ) सत्याय हि यथा नेह जह्याद्धर्मं फलं महत् ।
भूतानामनुकंपार्थं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥३६॥

( महा० शान्ति० अ० २६६ )

( ८ ) आहुतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्रबंधुना ।
धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यं च युद्धं हि मनुरब्रवीत् ॥६॥

( महा० शान्ति० अ० ५५ )

( ९ ) तेभ्यो नमश्च भद्रं च ये शरीराणि जुह्वते ।
ब्रह्मद्विषो नियच्छन्तस्तेषां नोऽस्तु सलोकता ।
ब्रह्मलोक जितः स्वर्ग्यान् मनुरब्रवीत् ॥३०॥

( महा० शान्ति० अ० ७८ )

( १० ) न केनचिद्याचितव्यं कश्चित् कस्यांचिदापदि ।
इति व्यवस्था भूतानां पुरास्तान्मनुना कृता ॥१६॥

( महा० शांति० अ० ८८ )

( ११ ) अपि चैतत् पुरा राजन् मनुना प्रोक्तमादितः ॥१०॥
सुप्रणीतेन दण्डेन प्रियाप्रियसमात्मना ।
प्रजारक्षतियः सम्यक धर्म एव स केवलः ॥११॥

यथोक्तमेत द्वचनं प्रागेव मनुना पुरा ॥१२॥

( महा० शांति० अ० १२१ )

( १२ ) माता पिता गुरुर्गोप्ता वह्निर्वैश्रवणो यमः ।
सप्तराज्ञो गुनानेतान् मनुराह प्रजपतिः ॥१०२॥

( महा० शांति० अ० १३६ )

( १३ ) अपिचाप्सु निमज्जेत जपंस्त्रिरघमर्षणम् ।
यथाश्वमेधावभृथस्तथा तन्मनुरब्रवीत् ॥२७॥

( महा० शांति० अ० १५२ )

(१४) प्राचेतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ ।
राज धर्मेषु राजेन्द्र तावि हैकमनाः शृणु ॥४२॥
षडेतान् पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्य्यमनधीयानमृत्विजम् ॥४३॥
अरक्षितारं राजानं भार्य्यां चाप्रियवादिनीम् ।
ग्राम कामं च गोपालं वनकामं चनापितम् ॥४४॥

( महा० शान्ति० अ० ५७ )

(१५) मनुना चैव राजेन्द्र गीतौ श्लोकौ महात्मना ।
धर्मेषु स्वेषु कौरव्य हृदि तौ कर्तुमर्हसि ॥२३॥
अद्भ्योऽग्नि ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥२४॥
अयोहन्ति यदाश्मानमग्निना वारि हन्यते ।
ग्रस्य च क्षत्रियो द्वेष्टि तदा सीदति ते त्रयः ॥२५॥

( महा० शान्ति० अ० ५६ )

ये जितने श्लोक व्यास जी ने महाभारत में मनु के नाम से दिये हैं इन में से प्रमाण नं १५ में वर्तमान "अद्भ्योऽग्निः" इस श्लोक का पाठ तो मनु में हूबहू मौजूद है शेष कोई श्लोक हूबहू मनु में मौजूद नहीं है। हां इस अभिप्राय के

प्रतिपादक श्लोक मनु में मौजूद हैं। इस से व्यास जी की नियत पर शक नहीं किया जा सकता कि उन्होने किसी स्वार्थ सिद्धि से श्लोकों का पाठ बदल दिया है। अपितु मानना पड़ेगा। कि आचार्य ने मनु के भाव को अपने शब्दों में वर्णन कर दिया है। इसी प्रकार से स्वामी दयानन्द जी ने भी मनु के "धनानी तु यथा शक्ति" इत्यादि श्लोक के भाव को अपने "विविधानि च" इत्यादि शब्दों द्वारा वर्णन किया है। इस से ऋषि दयानन्द जी की नियत पर शक करना कि "उन्हों ने स्वार्थ वश पाठ बदल दिया है" पाजीपन नहीं तो और क्या है। स्वामी जी ने "विविधानि च रत्नानि" लिखा है मनु के श्लोक में "धनानि" मौजूद है ये दोनों शब्द पर्य्याय वाची हैं। और "विविक्तेषु" पद दोनों श्लोकों में मौजूद है। अतः विवादास्पद पदों में तो कोई झगडे की बात नहीं है। रही बात अर्थों की। सो धन और रत्न तो एक ही अर्थ के वाचक हैं। अब केवल "विविक्त" शब्द के अर्थों में ही मत भेद है। आपने इस का अर्थ "त्यागी ब्राह्मण" किया है और स्वामी जी ने इस का अर्थ "सन्यासी" किया है। हमें तो इस में भी मत भेद नज़र नहीं आता क्यों कि त्यागी ब्राह्मण का नाम ही सन्यासी है। जैसे कि—

त्यागधर्म्मः पवित्राणां सन्यासं मनुरब्रवीत् ॥१२॥

(महा० शांति० अ० १५२)

"अर्थात् पवित्र ब्राह्मणों का त्याग धर्म स्वीकार करना ही सन्यास है। ऐसा मनु जी ने कहा है" अतः स्वामी जी का यह लेख सर्वथा सत्य है। अब रही यह बात कि सन्यासियों को धन ग्रहण करना चाहिये वा नहीं सो स्वामी जी

मानते हैं कि परोपकार और देश हित में लगाने के लिये सन्यासियों को अवश्य धन ग्रहण करना चाहिये। और ऐसा करना वेदानुकूल है जसा कि—

तत् त्वायामि सुवीर्यं तद् ब्रह्मा पूर्व चित्तये।
येना यतिभ्योभृगवे धने हिते येन प्रस्कण्व माविथ॥
(अथर्व० कां० २ सू० ६ म० ३)

इस मन्त्र में स्पष्ट है कि सन्यासियों के लिये धन देना हितकारी है। अतः स्वामो जी का अर्थ सर्वथा वेदानुकूल है। यदि आप सन्यासियों को धन देना वेद विरुद्ध मानते हैं तो फिर आप लोग सोने की अंगूठी और जंजीर पहनने वाले बूटउ शूटउ सन्यासियों को सनातन धर्म के उत्सवों पर रुपया पैसा दक्षिणा और भेंट में क्यों देते हैं।

भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व अध्याय ४० में लिख दिया है कि—

"सप्तव्याधकथा विप्रा मनुना परिकीर्त्तिता॥२६॥

क्या कोई पौराणिक सात शिकारियों की कथा मनु से दिखा सकता है।

(६१२) प्रश्न— सत्यार्थ प्रकाश समु० ८ पृ० २२५ में लिखा है कि—

मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" "यह यजुर्वेद में लिखा है" क्या किसी आर्य्य समाजी में इतनी हिम्मत है जो इन दोनों श्रुतियों को यजुर्वेद में दिखादे
(पृ० ३६ पं० ११)

उत्तर—सत्यार्थप्रकाश में यह पाठ देकर लिखाहै कि "यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है" सो अब विचार कीजिये कि "ततो मनुष्या अजायन्त" यह पाठ तो स्वामी जी के लेखानुसार

हूबहू यजुर्वेद के ब्राह्मण शतपथ में १४।३।२।१ में मौजूद है। जिस को आपने भी अपने पुस्तक में पृ० २३४ पर सृष्टि विषय में दिया है। आप ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं। अतः यदि यह पाठ वेद के नाम से भी दर्ज होता तो भी आप कोई आक्षेप न कर सकते थे। अब रही बात "मनुष्या ऋषयश्चये" सो यह स्वामी जी ने यजुर्वेद के "तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये" यजु० ३१।९ इस मन्त्र का भाव अपने शब्दों में बयान किया है। इस में स्वामी जी ने "साध्याः" के स्थान में "मनुष्याः" लिख दिया है। और "साध्याः" और "मानुष्या' ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। जैसा कि महीधर ने भी लिखा है कि—

"साध्याः सृष्टिसाधन योग्याः प्रजापतिप्रभृतयः"

प्रजापति प्रभृति जो सन्तान पैदा करने के काबिल हों उन का नाम साध्या है।

अतः स्वामी जी ने यजुर्वेद के भाव को अपने शब्दों में बयान किया है। और ऐसा करना सब आचार्यों को पुस्तकों में मिलता है। जैसा कि महाभारत में व्यास जी महाराज ने लिखा है कि—

पाणि ग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥६॥

(महा० आदि० अ० १०४)

व्यास जी का यह लेख अथर्व० १८।३।२ का भाव ही अपने शब्दों में बयान किया हुआ है। अथर्व का पाठ है—

"हस्तग्राभस्यदिधिषो स्तवेदम्"

जैसे व्यास जी ने वेद के "हस्तग्राभस्य" पाठ का अनुवाद पाणिग्राहस्य कर दिया है वैसे ही स्वामी जी ने भी "साध्याः" का अनुवाद "मनुष्याः" कर दिया है। इस प्रकार के सैंकड़ों प्रमाण मिलते हैं जैसे कि—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥ ( मनु० २ )

मनु ने इस में "सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता ॥३॥ प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं २ सौमनसस्य दाता ॥३॥ ( अथर्व० १९।५५ )

इन मन्त्रों का भाव अपने शब्दों में बयान किया है। और

वसून् वदन्ति तुषितून् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथादित्या ञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥ २८४ ॥
( मनु० ३ )

मनु ने यह भी "देवाः पितरः पितरो देवाः" अथर्व० ६।१२३।३ के भाव को ही अपने शब्दों में वर्णन किया है। वरना क्या कोई सनातन धर्मी ऐसा मौजूद है जो मनु में श्रुति अर्थात् वेद के नाम से लिखे हुये इन दोनों मन्त्रों को अक्षरशः वेद में से दिखलाने का साहस कर सके। ऐसे ही ग्रन्थों में अनेक पाठ वेद के नाम से दिये गये हैं जैसे कि—

स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः ॥७॥
( महा० आदि० अ० १९१ )

तदि दं वेद वचनं कुरुकर्मत्यजेति च ॥ ७३ ॥
( महा० वन० अ० २ )

ओषधयोवीरुधश्चैव पशवो मृगपक्षिणः।
अन्नाद्यभूता लोकस्य इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥६॥
( महा० वन० अ० २०७ )

अग्नयो मांसकामाश्च इत्यपिश्रुयते श्रुतिः ॥११॥
( महा० वन० अ० २०७ )

आदेशकृद्वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्चयः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।

एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमितिश्रुतिः ॥१३॥
(महा० उद्योग० अ० ३६)

वासुदेवार्जुनौवीरौ समवेतौ महारथौ।
नर नारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः ॥ १६ ॥
( महा० उद्योग० अ० ४८ )

त्वमित्युक्तोहि निहितो गुरुर्भवति भारत ॥८३॥
अथर्वांगिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ॥८५॥
( महा० कर्ण० अ० ६६ )

विप्राणां क्षत्रियाणां च वैश्यानां च सुयोधन।
आधारः प्रथमो धर्मो ह्यनाचार स्त्वधर्मतः ॥२८॥
न चेद्धर्तव्यमन्यस्य कथंतद्धर्ममारभेत।
एतावानेव वेदेषु निश्चयः कविभिः कृतः ॥२६॥
( महा० शांति अ० ८ )

इति चाप्यत्र कौन्तेय मन्त्रो वेदेषु पठ्यते।
वेदप्रमाणविहितं धर्मं च प्रब्रवीमि ते ॥१८॥
अपेतं ब्राह्मणं वृत्ताद्यो हन्यादाततायिनम्।
न तेन ब्रह्महास्यान्मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥१६॥
( महा० शांति० अ० ३४ )

वृहस्पतिसवेनेष्ट्वा सुरापो ब्राह्मणः पुनः।
समितिं ब्रह्मणो गच्छेदिति वै ब्रह्मणः श्रुतिः ॥१८॥
( महा० शांति अ० ३५ )

इन्द्रमेव प्रवृणुते यद्राजानमिति श्रुतिः ॥४॥
( महा० शांति० अ० ६७ )

तपो यज्ञादपि श्रेष्ठमित्येषा परमा श्रुतिः ॥१७॥
( महा० शांति० अ० ७६ )

दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मादिति श्रुतिः ॥२७॥
( महा० शांति० अ० ६० )

न एतेऽर्थेन वर्तेते धर्मकामविति श्रुतिः ॥१२॥
( महा० शांति० अ० १६७ )

सर्वे लाभाः साभिमाना इति सत्याचते श्रुतिः ॥१०॥
( महा० शांति० अ० १८० )

पिता यदाह धर्मः सवेदेष्वपि सुनिश्चितः ॥१६॥
( महा० शांति० अ० १६५ )

अजश्चाश्वश्चमेषश्च गोश्च पक्षिगणाश्चये ग्राम्यारण्याश्चौषधः प्राण-स्याग मितिश्रुतिः॥१६॥तथैवान्नं ग्रहरहः सायं प्रातर्निरूप्यते॥१६॥
पश्वश्चाथधान्यं च यज्ञस्यां गमितिश्रुतिः॥२०॥
( महा० शांति अ० २६७ )

अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपिहि पठ्यते ॥७॥
(महा० अनु० अ० १९ )

निरिन्द्रिया ग्रशास्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमितिश्रुतिः ॥११॥
( महा० अनु०अ० ४० )

मंत्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः ।
ॐ श्री दुर्गाय सर्व विघ्न विनाशिन्यै नम इति ॥८॥
( ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० २७ )

ॐ सर्वेश्वरे श्वराय सर्व विघ्नविनाशिने मधु सूदनायस्वाहेति" अयं मंत्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः । साम वेदे च कथितः सिद्धा नां सर्व सिद्धिदः॥ ३७ ॥ ( ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ७८ )

क्या कोई माई का लाल पौराणिक पंडित पृथ्वी पर है जो इन श्रुतियों को चारों वेदों में से निकाल कर दिखावे ।

(६१३) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ११ पृ० ३४३ में लिखा है कि हृण्याक्ष को वराह ने मारा उस की कथा इस प्रकार से लिखी है कि यह पृथिवी को चटाई के समान लपेट सिरहाने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथिवी को मुख में धर लिया। वह उठा, दोनों की लड़ाई हुई, वराह ने हृण्याक्ष को मार डाला" यह कथा श्रीमद्भागवत के नाम से लिखी गई है। इस का लिखना झूट नहीं वरना सफेद झूट है। हृण्याक्ष ने न तो पृथिवी को उठाया और न चटाई की भांति लपेटा एवं न वह पृथिवी को लेगया सब बातें झूटी हैं।पृ० ३६ पं० २८।

उत्तर—स्वामी जी ने यह कथा केवल भागवत को लक्ष्य में रख कर नहीं लिखी अपितु भागवतादि समस्त पुराणों को लक्ष्य में रखकर लिखी है इसी लिये समीक्षा करते हुये स्वामी जी लिखते हैं कि "पृथिवी को तो वराह जी ने मुख में रक्खी फिर दोनों किस पर खड़े होकर लड़े। वहां तो और कोई ठहरने की जगह नहीं थी। किन्तु भागवतादि पुराण बनाने वाले पोप जी की छाती पर खड़े होके लड़े होंगे" इस से साबित है कि स्वामी जी का लक्ष्य समस्त पुराणों की समीक्षा है। और पुराणों में यह चीज़ मौजूद है जैसा कि—

चतुर्मुखं प्रीणयित्वैव भक्त्याह्यवध्यत्वं प्राप तस्मान्महात्मा।
ततो भूमिं करव द्वेष्टयित्वा निन्ये तदा दैत्यवर्यो महात्मा॥२०॥

(गरुड० उत्तर० अ० २६)

इस श्लोक से पृथिवी का लपेटना और उठा कर ले जाना दोनों बातें साबित हैं। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है। रही यह बात कि इस श्लोक में चटाई की भांति लपेटना नहीं

लिखा अपितु हाथ की भांति लपेटना लिखा है। श्री मान जी प्रथम तो यह प्रतीत होता है कि यहां पर "कट" के स्थान में ग़लती से "कर" छप गया है और हाथ की तरह लपेटने का मुहावरा बोल चाल में नहीं है। बोलने में चटाई की तरह लपेटना ही आता है दूसरे यदि इसी पाठ को ठीक मान लिया जाये तो भी लपेटना तो मौजूद है। और स्वामी जी के प्रश्न इस सूरत में भी क़ाइम हैं। तीसरे चटाई की भांति पृथिवी का लपेटना सनातन धर्म में लिखा हुआ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। देखिये—

शिविमौशीनरं चापि मृतं सृंजय शुश्रुम।
य इमां पृथिवीं सर्वांचर्मवत् पर्य्यवेष्टयत ॥१॥
(महा० द्रोण० अ० ५८)

य इमान सकलांल्लोकान् चर्मवत् परिवेष्टयेत्।
इच्छन् प्रभुरचिन्त्यात्मा गोविन्द पुरुषोत्तमः॥
(महा० शांति० अ० ११०)

यहां पर चर्म नाम मृगछाला का है जो चटाई के स्थान में इस्तेमाल की जाती है।

यदि भागवत की कथा को देखा जावे तो भी स्वामी जी के आक्षेप क़ाइम ही रहते हैं। जैसे कि आपने भागवत का श्लोक लिखा है कि—

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया।
मृष्णन्तमक्षणास्वरुचोऽरुणश्रिया जहासचाहो वनगोचरोमृगः॥२॥
(भागवत० स्कं० ३ अ० १८)

तहां अपनी डाढ के अग्रभाग से पृथवी को ऊपर निकाल कर धारण करने वाले आस पास के सकल वीरों को जीतने वाले और नेत्रों की आरक्त कान्ति से हिरण्याक्ष के तेज को

लुप्त करने वाले तिन वराह रूप श्री हरि को देख कर वह हिरण्याक्ष दैत्य हंस कर कहने लगा अहो कैसा आश्चर्य्य है कि वन में विचरने वाला यह मृग ॥२॥

स्वामी जी का वह प्रश्न वैसे का वैसा बना हुआ है कि जब वराह ने पृथवी को दांत पर रखा हुआ था तो वराह जी काहे पर खड़े हुऐ थे और हिरण्याक्ष किस चीज़ पर खड़ा था। और लड़ाई किस पर हुई इत्यादि। अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है। और हम यह भी कह सकते हैं। कि भागवत की श्लोक संख्या ( तत्राष्टादश सहस्रं श्री भागवत मिष्यते ॥ भागवत स्कं० १२ अ० १३ श्लो० ६ ) अठारह हज़ार लिखी है किंतु वर्तमान भागवत में तेरह हज़ार के लग भग श्लोक मिलते हैं। अतः पृथवी का चटाई की भांति लपेटना तथा खंभे पर कीड़ियों का चलना उन पांच हज़ार श्लोकों में था कि जिन को आपने लुप्त कर दिया है।

(६१४) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु०११ पृ० ३४३ में लिखा है कि "तब वह ( प्रह्लाद ) अध्यापकों से कहता था मेरी पट्टी में राम राम लिख देओ। जब उसके बाप ने सुना उसने कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है। छोकरे ने न माना। तब उसके बापने उसको बांध के पहाड़ से गिराया;कूप में डाला परन्तु उस को कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खंभा आग में तपाके उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इस को पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला मन में शंका हुई कि बचूंगा वा नहीं। नारायण ने उस खंभे पर छोटी २ चीटियों की पंक्ति चलाई"। भागवत में यह कहीं नहीं लिखा कि प्रहाद कहता था मेरी पट्टी पर राम राम लिख दो

और न भागवत में खंभे का गरम करना लिखा है। एवं न उसके ऊपर चींटियों का चलना। पृ० ३८ पं० २६।

उत्तर—हम प्रश्न नं० ६१३ में लिख आये हैं कि इस प्रकरण में स्वामी जी का लक्ष्य केवल भागवत की समालोचना करना ही नहीं है अपितु भागवतादि समस्त पौराणिक ग्रन्थों की समालोचना करना स्वामी जी का लक्ष्य है। जैसा कि स्वामी जी का लेख है कि—

"सब पुराण सब उप पुराण तुलसीदास कृत भाषा रामायण रुक्मिणी मंगलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं"

( सत्यार्थ० समु० ३ परित्याग योग्य ग्रन्थ विषय )

अतः यहाँ पर स्वामीजी भागवत का खंडन करते हुये तत् संम्बन्धी भाषा ग्रन्थों में वर्तमान कथाओं का भी खंडन करते हैं। और पौराणिक भाषा ग्रंथों में यह चीज मौजूद है। और पौराणिक लोग अपने ड्रामों नाटकों सिनेमाओं में भी बड़े फखर के साथ यह सीन दिखाते हैं। हम आपको पौराणिक भाषा ग्रन्थों में से इस विषय में प्रमाण देते हैं जैसे कि—

(१) "बाल प्रहाद" ला. कृष्ण चन्द्र जैवा कृत पुस्तक में गरम खंभे पर चलती कीड़ी दिखला कर लिखा है "प्रहाद और जलता हुआ लोह स्तम्भ" हैं। मैं यह क्या देख रहा हूं। एक छोटी सी कीड़ी इस गरम और जला देने वाले स्तम्भ पर चलती है और नहीं जलती"

(२) गुजराती अखबार बम्बई ३-१०-२३ साप्ताहिक अंक पृ० १४८५ में लिखा है कि

"प्रहाद के लिये खंभे में कोड़ियों में ईश्वर का दर्शन"

(३) "सिलसिला धर्म प्रचार ट्रैक्ट न० २" "स्वामी बलीनाथ जी योगेश्वर टिल्ला गुरु गोरख नाथ कृत" "कभी तो नर नारायण होकर योगाभ्यास करता है और कभी च्यूंटी रूप रख कर लोहे के आग समान सुख खंभे पर चलता हुआ दिखाई देता है"

(४) "प्रह्ला
"स्तून के
देख कर प्रह्लाद

(५) "मित
काफ़

दिलों

फ़ीड़ी

देके हौसला भक्त निहाल कीता ॥
मिलखी राम जपफा पाया दौड़ के ते।
ठंडा ठार चा दीन दयाल कीता ॥

(६) "राजकुमार प्रह्लाद" श्रीयुत प्रेमी कृत

"सिपाही जिस वक्त प्रहाद को खंबे से बांधने के लिये खैंच रहे थे। प्रह्लाद को इस जलते हुये लोहे के बदन पर एक च्योंटी चलती हुई दिखाई दी"

(७) "प्रहाद भक्त केशव चन्द्र कृत

"जब थंभ के नज़दीक हुआ तो क्या देखता है कि उस लोहे के थंभ पर जो आग की तरह सुरख था एक च्यूंटी फिर रही है"

(८) कीर्तन प्रह्लाद भक्त" स्वामी बली नाथ जी योगीश्वर कृत—

"जब प्रह्लाद ने खंभ निहारा। कीडी एक फिरे तिहवारा।
कीडी देख प्रह्लाद आनन्दे। जले खंभ सों भेंटें कन्दे॥

जब प्रह्लाद जी ने कीडी देखी लाल खंभ पर फिर रही तो खुश होकर खंभ को गले लगाने लगे"

इत्यादि २ सनातन धर्म्म के अनेक भाषा ग्रन्थों में यह घटना भरी पड़ी है और राम नाम तो प्रह्लाद प्रत्येक कार्य्य में प्रयुक्त करते थे।

अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है क्या पौराणिक लोगों में यह इख़लाक़ी जुरअत है कि वे उपरोक्त ग्रन्थ कर्त्ताओं पर मुकद्दमा चलाकर इस घटना को झूटी साबित करके दिखावें।

(६१५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३८४ में लिखा है कि "रथेन वायु वेगेन जगाम गोकुलं प्रति" अक्रूर जी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़ने वाले घोड़ों के रथ पर बैठ के सूर्य्योदय से चले चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुंचे। अथवा घोड़े भागवत बनाने वाले की परिक्रमा करते रहे होंगे। या मार्ग भूल कर भागवत बनाने वाले के घर में घोड़े हांकने वाले और अक्रूर जी आकर सोगये होंगे" ऊपर लिखा हुआ आधा श्लोक भागवत में नहीं है। (पृ० ३२पं०१६)

उत्तर—भागवत में तो सब कुछ मौजूद है किन्तु यदि आप को नजर न आवे तो स्वामी जी का क्या कसूर है। देखने की कृपा करें।

रथेन वायु वेगेन कालिंदीमघनाशिनीम्॥

(भागवत० स्क० १० अ० ३६ श्लो० ३६)

इससे रथ का तेज़ चलने वाला होना सिद्ध है।

उषित्वा रथमास्थाय प्रययौनन्दगोकुलम् ॥

( भागवत० स्कं० १० अ० ३८ श्० १ )

इस से प्रातः काल चलना सिद्ध है।

रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्य्य श्चास्त गिरीं नृप।

( भा० स्कं० १० अ० ३८ श्० २४ )

इससे सायङ्काल पहुंचना साबित है।

अब बतलाने की कृपा करें कि स्वामी जी ने क्या गलत लिखा है! "रथेन वायु वेगेन" यह पाठ तो हूबहू भागवत में मौजूद है और "जगाम गोकुलं प्रति" के स्थान में "रथेन गोकुलं प्राप्तः" और "प्रययौ नंद गोकुलम्" मौजूद हैं। "गोकुलं" इन दोनों वाक्यों में मौजूद है। और "जगाम" के स्थान में "प्राप्तः" और "प्रययौ" पड़े हुये हैं, जिनके अर्थ एक ही हैं।

स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य होने पर भी इस से इनकार करना जनता को धोका देना नहीं तो क्या है।

(६१६) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृ० ३२७ में लिखा है कि—

" अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।

सेतु बंध इति ख्यातम्॥ वाल्मी० लं० का० ॥"

यहां स्वामी जी ने वाल्मीकि के श्लोकों को छिपा कर केवल तिटंगा श्लोक लिखा है। पूरा श्लोक इस लिये नहीं लिखा कि हमारे जाल की कलई खुल जायेगी। वाल्मीकि का लेख यह है।

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतु बंध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥२०॥
एतत् पवित्रं परमं महा पातक नाशनम् ।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसाद मकरो द्वि भुः ॥२१॥

(वाल्मी० युद्ध० अ० १२५)

कहिये स्वामी जी ने इन सब बातों को दबा कर तीन पाद का श्लोक लिख संसार को धोके में डालने के लिये असत्य लिखने पर कमर बाँधी या नहीं। पृ० ४१ पं० १।

उत्तर—स्वामी जी ने संक्षेप करने के विचार से थोड़ा पाठ दिया है। वरना पूरे पाठ से भी रामेश्वर का स्थापित करना और रामचन्द्र जी का मूर्ति पूजा करना साबित नहीं होता। क्यों कि यह पाठ उस समय का है जब कि लंका को विजय करके राम अयोध्या को वापस विमान पर चढ कर जा रहे थे। और सीता को पृथिवी के पदार्थ दिखा रहे थे। यदि उस स्थान में रामेश्वर की स्थापना करके राम ने उस की पूजा की होती। तो पुल बांध कर लंका पर चढ़ाई करने के समय उस का वर्णन आना चाहिये। था किंतु उस स्थान में वाल्मीकि रामायण में रामेश्वर के स्थापन करने और उसकी पूजा का नामो निशान भी नहीं है। जब जाते हुये ही उसका अभाव है तो आते हुये उस की मौजूदगी की कल्पना करना महज पागलपन है। हाँ यहां पर उस पुल का वर्णन अवश्य है। जिसे बांध कर राम ने लंका को विजय किया। और इन श्लोकों में उसी पुल की स्तुति वर्णन की गई है। इन श्लोकों का अर्थ यथार्थ रूप से इस प्रकार है कि—

"यह तो विस्तृत समुद्र के तराने वाला पुल दीख रहा है। इस का नाम सेतुबंध प्रसिद्ध है यह सारे संसार के स्तुति करने के क़ाबिल है ॥२०॥

यह पुल परम पवित्र है और महापातकी रावण के नाश करने वाला है। यहां पर पूर्व अर्थात जाते समय व्यापक परमात्मा ने हमारे पर कृपा की जिस से हम इस पुल के बांधने में समर्थ हो सके यह अभिप्राय है ॥२१॥

कहिये महाराज इस में स्वामी जी ने क्या झूट लिखा है। क्या किसी पौराणिक में दम है कि जो इस लेख से शिव लिंग की पूजा सिद्ध कर सके।

(६१७) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३६९ में लिखा है कि—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानी सन्त की महिमा वेद न जाने नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर।

स्वामी जी का लिखा हुआ यह पाठ सुख मनि में नहीं है। स्वामी दयानन्द जी ने झूट लिखा है। पृ० ४२ पं० ५।

उत्तर—स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है वह गुरुग्रन्थ साहिब का भाव लेकर लिखा है। जैसा कि—

(१) वेद पढ़त ब्रह्मा मरे ( सत्यार्थ प्रकाश )

वेद पढे पढ़ ब्रह्मे जन्म गंवाया ॥१॥

(आसा श्री कबीर जी की बाणी। भक्तां दी बाणी।

पृ० ६६ कैकसटन प्रेस अनारकली लाहौर।)

यहां पर थोड़ा सा पाठ भेद तो है। परन्तु अभिप्राय में कोई भेद नहीं है।

(२) चारों वेद कहानी ( सत्यार्थ प्रकाश )

पेद कतेब इफ़तरा भाई दिल का फिकर न जाई ॥१॥

तिलंग वाणी कबीर जी की। भक्तां दी बाणी पृ० १८०
कैकसटन प्रेस अनारकली लाहौर।
यहां पर इफतरा नाम झूटी कहानियों का है।
साम कहे सेतम्बर स्वामी सच में आछे साच रहे।
सभ को साच समावे। ऋग कहे रहा भरपूर।
राम नाम देवा में सूर। नां लये पराछित जाहि।
नानक तउ मोखंतर पाहि। यजु में जोरि छली चन्द्रावल
कान्ह कृष्ण यादव भये। पार जात गोपी लै आया
बिन्द्रावन में रंग किया।

कलि मांहि वेद अथर्वन हुआ नाम खुदाई अल्ला भया।
नील वस्त्र लै कपड़े पहरे तुर्क पठानो अमल किया॥
(आसादीवार १३)

यहां पर वेदों को कहानियां ही बतलाया गया है।
(३) सन्त की महिमा वेद न जाने (सत्यार्थ प्रकाश)
साध की महिमा वेद न जाने। (सुखमनी ।७।८)
यहां पर सन्त के स्थान में साध है अर्थ एक ही है।
(४) नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर (सत्यार्थ प्रकाश)
नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर। (सुखमनी ८६)
यहां पर अक्षरशः एक ही पाठ है।

अब बतलाने की कृपा करें कि स्वामी जी ने क्या झूट लिखा है। इस से साफ साबित है कि स्वामी जी के संपूर्ण लेख सर्वथा सत्य हैं। हां अन्य आचार्यों की भांति स्वामी जी ने पुस्तकों का भाव अपने शब्दों में रख लिया है। शब्दों में चाहे फर्क हो किंतु अर्थ में फर्क नहीं है इस से स्वामी जी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। और स्वामी जी के किये हुये आक्षेपों का भी कोई समाधान नहीं हो सकता।

स्वामी जी ने तो जो कुछ लिखा है उस अभिप्राय का पाठ ग्रन्थ साहिब में मौजूद है। किंतु ग्रन्थ साहिब में जो वेदों के विषय में लिखा है वह वेदों से नहीं दिखाया जा सकता जैसे कि साम में श्वेताम्बर स्वामी का वर्णन ऋग्वेद में राम नाम स्मरण की आज्ञा, यजुर्वेद में चन्द्रावल का जबरन हरण करना, कृष्ण का गोपियों से रमण करना, तथा अथर्ववेद में अल्ला का वर्णन तथा नीले वस्त्र पहनने की आज्ञा और मुसलमानों के राज का वर्णन नहीं दिखाया जा सकता तथा चारों वेदों का चार युगों में प्रकट होना भी ग़लत है इस के अतिरिक्त ग्रंथ साहिब में लिखा है कि—

"गेंडे मार हो यज्ञ कीना देवतियां दी बाणी"

क्या किसी भी वेद में गेंडे मार कर हवन करना दिखाया जा सकता है, हर्गिज भी नहीं। अतः स्वामी जी ने जो ग्रन्थ साहिब के विषय में लिखा है वह सर्वथा सत्य तथा ग्रन्थ साहिब में जो वेदों के विषय में लिखा है वह क़तई ग़लत है।

किंतु आप यह तो बतलावें कि आप को सिक्खों का वकील किस ने बनाया है। यदि ज़रूरत हुई तो सिक्ख हमारे से पूछ लेंगे। आप कौन होते हैं। "मान न मान मैं तेरा महमान" "मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त" यह दोनों जन श्रुतियां आप पर ही घटित होती हैं। और फिर आप के हां तो सिक्खों के गुरु नानक देव जी के विषय में अत्यन्त ही झूट लेख लिखा हुआ है जैसे कि—

प्रत्यूषश्चैव पांचाले वैश्य जात्यां समुद्भवः।
मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ॥८६॥
रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः।

स वै म्लेच्छान् वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गम दर्शयत् ॥८७॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १७)

भाषार्थ— प्रभात काल में पंजाब देश में वैश्य जाति में एक चौकीदार के पुत्र नानक नाम से मशहूर पैदा हुये ॥८६॥ वह नानक रामानन्द के पास जा कर उस के शिष्य बनकर मुसलमानों को वश में करके उन को सूक्ष्म मार्ग दिखाने लगे ॥ ८७ ॥

इस लेख में निम्न लिखित सफेद झूट हैं।

(१) गुरु नानक जी वैश्य जाति में पैदा नहीं हुये अपितु उन का पिता कालू खतरी था।

(२) उन का पिता चौकीदार न था अपितु दुकानदार था।

(३) गुरु नानक जो कभी भी रामा नन्द के चेले नहीं बने।

क्या कोई पौराणिक वीर किसी पौराणिक जननी ने पैदा किया है जो उपरोक्त बातों को सिक्ख इतिहास से साबित करके दिखा सके।

---

## आचार्यों का मंत्र निर्माणाधिकार

(६१८) प्रश्न—ब्राह्मण और अनेक संहिताओं को स्वामी जी ने वेद नहीं रक्खा। ऐसा लिखने पर केवल चार किताब रह गई। इनमें पूरे मन्त्र नहीं। इस कारण स्वामी दयानन्द जी अपने आप बनावटी जालो मंत्र बनाकर आर्य्य समाजियों को यह समझा देते हैं कि देखो बेटाओ ये मन्त्र है।

(पृ० १४१ पं० २०)

उत्तर—कहिये महाराज! स्वामी जी तो ब्राह्मण ग्रन्थों और अनेक शाखाओं को वेद नहीं मानते थे किन्तु आपके

आचार्य आश्वलायन, पारस्कर, गोभिल, व्यास आदि तो आप के ख्याल में ब्राह्मण ग्रन्थों और शाखाओं को वेद मानते थे। फिर उन्होंने अपने ग्रंथों में अनेक मन्त्र बनाकर क्यों रखे हैं। वास्तव में बात यह है कि प्रत्येक आचार्य को यह हक हासिल है कि वह कर्म काण्ड में प्रयोग करने के लिये मन्त्रों का निर्माण कर सके। शरत यह है कि उन मन्त्रों की शिक्षा वेद के विरुद्ध न हो। इस अधिकार को सब आचार्यों की भांति स्वामी दयानंद जी ने भी इस्तेमाल किया है। जैसा कि हम आगे चल कर बतलायेंगे।

इस बारे में प्रमाण भी है कि—

ऋचो यर्जूषि सामानि निगदा मंत्राः।

(कात्यायन श्रौत सूत्र १।३।१)

अर्थ—चारों वेद के तथा आचार्यों से कर्म काण्ड में कहे सरल वाक्य मंत्र कहाते हैं।

(६१६) प्रश्न—सन्ध्या में जो "ओं वाक् वाक्" इत्यादि मंत्र स्वामी जी ने दिया है। कृपा कर आर्य समाजी बतलावें। यह मंत्र कौन वेद का है। पृ० १४२ पं० १।

उत्तर—सन्ध्या में इस मंत्र को एक मंत्र नहीं लिखा। अपितु लिखा है कि "इन्द्रिय स्पर्श मन्त्राः" इस लेख से साबित है कि ये अनेक मंत्र हैं। और ये पूर्व आचार्यों ने कर्म कांड में प्रयुक्त करने के लिये वेद मंत्रों का आशय लेकर निर्माण किये हैं। और वे मंत्र इस प्रकार से हैं कि—

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः ओं चक्षुः चक्षुः।
ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः।
ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकर पृष्ठे।

जिन वेद मन्त्रों का भाव लेकर ये मन्त्र निर्माण किये गये हैं वे वेद् मन्त्र ये हैं कि—

शिरोमे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥५॥
जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वाराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अंगुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥६॥
बाहूमेबलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥७॥
पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳ सौ श्रोवाश्च श्रोणी।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशोमेऽङ्गानि सर्वतः ॥८॥
नाभिर्मेचित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्।
आनन्दनन्दा वाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जंघाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मिविशिराजा प्रतिष्ठितः ॥९॥

(यजु० २०)

इन मन्त्रों को पढ़ने से आपको ज्ञात हो गया होगा कि विवादास्पद मंत्र सर्वथा इन वेद मन्त्रों का अनुवाद मात्र हैं। स्वामी जी ने स्पर्शेंद्रिय के इन वाक् वाक् आदि मंत्रों को कहीं भी वेद के नाम से नहीं लिखा। फिर आप का यह प्रश्न करना कि यह कौन से वेद का मंत्र है सर्वथा अनुचित है। हां ये मंत्र सर्वथा वेदानुकूल हैं। क्या कोई जीता जागता पौराणिक पण्डित संसार में मौजूद है जो इन मंत्रों को वेद विरुद्ध साबित कर सके। ये मंत्र स्वामी जी के अपने कल्पित नहीं हैं। अपितु आप के कर्म कांड के ग्रंथों में भी मौजूद हैं। इस समय हमारे सामने आप के कर्मकांड का ग्रंथ "चतुर्विंशति गायत्री" मौजूद है। जोकि महेश प्रसाद द्वारा सत्य नाम प्रेस बनारस सिटी में छपा है। इस ग्रंथ में पृ० २ पर ये मंत्र इस प्रकार से मौजूद हैं कि—

ओं वाक् वाक्; ओं प्राणः प्राणः, ओं चक्षुः चक्षुः ओं। श्रोत्रं श्रोत्रम्, ओं नाभौ, ओं कण्ठे; ओं शिरसि ॥ ओं करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः।

तथा "यजुर्वेदीय त्रिकाल संध्या बम्बई पुस्तक एजंसी १६५।१ हरिसन रोड कलकत्ता में ये मंत्र हू बहू पृष्ठ ६ पर दिये गये हैं। इत्यादि इत्यादि।

इस से साफ साबित है कि स्वामी जी ने इन मंत्रों को वेदानुकूल समझ कर संध्या में रख दिया है। आप के विचार से यदि वेद के मंत्र ही संध्या में लगाये जा सकते हैं तो आप कृपया बतलावें कि आप की संध्या में जो मंत्र आता है कि—

ओं सूर्य्यश्चमामन्युश्च मन्युपतयश्चमन्यु कृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षंतां यद्रात्र्यापापमाकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्य्यो ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥

(पञ्चमहायज्ञ विधिः निर्णय सागर छापाखाना बम्बई। पं० वल्लभराम जी कृत भाषा सम्बत् १६६९ सन् १६१३)

कृपया बतलावें कि चारों वेदों में से यह कौन से वेद का मंत्र है, और चतुर्विंशति गायत्री में जो—

ओं वृषभानुजायै विद्महे कृष्ण प्रियायै धीमहि तन्नो राधा प्रचोदयात् ॥७॥

यह राधा गायत्री किस वेद में आती है। क्या कोई पौराणिक पंडित इस राधा गायत्री को वेदानुकूल साबित करने का साहस करेगा ?

(६२०) प्रश्न—स्वामी जी ने संध्या में जो "ओं भूः पुनातु शिरसि" इत्यादि मन्त्र दिया है। यह मंत्र कौन वेद का है। पृ० १४२ पं १६।

उत्तर—आपका यह पूछना क़तई फ़जूल है। कि "यह मंत्र कौन वेद का है" क्योंकि स्वामी जी ने ये मन्त्र भी संध्या में वेद के नाम से नहीं दिये। चूंकि ये मंत्र वेदानुकूल थे अतः उन्हों ने इन मन्त्रों को संध्या में प्रयुक्त किया। जैसा कि—

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्यां। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

ये मन्त्र वेद के निम्न मन्त्रों के अनुकूल हैं।

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहुबाह्वोर्बलम् ॥१॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः। प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानि भृष्टः ॥२॥ अथर्व० १६।६०॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रंते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि ॥१४॥ [ यजु० ६।१४ ]

इन मन्त्रों को पढ़ कर आप को निश्चय हो गया होगा कि विवादास्पद मंत्र महज़ इन मंत्रों का अनुवाद मात्र हैं। अतः "भूः पुनातुशिरसि" इत्यादि मंत्र सर्वथा वेदानुकूल हैं तथा "यजुर्वेदीय त्रिकाल संध्या बम्बई पुस्तक एजेंसी १६५।१ हरिसन रोड कलकत्त" में ये मंत्र हूबहू पृष्ठ ७ पर मौजूद हैं। क्या कोई जीता जागता पौराणिक पंडित पृथिवी पर मौजूद है जो इन मन्त्रों को वेद विरुद्ध साबित करने के लिये मैदान में आये। आर्य्य समाज की सन्ध्या वैदिक है क्योंकि उसमें मौजूद वेदानुकूल हैं। यदि आपके विचार से मन्त्र वेद के ही होते हैं तो आप बतलावें कि आपकी सन्ध्या में जो—

ओं आपः पुनन्तु पृथिवीम्पृथिवी पूता पुनातु माम् ।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिं ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥
यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम ।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा ॥
( पंचमहायज्ञ विधि यथा पूर्वम् )

यह मन्त्र मौजूद है और चतुर्विंशति गायत्री में जो—
ओं तत्पुरुषाय विद्महे स्वर्ण पक्षाय धीमहि ।
तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥१४॥

यह गरुड गायत्री लिखी है ये दोनों मन्त्र किस वेद के हैं। क्या किसी पौराणिक पंडित में साहस है कि वह गरुड़ गायत्री को वेदानुकूल साबित कर सके ।

(६२१) प्रश्न—स्वामी दयानन्द ने जो देव तर्पण में सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६७ पर "ओं ब्रह्मादयोदेवास्तृप्यन्ताम्" इत्यादि चार मंत्र लिखे हैं। ये किस वेद के हैं। ( पृ० १४२ पं० २४ )

उत्तर—स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि—
ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादि देव पत्न्यस्तृप्यन्ताम् ।
ब्रह्मादि देव सुतास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादि देव गणास्तृप्यन्ताम्॥

'विद्वाꣳसोहि देवाः' यह शतपथ ब्राह्मण ( ३।७।३।१० ) का वचन है– जो विद्वान हैं उन्हीं को देव कहते हैं । जो साँगोपांग चार वेदों के जानने वाले हों उनका नाम ब्रह्मा, और जो न्यून पढे हों उन का भी नाम देव अर्थात् विद्वान हैं। पुउनके सदृश उनकी स्त्री विदुषी ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य त्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों" उनकी सेवा करना है। उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है । स्वामी जी का यह संपूर्ण लेख सर्वथा वेदानुकूल है ।जैसा कि–

आवो देवास ईमहे वामम्प्रयत्यध्वरे आवो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥ यजु० ४।५ ॥

अनुत्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । सादेवि देवममच्छेहीन्द्राय सोमं रुद्रास्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोम सखा पुनरेहि ॥ यजु० ४।२०॥

इत्यादि मंत्रों को देखने से पता लगता है कि स्वामी जी के लिखे मंत्र हूबहू इन वेद मंत्रों का अनुवाद ही हैं । क्या किसी पौराणिक रमणी ने कोई ऐसा वीर पुत्र पैदा किया है जो स्वामी जी के लिखे मंत्रों को वेद विरुद्ध साबित कर सके । ये मंत्र स्वामी जी के ही कल्पित नहीं है । अपितु पूर्व आचार्यों के बनाये मंत्रों की केवल प्रतिलिपिमात्र ही हैं जैसा कि आप की पंचमहायज्ञ विधि में भी ये मंत्र मौजूद हैं कि—

ओं विश्वे देवास्तृप्यन्ताम् । ओं ब्रह्मातृप्यंताम् ।
ओं रुद्रस्तृप्यन्ताम् । ओं प्रजापतिस्तृप्यन्ताम् ।
ओं पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम् । ओं इतराचार्यास्तृप्यन्ताम् ।
ओं देव्यस्तृप्यन्ताम् । ओं देवानुगास्तृप्यन्ताम् । ओं मनुष्या स्तृप्यन्ताम् (पंचमहा यज्ञ विधि देव तर्पण)

हां आपकी पंचमहा यज्ञ विधि में वेद विरुद्ध देव तर्पण के मंत्र मौजूद हैं । जैसा कि—

ओं दुर्मुखास्तृप्यन्ताम् । ओं विघ्नकर्तारस्तृप्यन्ताम् ।
ओं यक्षास्तृप्यन्ताम् । ओं रक्षांसि तृप्यन्ताम् ।
ओं पिशाचास्तृप्यन्ताम् ।

क्या कोई पौराणिक इन देव तर्पण के मंत्रों को वेदानुकूल साबित करने में समर्थ हैं ?

(६२२) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६७ में ऋषि तर्पण लिखते हुए जो "ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्" इत्यादि चार मन्त्र लिखे हैं। ये किस वेद के हैं। पृ० १४३ पं० ८।

उत्तर—स्वामी जी का लेख इस प्रकार से है कि—

"ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्य स्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिग-णास्तृप्यन्ताम्॥

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उन के सदृश विद्या युक्त उन की स्त्रियां कन्याओं को विद्या दान देवें, उन के तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उन के समान उन के सेवक हों उन का सेवन और सत्कार करना ऋषितर्पण है"।

स्वामी जी का उपरोक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है जैसा कि-

ऋषिभ्यः स्वाहा॥ अथर्व० १६।२२।१४॥

ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभु र्धीर उशना काव्येन॥
साम० उत्तर० प्र० १ अर्धप्र० १ मं० १०॥

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम्॥
साम० उत्तर० प्र० ५ अर्द्ध प्र० १ मं० १॥

ऋषिं नरावंहसः पांचजन्यम्॥ ऋ० १।११७।३॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येकः॥ ऋ० ८।६।४१॥

इत्यादि वेद मन्त्रों के देखने से पता लगता है कि स्वामी जी का लेख इन वेद मंत्रों के सर्वथा अनुकूल है। यदि दम हो तो कोई पौराणिक पंडित स्वामी जी के मन्त्रों को वेद विरुद्ध साबित करने के लिये मैदान में आये?

ये मन्त्र वेद के नहीं हैं और न ही स्वामी जी ने इनको वेद के नाम से कहीं दर्ज किया है। हां ये मंत्र वेद के अनु-

कूल हैं। ये मंत्र केवल स्वामी जी ने ही नहीं लिखे । अपितु आप की पंच महा यज्ञ विधि के ऋषि तर्पण में भी इस प्रकार के मंत्र मौजूद हैं जैसा कि—

ओं मरीचिस्तृप्यताम् । ओं अत्रिस्तृप्यताम् ।
ओं अंगिरास्तृप्यताम् । ओं पुलस्त्यस्तृप्यताम् ।
ओं पुलहस्तृप्यताम् । ओं क्रतुस्तृप्यताम् ।
ओं प्रचेतास्तृप्यताम् । ओं वशिष्ठस्तृप्यताम् ।
ओं भृगुस्तृप्यताम् । ओं नारदस्तृप्यताम् ॥

कृपया आप बतलावें कि ये कौन से वेद के मंत्र हैं। अतः हमारा पक्ष ठीक है कि आचार्यों को यह हक़ है कि वह कर्म कांड में प्रयुक्त करने के लिये मंत्र बना सकते हैं । बशर्तेकि वे वेद के विरुद्ध न हों। इसी हक़ को ऋषिदयानन्द जी ने इस्तेमाल करते हुए यह देवतर्पण, ऋषितर्पण तथा पितृ तर्पण के मन्त्र लिखे हैं जोकि सर्वथा वेदानुकूल हैं।

(६२३) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६८ में पितृ तर्पण लिखते हुए "ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्" इत्यादि जो १७ मंत्र लिखे हैं। ये किस वेद के मन्त्र हैं।पृ० १४३ पं १८।

उत्तर—ये वेद के मंत्र नहीं हैं। न वेद के नाम से स्वामी जी ने इन को कहीं लिखा है। हां ये ऋषि कृत वेदानुकूल मंत्र हैं। स्वामी जी का लेख इस प्रकार है —

ओंसोमसदःपितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्, बर्हिषदःपितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाःपितरस्तृप्यंताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। [ सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्।] यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं

तर्पयामि। [ प्रपितामहाय स्वधानमः प्रपितामहं तर्पयामि। ] मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि। पितामह्य स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। [ प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि। ] स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि सम्बान्धभ्यः स्वधा नमः सम्बंधिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥इति पितृ तर्पणम्॥

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थे विद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थविद्या में निपुण हों वे सोमसद। "यैरग्ने विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जानने हारे हों वे अग्निष्वात्त। "ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदंति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद्। "ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पांति पिबंति वा ते सोमपा" जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को देके रोग नाशक हों वे सोमपा। "ये हविर्होतुमत्तमहं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः' जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करने हारे हों वे हविर्भुज। "यः आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षंति वा पिबंति त आज्यपाः" जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृतदुग्धादि खाने और पीने हारे हों वे आज्यपाः। "शोभनः काले विद्यते येषांते सुकालिनः' जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्। "ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः" जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करने हारे न्यायकारी हों वे यम। "यः पाति स पिता" जो संतानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक

हो वह पिता।"पितु पिता पितामहःपितामहस्य पिता प्रपितामहः" जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामहा का पिता हो वह प्रपितामह "या मानयति सा माता" जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान करे वह माता।"या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही" जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बंधी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सब को अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुंदर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्म से उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्म से प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है॥

स्वामी जी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है जैसे कि—

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम्।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥यजु० २।३४

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देव यानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधयामदन्तोऽधिब्रुवन्तुतेऽवन्त्वस्मान्॥
यजु० १९।५८॥

बर्हिषदः पितरऊत्यर्वागिमा वो हव्या च कव्या जुषध्वम्।
॥ यजु १९।५९ ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।

अक्षन् पितरोऽमीमदंत पितरोऽतीतृपंत पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥
यजु० १९।३६॥

इत्यादि अनेक मंत्रों के पढ़ने से पता लगता है कि स्वामी जी के लिखे हुए मन्त्र महज़ इस प्रकार के वेद मन्त्रों का अनुवाद मात्र ही हैं।

ये मंत्र स्वामी जी ने ही कल्पित नहीं किया अपितु आप की पंच महा यज्ञ विधि के अंदर भी पितृ तर्पण प्रकरण में इस प्रकार के मंत्र मौजूद हैं जैसे कि—

सोमस्तृप्यताम् यमस्तृप्यताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपा, पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदःपितरस्तृप्यन्ताम्। अमुकगोत्रःअस्मत्पिता अमुकशर्मावसुरूपस्तृप्यताम्। अमुक गोत्रः अस्म त्पितामहः। अमुक गोत्रः अस्म त्प्रपितामहः। अमुक गोत्रा अस्मन्माता। अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही। अमुक गोत्रा अस्म त्प्रपितामही। अमुक गोत्रा अस्मत्पत्नी। अमुक गोत्राः अस्म त्सुतः। अमुक गोत्रः अस्मत् श्वसुरः, गुरु,शिष्य, मित्र, आप्त, भ्राता, संबंधी, सगोत्र, तृप्यताम्॥

इत्यादि आप बतलावें कि ये कौन से वेद के मंत्र हैं।

(६२४) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६९ में "ओं अग्नये स्वाहा" इत्यादि १० मन्त्र दिये हैं। ये मन्त्र वेद के नहीं हैं। किंतु यहां पर यह गृह्य क्यों माना। न वेद में वैश्व देव का विधान है और न उस के मन्त्र। पृ० १४५ पं० २६।

उत्तर—यह ठीक है कि ये वेद के मन्त्र नहीं हैं। स्वामी जी ने इन को वेद के नाम से लिखा भी नहीं। आप ने इस बात को स्वयं तसलीम कर लिया है कि ये मंत्र गृह्य सूत्र में मौजूद हैं। तो क्या गृह्य सूत्र वेद के विरुद्ध हैं यदि विरुद्ध है तो वह आप को कैसे प्रमाण है। और यदि अनुकूल है तो

स्वामी जी के इन मन्त्रों के देने पर आप को शंका क्यों है ! देखिये वेद में वैश्वदेव का विधान मौजूद है जैसे कि—

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥१८॥ ( यजु० ४ )

वश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्वस्तन्वोवीत पृष्टाः ॥ यजु० १९।४४ ॥

इन मंत्रों में वैश्वदेव का विधान मौजूद है । इस की व्याख्या मनु जी महाराज ने की है जैसा कि—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधि पूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥८४॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्च व देवेभ्यो धन्वन्तरय एवच ॥८५॥
कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ।
सह द्यावा पृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृते ऽन्ततः ॥८६॥(मनु० ३)

"स्वाहाकार प्रदान होमः" इति कात्यायन स्मरणादादौ' अग्नये स्वाहा सोमायस्वाहेति निरपेक्षदेवताकं होम द्वयं कृत्वा अग्निषोमाभ्यां स्वाहेति समस्त देवताकं होमं कुर्यात् । ततो विश्वेभ्यो देवेभ्यो धन्वन्तरये कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावा-पृथिवीभ्याम् अग्नये स्विष्टकृते इत्येवं स्वाहाकारान्तान् होमान् कुर्यात् ( कुल्लूक भट्ट )

इन मनु की आज्ञा श्लोकों के आज्ञानुसार कुल्लूक भट्ट ने मंत्र बनाकर अपनी टीका में रख दिये हैं। इस वेद तथा मनु की आज्ञानुसार ही स्वामी जी ने लिखा है कि—

"जो कुछ पाठ शाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मंत्रों से विधि पूर्वक होम नित्य करे—

ओं अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्निषोमाभ्यां स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुहूै स्वाहा अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा॥

इन प्रत्येक मंत्रों से एक २ बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े" इस से साबित है कि स्वामी जी का लेख वेदमनुस्मृति और गृह्यसूत्रों के अनुकूल है। क्या कोई पौराणिक पंडित स्वामी जी के इस लेख को वेद विरुद्ध साबित करने का साहस कर सकता है।

(६२५) प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश पृ० १०० में जो "ओं सानुगेन्द्राय नमः" इत्यादि १५ मंत्र दिये हैं वे किस वेद के मंत्र हैं

[ पृ० १४६ पं० १० ]

उत्तर—न स्वामी जी ने इन को वेद के नाम से लिखा है और न ये वेद के मंत्र हैं। हां ये ऋषि कृत तथा वेदानुकूल मंत्र हैं। वेद की आज्ञा है कि—

अहरहर्बलिमित्ते हरंतो अश्वायेव तिष्ठते घासमग्रे।
रायस्पोषेण समिषामदंतो मा तेऽग्ने प्रतिवेशारिषाम।

[ अथर्व० १६।५५।७। ]

यह वेद मंत्र बलिवैश्वदेव की आज्ञा देता है। इस पर मनु जी महाराज ने वेदानुकूल विधि लिखी है कि—

एवं सम्यग्घविर्हुत्वासर्वदिक्षु प्रदक्षिणम्।
इंद्रांतकाप्पतींदुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत्॥८८॥
मरुद्भ्य इति तु द्वारिक्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत्॥८८॥
उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तु मध्ये बलिं हरेत्॥८९

विश्वेभ्य श्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत्।
दिवाचरेभ्योभूतेभ्यो नक्तं चारिभ्य एव च ॥६०॥
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्म भूतये।
पितृभ्योबलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥६१॥ [मनु० ३ ]

प्राच्यामिंद्राय नमः इंद्र पुरुषेभ्यो नमः। दक्षिणस्यां यमाय नमःयम पुरुषेभ्यो नमः। पश्चिमायां वरुणाय नमः। वरुण पुरुषेभ्योनमः। उत्तरस्यां सोमाय नमः सोमपुरुषेभ्यो नमः मरुद्भयो नमः इति द्वारे बलिंदद्यात्। जले अद्भय इति। मूसलोलूखले वनस्पतिभ्य इति बलिं दद्यात् उत्तर पूर्वस्यां दिशि श्रियै बलिं दद्यात्। दक्षिण पश्चिमायां दिशि भद्रकाल्यै। ब्रह्मणे वास्तोष पतये इति गृहमध्ये। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नम इति गृहाकाशे बलिंदद्यात्। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्य इति दिवा। नक्तं चारिभ्य इति नक्तम्। भूभागे वा तत्र सर्वात्मभूतये नमः इत्येव बलिं दद्यात्। अवशिष्टं सर्वमन्नं दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणामुखः स्वधा पितृभ्य इति बलिं हरेत्। ( कुल्लूक भट्ट )

वेद और मनु का अनुकरण करते हुए ही स्वामी जी ने यह विधि लिखी है कि—

"थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथा क्रम इन मन्त्रों से भाग रखे—

ओं सानुगायेन्द्रायनमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भयो नमः। अद्भयो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियैनमः। भद्रकाल्य नमः ब्रह्मपतयेनमः। वास्तुपतयेनमः। विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्योनमः। सर्वात्मभूतये नमः॥

इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उस को जमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे"

इस से साफ साबित है कि स्वामी जी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

---

## ऋषि दयानन्द जी

## और

## वेद का भाष्य

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायु स्तदु चन्द्रमाः।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥ (यजु० ३२)

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापि सनातन अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त स्वभाव न्यायकारी दयालु जगत् का स्रष्टा धारण कर्ता और सब का अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान् और सब धर्ता होने से वायु (तत) वह (चन्द्रमाः) आनंद स्वरूप और आनंद कारक होने से चन्द्रमा (तत्, एव) वही (शुक्रं) शीघ्र कारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥

(६२६) प्रश्न "हे मनुष्यो!" यह जो अर्थ में लिखा है है यह मन्त्र के कौन पद का अर्थ है।

उत्तर—वाह महाराज ! खूब शंका की। क्या इसी अक्ल के मालिक बन कर आर्यसमाज से लोहा लेना चाहते हैं ?

क्या आप को इतनी भी तमीज़ नहीं है कि वेद का ज्ञान मनुष्यों के लिये ही प्रकाशित हुआ है। तो फिर हे मनुष्यो ! संबोधन सर्वथा ठीक ही है। आप के विचार में यदि किसी पद के अर्थ बिना संबोधन हो ही नहीं सकता तो आप ने जो अपनी किताब में—

पृ० १७६ पर "अर्चत" इस मन्त्र के अर्थ में हे अध्वर्यादि !
पृ० २५३ पर "माज्येष्टं" मन्त्र के अर्थ में हे अग्ने !
पृ० २५६ पर "नमः पार्याय" मन्त्र के अर्थ में हे शिव !
पृ० २५६ पर "आपो भूयिष्ठा" मन्त्र के अर्थ में हे ऋभव !
पृ० २६१ पर "सुमित्रियान" मन्त्र के अर्थ में जगदीश्वर !

इत्यादि संबोधन मन्त्र में पड़े किन पदों के अर्थ हैं। इस से साबित है कि संबोधन का अर्थों की संगति के अनुसार अध्याहार हो जाता है।

(६२७) प्रश्न—सर्वज्ञ सर्वव्यापि इत्यादि यह इतना बड़ा पुछल्ला मन्त्र के किसी पद में छिपा बैठा है या दयानन्द के दमाग से टपका है।

उत्तर—इस मन्त्र में 'तदेव" पद से परमात्मा की तरफ इशारा है। वह परमात्मा कैसा हैं जिस की तरफ "तद" शब्द से इशारा किया गया है। यह सर्वज्ञ आदि पदों से बताया गया है। अतः यह तत् शब्द का भाष्य ही है जैसा कि आप ने भी अपनी किताब के पृ० २६३ पर "अग्ने नय" मंत्र में पड़े "अग्ने पद का अर्थ " हे दिव्य दानादि गुण युक्त अग्नि देव" किया है।

(६२८) प्रश्न—अग्नि, वायु, आत्मि, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप, प्रजापति, इन शब्दों के अर्थ करते हुए प्रत्येक के साथ दो दो

विशेषण स्वामी जी ने अपनी तरफ से लगाकर ईश्वर की ग़लती निकाली है।

उत्तर—ईश्वर सर्वज्ञ है उस में ग़लती की कल्पना करना आप जैसे मायावादियों का काम है। स्वामी जी ने तो व्याकरण अनुसार इन शब्दों के अर्थ बतलाये हैं। ये विशेषण नहीं है। यदि आप में कुछ भी पाण्डितत्य हो तो स्वामी जी कृत अर्थों का खंडन करके दिखावें।

(६२९) प्रश्न—इस मन्त्र में ईश्वर सृष्टि का "अभिन्न निमित्तो पादान" कारण होने से समस्त संसार को ईश्वर का स्वरूप बतलाया है।

उत्तर—संसार का उपादान कारण प्रकृति है। अतः यह समस्त संसार ईश्वर का स्वरूप नहीं अपितु प्रकृति का स्वरूप है।

(६३०) प्रश्न—मन्त्र का अभिप्राय यह है कि अग्नि आदित्य आदि सब ब्रह्म ही हैं

उत्तर—अग्नि, आदित्य आदि ये सब संसार के पदार्थ ब्रह्म नहीं हैं। अपितु ब्रह्म के भी ये नाम है। यह अभिप्राय है।

(६३१) प्रश्न—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० १२७ "मुखं किमस्यासीत्" "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इन दो मन्त्रों के टीका में स्वामी जी ने ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व गुण माना है। पृ० ५७ पं० ११

उत्तर—आपका लेख सर्वथा असत्य है स्वामी जी ने मूर्खत्व और नीचत्व गुण ईश्वर के नहीं माने अपितु पुस्तक में पाठ इस प्रकार से कि—

(१)"मुखं किमस्यासीत्" के भाष्य में लिखा है कि—

( पादा उच्येते ) "पादावर्थान्मूर्खत्वादि नीच गुणैः किमुत्पन्नं वर्तते" मूर्खपन आदि नीच गुणों से किस की उत्पत्ति होती है।

(२)"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" के भाष्य में लिखा है कि ( पद्भ्याꣳशूद्रो० ) "पद्भ्यां पादेन्द्रियनीचत्वमर्थाज्जडबुद्धित्वादि गुणेभ्यः शूद्र सेवागुण विशिष्टः पराधीनतया प्रवर्तमानोऽजायत जायत इति वेद्यम्"

जैसे पग सब में नीच अंग हैं। वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।

कहिये महाराज इस में यह कहां लिखा है कि मूर्खत्व और नीचत्व ये गुण ईश्वर के हैं यहां तो लिखा हैं कि मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि जिस में मूर्खत्वादि नीच गुण हों वह शूद्र है।

यदि आप को "अस्य"शब्द के अर्थ "ब्रह्म" समझ कर भ्रम हुआ है। तो स्वामी जी ने अस्य शब्द के अर्थ सब स्थानों में ब्रह्म नहीं किये अपितु प्रकरणानुसार किया है जैसा कि इनहीं मन्त्रों के भाष्य में है कि—

"अस्य पुरुषस्योपदेशादुत्पन्नो भवतीतिवेद्यम्"

इस पुरुष के उपदेश से पैदा हुआ ऐसा जानना चाहिये। इस से अर्थ स्पष्ट होगया कि उस परमेश्वर के उपदेश से मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है अतः स्वामी जी ब्रह्म में मूर्खत्व और नीचत्व गुण नहीं मानते।

हां सनातन धर्म ब्रह्म का माया वा अविद्या से जीव बन जाना अवश्य मानता है। जैसाकि आप ने भी अपनी पुस्तक के पृ० १७४ में लिखा है कि—

"किंतु उस ब्रह्म का एक अंश मायिक ब्रह्म कहलाता है उस में इच्छा होती है। वही संसार को अपने शरीर से पार करता है"

कहिये महाराज! ईश्वर को भूखे आप मानते हैं या स्वामी जी। किसी ने ठीक कहा है—

गिला औरों का करते थे
कसूर अपना निकल आया।

(६३२)प्रश्न—दयानन्द जी के साथ मुन्शी इन्द्रमणि जी का नमस्ते पर शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ वेद व्याख्याता पं० भीमसेन जी हुए। स्वामी दयानन्द जी की हार हुई। पृ० १४६ पं० १०।

उत्तर—कहिये महाराज यह शास्त्रार्थ किस स्थान में हुआ था। क्या कहीं आप के दादा के बंगले पर तो नहीं हुआ। जिन की बही से आप को पता लग गया हो। वरना स्वामी दयानंद जी और इंद्रमणि की विद्वत्ता का मुकाबला ही क्या है। कहां राजा भोज और कहां गांगला तेली। "ख्वाजा का गवाह डड्डू"। मध्यस्थ भी भीमसेन ही थे। जिन का यज्ञ में पशुवध मानने के कारण समाज ने बहिष्कार कर दिया। क्या इसी गप्प बाजी से अब सनातन धर्म की विजय होगी। वास्तव बात यह है कि इस प्रकार का कोई शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं। और "नमो-ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय चेत्यादि यजु० १५।३२" के अनुकूल नमस्ते करना सर्वथा वेदानुकूल है।

(६३३) प्रश्न—स्वामी दयानंद और राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द में "ब्राह्मण ग्रंथ वेद हैं" इस विषय पर शास्त्रार्थ चला, इस शास्त्रार्थ के सभापति थी० बो० साहिब बहादुर

प्रिंसपल कॉस कालिज काशी हुये। इनहों ने अपने फैसले में लिखा कि ब्राह्मण ग्रंथ वेद हैं पृ० । १४७पं० ९

उत्तर—या बेईमानी तेरा आश्रय । क्या झूठ बोलने का और धोका देने का सनातन धर्म ने ठेका ले रखा है। वास्तव में न स्वामी जी का राजा शिवप्रसाद से शास्त्रार्थ हुआ। और न ही थी० बो० साहिब को कभी सभापति बनाया गया। राजा साहिब ने वैसे ही अपनी प्रसिद्ध के लिये झूटी किताब छाप दी। जिस का उत्तर 'भ्रमोच्छेदन' के द्वारा दे दिया गया।

(६३४) प्रश्न—डुमराँव जि० आरा में राजा के सामने राजपंडित परमहंस जी और दयानन्द जी में मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी ने राजा के सामने यह कह दिया कि आज मैं स्वीकार करता हूं कि मूर्ति पूजा वेद में लिखी है।

( पृ० १४७ पं० १५ )

उत्तर—झूठ क़तई झूठ, सुफैद झूठ, स्वामी जी का डुमरांव में कोई ऐसा शास्त्रार्थ नहीं हुआ। मूर्ति पूजा वेद के विरुद्ध है, वेद ने ईश्वर को "अकायम् यजु० ४०।८" वर्णन करके बतलाया कि "न तस्य प्रतिमाऽस्ति यजु० ३२।३" और फिर मूर्ति पूजा करने वाले को (अंधं तमः प्रविशन्ति यजु० ४०।८" में नरकगामी बतलाया है अतः मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध और पाप है।

(६३५) प्रश्न—हाथरस में हरजस राय भय्या वालों के साथ में स्वामी जी का शास्त्रार्थ १०मिनट हुआ विषय यह था कि स्वामी जी संसार का उपादान कारण प्रकृति को मानते थे। और हरजस राय जी ईश्वर को। दस मिनट के अंदर ही स्वामी जी ने कह दिया कि पंडित जी आप का पक्ष बड़ा प्रबल है इस पर मैं अपनी हार स्वीकार करता हूं। पृ० १४७ पं० २२

उत्तर—यह भी सनातन धर्म की टकसाली गप्प है। भला १० मिट में भी कभी कोई शास्त्रार्थ हो सकता है। वास्तव में स्वामी जी का कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ। हां ईश्वर को संसार का उपादान कारण मानना वेद के विरुद्ध अवश्य है। ईश्वर तो संसार का निमित्त कारण है और उपादान कारण प्रकृति ही है इस बात को वेद ने "द्वा सुपर्णा सयुजा" इस वेद मंत्र द्वारा भली भांति स्पष्ट कर दिया है।

(६३६) प्रश्न—स्वामी जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश में मृतकों का श्राद्ध अपने आप लिखा। सम्वत १९३४में कलकत्ता में आशुतोष चटर्जी से कह दिया कि यह लेख मेरा नहीं मेरे पास रहने वाले किसी पंडित ने लिख दिया।

॥ पृ० १४७ पं० २९ ॥

उत्तर—स्वामी जी का कहना सर्वथा सत्य था। क्योंकि प्रथम आवृत्ति सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी की निगरानी में नही छपा। अतः स्वार्थी पंडित लोगों ने उस में मृतक श्राद्ध प्रकरण को प्रविष्ट कर दिया। जब स्वामी जी को पता लगा तो स्वामी जी ने फौरन विज्ञापन द्वारा उस की तरदीद कर दी। क्योंकि मृतकों का श्राद्ध "ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः। यजु० १९।४९" इस वेद मंत्र के अनुसार वेद विरुद्ध होने से पाप है।

(६३७) प्रश्न—स्वामी जी ने महाराज जयपुर को शैव बनाया। और यह बतलाया कि शैव मत वैदिक है। कुछ दिन बाद फिर जयपुर में गये। राजा से कहा कि शैव मत भी वैदिक नहीं है। राजा ने कहा आप ही हम से कह गये थे कि शैव मत वैदिक है। स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि

यह तो मैं ने नहीं कहा। हां यह कहा था कि वैष्णव मत की अपेक्षा शैव मत अच्छा है। पृ० १४८ पं० ३।

उत्तर—स्वामी जी ने जो कुछ कहा सर्वथा सत्य कहा। क्योंकि दो बुराइयों में भी अपेक्षा कृत कमी ज़्यादती होती है। जैसे कि आर्य समाज अब भी पौराणिक सनातन धर्म को ईसाई और मुसलमानों की अपेक्षा अच्छा मानता है। यदि सनातन धर्म का ईसाई तथा मुसलमानों से शास्त्रार्थ हो जाय तो आर्य समाज सनातन धर्म की सहायता करेगा। ऐसा ही स्वामी जी ने भी किया था।

(६३८) प्रश्न—संसार को तो गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था बतलाई जाती है। और आप न गुण देख, न कर्म और न स्वभाव। चाहे जिसको ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बना दें।

(पृ० १४८ पं० २४)

उत्तर—आपका यह कहना कतई गलत है। क्योंकि आर्य समाज प्रत्येक को शूद्र करके आर्य बनाता है। यह शूद्र होने वाले का पुरुषार्थ है कि वह अपनी योग्यता से चाहे किसी वर्ण के गुण कर्म स्वभाव प्राप्त करके किसी वर्ण के काबिल बनजावे। और सारे संसार को आर्य्य बनाने की वेद आज्ञा है जैसा कि—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्।
अपघ्नन्तोऽराव्णः॥ ऋ० ९।६३।५॥

अतः प्रत्येक को आर्य बनाना वेदानुकूल होने से धर्म है।

(६३९) प्रश्न—वेद और मनु तथा स्वामी दयानन्द जी के लेख से स्त्रियों का यज्ञोपवीत पहिनना सिद्ध नहीं होता।

पृ० १४९ पं० १

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है। वेद तथा मनु और स्वामी जी भी स्त्रियों के लिये वेद का अधिकार मानते हैं। जैसे कि—

वेद—भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता ॥ ( ऋ० १०।१०६।४ )

मनु—न वै कन्या न युवतिर्नाल्प विद्यो-न बालिशः।
होता स्यादग्नि होत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३६॥
( मनु० ११ )

स्वामी दयानन्द—नवें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने संतानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों। वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें। (सत्यार्थ० स० २ ) द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथा योग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल में अर्थात् अपनी अपनी पाठशाला में भेज दें ( सत्यार्थ० स० ३

इसी प्रकार से वृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और कन्या धीरे २ वेदार्थ के ज्ञान रूप उत्तम तप को बढाते चले जावें (सत्यार्थ० समु० ३ )

(६४०) प्रश्न—आज कल के आर्यसमाजी वेद को छोड़ पुराणों से अपने पक्ष की शास्त्रार्थों में पुष्टि करते हैं जिन पुराणों को स्वामी दयानन्दजी ने विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याःबतलाया है। उसी को आर्य समाजी प्रमाण मानते हैं।

( पृ० १४२ पं० ९ )

उत्तर—आर्यसमाजी अब भी पुराणों को वैसा ही मानते हैं जैसा कि स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है। और आर्य समाज में अपना पक्ष स्थापन करते समय भी पुराणों का प्रमाण पेश नहीं करते। हां अपने पक्ष को मनवाने के लिये

पौराणिकों के घर से उन के ग्रन्थों में से उन के लिये प्रमाण देते हैं। यदि पौराणिकों को पुराणों के प्रमाण महंगे पड़ते हैं। तो उन को भी पुराणों को प्रामाणिक मानने से इनकार कर देना चाहिये।

(६४१) प्रश्न—आर्यसमाजियों ने एक चाल यह चली है कि वेद शास्त्र को छोड़कर इतिहास से धर्म निर्णय करने लगते हैं कि अमुक स्त्री का विधवा विवाह हुआ था। इस कारण विधवा विवाह करना धर्म्म है। यह निर्णय सर्वथा धर्माधर्म में घपला मचा देने वाला है। द्वापर में मञ्जू धोबी की अम्मा ने अढाई सौ पति किये तो अब प्रत्येक स्त्री का अढाई सौ पति करना धर्म्म हो गया। यादवों ने शराब पी नशे में कट कर मर गए तो प्रत्येक मनुष्य का धर्म हो गया कि शराब पी कर मर जाय। रावण ने श्रीमती जनक नन्दिनी को हर लिया। अब मनुष्यों का धर्म हुआ कि दूसरों की औरतों को चुराया करो। इस नियम से तो धर्माधर्म सब धर्म हो जायेंगे। फिर इतिहास से धर्म निर्णय कैसे। एक दूसरी ख़राबी यह आवेगी। कि वेन व्यभिचारी था और उसका लड़का पृथु एक स्त्रीव्रत रखने वाला। उग्रसैन गौ ब्राह्मण वेदों का भक्त था और उसका लड़का कंस तीनों से ही घोर शत्रुता रखता था। फिर इतिहास से धर्म निर्णय कैसे होगा। इतिहास सब लोगों के चरित्र देता हुआ लिखता है कि—

"रामवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणवत्" राम की तरह आचरण करो, रावण जैसा आचरण करने वाले मत बनो" फिर किसी एक मनुष्य के चरित्र को लेकर धर्म की डिगरी देना यह आर्य समाजियों का संसार की आंख में धूल झोंकना है।

पृ० १८६ पं० १४

उत्तर—आर्य्यसमाज इतिहास को धर्म अधर्म में परम प्रमाण नहीं मानता। अपितु धर्म अधर्म में परम प्रमाण वेद को मानता है। धर्म अधर्म के जानने में इतिहास वहां तक ही प्रमाण है जहां तक कि वह वेद तथा स्मृति के अनुकूल हो। जैसा कि मनु ने लिखा है कि—

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१३॥ ( मनु०२ )
आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ १०८ ॥
( मनु० १ )

अब आप के लिये इतिहास में से कर्तव्य और अकर्तव्य को जानना आसान है। चूंकि एक ही समय में किसी स्त्री का ढाई सौ पति करना वेद के विरुद्ध है। अतः मुल्ला धोबी को मां का आचारण वेद विरुद्ध होने से अनुकरणीय नहीं है। और चूंकि स्त्री को दूसरे पति का अधिकार वेद देता है। अतः अर्जुन का नाग राजा की विधवा पुत्री से विवाह करना वेदानुकूल होने से अनुकरणीय है। चूंकि शराब का पीना, पराई स्त्री हरण करना वेद के विरुद्ध है इस लिये यादवों का शराब पीकर कट मरना तथा रावण का सीता को चुरा ले जाना वेद विरुद्ध होने से अनुकरणीय नहीं है। धर्म अधर्म की कसौटी वेद को मान कर इतिहास से धर्म और अधर्म के निर्णय में कोई घपला नहीं हो सकता। इतिहास में जिस का आचरण वेदानुकूल होगा वह धर्म में अनुकरणीय और जिस का आचरण वेद विरुद्ध, होगा वह धर्म में अनुकरणीय न होगा। जैसेकि वेद का व्यभिचार और कंस का गौ, ब्राह्मण और वेद से शत्रुता करना वेद विरुद्ध होने से पाप है अतः अनुकरणीय नहीं है। और राजा पृथु का एक स्त्री व्रती होना तथा उग्रसैन

का गौ ब्राह्मण और वेदों का भक्त होना वेदानुकूल होने से धर्म है। अतः अनुकरणीय है। आप की यह थ्यूरी भी ग़लत है कि राम की तरह आचरण करो रावण की तरह आचरण न करो। अपितु यह थ्यूरी ठीक है कि मनुष्यों के वेदानुकूल आचरण का अनुकरण करना चाहिये और वेद विरुद्ध आचरण का अनुकरण नहीं करना चाहिये। क्योंकि राम और रावण दोनों ही इनसान थे, दोनों से ही ग़लती का होना संभव है। अतः किसी भी इनसान का चरित्र धर्माधर्म में डिगरी नहीं माना जा सकता है। आर्य समाज का यही एक निश्चित सिद्धांत है। हां सनातन धर्म के अवश्य इतिहास को ही धर्म निर्णय में कसौटी मानता है। जैसा कि—

तर्केऽ प्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्नाः।
नासावृषि र्यस्यमतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥५१॥

(गरुड० आचार० अ० २०९)

सनातन धर्म के मन्तव्य को आर्य समाज के गले मढ़ना यह अव्वल दर्जे की मक्कारी छल कपट तथा बेईमानी है या नहीं।

(६४२) प्रश्न—हम यह निर्णय नहीं करेंगे कि मुसलमान ईसाई आदि के धर्म अकाट्य और मान्य हैं या नहीं। जिस का धर्म जैसा है वह उसी के लिये मुबारिक है। मज़हब मज़हब हैं किंतु आर्य्य समाज चाल बाजियों का भंडार है।

॥ पृ० १५१ ॥

उत्तर—आप में यह हिम्मत ही कहां है जो आप ईसाई और मुसलमानों के मज़हब की समालोचना कर सकें। धर्म

बहुत से नहीं होते । जब ईश्वर एक है तो उसकी तरफ से धर्म भी एक है । और वह वैदिक धर्म है। जिस की बुनियाद किसी एक मनुष्य पर है वह मज़हब है । और जिस की बुनियाद किसी मनुष्य पर नहीं अपितु ईश्वरीय नियमों पर हैं वह धर्म है। इस हिसाब से ईसाई और मुसलमान मजहब हैं। और आर्य समाज वैदिक धर्म है। किंतु पौराणिक सनातन धर्म चूं चूं का मुरब्बा है।

(६४३) प्रश्न—यदि आर्य्य समाजी दुर्गंध को दूर करने के लिये हवन करते हैं तो उन को पाखाने में हवन करना चाहिये।

उत्तर—जो स्थान जिस प्रयोजन के लिये बनाया जावे उस से वही काम लेना विद्या तथा उस से विपरीत काम लेना अविद्या कहाती है। घर में यज्ञ शाला हवन करने के लिये और टट्टी पाखाने फिरने के लिये बनाई जाती है। अतः टट्टी में हवन करना तथा यज्ञशाला में पाखाना फिरना ये दोनों ही काम अविद्या युक्त होने से पाप हैं। हां यज्ञशाला में किया हुआ हवन जैसे और स्थानों की दुर्गंध को दूर करेगा वैसे ही पाखाने को दुर्गंध को भी दूर करेगा। जैसे परमात्मा ने मनुष्य के शरीर में मुख खाने के लिये और गुदा पाखाना फिरने के लिये बनाई है। मुख से खाया हुआ भोजन जैसे सारे शरीर की पुष्टि करता है वैसे ही गुदा की भी पुष्टि करता है जैसे गुदा की पुष्टि के लिये गुदा से ही भोजन की मांग मूर्खता युक्त है वैसे ही टट्टी की दुर्गंध को दूर करने के लिये टट्टी में ही हवन करने का प्रश्न भी मूर्खतायुक्त ही है। सम्भव है प्रश्नकर्ता पौराणिक पंडित हठ में आकर गुदा से ही भोजन करने की मूर्खता

में मुबतला होने को तय्यार हो जावें। किंतु तो भी कोई आर्य-समाजी टट्टी में हवन करने की हिमाक़त में मुबतला न हो सकेगा।

(६४४) प्रश्न—आर्य समाजी लोग स्वामी दयानन्द जी की मूर्ति की पूजा करते हैं। यदि नहीं करते तो वे मूर्ति पर जूता मार कर दिखलावें।

उत्तर—आर्य समाज परमात्मा के स्थान में किसी भी चीज़ की पूजा करने को वेद विरुद्ध होने से पाप मानता है। हां आर्य समाज मूर्तियों को कौमी यादगार मानता है। और उन का उपयोग इस प्रकार से मानता हैं कि बच्चों को बजुर्गों की तसवीरें दिखलाकर और उन का जीवन चरित्र बतला कर वैसा ही बनने की शिक्षा दी जावे। अतः मूर्ति पर जूता मारना मूर्ति का दुरुपयोग होने से अविद्या जन्य, सिद्धांत विरुद्ध, शिष्टाचार धर्म और नीति के भी विरुद्ध मानता है। इसी प्रकार के कार्य को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान, मंत्री, अंतरंग सभा और सार्वदेशिक सभा ने भी सर्व सम्मति से अनुचित करार दिया है। और आर्य समाज की दृष्टि में इस प्रकार का प्रश्न भी न्याय शास्त्र के विरुद्ध होने से निर्मूल है। ऐसे ऐसे निर्मूल प्रश्न तो कोई भी किसी पर कर सकता है जैसे कोई आदमी प्रश्न करता है कि "आप लोग पाखाने और पेशाब की पूजा करते हो। यदि नहीं करते तो पाखाने को खाकर और पेशाब को पी कर दिखावें" तुम्हारे अपनी मां बहिन और बेटी के साथ नाजाईज तअल्लुकात हैं यदि नहीं तो उनको सभा में बुलाकर उन के हलफ़िया बयान करवाओ। आप पराई स्त्री को माता के समान नहीं समझते यदि समझते हैं, तो फलां स्त्री का स्तन मुख में लेकर चूस कर दिखलाओ। आप

अपने घर बार, मेज, कुरसी, कपड़े, चारपाई, आदि सब की पूजा करते हैं, यदि नहीं करते तो इन सब को दियासलाई लगा कर दिखलाओ। आप पराई आत्मा को अपनी आत्माके समान नहीं समझते यदि समझते हैं तो दूसरे पुरुष को अपनी स्त्री के पास जाने की आज्ञा देकर दिखाओ। इत्यादि इत्यादि अनेक प्रतिज्ञायें की जा सकती हैं। किंतु ये सम्पूर्ण प्रतिज्ञायें हेतु शून्य होने के कारण निर्मूल ही हैं और प्रतिज्ञा करने वालेको प्रतिज्ञा हानि निग्रहस्थान में लाकर परास्त करवा देती हैं। इसी प्रकार से आपकी प्रतिज्ञा भी हेतु शून्य है। जब तक कि आप अपनी प्रतिज्ञा को साबित करने के लिये हेतु रूप में कोई प्रमाण पेश न करें। अतः अपका दावा बिना दलील के यकतरफ़ा ही खारिज करने के काबिल है।

❀ "आर्य्य समाज की मौत" ❀
❀ का क़रारा जवाब ❀
❀ समाप्त ❀

# पौराणिक पोल प्रकाश

## का

# शुद्धि पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ७५३ | ५ | वितृयज्ञ | पितृयज्ञ |
| ७५६ | ४ | ज्ञान से | ज्ञान से |
| ७५६ | २४ | जमा | जैसा |
| ७६३ | ६ | धर्म फर्म शास्त्र | धर्म शास्त्र |
| ७७६ | २३ | अब भी | अब भी |
| ७८८ | २ | बल | बैल |
| ७८४ | ५ | ब्राह्मणों खिलाई | ब्राह्मणों को खिलाई |
| ७६७ | १ | का वर्ण नहीं | का वर्णन नहीं |
| ७६६ | २३ | पकारकी | प्रकार की |
| ८०४ | ३ | ब्रह्म | ब्रह्मा |
| ८११ | ८ | च्यार | चार |
| ८११ | १० | तो | को |
| ८१३ | १० | के | को |
| ८१६ | १३ | आदि | आदि से |
| ८१६ | १६ | कौन | कौन |
| ८२० | ४ | हविर्भु | हविर्भुज |
| ८२० | १० | पितरों को | पितरों का |
| ८२३ | २४ | में ही है | में नहीं है |
| ८३० | २३ | छियानवी योजन | छियासी हज़ार योजन |
| ८३१ | २३ | प्रतिपादन | प्रतिपादक |
| ८३६ | १५ | होना | होता है |
| ८५३ | ६ | की नहीं | को नहीं |
| ८५३ | १० | कहतीहै | करती है |
| ८६० | २३ | वश्याने | वेश्या ने |
| ८६१ | ४ | वेश्या गमन | वेश्या गमन |
| ८६५ | १० | मृत स्त्रीके | मृतस्त्रीक |
| ८६७ | १४ | गर | गैर |
| ८७२ | १४ | की भांति | का वर्तमान की भांति |
| ८७७ | ६ | बहु में | बाहु में |
| ८८२ | १८ | जिन्हों | जिन्हों ने |
| ८८३ | ५ | दया | दाय |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धी | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ८६३ | ५ | पक्के रिश्ते-नज़दीक | |
| ८९४ | १६ | असमर्थ | -समर्थ |
| ८६८ | ४ | स्त्री दूसरे | -स्त्री को दूसरे |
| ६१३ | १६ | समय पर | -समय पर |
| ६२६ | ६५ | सफण्ठ | -सुकण्ठ |
| ६४२ | १६ | यदि वह | -यदि वह वेद तथा |
| ६४३ | ४ | कृष्ण | -कृष्ण |
| ६४३ | १० | वैश्या | -वेश्या |
| ६४८ | १५ | पुराण | -पुराना इतिहास- इतिहास |
| ६४८ | २१ | पु ाण | -पुराना इतिहास-इतिहास |
| ९५३ | १३ | कल्प-इतिहास तथा ब्राह्मण तथा-पुराण एकही है | पुराण एक ही हैं वैसे भी भिन्न २ वर्णन करने पर भी कल्प ब्राह्मण पुराण एक ही हैं |
| ६५६ | १ | चार | -घोर |
| ६६० | १७ | बाणी | -बाकी |
| ६६१ | ८ | उद्धार | -उद्धारक |
| ६६१ | १६ | काप्यायन | -कात्यायन |
| ६७१ | ५ | परार्थों | -पदार्थों |

| पृष्ठ | पंक्ति | शुद्धि | अशुद्धि |
|---|---|---|---|
| १००४ | १९ | फो पुरा | -फी पुराण |
| १०१२ | १० | पूरा ही-पूरा पन | |
| १०१६ | ६ | ११२१ | -११३१ |
| १०१६ | ११ | बली | -बेली |
| १०२० | २० | श्रद्धा | -श्राद्ध |
| १०२४ | ३ | का किया | -का अर्थ किया |
| १०३५ | १२ | जाल | -जल |
| १०३६ | ५ | भूगो | -भूगोल |
| १०३६ | १७ | लगान | -लगाना |
| १०३७ | २१ | और उसी | -और सूर्य उसी |
| १०५५ | १६ | रखते | -रहते |
| १०६५ | १६ | बैठते-उठते | बैठते |
| १०६६ | ३ | बादु | -बाहु |
| १०७७ | १० | के | -ने |
| १०६७ | १८ | हाने | -होने से |
| ११०३ | १० | मस | -मांस |
| १११० | ३ | सेजै | -जैसे |
| १११९ | १७ | पैयसन | -व्यसन |
| ११२४ | १८ | को | -को मालिक |
| ११३७ | १८ | सातवें | -की सातवें |
| ११४७ | १४ | सात्यको | -सात्य-की ने |

११५३-२२-१४वर्ष—२४ वर्ष
११५४-६-आद 'श्रुत-आद्ध'श्रुत
११५४—२—श्रद्धा—आद्ध
११५६:१८- होना—न होना
११५६-२१-प्राणि यों—प्राणियों
११८६—१६—जोर—वीर्य
११९६—६—अवज्ञा—वाक्षा
११६६-१०-प्रतिपानि-प्रतिपादित
१२२१-२-जैसा कि--ब्रह्म पौराणिक ब्रह्मा
का स्वरूप देखें
जैसा कि
१२२८-२२-दयानंद—इशानन्द
जी जल—जीने जल
१२३२-२२-अपितु—अपितु
पदार्थ—संपूर्ण पदार्थ
१२३६-१३-क्षाय—क्षत्रिय
१२४४-१९-पश्चिमव-पश्चिम
१२४७-५-आते—आने
१२७७-११-होयग—होमयग
१२७८-२०-बनावटा-बनावटी
१२८०-१६-स्पर्शेन्द्रिय-इन्द्रिय स्पर्श
१२८२-२४-मौजूद-मौजूद मंत्र
१२८३-२२-पुउनके—उनके
१२८३—२३—ब्र—पुत्र
१२९१—११—भुत्र-मन्त्र
१२९३-१४-सब —सबका
१२९४-३-विचार— विचार
१२९५-६-पाण्डित्य-पाण्डित्य

# पौराणिक पोल प्रकाश

पर

## कुछ समाचार पत्रों की सम्मतियां—

प्रस्तुत पुस्तक प० कालू राम शास्त्री लिखित 'आर्यसमाज की मौत' के उत्तर में लिखी गई है। ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में उठाई गई शङ्काओं का योग्यता पूर्वक समाधान किया गया है। वेदों और शास्त्रों के अनेक प्रमाण खोज खोज कर विपक्षी के आक्रमणों को निरर्थक सिद्ध किया गया है। जो आर्य भाई उपदेशक या प्रचारक प्रमाणों के अभाव में पौराणिक पण्डितों के सामने कभी-कभी चकरा जाते हैं उन्हें चाहिये कि इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास रखें। दूसरों का खण्डन चाहे किसी समय बन्द भी कर दिया जाय पर आर्य सिद्धान्तों पर किये गये आक्षेपों का उत्तर तो तुरन्त ही देना आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है।

(आर्य मित्र, आगरा)

# पौराणिक पोल प्रकाश

## पर सम्पतियां

यह पुस्तक पं० कालूराम शास्त्री द्वारा लिखित "आर्य समाज की मौत" नामक पुस्तक के जवाब में लिखी गई है। और ईश्वर का स्वरूप ब्रह्म के दो रूप, तीन प्रकार की साकारता, व्याप्य व्यापकत्व साकारता, सर्व स्वरूप साकारता, अवतार तत्त्व साकारता, पौराणिक अवतार मूर्ति पूजा, शिव लिंग पूजा, त्रित्वाद, फलित ज्योतिश, विवाह काल, वर्णव्यवस्था आदि महत्व पूर्ण विषयों पर वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, गीता और महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रमाणों तथा युक्तियों से प्रकाश डाला गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

(प्रकाश लाहौर)

२

श्री पं० मनसाराम जी ने सनातनी पंडितों के साथ अनेक शास्त्रार्थ किये हैं और पौराणिकों के कई बार छक्के छुड़ाये हैं। आपको पुराण तथा दूसरे पौराणिक ग्रन्थों पर भरपूर स्वाध्याय है। पिछले दिनों पौराणिक पंडित कालूराम शास्त्री ने "आर्य समाज को मौत" नामी पुस्तक लिखकर आर्य समाज पर बे बुनियाद हमले किये थे। इसका निहायत ही करारा जवाब पंडित जी की ओर से "पौराणिक पोलप्रकाश" पुस्तक की शक्ल में दिया है। जिस में पुराणों और अन्य ग्रन्थों के उदाहरण दे कर पौराणिक धर्म का सही फोटो खैंचा गया है। जो भाई पौराणिक धर्म का वास्तविक स्वाध्याय करना चाहें वह इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

(आर्य गज़ट, लाहौर)